ऋग्वेद



यजुर्वेद

दैवत-संहिता

[चारों वेदोंका देवतानुसार मंत्रसंग्रह]

सम्पादक

म. म. ब्रह्मर्षि पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विद्या-मार्तण्ड, साहित्य-वाचस्पति, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल

*

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

सामवेद

अथर्ववेद



दैवत-संहिता

भूमिका

भारतीय संस्कृतिका मूल स्रोत-वेद

भारतीय संस्कृति विश्वके अन्य देशोंकी संस्कृतिमें सबसे प्राचीन एवं सर्वश्रेष्ठ है। जिस समय सारा संसार अज्ञानान्धकारसे आवृत्त था, उस समय भारतकी संस्कृतिका प्रभाव चारों ओर फैल रहा था। उस समयके भारतका चित्रण मनुजीने इस प्रकार किया है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

'पृथिवीके सब मानव इस भारतखण्डपर अपने अपने चरित्रकी शिक्षा लेनेके लिए आते थे।'

इस संस्कृतिमें महर्षियों द्वारा मानवजीवनकी हर तरहकी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त किया गया है। आज भी जहां अन्य देशोंकी संस्कृतिका पतातक नहीं चलता, हमारी भारतीय संस्कृति पूर्वके समान ही सर्वातिशायिनी बनी हुई है। इसका कारण यह है कि इस संस्कृतिका स्रोत ही वेद है। वेद नित्य हैं, अपरिवर्तनशील हैं तथा भ्रान्ति आदियोंसे सर्वथा रहित हैं। वेद ही वास्तवमें वह गंगोत्तरी है, जहांसे भारतीय संस्कृतिकी गंगा प्रवाहित होती है। भारतीय संस्कृति और वैदिक संस्कृति दोनों एक ही हैं। इस संस्कृतिका शुद्ध रूप वेदोंमें ही मिल सकता है।

वेद ईश्वरीय वाणी है, * जो सृष्टिके प्रारंभमें मनुष्योंकी आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक उन्नतिके लिए प्रकट हुई थी। इसमें मानवजीवनके हर पहलूपर विचार किया गया है, या यूं कहना चाहिए कि मानवकी सर्वांगीण उन्नतिका मार्ग इसमें दिखाया है। वेद स्वयं इस बातकी घोषणा करता है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।

यजु. २६।२

'मैं जनोंके हित करनेवाली इस वाणीको बोलता हूँ।'
वेदोंमें मनुष्यकी हर समस्याका समाधान प्रस्तुत है। मनुष्य जातिके कल्याणार्थ उसके अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्तिका सत्य और सरल मार्ग इन वेदोंमें प्रकाशित किया है। ये वेद अखिल विद्या विज्ञानोंके भण्डार हैं। वैदिकोत्तर सभी साहित्यमें इनका महत्त्व बहुत बड़े पैमानेपर वर्णित है।

वैदिक संस्कृतिकी विशेषता

वैदिक संस्कृतिकी सर्वप्रथम विशेषता है- समन्वयवाद। वह न बिल्कुल अध्यात्मवादी है और न बिल्कुल भौतिकवादी। उसमें दोनोंका समन्वय है। मानवजीवनके लिए दोनों ही अत्यावश्यक हैं। आजकी पाश्चात्य संस्कृति एकांगी है। वह केवल भौतिक उन्नतिपर ही ज्यादा जोर देती है, अतः इस संस्कृतिका उपासक भौतिकतामें तो बहुत उन्नति कर लेता है, पर आध्यात्मिकतामें पिछडा रह जाता है।

---

* १ एवं अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम्।
एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः॥ श. ब्रा. १४।५।४।१०
२ सः प्रजापतिः श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्॥ श. ब्रा. ६।१।१।८

*

इहलौकिक और पारलौकिक उन्नतिपर समान जोर है। वैदिकोत्तर स्मृतियोंमें धर्मका लक्षण ही यह है कि अभ्युदय और निःश्रेयसकी उन्नति सिद्ध ...ाला ही धर्म है। + । वैदिक संस्कृतिमें वे सारे तत्त्व ...त्रामें मौजूद है, जो मनुष्यको आदर्श बना सकते हैं। ... संस्कृतिमें आत्मा और परमात्मामें दृढ विश्वास रखती ...यह विश्वास मनुष्यमें आध्यात्मिकता उत्पन्न करता ...वैदिक संस्कृति प्रकृति और उससे बने भौतिक शरीर ...त्ताको स्वीकार करती है और इसीलिए शरीरकी ...क आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए सब प्रकारकी प्राकृ... उन्नति करनेकी भी प्रेरणा देती है। वेदोंमें आदेश है ...नुष्य इस संसारमें रहकर उत्तमोत्तम भोग भोगे। ...दका मनुष्य कहता है—

...ह भुव वसुन पूर्व्यस्पति
...हं धनानि सजयामि शश्वत । ऋ १०।४८।१

...मैं धनका सबसे प्रथम स्वामी हूँ, मैंने हमेशा धनोंको ...है।'

...और जगह जगह परमात्मासे भी प्रार्थना की गई हैकि 'हे ...त्मन्' हमें उत्तम उत्तम धनोंका स्वामी बनाइये ...गाय, घोडे और सुवर्ण आदि धन सहस्रोंकी सख्यासे ...ए'। इस प्रकार वेदमे भौतिक उन्नति करनेकी भी प्रेरणा है। यह संसार हमारा घर है, हम इसके स्वामी हैं। हमें सुख देनेके लिए ही परमात्माने इस संसारका निर्माण किया है। महात्मा बुद्धने इसके विपरीत लोगोंको यह ज्ञान दिया कि 'ससार क्षणभंगुर है, यह अत्यन्त दुःखमय है, अतः हे मनुष्यो! यह ससार हेय है। इसको छोड दो और सन्यासी या भिक्षुक होकर यहां रहो'। पर वेद इसके विपरीत लोगोंको आदेश देता है कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शत समाः।
यजु ४०।२

'हे मनुष्यो! इस संसारमें तुम शुभ कर्म करते हुए सौ वर्ष तक आनन्दसे जीवो'। वेदके पुरुष-सूक्तमें तथा गीताके ग्यारहवें अध्यायमें यह बात बडे विस्तारसे समझाई है कि यह विश्व सच्चिदानन्द परमात्माका ही रूप है। आनन्दमय परमात्मा इसमें सर्वत्र व्याप्त है। उसका व्याप्तस्वरूप पवित्र है—

पवित्र ते वितत ब्रह्मणस्पते
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत । ऋ ९।८३।१

अतः जो विश्व आनन्दमय परमात्माका रूप है, वह दुःखमय कैसे हो सकता है? यह जगत् पचभूतात्मक है। ये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पचभूत भी हमें सुख ही देते हैं। पृथिवी हमें आधार देकर, जल हमारी

३ 'शास्त्रयोनित्वात्' वे सू १।१।३
महत ऋग्वेदादे शास्त्रस्य अनेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिन सर्वज्ञकल्पस्य योनि कारण ब्रह्म। नहीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यत सभवोऽस्ति। ऋग्वेदाद्यास्यस्य सर्वज्ञानाकरस्य अप्रयत्नेनैव लीलान्यायेन पुरुषनि श्वासवत् यस्मान्महतो भूतात् योने सभव। (शाकर भाष्य)

४ न पौरुषेयत्व तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्– सा सू ५।४६
वेद पौरुषेय नहीं, क्योंकि उसका बनानेवाला कोई पुरुष नहीं हो सकता।

५ यस्य नि श्वसित वेदा यो वेदेभ्योऽखिल जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥ सायण, ऋग्वेदभाष्य–प्रस्तावना।

६ अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
वेद शब्देभ्य एवादौ निर्ममीते स ईश्वर॥ महाभारत शान्ति पर्व २३२।२४–२६

७ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ ऋ १०।९०।९

× × ×

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्॥ अथर्व १०।७।२०

+ वैशेषिक द १।१।२

प्यास बुझाकर, अग्नि हमें उष्णता देकर, वायु हमें जीवन या प्राण देकर और आकाश हमें अवकाश देकर सब तरहसे सुख प्रदान करता है। जब ये पांचों भूत हमें सुख देनेवाले हैं, तो उनसे बना हुआ विश्व हमारे लिए दुःखदायी कैसे हो सकता है?

अतः यह विश्व मनुष्यको सुख प्रदान करनेवाला है। पर जब मानव इन्हींको अन्तिम ध्येय समझकर इनमें सर्वथा लिप्त हो जाता है और अध्यात्मकी उपेक्षा कर देता है, तब वह दुःखी होजाता है। इसीलिए वेद कहता है—

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः
मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। यजु. ४०।१

"हे मनुष्यो! इन सांसारिक भोगोंका त्यागभावसे भोग करो। कभी लालच मत करो। यह सब समाजका धन है।" त्यागभावसे किया हुआ कर्म कर्ताके लिए कभी भी दुःखका कारण नहीं बनता।

इस प्रकार वेदने दूसरे पक्ष निःश्रेयसपर भी अत्यधिक बल दिया है। अथर्ववेदमें इसीको मानवजीवनका अन्तिम लक्ष्य बताया है—

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं
ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥
अथर्व. १९।७१।१

"हे देव! मुझे आयु, प्राण, प्रजा, पशु, यश, धन और ब्रह्मतेज ये सब देकर अन्तमें ब्रह्मलोक (मोक्ष) भी प्राप्त कराओ।"

संसार और जीवनका उद्देश्य हमारा उत्तरोत्तर विकास है। उत्तरोत्तर विकासका ही नाम अमृतत्त्व है+। यही निःश्रेयस है×।

वैदिक संस्कृतिकी दूसरी विशेषता है "प्रगतिशीलता"। यह संस्कृति अपने अर्थोंमें कभी संकुचित नहीं रही। वेदमें कई ऐसे शब्द हैं, जो वैदिककालमें किसी एक निश्चित अर्थके द्योतक थे पर आज उनका अर्थ बहुत विस्तृत हो गया है।

उदाहरणार्थ— 'यज्ञ' शब्दको ही ले सकते हैं। वैदिककालमें इसका प्रयोग देवताओंके लिए किए जानेवाले अग्निहोत्रादि कर्मके लिए ही होता था, पर बादमें अनेक अर्थोंमें इसका प्रयोग होने लगा। इसी परिवर्तित अर्थको लेकर गीतामें● वैदिक यज्ञोंके साथ साथ ज्ञानयज्ञ, तपोयज्ञ आदि यज्ञोंका भी वर्णन है। महर्षि दयानन्दने तो इसको और विस्तृत अर्थमें लेकर अपने आर्योद्देश्यरत्नमालामें लिखा है- "शिल्पव्यवहार और पदार्थविज्ञान जो कि जगत्‌के उपकारके लिए किया जाता है, उसको (भी) यज्ञ कहते हैं।"

इसी प्रकार पहले वेद शब्द केवल ऋग्, यजु, साम और अथर्व इनको ही कहा जाता था। पर कालान्तरमें ब्राह्मण और उपनिषदोंको भी वेद नामसे पुकारा जाने लगा। (मंत्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्)

वैदिक संस्कृतिकी तीसरी विशेषता है "असाम्प्रदायिकता।" वेद किसी विशेष जाति, या सम्प्रदायका धन नहीं है। उसका प्रकाश परमेश्वरने सम्पूर्ण मानवजातिके हितके लिए किया था। वेदके मंत्रसे भी हमारे कथनकी पुष्टि होती है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।
यजु. २६।२

"मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, आर्य और सेवक सभी मनुष्योंके हितके लिए इस कल्याणी वाणीका–वेदका–उपदेश करता हूँ।"

अन्य सम्प्रदायोंकी तरह वैदिकधर्म कभी यह नहीं कहता कि तुम हमारे धर्ममें दीक्षित हो जाओ, तभी तुम मोक्षपदके अधिकारी हो सकोगे। उसका तो यही कथन है कि कोई भी मनुष्य चाहे वह किसी जाति, सम्प्रदाय या मतका हो, उत्तम कर्म करके मोक्षपदको प्राप्त कर सकता है। इसीको अथर्वमें इस प्रकार कहा है—

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं
कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः
सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्॥ अथर्व. १७।१।२७

"मैं प्रजापतिके ज्ञानरूपी कवचसे ढका हुआ तथा सूर्यके तेज और वर्चसे युक्त होकर वृद्धावस्थापर्यन्त क्रियाशील रह कर अनन्तकालतक उत्तम कर्म करता रहूँ।"

\+ जीवा ज्योतिरशीमहि। (ऋ. ७।३२।२६);
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।...तत्र माममृतं कृधि (ऋ. ९।११३।११

× भारतीय संस्कृतिका विकास— वैदिकधारा— डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ. १०

● गीता ४।२५–३०,३२

" इस प्रकार चिरकालसे विचार संकीर्णता और परस्पर संघर्षकी भावनासे परिपूर्ण सम्प्रदायवाद तद्‌भिमुख दार्शनिक साहित्य और जातिपातिक भेदभावसे जर्जरित भारतीय जनतामें एक जातीयताके नवीन जीवनका संचार करनेके लिए एकमात्र प्रगतिशील तथा असाम्प्रदायिक वैदिक संस्कृतिके आदर्शोंका ही आश्रय लिया जा सकता है। " ×

वैदिक संस्कृतिकी चौथी विशेषता है " ममत्वकी भावना। " वैदिक संस्कृति तो वह गंगा है, जो अज्ञात स्थलसे निकल कर अनेक छोटे-मोटे विचाररूपी नदियोंको अपने अन्दर समेटती हुई लोगोंको शान्ति प्रदान करती है। वैदिक संस्कृतिका मुख्य ध्येय है, लोगोंमें ममत्वकी भावना उत्पन्न कर जगत्‌में शान्ति स्थापित करना।

ममत्व भावनासे समाजको संगठित करना ही वेदका एक मात्र लक्ष्य है। जबतक समाजका संघटन नहीं होता, तब तक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्वका उत्कर्ष आकाशपुष्पके समान है। प्रत्येक व्यक्ति समाजका एक आवश्यक अङ्ग है। जिस प्रकार शरीरके अंगोंकी एकात्मता उत्कृष्ट स्वास्थ्यका लक्षण है, उसी प्रकार समाजके व्यक्तियोंका ऐक्य स्वस्थ समाजका निदर्शक है। ऋग्वेदका पूरा संगठन-सूक्त इस महत्त्वपूर्ण विचारको लोगोंके सामने प्रस्तुत करता है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥
समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

ऋ. १०।१९१।२,४

" तुम संगठित होकर चलो, संगठित होकर बोलो और तुम्हारे मन भी परस्पर अनुकूल हों। तुम्हारे संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन एक हों। "

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ यजु. ५।३४

" मैं सब प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूं और सब प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे देखें। "

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति॥
यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥

यजु. ४०।६,७

" जो सारे प्राणियोंको अपनी आत्माके समान ही देखता है व उन्हें उसी प्रकार जानता भी है तथा सारे प्राणियोंमें स्वयंको देखता है, वह कभी किसीसे भेदभाव नहीं करता। "

इसी प्रकार अन्यान्य मन्त्रोंमें भी ममत्व-भावनाका वर्णन आता है।

इस ममत्व-भावनाके होनेपर ही हम अपनी अपनी संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओंको पृथक् रखके भारतके विभिन्न महान् व्यक्तियोंमें, चाहे वे किसी सम्प्रदाय या जातिके कहे जाते हों, ममत्वका, समादरका, श्रद्धाका अनुभव करेंगे। हमारा कर्तव्य है कि हम उनको उस वेदके निराकार पुरे असाम्प्रदायिक वातावरणमें लावें, जिससे उनके उपदेशामृतका लाभ समस्त देशको ही क्यों, सारे संसारको हो।

वैदिक संस्कृतिकी पांचवीं विशेषता है " अखिल भारतीय-भावना "। वेदोंका प्रकाश सर्वप्रथम इसी भारत भूपर हुआ। अतः यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वैदिक संस्कृतिका उद्गमस्थल भी यही है। वेदोंमें अपनी मातृभूमिके प्रति जो उदात्त भावनायें प्रकट की गई हैं, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अथर्ववेदका पूरा " पृथिवी-सूक्त " (१२।१) मातृभूमिके गुणोंकी गाथा है। वैदिक ऋषियोंका सारा प्रेम इस भरत भूपर उमड़ पड़ा है। वे उच्चस्वरसे घोषणा करते हैं—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।
× × ×
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।

' हे मातृभूमे ! तू मेरी माता है, मैं तेरा पुत्र हूँ। अतः मैं सब प्रकारसे तुझे अपनी बलि देनेके लिए तत्पर हूँ। '

देशकी रक्षा अपने हर पुत्रसे बलिदानकी कामना करती है। मातृभूमिकी दृष्टिमें अमीर-गरीब, उच्च-नीच, काले-गोरे, आस्तिक-नास्तिक सब एक समान हैं। सब उसके पुत्र हैं, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय, जाति या वर्णका हो। यह भारतीय भावना वैदिक संस्कृति द्वारा वैदिक ऋषियोंने लोगोंमें भरनेका प्रयत्न किया। वैदिक संस्कृतिकी अखिल भारतीय भावनाका अभिप्राय यही है कि हम साम्प्रदायिक संघर्षकी समस्याका समाधान वैदिक संस्कृतिकी दृष्टिसे कर सकें। उनमें एकता स्थापित कर सकें।

इसी एकता-स्थापनकी दृष्टिसे हमारे पूर्वजोंने तीर्थयात्रा की कल्पना की थी। शंकराचार्यजीने भारतके चारों कोनेपर चार पीठ इसीलिए स्थापित किए थे कि उनके शिष्य भार

× भारतीय संस्कृतिका विकास- वैदिकधारा- डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ. २४

सकी चारों कोनोंसे सुरक्षा कर सके। प्राचीन साहित्योंमें तीर्थयात्रामें पैदल यात्राका बड़ा महत्त्व वर्णित है। वह भी इसीलिए कि सब भारतमें एकता स्थापित हो। रामेश्वरम्से कैलास या जगन्नाथपुरीसे द्वारिका जानेवाले पदतीर्थयात्रीको पूरा भारत पार करना पड़ता था। इस प्रकार वह अनेक प्रान्तोंके निवासियोंसे अपना सम्पर्क साधकर चलता था। और उनमें आपसमें प्रेम और स्नेह भाव बढ़ता था। इस प्रकार सहज ही एकता स्थापित हो जाती थी। इसको हमारे देशके प्राचीन नेताओंने अच्छी तरह अनुभव किया था। इसी लिए हमारे धार्मिक तीर्थस्थान देशके कोने-कोनेमें नियत किए गए थे। सम्प्रदायोंमें परस्पर समादर और सम्मानकी भावना स्थापित करनेसे, ऐसे जातीय पर्वों और महापुरुषोंकी जयन्तियोंकी स्थापनासे उनमें स्नेह सम्पर्क स्थापित करनेसे ही एकता सिद्ध होसकती है।

वैदिक संस्कृति-परम्परामें वेदकी प्रतिष्ठा

वैदिक संस्कृतिका उद्गम वेदसे ही हुआ है। वही सबसे परम प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। अन्य स्मृति आदिकी प्रामाणिकता वेदोंकी अनुकूलतापर ही निर्भर है। यदि वे वचन वेदवचनोंके अनुकूल हैं, तो वे प्रामाणिक हैं अन्यथा नहीं। पर वेदवचनोंकी प्रामाणिकता परखनेके लिए स्वयं वेद ही प्रमाण हैं। @ भारतकी सारी परम्परा वेदको अपनी संस्कृतिके उद्गम स्थानके रूपमें देखती है। वेदोत्तर ग्रंथोंमें इन वेदोंका वर्णन बहुत बड़े पैमाने पर किया है। इस विषयमें कतिपय ग्रंथोंसे वेद विषयक वचन उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

शतपथ ब्राह्मणमें—

'ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उस महान पुरुषके निःश्वासके समान हैं। ·|·'

'उस परमात्माने श्रम और तपके द्वारा त्रयी विद्याको प्रकट किया।'

शतपथ ब्राह्मणके अनुसार वेदोंमें सब विद्यायें सत्य हैं—

तद्यत्सत्यं त्रयी सा विद्या। श. ब्रा. ९।५।१।१८

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें—

अयं वै सर्वा विद्या। तै. ब्रा. ३।१०।११।४

सारी विद्यायें वेदमें हैं।

सब सत्य विद्यायें वेदोंमें निहित हैं।

ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ। तै. १।४।४।९

ऋग्वेद और सामवेद सरस्वतीके झरने हैं। 'जिस प्रकार झरनेसे पानीकी धारायें निकलकर प्यासे और सन्तप्त प्राणियोंकी प्यास बुझाकर उन्हें शान्ति प्रदान करती हैं, उसी प्रकार वेदसे ज्ञानकी धारायें निकलकर दुःखी मनुष्योंको शान्ति प्रदान करती हैं' +।

वेद ही उस परमात्माके जाननेके साधन हैं। 'वेदको न जाननेवाला उस महानको नहीं जान सकता' ×।

इसी प्रकार उपनिषदोंमें भी वेदोंका बड़ा महत्व बताया है। ईशोपनिषद् तो यजुर्वेदका ४० वां अध्याय है, जिसमें अध्यात्मज्ञानका उपदेश बड़े सुन्दर शब्दोंमें दिया है।

मनुस्मृतिमें वेदके विषयमें कहा है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (२।६)

सर्वज्ञानमयो हि सः (२।७)

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥
(१२।९७)

वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते॥
(२।१६६)

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥
(२।१६८)

अर्थात् वेद धर्मका मूल है और वह सब ज्ञानोंसे युक्त है। चार वर्ण, तीन लोक, चार आश्रम, भूत, वर्तमान,

---

@ निरपेक्षत्वमभिप्रेत्य स्वतः प्रामाण्यम्- सां. सू. ५।५१- परमात्माकी निजशक्तिसे प्रकट होनेके कारण वेद स्वतः प्रमाण हैं।

·|· (१) एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम्।
यदृग्वेदो, यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः॥ श. ब्रा. १४।५।४।१०

(२) स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्। श. ब्रा. ६।१।१।८

+ वेदका राष्ट्रीय गीत- नित्यलाल वेदवाचस्पति। पृ. ३

× नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्। तै. ३।१२।९।७

भविष्य सब कुछ वेदसे ही सिद्ध होता है। वेदाध्ययन ब्राह्मणका सर्वोत्तम तप है। जो ब्राह्मण वेदोंको छोडकर अन्य वेदोत्तर ग्रंथोंके अध्ययनमें श्रम करता है, वह शीघ्र कुल सहित शूद्र बन जाता है।

वेद शब्द 'विद् ज्ञाने' धातुसे सिद्ध हुआ है, जिसका अर्थ है ज्ञान। प्राचीनकालमें इसी अर्थमें वेद शब्दका प्रयोग होता था। पर कालान्तरमें जाकर उसका अर्थ संकुचित हो गया और आपस्तम्ब सूत्रके कालमें केवल मंत्र व ब्राह्मण भागका ही नाम वेद रह गया ● और आगे चलकर केवल संहिता या मंत्र भागका ही नाम वेद रह गया। इस मतका पोषण महर्षि दयानन्दने अपने ग्रंथोंमें किया है।

चेकोस्लोवाकिया देशकी भाषामें आज भी विज्ञान या सायन्सको 'वेद' कहते हैं। +

अन्तिम मतके अनुसार ऋग्, यजु, साम और अथर्व ये चार ही संहिता या वेद हैं।

वेदत्रयी

मनुस्मृति, गीता आदि ग्रंथोमें त्रयी विद्याका भी उल्लेख है × इसी आधार पर कई लोगोंका यह मत है कि प्रथम ऋग्, यजु और साम ये तीन ही वेद थे और अथर्व बादमें वेदोंमें शामिल किया गया। कतिपय विचारक उसे वेद ही नहीं मानते -:-। पर हमारा मत यह है कि जहां जहां चार वेदोंका उल्लेख है, वहां उसका अभिप्राय चार वेद ग्रंथोंसे हैं और जहां त्रयीका उल्लेख है वहां उसका अभिप्राय है पद्य, गद्य और गायन। मीमांसा सूत्रोंमें इस समस्याका समाधान प्रस्तुत किया है—

ऋग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था
गीतिषु सामाख्या
शेषे यजुः शब्दः (मीमांसा दर्शन २।१।३५-३७)

'अर्थके कारण पादबद्ध व्यवस्थावाले मंत्र ऋक् हैं। गायन किए जानेवाले मंत्र साम हैं। और बाकी बचा हुआ गद्य भाग यजु है।' इस प्रकार अथर्ववेदके मंत्र पादबद्ध होनेके कारण अथर्ववेदका अन्तर्भाव ऋग्वेदमें ही हो जाता है। अतः वेदोंके ग्रंथ चार होनेपर भी उनका समावेश (१) पद्य (ऋग्वेद, अथर्ववेद), (२) गद्य (यजुर्वेद) और (३) गायन (सामवेद) इन तीनोंमें हो जाता है। इसलिए वेदत्रयी या वेद चतुष्टयमें मूलतः कोई भेद न होकर केवल दृष्टिका ही भेद है।

ऋग्वेदसंहिता

यह संहिता सबसे बडी और प्राचीन है। इससे अधिक प्राचीन ग्रंथ किसी भी पुस्तकालयमें नहीं मिलता। महाभाष्यके अनुसार इस वेदकी इक्कीस शाखायें थीं ॐ पर आज उनमें केवल पांच शाखायें ही उपलब्ध हैं। आजकी प्रचलित ऋग्वेद संहिता शाकल शाखासे सम्बन्धित है।

इस संहितामें दस मण्डल हैं। एक मण्डलमें अनेक सूक्तोंका संग्रह है। इस संहिताके मण्डल, सूक्त और मंत्रोंकी तालिका इस प्रकार है—

मण्डल	सूक्तसंख्या	मंत्रसंख्या
प्रथम मण्डल	१९१	२००६
द्वितीय मण्डल	४३	४२९
तृतीय मण्डल	६२	६१७
चतुर्थ मण्डल	५८	५८९
पंचम मण्डल	८७	७२७
षष्ठ मण्डल	७५	७६५
सप्तम मण्डल	१०४	८४१
अष्टम मण्डल	९२	१६३६
नवम मण्डल	११४	११०८
दशम मण्डल	१९१	१७५४
	१०१७	१०४७२

जिससे स्तुतिकी जाए उसे ऋक् कहते हैं। ॐ इस संहितामें प्रत्येक सूक्तके पहले ऋषि, देवता और छन्दका नामोल्लेख है। इनमें 'ऋषि' शब्दके विषयमें विद्वानोंका मतभेद है।

● मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् (आपस्तम्बयज्ञपरिभाषा सूत्र ३१)

+ भारतीय संस्कृतिका विकास— डॉ मंगलदेव शास्त्री, पृ. ५६– फुटनोट २

× त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि– श. ब्रा. ४।६।७।१
त्रयं ब्रह्म सनातनम् ··· ऋग्यजुः सामलक्षणम्– मनु. १।२३

-:- न्यायमंजरी– प्रमाण प्रकरण।

ॐ एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्— महाभाष्य पस्पशाह्निक।

ॐ ऋग्भिः शंसन्ति— निरुक्त १३।७

कुछका मत यह है कि ये ऋषि केवल मत्रद्रष्टा या उन उन मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेवाले थे, (ऋषयो मत्र द्रष्टार) ● तथा अन्योंका मत है कि ये ऋषि उन उन सूक्तो या मन्त्रोंके रचयिता थे। 卐 इस विषयमे मतभेद चाहे कुछ हो, पर यह निर्विवाद सत्य है कि हर सूक्तमे ऋषिका महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार जिस सूक्तमें जिसकी स्तुति की गई है, वह उस सूक्तका देवता है। और प्रत्येक मत्र छन्दोसे नियत्रित है। इस प्रकार वेदोमे ऋषि, देवता और छन्द अत्यावश्यक तत्त्व हैं।

यजुर्वेद

यह गद्यभाग है। इसमें आए हुए सभी मन्त्रोंको गद्यकी तरहसे बोला जाता है। महाभाष्यमे इसकी १०१ शाखा ओंका उल्लेख मिलता है ❀ पर आज केवल इसकी पाच शाखायें ही उपलब्ध हैं।

इसके शुक्ल और कृष्ण ये दो भेद है। माध्यन्दिन और काण्व ये दो शुक्लकी और तैत्तिरीय, मैत्रायणी और कठ ये तीन कृष्ण यजुर्वेदकी सहिताय हैं, इनमें कृष्णको प्राचीन और शुक्लको अर्वाचीन माना जाता है। लोगोंका मत है कि शुक्लमे मत्र भाग है और कृष्णमें मन्त्रोंके साथ-साथ ब्राह्मण भाग भी सम्मिलित होगया है। कृष्ण यजुर्वेदकी शाखाओं का विस्तार प्राय दक्षिण भारतमें तथा शुक्ल यजुर्वेदका उत्तर भारतमें है। शुक्लमें भी काण्व-सहिताकी अपेक्षा माध्यन्दिन-सहिताका ज्यादा प्रचार है। प्राय सारा उत्तर भारत माध्यन्दिन शाखाकी वाजसनयी सहिताको प्रामाणिकता प्रदान करता है।

वाजसनेयी सहितामें ४० अध्याय और १९७५ मत्र या कण्डिकायें हैं।

सामवेद

इसकी अनेक शाखाय हैं। चरणव्यूहमे कहा है—

१ तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रमासीत्।
* राणयर्णीया, सात्यमुग्या, कालाप, महाकालाप, कोथुमा, लागलिकाश्चेति।

कोथुमाना षड्भेदा भवन्ति-सारायणीया, वातरायणीया, वैधृता, प्राचीना, तैजसा, अनिष्टकाश्चेति।

महाभाष्यमें भी इसके शाखा सहस्रका उल्लेख है। + 'साम-तर्पण-विधि' में सामवेदकी तेरह शाखायें बताई हैं। उनके नामोंकी गणना भी की है, जो इस प्रकार है—

१ राणायण, २ शाटयमुग्र्य, ३ व्यास, ४ भागुरी, ५ औलुण्डी, ६ गौल्मुलवी, ७ भानुमान-औपमन्यव, ८ काराटि, ९ मशक गार्ग्य, १० वार्षगव्य, ११ कुथुम, १२ शालिहोत्र और १३ जैमिनी। सामवेदकी इन शाखा ओंमें आज केवल राणायणीय, कौथुमी और जैमिनी ये तीन ही उपलब्ध है।

इस वेदके पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक दो भाग हैं। और मत्र कुल मिलाकर १८७५ हैं।

अथर्ववेद

महाभाष्यमे इसकी नौ शाखाओंका उल्लेख है ×। पर आज शौनक और पैप्पलाद ये दो ही सहिताय मिलती है और उनमें भी शौनक संहिताका ही आज प्रचलन अधिक है।

अथर्ववेदमें २० काण्ड, ७३० सूक्त और ६००० मत्र हैं। इनमे १२०० से अधिक मत्र स्पष्टत ऋग्वेदके ही हैं। इस वेदके २० वें काण्डके अधिकाश मत्र ऋग्वेदके ही हैं।

संहिताओंका विषय व क्रम

ऋग् शब्द स्तुत्यर्थक 'ऋच' धातुसे बना है। अत ऋक् शब्द यह सिद्ध करता है कि ऋग्वेदमें देवताओंकी स्तुतिया है। ये देव पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीन स्थानोंमें रहते हैं। इसका मुख्य विषय ज्ञान है।

यजुर्वेदका विषय है कर्म। इसके अध्यायोंका क्रम भी कर्मकाण्डकी क्रियाके अनुसार ही रखा गया है। प्रथम अध्यायसे द्वितीय अध्यायके २८ वे मत्रतक दर्शपूर्णमास यज्ञका वर्णन है। इसी प्रकार ३८ वें अध्यायतक विभिन्न यज्ञोंके सम्बन्धसे मत्र विनियोगका उल्लेख है। ३९ वें अध्या

● ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यव -निरुक्त २।११
卐 यस्य वाक्य स ऋषि — ऋक्सर्वानुक्रमणी १।२।४
❀ एकशतमध्वर्युशाखा — महाभाष्य, पस्पशान्हिक
+ सहस्रवर्त्मा सामवेद — महाभाष्य, पस्पशान्हिक
× नवधाथर्वणो वेद – महाभाष्य, पस्पशान्हिक

यमें सबसे अन्तिम यज्ञ 'अंत्येष्टि' है। पर अन्तके ४० वें अध्यायका सम्बन्ध यज्ञसे न होकर ज्ञानसे है।

सामवेदका विषय उपासना है। इसमें गायनोंसे देवताओंके अर्चन करनेकी विधि बताई है।

अथर्ववेदका विषय विज्ञान है। इसमें जल चिकित्सा, अग्नि चिकित्सा, आदि विषयोंका भरपूर वर्णन है।

ऋग्वेदके अध्ययनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऋग्वेदके प्रथम, नवम और दशम मण्डलको छोडकर बाकीके मण्डल ऋषिवार संग्रहीत हैं। एक एक मण्डल एक एक ऋषि पर है। जैसे सम्पूर्ण द्वितीय मण्डलका ऋषि 'गृत्समद भार्गव' है, तीसरेका 'गाथी विश्वामित्र' है और चतुर्थका 'वामदेव गौतम' है। प्रथम और दशम मण्डलमें अनेक ऋषि हैं। केवल नवम मण्डल ऐसा है, जो देवता पर आधारित है। इस ११४ सूक्तवाले सम्पूर्ण मण्डलका देवता 'पवमान सोम' है। इसी प्रकार अथर्ववेदमें भी कई काण्ड ऋषिवार और कई देवतावार संग्रहीत हैं। सामवेदका पूर्वार्चिक भाग देवतावार है। उसमें काण्डों का नाम भी देवताओंके आधार पर है। जैसे आग्नेय काण्डमें केवल अग्नि देवताका वर्णन है। ऐन्द्र काण्डमें इन्द्र संबंधी स्तुतियां हैं। इसी प्रकार अन्य देवताओंका भी वर्णन है। इस प्रकार हमने देखा कि वेदोंका संग्रह दो प्रकारसे ही सकता है, (१) ऋषि अनुसार और (२) देवतानुसार।

इन वेदोंमें हमने यह भी देखा कि सभी देवताओंके मंत्र बिखरे पडे हैं। जैसे अग्निका १ सूक्त प्रथम मण्डलका प्रथम सूक्त है, फिर अग्निका दूसरा सूक्त इसी मण्डलका २६ वां सूक्त है। बीचके २४ सूक्तोंमें अन्यान्य देवताओंका वर्णन है। इसी प्रकार दूसरे देवताओंके सूक्त भी बिखरे पडे हैं। इसके अलावा दूसरे वेदोंमें उन्हीं देवताओंके सूक्त आये हैं, जिनके ऋग्वेदमें आए हैं। इससे होता यह है कि किसी एक देवतापर अन्वेषण करनेवाले विद्वान्को चारों वेदोंको देखना पडता है और इसके लिए मंत्रानुक्रमणिका, पदानुक्रमणिका ऐसे अनेक ग्रंथकी आवश्यकता होती है, इसके साथ ही उसकी शक्ति और समयका भी बडा व्यय होता है। इन सब कारणोंको ध्यानमें लानेसे हमारे मनमें यह विचार आया कि यदि एक एक देवताके चारों वेदोंमें बिखरे हुए सूक्तोंको एक स्थानपर ले आया जाए, तो अध्ययनकर्ताकी बहुत सुविधा हो सकती है। इस प्रकार देवतावार मंत्र संग्रहकी कल्पना हमारे मस्तिष्कमें उत्पन्न हुई और उस कल्पनाको कार्यरूपमें परिणत करने एवं देवताके अनुसार मंत्र संग्रहीत होनेके कारण उस ग्रंथका नाम 'दैवत-संहिता' रखनेका हमने निश्चय किया।

दैवतसंहिताकी आवश्यकता

जब मनुष्य जगत् पर अपनी दृष्टि डालता है, तो उसे सर्वत्र देवताओंके दर्शन होते हैं, जैसे पृथिवी, अग्नि, वायु, मेघ, नदियां, समुद्र, पर्वत, अन्तरिक्ष, आकाश आदि। प्रत्येक मनुष्यको इन देवताओंका दर्शन होता है। ये देवता *पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीनों स्थानोंमें रहते हैं।*

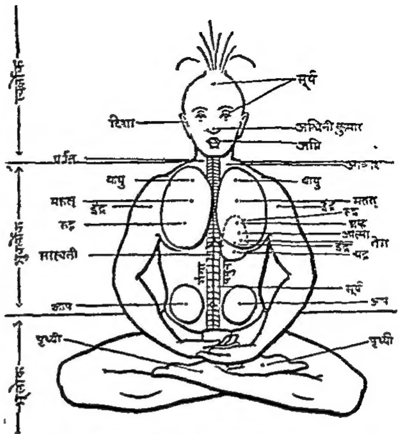
इनमें पृथिवी, जल, पर्वत, अग्नि आदि देवता प्रत्यक्ष हैं और वायु आदि कतिपय अदृश्य हैं। पर इन अदृश्य देवताओंके अस्तित्वको भी मनुष्य जान सकता है। इस प्रकार ये देवगण हर मनुष्यके अनुभवमें आनेके कारण प्रत्यक्ष हैं, काल्पनिक नहीं।

इन देवताओंके बिना मानवजीवनका अस्तित्व ही असम्भव है। यदि वायु न हो, तो प्राणके अभावमें इस भूगोलसे प्राणियोंका अस्तित्व ही न रहे। सूर्य और चन्द्रके अभावमें सारी वनस्पतियां ही समाप्त हो जायं। पृथिवी सबको रहनेके लिए स्थान देती है, जल सबकी प्यास बुझाता है, आकाश सबको आवागमनकी सुविधा देता है। इस प्रकार सभी देवगण हमारी सहायता करते हैं। जिससे कि हम जीवित रहते और अपना कार्य करते हैं। हमारे जीवनके आनन्दमय होनेका सारा श्रेय इन्हीं देवोंको है। इनका और हमारे जीवनका बडा घनिष्ट सम्बन्ध है। मानव जब इन देवोंसे विरोध करता है और इनके द्वारा बताये गए अनुकूल मार्गपर नहीं चलता, तो वह दुःखी होता है। अतः हमारे जीवनकी दुःखमय और सुखमय स्थिति इन्हीं देवताओंपर निर्भर करती है।

परमात्मा, जीवात्मा, प्रकृति, अग्नि, इन्द्र आदि अनेक देवता इस विश्वमें हैं, जो चारों ओर रहकर अपने तेजसे सबका कल्याण करते हैं। ये देवता जैसे विश्वमें हैं, वैसे ही प्राणीके शरीरमें भी हैं। मनुष्यशरीरके प्रत्येक अंगमें किसी न किसी देवताका निवास अवश्य है। इस विषयमें अथर्ववेदका कथन इस प्रकार है—

> यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः।
> गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥
> (अथर्व. ११।१८)

'जब त्वष्टाने इस शरीरका निर्माण किया तो देवोंने इस मर्त्य शरीरको अपना घर बनाया और इसमें आकर वे रहने लगे।' इसी प्रकार इस शरीरमें 'स्वप्न, निद्रा, बुढापा,



इस चित्रमें यह दिखाया है कि किस देवताका अंश शरीरके किस अंगमें रहता है।

बुरेकर्म, बल, ओज, क्षुधा, तृष्णा, श्रद्धा, अश्रद्धा, विद्या, अविद्या आदि सभीने प्रवेश किया। इस शरीरमें प्रविष्ट होकर देवोंने यहां यज्ञ करना आरंभ किया। उसमें हड्डियां समिधायें बनीं और वीर्य या रेतस् घी बना। इसी शरीरमें ब्रह्म भी प्रविष्ट हुआ। इसीलिए इस शरीरको विद्वान् 'ब्रह्म' भी कहते हैं। अन्तमें उपसंहार करते हुए अथर्ववेदके ऋषिने एक बडी सुन्दर उपमा दी है—

सर्वा ह्यस्मिन्देवता
गावो गोष्ठ इवासते।
(अथर्व. ११।८।३२)

"जिस प्रकार गायें बाडेमें रहती हैं, उसी प्रकार सब देव इस शरीरमें स्थित हैं"। गायें बाडेमें सुरक्षित रहती हैं और वहां उनका पोषण होता है। फिर जानकार गोपाल उनको दुहता है और दूधसे पुष्ट होता है। इसी प्रकार इस शरीरमें भी देवता सुरक्षित हैं और विद्वान् इन देवताओंको दुहकर उनसे ओज, तेज आदि प्राप्त कर पुष्ट होते हैं। इस शरीरमें स्थित जीवात्मा परमात्माका ही अंश है। गीतामें श्रीकृष्णने इसका प्रतिपादन किया है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

"मेरा (परमात्माका) ही अंश इस शरीरमें जीवके रूपमें स्थित है"। परमात्मा और आत्माके इसी सम्बन्धको दर्शनोंमें अग्नि और चिन्गारीके दृष्टान्तसे स्पष्ट किया है। अग्नि और उसके स्फुलिंगमें परिमाणकी दृष्टिसे भेद होनेपर भी तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। उसी प्रकार परमात्मा और आत्मामें भी तत्त्वतः कोई भेद नहीं है।

अध्यात्म, अधिभूत, और अधिदैवत क्षेत्रमें देवताओंका स्थान

अध्यात्मका अर्थ उपनिषद्में शरीर किया है (अथाध्यात्मं शरीरम्)। इस शरीरमें कौनसा देवता किस अंगमें रहता है, यह निम्न तालिकासे स्पष्ट हो सकता है—

शरीरमें	देवताका अंश
आंखमें	सूर्यका अंश
नाकमें	वायुका अंश
मुखमें	अग्निका अंश
छातीमें	चन्द्रका अंश
भुजाओंमें	इन्द्रका अंश
पैरोंमें	पृथिवीका अंश

इस प्रकार सभी इन्द्रियोंमें देवताओंके अंश विद्यमान हैं। इसका और अधिक स्पष्टीकरण ऊपरके चित्रसे हो सकता है।

आधिभौतिक क्षेत्रमें

अधिभूतका अर्थ है समाज। इस मानव समाजमें भी देव विभिन्न रूपोंमें स्थित हैं। समाजका भी एक शरीर है जो सर्वदा कार्यव्यस्त रहता है। कौनसा देवता समाजमें किस रूपमें है, यह निम्न कोष्टकसे स्पष्ट होसकता है—

विश्वमें	समाजमें
अग्नि	वक्ता, ज्ञानी
इन्द्र	क्षत्रिय
ऋभु	कारीगर
पृथिवी	शूद्र

इस प्रकार सभी देव समाजमें भी विभिन्न रूपोंमें विद्यमान हैं।

आधिदैविक क्षेत्रमें तो देव प्रत्यक्ष ही हैं। सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देव आधिदैविकक्षेत्रमें प्रत्यक्षतया कार्य कर ही रहे हैं। इस प्रकार तीनों क्षेत्रोंमें इन देवोंका कार्य चल रहा है। इन तीनों क्षेत्रोंमें कार्य करनेवाले देवोंका संकलन इस प्रकार किया जासकता है—

अध्यात्ममें	अधिभूतमें	अधिदैवतमें
वाणी	वक्ता	अग्नि
शौर्य	शूर	इन्द्र
युद्धेच्छा	सैनिक	मरुत्
प्राण	प्राणी	वायु
कारीगरी	कारीगर	त्वष्टा
ज्ञान	ज्ञानी	ब्रह्मणस्पति
पांव	शूद्र	पृथिवी
नाडियां	नदियां	आपः, जलप्रवाह

इस प्रकार व्यक्तिमें गुण रूपसे, समाज और राष्ट्रमें गुणी रूपसे और विश्वमें देवताके रूपसे ये देव रहते हैं।

विश्व-एक विराट् शरीर

वेदोंमें विश्वका वर्णन एक शरीरके रूपमें है। वह एक विराट् शरीर है। व्यक्ति-शरीरमें जिस प्रकार आत्माका स्थान प्रमुख है, उसी तरह इस विराट्-शरीरमें परमात्मा मुख्य है। उसके भी आंख, नाक आदि अंग हैं। अथर्ववेदमें इस विराट् शरीरका वर्णन इस प्रकार है—

> यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
> दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
> यस्य सूर्यश्चक्षुः चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
> अग्निं यश्चक्रे आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
> यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोऽभवन्।
> दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
> (अथर्व. १०।७।३२-३४)

" भूमि जिसके पैर, अन्तरिक्ष पेट और द्यौ सिर है, उस महान् ब्रह्मको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्र जिसकी आंखें हैं, अग्नि जिसका मुख है, उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है। वायु जिसके प्राण और अपान हैं, अंगिरस् जिसकी आंखें हैं तथा दिशायें जिसके कान हैं उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है "।

इसी प्रकार इस विराट् शरीरके सहस्रों मस्तकका भी वेदमें वर्णन है—

> सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
> स भूमिं सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥
> पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
> उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥
> ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
> ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥
> चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
> मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥
> नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
> पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्
> तथा लोकाँ अकल्पयन्॥
> (ऋ. १०।९०।१, २, १२, १४)

' हजारों सिर, हजारो आंख और हजारो पैरवाला एक विराट् पुरुष इस भूमिको चारों ओर व्याप्त किए हुए है। यहां जो कुछ हो चुका है, जो है और आगे जो भी होनेवाला है, वह सब पुरुष ही है। ब्राह्मण इस विराट् पुरुषके मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य दोनो जांघें और शूद्र पैर हैं। इस विराट् पुरुषके मनसे चन्द्रमा, आंखसे सूर्य, मुखसे इन्द्र और अग्नि और प्राणसे वायु प्रकट हुआ। नाभिसे अन्तरिक्ष, सिरसे द्यौ, पैरोंसे भूमि और कानसे दिशायें उत्पन्न हुईं। '

गीताके ११ वें अध्यायमें इस विराट् पुरुषका बडे विस्तारसे वर्णन है। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनको अपने विराट् स्वरूप दिखानेका जहां वर्णन है, वहां उसका अभिप्राय इस विश्वके विराट् शरीरसे है। पुराणोंमें भी इस विराट् पुरुषका वर्णन है।

यहां एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जब वेदमें परमात्माका वर्णन ' अकायं, अव्रणं, अस्नाविरं ' (यजु. ४०।८) शरीररहित, जख्म आदि शारीरिक व्याधियोंसे रहित, नसनाडियोंके बंधनसे रहित, इस प्रकार आया है, तो उसीके शरीरका वर्णन करना क्या यह बात सिद्ध नहीं करता कि वेद विरुद्धत्वादि दोषोंसे युक्त है। इस शंकाका समाधान इस तरह हो सकता है कि वास्तवमें परमात्मा अशरीरी ही है, इसलिए उसके विश्वशरीरका उपरोक्त वर्णन अलंकाररूप ही समझना चाहिए। जिस प्रकार निराकार जीवात्माको भी शरीरी अर्थात् शरीरसे युक्त कहा गया है, उसी प्रकार यहां परमात्माके विषयमें भी समझना चाहिए।

इस प्रकार इन देवताओंका जब हमने आधिदैविक अध्ययन किया, तब हमारे सामने एक बडा रहस्य खुला, कि यह विश्व वस्तुतः एक महान् राज्य है, जिसमें विभिन्न खातों के मंत्रीगण अपना अपना विभाग सम्हाले हुए हैं। ये अपना कार्य बडी दक्षता एवं सावधानीके साथ करते हैं। कोई किसी विभागमें हस्तक्षेप नहीं करता। किसी प्रजातंत्र राज्यकी जो स्थिति होती है, ठीक वही स्थिति इस विश्वराज्यमें है। इस राज्यमें भी विभिन्न देवताओंने विभिन्न विभाग सम्हाल रखे हैं। इस सूत्रके आधार पर जब हमने इन देवताओंका और इस विश्वराज्यका और गहरा अध्ययन किया, तो विश्वराज्यके मंत्रिमण्डलकी जो कल्पना साकार हुई, वह इस प्रकार थी—

१ परब्रह्म— विश्वराज्यके राष्ट्रपति।
२ परमात्मा— उपराष्ट्रपति।
३ अदितिः— (प्रकृति, देवमाता)- विश्वराज्यके मंत्री एवं उपमंत्रियोंको निर्माण करनेवाली एक आदिशक्ति।

ध्येय

१ पुरुषः— विराट् पुरुष, समाज पुरुष और व्यक्ति पुरुष इन तीनोंमें शान्ति स्थापना ही मुख्य ध्येय है।

संसदध्यक्ष

१ सदसस्पतिः— विधान सभाके अध्यक्ष।
२ क्षेत्रपतिः— विधान सभाके उपाध्यक्ष और लघु समितिके अध्यक्ष।

मंत्रिमण्डल

१ शिक्षामंत्रालय

१ जातवेदाः अग्निः— शिक्षा मंत्री।
२ ब्रह्मणस्पतिः— उपशिक्षामंत्री।
३ बृहस्पतिः— उपशिक्षामंत्री या शिक्षा-सचिव।

रक्षा-मंत्रालय

४ इन्द्रः— रक्षामंत्री।
५ उपेन्द्रः— उपरक्षामंत्री।
६ रुद्रः— सेनाध्यक्ष।
७ मरुतः— सैनिक।

स्वास्थ्यमंत्रालय

८ अश्विनौ— स्वास्थ्यमंत्री (एक शल्यकर्म या शल्य चिकित्सामें प्रवीण और दूसरा औषधि चिकित्सामें प्रवीण)।
९ ओषधिः— औषधियोंका व्यवस्थापक।
१० सोमः— औषधियोंका राजा।
११ अन्नम्— उत्तम खानपानकी व्यवस्था करनेवाला।
१२ गौः— राज्यमें उत्तम दूधकी व्यवस्था करनेवाला।

खाद्यमंत्रालय

१३ पूषा— खाद्यमंत्री।
१४ सूर्यः — शोधनमंत्री।
१५ सविता—
१६ आदित्यः—

अर्थमंत्रालय

१७ भगः— अर्थमंत्री।

उद्योगमंत्रालय

१८ विश्वकर्मा— उद्योगमंत्री।
१९ वास्तोष्पतिः— गृहनिर्माण-मंत्री।
२० त्वष्टा—शस्त्रास्त्रनिर्माणमंत्री।
२१ ऋभुः— कुटीरउद्योग-मंत्री।

जलयान-मंत्रालय

२२ वरुणः— यानमंत्री।
२३ चन्द्रमाः— मानस-समाधानमंत्री।
२४ पर्जन्यः— कृषिमंत्री।
२५ आपः—
२६ नद्यः—

जीवन-मंत्रालय

२७ वायुः— जीवनमंत्री।

प्रकाश-मंत्रालय

२८ विद्युत्— प्रकाशमंत्री।

स्त्री-मंत्रालय

२९ उषा— बालिका संरक्षणमंत्रिणी।

बाल-मंत्रालय

३० वेनः—बाल संरक्षणमंत्री।

गुप्तचर-मंत्रालय

३१ कः— गुप्तचरमंत्री।

वाहन-मंत्रालय

३२ अश्वः— वाहन व संचारमंत्री।

राष्ट्रगीत

३३ पृथिवी सूक्त—

इस प्रकार सब देवोंका विभाग है। यह विभाग हमने उन उन देवताओंके गुणोंके आधारपर किया है। दिग्दर्शन मात्रके लिए यहां कुछ प्रमाण देते हैं—

ज्येष्ठ ब्रह्म

यह विश्वराज्यका राष्ट्रपति है। जिस प्रकार किसी प्रजातन्त्र राज्यमें राष्ट्रपतिके पास नाममात्रके अधिकार होते हैं, उसी प्रकार यह निर्विकार द्रष्टा है। पर इसका सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल पर अंकुश रहता है। इसका वर्णन वेदोंमें इस प्रकार है—

यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥
यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः।
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।
यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्मज्येष्ठमुपासते।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्॥
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये
तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे॥
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा
वृक्षस्य स्कंधः परित इव शाखाः॥

अथर्व १०।७।१२,२२,२४,३८

" जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ स्थित हैं, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य और वायु भी जिसमें स्थित हैं, वही सबका आधारस्तंभ है और वही आनन्दमय है।"

" जिसमें आदित्य, रुद्र, वसु, भूत, वर्तमान, भविष्य और सभी लोक प्रतिष्ठित हैं, वही सबका आधार है और वही आनन्दमय है।"

" जहां ब्रह्मज्ञानी और देव श्रेष्ठ ब्रह्मकी उपासना करते हैं, जो उनको प्रत्यक्ष जानता है, वह ज्ञाता ब्रह्मा कहलाएगा।"

" भुवनके मध्यभागमें जो बड़ा पूजनीय तत्त्व है, वही ब्रह्म है। जलके पृष्ठभागपरकी ज्योतिमें वह प्रकट होता है। जिसमें वृक्षमें शाखायें चारों ओरसे आश्रित रहती हैं उसी प्रकार इस ब्रह्ममें देवता आश्रित रहते हैं।"

परमात्मा

यह विश्वराज्यका उपराष्ट्रपति है और विश्वराज्यके संचालनमें परमब्रह्मकी सहायता करता है। यह प्रकृतिके साथ मिलकर सृष्टिरचनाका कार्य करता है। परमब्रह्मका स्वरूप निष्क्रिय है, जब कि परमात्माका स्वरूप सक्रिय है। उसका वर्णन इस प्रकार है—

अकामोऽधीरो अमृतः स्वयंभूः
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः
आत्मानं धीरं अजरं युवानम्॥ अथर्व १०।८।४४

" कामनारहित, बुद्धि देनेवाला, अमर, अपनी शक्तिसे रहनेवाला रस ग्रहणसे तृप्त होनेवाला, सर्वत्र व्याप्त, धैर्यवान्, जरारहित, सदा तरुण आत्मा है। उसे जाननेवाला मृत्युसे नहीं डरता।"

अदिति

यह वह शक्ति है, जिससे देवताओंका निर्माण होता है। इसीको वेदान्तदर्शनमें मायाके नामसे कहा गया है। 'द्युलोक, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र सब देव, पञ्चजन तथा जो कुछ होनेवाला है और हो चुका है, यह सब अदिति है।" सब देव अदितिके ही रूप हैं।

" ब्रह्म " अध्यक्ष है और " अदिति " प्रजा है। प्रजामेंसे प्रतिनिधि चुने जाते हैं और इन्हींकी सभा बनती है।

पुरुष

व्यक्ति, समाज और विराट् इन तीनों स्थानोंमें जो पुरुष स्थित है, उन सबका एक उद्देश्य है कि इन तीनों जगहोंमें शान्ति स्थापित करना। " करोडों सिर, पैर व हाथवाला एक मानवसमाजरूपी पुरुष सर्वत्र है।" वह तीनों कालोंमें रहता है। समाजमें रहनेवाले ज्ञानी, शूर, वैश्य और कारीगर या शूद्र इस समाज पुरुषके सिर, बाहू, पेट और पांव हैं। सब मानवोंका मिलकर एक शरीर है, अत शरीरमें जिस प्रकार अङ्गोंमें सहकार होता है, उसी प्रकार इस मानवसमाजमें भी मानवोंका परस्पर सहकार होना चाहिये।

इसी प्रकार विराट्पुरुषकी भी एक देह है, जिसमें सूर्य, चन्द्र आदि देवगण अङ्ग बने हुए हैं। " इस विराट्पुरुषमें चन्द्रमा मन, सूर्य, आंख, इन्द्र और अग्नि मुंह, वायु प्राण, द्यु सिर, पृथिवी पांव और दिशायें कान हैं।"

इस विराट्पुरुष और व्यष्टिपुरुषमें सहचारको बताकर मनुष्यसमाजमें भी उसीकी शिक्षा देना वेदका ध्येय है।

सदसस्पति और क्षेत्रपति ये दोनों विश्वसंसदके क्रमश अध्यक्ष और उपाध्यक्ष हैं। 'जो संसद्का अध्यक्ष है, मैं उससे योग्य सलाह मांगता हूँ, वह मुझे योग्य सलाह देवे'। 'सदसः + पतिः' शब्द भी इसी बातका द्योतक है।

'सदसः' पद 'सदस्' शब्दके षष्ठी विभक्तिके एकवचनका रूप है। 'सदस्' का अर्थ होता है 'सभा'। अतः 'सदसः-पति' का अर्थ है सभापति या सभाध्यक्ष। इसका सहायक क्षेत्रपति है। इनमें सदसस्पति राज्यपरिषद्का अध्यक्ष है और क्षेत्रपति संसद् या लोकसभाका।

इसके बाद विश्वराज्यके मंत्रिमण्डलका स्थान आता है। उसमें 'विद्याधनं सर्वधनप्रधानं' के न्यायसे अग्निका स्थान सर्वप्रथम है।

अग्नि

यह शिक्षामंत्री है। इसका कार्य ज्ञानका प्रसार करना व कराना है। वेदमंत्रोंमें आए हुए उसके विशेषणोंसे पता चलता है कि वह ज्ञानी है—

पावकः— ज्ञानसे लोगोंको पवित्र करनेवाला।
ऋषिकृत् (ऋ. १।३१।१६)— ऋषियोंका निर्माण करनेवाला।
कवितमः (३।१४।१)— सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी।
जातवेदाः (१।४४।१)— जिससे ज्ञान प्रकट हुआ है।
मेधिरः (१।३१।२)— बुद्धिमान्।
विद्वान् (१।१४५।५)— ज्ञानी।
सु-वेदः (४।७।६)— उत्तम ज्ञानी।
सूरिः (२।३।४)— बडा विद्वान।
प्रचेताः (साम. १५१४)— विशेष ज्ञानी।
आर्यस्य वर्धनः (१५१५)— आर्य या श्रेष्ठ पुरुषोंको बढानेवाला।
ऋषिः (१५१९)— ज्ञानी, मंत्रद्रष्टा।

ये समस्त विशेषण यह सिद्ध करते हैं कि अग्निका कार्य ज्ञानका प्रसार करके लोगोंको ज्ञानी बनाकर उन्हें पवित्र करना है।

'ब्रह्मणस्पति' और 'बृहस्पति' इसकी सहायता करते हैं। ब्रह्मका अर्थ ही ज्ञान है। पुराणोंमें बृहस्पतिको देवोंका ज्ञानगुरु बताया है।

इन्द्र

यह रक्षामंत्री है। यह सदा आर्योंकी रक्षामें तत्पर रहता है। हमेशा शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित रहता है। यह लोहेका टोप पहनता है और उसपर जरीकी पगडी बांधता है, इसीलिए इसे वेदोंमें 'शिप्री' कहा है। यह 'अद्रि-वः' अर्थात् पहाडोंमें रहता है। पहाडोंपर किले बनाकर उनमें रहता है। अथवा यह गुरिल्ला अर्थात् पर्वतीय युद्धमें भी बडा प्रवीण है। हमेशा वज्रको हाथमें धारण किये रहनेके कारण यह 'वज्रहस्त' कहलाता है। यह लोक कल्याण करता है। यह बडा वीर है, इसलिए (जनुषा अभ्रातृव्यः) जन्मसे ही शत्रुरहित है। इसका एक कारण और भी है कि यह 'अशत्रुः' है अर्थात स्वयं भी किसीसे बिना कारण शत्रुता नहीं करता। इसके कतिपय विशेषण इस प्रकार हैं—

यातुधानः (साम. १४११)— अपनी शक्तिसे बढनेवाला है।
वृषभः (१३६१)— बैलके समान सशक्त।
वज्रबाहुः (१४२६)— वज्रके समान कठोर भुजाओंवाला।
वीर्येः वृद्धः (१४८७)— पराक्रमसे महान्।
महिषः तुविशुष्मः (१४४६)— भैंसेके समान पुष्ट और शक्तिमान्।

इस प्रकार यह बलवान् है और सबपर शासन करता है। पर वह स्वयंकी शक्तिसे ही महान् है, किसी दूसरेकी शक्तिकी सहायतासे वह शक्तिमान् या महान् नहीं है। वह 'अयुध्य' है, उसके साथ युद्ध करना कोई आसान काम नहीं। क्योंकि वह 'दुश्च्यवन' अर्थात् अपने स्थानसे एक कदम भी हिलनेवाला नहीं है। वह शत्रुओंके किले तोडनेवाला, वज्रके समान कठोरवाला और युद्धमें विजयी होकर शत्रुओंको नष्ट करता है। इन्द्रके ये उपरोक्त वर्णन इस बातके प्रमाण हैं कि जिस देशका राज्य ऐसे बलशाली वीर रक्षकके हाथमें रहेगा, वह देश कभी भी दास या अवनत नहीं हो सकता।

उपेन्द्र अर्थात् विष्णु, रुद्र और मरुत् भी इसीके समान बलशाली हैं। रुद्रका नाम भी 'रुद्र' इसीलिए है कि वह शत्रुओंको रुलाता है। निरुक्तकार यास्कने 'शत्रूणां रोदयिता' कहकर रुद्रका निर्वचन किया है। मरुत् भी 'मर + उत्' हैं अर्थात् मरतेदमतक उठ उठकर लडनेवाले हैं। इस प्रकार विश्वराज्यका रक्षामंत्रालय श्रेष्ठ वीरोंके आधीन है।

अश्विनौ

ये दो वैद्य हैं। ये दोनों अपने चिकित्सा कर्ममें बहुत कुशल हैं। वेदोंमें इनकी कार्य कुशलताका अनेक जगह वर्णन है। इन्होंने शल्यक्रियाके अनेक अपूर्वकाम किए हैं। खेल राजाकी पुत्री विश्पलाकी टांग टूट जानेपर उसकी लोहेकी टांग लगाना, अन्धे कण्वकी आंखें ठीक करना, च्यवनको बूढेसे

जवान बनाना ये सब इनकी चिकित्साकी विलक्षणता बताते हैं। कायाकल्पका सिद्धान्त आज प्रायः सर्वमान्य हो गया है। कई पाश्चात्य डॉक्टरोंने कायाकल्पपर प्रयोग भी किए और उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ कि उनकी उमर २०-२० वर्ष कम होगई। अश्विनौ भी कायाकल्प करते थे। इनकी औषधयोजना और शस्त्रक्रियाके सम्बन्धमें वेदोंमें निम्न वर्णन है—

गां पिन्वतं— गायको दुधारु और पुष्ट बनाते हैं।

अर्वतः जिन्वतं— घोडोंको वेगवान् बनाते हैं।

वीरं वर्धयतं— पुत्र या सन्तानोंको शक्तिशाली बनाते हैं।

च्यवनं पुनः युवानं चक्रथुः— बूढे च्यवन ऋषिको फिर तरुण बनाया।

अपरिक्षाय कण्वाय चक्षुः प्रत्यधत्तम्— अन्धे कण्व को नई आंखें प्रदान कीं।

विश्पलायै आयसीं जघां प्रत्यधत्तम्— विश्पलाकी लोहेकी टांग लगाई और उसे चलने फिरने योग्य बनाया।

इस प्रकार अश्विनौ देवोंका वर्णन है। गौः, ओषधि, सोम आदि देवता अश्विनौकी इस कार्यमें सहायता करते हैं और इस प्रकार विश्वराज्यका स्वास्थ्यमंत्रालय सुचारुरूपसे चलता है।

पूषा, सूर्य, सविता

ये तीनों लोगोंका पोषण करते हैं। 'पुष्-पोषणे' पोषण करना इस धातुसे पूषा शब्द बना है। सूर्यकी किरणोंसे पोषण प्राप्त होना स्पष्ट और सर्वमान्य सिद्धान्त है ही। 'सूर्य किरणोंमें स्नान करनेसे हृदयके रोग और पीलिया दूर होते हैं' (ऋ. १।५०।११)। सूर्यमें आरोग्यसंवर्धनके संपूर्ण साधन हैं। उन साधनोंसे वह सब रोग दूर करता है। जो इसकी शरणमें जाता है, वह कभी रोगके आधीन नहीं हो सकता।

भग

यह अर्थमंत्री है। भगका अर्थ ही ऐश्वर्य है। अतः विश्वराज्यका सारा ऐश्वर्य भगके अधिकारमें रहता है। यह सबको गाय, घोडे, धन, ऐश्वर्य आदिसे युक्त करता है। उसका वेदने इस प्रकार वर्णन किया है—

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैः
भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ऋ. ७।४१।३

" हे भग देव! तू नेता है, हमारा सञ्चालक है। तेरे पासका ऐश्वर्य शाश्वत है, हमेशा रहनेवाला है। तू हमें भी ऐश्वर्य देकर सुरक्षित कर। गाय, घोडे प्रदान कर हमें भाग्यवान बना। हम वीरपुत्रोंसे युक्त हों, ऐसी कृपा कर।"

उषा

उषाके रूपमें वेदोंने एक आदर्श स्त्रीका वर्णन किया है। यह एक उत्तम पुत्री, उत्तम पत्नी और उत्तम नेत्री है। यह सबसे पहले उठती है और सबको उठाती है। यह गृहिणीका कर्तव्य है कि वह सबेरे सर्वप्रथम उठे, फिर घरको स्वच्छ करके दूसरोंको भी उठाये। वह "चित्रा" है, हमेशा रंग-बिरंगे परिधानोंसे सजी रहती है। कोई भी स्त्री मलिन या दीन वेशभूषा धारण न करे। वह दिव्यव्रतोंका पालन करती है। उसे वेदमें "दिवः दुहिता" (द्युलोककी पुत्री) कहा है। वह लोगोंको सत्कर्ममें प्रवृत्त करती है। वह "भुवनस्य पत्नी" अर्थात् संसारका पालन करनेवाली होनेके कारण सबके कर्मोका निरीक्षण करती रहती है। यह सूर्यकी पत्नी है। यह इतनी आदर्श है कि ऋषि भी इसकी स्तुति या प्रशंसा करते हैं। इसका कार्यक्षेत्र केवल घरतक ही सीमित नहीं है, अपितु यह रथमें बैठकर सर्वत्र संचार करती है। इसपर कोई कुदृष्टि नहीं डाल सकता, क्योंकि यह वीर है, रणनीतिमें कुशल है। "यह अपने साथ अन्य देवों-को लेकर शत्रुओंके किलोंपर आक्रमण करती है और उनका विध्वंस करती है।"

इस प्रकार वेदने उषाके रूपमें एक वीर, धीर, सबला, उत्तम पत्नी, पुत्रीका चरित्र-चित्रण किया है। इससे वैदिक-कालमें स्त्रियोंकी स्थितिका सही अन्दाजा लगाया जा सकता है।

इसी प्रकार अन्य मंत्रीगण भी अपना कार्य सुचारुरूपसे बिना किसी छलकपटके करते हैं।

उपसंहार

इस प्रकार संक्षेपमें हमने अपनी योजनाकी रूपरेखा प्रस्तुत की। जब हमने "दैवत-संहिता" के प्रयनका निश्चय किया, तो हमें कई विद्वानोंने यह लिखा कि वेदोंका वर्तमान-रूप एक शाश्वतरूप है, अनादिकालसे वेद इसी रूपमें चले आए हैं, अतः उसके वर्तमानरूपको विकृत करना उचित नहीं। हमने उनसे यही नम्र निवेदन किया कि जब ऋषियोंके अनुसार आर्षेय संहिता पहले बन चुकी है तो देवताओंके अनुसार "दैवत संहिता" बनानेमें क्या आपत्ति है। हमने मंत्रके छन्दों, स्वरों या पदोंमें कोई परिवर्तन नहीं किया, न मंत्रोंमें हमने अपनी ओरसे कुछ मिलाया ही। हां, इतना

अवश्य किया कि जो चारों वेदोंमें पुनरुक्त मंत्र आए हैं, उनको हमने एक ही बार लिया है। हमारे पास कई ऐसे पत्र आए थे, जिनमें लेखकोंने हमें सुझाया कि चारों वेदोंकी एक पुस्तक बना दी जाए, तो अत्युत्तम होगा। इस सुझावका हमने स्वागत किया और देवताओंके अनुसार चारों वेदोंका एक ग्रंथमें संग्रह कर दिया। इस ग्रंथको प्रकाशित करते हुए हमने समय-समय पर विद्वानोंसे सलाह भी ली। हम उन विद्वानोंके आभारी हैं, जिन्होंने अपनी सलाह देकर हमारा मार्ग प्रदर्शन किया।

इस 'दैवतसंहिता' की कुछ अपनी भी विशेषतायें हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) इन्द्र आदि देवोंके चारों वेदोंके मंत्र एक जगह आ जानेके कारण वेदानुसंधानकर्ताओंको बड़ी सुविधा हो गई है। उन्हें अब चारों वेद टटोलनेकी जरूरत नहीं।

(२) इस संहितामें विश्वराज्यकी जो कल्पना हमने प्रस्तुत की है, वह अपूर्व है।

(३) मंत्रोंके स्वरोंकी शुद्धता पर बहुत ध्यान दिया गया है। इसको प्रकाशित करते समय हमें उन विद्वानोंका सहयोग प्राप्त हुआ है, जिन्हें वेद कण्ठस्थ है। अतः स्वर-विषयक दोषोंकी संभावना कम या नहींके बराबर ही है।

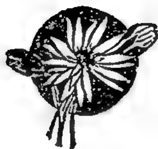
(४) वेदोंमें देवताओंके वर्णनके रूपमें सब प्रकारका ज्ञान दिया है। अतः उन देवताओंके गुणधर्मोंका परिचय हमें विशेष मिले, इसलिए हमने देवतावार मंत्रोंका वर्गीकरण किया है।

(५) हमने यथासंभव यही प्रयास किया है कि पुस्तकका कलेवर बड़ा न हो। इस दृष्टिसे हमने मंत्रोंका मुद्रण दो कालमोंमें किया है।

(६) दैवत संहिताके अन्तमें परिशिष्टके रूपमें हमने अन्य संहिताओंके भी मंत्र दिए हैं। इससे संहिताओंके तुलनात्मक अध्ययनमें पर्याप्त आसानी होगी।

इस प्रकार दैवतसंहिताका मुद्रण हमने किया है। इसमें हमें जिन जिन विद्वानोंसे सलाह या अन्य प्रकारकी सहायता मिली है, हम उनके आभारी हैं। इस "दैवत-संहिता" के मुद्रण-कार्यमें "श्री पं. मनोहरजी विद्यालंकार चावड़ीबाजार, दिल्ली" ने ३८००) रु. प्रदान देकर हमारी जो सहायता की है, उसके लिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। पाठक इस हमारे प्रयत्नका हार्दिक अभिनन्दन करेंगे, ऐसी आशा है। इसके साथ ही वेद-विद्वानोंसे हमारा नम्र निवेदन है, कि इस ग्रंथमें जो दोष या न्यूनता उनकी दृष्टिमें आए, हमें सूचित करनेकी कृपा करें, ताकि आगामी संस्करणमें उस दोषका परिमार्जन कर सकें।

निवेदनकर्ता,
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल





१ परब्रह्म।

१ परब्रह्म।

अथर्ववेद कांड ४, सूक्त १

(ऋषिः — वेनः। देवता — बृहस्पतिः, आदित्यः। छंदः — त्रिष्टुप्; २,५ पुरोऽनुष्टुप्)

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्
वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ १ ॥

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे
प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं
घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ॥ २ ॥

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धु-
र्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्या-
न्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥ ३ ॥

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था
मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान्मही अस्कभायद्वि जातो
द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥ ४ ॥

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं
बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टा-
थ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥ ५ ॥

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति
महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था
पूर्वे अर्धे विषिते ससन्नु ॥ ६ ॥

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं
बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः
कविर्देवो न दभायत्स्वधावान् ॥ ७ ॥

३ ज्येष्ठं ब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड १०, सूक्त ८ (ऋषिः — कुत्सः । देवता — आत्मा)

यो भूतं च भव्यं च
सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्व१र्यस्य च केवलं
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥
स्कम्भेनेमे विष्टभिते
द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्
यत्प्राणन्निमिषच्च यत् ॥ २ ॥
तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्
न्य१न्या अर्कमभितोऽविशन्त ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो
हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं
त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः
षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥
इदं सवितर्वि जानीहि
षड्यमा एक एकजः ।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते
य एषामेक एकजः ॥ ५ ॥
आविः सन्निहितं गुहा
जरन्नाम महत्पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितम्
एजत् प्राणत्प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥
एकचक्रं वर्तत एकनेमि
सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान
यदस्यार्धं क्व१ तद्बभूव ॥ ७ ॥
पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां
प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य ददृशे न यातं
परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥ ८ ॥
तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्
तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं
ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥
या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चात्
या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते
तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥ १० ॥
यदेजति पतति यच्च तिष्ठति
प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं
तत्संभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥
अनन्तं विततं पुरुत्रा-
नन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन्
विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य ॥ १२ ॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर्
अदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान
यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं
कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा
न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥

२ परब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड ५, सूक्त ६

(ऋषिः – अथर्वा । देवताः – सोमारुद्रौ । १ ब्रह्म, २ कर्माणि, ३–४ रुद्रगणाः । ५–८ सोमारुद्रौ, ९ हेतिः, १०–१४ सर्वात्मा रुद्र. ।)

ब्रह्म॑ जज्ञानं प्र॑थमं पुरस्ता॒द्
वि सी॑मतः सुरुचो॑ वेन आवः ।
स बुध्न्या॑ उपमा अ॑स्य विष्ठाः
सतश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ वि वः ॥ १ ॥

अना॑प्ता ये वः॑ प्रथमा
यानि॒ कर्मा॑णि चक्रि॒रे ।
वीरान् नो॒ अत्र॒ मा द॑भन्
तद् व॑ एतत्पुरो द॑धे ॥ २ ॥

सहस्र॑धार एव ते सम॑स्वरन्
दिवो नाके॒ मधु॑जिह्वा असश्चतः ।
तस्य॒ स्पशो॒ न नि मि॑षन्ति॒ भूर्ण॑यः
प॒देप॑दे पाशिनः सन्ति॒ सेत॑वे ॥ ३ ॥

पर्यू॑ षु प्र ध॑न्वा वाज॑सातये
परि॑ वृत्राणि॑ सक्षणिः॑ ।
द्विषस्तद॒ध्यर्ण॒वेनेयसे सनिस्रसो
नामा॑सि त्रयोदशो मास॒ इन्द्र॑स्य गृहः ॥४॥

न्ये॒ऽ॒वेनारा॑त्सीरसौ॑ स्वाहा॑ ।
ति॒ग्मायु॑धौ ति॒ग्महे॑ती सुशेवौ॑
सोमा॑रुद्रावि॒ह सु मृ॑डतं नः ॥ ५ ॥

अवे॑तेनारा॑त्सीरसौ॑ स्वाहा॑ ।
ति॒ग्मायु॑धौ ति॒ग्महे॑ती सुशेवौ॑
सोमा॑रुद्रावि॒ह सु मृ॑डतं नः ॥ ६ ॥

अपे॑तेनारा॑त्सीरसौ॑ स्वाहा॑ ।
ति॒ग्मायु॑धौ ति॒ग्महे॑ती सुशेवौ॑
सोमा॑रुद्रावि॒ह सु मृ॑डतं नः ॥ ७ ॥

मु॒मु॒क्तम॒स्मान्दु॑रि॒ताद॑व॒द्याज्
जु॒षेथां॑ य॒ज्ञम॒मृत॑म॒स्मासु॑ धत्तम् ॥ ८ ॥

चक्षु॑षो हेते॒ मन॑सो हेते॒
ब्रह्म॑णो हेते॒ तप॑सश्च हेते ।
मे॒न्या मे॒निर॑स्यमे॒नय॒स्ते स॑न्तु
ये॒ऽ॒स्माँ अ॑भ्यघा॒यन्ति॑ ॥ ९ ॥

यो॒ऽ॒स्मांश्चक्षु॑षा मन॑सा चित्त्याकू॑त्या
च॒ यो अ॑घा॒युर॑भि॒दासा॑त् ।
त्वं तान॑ग्ने मे॒न्याम॒ेनीन् कृ॑णु स्वाहा॑ ॥१०॥

इन्द्र॑स्य गृ॒होऽ॑सि । तं त्वा॒ प्र प॑द्ये
तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्व॑गुः सर्व॑पूरुषः ।
सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑॥११॥

इन्द्र॑स्य॒ शर्मा॑सि । तं त्वा॒ प्र प॑द्ये
तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्व॑गुः सर्व॑पूरुषः
सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑॥१२॥

इन्द्र॑स्य॒ वर्मा॑सि । तं त्वा॒ प्र प॑द्ये
तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्व॑गुः सर्व॑पूरुषः
सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑॥१३॥

इन्द्र॑स्य॒ वरू॑थमसि । तं त्वा॒ प्र प॑द्ये
तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्व॑गुः सर्व॑पूरुषः
सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑॥१४॥

३ ज्येष्ठं ब्रह्म।

अथर्ववेद कांड १०, सूक्त ८ (ऋषि· — कुत्सः। देवता — आत्मा)

यो भूतं च भव्यं च
सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥
स्कम्भेनेमे विष्टभिते
द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्
यत्प्राणन्निमिषच्च यत् ॥ २ ॥
तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्
न्यन्या अर्कमभितोऽविशन्त ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो
हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं
त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः
षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥
इदं सवितर्वि जानीहि
षड्यमा एक एकजः ।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते
य एषामेक एकजः ॥ ५ ॥
आविः सन्निहितं गुहा
जरन्नाम महत्पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितम्
एजत् प्राणत्प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥
एकचक्रं वर्तत एकनेमि
सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान
यदस्यार्धं क्व १ तद्बभूव ॥ ७ ॥
पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां
प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य ददृशे न यातं
परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥ ८ ॥
तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्
तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं
ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥
या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चात्
या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते
तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥ १० ॥
यदेजति पतति यच्च तिष्ठति
प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं
तत्संभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥
अनन्तं विततं पुरुत्रा-
नन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन्
विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य ॥ १२ ॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर्
अदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान
यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं
कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा
न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥

दूरे पूर्णेन वसति
दूर ऊनेन हीयते ।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये
तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥ १५ ॥
यतः सूर्य उदेति-
अस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं
तदु नात्येति किं चन ॥ १६ ॥
ये अर्वाङ्मध्य उत वा पुराणं
वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे
अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ
हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य
संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ १८ ॥
सत्येनोर्ध्वस्तपति
ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति
यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥ १९ ॥
यो वै ते विद्यादरणी
याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत
स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ २० ॥
अपादग्रे समभवत्
सो अग्रे स्व१राभरत् ।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः
सर्वमादत्त भोजनम् ॥ २१ ॥
भोग्यो भवदथो
अन्नमदद्बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तम्
उपासातै सनातनम् ॥ २२ ॥
सनातनमेनमाहु-
रुताद्य स्यात्पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते
अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥ २३ ॥
शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदम्
असंख्येयं स्वमस्मिन्निविष्टम्
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव
तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥ २४ ॥
बालादेकमणीयस्कम्
उतैकं नैव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी
देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥
इयं कल्याण्य१जरा
मर्त्यस्यामृता गृहे ।
यस्मै कृता शये स
यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि
त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि
त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ २७ ॥
उतैषां पितोत वा पुत्र एषाम्
उतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः
प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥ २८ ॥
पूर्णात्पूर्णमुदचति
पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम
यतस्तत्परिषिच्यते ॥ २९ ॥ (५०)

एषा सनत्नी सनमेव जाता
एषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
मही देव्युषसो विभाती
सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥ ३० ॥
अविर्वै नाम देवता
ऋतेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा
हरिता हरितस्रजः ॥ ३१ ॥
अन्ति सन्तं न जहात्य्
अन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं
न ममार न जीर्यति ॥ ३२ ॥
अपूर्वेणेषिता वाचस्
ता वदन्ति यथायथम्।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति
तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥ ३३ ॥
यत्र देवाश्च मनुष्याश्च
आरा नाभाविव श्रिताः।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि
यत्र तन्मायया हितम् ॥ ३४ ॥
येभिर्वात इषितः प्रवाति
ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा
अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥ ३५ ॥
इमामेषां पृथिवीं वस्त एको-
ऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता
विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥ ३६ ॥
यो विद्यात्सूत्रं विततं
यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्
स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७ ॥
वेदाहं सूत्रं विततं
यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेद
अथो यद्ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥
यदन्तरा द्यावापृथिवी
अग्निरैत्प्रदहन्विश्वदाव्यः।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात्
क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥ ३९ ॥
अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः
प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्।
बृहन्ह तस्थौ रजसो विमानः
पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥
उत्तरेणेव गायत्रीम्
अमृतेऽधि वि चक्रमे।
साम्ना ये साम संविदुः
अजस्तद्ददृशे क्व ॥ ४१ ॥
निवेशनः संगमनो वसूनां
देव इव सविता सत्यधर्मा।
इन्द्रो न तस्थौ
समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥
पुण्डरीकं नवद्वारं
त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्
तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४३ ॥
अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योः
आत्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ ४४ ॥ (६५)

४ उच्छिष्टं ब्रह्म।

अथर्ववेद कांड ११, सूक्त ७ (ऋषिः — अथर्वा। देवता — अध्यात्मं, उच्छिष्टः।)

उच्छिष्टे नाम॑ रूपं
चोच्छिष्टे लोक आहि॑तः।
उच्छिष्ट इन्द्र॑श्चाग्निश्च
विश्व॑मन्तः समाहि॑तम् ॥ १ ॥
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी
विश्वं भूतं समाहि॑तम्।
आप॑: समुद्र उच्छिष्टे
चन्द्रमा वात आहि॑तः ॥ २ ॥
सन्नुच्छिष्टे असं॑श्चोभौ
मृत्युर्वाजः प्रजाप॑तिः।
लौक्या उच्छिष्ट आय॑त्ता
व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि॑ ॥ ३ ॥
दृढो दृंहस्थिरो न्यो
ब्रह्म विश्वसृजो दश॑।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रम्
उच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥ ४ ॥
ऋक्साम यजुरुच्छिष्ट
उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः
साम्नो मेडिश्च तन्मयि॑ ॥ ५ ॥
ऐन्द्राग्नं पाव॑मानं
महानाम्नीर्महाव्रतम्।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गानि
अन्तर्गर्भ इव मातरि॑ ॥ ६ ॥
राजसूयं वाजपेय॑म्
अग्निष्टोमस्तद॑ध्वरः।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे
जीवबर्हिर्मदिन्त॑मः ॥ ७ ॥
अग्न्याधेयमथो दीक्षा
कामप्रश्छन्द॑सा सह।
उत्स॑न्ना यज्ञाः सत्राणि
उच्छिष्टेऽधि समाहि॑ताः ॥ ८ ॥
अग्निहोत्रं च श्रद्धा च
वषट्कारो व्रतं तपः।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टे-
ऽधि समाहि॑ताः ॥ ९ ॥
एकरात्रो द्विरात्रः
सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः।
ओतं निहि॑तमुच्छिष्टे
यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥ १० ॥
चतूरात्रः पञ्चरात्रः
षड्रात्रश्चोभय॑: सह।
षोडशी सप्तरात्राश्चोच्छिष्टा-
ज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥ ११ ॥
प्रतीहारो निधनं
विश्वजिच्चाभिजिच्च यः।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे
द्वादशाहोऽपि तन्मयि॑ ॥ १२ ॥
सूनृता संन॑तिः क्षेम॑:
स्वधोर्जामृतं सह॑:।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः
कामाः कामेन तातृपुः ॥ १३ ॥
नव भूमीः समुद्रा
उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिव॑:।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टे-
ऽहोरात्रे अपि तन्मयि॑ ॥ १४ ॥

उपहव्यं विषुवन्तं
ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्य
उच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥

पिता जनितुरुच्छिष्टो-
ऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो
वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६ ॥

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं
श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे
वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७ ॥

समृद्धिरोज आकूतिः
क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट
इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८ ॥

चतुर्होतार आप्रियः
चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः
पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥

अर्धमासाश्च मासाश्च
आर्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः
स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥

शर्कराः सिकता अश्मान
ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षम्
उच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१ ॥

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिः
व्याप्तिर्मह एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिः
चाहिता निहिता हिता ॥ २२ ॥

यच्च प्राणति प्राणेन
यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे
दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २३ ॥

ऋचः सामानि च्छन्दांसि
पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे
दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २४ ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्र-
मक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे
दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २५ ॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदो-
ऽभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे
दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २६ ॥

देवाः पितरो मनुष्या
गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे
दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २७ ॥ (१९)

५ पुरुषे ब्रह्म ।

॥ १ ॥ (वा० य० २३।९,११,४७-५२)

कः स्विदेकाकी चरति
क उं स्विज्जायते पुनः ।
किंº स्विद्धिमस्य भेषजं
किम्वावपनं महत् ॥ ९ ॥
का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः
किंº स्विदासीद्बृहद्वयः ।
का स्विदासीत् पिलिप्पिला
का स्विदासीत् पिशङ्गिला ॥ ११ ॥
किंº स्वित् सूर्यसमं ज्योतिः
किंº समुद्रसमंº सरः ।
किंº स्वित् पृथिव्यै वर्षीयः
कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥
ब्रह्म सूर्यसमं ज्योति-
र्द्यौः समुद्रसमंº सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्
गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

पृच्छामि त्वा चितये देवसख
यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टः
तेषु विश्वं भुवनमा विवेशाँ३ ॥ ४९ ॥
अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि
येषु विश्वं भुवनमा विवेश ।
सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्याम्
एकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥ ५० ॥
केष्वन्तः पुरुष आ विवेश
कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतद्ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा
किंº स्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥ ५१ ॥
पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश
तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतत् त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि
न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥ ५२ ॥ (१००)

६ ब्रह्मणि देवताः ।

(अथर्व० ५।२४।१-१७)

(१-५२) अथर्वा । [ब्रह्मकर्म] । ब्रह्मकर्मात्मा; १ सविता, २ अग्निः, ३ द्यावापृथिवी, ४ वरुणः, ५ मित्रावरुणौ, ६ मरुत , ७ सोम , ८ वायुः, ९ सूर्य , १० चन्द्रमाः, ११ इन्द्रः, १२ मरुतां पिता, १३ मृत्यु , १४ यम , १५ पितरः, १६ तताः, १७ ततामहाः । अतिशक्करी; १-१०, १२-१४ चतुष्पदातिशक्करी; ११ शक्करी, १५-१६ त्रिपदा भुरिग्जगती; १७ त्रिपदा विराट् शक्करी ।

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां
पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्या-
माशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १ ॥

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ २ ॥
द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ ३ ॥
वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ ४ ॥ (१०४)

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ ५ ॥
मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ ६ ॥
सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ ७ ॥
वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ ८ ॥
सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ ९ ॥
चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ १० ॥
इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ ११ ॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ १२ ॥

मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ १३ ॥

यमः पितॄणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ १४ ॥

पितरः परे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ १५ ॥

तता अवरे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ १६ ॥

ततस्ततामहास्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्० ॥ १७ ॥ (११७)

७ परमं गुह्यं धाम ।

अथर्व० कांड २, सूक्त १ (ऋषिः – वेनः । देवता – ब्रह्म, आत्मा)

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्
यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः
स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥ १ ॥

प्र तद्वोचेदमृतस्य विद्वान्
गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥ २ ॥

स नः पिता जनिता स उत बन्धुः
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामध एक एव
तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥

परि द्यावापृथिवी सद्य आयम्
उपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा
धास्युरेष नन्वेषो अग्निः ॥ ४ ॥

परि विश्वा भुवनान्यायम्
ऋतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः
समाने योनावध्यैरयन्त ॥ ५ ॥ (१००)

८ महद्ब्रह्म ।

अथर्व कांड १, सूक्त ३२ (ऋषि — ब्रह्मा । देवता — द्यावापृथिवी)

इदं जनासो विदथ
महद्ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत्पृथिव्यां नो दिवि
येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १ ॥

अन्तरिक्ष आसां स्थाम
श्रान्तसदामिव ।
आस्थानमस्य भूतस्य
विदुष्टद्वेधसो न वा ॥ २ ॥

यद्रोदसी रेजमाने
भूमिश्च निरतक्षतम् ।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा
समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥ ३ ॥

विश्वमन्यामभीवार
तदन्यस्यामधिश्रितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे
पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

९ तुरीयं ब्रह्म ।

अथर्व. कांड ७, सूक्त १ (ऋषि — अथर्वा ' ब्रह्मवर्चसकाम ' । देवता — आत्मा)

धीती वा ये अनयन्वाचो अग्रं
मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्
तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥ १ ॥

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं
स सूनुर्भुवत्स भुवत्पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः
स इदं विश्वमभवत्स आभवत् ॥ २ ॥

१० ब्रह्मप्राप्तिः ।

अथर्व. कांड ७, सूक्त ६६ (६८) (ऋषि - ब्रह्मा । देवता= ब्रह्म)

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस
यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु ।
यदश्रवन्पशव उद्यमानं
तद्ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥ १ ॥



२ परमात्मा।

आरम्भ।

॥ १ ॥ (ऋ० ३।२६।७-८)
(१-२) गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा
घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानः
अजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ७ ॥
त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्कं
हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिः
आदिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥ ८ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ४।४२।१-६)
(१-६) त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । त्रिष्टुप् ।

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य
विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवाः
राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ १ ॥
अहं राजा वरुणो मह्यं तानि
असुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवाः
राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ २ ॥
अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वा
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्
समैरयं रोदसी धारयं च ॥ ३ ॥
अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा
धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावा
उत त्रिधातु प्रथयद् वि भूम ॥ ४ ॥
मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो
मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र
इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥ ५ ॥
अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा
दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्था
उभे भयेते रजसी अपारे ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १०।११९।१-१३)
(९-२१) लव ऐन्द्रः । गायत्री ।

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १ ॥
प्र वाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ २ ॥
उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ३ ॥

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा
परि लोकान् परि दिशः परि स्वः ।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य
तदपश्यत् तदभवत् तदासीत् ॥ १२ ॥
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषं स्वाहा ॥ १३ ॥
यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥१४॥
मेधां मे वरुणो ददातु
मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च
मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥
इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं
चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियम्
उत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ १६ ॥
॥ १३ ॥ (वा० य० ३२।१-१६)
ईशा वास्यमिदं सर्वं
यत् किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा
मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२
असुर्या नाम ते लोका
अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति
ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥
अनेजदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्
तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥५॥
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति॥६॥
यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥७॥
स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्
अस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥
अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ॥९॥
अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥
संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते ॥११॥
अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥१२॥
अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥१४॥
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतं स्मर॥१५॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० २।२।१-५)
(७१-७५) मातृनामा। गन्धर्वाप्सरसः [भुवनस्पतिसूक्तम्]। त्रिष्टुप्, १ विराड्जगती, ४ त्रिपाद्विराण्नाम्नी गायत्री, ५ भुरिगनुष्टुप्।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः
एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव
नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥ १ ॥
दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वक्-
अवयाता हरसो दैव्यस्य।
मृडाद्गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः
एक एव नमस्यः सुशेवाः ॥ २ ॥
अनवद्याभिः समु जग्म आभिः
अप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत्।
समुद्र आसां सदनं म आहुः
यतः सद्य आ च परा च यन्ति ॥ ३ ॥
अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या
विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत्कृणोमि ॥ ४ ॥
याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः॥५॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ७।१।१-२)
(८९-१४१) अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः)। त्रिष्टुप्, २ विराड् जगती।

धीती वा ये अनयन् वाचो
अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्
तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥ १ ॥
स वेद पुत्रः पितरं स मातरं
स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः१ः
स इदं विश्वमभवत् स आऽभवत् ॥ २ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० ७।२।१) त्रिष्टुप्।

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं
मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम्।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत
प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ १ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० ७।३।१)

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि
स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः।
स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रं
स्वया तन्वा तन्वमैरयत ॥ १ ॥

॥ २० ॥ (अथर्व० ७।५।१-५)
त्रिष्टुप्, ३ पंक्ति, ४ अनुष्टुप्।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १ ॥
यज्ञो बभूव स आ बभूव
स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः।
स देवानामधिपतिर्बभूव
सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ॥ २ ॥
यद्देवा देवान् हविषाऽयजन्त
अमर्त्यान् मनसामर्त्येन।
मदेम तत्र परमे व्योमन्
पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ॥ ३ ॥
यत् पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्विहव्येनेजिरे ॥ ४ ॥
मुग्धा देवा उत शुनायजन्त
उत गोरङ्गैः पुरुधाऽयजन्त।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत
प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ ५ ॥

॥ २३ ॥ (अथर्व० ७।२१।१)
(१८१-१९४) ब्रह्मा । आत्मा (एको विभुः) ।
शक्करी विराड्गर्भा जगती ।

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव
एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत्
तं वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु ॥ १ ॥

॥ २४ ॥ (अथर्व० ७।६७।१) पुरः परोष्णिग्बृहती ।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा
द्रविणं ब्राह्मणं च । पुनरग्नयो धिष्ण्या
यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥ १ ॥

॥ २५ ॥ (अथर्व० ७।१०३।१)
आत्मा (क्षत्रियः) । त्रिष्टुप् ।

को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या
उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् ।
को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः
को देवेषु वनुते दीर्घमायुः ॥ १ ॥

॥ २६ ॥ (अथर्व० ७।१०४।१) आत्मा (गौः) त्रिष्टुप् ।

कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्ताम्
अथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् ।
बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो
यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ १ ॥

॥ २७ ॥ (अथर्व० ९।१०।१९,२४-२५)
गौ. विराट्, अध्यात्मं (आत्मा) । त्रिष्टुप्,
२४ चतुष्पदा पुरस्कृतिर्भुरिगतिजगती ।

ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तो-
ऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत् ।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे
तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १९ ॥

विराड् वाग्विराट् पृथिवी
विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव
तस्य भूतं भव्यं वशे
स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥

शकमयं धूममारादपश्यं
विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥

॥ २८ ॥ (अथर्व० १९।५१।१-२)
(आत्मा) १ आत्मा, २ सविता च । १ एकपदा
ब्राह्मी अनुष्टुप्, २ त्रिपाद्यवमध्योष्णिक् ।

अयुतोऽहमयुतो म आत्मा-
ऽयुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रम्
अयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानो
अयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोः
बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥

काण्ड ७, सूक्त ११
(ऋषिः — शुक्रः । देवता — कृत्यादूषणम्)

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ १ ॥
स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ २ ॥
प्रति तमभि चर योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ३ ॥
सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ४ ॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ५ ॥ (१९७)



३ अध्यात्मम्।

अध्यात्मम् १

॥ १ ॥ (अथर्व० ११।८।१-३४) (१-३४) कौरुपथिः । अध्यात्मं, मन्युः । अनुष्टुप्, ३३ पथ्यापङ्क्तिः ।

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् १

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् २

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान्विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्वदेत् ३

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ४

अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ५

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत्ते ज्येष्ठमुपासत ६

येत आसीद्भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद्विदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ७

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताऽजायत ८

इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताऽजायत ९

ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते १०

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाऽभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ११

कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याऽभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आऽभरत् १२

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाऽविशन् १३

ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः १४

शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही १५

यत् तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाऽभरत् १६

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद्वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया साऽस्मिन् वर्णमाऽभरत् १७

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाऽविशन् १८ (२१)

स्वप्नो वै तन्द्रीनिर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् १९
स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् २०
भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् २१
निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाऽश्रद्धा चानु प्राविशन् २२
विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः २३
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् २४
आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः २५
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते २६
आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् २७
आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् २८
अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषमाऽविशन् २९
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ३०
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ३१
तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ३२
प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अद एकेन गच्छत्यद
एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ३३
अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ३४

काण्ड १३, सूक्त १
(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — अध्यात्मम् ।)

उदेहि वाजिन्यो अप्स्व१न्तर्
इदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान
स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥ १ ॥
उद्वाज आ गन्यो अप्स्व१न्तर्
विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाः
चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥ २ ॥
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातरः
इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत्सुदानवस्
त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥ ३ ॥
रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह
गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन्षडुर्वीर्
गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥ ४ ॥
आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद्
व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् ।
तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः
कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥ ५ ॥
रोहितो द्यावापृथिवी जजान
तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादः
अदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥ ६ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत्
तेन स्वः स्तभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि
तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥ ७ ॥

वि रोहितो अमृशद्विश्वरूपं
समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना
सं वो राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥ ८ ॥

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो
याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो
विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥ ९ ॥

यास्ते विशस्तपसः संबभूवुः
र्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन
संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥ १० ॥

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद्
विश्वा रूपाणि जनयन्युवा कविः ।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति
तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ११ ॥

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा
घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत्त्वा
जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥१२॥

रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च
रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः
स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥ १३ ॥

रोहितो यज्ञं व्यदधाद्विश्वकर्मणे
तस्मात्तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥

आ त्वा रुरोह बृहत्युत पङ्क्तिर्
आ ककुब्वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार
आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥ १५ ॥

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या
दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान्व्यानशे ॥१६॥

वाचस्पते पृथिवी नः स्योना
स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु
तं त्वा परमेष्ठिन्पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु॥१७॥

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ
वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु
तं त्वा परमेष्ठिन्परि रोहित
आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥

वाचस्पते सौमनसं मनश्च
गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु
तं त्वा परमेष्ठिन्पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि॥१९॥

परि त्वा धात्सविता देवो अग्निर्
वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं
राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २० ॥

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित ।
शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥ (५८०)

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य
सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान्विश्वरूपाञ्जयेम
तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥ २२ ॥

इदं सदो रोहिणी रोहितस्य
असौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति
तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः
सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो
दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥ २४ ॥

यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः
पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च
तस्माद्देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥ २५ ॥

रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् ।
सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥ २६ ॥

वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं
देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्तु
अग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥ २७ ॥

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान्हन्तु ये मम २८

हन्त्वेनान्प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान्प्र दहामसि ॥२९॥

अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान्मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥३०॥

अग्ने सपत्नानधरान्पादय
अस्मद्व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे
पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनां
आ रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं
ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह
राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह
रोहितेन तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥ ३४ ॥

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो
राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥

उत्त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्ति
अध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ॥ ३६ ॥

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते
वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७ ॥

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च
यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थे
अहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥३९॥
देवो देवान्मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥
अवः परेण पर एनावरेण
पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्
क्व स्वित्सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥ ४१ ॥
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ ४२ ॥
आरोहन्द्यामममृतः प्राव मे वचः ।
उत्त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्ति
अध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥
वेद तत्ते अमर्त्य यत्त आक्रमणं दिवि ।
यत्ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥
सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥४५॥
उर्वीरासन्परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥४६॥
हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान्कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४७ ॥
स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।
तस्माद्घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद्यज्ञोऽजायत ॥ ४८ ॥
ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४९ ॥
सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५० ॥
यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५१ ॥
वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वम्
आत्मन्वद्वर्षेणाज्येन रोहितः ॥ ५२ ॥
वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान्पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पत ॥ ५३ ॥
गीर्भिरूर्ध्वान्कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद्भूतं यच्च भाव्यम् ॥५४॥
स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत्किं चेदं विरोचते
रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥ ५५ ॥
यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५६
यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५७
यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।
दुष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे॥५८॥
मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥
यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ।
तमाहुतमशीमहि ॥ ६० ॥

काण्ड १३, सूक्त २

(ऋषिः – ब्रह्मा । देवता – अध्यात्मं, रोहितादित्यदैवत्यम् ।)

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥ १ ॥
दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा
सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां
यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ॥ २ ॥(२१३)

यत्प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं
नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।
तदादित्य महि तत्ते महि श्रवो
यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥ ३ ॥
विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं
वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
स्रुताद्यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय
तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४ ॥
मा त्वा दभन्परियान्तमाजिं
स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीम्
अहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५ ॥
स्वस्ति तें सूर्य चरसे रथाय
येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः
शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ६ ॥
सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं
सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः
शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ७ ॥
सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे
हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्तात्
विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥ ८ ॥
उत्केतुना बृहता देव आगन्
अपावृक्तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यत्
अदितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥
उद्यन्रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि
सर्वांल्लोकान्परिभूर्भ्राजमानः ॥ १० ॥
पूर्वापरं चरतो माययैतौ
शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे
हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥
दिवि त्वात्त्रिरधारयत्सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन्विश्वा भूतावचाकशत् ॥१२॥
उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव ।
नन्वेतदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥१३॥
यत्समुद्रमनु श्रितं तत्सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान्पूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४ ॥
तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥ १५ ॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ १७ ॥
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १८ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचन ॥ १९ ॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ २० ॥
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः ।
पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२ ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २३ ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २४ ॥
रोहितो दिवमारुहत्तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः
स देवानामधिपतिर्बभूव ॥ २५ ॥
यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखः
यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्
द्यावापृथिवी जनयन्देव एकः ॥ २६ ॥
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे
द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे
त एकपदस्तन्वं समासते ॥ २७ ॥
अतन्द्रो यास्यन्हरितो यदास्थाद्
द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि
विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥ २८ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि॥२९
रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग
पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्वन्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ
देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥ ३० ॥
अर्वाङ् परस्तात्प्रयतो व्यध्व
आशुर्विपश्चित्पतयन्पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन्
प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥ ३१ ॥

चित्रश्चिकित्वान्महिषः सुपर्ण
आरोचयन्रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने
प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥ ३२ ॥
तिग्मो विभ्राजन्तन्वं शिशानो
ऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान्पक्षी महिषो वयोधा
विश्वा आस्थात्प्रदिशः कल्पमानः ॥ ३३ ॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं
ज्योतिष्मान्प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि
विश्वातारीद्दुरितानि शुक्रः ॥ ३४ ॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३५ ॥
उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं
मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुर्
अजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥ ३६ ॥
दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णम्
अदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घम्
आयुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ ३७ ॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ
हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य
संपश्यन्याति भुवनानि विश्वा ॥ ३८ ॥ (३०९)

रोहि॑तः का॒लो अ॑भव॒द्रोहि॑तो॒ऽग्रे प्र॒जाप॑तिः ।
रोहि॑तो य॒ज्ञानां॒ मुखं॒ रोहि॑तः॒ स्व१॒॑राभ॑रत् ॥३९॥
रोहि॑तो लो॒को अ॑भव॒द्रोहि॑तो॒ऽत्य॑तप॒द्दिव॑म् ।
रोहि॑तो र॒श्मिभि॒र्भूमिं॑ समु॒द्रमनु॒ सं च॑रत् ॥४०॥
सर्वा॒ दिशः॒ सम॑चर॒द्रोहि॑तो॒ऽधिप॑तिर्दि॒वः ।
दिवं॑ समु॒द्रमा॒द्भूमिं॒ सर्वं॑ भू॒तं वि र॑क्षति ॥४१॥
आ॒रोह॑ञ्छु॒क्रो बृ॑ह॒तीरत॑न्द्रो॒
द्वे रू॒पे कृ॑णु॒ते रोच॑मानः ।
चि॒त्रश्चि॑कि॒त्वान्म॑हि॒षो वात॒
आया॒ याव॑तो लो॒काना॒भि यद्वि॒भाति॑ ॥ ४२ ॥
अ॒भ्य१॒॑न्यदे॑ति॒ पर्य॒न्यद॑स्यते
अहो॒रा॒त्राभ्यां॑ महि॒षः कल्प॑मानः ।
सूर्यं॑ व॒यं रज॑सि क्षि॒यन्तं॑
गातु॒विदं॑ हवामहे॒ नाध॑मानाः ॥ ४३ ॥
पृ॒थि॒वी॒प्रो म॑हि॒षो नाध॑मानस्य गा॒तुर्
अद॑ब्धचक्षुः॒ परि॒ विश्वं॑ ब॒भूव॑ ।
विश्वं॑ सं॒पश्य॑न्त्सुवि॒दत्रो॒ यज॑त्र
इ॒दं शृ॑णोतु॒ यद॒हं ब्रवी॑मि ॥ ४४ ॥
पर्य॑स्य महि॒मा पृ॑थि॒वीं स॑मु॒द्रं
ज्योति॑षा वि॒भ्राज॒न्परि॒ द्याम॒न्तरि॑क्षम् ।
सर्वं॑ सं॒पश्य॑न्त्सुवि॒दत्रो॒ यज॑त्र
इ॒दं शृ॑णोतु॒ यद॒हं ब्रवी॑मि ॥ ४५ ॥
अबो॑ध्य॒ग्निः स॒मिधा॒ जना॑नां॒
प्रति॑ धे॒नुमि॑वाय॒तीमु॒षास॑म् ।
य॒ह्वा इ॑व॒ प्र व॒यामु॒ज्जिहा॑नाः
प्र भा॒नवः॑ सिस्रते॒ नाक॒मच्छ॑ ॥ ४६ ॥

कांड १३, सूक्त ३

(ऋषिः– ब्रह्मा । देवता– अध्यात्मम्, रोहितादित्यदैवतम् ।)

य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी ज॒जान॒
यो द्रा॒पिं कृ॒त्वा भुव॑नानि॒ वस्ते॑ ।
यस्मि॑न्क्षि॒यन्ति॑ प्र॒दिशः॒ षडु॒र्वीर्
याः प॑त॒ङ्गो अनु॑ वि॒चाक॑शीति ।
तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॒
य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ ।
उद्वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि
ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥ १ ॥
यस्मा॒द्वाता॑ ऋतु॒था पव॑न्ते
यस्मा॑त्समु॒द्रा अधि॑ वि॒क्षर॑न्ति ।
तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॰ ॥ २ ॥
यो मा॒रय॑ति प्रा॒णय॑ति॒ यस्मा॑त्
प्रा॒णन्ति॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॰ ॥ ३ ॥
यः प्रा॒णेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी त॒र्पय॑ति
अ॒पा॒नेन॑ समु॒द्रस्य॑ ज॒ठरं॒ यः पिप॑र्ति ।
तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॰ ॥ ४ ॥
यस्मि॑न्वि॒राट् प॑रमे॒ष्ठी प्र॒जाप॑तिः
अ॒ग्निर्वै॑श्वान॒रः स॒ह प॒ङ्क्त्या श्रि॒तः
यः पर॑स्य प्रा॒णं प॑रम॒स्य तेज॑ आद॒दे ।
तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॰ ॥ ५ ॥
यस्मि॒न्षडु॒र्वीः पञ्च॒ दिशो॒ अधि॑श्रि॒ताः
चत॑स्र॒ आपो॑ य॒ज्ञस्य॒ त्रयो॒ऽक्षराः॑ ।
यो अ॒न्तरा॒ रोद॑सी क्रु॒द्धश्चक्षु॒षैक्ष॑त ।
तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॰ ॥ ६ ॥
यो अ॑न्ना॒दो अन्न॑पतिर्ब॒भूव॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑रु॒त यः ।
भू॒तो भ॑वि॒ष्यद् भुव॑नस्य॒ यस्पति॑ः ।
तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॰ ॥ ७ ॥
अ॒हो॒रा॒त्रैर्विमि॑तं त्रिं॒शद॑ङ्गं
त्र॒यो॒द॒शं मासं॒ यो नि॒र्मिमी॑ते ।
तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॰ ॥ ८ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णाः
अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ ९ ॥
यत्ते चन्द्रं कश्यप रोचनावत्
यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम्
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १० ॥
बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद्
रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ।
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम्
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ ११ ॥
बृहदन्यतः पक्ष आसीद्रथन्तरं
अन्यतः सबले सध्रीची ।
यद्रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १२ ॥
स वरुणः सायमग्निर्भवति
स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति
स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १३ ॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ
हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य
संपश्यन्याति भुवनानि विश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १४ ॥
अयं स देवो अप्स्व१न्तः
सहस्रमूलः पुरुशाको अत्त्रिः ।
य इदं विश्वं भुवनं जजान ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १५ ॥
शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदः
देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम् ।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्ति
अर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १६ ॥
येनादित्यान्हरितः संवहन्ति
येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः ।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १७ ॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रं
एको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १८ ॥
अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः
पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः
सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १९ ॥
सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा
अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २० ॥
निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रम्
त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः ।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं
त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २१ ॥
वि य और्णोत्पृथिवीं जायमान
आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २२ ॥ (३८९)

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितः
अर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि ।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो
यद्रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २३ ॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्वे
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २४ ॥
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे
द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे
संपश्यन्पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २५ ॥
कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥२६॥

कांड १३, सूक्त ४
(ऋषि.- ब्रह्मा । देवता- अध्यात्मम्, रोहितादित्यदेवत्यम् ।)

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥१॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥
स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।
रश्मिभिः० ॥ ३ ॥
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।
रश्मिभिः० ॥ ४ ॥
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।
रश्मिभिः० ॥ ५ ॥
तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।
रश्मिभिः० ॥ ६ ॥
पश्चात्प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।
रश्मिभिः० ॥ ७ ॥
तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥८॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥
तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥१०॥
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥११॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव॥१२
एते अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥
कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च
ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १५ ॥
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।
य एतं० ॥ १६ ॥
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।
य एतं० ॥ १७ ॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।
य एतं० ॥ १८ ॥
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
य एतं० ॥ १९ ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव।
य एतं० ॥ २० ॥
सर्वे अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति। य एतं०॥२१
ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च
यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं
चान्नं चान्नाद्यं च । य एतं० ॥ २२ ॥
भूतं च भव्यं च श्रद्धा च
रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २४ ॥
स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं स रक्षः ॥२५॥

स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये
नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥ २६ ॥
तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥ २७ ॥
तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥२८॥
स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥ २९ ॥
स वै रात्र्या अजायत तस्माद्रात्रिरजायत ॥३०॥
स वा अन्तरिक्षादजायत
तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥ ३१ ॥
स वै वायोरजायत तस्माद्वायुरजायत ॥ ३२ ॥
स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥३३॥
स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद्दिशोऽजायन्त ३४
स वै भूमेरजायत तस्माद्भूमिरजायत ॥३५॥
स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥३६॥
स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥३७॥
स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ३८
स वै यज्ञादजायत तस्माद्यज्ञोऽजायत ॥३९॥
स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥४०॥
स स्तनयति स वि द्योतते
स उ अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥४२॥
यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि
भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥ ४३ ॥
तावांस्ते मघवन्महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥४४॥
उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥४५॥
भूयानिन्द्रो नमुराद्भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥४६
भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि
विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ४७ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥४८॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥४९॥
अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५० ॥
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे
वयम् । नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५१ ॥
उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५२ ॥
प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५३ ॥
भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुः
आयद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५४ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥५५॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५६॥

कांड १५, सूक्त १

(ऋषि. — अथर्वा । देवता – अध्यात्मं, व्रात्य ।)

(१)

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् १
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत्तत्प्राजनयत् ॥२
तदेकमभवत्तल्ललाममभवत्तन्महदभवत्
तज्ज्येष्ठमभवत्तद्ब्रह्माभवत्तत्तपः
अभवत्तत्सत्यमभवत्तेन प्राजायत ॥ ३ ॥
सोऽवर्धत स महानभवत्स महादेवोऽभवत् ॥४॥
स देवानामीशां पर्यैत्स ईशानोऽभवत् ॥ ५ ॥
स एकव्रात्योऽभवत्स धनुरादत्त
तदेवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥
नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥
नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति
लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति
ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥

(२)

स उदतिष्ठत्स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥१॥

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितः
अर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि ।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो
यद्रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २३ ॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २४ ॥
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे
द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे
संपश्यन्पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २५ ॥
कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥२६॥

कांड १३, सूक्त ४

(ऋषि:- ब्रह्मा । देवता- अध्यात्मम्, रोहितादित्यदैवत्यम् ।)

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥१॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥
स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।
रश्मिभिः० ॥ ३ ॥
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।
रश्मिभिः० ॥ ४ ॥
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।
रश्मिभिः० ॥ ५ ॥
तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।
रश्मिभिः० ॥ ६ ॥
पश्चात्प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।
रश्मिभिः० ॥ ७ ॥
तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥८॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥
तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥१०॥
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥११॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव॥१२
एते अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥
कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च
ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १५ ॥
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।
य एतं० ॥ १६ ॥
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।
य एतं० ॥ १७ ॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।
य एतं० ॥ १८ ॥
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
य एतं० ॥ १९ ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।
य एतं० ॥ २० ॥
सर्वे अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं०॥२१
ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च
यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं
चान्नं चान्नाद्यं च । य एतं० ॥ २२ ॥
भूतं च भव्यं च श्रद्धा च
रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २४ ॥
स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं१ स रक्षः ॥२५॥

विद्युत्पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो
विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥२५॥
श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम्॥२६
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ
वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिः
गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

(३)

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत्तं देवा अब्रुवन्
व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥
सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥
तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥
तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च
द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥
बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये३ आस्तां
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥
ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥
वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥ ७ ॥
सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥ ८ ॥
तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥
तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्
संकल्पाः प्रहाय्या३ विश्वानि भूतान्युपसदः॥१०
विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो
भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

(४)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥
वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥
वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो
बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥
तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥
ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥
ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद६
तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥
वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥
वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो
वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥९॥
तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥
शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
श्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥
शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः
श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद १२
तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥
हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥
हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो
भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥
तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥ १६ ॥
शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥
शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो
द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च
विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ॥ २ ॥
बृहते च वै स रथन्तराय च
आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च
देवेभ्य आ वृश्चते
य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ ३ ॥
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य च
आदित्यानां च विश्वेषां च
देवानां प्रियं धाम भवति
तस्य प्राच्यां दिशि ॥ ४ ॥
श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो
विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥५॥
भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥६॥
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ
वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं
कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥८॥
स उदतिष्ठत्स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥९॥
तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च
यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥१०॥
यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च
यज्ञाय च यजमानाय च
पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं
विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ ११ ॥
यज्ञायज्ञियस्य च वै स
वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च
यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति
तस्य दक्षिणायां दिशि ॥ १२ ॥

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो
विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१३॥
अमावास्या च पौर्णमासी च
परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा० । कीर्तिश्च० ॥ १४ ॥
स उदतिष्ठत्स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् १५
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च
वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥ १६ ॥
वैरूपाय च स वैराजाय च
अद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञः
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रा॰ मुपवदति ॥१७॥
वैरूपस्य च वै स वैराजस्य च
अपां च वरुणस्य च राज्ञः
प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥१८॥
इरा पुंश्चली हसो मागधो
विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१९॥
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा० । कीर्तिश्च० ॥ २० ॥
स उदतिष्ठत्स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥२१
तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च
सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥ २२ ॥
श्यैताय च वै स नौधसाय च
सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञः
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥२३॥
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च
सप्तर्षीणां च सोमस्य च
राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि २४

विद्युत्पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो
विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥२५॥
श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम्॥२६
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ
वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिः
गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

(३)

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत्तं देवा अब्रुवन्
व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥
सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥
तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥
तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च
द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥
बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये३ आस्तां
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥
ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥
वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥ ७ ॥
सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥ ८ ॥
तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥
तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्
संकल्पाः प्रहाय्या३ विश्वानि भूतान्युपसदः॥१०
विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो
भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

(४)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥
वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥
वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो
बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥
तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥
ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥
ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद६
तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥
वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥
वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो
वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥९॥
तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥
शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
श्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥
शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः
श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद १२
तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥
हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥
हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो
भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥
तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥ १६ ॥
शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्
दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥
शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो
द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

(५)

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद्
भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥
भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥
नास्य पशून्न समानान्हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥
तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशात्
शर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥
शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून्न०॥५
तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात्
पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥
पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति० । नास्य० ॥७॥
तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशात्
उग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ८ ॥
उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति० । नास्य० ॥९॥
तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद्
रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १० ॥
रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति० । नास्य० ॥११॥
तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशात्
महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १२ ॥
महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति० । नास्य० ॥१३
तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानम्
इष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १४ ॥
ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो
अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ १५ ॥
नास्य पशून्न समानान्हिनस्ति य एवं वेद ॥१६

(६)

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥
तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च
वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् ॥ २ ॥
भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च
वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च
वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥
स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥ ४ ॥
तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च
नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥ ५ ॥
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च
सूर्यस्य च चन्द्रस्य च
नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥६
स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥ ७ ॥
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च
ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥ ८ ॥
ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च
ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् ॥ १० ॥
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च
नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥ ११ ॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च
गाथानां च नाराशंसीनां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥
स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥ १३ ॥ (५४१)

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च
यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १४ ॥
आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च
दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च
यजमानस्य च पशूनां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १५ ॥
सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥ १६ ॥
तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च
मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥ १७ ॥
ऋतूनां च वै स आर्तवानां च
लोकानां च लौक्यानां च मासानां च
आर्धमासानां चाहोरात्रयोश्च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥
सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत्
ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥ १९ ॥
तं दितिश्चादितिश्चेडा च
इन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥ २० ॥
दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २१ ॥
स दिशोऽनु व्यचलत्
तं विराडनु व्यचलत्
सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥ २२ ॥
विराजश्च वै स सर्वेषां च
देवानां सर्वासां च देवतानां
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥
स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥ २४ ॥
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च
पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥ २५ ॥
प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च
पितुश्च पितामहस्य च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥

(७)

स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या
अगच्छत्स समुद्रोऽभवत् ॥ १ ॥
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च
पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च
वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥ २ ॥
ऐनमापो गच्छन्त्यैनं श्रद्धा गच्छति
ऐनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥ ३ ॥
तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च
भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥ ४ ॥
ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छति
ऐनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छति
ऐनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥ ५ ॥

(८)

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ १ ॥
स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥
विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

(९)

स विशोऽनु व्यचलत् ॥ १ ॥
तं सभा च समितिश्च सेना च
सुरा चानुव्यचलन् ॥ २ ॥
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

(१०)

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यो
राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥ (५१८)

श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्
तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥२
अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां
ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥ ३ ॥
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशतु
इन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥ ४ ॥
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ५
इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥
अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥
ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥
यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥ ९ ॥
ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान्भवति ॥ १० ॥
य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥

(११)

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद्व्रात्य क्वाऽवात्सीर्
व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु
व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु
व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु
व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥
यदेनमाह व्रात्य क्वाऽवात्सीरिति
पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे ॥ ३ ॥
यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥४
यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति
प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥ ५ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति
प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ६ ॥
ऐनं प्रियं गच्छति
प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति
वशमेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥
ऐनं वशो गच्छति
वशी वशिनां भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति
निकाममेव तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥
ऐनं निकामो गच्छति
निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

(१२)

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्य उद्धृतेष्वग्निषु
अधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद्
व्रात्याति सृज होष्यामीति ॥ २ ॥
स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥३
स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥४॥
प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥५॥
न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥
पर्यस्यास्मिल्लोक आयतनं शिष्यते
य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥
अथ य एवं विदुषा
व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ८ ॥
न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥९॥
आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥
नास्यास्मिल्लोक आयतनं शिष्यते
य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥११

(१३)

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यः
एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ १ ॥
ये पृथिव्यां पुण्या लोकाः
तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ २ ॥

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यः
द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ३ ॥
येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥४
तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यः
तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ५॥
ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥६॥
तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यः
चतुर्थी रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ७ ॥
ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥८
तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यः
अपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥ ९ ॥
य एवापरिमिताः पुण्या लोकाः
तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥
अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रति
अतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ ११ ॥
कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥ १२॥
अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय
इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीति
एनं परि वेविष्यात् ॥ १३ ॥
तस्यामेवास्य तद्देवतायां
हुतं भवति य एवं वेद ॥ १४ ॥

(१४)

स यत्प्राचीं दिशमनु व्यचलत्
मारुतं शर्धो भूत्वानुव्यचलत्
मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥
मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २ ॥
स यद्दक्षिणां दिशमनु व्यचलत्
इन्द्रो भूत्वानुव्यचलद्बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥
बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥
स यत्प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत्
वरुणो राजा भूत्वानुव्यचलद्
अपोऽन्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ ६ ॥
स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत्
सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥ ७ ॥
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥
स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलत्
विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद्विराजमन्नादीं कृत्वा ॥९॥
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १० ॥
स यत्पशूननु व्यचलत्
रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ॥११
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥१२॥
स यत्पितॄननु व्यचलत्
यमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १३ ॥
स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १४ ॥
स यन्मनुष्याननु व्यचलत्
अग्निर्भूत्वानुव्यचलत्स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा १५
स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥
स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलत्
बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद्वषट्कारमन्नादं कृत्वा १७
वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १८ ॥
स यद्देवाननु व्यचलत्
ईशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥१९
मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २० ॥
स यत्प्रजा अनु व्यचलत्
प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत्प्राणमन्नादं कृत्वा ॥२१
प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २२ ॥
स यत्सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत्
परमेष्ठी भूत्वानुव्यचलद्ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥२३॥

ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २४ ॥

(१५)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥
सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राणः
ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः
प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणः
अभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणः
विभूर्नामायं पवमानः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणः
योनिर्नाम ता इमा आपः ॥ ७ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः
प्रियो नाम त इमे पशवः ॥ ८ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणः
अपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥ ९ ॥

(१६)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः
अपानः सा पौर्णमासी ॥ १ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः
अपानः साष्टका ॥ २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः
अपानः सामावास्या ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः
अपानः सा श्रद्धा ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः
अपानः सा दीक्षा ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः
अपानः स यज्ञः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः
अपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥ ७ ॥

(१७)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः
सेयं भूमिः ॥ १ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानः
तदन्तरिक्षम् ॥ २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः
सा द्यौः ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानः
तानि नक्षत्राणि ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानः
त ऋतवः ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानः
त आर्तवाः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः
स संवत्सरः ॥ ७ ॥
तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः
संवत्सरं वा एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥ ८ ॥
तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्ति
अमावास्यां चैव तत्पौर्णमासीं च ॥ ९ ॥
तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वं
इत्याहुतिरेव ॥ १० ॥

(१८)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥
यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यः
यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥ २ ॥
योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निः
योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥ ३ ॥
अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले
संवत्सरः शिरः ॥ ४ ॥
अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो
रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥ ५ ॥



४ परमेश्वरः।

१ भुवनस्य पतिः।

कांड १, सूक्त १

(ऋषिः — मातृनामा । देवता – गंधर्वाप्सरसः।)

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः
एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव
नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥ १ ॥
दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वक्
अवयाता हरसो दैव्यस्य।
मृडाद्गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः
एक एव नमस्यः सुशेवाः ॥ २ ॥
अनवद्याभिः समु जग्म आभिः
अप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत्
समुद्र आसां सदनं म आहुः
यतः सद्य आ च परा च यन्ति ॥ ३ ॥
अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे
ताभ्यो वो देवीर्नम इत्कृणोमि ॥ ४ ॥
याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥५

२ अमृतदाता।

कांड ६, सूक्त १

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– सविता)

दोषो गाय बृहद्गाय द्युमद्धेहि।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥ १ ॥
तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः।
सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् ॥ २ ॥
स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि।
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥ ३ ॥

३ सरस्वान् देवः।

कांड ७, सूक्त ४० (४१)

(ऋषिः– प्रस्कण्वः । देवता– सरस्वान्)

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे
यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टः
तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥ १ ॥
आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं
सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम्।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना
इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥ २ ॥

४ महान् शासकः।

कांड १, सूक्त २०

(ऋषि – अथर्वा । देवता– सोमः, मरुतः ।)

अदारसृद् भवतु देव सोम
अस्मिन्यज्ञे मरुतो मृडता नः।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिः
मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥ १ ॥
यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते।
युवं तं मित्रावरुणावस्मद्यावयतं परि ॥ २ ॥

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥३॥
शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥४॥

५ विश्वस्य एकएव सम्राट् ।

कांड ६, सूक्त ३६
(ऋषि — अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम) । देवता— अग्नि)

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १ ॥
स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत्सृजते वशी ।
यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥ २ ॥
अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

६ सत्यधर्मा प्रजापतिः ।

कांड, ७, सूक्त २४
(ऋषि – अथर्वा । देवता– इंद्र , अग्नि , सविता ।)

यन्न इन्द्रो अखनद्यदग्निः
विश्वे देवा मरुतो यत्स्वर्काः ।
तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा
प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥ १ ॥

७ व्यापकः श्रेष्ठो देवः ।

कांड ७, सूक्त २५ (२६)
(ऋषि — मेधातिथि । देवता– विष्णु , वरुण ।)

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि
यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा ।
यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिः
विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः ॥ १ ॥
यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते
प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिः
विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः ॥ २ ॥

८ विश्वशकटसंचालकः ।

कांड ४, सूक्त ११
(ऋषि - भृग्वंगिरा । देवता – अनड्वान्, इंद्र ।)

अनड्वान्दाधार पृथिवीमुत द्याम्
अनड्वान्दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ।
अनड्वान्दाधार प्रदिशः षडुर्वीः
अनड्वान्विश्वं भुवनमा विवेश ॥ १ ॥
अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे
त्रयां छक्रो वि मिमीते अध्वनः ।
भूतं भविष्यद्भुवना दुहानः
सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥ २ ॥
इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्
घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः ।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद्
यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥ ३ ॥
अनड्वान्दुहे सुकृतस्य लोक
ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् ।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य
यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥
यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो
नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
यो विश्वजिद्विश्वभृद्विश्वकर्मा
घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥ ५ ॥
येन देवाः स्वरारुरुहुर्
हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं
घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥ ६ ॥
इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत ।
सोऽदृंहयत सोऽधारयत ॥ ७ ॥

मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः ।
एतावदस्य प्राचीनं यावान्प्रत्यङ् समाहितः ॥८
यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः ।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः९
पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन् ।
श्रमेणानड्वान्कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः१०
द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद्वा अनडुहो व्रतम् ॥११॥
दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान्विद्मानुपदस्वतः ॥१२

९ सर्व-साक्षी प्रभुः ।

कांड ४, सूक्त १६

(ऋषिः– ब्रह्मा । देवता– वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्)

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥१॥
यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते
राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥ २ ॥
उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ
उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी
उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥ ३ ॥
उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तात्
न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य
सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४ ॥
सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे
यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानां
अक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥ ५ ॥
ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त
त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं
यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥ ६ ॥
शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं
मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा
कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥ ७ ॥
यः समाम्योइ वरुणो यो व्याम्यः
यः संदेश्योइ वरुणो यो विदेश्यः ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥ ८ ॥
तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैर्
असावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥ ९ ॥

१० भुवनेषु ज्येष्ठो देवः ।

कांड ५, सूक्त २

(ऋषि – बृहद्दिवो अथर्वा । देवता– वरुण)

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं
यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून्
अनु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ १ ॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः
शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि
सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥ (७१६)
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि
द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥३॥
शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥४॥

५ विश्वस्य एकएव सम्राट् ।

कांड ६, सूक्त ३६
(ऋषिः— अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः)। देवता— अग्निः)

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १ ॥
स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत्सृजते वशी ।
यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥ २ ॥
अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

६ सत्यधर्मा प्रजापतिः ।

कांड, ७, सूक्त २४
(ऋषिः— अथर्वा । देवता— इंद्र, अग्नि, सविता ।)

यन्न इन्द्रो अखनद्यदग्निः
विश्वे देवा मरुतो यत्स्वर्काः ।
तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा
प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥ १ ॥

७ व्यापकः श्रेष्ठो देवः ।

कांड ७, सूक्त २५ (२६)
(ऋषि — मेधातिथिः। देवता— विष्णुः, वरुणः ।)

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि
यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा ।
या पत्येते अप्रतीता सहोभिः
विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः ॥ १ ॥
यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते
प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिः
विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः ॥ २ ॥

८ विश्वशकटसंचालकः ।

कांड ४, सूक्त ११
(ऋषि - भृग्वंगिराः। देवता.— अनड्वान्, इंद्रः)

अनड्वान्दाधार पृथिवीमुत द्यां
अनड्वान्दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ।
अनड्वान्दाधार प्रदिशः षडुर्वीः
अनड्वान्विश्वं भुवनमा विवेश ॥ १ ॥
अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे
त्रयां छक्रो वि मिमीते अध्वनः ।
भूतं भविष्यद्भुवना दुहानः
सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥ २ ॥
इन्द्रो जातो मनुष्ये॑ष्वन्तर्
घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः ।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद्
यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥ ३ ॥
अनड्वान्दुहे सुकृतस्य लोके
ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् ।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य
यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥
यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञः
नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
यो विश्वजिद्विश्वभृद्विश्वकर्मा
घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥ ५ ॥
येन देवाः स्व१रारुरुहुर्
हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं
घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥ ६ ॥
इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत ।
सोऽदंहयत सोऽधारयत ॥ ७॥ (६९६)

स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिर्
अन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥ ८ ॥
आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्तु
अन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि
युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥ ९ ॥
समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा
वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा ।
ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि
युज्यस्ते सप्तपदः सखासि ॥ १० ॥
देवो देवाय गृणते वयोधा
विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्
अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं
सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥

१२ प्रातःकाले ईश्वर-प्रार्थना ।

कांड ३, सूक्त १६
(ऋषिः- अथर्वा । देवता- बृहस्पतिः, बहुदेवत्यम् ।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥
प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे
वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्
राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥
भग प्रणेतर्भग सत्यराधः
भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैः
भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥
उतेदानीं भगवन्तः स्याम
उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं
देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवः
तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि
स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे
रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासः
वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीताः
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

१३ एकएव उपास्यः ।

कांड ८, सूक्त ९
(ऋषिः- अथर्वा, कश्यपः, सर्वे ऋषयः । देवता- विराट् ।)

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः
कस्माल्लोकात्कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां
तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ १ ॥
यो अक्रन्दयत्सलिलं महित्वा
योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः
स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥ २ ॥

स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा
समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ३ ॥
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं
रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व
मा त्वा दभन्दुरेवासः कशोकाः ॥ ४ ॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु
प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः
सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ५ ॥
नि तद्दधिषेऽवरे परे च
यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुं
अत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ६ ॥
स्तुष्व वर्ष्मन्पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणं
इनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः
प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ ७ ॥
इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवद्
इन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा
तुरश्चिद्विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ८ ॥
एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वा
अवोचत्स्वां तन्व१मिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे
हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥ ९ ॥

११ श्रेष्ठो देवः।

काण्ड ५, सूक्त ११
(ऋषि- अथर्वा । देवता- वरुणः)

कथं महे असुरायाब्रवीरिह
कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः ।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान्
पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥ १ ॥
न कामेन पुनर्मघो भवामि
सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
केन नु त्वमथर्वन्काव्येन
केन जातेनासि जातवेदाः ॥ २ ॥
सत्यमहं गभीरः काव्येन
सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा
व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥ ३ ॥
न त्वदन्यः कवितरो न मेधया
धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ
स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥ ४ ॥
त्वं ह्य१ङ्ग वरुण स्वधावन्
विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यत्
अस्त्येना किं परेणावरममुर ॥ ५ ॥
एकं रजस एना परो अन्यदस्ति
एना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् ।
तत्ते विद्वान्वरुण प्र ब्रवीमि
अधोवचसः पणयो भवन्तु ।
नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥ ६ ॥
त्वं ह्य१ङ्ग वरुण ब्रवीषि
पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणींरभ्ये३तावतो भूत्
मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥ ७ ॥ (७१९)
मा मा वोचन्नराधसं जनासः
पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि ।

स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिर्
अन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥ ८ ॥
आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्तु
अन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि
युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥ ९ ॥
समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा
वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा।
ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि
युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥ १० ॥
देवो देवाय गृणते वयोधा
विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्
अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं
सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥

१२ प्रातःकाले ईश्वर-प्रार्थना।

कांड ३, सूक्त १६
(ऋषिः- अथर्वा। देवता- बृहस्पतिः, बहुदैवत्यम्।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥
प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे
वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्
राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥
भग प्रणेतर्भग सत्यराधः
भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैः
भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥
उतेदानीं भगवन्तः स्याम
उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं
देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवः
तेना वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि
स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे
रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासः
वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीताः
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

१३ एकएव उपास्यः।

कांड ८, सूक्त ९
(ऋषिः- अथर्वा, कश्यपः, सर्वे ऋषयः। देवता- विराट्।)

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः
कस्माल्लोकात्कतमस्याः पृथिव्याः।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां
तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ १ ॥
यो अक्रन्दयत्सलिलं महित्वा
योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः।
वत्सः कामदुघो विराजः
स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥ २ ॥

यानि त्रीणि बृहन्ति येषां
चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मैनद्विद्यात्तपसा विपश्चिद्
यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥ ३ ॥

बृहतः परि सामानि षष्ठात्पञ्चाधि निर्मिता।
बृहद्बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥४॥

बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥५

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौः
यावद्रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमाः
उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥ ६ ॥

षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे
त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां
नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥ ७ ॥

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्ते
उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति
सा विराडृषयः परमे व्योमन् ॥ ८ ॥

अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां
विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं
पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥ ९ ॥

को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद
क ऋतून्क उ कल्पमस्याः ।
क्रमान्को अस्याः कतिधा विदुग्धान्
को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥ १० ॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छद्
आस्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तः
वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥ ११ ॥

छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने
समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती
केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ १२ ॥

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुः
त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका
राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ १३ ॥

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद्
यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं
बृहदर्की यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥ १४ ॥

पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा
गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्ताः
ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥ १५ ॥

षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य
षडु सामानि षडहं वहन्ति ।
षड्योगं सीरमनु सामसाम
षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः ॥ १६ ॥

षडाहुः शीतान्षडु मास उष्णान्
ऋतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः
सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥ १७ ॥ (७७४)

सप्त होमाः समिधो ह सप्त
मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन्
ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥ १८ ॥
सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराणि
अन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि ।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु
तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥ १९ ॥
कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप
कथं त्रिष्टुप्पञ्चदशेन कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप्कथमेकविंशः ॥२०
अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्य
अष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये ।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रा
अष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥ २१ ॥
इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं
युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा ।
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः
स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥ २२ ॥
अष्टेन्द्रस्य षड्यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्याइनोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे॥२३
केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिः
वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा
देवान् मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥
को नु गौः क एक ऋषिः
किमु धाम का आशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः ॥२५॥
एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते ॥ २६ ॥

१४ विश्वसंचालकः ।

कांड ६, सूक्त ३५

(ऋषिः– कौशिकः । देवता– वैश्वानरः)

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ १ ॥
वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप ।
अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥ २ ॥
वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत् ।
ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत् ॥ ३ ॥

१५ सर्वव्यापक ईश्वरः ।

कांड ७ सूक्त २६

(ऋषिः– मेधातिथिः । देवता– विष्णुः ।)

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि
यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्याणि
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः
परावत आ जगम्यात्परस्याः ॥ २ ॥
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु
आधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥ ३ ॥
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा ।
समूढमस्य पांसुरे ॥ ४ ॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
इतो धर्माणि धारयन् ॥ ५ ॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ६ ॥ (७७२)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ७ ॥
दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या
महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः
आप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ ८ ॥

१६ व्यापको देवः ।

कांड ७, सूक्त ८७

(ऋषिः— अथर्वा । देवता— रुद्रः ।)

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तः
य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ १ ॥

१७ दिव्यः सुपर्णः ।

कांड ९, सूक्त १०

(ऋषि — ब्रह्मा । देवता— गौः, विराट्, अध्यात्मम् ।)

यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं
त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं
य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ १ ॥
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कं
अर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदा
अक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २ ॥
जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायद्
रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुः
ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ ३ ॥
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां
सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नः
अभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥ ४ ॥
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां
वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं
सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ५ ॥
गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं
मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना
मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ६ ॥
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता
मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान्
विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ ७ ॥
अनच्छये तुरगातु जीवं
एजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिर्
अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ८ ॥
विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे
युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वा
अद्या ममार स ह्यः समान ॥ ९ ॥
य ईं चकार न सो अस्य वेद
य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तः
बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥ १० ॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानं
आ च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानः
आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ११ ॥ (७८९)

द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र
बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तः
अत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ १२ ॥
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः
पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं
पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ १३ ॥
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः
ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ १४ ॥
न वि जानामि यदिवेदमस्मि
निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्य
आदिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ १५ ॥
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः
अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता
न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ १६ ॥
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः
विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः
परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ १७ ॥
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्ते अमी समासते ॥ १८ ॥
ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तः
अर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत् ।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे
तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १९ ॥
सूयवसाद्भगवती हि भूया
अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं
पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ २० ॥
गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षति
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिः
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ २१ ॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा
अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य
आदिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ २२ ॥
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां
कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्याः
ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति ॥ २३ ॥
विराड् वाग् विराट् पृथिवी
विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव
तस्य भूतं भव्यं वशे
स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥
शकमयं धूममारादपश्यं
विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीराः
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥ (८००)
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते
संवत्सरे वपत एक एषाम् ।

विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिः
ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥
चत्वारि वाक्परिमिता पदानि
तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ २७ ॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः
अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २८ ॥

१८ द्वौ सयुजौ सुपर्णौ।

कांड ९, सूक्त ९

(ऋषि – ब्रह्मा। देवता – वाम, अध्यात्म, आदित्य.)

अस्य वामस्य पलितस्य होतुः
तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्य
अत्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रं
एको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः
सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त
यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥
को ददर्श प्रथमं जायमानं
अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्
को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥



इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेद
अस्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य
वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ५ ॥
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्
देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्
वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ६ ॥
अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र
कवीन्पृच्छामि विद्मनो न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांसि
अजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ७ ॥
माता पितरमृत आ बभाज
धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा
नमस्वन्त [illegible]कमीयुः ॥ ८ ॥
युक्ता मात[illegible]
अतिष्ठद्गर्भो[illegible]
अमीमेद्वत्सो[illegible]
विश्वरूप्यं [illegible]
मातु[illegible]

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं
दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे
सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥
द्वादशारं नहि तज्जराय
वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र
सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ १३ ॥
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत
उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं
यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः
पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत
यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥ १५ ॥
साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं
षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश
स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १६ ॥
अवः परेण पर एनावरेण
पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्
क्व स्वित्सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥ १७ ॥
अवः परेण पितरं यो अस्य वेद
अवः परेण पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्
देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुः
ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि
धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति
अनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥
यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा
निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे
तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २१ ॥
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षं
अनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः
स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २२ ॥

१९ सर्वाधारः ।

कांड, १०, सूक्त ७

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- स्कम्भ आत्मा वा ।)

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति
कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति
कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥
कस्मादङ्गाद्दीप्यते अग्निरस्य
कस्मादङ्गात्पवते मातरिश्वा ।
कस्मादङ्गाद्वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा
मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥ २ ॥
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥ ३ ॥ (८०८)

क्व॑ प्रेप्सन्दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः
क्व॑ प्रेप्सन्पवते मातरिश्वा।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ४ ॥
क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः
संवत्सरेण सह संविदानाः।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ५ ॥
क्व॑ प्रेप्सन्ती युवती विरूपे
अहोरात्रे द्रवतः संविदाने।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ६ ॥
यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिः
लोकान्त्सर्वाँ अधारयत्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ७ ॥
यत्परममवमं यच्च मध्यमं
प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र
यन्न प्राविशत्कियत्तद्बभूव ॥ ८ ॥
कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं
कियद्भविष्यदन्वाशयेऽस्य।
एकं यदङ्गमकृणोत्सहस्रधा
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥ ९ ॥
यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः।
असच्च यत्र सच्चान्तः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १० ॥
यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम्।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ११ ॥
यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिताः।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १२ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १३ ॥
यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १४ ॥
यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते।
समुद्रो यस्य नाड्य१ः पुरुषेऽधि समाहिताः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १५ ॥
यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्य१स्तिष्ठन्ति प्रथमाः।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १६ ॥
ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ॥
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥१७
यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्।
अङ्गानि यस्य यातवः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १८ ॥
यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत।
विराजमूधो यस्याहुः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १९ ॥
यस्मादृचो अपातक्षन्यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २० ॥
असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥२१

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २२ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥२३॥
यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्॥२४
बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥२५॥
यत्र स्कम्भः प्रजनयन्पुराणं व्यवर्तयत् ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥ २६॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।
तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥२७॥
हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा २८
स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम्।
स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् २९
इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ३०
नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात्पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय
यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम् ॥ ३१ ॥
यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३२
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः३३
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीः
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥
स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे
स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः
स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ॥ ३५ ॥
यः श्रमात्तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३६
कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ३७
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये
तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा
वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥ ३८ ॥
यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ३९ ॥
अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।
सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि
यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥ ४० ॥
यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।
स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥ ४१ ॥
तन्त्रमेके युवती विरूपे
अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या
नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥ ४२ ॥
तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव
न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
पुमानेनद्वयत्युद्गृणत्ति
पुमानेनद्वि जभाराधि नाके ॥ ४३ ॥
इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं
सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥ ४४ ॥ (८३९)

२० ईश्वरस्य प्रचंडं सामर्थ्यम्।

कांड ६, सूक्त ३३
(ऋषिः — जाटिकायनः। देवता – इन्द्रः।)

यस्येदमा रजो युजंस्तुजे जना वनं स्वः।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ १ ॥
नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः।
पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥२
स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशङ्गसंदृशम्।
इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥ ३ ॥

२१ परमेश्वरस्य महिमा।

कांड ६, सूक्त ६१
(ऋषिः– अथर्वा। देवता– रुद्रः।)

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां
मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम्।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा
मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥ १ ॥
अहं विवेच पृथिवीमुत द्यां
अहमृतूंरजनयं सप्त साकम्।
अहं सत्यमनृतं यद्वदामि
अहं दैवीं परि वाचं विशश्च ॥ २ ॥
अहं जजान पृथिवीमुत द्यां
अहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून्।
अहं सत्यमनृतं यद्वदामि
यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥ ३ ॥

२२ तेजस्वी ईश्वरः।

कांड ६, सूक्त ३४
(ऋषिः– चातनः। देवता– अग्निः।)

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम्।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ १ ॥
यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ २ ॥
यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ ३ ॥
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ ४ ॥
यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ ५ ॥

२३ विजयी इंद्रः।

कांड ६, सूक्त २
(ऋषिः– अथर्वा। देवता– सोमः, वनस्पतिः।)

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत।
स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥ १ ॥
आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः।
विरप्शिन्वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥ २ ॥
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥ ३ ॥

२४ विजयी देवः।

कांड ७, सूक्त ४४
(ऋषिः– प्रस्कण्वः। देवता– इन्द्र, विष्णुः।)

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे
न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ॥ १ ॥
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां
त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ २ ॥

२५ ईश्वरस्य ध्यानं।

कांड ७, सूक्त ७१
(ऋषिः– अथर्वा। देवता– अग्निः।)

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥ १ ॥

२६ रक्षक-ईश्वरः ।

कांड ७, सूक्त ६३

(ऋषिः- मरीचिः काश्यपः । देवता- जातवेदाः)

पृतनाजितं सहमानमग्निम्
उक्थैर्हवामहे परमात्सधस्थात् ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा
क्षामद्देवोऽति दुरितान्यग्निः ॥ १ ॥

२७ नृचक्षः श्येनः ।

कांड ७, सूक्त ४१

(ऋषिः- प्रस्कण्वः । देवता- श्येनः ।)

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द
श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन्विश्वान्यवरा रजांसि
इन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥ १ ॥
श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः
सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद्वसु यत्पराभृतं
अस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥ २ ॥

२८ एकः पतिः ।

कांड ७, सूक्त २१

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- आत्मा)

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव
एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत्
तं वर्तनिरनु वावृत एकमित्पुरु ॥ १ ॥

२९ सर्वस्य उत्पादकः ।

कांड ७, सूक्त १४

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- सविता)

अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम् ।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ॥१॥
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि ।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात्स्वः ॥२॥
सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे
वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि
दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥ ३ ॥
दमूना देवः सविता वरेण्यः
दधद्रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि ।
पिबात्सोमं ममददेनमिष्टे
परिज्मा चित्क्रमते अस्य धर्मणि ॥ ४ ॥

३० सविता देवः ।

कांड ७, सूक्त १५

(ऋषिः- भृगुः । देवता- सविता)

तां सवितः सत्यसवां सुचित्रा
आहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनां
सहस्रधारां महिषो भगाय ॥ १ ॥

३१ कवीनां ज्योतिः ।

कांड ७, सूक्त २२

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- मंत्रोक्ताः, १ ब्रध्नः ।)

अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां
मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥ १ ॥
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन् ।
अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः २

३२ स्वस्तिदा पोषकः ।

कांड ७, सूक्त ९

(ऋषिः- उपरिबभ्रवः । देवता- पूषा ।)

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा
प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे
आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ १ ॥ (८९८)

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः
सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणि सर्ववीरः
अप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥ २ ॥
पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ३ ॥
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥ ४ ॥

३३ परमं धाम।

काण्ड १, सूक्त १३

(ऋषिः- भृग्वङ्गिरा । देवता- विद्युत्।)

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥१॥
नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तपः समूहसि ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२॥
प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं
नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः ।
विद्म ते धाम परमं गुहा यत्
समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥ ३ ॥
यां त्वा देवा असृजन्त विश्व
इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना
तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥ ४ ॥

३४ विश्वंभरः।

कांड २, सूक्त १६

(ऋषि - ब्रह्मा । देवता- प्राण , अपान , आयु ।)

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥ १ ॥
द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥ २ ॥
सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥ ३ ॥
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥ ४ ॥
विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥ ५ ॥

३५ कस्मै देवाय हविषा विधेम?

कांड ४, सूक्त २

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वा
एको राजा जगतो बभूव ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥
यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने
भियसाने रोदसी अह्वयेथाम् ।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥
यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही
यस्याद उर्व१न्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥
यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा
समुद्रे यस्य रसामिदाहुः ।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥
आपो अग्रे विश्वमावन्
गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवीष्वधि देव आसीत्
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥ (११६)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥
आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् ।
तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

३६ ब्रह्मा ।

काण्ड १०, सूक्त २
(ऋषिः- नारायणः । देवता- पार्ष्णिसूक्तम्, पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम् ।)

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य
केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि
केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥
कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्
अष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य ।
जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्
जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत ॥ २ ॥
चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं
जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् ।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान
याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥ ३ ॥
कति देवाः कतमे त आसन्
य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य ।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ
कति स्कन्धान्कति पृष्टीरचिन्वन् ॥ ४ ॥
को अस्य बाहू समभरद्वीर्यं करवादिति ।
अंसौ को अस्य तद्देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥५
कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि
कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि
चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥
हन्वोर्हि जिह्वामदधात्पुरूचीम्
अधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः
अपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥ ७ ॥
मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं
ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य
दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥
प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः ।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद्वहति पूरुषः ॥९॥
आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥१०॥
को अस्मिन्नापो व्यदधाद्विषूवृतः
पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा
ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥ ११ ॥
को अस्मिन्रूपमदधात्को मह्मानं च नाम च ।
गातुं को अस्मिन्कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे १२
को अस्मिन्प्राणमवयत्को अपानं व्यानमु ।
समानमस्मिन्को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥१३॥
को अस्मिन्यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं
कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ १४ ॥
को अस्मै वासः पर्यदधात्को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत्
को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५ ॥

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद्रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥
को अस्मिन्रेतो न्यदधात्तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत्
को बाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥
केनेमां भूमिमौर्णोत्केन पर्यभवद्दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥१८
केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।
केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन्निहितं मनः॥१९
केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २० ॥
ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥
केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः ।
केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत्क्षत्रमुच्यते ॥ २२ ॥
ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।
ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत्क्षत्रमुच्यते ॥ २३ ॥
केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम्॥२४॥
ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम्॥२५॥
मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः ॥२६
तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत्प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥२७
ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः
सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥२८
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः२९

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०
अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः३१
तस्मिन्हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥३२
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥

३७ दिव्यं महः ।

कांड ६, सूक्त ८०

(ऋषि – अथर्वा । देवता– चन्द्रमा ।)

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥१
ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ २ ॥
अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं
समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥३

३८ स्वर्ज्योतिः ।

कांड ४, सूक्त १४

(ऋषि – भृगु । देवता– आज्यं, अग्निः ।)

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्
सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन्
तेन रोहान्रुरुहुर्मेध्यासः ॥ १ ॥
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान्हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥ २ ॥
पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्
अन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ ३ ॥

स्व१र्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥ ४ ॥
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां
चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम्।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः
स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ५ ॥
अजमनज्मि पयसा घृतेन
दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं
स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ६ ॥
पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिः
दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम्।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि
दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥ ७ ॥
प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेहि
उत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम्।
ऊर्ध्वायां दिश्य१जस्यानूकं धेहि
दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यम्
अन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥ ८ ॥
शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा
सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम्।
स उत्तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं
पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥ ९ ॥

३९ द्रविणोदा जातवेदाः।

कांड, १९, सूक्त ३
(ऋषिः- अथर्वाङ्गिराः। देवता- अग्निः।)

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद्
वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदाः
तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥
यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु
य ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः।
अग्ने सर्वास्तन्व१ः सं रभस्व
ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥ २ ॥
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गः
या ते तनूः पितृष्वाविवेश।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथे
अग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥ ३ ॥
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय
वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम्।
यतो भयमभयं तन्नो अस्तु
अव देवानां यज हेडो अग्ने ॥ ४ ॥

४० जगतः राजा।

कांड १९, सूक्त ५
(ऋषिः - अथर्वाङ्गिराः। देवता - इंद्रः।)

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनां
अधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि
चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ १ ॥

४१ ब्रह्मा।

कांड १९, सूक्त ४३
(ऋषिः - ब्रह्मा। देवता - ब्रह्म, बहवो देवाः।)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे।
अग्नये स्वाहा ॥ १ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान्दधातु मे।
वायवे स्वाहा ॥ २ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे।
सूर्याय स्वाहा ॥ ३ ॥ (१७१)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे ।
चन्द्राय स्वाहा ॥ ४ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे ।
सोमाय स्वाहा ॥ ५ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे ।
इन्द्राय स्वाहा ॥ ६ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु ।
अद्भ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ।
ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८ ॥

४२ आत्मा ।

कांड १९, सूक्त ५१
(ऋषिः – ब्रह्मा । देवता – आत्मा, सविता च ।)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुः
अयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो
मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥

४३ प्रजापतिः ।

कांड १६, सूक्त १
(ऋषि – अथर्वा । देवता – प्रजापति ।)

(१)

अतिसृष्टो अपां वृषभः
अतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥ १ ॥
रुजन्परिरुजन्मृणन्प्रमृणन् ॥ २ ॥
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह
आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥ ३ ॥
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥
तेन तमभ्यतिसृजामः
योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥
योऽप्स्वग्निरति तं सृजामि
म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥ ७ ॥
यो व आपोऽग्निराविवेश
स एष यद्वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥ ९ ॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥ ११ ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः
शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे
मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥ १३ ॥

(२)

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥
मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ २ ॥
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥ ३ ॥
सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ
भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥ ४ ॥
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां
सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥ ५ ॥
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि
नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥ (१६७)

(३)

मूर्धाहं र॒यी॒णां मू॒र्धा स॑मा॒नानां॑ भूयासम् ॥१॥
रु॒जश्च॑ मा वे॒नश्च॒ मा हा॑सिष्टां
मू॒र्धा च॑ मा विध॑र्मा च॒ मा हा॑सिष्टाम् ॥ २ ॥
उ॒र्वश्च॑ मा चम॒सश्च॒ मा हा॑सिष्टां
ध॒र्ता च॑ मा ध॒रुण॑श्च मा हा॑सिष्टाम् ॥ ३ ॥
वि॒मो॒कश्च॑ मा॒र्द्रप॑विश्च मा हा॑सिष्टां
आ॒र्द्रदा॑नुश्च मा मात॒रिश्वा॑ च॒ मा हा॑सिष्टाम् ॥४
बृ॒हस्पति॑र्म आ॒त्मा नृ॒मणा॒ नाम॒ हृद्यः॑ ॥ ५ ॥
अ॒सं॒ताप॑ मे॒ हृद॑यमु॒र्वी गव्यू॑तिः
स॒मु॒द्रो अ॑स्मि॒ विध॑र्मणा ॥ ६ ॥

(४)

नाभि॑र॒हं र॒यी॒णां नाभिः॑ समा॒नानां॑ भूयासम्॥१
स्वा॒सद॑सि सू॒षा अ॒मृतो॒ मर्त्ये॒ष्वा ॥ २ ॥
मा मां॑ प्रा॒णो हा॑सीत्
मो अ॑पा॒नः अ॑व॒हाय॒ परा॑ गात् ॥ ३ ॥
सूर्यो॒ माह्नः॑ पा॒त्व॒ग्निः पृ॑थि॒व्या वा॒युर॒न्तरि॑क्षात्
य॒मो म॑नु॒ष्ये॑भ्यः सर॑स्वती॒ पार्थि॑वेभ्यः ॥४॥
प्राणापा॒नौ मा मां॑ हासिष्टं मा जने॒ प्र मे॑षि॥५
स्व॒स्त्य१॒॑द्योषसो॑ दो॒षस॑श्च
सर्वं॑ आपः॒ सर्व॑गणो अशीय ॥ ६ ॥
शक्व॑री स्थ प॒शवो॒ मोप॑ स्थेषुः
मि॒त्रावरु॑णौ मे प्राणापा॒नाव॒ग्निर्मे॒ दक्षं॑ दधातु ॥७

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑
निर्ऋ॑त्याः पु॒त्रो॑ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ।
अन्त॑को० । तं त्वा॑० ॥ ४ ॥
वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑
अभू॑त्याः पु॒त्रो॑ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ।
अन्त॑को० । तं त्वा॑० ॥ ५ ॥
वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑
निर्भू॑त्याः पु॒त्रो॑ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ।
अन्त॑को० । तं त्वा॑० ॥ ६ ॥
वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑
परा॑भूत्याः पु॒त्रो॑ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ।
अन्त॑को० । तं त्वा॑० ॥ ७ ॥
वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑
दे॒वजा॒मीनां॑ पु॒त्रो॑ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ।
अन्त॑को० । तं त्वा॑० ॥ ८ ॥
अन्त॑कोऽसि मृ॒त्युर॑सि ॥ ९ ॥
तं त्वा॑ स्वप्न॒ तथा॒ सं वि॑द्म
स नः॑ स्वप्न दुः॒ष्वप्न्या॑त्पाहि ॥ १० ॥

जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ॥ ९ ॥
अनागमिष्यतो वरानवित्तेः
संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥ १० ॥
तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु
वध्रिर्यथासद्विथुरो न साधुः ॥ ११ ॥

(७)

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि
निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि
तमसैनं विध्यामि ॥ १ ॥
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥
एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥
योऽस्मान्द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु
यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या
निरन्तरिक्षाद्भजाम ॥ ६ ॥
सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥
इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ८
यददोअदो अभ्यगच्छन्यद्दोषा यत्पूर्वां रात्रिम् ९
यज्जाग्रद्यत्सुप्तो यद्दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥
यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि १२
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

(८)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं
ऋतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं
प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामः
अमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुः
नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१-४॥१॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं० ।
स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ५ ॥ २ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ६ ॥ ३ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ७ ॥ ४ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ८ ॥ ५ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स देवजामीनां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ९ ॥ ६ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १० ॥ ७ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ११ ॥ ८ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स ऋषीणां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १२ ॥ ९ ॥

(१०५१)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १३ ॥ १० ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १४ ॥ ११ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १५ ॥ १२ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १६ ॥ १३ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १७ ॥ १४ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १८ ॥ १५ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १९ ॥ १६ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स ऋतूनां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २० ॥ १७ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स आर्तवानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २१ ॥ १८ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स मासानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २२ ॥ १९ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २३ ॥ २० ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २४ ॥ २१ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २५ ॥ २२ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २६ ॥ २३ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २७ ॥ २४ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २८ ॥ २५ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः ॥ २९ ॥ २६ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ३०-३३ ॥ २७ ॥

(९)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं
अभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥ १ ॥

तदुग्निराह तदु सोम आह
पूषा मा धात्सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥
अगन्म स्वः स्वरगन्म
सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥
वसोर्भूयाय वसुमान्यज्ञो वसु वंशिषीय
वसुमान्भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

४४ प्राणः।

कांड ७, सूक्त ४

(ऋषि – अथर्वा ब्रह्मवर्चसकामः। देवता– वायु।)

एकया च दशभिश्चा सुहुते
द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च
वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ॥ १ ॥

४५ आत्मयज्ञः।

कांड ७, सूक्त ५

(ऋषि – अथर्वा 'ब्रह्मवर्चसकाम'। देवता– आत्मा।)

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १ ॥
यज्ञो बभूव स आ बभूव
स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः।
स देवानामधिपतिर्बभूव
सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ॥ २ ॥
यद्देवा देवान्हविषायजन्तामर्त्यान्मनसामर्त्येन।
मदेम तत्र परमे व्योमन्पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ३
यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्विहव्येनेजिरे ॥ ४ ॥
मुग्धा देवा उत शुनायजन्त
उत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत
प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ ५ ॥

४६ त्रितः धर्ता।

कांड ५, सूक्त १

(ऋषि – बृहद्दिवोऽथर्वा। देवता – वरुणः।)

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आ बभूव
अमृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव
त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥ १ ॥
आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद
ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेश
आ यो वाचमनुदितां चिकेत ॥ २ ॥
यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच
क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः।
अत्रा दधेते अमृतानि नाम
अस्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥ ३ ॥
प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः
सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम्।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे
जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥ ४ ॥
तदू षु ते महत्पृथुज्मन्नमः
कविः काव्येना कृणोमि।
यत्सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षा
अत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥ ५ ॥
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः
तासामिदेकामभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥ ६ ॥ (१०८७)

उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्
असुरात्मा तन्व१स्तत्सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्नं दधाति
ऊर्जया वा यत्सचते हविर्दाः ॥ ७ ॥
उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे
ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये ।
दर्शन्नु ता वरुण यास्ते विष्ठा
आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि ॥ ८ ॥
अर्धमर्धेन पयसा पृणक्षि
अर्धेन शुष्म वर्धसे अमुर ।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं
वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् ।
कविशस्तान्यस्मै वपूंषि
अवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥ ९ ॥

४७ दिव्य-दृष्टिः ।

कांड ४, सूक्त १०

(ऋषिः - मातृनामा । देवता - मातृनामा ।)

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद्भूमिं सर्वं तद्देवि पश्यति ॥ १ ॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः
षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥ २ ॥
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३॥
तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥ ४ ॥
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ५
दर्शय मा यातुधानान्दर्शय यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान्दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥ ६ ॥
कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७
उदग्रभं परिपाणाद्यातुधानं किमीदिनम् ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥८॥
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥९॥

४८ आत्मबलम् ।

कांड, ५, सूक्त ९

(ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - वास्तोष्पति , आत्मा ।)

दिवे स्वाहा ॥ १ ॥
पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥
अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥
दिवे स्वाहा ॥ ५ ॥
पृथिव्यै स्वाहा ॥ ६ ॥
सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो३ः
अन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं
नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥ ७ ॥
उदायुरुद्बलमुत्कृतमुत्कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम्।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ
गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥८॥

४९ आत्मबलम् ।

कांड ५, सूक्त १०

(ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - वास्तोष्पतिः ।)

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशः
अघायुरभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ १ ॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशः
अघायुरभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ २ ॥

तदुग्निराह तदु सोम आह
पूषा मां धात्सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥
अगन्म स्व१ः स्वरिगन्म
सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥
वस्योभूयाय वसुमान्यज्ञो वसु वंशिषीय
वसुमान्भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

४४ प्राणः ।

कांड ७, सूक्त ४

(ऋषि – अथर्वा ब्रह्मवर्चसकामः । देवता – वायुः ।)

एकया च दशभिश्चा सुहुते
द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च
वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ॥ १ ॥

४५ आत्मयज्ञः ।

कांड ७, सूक्त ५

(ऋषि – अथर्वा 'ब्रह्मवर्चसकामः' । देवता – आत्मा ।)

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १ ॥
यज्ञो बभूव स आ बभूव
स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः ।
स देवानामधिपतिर्बभूव
सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ॥ २ ॥
यद्देवा देवान्हविषायजन्तामर्त्यान्मनसामर्त्येन ।
मदेम तत्र परमे व्योमन्पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ३
यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्विहव्येनेजिरे ॥ ४ ॥
मुग्धा देवा उत शुनायजन्त
उत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत
प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ ५ ॥

४६ त्रितः धर्ता ।

कांड ५, सूक्त १

(ऋषि – बृहद्दिवोऽथर्वा । देवता – वरुणः ।)

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आ बभूवा
अमृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव
त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥ १ ॥
आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद
ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेश
आ यो वाचमनुदितां चिकेत ॥ २ ॥
यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच
क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
अत्रा दधेते अमृतानि नाम
अस्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥ ३ ॥
प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः
सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे
जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥ ४ ॥
तदू षु ते महत्पृथुज्मन्नमः
कविः काव्येना कृणोमि ।
यत्सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षाम्
अत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥ ५ ॥
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्
तासामिदेकामभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥ ६ ॥ (१०८७)

जानीत स्मैनं परमे व्योमिन्
देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति
इष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ॥ २ ॥
देवाः पितरः पितरो देवाः ।
यो अस्मि सो अस्मि ॥ ३ ॥
स पचामि स ददामि स यजे
स दुत्तान्मा यूपम् ॥ ४ ॥
नाके राजन्प्रति तिष्ठ तत्रैतत्प्रति तिष्ठतु ।
विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ॥५॥

५३ बद्धस्य मोचनम् ।

कांड ६, सूक्त १११
(ऋषिः– अथर्वा । देवता– अग्निः ।)

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि
अयं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद्भागधेयं
यदानुन्मदितोऽसति ॥ १ ॥
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान्भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥२॥
देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि ।
कृणोमि विद्वान्भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥
पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ॥४॥

५४ अमरत्वस्य प्राप्तिः ।

कांड ७, सूक्त १०६
(ऋषिः– अथर्वा । देवता– जातवेदा वरुणश्च ।)

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न
उपारिम चरणे जातवेदः ।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः
शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥ १ ॥

५५ दैव्यं वचः ।

कांड ७, सूक्त १०५
(ऋषिः – अथर्वा । देवता – मन्त्रोक्ता ।)

अपक्रामन्पौरुषेयाद्वृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥१॥

५६ ऊर्ध्वावस्थानं ।

कांड ७, सूक्त १०२
(ऋषिः– प्रजापतिः । देवता– द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष मृत्युः ।)

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मा हिंसिषुरीश्वराः ॥१॥

५७ ब्रह्मचारी ।

(अथर्व० ११।५।१–२६)

ब्रह्मचारी । [ब्रह्मचर्यम्] । त्रिष्टुप्; १ पुरोऽतिजागता विराड्गर्भा, २ पञ्चपदा बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी; ३ उरोबृहती; ६ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती; ७ विराड्गर्भा; ८ पुरोऽतिजागता विराड् जगती; ९ बृहतीगर्भा; १० भुरिक्; ११, १३ जगती; १२ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा विराडतिजगती; १५ पुरस्ताज्ज्योतिः ; १४, १६–२२ अनुष्टुप्; २३ पुरोबार्हतातिजागतगर्भा; २५ एकावसानार्च्युष्णिक्; २६ मध्येज्योतिरुष्णिग्गर्भा ।

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे
तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च
स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १ ॥
ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः
पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन्
त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥(१११८)
आचार्य उपनयमानो
ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्यां दिशः
अघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥ ३ ॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशः
अघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥ ४ ॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवायां दिशः
अघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥ ५ ॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वायां दिशः
अघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥ ६ ॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्यः
अघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥ ७ ॥
बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम्।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥ ८ ॥

५० पशुपतिः।

काण्ड २, सूक्त ३४
(ऋषिः- अथर्वा। देवता- पशुपतिः।)

य ईशे पशुपतिः पशूनां
चतुष्पदामुत यो द्विपदाम्।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु
रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥ १ ॥
प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो
गातुं धत्त यजमानाय देवाः।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात्
प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥ २ ॥
ये बध्यमानमनु दीध्याना
अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः
विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥ ३ ॥
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा
विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः
प्रजापतिः प्रजया संरराणः ॥ ४ ॥
प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे
प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम्।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः
स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ॥ ५ ॥

५१ धृतव्रतः राजा।

काण्ड ७, सूक्त ८३
(ऋषिः- शुनःशेपः। देवता- वरुणः।)

अप्सु ते राजन्वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥ १ ॥
धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम
ततो वरुण मुञ्च नः ॥ २ ॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्
अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अधा वयमादित्य व्रते तव
अनागसो अदितये स्याम ॥ ३ ॥
प्रास्मत्पाशान्वरुण मुञ्च सर्वान्
य उत्तमा अधमा वारुणा ये।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मद्
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ४ ॥

५२ सुमना भव।

काण्ड ६, सूक्त १२३
(ऋषिः- भृगु। देवता- विश्वेदेवाः)

एतं सधस्थाः परि वो ददामि
यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति
तं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ १ ॥(२२१५)

आनीत स्मैनं परमे व्योमन्
देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति
इष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ॥ २ ॥
देवाः पितरः पितरो देवाः ।
यो अस्मि सो अस्मि ॥ ३ ॥
स पचामि स ददामि स यजे
स दुत्तान्मा यूषम् ॥ ४ ॥
नाके राजन्प्रति तिष्ठ तत्रैतत्प्रति तिष्ठतु ।
विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ॥५॥

५३ बद्धस्य मोचनम् ।

कांड ६, सूक्त १११

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– अग्निः ।)

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि
अयं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद्भागधेयं
यदानुन्मदितोऽसति ॥ १ ॥
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान्भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥२॥
देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि ।
कृणोमि विद्वान्भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥
पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ॥४॥

५४ अमरत्वस्य प्राप्तिः ।

कांड ७, सूक्त १०६

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– जातवेदा वरुणश्च ।)

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न
उपारिम चरणे जातवेदः ।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः
शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥ १ ॥

५५ दैव्यं वचः ।

कांड ७, सूक्त १०५

(ऋषिः – अथर्वा । देवता – मन्त्रोक्ता ।)

अपक्रामन्पौरुषेयाद्वृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥१॥

५६ ऊर्ध्वावस्थानं ।

कांड ७, सूक्त १०२

(ऋषिः– प्रजापतिः । देवता– द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षं मृत्युः ।)

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मा हिंसिषुरीश्वराः ॥१॥

५७ ब्रह्मचारी ।

(अथर्व० ११।५।१–२६)

ब्रह्मचारी । [ब्रह्मचर्यम्] । त्रिष्टुप्; १ पुरोऽतिजागता विराड्गर्भा, २ पञ्चपदा बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी; ३ उरोबृहती, ६ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती; ७ विराड्गर्भा; ८ पुरोऽतिजागता विराड् जगती; ९ बृहतीगर्भा; १० भुरिक्; ११, १३ जगती; १२ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा विराडतिजगती; १५ पुरस्ताज्ज्योतिः; १४, १६–२२ अनुष्टुप्; २३ पुरोबार्हतातिजागतगर्भा; २५ एकावसानार्च्युष्णिक्; २६ मध्येज्योतिरुष्णिग्गर्भा ।

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे
तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च
स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १ ॥
ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः
पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन्
त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥(१११८)
आचार्य उपनयमानो
ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।

तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति
तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ ३ ॥
इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीया
उतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया
श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ ४ ॥
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी
घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं
देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः
कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं
लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥ ६ ॥
ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं
प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वाऽमृतस्य योनौ
इन्द्रो ह भूत्वाऽसुरांस्ततर्ह ॥ ७ ॥
आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे
उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी
तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥ ८ ॥
इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी
भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते
तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥
अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद्
गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी
तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥ १० ॥

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या
अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढाः
ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥ ११ ॥
अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गः
बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः
पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२ ॥
अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन्
ब्रह्मचार्यप्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति
तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥ १३ ॥
आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् १४
अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा
वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत्
स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५ ॥
आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥१६॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥१७॥
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥१८॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥१९॥
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२०॥
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२१

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२

देवानामेतत् परिषूतं
अनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं
देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति
तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं
वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥ २४ ॥

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेहि
अन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥

तानि कल्पद्ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे
तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः
पृथिव्यां बहु रोचते ॥ २६ ॥

(अथर्व० १९।४२।१-४)

ब्रह्म । [ब्रह्मयज्ञः] । १ अनुष्टुप्; २ त्र्यवसाना ककुम्मती पथ्यापंक्तिः; ३ त्रिष्टुप्; ४ जगती ।

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१॥

ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः ।
शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥

अंहोमुचे प्र भरे मनीषाम्
आ सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय
सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३ ॥

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां
विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय
इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥ ४ ॥ (११३६)

पुरुषः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९०।१-१६)
(१-५८) नारायण । अनुष्टुप्, १६ त्रिष्टुप् ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा ऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ २ ॥
एतावानस्य महिमा ऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ३
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ४
तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः६
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्या- नारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥८
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मा- द्यजुस्तस्मादजायत ॥९
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः१०
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ११
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत १२
चन्द्रमा मनसो जात- श्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्
तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ १४॥
सप्तास्यासन्परिधय- स्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा-
स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० १९।६, १-६, ९, ११, १६)

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद्विष्वङशनानशने अनु ॥२॥
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ३
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत्सह ॥ ४ ॥
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥५
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ६
विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥९॥
तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥११॥
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥१६

॥ ३ ॥ (अथर्व० १०।२।१-३३)
पार्ष्णिसूक्तम्, पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम् । अनुष्टुप्; १-४; ७, ८ त्रिष्टुप्; ६, ११ जगती; २८ भुरिग्बृहती ।

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य
केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि
केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥
कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्
अष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य ।
जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्
जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत ॥ २ ॥
चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं
जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् ।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान
याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥ ३ ॥
कति देवाः कतमे त आसन्
य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य ।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ
कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥ ४ ॥
को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति ।
अंसौ को अस्य तद्देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥५
कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि
कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि
चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥
हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीम्
अधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः
अपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥ ७ ॥
मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं
ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य
दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥
प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्यः ।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥९
आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥ १०॥
को अस्मिन्नापो व्यदधाद्विषूवृतः
पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा
ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥ ११ ॥

को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च।
गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे १२
को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु ।
समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥१३
को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं
कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ १४ ॥
को अस्मै वासः पर्यदधात्
को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत्
को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५ ॥
केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद्रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥
को अस्मिन् रेतो न्यदधात्
तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत्
को बाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥
केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद्दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥१८
केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।
केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः १९
केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥२०॥
ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥
केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः ।
केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत्क्षत्रमुच्यते ॥ २२ ॥
ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।
ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत्क्षत्रमुच्यते ॥ २३ ॥
केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२४॥
ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२५
मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः २६
तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः २७
ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः
सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २८
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः २९
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥
अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ३१
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ३२
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ३१।१८-१९)

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १८ ॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर्
अजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः
तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥(११२६)

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये २०
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन् वशे २१
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥२२

॥ ५ ॥ (वा० य० ३२।१-१०)

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥
सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् ॥२॥
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा
यस्मान्न जात इत्येषः ॥ ३ ॥
एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ ४ ॥
यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव
य आबभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणः
त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ ५ ॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा
येन स्व स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने
अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
आपो ह यद्बृहतीर्यश्चिदापः ॥ ७ ॥
वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सत्
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ
स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ ८ ॥
प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्
गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ॥ ९ ॥
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः
तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ८।५३)

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम
सुवीरो वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० ३६।२२)

यतो-यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥२२॥

॥ ८ ॥ (वा० य० ४०।१७)

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।
ओ३म् खं ब्रह्म ॥ १७ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० ६।६१।१-३)
(७७-१०५) अथर्वा । रुद्रः (विश्वस्रष्टा)
१ त्रिष्टुप्, २-३ भुरिक् ।

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां
मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा
मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥ १
(

अहं विवेच पृथिवीमुत द्यां
अहमृतूँरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद्वदामि
अहं दैवीं परि वाचं विशश्च ॥ २ ॥
अहं जजान पृथिवीमुत द्यां
अहमृतूँरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद्वदामि
यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥ ३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ८।९।१-२६)

(कश्यपः, सर्वे ऋषयः, छन्दांसि च). विराट् । त्रिष्टुप्, २ पङ्क्तिः, ३ आस्तारपङ्क्तिः, ४-७, २३, २५-२६ अनुष्टुप्, ८, ११-१२, २२ जगती, ९ भुरिक्, १४ चतुष्पदातिजगती ।

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः
कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां
तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ १ ॥
यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा
योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः
स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥ २ ॥
यानि त्रीणि बृहन्ति
येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद्
यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥ ३ ॥
बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता ।
बृहद्बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥४॥
बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥५॥
वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौः
यावद्रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमाः
उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥ ६ ॥
षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे
त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं
तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥ ७ ॥
यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त
उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति
सा विराडृषयः परमे व्योमन् ॥ ८ ॥
अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां
विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं
पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥ ९ ॥
को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद
क ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।
क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान्
को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥ १० ॥
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छत्
आस्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तः
वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥ ११ ॥
छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने
समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती
केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ १२ ॥
ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुः
त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका
राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ १३ ॥ (११५८)

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद्
यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं
बृहदर्की यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥ १४ ॥
पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा
गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्ताः
ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥ १५ ॥
षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य
षडु सामानि षडहं वहन्ति ।
षड्योगं सीरमनु सामसाम
षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः ॥ १६ ॥
षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णान्
ऋतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः
सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥ १७ ॥
सप्त होमाः समिधो ह सप्त
मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन्
ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥ १८ ॥
सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराणि
अन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि ।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु
तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥ १९ ॥
कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप
कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथं
अनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥ २० ॥
अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्य
अष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रा
अष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥ २१ ॥
इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं
युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः
स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥ २२ ॥
अष्टेन्द्रस्य षड्यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्याउनोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे २३
केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिः
वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा
देवान् मनुष्याँ असुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥
को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः ॥२५॥
एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते ॥ २६ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ८।१०।१-६)
अथर्वाचार्यः । विराट् । (षट् पर्यायाः) । १-१३, [प्रथमः पर्यायः] १ त्रिपदार्ची पङ्क्तिः, २-७ याजुषी जगती, ३, ९ साम्न्यनुष्टुप्ः आर्च्यनुष्टुप्ः ७, १२ विराड् गायत्री; ११ साम्नी बृहती ।

(१)

विराड् वा इदमग्र आसीत्
तस्या जातायाः सर्वमबिभेत्
इयमेवेदं भविष्यतीति ॥ १ ॥
सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥ २ ॥
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥
सोदक्रामत् साऽऽहवनीये न्यक्रामत् ॥ ४ ॥
यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति
य एवं वेद ॥ ५ ॥
सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥ ६ ॥

युज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ७
सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥ ८ ॥
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥९॥
सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १० ॥
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ११
सोदक्रामत्सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ १२ ॥
यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति
य एवं वेद ॥ १३ ॥

१-१० [द्वितीयः पर्यायः] १ त्रिपदा साम्न्यनुष्टुप्; २ उष्णिग्गर्भा चतुष्पदोपरिष्टाद्विराड्बृहती; ३ एकपदा याजुषी गायत्री; ४ एकपदा साम्नी पङ्क्तिः; ५ विराड् गायत्री; ६ आर्च्यनुष्टुप्; ७ साम्नी पङ्क्तिः; ८ आसुरी गायत्री; साम्न्यनुष्टुप्; १० साम्नी बृहती।

(२)

सोदक्रामत् साऽन्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् १
तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद्वेद
यदुभय उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति ॥ २ ॥
तामुपाह्वयन्त ॥ ३ ॥
ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥४
तस्या इन्द्रो वत्स आसीद्
गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥ ५ ॥
बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥ ६ ॥
ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुह्रन् व्यचो बृहता ७
अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥ ८ ॥
ओषधीरेवास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत् ॥ ९ ॥
अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद १०

१-८ [तृतीयः पर्यायः] १ चतुष्पदा विराडनुष्टुप्; २ आर्ची त्रिष्टुप्; ३, ५, ७ चतुष्पदा प्राजापत्या पङ्क्तिः; ४, ६, ८ आर्ची बृहती।

(३)

सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत्
तां वनस्पतयोऽघ्नत सा संवत्सरे समभवत् ॥१॥
तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति
वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥ २ ॥
सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत्
तां पितरोऽघ्नत सा मासि समभवत् ॥ ३ ॥
तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति
प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ४ ॥
सोदक्रामत् सा देवानागच्छत्
तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत् ॥ ५ ॥
तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति
प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ६ ॥
सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत्
तां मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत् ॥ ७ ॥
तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्ति
उपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥

(१-१६; १-१६) [चतुर्थः पञ्चमो पर्यायौ] २२, २३ २६, २९ (प्र०) चतुष्पदा साम्नी जगती; २२-२४, २८-२९ (द्वि०) साम्नी बृहती, २२,२६. (तृ०) साम्न्युष्णिक् २२, २३,२६,२९ (च०) आर्च्यनुष्टुप्; २३ (तृ०) आर्ची गायत्री; २४-२५, २८ (प्र०) चतुष्पदा उष्णिक्; २४ (तृ०) प्राजापत्यानुष्टुप्; २४-२५, २७ आर्ची त्रिष्टुप्, २५-२६ (द्वि०) साम्न्युष्णिक् २५, २७-२८ (तृ) विराड् गायत्री; २७ (प्र०) चतुष्पदा प्राजापत्या जगती; २७ (द्वि०) साम्नी बृहती त्रिष्टुप्; २८ (च०) त्रिपदा ब्राह्मी भुरिग्गायत्री; २९ (तृ०) साम्न्युष्टुप्।

(४)

सोदक्रामत् सासुरानागच्छत्
तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥ १ ॥
तस्या विरोचनः प्राह्रादिर्वत्स
आसीदयस्पात्रं पात्रम् ॥ २ ॥
तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक् तां मायामेवाधोक् ॥ ३ ॥

तां मायामसुरा उप जीवन्ति
उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥
सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत्
तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥ ५ ॥
तस्या यमो राजा वत्स आसीद्
रजतपात्रं पात्रम् ॥ ६ ॥
तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक्॥७
तां स्वधां पितर उप जीवन्ति
उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥
सोदक्रामत् सा मनुष्याइनागच्छत्
तां मनुष्याइ उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ॥ ९ ॥
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्
पृथिवी पात्रम् ॥ १० ॥
तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च
सस्यं चाधोक् ॥ ११ ॥
ते कृषिं च सस्यं च मनुष्याइ उप जीवन्ति ।
कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२
सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत्
तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ॥१३
तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम्१४
तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक्
तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ॥ १५॥
तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति
ब्रह्मवर्चस्यु पजीवनीयो भवति य एवं वेद १६

(५)

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत्
तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥ १ ॥
तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ॥ २ ॥
तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ॥ ३ ॥
तामूर्जां देवा उप जीवन्ति
उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥
सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् ।
तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति५
तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्
पुष्करपर्णं पात्रम् ॥ ६ ॥
तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक्
तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥ ७ ॥
तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति
पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८
सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत्
तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति ॥९॥
तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स
आसीदामपात्रं पात्रम् ॥ १० ॥
तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक्
तां तिरोधामेवाधोक् ॥ ११ ॥
तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति
तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो भवति
य एवं वेद ॥ १२ ॥
सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत्
तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति ॥ १३ ॥
तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स
आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥ १४॥
तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् १५
तद्विषं सर्पा उप जीवन्ति
उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १६ ॥
(१११८)

१-४ [४थ पर्याय] १ द्विपदा विराड् गायत्री, २ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्, ४ द्विपदा-र्च्युष्णिक्।

तद् यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत्
प्रत्याहन्यात् ॥ १ ॥
न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा
प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् ॥ २ ॥
यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥ ३ ॥
विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते
य एवं वेद ॥ ४ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० १९।७२।१)
भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा। परमात्मा देवाश्च। त्रिष्टुप्।

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं
तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण
तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १ ॥(१३३९)

संसदध्यक्षः

सदसस्पतिः।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१८।६-९)
(१-४) मेधातिथि काण्व। (९ नराशंसो वा)। गायत्री।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम्।
होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥
नराशंसं सुधृष्टम--मपश्यं सप्रथस्तमम्।
दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥(१३४३)

संसदुपाध्यक्षः

क्षेत्रपतिः।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।५७।१-३)
(१-३) वामदेवो गौतम। १ अनुष्टुप्, २-३ त्रिष्टुप्।

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥ १ ॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं
धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतं
ऋतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो
मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्तु
अरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥

॥ १ ॥ (वा० य० १६।१८)
क्षेत्राणां पतये नमः ॥ १८ ॥(१३४७)



अदितिः, आदित्याश्च ।

(१) अदितिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।८९।१०)

(१)× गोतमो राहूगणः । त्रिष्टुप् ।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्ष—मदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् १० १

॥ २ ॥ (ऋ० ८।१८।४-७)

(२-५) इरिम्बिठिः काण्वः । उष्णिक् ।

देवेभिर्देव्यदिते ऽरिष्टभर्मन्ना गहि । स्मत् सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ४
ते हि पुत्रासो अदिते—र्विदुर्द्वेषांसि योतवे ।
अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ५
अदितिर्नो दिवा पशु—मदितिर्नक्तमद्वयाः । अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ६
उत स्या नो दिवा मति—रदितिरूत्या गमत् । सा शंताति मयस्करदप स्रिधः ७ ५

॥ ३ ॥ (ऋ० ८।६७।१०-१२)

(६-८) मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । गायत्री ।

उत त्वामदिते म—ह्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये १०
पर्षि दीने गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः । माकिस्तोकस्य नो रिषत् ११
अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे । कृधि तोकाय जीवसे १२ ८

॥ ४ ॥ (९-११) (वा० य० ११।५६-५७, ५९)

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ५६

× वा० य० २५, २३ । अथर्व० ७।६।१ ।

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ । मखस्य शिरोऽसि ५७ १०
अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु ।
कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये ।
पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ५९ ११

॥ ५ ॥ (वा० य० ११।५-७) अथर्व० ७।६।१-३।

महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ५
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ६
सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्रां स्वस्तये ७ १४

॥ ६ ॥ (वा० य० २१।४) दै० [अग्निः] ११०९।

ᶜस्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ४ १५

॥ ७ ॥ (अथर्व० ७।६।४) वा० य० ९,५, १८,३०।
(१६-१७) अथर्वा । विराड् जगती।

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्व१न्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ४ १६

॥ ८ ॥ (अथर्व० ७।७।१) आर्षी जगती।

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमवं देवानां बृहतामनर्मणाम् ।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान् नमसा परो अस्ति कश्चन १ १७

अदिति-सहचारी देवगण ।

(१) सोमः, अदितिः ।

॥ ९ ॥ (अथर्व० ६।७।१-२)

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः । तेना नोऽवसा गहि १
येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः । तेना नो अधि वोचत २ १८

(२) आदित्याः ।

॥ १० ॥ (ऋ० १।४१।४-६)

(१८-२०) कण्वो घोरः । गायत्री।

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ४
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा । प्र वः स धीतये नशत् ५
स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः ६ १०

॥ ११ ॥ (ऋ० २।२७।१-१७)

(२१-३७) कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । त्रिष्टुप् ।

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः १
इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः २
त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ३
धारयन्त आदित्यासो जगत् स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ४
विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन् भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ५ १५
सुगो हि वो अर्यमन् मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ६
पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राऽति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ७
तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ८
त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ९
त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा १० ३०

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद् वसवो धीर्या चिद् युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ११
यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः १२
शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद् य आदित्यानां भवति प्रणीतौ १३
अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद् वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन् तमिस्राः १४
उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन् याति पृत्सू भावर्धौ भवतः साधू अस्मै १५ ३५
या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेना रिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम १६
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः १७ ३७

॥ १२ ॥ (ऋ० ७।५१।१-३)
(३८-५३) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः १
आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य २
आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३ ४०

॥ १३ ॥ (ऋ० ७।५२।१-३)

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः १
मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे २ ४१

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान् यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ३ ४३

॥ १४ ॥ (ऋ० ७।६६।४-१३)
गायत्री, १०-१३ प्रगाथः = (समा बृहती+विषमा सतोबृहती)

यदद्य सूर उदिते ऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ४
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ५ ४५
उत स्वराजो अदिति रदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ६
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ७
राया हिरण्यया मति रियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ८
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ९
बहवः सूरचक्षसो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभि र्विश्वानि परिभूतिभिः १० ५०
वि ये दधुः शरदं मासमादह र्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ११
तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः १२
ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः १३ ५३

॥ १५ ॥ (ऋ० ८।१८।१-३,१०-१४)
(५४-६१) इरिम्बिठिः काण्वः । उष्णिक् ।

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि १
अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् । अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः २ ५५
तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ३
अपामीवामप स्निध मप सेधत दुर्मतिम् । आदित्यासो युयोतना नो अंहसः १०
युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम् । ऋधग् द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ११
तत् सु नः शर्म यच्छता ऽऽदित्या यन्मुमोचति । एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः १२
यो नः कश्चिद् रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः । स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः १३
समित् तमघमश्नवद् दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् । यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः १४ ६१

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् । उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः १५
आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे अस्मद् रपस्कृतम् १६
ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः । अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन १७
तुचे तनाय तत् सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः सुमहसः कृणोतन १८ ६५
यद्वो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत ।
युष्मे इद् वो अपि ष्मसि सजात्ये १९
बृहद् वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये २०
अनेहो मित्रार्यमन् नृवद् वरुण शंस्यम् । त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः २१
ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।
प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन २२ ६३

॥ १६ ॥ (ऋ० ८।१९।३४-३५)
(७०-७१) सोभरिः काण्वः । ३४ उष्णिक्, ३५ सतोबृहती ।

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम् । मघोनां विश्वेषां सुदानवः ३४ ७०
यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषाँ अनु ।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः ३५ ७१

॥ १७ ॥ (ऋ० ८।४७।१-१३]
(७२-८४) त्रित आप्त्यः । महापङ्क्तिः ।

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १
विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् ।
पक्षा वयो यथोपरि व्य१स्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः २
व्य१स्मे अधि शर्म तत् पक्षा वयो न यन्तन ।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ३
यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ४ ७
परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ५ ७

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।
देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतना नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ६
न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु ।
यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्व मनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ७
युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्त इव वर्मसु ।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यता नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ८
अदितिर्न उरुष्यत्व दितिः शर्म यच्छतु ।
माता मित्रस्य रेवतो ऽर्यम्णो वरुणस्य चा नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ९ ८०
यद् देवाः शर्म शरणं यद् भद्रं यदनातुरम् ।
त्रिधातु यद् वरूथ्यं तदस्मासु वि यन्तना नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १०
आदित्या अव हि ख्यता धि कूलादिव स्पशः ।
सुतीर्थमर्वतो यथा नु नो नेषथा सुग मनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ११
नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यते ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १२
यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
त्रिते तद् विश्वमाप्त्य आरे अस्मद् दधातना नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १३ ८४

॥ १८ ॥ (ऋ० ८।६७।१-९,१३-२१)

(८५-१०१) मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः, बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । गायत्री।

त्यान् नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान् याचिषामहे । सुमृळीकाँ अभिष्टये १ ८५
मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा । आदित्यासो यथा विदुः २
तेषां हि चित्रमुक्थ्यं वरूथमस्ति दाशुषे । आदित्यानामरंकृते ३
महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन् । अवांस्या वृणीमहे ४
जीवान् नो अभि धेतना ऽऽदित्यासः पुरा हथात् । कद्ध स्थ हवनश्रुतः ५
यद् वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः । तेना नो अधि वोचत ६ ९०
अस्ति देवा अंहोरुर्व स्ति रत्नमनागसः । आदित्या अद्भुतैनसः ७
मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि । इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ८
मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृक्षत ९
ये मूर्धानः क्षितीना मदब्धासः स्वयशसः । व्रता रक्षन्ते अद्रुहः १३ ९४

ते न आस्नो वृकाणा— मादित्यासो मुमोचत । स्तेनं बद्धमिवादिते १४ ९५
अपो षु ण इयं शरु— रादित्या अप दुर्मतिः । अस्मदेत्वजघ्नुषी १५
शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम् । पुरा नूनं बुभुज्महे १६
शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः । देवाः कृणुथ जीवसे १७
तत् सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति । बन्धाद् बद्धमिवादिते १८
नास्माकमस्ति तत् तर आदित्यासो अतिष्कदे । यूयमस्मभ्यं मृळत १९ १००
मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः । पुरा नु जरसो वधीत् २०
वि षु द्वेषो व्यंहति— मादित्यासो वि संहितम् । विष्वग् वि वृहता रपः २१ १०१

॥ १९ ॥ (ऋ० ८।१०१।६)

(१०२) जमदग्निर्भार्गवः । सतोबृहती ।

ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वे—कं पुत्रं तिसृणाम् ।
ते धामान्यमृता मर्त्यानां—मदब्धा अभि चक्षते ६ १०२

॥ २० ॥ (ऋ० १०।१८५।१-३)

(१०४-१०६) सत्यधृतिर्वारुणि । आदित्यः (स्वस्त्ययनम्) । गायत्री ।

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य १
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः २ १०५
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ३ १०६

॥ २१ ॥ (१०७-११०) (वा० य० ८।१-५)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।
विष्ण उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् १
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा २
कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य सवनं त इन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ३
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ४ ११०
विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व ५ १११

॥ २२ ॥ (वा० य० १३।३,५)

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ३ ११२

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः　　५　११३

॥ २३ ॥ (वा० य० १७।५९-६०)

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम्　　५९
उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ　　६०　११५

॥ २४ ॥ (वा० य० १३।५;३१।१७)×

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि　　५
अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद् रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे　　१७　११७

॥ २५ ॥ (वा० य० ३३।८१-८३)

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत　　८१
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः　　८२
अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये　　८३　१२०

॥ २६ ॥ (अथर्व० २।२९।१-६) [दे० (आयुर्वेद०) ११५ सूक्तं द्रष्टव्यम् ।]
॥ २७ ॥ (अथर्व० १६।३।१-६)

(१२१-१६३) ब्रह्मा । १ आसुरी गायत्री; २-३ आर्च्यनुष्टुप्; ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्;
५ साम्न्युष्णिक्; ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्　　१
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम्　　२
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम्　　३
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम्　　४　१२४

× वा० य० १३।५ = दे० [इन्द्रः] ७४; अथर्व० २०,२६,४,४७,१०,६९,९; साम० १४६८

२ दे. [अदितिः]

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ५ ११५
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ६ ११६

॥ १८ ॥ (अथर्व० १६।४।१-७)

१,३ साम्न्यनुष्टुप्; २ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्च्युष्णिक्; ७ त्रिपदा विराड्गर्भाऽनुष्टुप्।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् १
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा २
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ३
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ४ १३०
प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मेषि ५
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ६
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ७ १३१

॥ १९ ॥ (अथर्व० १७।१।१-३०)

१ जगती, १-८ त्र्यवसाना, १-३ अतिजगती; ६-७,१९ अत्यष्टिः, ८,११, १६ अतिधृतिः; ९ पञ्चपदा शक्करी; १०-१३,१६,१८-१९,२४ त्र्यवसाना; १० अष्टपदा धृतिः; १२ कृतिः; १३ प्रकृतिः; १४-१५ पञ्चपदा शक्करी, १७ पञ्चपदा विराडतिशक्करी; १८ भुरिगष्टिः; २४ विराडत्यष्टिः; १-५ षट्पदा; ११-१३,१६,१८-१९,२४ सप्तपदा; २० ककुप्; २१ चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती; २२ याजुषी अनुष्टुप्; २३ निचृद्बृहती (२२-२३ द्विपदा); २५-२६ अनुष्टुप्; २७,३० जगती; २८-२९ त्रिष्टुप्।

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् १
विषासहिं०। सहमानं०। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् २ १३१
विषासहिं०। सहमानं०। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ३
विषासहिं०। सहमानं०। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ४
विषासहिं०। सहमानं०। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ५
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ६ १३३

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ७ १४०
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्व१न्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ८
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ९
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १०
त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ११

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १२ १४५
या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।
ययेन्द्र तन्वा३न्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १३
त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १४
त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १५
त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १६

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १७ १५०
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १८
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १९
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि । स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् २०
रुचिरसि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन
च रुचिषीय २१

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः २२ १५५

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः० २३
उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् २४
आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय २५
सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय २६
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् २७ १६०
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय २८
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः २९
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ३० १६१

॥ ३० ॥ (अथर्व० १९।१८।४)
(१६४) अथर्वा । आर्च्यनुष्टुप् ।

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ४ १६४

(१६५) ॥ ३१ ॥ (अथर्व० २०।१३५।६)

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ६ १६५

आदित्य-सहचारी देवगणः ।

(१) आदित्योपसः ।

॥ ३१ ॥ [दै० (उषा) १८७-१९१ मन्त्राः द्रष्टव्याः ।]

(२) अग्निमित्रवरुणादित्यविश्वेदेवाः ।

(१६६) ॥ ३३ ॥ (वा० य० ४।११)

त्वं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः ।
दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो असद्वशे ।
ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ११ १६६

(३) आदित्या वसवोऽङ्गिरसः पितरः ।

॥ ३४ ॥ (अथर्व० २।१२।४) (१६७) भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितॄणामामुं ददे हरसा दैव्येन ४ १६७

(४) भगादित्याः ।

॥ ३५ ॥ (अथर्व० ३।१६।२-३,५) (१६८-१७०); अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह २
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ३
भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ५ १७०

(५) बृहस्पतिः, आदित्यः ।

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ४।१।१-७)+

(१७१-१७७) वेनः । त्रिष्टुप्, २,५ पुरोऽनुष्टुप् ।

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः १
इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः ।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे २ १७२

+ वा० य० १३।३ (११२)

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तंमिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः० २३
उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् २४
आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय २५
सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय २६
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् २७ १६०
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय २८
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः २९
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ३० १६१

॥ ३० ॥ (अथर्व० १२।१८।४)
(१६४) अथर्वा । आर्च्यनुष्टुप् ।

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ४ १६४

(१६५) ॥ ३१ ॥ (अथर्व० २०।१३५।६)

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ६ १६५

(३) मित्रः, मित्रावरुणौ च ।

॥ ४० ॥ (ऋ० १।१५१।१)

(१८४) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥ १८४

॥ ४१ ॥ (ऋ० ३।५९।१-९)×

(१८५-१९३) गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप्, ६-९ गायत्री ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १ ॥ १८५

प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥ २ ॥

अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥ ३ ॥

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ४ ॥

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥ ५ ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६ ॥ १९०

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥ ७ ॥

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान् विश्वान् बिभर्ति ॥ ८ ॥

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥ ९ ॥ १९३

॥ ४२ ॥ (१९४) (वा० य० ११।५३)

मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः ॥ ५३ ॥ १९४

॥ ४३ ॥ (अथर्व० १९।१९।१)

(१९५) अथर्वा भुरिग्बृहती ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ १ ॥ १९५

× ऋ० ३,५९,६ = वा० य० ११,६२; काण्व० १२,६४ ।

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ३
स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत् ।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ४
स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ५ १७१
नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम ।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन्नु ६
योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात् ।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ७ १७७

(६) दिवादित्यौ ।

॥ ३७ ॥ (अथर्व० ४।३९।५-६)

(१७८-१७९) अङ्गिराः । ५ त्रिपदा महाबृहती, ६ संस्तारपङ्क्तिः ।

दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ५
द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः । सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ६ १७९

(७) आदित्यादयः ।

॥ ३८ ॥ (अथर्व० ५।२१।१०-११)

(१८०-१८१) ब्रह्मा । अनुष्टुप्, ११ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।

आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत । पत्सङ्गिनीरा संजन्तु विगते बाहुवीर्ये १० १८०
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ११
एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः । अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा १२ १८१

(८) आदित्या रुद्रा वसवश्च ।

॥ ३९ ॥ (१८२) (अथर्व० २०।१३५।९)

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत्पृथु ९ १८२

(३) मित्रः, मित्रावरुणौ च ।

॥ ४० ॥ (ऋ० १।१५१।१)

(१८४) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः　१　१८४

॥ ४१ ॥ (ऋ० ३।५९।१-९)×

(१८५-१९३) गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप्, ६-९ गायत्री ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत　१　१८५
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात्　२
अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम　३
अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम　४
महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्ट मग्नौ मित्राय हविरा जुहोत　५
मित्रस्य चर्षणीधृतो ऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्　६　१९०
अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम्　७
मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान् विश्वान् बिभर्ति　८
मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः　९　१९३

॥ ४२ ॥ (१९४) (वा० य० ११।५३)

मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः　५३　१९४

॥ ४३ ॥ (अथर्व० १९।१९।१)

(१९५) अथर्वा भुरिग्बृहती ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु　१　१९५

× ऋ० ३,५९,६ = वा० य० ११,६२; काण्व० १२,६४ ।

॥ ४४ ॥ (ऋ० १।२।७-९)

(१९६-१९८) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ७

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ८

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ९ १९८

॥ ४५ ॥ (ऋ० १।२३।४-६)

(१९९-२०१) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ४

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ५ २००

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ६ २०१

॥ ४६ ॥ (ऋ० १।४३।३)

(२०२) कण्वो घौरः । गायत्री ।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ३ २०२

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।१३६।१-७)

(२०३-२०९) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः, ७ त्रिष्टुप् ।

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे १

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः २

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।
ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ३ २०५

अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ४ २०६

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो ऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्ष- त्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ५
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ६
ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ७ २०९

॥ ४८ ॥ (१।१३७।१-३) अतिशक्करी ।

सुषुमा यातमद्रिभि- र्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशा ऽस्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः १ २१०
इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये २
तां वां धेनुं न वासरी- मंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नो ऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ३ २१२

॥ ४९ ॥ (ऋ० १।१५१।०) अत्यष्टिः ।

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृताद- ध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्म- स्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः २ २१३

॥ ५० ॥ (ऋ० १।१५१।०-९)
(२१४-२३०) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

यद्ध त्यद् वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः २
आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ३ २१५

॥ ४४ ॥ (ऋ० १।२।७-९)
(१९६-१९८) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ७
ऋतेन मित्रावरुणा—वृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ८
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ९ १९८

॥ ४५ ॥ (ऋ० १।२३।४-६)
(१९९-२०१) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री।

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ४
ऋतेन यावृतावृधा—वृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ५ २००
वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ६ २०१

॥ ४६ ॥ (ऋ० १।४३।३)
(२०२) कण्वो घौरः । गायत्री।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ३ २०२

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।१३६।१-७)
(२०३-२११) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः, ७ त्रिष्टुप्।

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे १
अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभि—श्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।
द्युक्षं मित्रस्य सादन—मर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वयं उपस्तुत्यं बृहद् वयः २
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनो ऽर्यमा यातयज्जनः ३ २०५
अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ४ २०[illegible]

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो ऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ५
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ६
ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ७ २०९

॥ ४८ ॥ (१।१३७।१-३) अतिशक्वरी ।

सुषुमा यातमद्रिभि र्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशा ऽस्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः १ २१०
इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये २
तां वां धेनुं न वासरी मंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नो ऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ३ २११

॥ ४९ ॥ (ऋ० १।१३९।२) अत्यष्टिः ।

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः २ २१३

॥ ५० ॥ (ऋ० १।१५२।२-९)
(२१४-२२१) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

यद्ध त्यद् वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः २
आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ३ २१५

प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४
मही अत्र महिना वारमृण्वथो ऽरेणवस्तुज आ सद्मन् धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५
आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६
यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७
युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरो ऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ११०
रेवद् वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ १११

॥ ५१ ॥ (ऋ० १।१५२।१-७) त्रिष्टुप् ।

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३
प्रयन्तमित् परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ११५
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५
आ धेनवो मामतेयमवन्ती-र्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वा-नासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ११८

॥ ५२ ॥ (ऋ० १।१५३।१-४)

यजा॑महे वां म॒हः स॒जोषा॑ ह॒व्येभि॑र्मित्रावरुणा॒ नमो॑भिः ।
घृ॒तैर्घृ॑तस्नू॒ अध॒ यद् वा॑म॒स्मे अ॑ध्व॒र्यवो॒ न धी॒तिभि॒र्भर॑न्ति　　१

प्रस्तु॑तिर्वां॒ धाम॒ न प्रयु॑क्ति॒रया॑मि मित्रावरुणा सुवृ॒क्तिः ।
अ॒नक्ति॒ यद् वां॑ वि॒दथे॑षु॒ होता॑ सु॒म्नं वां॑ सू॒रिर्वृ॑षणा॒विय॑क्षन्　　२　　२३०

पी॒पाय॑ धे॒नुरदि॑तिर्ऋ॒ताय॒ जना॑य मित्रावरुणा ह॒विर्दे ।
हि॒नोति॒ यद् वां॑ वि॒दथे॑ स॒पर्य॒न्त्स रा॒तह॑व्यो॒ मानु॑षो॒ न होता॑　　३

उ॒त वां॑ वि॒क्षु मद्या॒स्वन्धो॒ गाव॒ आप॑श्च पीपयन्त दे॒वीः ।
उ॒तो नो॑ अ॒स्य पू॒र्व्यः पति॒र्दन् वी॒तं पा॒तं पय॑स उ॒स्रिया॑याः　　४　　२३१

॥ ५३ ॥ (ऋ० २।४१।४-६) ×

(२३३-२३५) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । गायत्री ।

अ॒यं वां॑ मित्रावरुणा सु॒तः सोम॑ ऋतावृधा । ममेदि॒ह श्रु॑तं॒ हव॑म्　　४
राजा॑ना॒वन॑भिद्रुहा ध्रु॒वे सद॑स्युत्त॒मे । स॒हस्र॑स्थूण आसाते　　५
ता स॒म्राजा॑ घृ॒तासु॑ती आदि॒त्या दानु॑न॒स्पती॑ । सचे॑ते॒ अन॑वह्वरम्　　६　　२३५

॥ ५४ ॥ (ऋ० ३।६२।१६-१८) +

(२३६-२३८) गाथिनो विश्वामित्रः, जमदग्निर्वा । गायत्री ।

आ नो॑ मित्रावरुणा घृ॒तैर्गव्यू॑तिमुक्षतम् । मध्वा॒ रजां॑सि सुक्रतू　　१६
उ॒रु॒शंसा॑ नमो॒वृधा॑ म॒ह्ना दक्ष॑स्य राजथः । द्राघि॑ष्ठाभिः शुचिव्रता　　१७
गृ॒णा॒ना ज॒मद॑ग्निना॒ योना॑वृ॒तस्य॑ सीदतम् । पा॒तं सोम॑मृतावृधा　　१८　　२३८

॥ ५५ ॥ (ऋ० ५।६२।१-९)

(२३९-२४७) श्रुतविदात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

ऋ॒तेन॑ ऋ॒तमपि॑हितं ध्रु॒वं वां॒ सूर्य॑स्य॒ यत्र॑ विमु॒चन्त्यश्वा॑न् ।
दश॑ श॒ता स॒ह त॑स्थु॒स्तदेकं॑ दे॒वानां॒ श्रेष्ठं॒ वपु॑षामपश्यम्　　१

तत् सु वां॑ मित्रावरुणा महि॒त्वमी॒र्मा त॒स्थुषी॒रह॑भिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः॑ पिन्वथः॒ स्वस॑रस्य॒ धेना॒ अनु॑ वा॒मेकः॑ प॒विरा व॑वर्त　　२

अधा॑रयतं पृथि॒वीमु॒त द्यां मित्र॑राजाना वरुणा॒ महो॑भिः ।
व॒र्धय॑त॒मोष॑धीः॒ पिन्व॑तं॒ गा अव॑ वृ॒ष्टिं सृ॑जतं जीरदानू　　३　　२४१

× ऋ० २,४१,४= वा० य० ७,९;

+ ऋ० ३,६२,१६=वा० य० २१।८; सा० २२०,६६३

*

आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वा—मुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ४
अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ५
अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ६
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यश्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ७ २४९
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टा—वयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्त—मतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ८
यद् बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ९

॥ ५६ ॥ (ऋ० ५।६३।१-७)
(२४८-२६१) अर्चनाना आत्रेयः । जगती ।

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत् पिन्वते दिवः १
सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः २
सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ३ ५५०
माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ४
रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ५
वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् । ६
धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ७ ५५४

॥ ५७ ॥ (ऋ० ५।६४।१-७) अनुष्टुप्, ७ पङ्क्तिः ।

वरुणं वो रिशादस—मृचा मित्रं हवामहे । परि व्रजेव बाह्वो—र्जगन्वांसा स्वर्णरम् १ २५५
ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते । शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे २
यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा । अस्य प्रियस्य शर्मण्य—हिंसानस्य सश्चिरे ३
युवाभ्यां मित्रावरुणो—पमं धेयामृचा । यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ४
आ नो मित्र सुदीतिभि—र्वरुणश्च सधस्थ आ । स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ५
युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः । उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ६ २६०
उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभि—रा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ७ २६१

॥ ५८ ॥ (ऋ० ५।६५।१-६)

(२६२-२७३) रातहव्य आत्रेयः । अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।

यश्चिकेत स सुक्रतु—र्देवत्रा स ब्रवीतु नः । वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः १
ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा । ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने २
ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा । स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ३
मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते । मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ४ २६५
युवं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे । अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ५
युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ६ २६७

॥ ५९ ॥ (ऋ० ५।६६।१-६) अनुष्टुप् ।

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा । वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे १
ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्य१माशाते । अध व्रतेव मानुषं स्वर्१ण धायि दर्शतम् २
ता वामेषे रथाना—मुर्वीं गव्यूतिमेषाम् । रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे ३ २७०
अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता । नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ४
तदृतं पृथिवि बृह—च्छ्रवएष ऋषीणाम् । ज्रयसानावरं पृथ्व—ति क्षरन्ति यामभिः ५
आ यद् वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः । व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ६ २७३

॥ ६० ॥ (ऋ ५।६७।१-५)

(२७४-२८३) यजत आत्रेयः । अनुष्टुप् ।

बळित्था देव निष्कृत—मादित्या यजतं बृहत् । वरुण मित्रार्यमन् वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे १
आ यद् योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः । धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा २ २७५

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा । व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ३
ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने । सुनीथासः सुदानवो ऽंहोश्चिदुरुचक्रयः ४
को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् । तत् सु वामेषते मति रत्रिभ्य एषते मतिः ५ २७

॥ ६१ ॥ (ऋ० ५।६८।१-५) गायत्री ।

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् १
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता २ २८
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ३
ऋतमृतेन सपन्ते षिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ४
वृष्टिद्यावा रीत्यापे षस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ५ २८३

॥ ६२ ॥ (ऋ० ५।६९।१-४)

(२८४-२९८) उरुचक्रिरात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

त्री रोचना वरुण त्रींरुत द्यून् त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्या ऽनु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् १
इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद् वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः २ २८५
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वताते ळे तोकाय तनयाय शं योः ३
या धर्तारा रजसो रोचनस्यो तादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ४ २८७

॥ ६३ ॥ (ऋ० ५।७०।१-४) गायत्री ।

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्य वो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् १
ता वां सम्यगद्रुह्वाणे षमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम २
पातं नो रुद्रा पायुभि रुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम दस्यून् तनूभिः ३ २९०
मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः । मा शेषसा मा तनसा ४ २९१

॥ ६४ ॥ (ऋ० ५।७१।१-३)

(२९२-२९७) बाहुवृक्त आत्रेयः गायत्री ।

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा । उपेमं चारुमध्वरम् १
विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः । ईशाना पिप्यतं धियः २ २९३

उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः । अस्य सोमस्य पीतये ३ २९४

॥ ६५ ॥ (ऋ० ५।७२।१-३) उष्णिक् ।

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये १ २९५

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये २

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये । नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ३

॥ ६६ ॥ (ऋ० ६।६७।१-११)

(२९८-३०८) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः १

इयं मद् वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद् वां वरूथ्यं सुदानू २

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद् यतथो महित्वा ३ ३००

अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ४

विश्वे यद् वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद् भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ५

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान् द्यां धासिनायोः ६

ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत् सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत् पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ७

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद् वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ८ ३०५

प्र यद् वां मित्रावरुणा स्पूर्धन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ९

वि यद् वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद् वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा १०

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद् रणे वृषणं युनजन् ११

॥ ६७ ॥ (ऋ० ७।५०।१)

(३०९-३४७) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। जगती।

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद् विश्वयन्मा न आ गन्।
अजकावं दुर्दशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः १ ३०९

॥ ६८ ॥ (ऋ० ७।६०।१-१२) त्रिष्टुप्।

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन्।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् २ ३१०
अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ३
उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थु-रा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ४
इमे चेतारो अनृतस्य भूरे-र्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ५
इमे मित्रो वरुणो दूळभासो ऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्त-स्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ६
इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्या-श्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ७ ३१५
यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ८
अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तू-रुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ९
सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषा-मपीच्येन सहसा सहन्ते।
युष्मद् भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः १०
यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ११
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १२ ३२०

॥ ६९ ॥ (ऋ० ७।६१।१-७)

उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत १
प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत् क्रत्वा न शरदः पृणैथे २
प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृ-धग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ३
शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन् मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ४
अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ५ ३२५
समु वां यज्ञं महयं नमोभि-र्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ६
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ ३२७

॥ ७० ॥ (ऋ० ७।६२।४-६)×

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायो-र्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ४
प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ५
नू मित्रो वरुणो अर्यमा न-स्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः *६ ३३०

॥ ७१ ॥ (ऋ० ७।६४।१-५)

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त १ ३३१

× ऋ० ७,६२,५ = वा० य० २१,९। * ऋ० ७।६३।६
४ दे. [अदितिः]

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टि—मव दिव इन्वतं जीरदानू २
मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
ब्रवद् यथा न आदुरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ३
यो वां गर्तं मनसा तक्षदेत—मूर्ध्वां धीतिं कृणवद् धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ४
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी—र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ३३९

॥ ७२ ॥ (ऋ० ७।६५।१-५)

प्रति वां सूर उदिते सूक्तै—र्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
ययोरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु १
ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः ।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च २
ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वा—मपो न नावा दुरिता तरेम ३
आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ४
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी—र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ३४०

॥ ७३ ॥ (ऋ० ७।६६।१-३,१७-१९) गायत्री।

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः । नमस्वान् तुविजातयोः १
या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा २
ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम् । मित्र साधयतं धियः ३
काव्येभिरदाभ्या ऽऽयातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये १७
दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी १८ ३४५
आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा १९ ३४६

॥ ७४ ॥ (ऋ० ८।२५।१-९,१३-२४)

(३४७-३६७) विश्वमना वैयश्वः । उष्णिक्, ९३ उष्णिग्गर्भा।

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया । ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा १ ३४७

मित्रा तना न रथ्याई वरुणो यश्च सुक्रतुः। सनात् सुजाता तनया धृतव्रता २
ता माता विश्ववेदसा ऽसुर्याय प्रमहसा । मही जजानादितिर्ऋतावरी ३
महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा । ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ४ ३५०
नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू । सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ५
सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः। नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ६
अधि या बृहतो दिवोऽभि यूथेव पश्यतः। ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ७
ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू । धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ८
अक्ष्णश्चिद् गातुवित्तरा ऽनुल्बणेन चक्षसा। नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ९ ३५५
तद् वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् । मित्रो यत् पान्ति वरुणो यदर्यमा १३
उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना । इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः १४
ते हि ष्मा वनुषो नरो ऽभिमातिं कयस्य चित्। तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः १५
अयमेक इत्था पुरू रु चष्टे वि विश्पतिः। तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि १६
अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम । मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् १७ ३६०
परि यो रश्मिना दिवो ऽन्तान् ममे पृथिव्याः। उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा १८
उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः। अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः १९
वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः । ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने २०
तत् सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे। भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा २१
ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि २२ ३६५
ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा २३
सदमीगू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती। महो वाजिनावर्वन्ता सचासनम् २४ ३६७

॥ ७१ ॥ (ऋ० ८।१०१।१-४)+

(३६८-३७१) जमदग्निर्भार्गवः १-२ प्रगाथः= बृहती+सतोबृहती), ३ गायत्री, ४ सतोबृहती।

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये १
वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः २
प्र यो वां मित्रावरुणा ऽजिरो दूतो अद्रवत्। अयःशीर्षा मदेरघुः ३ ३७०

+ ऋ० ८,१०१,१ = वा० य० ३३,८७।

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे　न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं　बाहुभ्यां न उरुष्यतम्　४　३७१

॥ ७६ ॥ (ऋ० १०।१३२।२–७)

(३७२–३७७) शकपूतो नार्मेधः । विराड्रूपा, २,६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ महासतोबृहती ।

ता वां मित्रावरुणा धारयत्क्षिती　सुषुम्नेषितत्वता यजामसि ।
युवोः क्राणाय सख्यै—रभि ष्याम रक्षसः　२
अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वा—मभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः ।
दद्वाँ वा यत् पुष्यति रेक्णः　सम्वारन् नकिरस्य मघानि　३
असावन्यो असुर सूयत द्यौ—स्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।
मूर्धा रथस्य चाकन्　नैतावतैनसान्तकध्रुक्　४
अस्मिन्त्स्वे३तच्छकपूत एनो　हिते मित्रे निगतान् हन्ति वीरान् ।
अवोर्वा यद्धात् तनूष्ववः　प्रियासु यज्ञियास्ववा　५　३७५
युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा　द्यौर्न भूमिः पयसा पुपूतनि ।
अव प्रिया दिदिष्टन　सूरो निनिक्त रश्मिभिः　६
युवं ह्यप्नराजावसीदतं　तिष्ठद् रथं न धूर्षदं वनर्षदम् ।
ता नः कणूकयन्ती—र्नृमेधस्तत्रे अंहसः　सुमेधस्तत्रे अंहसः　७

॥ ७७ ॥ (३७८–३८१) (वा० य० ७।१०) +

राया वय१ँ ससवा१ँसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम्　१०　३७८

॥ ७८ ॥ (वा० य० १०।१६,२१)

हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च ।
आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि　१६
मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि　२१　३८०

॥ ७९ ॥ (वा० य० ११।६)

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वा१ँ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि　६　३८१

+ दे० [१-२] ११६० ।

॥ ८० ॥ (वा० य० ३३।७०)

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा सधस्थ आ ७२ ३८१

॥ ८१ ॥ (अथर्व० ९।२८।१) +

(३८२) शम्भुः । त्रिष्टुप् ।

मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति २ ३८२

॥ ८२ ॥ (अथर्व० ३।२५।१-६)

(३८४-३८९) भृगुः । अनुष्टुप् ।

उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि १
आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम् ।
तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि २ ३८५
या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता ।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ३
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा ।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ४
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ५
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् । अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ६ ३८९

॥ ८३ ॥ (अथर्व० ४।२९।१-७) [आयुर्वेदप्रकरणे सूक्तं (२६४) द्रष्टव्यम् ।]

॥ ८४ ॥ (अथर्व० १।२०।२)

(३९०-३९४) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते । युवं तं मित्रावरुणावस्मद्यावयतं परि २ ३९०

॥ ८५ ॥ (अथर्व० ५।२४।५) चतुष्पदातिशक्वरी ।

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ५ ३९१

+ दै० [आयुर्वेद०] २ ।

॥ ८६ ॥ (अथर्व० ६।३२।३) त्रिष्टुप् ।+

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विंदन्त मिथो विघ्ना उप यन्तु मृत्युम् २ ३९२

॥ ८७ ॥ (अथर्व० ६।८९।३) अनुष्टुप् ।

मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती ।
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् २ ३९३

॥ ८८ ॥ (अथर्व० ६।९७।२) जगती ।

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम् ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् २ ३९४

॥ ८९ ॥ (अथर्व० ९।१०।२३)
(३९५) ब्रह्मा । त्रिष्टुप् ।

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति २३ ३९५

॥ ९० ॥ (अथर्व० १०।५।११)
(३९६) सिन्धुद्वीपः । पथ्यापङ्क्तिः ।

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ११ ३९६

॥ ९१ ॥ (३९७-३९९) (सा० ९८६-९८७)⊛

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम २
पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । साह्याम दस्यूं तनूभिः ३ ३९८

॥ ९२ ॥ (सा० १६४७)×

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ३ ३९९

+ दे० [आयुर्वेद०] ७३३ । ⊛ ऋ० ५,७०,२-३ । × ऋ० ८।१५।९

मित्र-मित्रावरुण-सहचारी-देवगणः ।

(१) मित्रावरुणौ नभस्यश्च ।

॥ ९३ ॥ (ऋ० २।३६।६)

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । जगती ।

जुषेथां युज्ञं बोधंतं हर्वस्य मे　सुत्तो होतां निविदः पूर्व्या अनुं ।
अच्छा राजांना नम एत्यावृतं　प्रशास्त्रादा पिंबतं सोम्यं मधुं　६　४००

(२) मित्रावरुणादित्याः ।

॥ ९४ ॥ (ऋ० ८।१०१।५)

जमदग्निर्भार्गवः । बृहती ।

प्र मित्राय प्रार्यम्णे　संचथ्य॑मृतावसो ।
वुरूथ्यं१ वरुणे छन्द्यं वचः　स्तोत्रं राजंसु गायत　५　४०१

(३) उखामित्रौ ।

॥ ९५ ॥ (वा० य० ११।६४)

उत्थाय बृहती भवोदुं तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ।
मित्रैतां त उखां परिददाम्यभित्त्या एषा मा भेदि　६४　४०२

(४) सविता ।

॥ ९६ ॥ (ऋ० १।२२।५-८)+

(४०३-४०६) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ५

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ६

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ७ ४:

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राधांसि शुम्भति ८ ४:

॥ ९७ ॥ (ऋ० १।२४।३-५)

(४०७-४०९) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । (५ भगो वा) । गायत्री ।

अभि त्वा देव सवित—रीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे ३

यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे ४

भगभक्तस्य ते वय—मुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे ५ ४:

॥ ९८ ॥ (ऋ० १।३५।२-११)×

(४१०-४१९) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना—ऽऽ देवो याति भुवनानि पश्यन् २ ४१

याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतो ऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ३

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ४

वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद् विशः सवितुर्दैव्यस्यो—पस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ५

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थु—रिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ६

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ७

अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्या—स्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद् दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ८ ४१

+ ऋ. १,२२,५ = वा. य. २२,१०। × ऋ. १।३५।१ = दै० [अग्निः] ४४८। ऋ. १।३५।८-१० = वा. य. ३४।२४-[illegible]

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणि—रुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्य—मभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन् रक्षसो यातुधाना—नस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १०

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ४१९

॥ ९९ ॥ (ऋ० २।३८।१-११)

(४००-४३०) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। त्रिष्टुप्।

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्न—मथाभजद् वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥ १ ४००

विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद् वातो रमते परिज्मन् ॥ २

आशुभिश्चिद्यान् वि मुचाति नून—मरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्या—मनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३

पुनः समव्यद् विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत् संहायास्थाद् व्यृतूँरदर्ध—ररमतिः सविता देव आगात् ॥ ४

नानौकांसि दुर्यो विश्वमायु—र्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधा—दन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥ ५

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषु—र्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागा—दनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ४०५

त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥ ७

याद्राध्यं वरुणो योनिमप्य—मनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात् स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥ ८

न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ९

भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥ १० ४१०

असम्यं तद् दिवो अद्भ्यः पृथिव्या स्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवा त्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ११ ४३०

॥ १०० ॥ (ऋ० ३।६२।१०-१२)×
(४३१-४३३) गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् १०
देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंध्या । भगस्य रातिमीमहे ११
देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः १२ ४३३

॥ १०१ ॥ (ऋ० ४।५३।१-७)
(४३४-४४०) वामदेवो गौतमः । जगती ।

तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महद् वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान् देवो अक्तुभिः १
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्व जीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम् २ ४३५
आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ३
अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग् बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ४
त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ५
बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छ त्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ६
आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ७ ४४०

॥ १०२ ॥ (ऋ० ४।५४।१-६) जगती, ६ त्रिष्टुप् ।

अभूद् देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् १
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यो ऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद् दामानं सवितर्व्यूर्णुषे ऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः २ ४४१

× ऋ. ३,६२,१० = वा. य. ३,३५; २२,९; ३०,२; ३६,३ ।

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ३

न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद् यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत् पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरि र्वर्ष्मन् दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ४

इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ५ ४४५

ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भि रादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ६ ४४६

॥ १०३ ॥ (ऋ० ५।८१।१-५)×
(४४७-४५०) श्यावाश्व आत्रेयः । जगती ।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इ न्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः १

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति २

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद् ययु र्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ३

उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनो त सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ४ ४५०

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इ दुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ५ ४५१

॥ १०४ ॥ (ऋ० ५।८२।१-९)+ । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि १

अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम् २

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ३

अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ४ ४५५

विश्वानि देव सवित र्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव ५

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ६ ४५७

× ऋ. ५।८१।१-२ = वा. य. ५,१४; ११।४,६; ३७,२; ११,३ । अथर्व, ७,७३,६ (उत्तरार्धः) ।

+ ऋ. ५।८२।४-५ = वा. य. ३०,३; सा. १४१ ।

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ७
य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ८
य इमा विश्वा जाता—न्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ९ ४६०

॥ १०५ ॥ (ऋ० ६।७१।१-६)

(४६१-४६६) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। जगती, ४-६ त्रिष्टुप्।

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि १
देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः २
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ३
उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ४
उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका।
दिवो रोहांस्यरुहत् पृथिव्या अरीरमत् पतयत् कच्चिदभ्वम् ५ ४६५
वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरे—रया धिया वामभाजः स्याम ६ ४६६

॥ १०६ ॥ (ऋ० ७।३८।१-६)

(४६७-४७२) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। ६ उत्तरार्धस्य भगो वा। त्रिष्टुप्।

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभि—र्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति १
उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः २
अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद् विश्वे वसवो गृणन्ति।
स नः स्तोमान् नमस्य१श्चनो धाद् विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ३
अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा।
अभि सम्राजो वरुणो गृण—न्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ४ ४७०
अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ५ ४७१

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ६ ४७१

॥ १०७ ॥ (ऋ० ७।४५।१-४)

आ देवो यातु सविता सुरत्नो ऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम १
उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् २
स घा नो देवः सविता सहावा ऽऽ साविषद् वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ३ ४७५
इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४ ४७६

॥ १०८ ॥ (ऋ० १०।१३९।१-३)

(४७७-४७९) देवगन्धर्वो विश्वावसुः । त्रिष्टुप् ।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वा न्त्संपश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः १
नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताची रन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् २
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः ।
देव इव सविता सत्यधर्मे न्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ३ ४७९

॥ १०९ ॥ (ऋ० १०।१४९।१-५)

(४८०-४८४) अर्चन् हैरण्यस्तूपः । त्रिष्टुप् ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णा दस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्ष मतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् १ ४८०
यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौन दपां नपात् सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजो ऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् २
पश्चेदमन्यदभवद् यजत्र ममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान् पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ३ ४८१

गावं इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान् वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ४
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा ऽऽङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ५ ४८४

॥ ११० ॥ (४८५-५१६) (वा० य० १।१०,३१)+

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् १० ४८५
सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ३१ ४८६

॥ १११ ॥ (वा० य० ४।४,२५)*

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ४
अभि त्यं देवꣳसवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः २५ ४८८

॥ ११२ ॥ (वा० य० ५।३९)

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् ।
एतत् त्वं देव सोम देवो देवाँ२ उपागा इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा ३९ ४८९

॥ ११३ ॥ (वा० य० ८।७)

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधा असि चनो मयि धेहि ।
जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ७ ४९०

॥ ११४ ॥ (वा० य० ९।१; ११।७, ३०,१)×

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा १ ४९१

+ वा० य० १।११,१४; २।११; ५।१०,२६; ६।१,९,३०; ९।३०,३८; १०।६; ११।९,२८, १८।३७, २०।३; २२।१ ३७।१; ३८।१। अथर्व १९।५१।२।

* अथर्व. ७।१४।१-२ । वा० ४६४ ।

× वा० य० ९,५; १८,३० = दै० [अदिति०] १६ ।

॥ ११५ ॥ (वा० य० १०,५; २८)×

सवित्रे स्वाहा ॥ ५ ॥　　　सविताग्निं सत्यप्रसवः　　　२८　४९३

॥ ११६ ॥ (वा० य० ११।१-३,८,११,६३)

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्　　　१
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । स्वर्ग्याय शक्त्या　　　२　४९५
युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्　　　३
इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यᳯ सखिविदᳯ सत्राजितं धनजितᳯ स्वर्जितम् ।
ऋचा स्तोमᳯ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्तनि स्वाहा　　　८
हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिᳯ हिरण्ययीम् ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्　　　११
देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या ।
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण　　　६३　४९९

॥ ११७ ॥ (वा० य० १७।७४)

ताᳯ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनाᳯ सहस्रधारां पयसा महीं गाम्　　　७४　५००

॥ ११८ ॥ (वा० य० १९।४३)

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः　　　४३　५०१

॥ ११९ ॥ (वा० य० २०।७०)ø

य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः । स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ७०　५०२

॥ १२० ॥ (वा० य० २१।२१)

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः　　　२१　५०३

॥ १२१ ॥ (वा० य० २२।११-१२)

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे । सुमतिᳯ सत्यराधसम्　　　११
सुष्टुतिᳯ सुमतीवृधो रातिᳯ सवितुरीमहे । प्र देवाय मतीविदे　　　१२　५०५

× वा० य० १०,५ = २०,६१　　ø वा० य० २०।७१-७० = दै० [इन्द्रः] १९५१-५६ ।

रातिं᳚ सत्पतिं᳚ महे स॑वितारमुप॑ ह्वये । आसवं दे॒ववीतये १३
दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्म॒तिमा॑स॒वं वि॒श्वदे॑व्यम् । धि॒या भगं॑ मनामहे १४ ५०७

॥ ११२ ॥ (वा० य० ३०।४)

वि॒भ॒क्तार॑ᳪ हवामहे वसो॑श्चि॒त्रस्य॒ राध॑सः । स॒वि॒तारं॑ नृ॒चक्ष॑सम् ४ ५०८

॥ ११३ ॥ (वा० य० ३५।२-३,५)

स॒वि॒ता ते॒ शरी॑रेभ्यः पृथि॒व्याँल्लो॒कमि॑च्छतु । तस्मै॑ युज्यन्तामु॒स्रियाः॑ २
स॒वि॒ता पु॑नातु ३ ५१०
स॒वि॒ता ते॒ शरी॑राणि मा॒तुरु॒पस्थ॒ आ व॑पतु । तस्मै॑ पृथिवि॒ शं भ॑व ५ ५११

॥ ११४ ॥ (वा० य० ३७।११-१२;१४-१५)

दे॒वस्त्वा॑ स॒वि॒ता मध्वा॑नक्तु । ११
सु॒प॒दा॒ प॒श्चाद्॑ दे॒वस्य॑ सवि॒तुराधि॑पत्ये॒ चक्षु॑र्मे दाः १२
गर्भो॑ दे॒वानां॑ पि॒ता म॑ती॒नां पतिः॑ प्र॒जाना॑म् ।
सं दे॒वो दे॒वेन॑ सवि॒त्रा ग॑त॒ सᳪ सूर्ये॑ण रोचते १४
सम॒ग्निर॒ग्निना॑ गत॒ सं दैवे॑न सवि॒त्रा सᳪ सूर्ये॑णारोचिष्ट ।
स्वाहा॒ सम॒ग्निस्तप॑सा गत॒ सं दैव्ये॑न सवि॒ता सᳪ सूर्ये॑णारूरुचत १५ ५१५

॥ ११५ ॥ (३८।८)

स॒वि॒त्रे त्वं ऋ॒भु॒मते॑ वि॒भु॒मते॒ वाज॑वते॒ स्वाहा॑ ८ ५१६

॥ ११६ ॥ (अथर्व० ११।१८।३ +

(५१७) द्रविणोदाः । विराड्डास्तारपङ्क्तिस्त्रिष्टुप् ।

यत् तं आ॒त्मनि॑ त॒न्वा॑ं घो॒रमस्ति॒ यद् वा॒ केशे॑षु प्र॒तिचक्ष॑णे वा ।
सर्वं॒ तद् वा॒चाप॑ हन्मो व॒यं दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता सूद॑यतु ३ ५१७

॥ ११७ ॥ (अथर्व० ५।२४।१)

(५१८-५१४) अथर्वा । चतुष्पदाऽतिशक्वरी ।

स॒वि॒ता प्र॑स॒वाना॒मधि॑पतिः॒ स मा॑वतु ।
अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चि॒त्त्या॑म॒स्यामाकू॑-
त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ १ ५१८

+ दे० [आयुर्वेद०] ६७५ ।

॥ १०८ ॥ (अथर्व० ६।१।१-३)

उष्णिक्, १ त्रिपदा पिपीलिकमध्या साम्नी जगती, २-३ पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक्।

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद् धेहि। आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् १

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः। सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् २ ५२०

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि। उभे सुष्टुती सुगातवे ३ ५२१

॥ १२९ ॥ (अथर्व० ७।१४।३-४) +

३ त्रिष्टुप्, ४ जगती।

सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ३

दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि।
पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ४ ५२३

॥ १३० ॥ (अथर्व० १९।१६।१) अनुष्टुप्।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः १ ५२४

॥ १३१ ॥ (अथर्व० ५।२५।१०)

(५२५-५२६) ब्रह्मा। अनुष्टुप्।

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे १२ ५२५

॥ १३२ ॥ (अथर्व० ५।२६।२) द्विपदा प्राजापत्या बृहती।

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा २ ५२६

॥ १३३ ॥ (अथर्व० ७।१६।१)

(५२७) भृगुः। त्रिष्टुप्।

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय।
संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः १ ५२७

॥ १३४ ॥ (अथर्व० [illegible])

(५२८) सिन्धुद्वीपः। [illegible]

देवस्य सवितुर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये

+ अथर्व० ७।१४।१-२। = दे० [अदिति०] [illegible]

६ [दे० अदिति०]

सवितृ-सहचारी देवगणः ।

(१) सवित्राद्याः ।

॥ १३५ ॥ (५१९-५२०) (वा० य० १०।३०)

स॒वि॒त्रा प्र॑सवि॒त्रा सर॑स्वत्या वा॒चा त्वष्ट्रा॑ रू॒पैः पू॒ष्णा
प॒शुभि॒रिन्द्रे॑णा॒स्मे बृह॒स्पति॑ना॒ ब्रह्म॑णा॒ वरु॑णे॒नौज॑सा॒ग्निना॑
तेज॑सा॒ सोमे॑न॒ राज्ञा॒ विष्णु॑ना दश॒म्या दे॒वत॑या॒ प्रसू॑तः॒ प्रस॑र्पामि ३० ५१९

(२) सवित्रादयः ।

॥ १३६ ॥ (वा० य० ३९।६)

स॒वि॒ता प्र॑थ॒मेऽह॑न्न॒ग्निर्द्वि॒तीये॑ वा॒युस्तृ॒तीय॑ आदि॒त्यश्च॑तु॒र्थे
च॒न्द्रमाः॑ पञ्च॒म ऋ॒तुः ष॒ष्ठे म॒रुतः॑ सप्त॒मे बृह॒स्पति॑रष्ट॒मे ।
मि॒त्रो न॑व॒मे वरु॑णो दश॒म इन्द्र॑ एकाद॒शे विश्वे॑ दे॒वा द्वा॑द॒शे ६ ५२०

(३) इन्द्रः, भगः, सविता ।

॥ १३७ ॥ (अथर्व० १।२६।१)

(५२१) ब्रह्मा । त्रिपदा एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप् ।

स॒हा॒माव॒स्मभ्य॑मस्तु रा॒तिः सहेन्द्रो॒ भगः॑ सवि॒ता चि॒त्ररा॑धाः २ ५२१

(४) सविता, आदित्याः, रुद्राः, वसवः ।

॥ १३८ ॥ (अथर्व० ६।६८।१)

(५२०) अथर्वा । पुरो विराडतिशाक्करगर्भा चतुष्पदा जगती ।

आयम॑गन्त्सवि॒ता क्षु॒रेणो॒ष्णेन॑ वाय उद॒केनेहि॑ ।
आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑व उन्दन्तु॒ सचे॑तसः॒ सोम॑स्य॒ राज्ञो॑ वपत॒ प्रचे॑तसः १ ५२२

(५) बृहस्पतिः सविता मित्रोऽर्यमा भगोऽश्विनौ ।

॥ १३९ ॥ (अथर्व० ६।१०३।१)

(५२१) उच्छोचन । अनुष्टुप् ।

सं॒दान॑ं वो॒ बृह॒स्पतिः॑ सं॒दानं॑ सवि॒ता क॑रत् ।
सं॒दानं॑ मि॒त्रो अ॑र्य॒मा सं॒दानं॒ भगो॑ अ॒श्विना॑ १ ५२३

---

(५) सूर्यः ।

॥ १४० ॥ (ऋ० १।५०।१-१३) *

(५३४-४६) प्रस्कण्वः काण्वः । गायत्री, १०-१३ अनुष्टुप् ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् १

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे २ ५३५

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ३

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ४

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ५

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ६

वि द्यामेषि रजस्पृथ्व्हा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ७ ५४०

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ८

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ९

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् १०

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ११

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि १२ ५४५

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् १३ ५४६

॥ १४१ ॥ (ऋ० १।११५।१-६) +

(५४७-५२) कुत्स आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च १

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।

यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् २

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।

नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ३ ५४९

---

* ऋ० १।५०।१-१०,११-१३ = वा० य० ७,४१; ८,४०-४१; २०,२१; ३३,३१-३२,३६; ३५,१४; ३८,२४. सा० ३१,६३३-६४० । अथर्व० १३,२,१६-२४; १३,२,२४; २०,४७,१३-२१ । ऋ० १।५०।११—१३ = ऐ० [आयुर्वेद०] ५४५-४७ ।

\+ ऋ० १।११५।१-२,४-६ = वा० य० ७,४२; १३,४६,३२,३७-३८,४० । अथर्व० १३,२,३५; २०,१०७,१४-१५; १२३,१-२ । सा० ६२९ ।

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद् रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ४ ५५०
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ५
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ६ ५५१

॥ १४२ ॥ (ऋ० १।१६४।४६-४७) ×
(५५३-५४) दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ४६
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ४७ ५५४

॥ १४३ ॥ (ऋ० ४।४०।५) +
(५५५) वामदेवो गौतमः । जगती ।

हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ५ ५५५

॥ १४४ ॥ (ऋ० ५।४०।५)
(५५६) अत्रिर्भौम । । अनुष्टुप् ।

यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः। अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः५ ५५६

॥ १४५ ॥ (ऋ० ७।६०।१)
(५५७-५६७) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ । त्रिष्टुप् ।

यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः १ ५५७

॥ १४६ ॥ (ऋ० ७।६२।१-२)

उत् सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत् पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् १
स सूर्य प्रति पुरो न उद् गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च २ ५५९

× दै० (आग्नेय०) ७३४-७३९ (अनुष्टुप्सूक्तः) । + वा० य० १०,२४,१०,१४

वि नः सहस्रं शुरुधो रद न्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं मा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ३ ५६०

॥ १४७ ॥ (ऋ० ७।६३।१-४)

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देव श्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि १
उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः २
विभ्राजमान उषसामुपस्थाद् रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ३
दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ४ ५६४

॥ १४८ ॥ (ऋ० ७।६६।१४-१६) +

प्रगाथः = (समा बृहती + विषमा सतोबृहती) १६ पुर उष्णिक् ।

उदु त्यद् दर्शतं वपु र्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् १४ ५६५
शीर्ष्णःशीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।
सप्त स्वसारःसुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे १५
तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् १६ ५६७

॥ १४९ ॥ (ऋ० ८।१०१।११-१२) ×

(५६८-६९) जमदग्निर्भार्गवः । प्रगाथः = (विषमा बृहती + समा सतोबृहती)

बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यते ऽद्धा देव महाँ असि ११
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् १२ ५६९

\+ ऋ० ७।६६।१६ = वा० य० ३६,२४ ।

× वा० य० ३३,३९-४० । अथर्व० १३,२,२९; २०,५८,३-४ । सा० २७६,१७८८-८९ ।

॥ १५० ॥ (ऋ० १०।३७।१-१२)×

(५७०-८१) सौर्योऽभितपाः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ १ ॥ ५७०

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहाऽऽपो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥ २ ॥

न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥ ३ ॥

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद् विश्वामनिरामनाहुति-मपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव ॥ ४ ॥

विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रत-महेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥ ५ ॥

तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ॥ ६ ॥ ५७५

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग् जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥ ७ ॥

महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः ।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥ ८ ॥

यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः ।
अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्या-ऽह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ॥ ९ ॥

शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद् दुरोणे तत् सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ १० ॥

अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत् पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥ ११ ॥ ५८०

यद् वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम् ।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन् तदेनो वसवो नि धेतन ॥ १२ ॥ ५८१

× ऋ० १०,३७,१ = मा० य० ४,३५ ।

॥ १५१ ॥ (ऋ० १०।१५८।१-५)

(५८२-८६) चक्षुः सौर्यः । गायत्री, २ स्वराट् ।

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः १
जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति । पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः २
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः ३
चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । सं चेदं वि च पश्येम ४ ५८५
सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य । वि पश्येम नृचक्षसः ५ ५८६

॥ १५२ ॥ (ऋ० १०।१७०।१-४) ❀

(५८७-९०) विभ्राट् सौर्यः । जगती, ४ आस्तारपङ्क्तिः ।

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति १
विभ्राड् बृहत् सुभृतं वाजसातमं धर्मन् दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद् धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ३
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ४ ५९०

॥ १५३ ॥ (५९१-६०१) (वा० य० १।११)

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृंहन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।
पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यं रक्ष ११ ५९१

॥ १५४ ॥ (वा० य० २।२६) ×

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि । सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते २६ ५९२

॥ १५५ ॥ (वा० य० ३।५)

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ५ ५९३

❀ ऋ० १०,१७०,१-३ = वा० य० ३३,३०; सा० ६२८,१४५३-१४५५

× वा० य० २।२६ (उत्तरार्धः) = अथर्व० १०,५,३७ (?); वा० य० ५।३७

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ९
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा १० ५९५

॥ १९५ ॥ (वा० य० ३।३३)

अश्वनामश्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ३३ ५९६

॥ १५७ ॥ (वा० य० ८।४०)❀

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैषते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ।
सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ४० ५९७

॥ १५८ ॥ (वा० य० १२।५८)×

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ५८ ५९८

॥ १५९ ॥ (वा० य० २०।१६,२१)+

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व॰ हंसः १६
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् २१ ६००

॥ १६० ॥ (वा० य० ३३।३३-३५,४१) ●

दैव्यावध्वर्यू आ गत॰ रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञ॰ समञ्जाथे ३३
आ न इडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ३४
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ३५
थायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ४१ ६०१

❀ वा० य० ८।४१। × वा० य० १२।४२=दै० [अग्नि०] ५०१ मन्त्र द्रष्टव्यः ।
+ वा० य० २०।१६=अथर्व० (६।११५।१-२) पाठभेद क्रमेण, तथा च वा० य० २०।२१, २७।१०, ३५,१४, ३८,२४ = ऋ० १।५०।१० अथर्व० ७।५३।७ पाठभेदेन च दृश्यते ।
● वा० य० ३३।३५,४१ = दै० [इन्द्रः] ४४३३, ६३७८।

॥ १६१ ॥ (वा० य० ३६।९,२४)×

शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं नो॑ भवत्वर्य॒मा ।
शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पतिः॒ शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः   ९   ६०५
तच्चक्षु॑र्दे॒वहि॑तं पु॒रस्ता॑च्छु॒क्रमु॒च्चर॑त् ।
पश्ये॑म श॒रदः॑ श॒तं जीवे॑म श॒रदः॑ श॒तꣳ शृणु॑याम श॒रदः॑ श॒तं प्र ब्र॑वाम श॒रदः॑
श॒तमदी॑नाः स्याम श॒रदः॑ श॒तं भूय॑श्च श॒रदः॑ श॒तात्   २४   ६०६

॥ १६२ ॥ (वा० य० ३७।१६-१८)

ध॒र्ता दि॒वो वि भा॑ति॒ तप॑सस्पृथि॒व्यां ध॒र्ता दे॒वो दे॒वाना॒मम॑र्त्यस्तपो॒जाः ।
वाच॑म॒स्मे नि य॑च्छ देवा॒युव॑म्   १६
अप॑श्यं गो॒पाम॒निप॑द्यमान॒मा च॒ परा॑ च प॒थिभि॒श्चर॑न्तम् ।
स स॒ध्रीची॒ः स विषू॑ची॒र्वसा॑न॒ आ व॑रीवर्ति॒ भुव॑नेष्व॒न्तः   १७
विश्वा॑सां भु॒वां प॑ते॒ विश्व॑स्य मनसस्पते॒ विश्व॑स्य वचसस्पते॒ सर्व॑स्य वचसस्पते।
दे॒वश्रुत्त्वं दे॑व घर्म दे॒वो दे॒वान् पा॒ह्यत्र॒ प्राव॒ीरनु॑ वां दे॒ववी॑तये ।
मधु॒ माध्वी॑भ्यां॒ मधु॒ माधू॑चीभ्याम्   १८   ६०९

॥ १६३ ॥ (अथर्व० १।३।५)
(६१०-६१०) अथर्वा । पथ्यापङ्क्तिः ।

वि॒द्मा श॒रस्य॑ पि॒तरं॑ सूर्यं॑ श॒तवृ॑ष्ण्यम् ।
तेना॑ ते त॒न्वे॒३ शं क॑रं पृथि॒व्यां ते॑ नि॒षेच॑नं ब॒हिष्टे॑ अस्तु बालिति॑   ५   ६१०

॥ १६४ ॥ (अथर्व० २।२१।१-५)
[एकावसानम्] १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

सूर्य॒ यत् ते॒ तप॒स्तेन॒ तं प्रति॑ तप॒ यो॒३ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः   १
सूर्य॒ यत् ते॒ हर॒स्तेन॒ तं प्रति॑ हर॒ यो॒३ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः   २
सूर्य॒ यत् ते॒ऽर्चि॒स्तेन॒ तं प्रत्य॑र्च॒ यो॒३ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः   ३
सूर्य॒ यत् ते॑ शो॒चिस्तेन॒ तं प्रति॑ शोच॒ यो॒३ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः   ४
सूर्य॒ यत् ते॒ तेज॒स्तेन॒ तम॑ते॒जसं॑ कृणु॒ यो॒३ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः   ५   ६१५

× दै० [आयुर्वेद०] ११९-१२६ ।

७ दे. [अदितिः]

॥ १६५ ॥ (अथर्व० ५।२४।९) चतुष्पदाऽतिशक्करी ।

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामा-
कूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ९ ६१३

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ७।१३।१-२) अनुष्टुप् ।

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे १
यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।
उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे २ ६१८

॥ १६७ ॥ (अथर्व० १९।१७।५) अतिजगती ।

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ५ ६१९

॥ १६८ ॥ (अथर्व० १९।१८।५) सम्राडार्च्यनुष्टुप् ।

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ५ ६१०

॥ १६९ ॥ (अथर्व० १९।१९।३) भुरिग्बृहती ।

सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ३ ६११

॥ १७० ॥ (अथर्व० १९।२३।२४) दैवी पङ्क्तिः ।

सूर्याभ्यां स्वाहा २४ ६११

॥ १७१ ॥ (अथर्व० २।३६।५)
(६१३) पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् । तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ५ ६१३

॥ १७२ ॥ (अथर्व० ४।४०।७)
(६१४) शुक्रः । त्रिष्टुप् ।

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ७ ६१४

॥ १७३ ॥ (अथर्व० ६।५२।१)
(६१५) भागलिः । अनुष्टुप् ।

उत्सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा १ ६१५

॥ १७४ ॥ (अथर्व० १६।९।३-४)

(६२६-२७) यमः । ३ साम्नी पङ्क्तिः, ४ परोष्णिक् ।

अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ३

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ४ ६२७

॥ १७५ ॥ (साम० ४५८)

(६२८) गौराङ्गिरसः । अतिजगती (अष्टिर्वा) ।

अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।

ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः । सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः २ ६२८

॥ १७६ ॥ (साम० १७९०-९२) × सुकक्ष आङ्गिरसः । गायत्री ।

सूर्य-सहचारी देवगणः ।

(१) सूर्यः पर्जन्याग्नयो वा, सरस्वान् सूर्यो वा ।

॥ १७७ ॥ (ऋ० १।१६४।५१-५२)

(६२९-३०) दीर्घतमा औचथ्यः । ५१ अनुष्टुप्, ५२ त्रिष्टुप् ।

समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ५१

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।

अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ५२ ६३०

(२) सूर्यमित्रावरुणाः ।

॥ १७८ ॥ (ऋ० ७।६३।५)

(६३१) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।

प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ५ ६३१

(३) सूर्याविवाहः ।

॥ १७९ ॥ (ऋ० १०।८५।६-१६)

(६३२-५८) सावित्री सूर्या ऋषिका । अनुष्टुप्, १४ त्रिष्टुप् ।

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।

सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृतम् ६ ६३२

× दे० [इन्द्रः] १४६०-१४६२ ।

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ७
स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वरा ऽग्निरासीत् पुरोगवः ८
सोमो वधूयुरभव दश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ९ ६३१
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहम् १०
ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ११
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्या ऽऽरोहत् प्रयती पतिम् १२
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावो ऽर्जुन्योः पर्युह्यते १३
यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरावृणीत पूषा १४ ६४०
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप । क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः १५
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः १६ ६४१

(४) सूर्या-सावित्री ।

॥ १८० ॥ (ऋ० १०।८५।३२-४७)

अनुष्टुप्, ३४ उरोबृहती, ३६-३७,४४ त्रिष्टुप्, ४३ जगती ।

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीता मप द्रान्त्वरातयः ३२
सुमङ्गलीरियं वधू रिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वाया ऽथास्तं वि परेतन ३३
तृष्टमेतत् कटुकमेत दपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात स इद् वाधूयमर्हति ३४ ६४२

आशसंनं विशसंन मथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ३५
गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधि र्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ३६
तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्याइ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ३७
तुभ्यमग्रे पर्यवह न्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ३८
पुनः पत्नीमग्निरदा दायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पति र्जीवाति शरदः शतम् ३९ ६५०

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पति स्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ४०
सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये ।
रयिं च पुत्राँश्चादा दग्निर्मह्यमथो इमाम् ४१
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभि र्मोदमानौ स्वे गृहे ४२
आ नः प्रजां जनयतु प्रजापति राजरसाय समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ४३
अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ४४ ६५५

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ४५
सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ४६
समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ४७ ६५८

[५] सूर्य-वैश्वानरोऽग्निः ।

॥ १८१ ॥ (ऋ० १०।८८।१-१९)

(६५९-७७) आङ्गिरसो मूर्धन्वान्, वामदेव्यो वा । त्रिष्टुप् ।

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥ १ ॥
गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्ह—माविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापो ऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥ २ ॥ ६६०
देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभि—रग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमा—माततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ३ ॥
यो होताऽऽसीत् प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्य—च्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥ ४ ॥
यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्ध—न्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ॥ ५ ॥
मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्नि—स्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेता—मपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥ ६ ॥
दृशेन्यो यो महिना समिद्धो ऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ॥ ७ ॥ ६६५
सूक्तवाकं प्रथममादिदग्नि—मादिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत् तनूपा—स्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ॥ ८ ॥
यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमा—मृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥ ९ ॥
स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्नि—मजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ॥ १० ॥
यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूता—मादित् प्रापश्यन् भुवनानि विश्वा ॥ ११ ॥
विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभाती—रपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् ॥ १२ ॥ ६७०

वैश्वानरं कवयो यज्ञियासो ऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् ॥ १३

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् ॥ १४

द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणा-महं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ १५

द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ् विश्वा भुवनानि तस्था-वप्रयुच्छन् तरणिर्भ्राजमानः ॥ १६

यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित् सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् ॥ १७ ६७६

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥ १८

यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो३ वसते मातरिश्वः ।
तावद् दधात्युप यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् ॥ १९ ६७७

(६) सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च ।

॥ १८१ ॥ [दै० (आयुर्वेद०) ४८९-९० मन्त्राः द्रष्टव्याः ।]

(७) सूर्यः प्रजापतिः ।

॥ १८३ ॥ [दै० (आयुर्वेद०) १३३१-३३ मन्त्रौ द्रष्टव्यौ ।]

(८) सूर्याचन्द्रमसौ ।

॥ १८४ ॥ (अथर्व० ६।८३।१)×

(६७८) भगः । अनुष्टुप् ।

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥ १ ६७८

॥ १८५ ॥ (अथर्व० ७।८१।१-६)+

(६७९-८४) अथर्वा । त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ आस्तारपङ्क्तिः, ५ स्वराडास्तारपङ्क्तिः ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ १ ६७९

+ दै० [आयुर्वेद०] ५१३ । × ऋ० १०।८५।१८-१९; अथर्व० १३।२।११; १४।१।२३-२४ ।

नवोंनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुपसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः २ ६८०
सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।
अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ३
दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ४
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।
आ वयं प्यासिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ५
यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ६ ६८४

(९) सूर्यः आपश्च ।

॥ १८६ ॥ (अथर्व० ७।१०७।१)
(६८५) भृगुः । अनुष्टुप् ।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।
आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन् १ ६८५

(१०) सूर्यः गौः ।

॥ १८७ ॥ (अथर्व० १०।४८।१-६)
(६८६-९१) चिलम्, ४-६ सर्पराज्ञी । गायत्री ।

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः १
ता अर्पन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा २
वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ३
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ४
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ५
त्रिंशद्धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ६ ६९१

(६) त्वष्टा, धाता, पूषा, भगः, अर्यमा ।

[१] त्वष्टा । *

॥ १८८ ॥ (ऋ० १०।१८।६)
(६९२) संकुसुको यामायनः । त्रिष्टुप् ।

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ६ ६९२

॥ १८९ ॥ [६९३-९७] (वा० य० २।२४) ×
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् २४ ६९३

॥ १९० ॥ (वा० य० ६।७)
उपावीरस्युप देवान् दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् ।
देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ७ ६९४

॥ १९१ ॥ (वा० य० ८।१७) +
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवोऽअग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा १७ ६९५

॥ १९२ ॥ (वा० य० २०।४४)
त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन् वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ४४ ६९६

॥ १९३ ॥ (वा० य० २९।९)
त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः ।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ९ ६९७

॥ १९४ ॥ (अथर्व० ३।३१।५)
(६९८-९९) ब्रह्मा । विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ५ ६९८

* दे० [अग्निः (आग्री सूक्तानि)] १९१५,१९२७,१९३९,१९५०,१९६१,१९७१,१९८९,२०००,२०११,२०२२,२०३४,२०४५,२०५७,२०६९, २०८१,२०९२,२१०३,२११४,२१२६,२१३८ ।

× वा० य० ८।१४,१६; अथर्व० ६।५३।३ (पाठभेदेन) । + अथर्व० ७।१७।४ ।

(अथर्व० ५।२६।८) द्विपदा प्राजापत्या बृहती।

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ८ ६९९

॥ १९५ ॥ (अथर्व० ६।१२।२)

(७००) बृहच्छुक्रः। त्रिष्टुप्।

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद् विरिष्टम् ३ ७००

॥ १९६ ॥ (अथर्व० ६।७८।३)

(७०१-२) अथर्वा। अनुष्टुप्।

त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम्।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ३ ७०१

॥ १९७ ॥ (अथर्व ६।८१।३)

यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ३ ७०२

त्वष्ट्र-सहचारी देवगणः।

(१) त्वष्टा शुक्रश्च।

॥ १९८ ॥ (ऋ० २।३६।१)

(७०३) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। जगती।

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ३ ७०३

(२) त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः।

॥ १९९ ॥ (अथर्व० ६।४।१)

(७०४) अथर्वा। पथ्याबृहती।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः १ ७०४

[२] धाता।

॥ २०० ॥ (ऋ० १०।१८।५)

(७०५) संकुसुको यामायनः। त्रिष्टुप्।

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ५ ७०५

॥ १०१ ॥ (अथर्व० १३।४।३)
(७०६) ब्रह्मा । प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ३ ७०६

॥ १०२ ॥ (अथर्व० १८।३।२६)
(७०७-१०) । अथर्वा । जगती ।

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २६ ७०७

धातृ-सहचारी-देवगणः ।

(१) धाता, सविता, इन्द्रः, त्वष्टा, अदितिः ।

॥ १०३ ॥ (अथर्व० ३।८।२)

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः ।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि २ ७०८

(२) धाताविधातारौ, ऋतवः ।

॥ १०४ ॥ (अथर्व० ३।१०।१०)

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे १० ७०९

(३) धाता, विधाता, सविता, आदित्याः, रुद्राः, अश्विनौ ।

॥ १०५ ॥ (अथर्व० ५।३।९)

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सवितामिमातिषाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ९ ७१०

(४) धाता, सविता ।

॥ १०६ ॥ (अथर्व० ७।१७।१-३)
(७११-१३) भृगुः । १-२ गायत्री, ३ त्रिष्टुप् ।

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन यच्छतु १
धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः २ ७११

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ३ ७१३

(५) सविता, धाता, पूषा, त्वष्टा ।

॥ २०७ ॥ (अथर्व० ११।६।३)
(७१४) शन्ताति । अनुष्टुप् ।

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् । त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ३ ७१४

[२] पूषा ।

॥ २०८ ॥ (ऋ० १।२३।१३-१५)
(७१५-१७) मेधातिथिः काण्व । गायत्री ।

आ पूषञ्चित्रबर्हिष—माघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् १३ ७१५
पूषा राजानमाघृणि—रपगूळ्हं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् १४
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड् युक्ताँ अनुसेषिधत् । गोभिर्यवं न चर्कृषत् १५ ७१७

॥ २०९ ॥ (ऋ० १।४२।१-१०)
(७१८-२७) कण्वो घौरः । गायत्री ।

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः १
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि २
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ३ ७२०
त्वं तस्य द्वयाविनो ऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ४
आ तत् ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ५
अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ६
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ७
अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ८ ७२५
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ९
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे १० ७२७

॥ २१० ॥ (ऋ० १।१३८।१-४)
(७२८-३१) परुच्छेपो दैवोदासि । अत्यष्टिः ।

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नह—मन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः १ ७२८

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध
उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत् त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान् द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि　　२
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तोऽवसा बुभुज्रिर
इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव　　३　७३०
अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवो ऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे　　४　७३१

॥ १११ ॥ (ऋ० ३।६२।७-९)

(७३२-३४) गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते　　७
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम्　　८
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भुवत्　　९　७३४

॥ ११२ ॥ (ऋ० ६।४८।१६-१९)

(७३५-३८) शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) १६ ककुप्, १७ सतोबृहती, १८ पुर उष्णिक्, १९ बृहती ।

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे । अघा अर्यो अरातयः　　१६　७३५
मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः　　१७
दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः　　१८
परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा　　१९

॥ ११३ ॥ (ऋ० ६।५३।१-१०)

(७३९-७४८) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । गायत्री, ८ अनुष्टुप् ।

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि
अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन् दानाय चोदय । पणेश्चिद् वि म्रदा मनः ३
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः ४
परि तृन्धि पणीना- मारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ५
वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ६
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ७ ७४५
यां पूषन् ब्रह्मचोदनी- मारां बिभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदय- मा रिख किकिरा कृणु ८
या ते अष्ट्रा गोओपशा ऽऽघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ९
उत नो गोषणिं धियं- मश्वसां वाजसामुत । नृवत् कृणुहि वीतये १० ७४८

॥ २१४ ॥ (ऋ० ६।५४।१-१०)+ गायत्री ।

सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् १
समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् २ ७५०
पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ३
यो अस्मै हविषाविध- न्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ४
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ५
पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ६
माकिर्नेशन्माकीं रिष- न्माकीं सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि ७ ७५५
शृण्वन्तं पूषणं वय- मिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ८
पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ९
परि पूषा परस्ता- द्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु १० ७५८

॥ २१५ ॥ (ऋ० ६।५५।१-६)

एहि वां विमुचो नपा- दाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव १
रथीतमं कपर्दिन- मीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे २ ७६०
रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ३
पूषणं न्व१जाश्व- मुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ४
मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ५
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ६ ७६४

+ ऋ० ६,५४,९-१०=वा० य० ३४,४१; अथर्व० ७,९,३-४

॥ २१६ ॥ (ऋ० ६।५६।१-६) गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे १ ७६५
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते २
उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद् रथीतमः ३
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत् सु नो मन्म साधय ४
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ५
आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् । अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ६ ७७०

॥ २१७ ॥ (ऋ० ६।५८।१-४)× त्रिष्टुप्, २ जगती ।

शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु १
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् संचक्षाणो भुवना देव ईयते २
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ३
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ४ ७७४

॥ २१८ ॥ (ऋ० १०।१७।३-६)+
(७७५-७८) देवश्रवा यामायनः । त्रिष्टुप् ।

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यो ऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ३ ७७५
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ४
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरो ऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ५
प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ६ ७७८

× ऋ० ६,५८,१ = सा० ७५ ।
+ ऋ० १०,१७,५-६;३-४ = अथर्व० ७,९,१-२, १८,२,५४-५५ ।

॥ ११९ ॥ (ऋ० १०।२६।१-९)

(७७९-८७) विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । अनुष्टुप्, १,४ उष्णिक् ।

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः । प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः १

यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः । विप्र आ वंसद्धीतिभि श्चिकेत सुष्टुतीनाम् २ ७८०

स वेद सुष्टुतीना मिन्दुर्न पूषा वृषा । अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ३

मंसीमहि त्वा वय मस्माकं देव पूषन् । मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ४

प्रत्यर्धिर्यज्ञानां मश्वहयो रथानाम् । ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ५

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।

वासोवायोऽवीना मा वासांसि मर्मृजत् ६

इनो वाजानां पति रिनः पुष्टीनां सखा । प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद् वि वृथा यो अदाभ्यः ७ ७८१

आ ते रथस्य पूष न्नजा धुरं ववृत्युः । विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ८

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः । भुवद् वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ९ ७८७

॥ ११० ॥ [७८८] (वा० य० ३४।४१) ×

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानडर्कम् ।

स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा । ४२ ७८८

॥ १११ ॥ [दे० (आयुर्वेद० १७६५-६७) मन्त्राः द्रष्टव्याः ।]

पूषा-सहचारी देवगण ।

(१) मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः ।

॥ ११२ ॥ (अथर्व० ७।३३।१)

(७८९) ब्रह्मा । पथ्यापङ्क्तिः ।

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे १ ७८९

(२) अग्निः, सोमः, पूषा ।

॥ ११३ ॥ (अथर्व० १६।९।२)

(७९०) यम । आर्च्युष्णिक् ।

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके २ ७९०

× ऋ० ६,४९,८ ।

[४] भगः ।

॥ ११४ ॥ (ऋ० १।२४।५)

(७९१) आजीगर्तिः शुनःशेपः, स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । गायत्री ।

भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे　　५　७९१

॥ ११५ ॥ (ऋ० ७।३८।६ उत्तरार्धः)

(७९२-९७) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम्　　६　७९२

॥ ११६ ॥ (ऋ० ७।४१।२-६)×

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह　　२
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम　　३
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम　　४　७९५
भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह　　५
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु　　६　७९७

॥ ११७ ॥ (अथर्व० २।३०।५)

(७९८) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम्　　५　७९८

॥ ११८ ॥ (अथर्व० २।३६।७)

(७९९) पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः । एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे　　७　७९९

॥ ११९ ॥ (अथर्व० ५।१३।१)

(८००) ब्रह्मा । [एकावसाना] त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुरउष्णिक् ।

भगो युनक्त्वाशिषो न्व१स्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा　　१　८००

× वा० य० ३४,३५-३९; अथर्व० ३,१६,२-६

१ दे. [अदितिः]

॥ १३० ॥ (अथर्व० ६।१२९।१-३)
(८०१-३) अथर्वाङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना । कृणोमि भगिनं मापं द्रान्त्वरातयः १
येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह । तेन मा भगिनं कृणवप द्रान्त्वरातयः २
यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः। तेन मा भगिनं कृणवप द्रान्त्वरातयः ३ ८०३

॥ १३१ ॥ (अथर्व० १४।१।५०-५१,५३,६०)
(८०४-७) सूर्या सावित्री । ५०,५३ त्रिष्टुप्, ५१ अनुष्टुप्, ६० पराऽनुष्टुप् ।

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ५०
भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ५१ ८०५
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ५३
भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ६० ८०७

भग-सहचारी-देवगणः ।

(१) अंशः, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, अदितिः, मरुतः ।

॥ १३२ ॥ (अथर्व० ६।४।२)
(८०८) अथर्वा । प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् २ ८०८

(२) धाता, अर्यमा, भगः, अश्विनौ ।

॥ १३३ ॥ (अथर्व० १४।२।१३)
(८०९) सूर्या सावित्री । त्रिष्टुप् ।

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु १३ ८०९

[५] अर्यमा ।

॥ २३४ ॥ (अथर्व० ६।६०।१-३)
(८१०-१२) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः । अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये १ ८१०
अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती । अङ्गो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति २
धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।
धाताऽस्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ३ ८१२

॥ २३५ ॥ (अथर्व० ११।६।४)
(८१३) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

गन्धर्वाप्सरसों ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ४ ८१३

॥ २३६ ॥ (अथर्व० १३।४।४)
(८१४-१६) ब्रह्मा । प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ४ ८१४

अर्यमन्-सहचारी-देवगणः ।

(१) अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः ।

॥ २३७ ॥ (अथर्व० ३।१४।२) अनुष्टुप् ।

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद्वसु २ ८१५

(२) मित्रः, वरुणः, त्वष्टा, अर्यमा, महादेवः ।

॥ २३८ ॥ (अथर्व० ९।७।७) त्रिपदा पिपीलिकमध्या निचृद्गायत्री ।

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ७ ८१६

(३) अर्यमा, भगः, बृहस्पतिः, देवीः ।

॥ २३९ ॥ (अथर्व० ३।२०।२)
(८१७) वसिष्ठः । अनुष्टुप् ।

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे २ ८१७

(७) विष्णुः।

॥ १४० ॥ (ऋ० १।२२।१६–२१)+

(८१८–१३) मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।

अतो॑ दे॒वा अ॑वन्तु नो॒ यतो॒ विष्णु॑र्विचक्र॒मे । पृ॒थि॒व्याः स॒प्त धाम॑भिः १६
इ॒दं विष्णु॒र्वि च॑क्रमे त्रे॒धा नि द॑धे प॒दम् । समू॑ळ्हमस्य पांसु॒रे १७
त्रीणि॑ प॒दा वि च॑क्रमे॒ विष्णु॑र्गो॒पा अदा॑भ्यः । अतो॒ धर्मा॑णि धा॒रय॑न् १८ ८१०
विष्णोः॒ कर्मा॑णि पश्यत॒ यतो॑ व्र॒तानि॑ पस्प॒शे । इन्द्र॑स्य॒ युज्यः॒ सखा॑ १९
तद् विष्णोः॑ पर॒मं प॒दं सदा॑ पश्यन्ति सू॒रयः॑ । दि॒वी॑व॒ चक्षु॒रात॑तम् २०
तद् विप्रा॑सो विप॒न्यवो॑ जागृ॒वांसः॒ समि॑न्धते । विष्णो॒र्यत् प॑र॒मं प॒दम् २१ ८१३

॥ १४१ ॥ (ऋ० १।१५४।१–६)*

(८१४–१७) दीर्घतमा औचथ्यः। त्रिष्टुप्।

विष्णो॒र्नु कं॑ वी॒र्या॑णि॒ प्र वो॑चं॒ यः पार्थि॑वानि विम॒मे रजां॑सि ।
यो अस्क॑भाय॒दुत्त॑रं स॒धस्थं॑ विचक्रमा॒णस्त्रे॒धोरु॑गा॒यः १
प्र तद् विष्णुः॑ स्तवते वी॒र्ये॑ण मृ॒गो न भी॒मः कु॑च॒रो गि॑रि॒ष्ठाः ।
यस्यो॒रुषु॑ त्रि॒षु वि॒क्रम॑णेष्वधिक्षि॒यन्ति॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ २ ८१५
प्र विष्ण॑वे शू॒षमे॑तु॒ मन्म॑ गिरि॒क्षित॑ उरुगा॒याय॒ वृष्णे॑ ।
य इ॒दं दी॒र्घं प्रय॑तं स॒धस्थ॒मेको॑ विम॒मे त्रि॒भिरित् प॒देभिः॑ ३
यस्य॒ त्री पू॒र्णा मधु॑ना प॒दान्यक्षी॑यमाणा स्व॒धया॒ मद॑न्ति ।
य उ॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वीमु॒त द्यामेको॑ दा॒धार॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ४
तद॑स्य प्रि॒यम॒भि पाथो॑ अश्यां॒ नरो॒ यत्र॑ देव॒यवो॒ मद॑न्ति ।
उ॒रु॒क्र॒मस्य॒ स हि बन्धु॑रि॒त्था विष्णोः॑ प॒दे प॑र॒मे मध्व॒ उत्सः॑ ५
ता वां॒ वास्तू॑न्युश्मसि॒ गम॑ध्यै॒ यत्र॒ गावो॒ भूरि॑शृङ्गा अ॒यासः॑ ।
अत्राह॒ तदु॑रुगा॒यस्य॒ वृष्णः॑ पर॒मं प॒दमव॑ भाति॒ भूरि॑ ६ ८१६

॥ १४२ ॥ (ऋ० १।१५५।४–६) जगती।

त॒त्तदिद॑स्य॒ पौंस्यं॑ गृणीमसी॒नस्य॑ त्रा॒तुर॑वृ॒कस्य॑ मी॒ळ्हुषः॑ ।
यः पार्थि॑वानि त्रि॒भिरिद् विगा॑मभिरु॒रु क्रमि॑ष्टोरुगा॒याय॑ जी॒वसे॑ ४ ८१७

+ ऋ० १।२२।१७–२१ = वा० य० ५,१५; ३४,४३–४४; ६,४–५; १३,३३; अथर्व. ७,२६,४–७; सा० १९९, १६६९–७४।

* ऋ. १।१५४।१–२,६ = वा० य० ५,१८,२०; ६,३; अथर्व ७।२६।१–२,३ (प्रथमचरणः)।

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो ऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः　५
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम्　६　८३१

॥ १४३ ॥ (ऋ० १।१५६।१-५)

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता　१
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्　२
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे　३　८३५
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते　४
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत् त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत्　५　८३७

॥ १४४ ॥ (ऋ० ७।९९।१-३,७)+
(८३८-४१) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से　१
न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः　२
इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः　३
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः　७　८४१

+ ऋ० ७।९९।३,७ = वा य. ५,१६; ऋ० ७।१००।७ । दै० [इन्द्रः] ३३०३-५ ।

॥ १४५ ॥ (ऋ० ७।१००।१-६)

नू मर्तो दयते सनिष्यन् यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् १
त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्या—मप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरे—रश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः २
त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ३
वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ४ ८४५
प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नामा—र्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ५
किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद् यदन्यरूपः समिथे बभूथ ६ ८४७

॥ १४६ ॥ (८४८-५०) (वा० य० १।२७,३०)

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन
त्वा छन्दसा परिगृह्णामि ।
सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च २७
अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोऽस्यूर्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि ।
अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ३० ८४९

॥ १४७ ॥ (वा० य० १।६,८,१५)

ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां
यज्ञन्यम् ६ ८५०
अत्यन्यां अगां नान्यां उपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः । तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्ताम् ।
अर्द्मणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णो
स्थानमसीत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात् ८
दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च
वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण
च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः १५ ८५१

॥ २४८ ॥ (वा० य० ५।१,१९,२१,२३-२५,३८)×

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा १

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्र यच्छ दक्षिणादोत सव्याद् विष्णवे त्वा १९

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि ।
वैष्णवमसि विष्णवे त्वा २१ ८५५

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि २३

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा २४

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वां वलगहना उप दधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ २५

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ३८ ८५९

॥ २४९ ॥ (वा० य० ८।१)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।
विष्ण उरुगायैष ते सोमस्तं रक्षस्व मा त्वा दभन् १ ८६०

॥ २५० ॥ (अथर्व० ७।२६।१-३,८)

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः १

प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत आ जगम्यात् परस्याः ३ ८६१

× वा० य० ५।१८=वा० य० ५,२१; अथर्व० ७।२६।१

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ३
दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ८ ८६३

॥ ५५१ ॥ (अथर्व० १०।५।२५-३५)

(८६५-७५) कौशिकः । त्र्यवसाना षट्पदा यथाक्षरं शक्वर्यतिशक्वरी ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २५ ८६१
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽन्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २६
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २७
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २८
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽऽशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २९
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३० ८७२
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३१
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः ।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० ३२
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।
अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३३
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः ।
कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३४ ८७३

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३५ ८७५

विष्णु-सहचारी-देवगण. ।

(१) विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः ।

॥ २५० ॥ (ऋ० १०।१८४।१) +

(८७६) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते १ ८७६

(२) विष्णुर्वरुणश्च ।

॥ २५३ ॥ (८७७) (वा० य० ८।५९) ×

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा ।
या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ५९ ८७७

॥ २५४ ॥ (अथर्व० ७।२५।२)

(८७८) मेधातिथिः । त्रिष्टुप् ।

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः २ ८७८

---

(८) विवस्वान् ।

॥ २५५ ॥ (८७९) (वा० य० २२।३०)

विवस्वते स्वाहा ३० ८७९

॥ २५६ ॥ (अथर्व० ६।११६।१-३) *

(८८० ८१) जाटिकायनः । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् १ ८८०
वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे २
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ३ ८८१

+ अथर्व० ५।२५।५; × अथर्व० ७।२५।१; * दे० [यजुर्वेद०] १०५६

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ३
दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ८ ८६४

॥ ५५१ ॥ (अथर्व० १०।५।२५-३५)

(८६५-७५) कौशिकः । त्र्यवसाना षट्पदा यथाक्षरं शक्वर्यतिशक्वरी ।
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २५ ८६५
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽन्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २६
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २७
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २८
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽऽशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २९
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३० ८.
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो ज
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः ।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।
अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः ।
कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्रा

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३५　८७५

विष्णु-सहचारी-देवगणः ।

(१) विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः ।

॥ २५० ॥ (ऋ० १०।१८४।१) +

(८७६) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु　त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिंञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते　१　८७६

(२) विष्णुर्वरुणश्च ।

॥ २५३ ॥ (८७७) (वा० य० ८।५९) ×

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा ।
या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ　५९　८७७

॥ ०५४ ॥ (अथर्व० ७।२५।०)

(८७८) मेधातिथिः । त्रिष्टुप् ।

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः　२　८७८

(८) विवस्वान् ।

॥ २५५ ॥ (८७९) (वा० य० २२।३०)

विवस्वते स्वाहा　३०　८७९

॥ २५६ ॥ (अथर्व० ६।११६।१-३) *

(८८० ८१) जाटिकायनः । जगती, ३ त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम्　१　८८०
वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे　२
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः　३　८८१

+ अथर्व० ५।२५।५,　× अथर्व० ७।२५।१,　* दे० [आयुर्वेद०] १०५६

(९) संवत्सरः कालः ।

॥ २५७ ॥ (ऋ० १।१६४।४८)
(८८३) दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ४८ ८८३

॥ २५८ ॥ [८८४-८६] (वा० य० २२।२८)

संवत्सराय स्वाहा २८ ८८४

॥ २५९ ॥ (वा० य० २७।४५)

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि ।
उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते
कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳ संवत्सरस्ते कल्पताम् ।
प्रेत्या एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय ।
सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ४५ ८८५

॥ २६० ॥ (वा० य० ३०।१५)

संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायाति-
तिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराꣳ संवत्सराय पलिक्नीम् १५ ८८६

॥ २६१ ॥ (अथर्व० ३।१०।८)
(८८६-८९) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ८ ८८७

॥ २६२ ॥ (अथर्व० ४।१५।१३) ×

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः १३ ८८८

॥ २६३ ॥ (अथर्व० ११।७।१८)

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः १८ ८८९

॥ २६४ ॥ (अथर्व० १५।३।१) पिपीलिकमध्या गायत्री ।

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति १ ८९०

× [आयुर्वेद०] ९९४,१०१६ ।

॥ २६५ ॥ (अथर्व० ११।५।२०)

(८९१) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः २० ८९१

॥ २६६ ॥ (अथर्व० १९।५३।१-१०)

(८९२-९०१) भृगुः । अनुष्टुप्; १-४ त्रिष्टुप्; ५ निचृत् पुरस्ताद्बृहती ।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा १
सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः २
पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन् ३
स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ४ ८९५

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ५
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ६
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ७
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पिताऽऽसीत् प्रजापतेः ८
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ९ ९००

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत १० ९०१

॥ १६७ ॥ (अथर्व० १९।५४।१-५)

अनुष्टुप्, २ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; ५ त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टिः।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥ १
कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही । द्यौर्मही काल आहिता ॥ २
कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥ ३
कालो यज्ञं समैरयद् देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४ ९०५
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥ ५ ९०६

---

(१०) ऋतवः ।

॥ १६८ ॥ (ऋ० १।१५।१-१२)+

(९०७-१८) मेधातिथिः काण्वः। [ऋतुदेवताः = १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ त्वष्टा, ४ अग्निः ५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० द्रविणोदाः, ११ अश्विनौ, १२ अग्निः]। गायत्री।

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना ऽऽ त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥ १
मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३
अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४ ९१०
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥ ५
युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६
द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ॥ ८
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९ ९१५
यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ९१६

+ ऋ० १।१५।१,४,११ = दे० [अग्निः] १२-१३; [मरुतः] ५;

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ११
गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज १२ ११८

॥ २६९ ॥ (ऋ० २।३६।१-६)ø

(९११-३०) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । [ऋतुदेवताः-१ इन्द्रो मधुश्च, २ मरुतो माधवश्च, ३ त्वष्टा शुक्रश्च, ४ अग्निः शुचिश्च, ५ इन्द्रो नभश्च, ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च । जगती ।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपो ऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे १
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभि र्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः २ ११०
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धस स्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ३
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चो शन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ४
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृत स्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ५
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ६ ११४

॥ २७० ॥ (अथर्व० २०।६७।१-६)×

[ऋतुदेवताः- १-४ द्रविणोदा ऋतवश्च, ५ अश्विनौ, ६ अग्निः ऋतुश्च]

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसो ऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददि र्होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः १ ११५
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः २
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे ऽरिषण्यन् वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ३
अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तो त नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ४ ११८

ø ऋ० २।३६।३,६ = दे० [अदिति०] ४००,७०३ × ऋ० १।१५।५ = दे० [अश्विनौ] २१४

अर्वाश्वमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गत—मथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ५
जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन् देवाँ उशतः पायया हविः ६ १३०

॥ २७१ ॥ [१३१ ४८] (वा० य० ७।३०)

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यꣳहसस्पतये त्वा ३० १३१

॥ २७२ ॥ (वा० य० १३।२५)

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् २५ १३२

॥ २७३ ॥ (वा० य० १४।६,१५-१६,२७,२९)

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तः० ।०। ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना० ६
नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः० ।०। वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना० १५
इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तः० ।०। शारदावृतू अभिकल्पमाना० १६ १३५
सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तः० ।०। हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना० २७
एकादशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्तार्तवा अधिपतय आसन् २९ १३७

॥ २७४ ॥ (वा० य० १५।५७)

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तः० ।०। शैशिरावृतू अभिकल्पमाना० ५७ १३८

॥ २७५ ॥ (वा० य० १७।३)

ऋतवं स्थ ऋतावृधं ऋतुष्ठा स्थ ऋतावृधः ।
घृतश्चुतो मधुश्चुतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ३ १३९

॥ २७६ ॥ (वा० य० २१।२३-२८)

वुसन्तेन॑ ऋतुना॑ देवा वस॑वस्त्रिवृता॑ स्तुताः ।
र॒थन्त॒रेण॒ तेज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः　　२३　१४०

ग्री॒ष्मेण॑ ऋ॒तुना॑ दे॒वा रु॒द्राः प॑ञ्चद॒शे स्तु॒ताः ।
बृ॒हता॒ यश॑सा॒ बलं॑ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः　　२४

व॒र्षाभि॑र्ऋ॒तुना॑दि॒त्या स्तोमे॑ सप्तद॒शे स्तु॒ताः ।
वै॒रू॒पेण॑ वि॒शौज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः　　२५

शा॒रदे॑न ऋ॒तुना॑ दे॒वा ए॑कवि॒ꣳश ऋ॒भवः॑ स्तु॒ताः ।
वै॒राजे॑न श्रि॒या श्रियꣳ॑ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः　　२६

हे॒मन्ते॑न ऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्रि॑ण॒वे म॒रुतः॑ स्तु॒ताः ।
बले॑न॒ शक्व॑रीः॒ सहो॑ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः　　२७

शै॒शि॒रेण॑ ऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्र॑यस्त्रि॒ꣳशेऽमृता॑ स्तु॒ताः ।
स॒त्येन॑ रे॒वतीः॑ क्ष॒त्रꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः　　२८　१४५

॥ २७७ ॥ (वा० य० २२।२८)

ऋ॒तुभ्यः॒ स्वाहा॑ऽऽर्त॒वेभ्यः॒ स्वाहा॑　　२८　१४६

॥ २७८ ॥ (वा० य० २३।४०)

ऋ॒तव॑स्त ऋ॒तु॒था पर्व॑ श॒मि॒तारो॒ वि शा॑सतु ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा श॒मीभिः॑ शम्यन्तु त्वा　　४०　१४७

॥ २७९ ॥ (वा० य० २६।१४)

ऋ॒तव॑स्ते य॒ज्ञं वि त॑न्वन्तु॒ मासा॑ र॒क्षन्तु॑ ते ह॒विः॑ ।
सं॒व॒त्स॒रस्ते॑ य॒ज्ञं द॑धातु नः प्र॒जां च॒ परि॑ पातु नः　　१४　१४८

॥ २८० ॥ (अथर्व० ३।१०।९)
(१४९-५४) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

ऋ॒तून् य॑ज ऋतुप॒तीना॑र्त॒वानु॒त हा॑य॒नान् ।
समाः॑ संवत्स॒रान् मासा॑न् भू॒तस्य॒ पत॑ये यजे　　९　१४९

॥ २८१ ॥ (अथर्व० ५।२८।१३) पुरउष्णिक् ।

ऋ॒तुभि॑ष्ट्वार्त॒वैरायु॑षे॒ वर्च॑से त्वा ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा॒ तेन॒ संह॑नु कृण्मसि　　१३　१५०

॥ १८२ ॥ (अथर्व० ११।३।१७) आसुर्यनुष्टुप् ।

ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते १७ ९५१

॥ १८३ ॥ (अथर्व० १५।३।४) द्विपदाऽऽर्च्युष्णिक् ।

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ४ ९५२

॥ १८४ ॥ (अथर्व० १५।४।२-३,५-६,८-९,११-१२,१४-१५,१७-१८)

वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथंतरं चानुष्ठातारौ २

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथंतरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ३

ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ५ ९५५

ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ६

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ८

वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ९

शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ११

शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद १२ ९६०

हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ १४

हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद १५

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ १७

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद १८ ९६४

॥ १८५ ॥ (अथर्व० १०।६।१८)

(९६५) बृहस्पतिः । अनुष्टुप् ।

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत । संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति १८ ९६५

॥ १८६ ॥ (अथर्व० ११।४।४)

(९६६) भार्गवो वैदर्भिः । अनुष्टुप् ।

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ४ ९६

॥ २८७ ॥ (अथर्व० ११।६।१७,२२)
(९६७-६८) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १७

या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः । २२ ९६८

॥ २८८ ॥ (अथर्व० १२।१।३६)
(९६९) अथर्वा । विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः ।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ३६ ९६९

॥ २८९ ॥ (अथर्व० १६।८।११)
(९७०) यमः । आसुरी पङ्क्तिः ।

स आर्तवानां पाशान्मा मोचि २१ ९७०

॥ २९० ॥ (अथर्व० ७।११।१९)
(९७१) ब्रह्मा । त्रिष्टुप् ।

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः १९ ९७१

(११) चन्द्रमाः ।×

॥ २९१ ॥ (ऋ० १०।८५।१९) *
(९७२) सावित्री सूर्या ऋषिका । त्रिष्टुप् ।

नवोनवो भवति जायमानो ऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः १९ ९७२

॥ २९२ ॥ (ऋ० १०।९०।१३) +
(९७३) नारायणः । अनुष्टुप् ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत १३ ९७३

॥ २९३ ॥ [९७३-७२] (वा० य० १।२८)

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् ।
यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते २८ ९७३

×दे० [आयुर्वेद०] ६-७,२९,६८,७१,८८,९१,११६,१०२,१५४,२३०,२४१,२६८,२७३,३१९ सूक्तानि द्रष्टव्यानि ।
* अथर्व० ७,८१,२, १४,१,२४; + अथर्व १९,६,७ ।

॥ १९४ ॥

चन्द्राय स्वाहा (वा० य० ११।१८) + चन्द्रमसे किलासम् । (वा० य० ३०।२१) २८ ९७१

॥ १९५ ॥ (वा० य० २३।४,१०)

एप ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा ।
यस्ते नक्षत्रेपु चन्द्रमसि महिमा संबभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ४
सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् १० ९७२

॥ १९६ ॥ (वा०य० ३१।१२)

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत १२ ९७८

॥ १९७ ॥ (वा० य० ३३।९०)

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं हरिरेति कनिक्रदत् ९० ९७९

॥ १९८ ॥ (अथर्व० १।३।४)
(९८०-९०) अथर्वा । पथ्यापङ्क्तिः।

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ४ ९८०

॥ १९९ ॥ (अथर्व० २।११।१-५)
(एकावसानम्) १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

चन्द्र यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः १
चन्द्र यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २
चन्द्र यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ३
चन्द्र यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ४
चन्द्र यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५ ९८५

॥ २०० ॥ (अथर्व० ५।२४।१०) चतुष्पदातिशक्वरी ।

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १० ९८६

+ वा० य० ११,१९-३०, १९,१ । अथर्व० १९,४३,४ ।

॥ ३०१ ॥ (अथर्व० ६।७८।१-२) अनुष्टुप् ।

तेन॑ भू॒तेन॑ ह॒विषा॒यमा प्या॑यतां॒ पुनः॑ ।
ज्या॒यां॒ याम॑स्मा॒ आवा॑क्षु॒स्तां रसे॑ना॒भि व॑र्धताम्　　१
अ॒भि व॑र्धतां॒ पय॑सा॒भि रा॒ष्ट्रेण॑ वर्धताम् । र॒य्या स॒हस्र॑वर्चसे॒मौ स्ता॒मनु॑पक्षितौ　　२　　९८८

॥ ३०२ ॥ (अथर्व० १८।४।८९) पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः । ×

च॒न्द्रमा॑ अ॒प्स्व१॒न्तरा सु॑प॒र्णो धा॑वते दि॒वि ।
न वो॑ हिरण्यनेमयः प॒दं वि॑न्दन्ति विद्युतो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रोदसी　　८९　　९८९

॥ ३०३ ॥ (अथर्व० १९।१९।४) अनुष्टुप् ।

च॒न्द्रमा॒ नक्ष॑त्रै॒रुद॑क्राम॒त् तां पु॒रं प्र ण॑यामि वः ।
तामा वि॑शत॒ तां प्र वि॑शत॒ सा वः॒ शर्म॑ च॒ वर्म॑ च यच्छतु　　९९०

॥ ३०४ ॥ (अथर्व० ११।६।७)
(९९१) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

मु॒ञ्चन्तु॑ मा शप॒थ्या॒दहोरा॒त्रे अथो॑ उ॒षाः ।
सोमो॑ मा दे॒वो मु॑ञ्चतु य॒माहु॑श्च॒न्द्रमा॒ इति॑　　९९१

॥ ३०५ ॥ (अथर्व० १९।२७।२,५)
(९९२-९३) भृग्वङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

सोम॑स्त्वा पा॒त्वोष॑धीभि॒र्नक्ष॑त्रैः पातु॒ सूर्यः॑ ।
मा॒द्भ्यस्त्वा॑ च॒न्द्रो वृ॑त्र॒हा वातः॑ प्रा॒णेन॑ रक्षतु　　२
घृ॒तेन॑ त्वा॒ सम॑ुक्षा॒म्यग्न॒ आज्ये॑न व॒र्धय॑न् ।
अ॒ग्नेश्च॒न्द्रस्य॒ सूर्य॑स्य॒ मा प्रा॒णं मा॒यिनो॑ दभन्　　५　　९९३

॥ ३०६ ॥ (अथर्व० १९।४३।४)
(९९४) ब्रह्मा । त्र्यवसाना शङ्कुमती पथ्यापङ्क्तिः ।

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । च॒न्द्रो मा॒ तत्र॑ नयतु॒ मन॑श्च॒न्द्रो द॑धातु मे　४　　९९४

चन्द्रमा-सहचारी-देवगणः ।

(१) सूर्यः चन्द्रश्च ।

॥ ३०७ ॥ (अथर्व० २।१५।२)
(९९५-९६) ब्रह्मा । त्रिपाद् गायत्री ।

य॒था सूर्य॑श्च॒ च॒न्द्रश्च॒ न बि॑भी॒तो न रिष्य॑तः । ए॒वा मे॑ प्राण॒ मा बि॑भेः　　२　　९९५

× ऋ० १।१०५।१; सा० ४१७

(२) द्यौः, पृथिवी, सूर्यः, चन्द्रमाः, अन्तरिक्षं च ।

॥ ३०८ ॥ (अथर्व० ८।१।१२) त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती ।

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च । अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः १२ ९९६

॥ ३०९ ॥ (अथर्व० ११।६।५)
(९९७) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ५ ९९७

(३) दिक्चन्द्रमसः ।

॥ ३१० ॥ (अथर्व० ४।३९।७-८)
(९९८-९९) अङ्गिराः । ७ त्रिपदा महाबृहती, ८ सस्तारपङ्क्तिः ।

दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ७
दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः । ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ८ ९९९

(४) अग्निः, चन्द्रमाश्च ।

॥ ३११ ॥ (अथर्व० ६।८६।२)
(१०००) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव २ १०००

---

(१२) रात्रिः ।

॥ ३१२ ॥ (ऋ० १।११३।१ [उत्तरार्धं])
(१००१) कुत्स आङ्गिरस । त्रिष्टुप् ।

यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् १ १००१

॥ ३१३ ॥ (ऋ० १०।१०।९)

(१००१) वैवस्वतो यमः ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि　　९ १००१

॥ ३१४ ॥ (ऋ० १०।१२७।१-८)

(१००३-१०१०) कुशिकः सौभरः, रात्रिर्वा भारद्वाजी । गायत्री ।

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१क्षभिः । विश्वा अधि श्रियोऽधित　१
ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्यु१द्वतः । ज्योतिषा बाधते तमः　२
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः　३ १००५
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । वृक्षे न वसतिं वयः　४
नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः । नि श्येनासश्चिदर्थिनः　५
यावया वृक्यं१ वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये । अथा नः सुतरा भव　६
उप मा पेपिशत् तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उप ऋणेव यातय　७
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे　८ १०१०

॥ ३१५ ॥ [१०११-१६] (वा० य० ३।१८)

चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय　　१८ १०११

॥ ३१६ ॥ (वा० य० २३।१०) ×

द्यौरासीत् पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत् पिलिप्पिला रात्रिरासीत् पिशङ्गिला　　१२ १०१२

॥ ३१७ ॥ (वा० य० २४।२५)

अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो
जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान्　　२५ १०१३

॥ ३१८ ॥ (वा० य० ३०।२१)

रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम्　　२१ १०१४

॥ ३१९ ॥ (वा० य० ३४।३२) ✽

आ रात्रि पार्थिव९ रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः　　३२ १०१५

× वा० य० २३।५४।　✽ अथर्व० १९,४७,१ ।

॥ ३१० ॥ (वा० य० ३७।२१ [उत्तरार्धः]) +

रात्रिः केतुना जुषताᳪ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा २१ १०१६

॥ ३११ ॥ (अथर्व० १।१६।१)

(१०१७) चातनः । अनुष्टुप् ।

येऽमावास्यां३ रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्त्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् १ १०१७

॥ ३१२ ॥ (अथर्व० २।१५।२)

(१०१८-१९) ब्रह्मा । त्रिपाद् गायत्री ।

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः २ १०१८

॥ ३१३ ॥ (अथर्व० १३।४।३०) प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ३० १०१९

॥ ३१४ ॥ (अथर्व० ५।५।१)

(१०२०-२१) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा १ १०२०

॥ ३१५ ॥ (अथर्व० १५।२।५,१३,२१,२९) द्विपदाऽऽर्ची गायत्री ।

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ५
उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ० १३
इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ० २१
विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ० २९ १०२४

॥ ३१६ ॥ (अथर्व० १५।१३।१,३,५,७,९)

१ साम्न्युष्णिक्, ३,५,७ आसुरी गायत्री; ९ द्विपदानिचृद्गायत्री ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति १ १०२५
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ३
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ५
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ७
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ९ १०२९

+ वा० य० ३८,१६ ।

॥ ३१७ ॥ (अथर्व० ६।१२८।२)
(१३०) अङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

भद्राहं नो मध्यंदिने भद्राहं सायमस्तु नः ।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः २ १०३०

॥ ३१८॥ (अथर्व० १९।४७।१-९)*
(१०३१-५१) गोपथ. । अनुष्टुप्; १ पञ्चपदाऽनुष्टुब्गर्भा पराऽतिजगती;
६ पुरस्ताद्बृहती; ७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विंशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि २
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ३
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि । चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ४
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः । तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ५
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ६ १०३५
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः । परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ७
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ८
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ९ १०३८

॥ ३१९ ॥ (अथर्व० १९।४८।१-६)
अनुष्टुप्; १ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; २ त्रिपदा विराडनुष्टुप्; ३ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्;
५ पथ्यापङ्क्तिः ।

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि । तानि ते परि दद्मसि १
रात्रि मातरुषसे नः परि देहि । उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि २ १०४०
यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् ।
यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ३
सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत ।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ४ १०४२

---
* अथर्व० १९।४७।१ = वा० य० ३४,३२ ।

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ५
वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ६ १०४४

॥ ३३० ॥ (अथर्व० १९।५०।१-७) अनुष्टुप् ।

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि १ १०४५
ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः । तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा २
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् । गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ३
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते । एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ४
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् । अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ५
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु । यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ६ १०५०
उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः । उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ७ १०५१

॥ ३३१ ॥ (अथर्व० १९।४९।१-१०)

(१०५२-६०) गोपथः, भरद्वाजश्च । अनुष्टुप्; १-५,८ त्रिष्टुप्; ६ आस्तारपङ्क्तिः ७ पथ्यापङ्क्तिः १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा १
अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः २
वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ३
सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ४ १०५२
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ५
स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
आसाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ६ १०५३

शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्संन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ७
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वं गोरूप युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वर्पूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षामंमुक्थाः ८
यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ९ १०६०
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति १० १०६१

॥ ३३२ ॥ [१०६०-६१] (वा० य० ६।११)

अहोरात्रे गच्छ स्वाहा २१ १०६२

॥ ३३३ ॥ (वा० य० १४।३०)

नयदुग्रामिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम् ३० १०६३

॥ ३३४ ॥ (वा० य० १८।२३)

अहोरात्रे ऊर्ध्वग्रीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् २३ १०६४

॥ ३३५ ॥ (वा० य० २२।२८)

अहोरात्रेभ्यः स्वाहा २८ १०६५

॥ ३३६ ॥ (वा० य० २३।४१)

अर्धमासाः परूंषि ते मासा आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते ४१ १०६६

॥ ३३७ ॥ (वा० य० ३१।२२)

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण २ १०६७

॥ ३३८ ॥ (अथर्व० ६।१२८।३)
(१०६८) अङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ३ १०६८

॥ ३३९ ॥ (अथर्व० १५।२।२२)
(१०६९-७३) अथर्वा। आसुरी गायत्री।

अह्नश्च रात्रीं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् २२ १०६९

॥ ३४० ॥ (अथर्व० १५।६।१७-१८) १७ आर्ची पङ्क्तिः, १८ विराड् जगती।

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् १७ १०७०
ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां
चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद १८ १०७१

॥ ३४१ ॥ (अथर्व० १५।१८।४-५) आर्च्यनुष्टुप्।

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ४
अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ५ १०७३

॥ ३४२ ॥ (अथर्व० १६।८।२४)+
(१०७४) यमः। आसुरी जगती।

सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि २४ १०७४

रात्रि-सहचारी-देवगणः।

रात्रिः, धेनुः।

॥ ३४३ ॥ (अथर्व० ३।१०।२-४)
(१०७५-७७) १-३ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप्।

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम्।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली २ १०७५
संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ३
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ४ १०७७

+ [illegible]

॥ ३३४ ॥ (अथर्व० १०।२।६)

(१०७८) नारायणः । [illegible] । जगती ।

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ६ १०७८

(१३) पूर्णिमा ।

॥ ३३५ ॥ (अथर्व० ७।८०।१-२,४)

(१०७९-८१) अथर्वा । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप् ।

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम १
वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे ।
स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् २ १०८०
पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ४

॥ ३३६ ॥ (अथर्व० १५।१६।१) साम्न्युष्णिक् ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी १ १०८२

(१४) राका ।

॥ ३३७ ॥ (ऋ० २।३२।४-५)*

(१०८३-८४) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । जगती ।

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ४
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ५ १०८४

(१५) अमावास्या ।

॥ ३३८ ॥ (अथर्व० ७।७९।१-४)

(१०८५-९१) अथर्वा । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् १ १०८५
अहमेवास्म्यमावास्या३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे २ १०८६

* अथर्व० ७,४८,१-२ ।

आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ३
अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ४ १०८८

॥ ३४९ ॥ (अथर्व० १५।७।१४) साम्नी पङ्क्तिः ।

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् १४ १०८९

॥ ३५० ॥ (अथर्व० १५।१६।३) साम्न्युष्णिक् ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ३ १०९०

॥ ३५१ ॥ (अथर्व० १५।१७।९) द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ९ १०९१

(१६) सिनीवाली ।

॥ ३५२ ॥ (ऋ० २।३२।६-७)×

(१०९२-९३) गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । अनुष्टुप् ।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ६
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ७ १०९३

॥ ३५३ ॥ (अथर्व० ७।४६।३)
(१०९४) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ३ १०९४

॥ ३५४ ॥ [१०९५] (या० य० ११।५५)*

सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् ।
हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ५५ १०९५

॥ ३५५ ॥ (अथर्व० ९।४।१४)
(१०९६) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् १४ १०९६

× वा० य० ३४,१०, अथर्व० ७,४६,१-२ । * वा० य० ११,५६ = दे० [अदिति०] ९

सिनीवाली-सहचारी-देवगणः।

(१) गुंगू-सिनीवाली-राका-सरस्वतीन्द्राणीवरुणानीः।

॥ ३५६ ॥ (ऋ० २।३२।८)

(१०९७) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। अनुष्टुप्।

या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती। इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ३ १०९७

(२) बृहस्पतिः, सिनीवाली, अनुमतिः।

॥ ३५७ ॥ (अथर्व० २।२६।२)

(१०९८) सविता। त्रिष्टुप्।

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन्।

सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ २ १०९८

(३) सिनीवाली-सरस्वत्याश्विनः।

॥ ३५८ ॥ (अथर्व० ५।२५।३)×

(१०९९) ब्रह्मा। अनुष्टुप्।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ३ १०९९

(४) प्रजापतिः, अनुमतिः, सिनीवाली।

॥ ३५९ ॥ (अथर्व० ६।११।३)

(११००) प्रजापतिः। अनुष्टुप्।

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत्। स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ३ ११००

(५) विष्णुः, सरस्वती, सिनीवाली, भगः।

॥ ३६० ॥ (अथर्व० १४।२।१५,२१)

(११०१-११०२) सूर्या सावित्री। १५ भुरिक्, २१ अनुष्टुप्।

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति।

सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् १५

य्रमं वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे। सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् २१ ११०१

(६) सरस्वती, सिनीवाली।

॥ ३६१ ॥ (अथर्व० १९।३१।१०)

(११०३) सविता। अनुष्टुप्।

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम्। सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः १० ११०३

× दे० [आश्विनौ०] ६८९।

(१७) कुहूः ।

॥ ३६१ ॥ (अथर्व० ७।४७।१-२)

(११०४-११०५) अथर्वा । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् १
कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु २ ११०५

(१८) नक्षत्राणि ।

॥ ३६३ ॥ [११०६-१३] (वा० य० १४।१९)

नक्षत्राणि छन्दः १९ ११०६

॥ ३६४ ॥ (वा० य० १८।१८,४०)

नक्षत्राणि च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् १८
तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । ताभ्यः स्वाहा ४० ११०८

॥ ३६५ ॥ (वा० य० २०।२८)×

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा २८ ११०९

॥ ३६६ ॥ (वा० य० २३।४३)

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ४३ १११०

॥ ३६७ ॥ (वा० य० २५।९)

नक्षत्राणि रूपेण ९ ११११

॥ ३६८ ॥ (वा० य० ३०।१०,२१)

प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम् ॥ १० ॥ नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम् २१ १११३

॥ ३६९ ॥ (अथर्व० २।२।४)

(१११४) मातृनामा । त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री ।

अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ४ १११४

॥ ३७० ॥ (अथर्व० ३।७।७)

(१११५) भृग्वङ्गिरा । अनुष्टुप् ।

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत । अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ७ १११५

× वा० य० ११,१९;३९,९ ।

॥ ३७१ ॥ (अथर्व० ६।१२८।१,४)
(१११६-१७) अङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत । भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति १
यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा । तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ४ १११७

॥ ३७२ ॥ (अथर्व० ९।७।१५)
(१११८-१९) ब्रह्मा । साम्नी बृहती ।

विश्वव्यचाश्चौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् १५ १११८

॥ ३७३ ॥ (अथर्व० १३।६।२८) प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह २८ १११९

॥ ३७४ ॥ (अथर्व० १०।२।२२-२३)
(११२०-२१) नारायणः । अनुष्टुप् ।

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः । केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते २२ ११२०
ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।
ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते २३ ११२१

॥ ३७५ ॥ (अथर्व० ११।६।१०)
(११२२) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १० ११२२

॥ ३७६ ॥ (अथर्व० १५।१७।४)
(११२३) अथर्वा । साम्न्युष्णिक् ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ४ ११२३

॥ ३७७ ॥ (अथर्व० १९।७।१-५)
(११२४-३४) गार्ग्यः । त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् ।

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् १
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे २ ११२५
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ३ ११२६

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ४
आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ५ ११२८

॥ ३७८ ॥ (अथर्व० १९।८।१-५,७) त्रिष्टुप्, १ विराड् जगती ।

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु १
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु २ ११३०
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ३
अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् । सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान् सवितः सुव ४
अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् । शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ५
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ७ ११३४

नक्षत्राणि-सहचारी-देवगणः ।

(१) द्यौः, चक्षुः, नक्षत्राणि, सूर्यः ।

॥ ३७९ ॥ (अथर्व० ६।१०।३)

(११३५) शन्तातिः । साम्नी बृहती ।

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ३ ११३५

(२) सूर्यः, चन्द्रः, नक्षत्राणि ।

॥ ३८० ॥ (अथर्व० १५।६।५ - ६)

(११३६-३७) अथर्वा । ५ साम्नी त्रिष्टुप्, ६ निचृद्बृहती ।

ऋतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ५
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ६ ११३७



शिक्षा–विभाग

शिक्षा–मंत्री

१ अग्निदेवता।

॥ १ ॥ (ऋग्वेदस्य मण्डलं १, सूक्तं १, मंत्राः १-९) [१-९] मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। गायत्री (८×३)।

॥ॐ॥ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् १
अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिर् ईड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति २
अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ३
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद् देवेषु गच्छति ४
अग्निर्होता कविक्रतुस् सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ५
यदङ्ग दाशुषे त्वम् अग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः ६
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ७
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ८
स नः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ९

॥ २ ॥ (ऋ० १।१२।१-१२) [१०-२१] मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् १०
अग्निमग्निं हवीमभिस् सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ११
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः १२
ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि १३

घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः १४
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः १५
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् १६
यस्त्वामग्ने हविष्पतिर् दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव १७
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृळय १८
स नः पावक दीदिवो ऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः १९
स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् २०
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः २१

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१९।४, १२)

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना २२
गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज २३

॥ ४ ॥ (ऋ० १।२२।९-१०)

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये २४
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रीं धिषणां वह २५

॥ ५ ॥ (ऋ० १।२३।२४) अनुष्टुप् (८×४)।

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः २४

॥ ६ ॥ (ऋ० १।२४।२)

[२७-४९] शुनःशेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। त्रिष्टुप् (११×४)।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च २७

॥ ७ ॥ (ऋ० १।२६।१-१०) गायत्री (८×३)।

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते । सेमं नो अध्वरं यज २८
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिवित्मता वचः २९
आ हि ष्मा सूनवे पिता ऽऽपिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः ३०

आ नो॑ ब॒र्हीं रि॒शाद॑सो वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा। सीद॑न्तु मनु॑षो यथा ३१
पूर्व्यं होतर॒स्य नो॒ मन्द॑स्व स॒ख्यस्य॑ च। इ॒मा उ॒ षु श्रु॑धी॒ गिरः॑ ३२
यच्चि॒द्धि शश्व॑ता॒ तना॑ दे॒वंदे॑वं॒ यजा॑महे । त्वे इद्धू॑यते ह॒विः ३३
प्रि॒यो नो॑ अस्तु वि॒श्पति॒र् होता॑ म॒न्द्रो वरे॑ण्यः। प्रि॒याः स्व॒ग्नयो॑ व॒यम् ३४
स्व॒ग्नयो॒ हि वार्यं॑ दे॒वासो॑ दधि॒रे च॑ नः । स्व॒ग्नयो॑ मनामहे ३५
अथा॑ न उ॒भये॑षा॒म् अमृ॑त॒ मर्त्या॑नाम् । मि॒थः स॑न्तु॒ प्रश॑स्तयः ३६
विश्वे॑भिरग्ने अ॒ग्निभि॑र् इ॒मं य॒ज्ञमि॒दं वचः॑ । चनो॑ धाः सहसो यहो ३७

॥ ८ ॥ (ऋ० १ । २७ । १-१२)।

अश्वं॒ न त्वा॒ वार॑वन्तं व॒न्दध्या॑ अ॒ग्निं नमो॑भिः। स॒म्राज॑न्तमध्व॒राणा॑म् ३८
स घा॑ नः सू॒नुः शव॑सा पृ॒थुप्र॑गामा सु॒शेवः॑ । मी॒ढ्वाँ अ॒स्माकं॑ बभूयात् ३९
स नो॑ दू॒राच्चा॒साच्च॒ नि मर्त्या॑दघा॒योः । पा॒हि सद॒मिद्वि॒श्वायुः॑ ४०
इ॒मम् षु त्वम॒स्माकं॑ स॒निं गा॑य॒त्रं नव्यां॑सम् । अग्ने॑ दे॒वेषु॒ प्र वो॑चः ४१
आ नो॑ भज पर॒मेष्वा वाजे॑षु मध्य॒मेषु॑ । शिक्षा॒ वस्वो॒ अन्त॑मस्य ४२
वि॒भ॒क्तासि॑ चित्रभानो॒ सिन्धो॑रू॒र्मा उ॑पा॒क आ । स॒द्यो दा॒शुषे॑ क्षरसि ४३
यम॑ग्ने पृ॒त्सु मर्त्य॒म् अवा॒ वाजे॑षु॒ यं जु॒नाः । स यन्ता॒ शश्व॑ती॒रिषः॑ ४४
नकि॑रस्य सहन्त्य पर्ये॒ता कय॑स्य चित् । वाजो॑ अस्ति श्र॒वाय्यः॑ ४५
स वाजं॑ वि॒श्वच॑र्षणि॒र् अर्व॑द्भिरस्तु॒ तरु॑ता । विप्रे॑भिरस्तु॒ सनि॑ता ४६
जरा॑बोध॒ तद्वि॑विड्ढि वि॒शेवि॑शे य॒ज्ञिया॑य । स्तोमं॑ रु॒द्राय॒ दृशी॑कम् ४७
स नो॑ म॒हाँ अ॑निमा॒नो धू॒मके॑तुः पुरुश्च॒न्द्रः । धि॒ये वाजा॑य हिन्वतु ४८
स रे॒वाँ इ॑व वि॒श्पति॒र् दैव्यः॑ के॒तुः शृ॒णोतु नः। उ॒क्थैर॒ग्निर्बृ॒हद्भा॑नुः ४९

॥ ९ ॥ (ऋ० १ । ३१ । १-१८) [५० - ६७] हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः ।
जगती (१२×४); ५७, ६५, ६७ त्रिष्टुप् (११×४)।

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र् दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑ ।
तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॒सो ऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ५०
त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रस्तमः क॒विर्दे॒वानां॒ परि॑ भूषसि व्र॒तम् ।
वि॒भुर्विश्व॑स्मै॒ भुव॑नाय॒ मेधि॑रो द्विमा॒ता श॒युः क॑ति॒धा चि॑दा॒यवे॑ ५१

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो मा॑त॒रिश्व॑न आ॒विर्भ॑व सुक्रतू॒या वि॒वस्व॑ते ।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी होतृ॒वूर्ये॑ ऽसघ्नोर्भा॒रमय॑जो म॒हो व॑सो ५२

त्वम॑ग्ने॒ मन॑वे॒ द्याम॑वाशयः पु॒रूर॑वसे सु॒कृते॑ सु॒कृत्त॑रः ।
श्वा॒त्रेण॒ यत् पि॒त्रोर्मुच्य॑से॒ पर्या ऽऽ त्वा॒ पूर्व॑मनय॒न्नाप॑रं॒ पुनः॑ ५३

त्वम॑ग्ने वृष॒भः पु॑ष्टि॒वर्ध॑न॒ उद्य॑तस्रुचे भवसि श्र॒वाय्यः॑ ।
य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॒ वष॑ट्कृति॒म् एका॑यु॒रग्रे॒ विश॑ आ॒विवा॑ससि ५४

त्वम॑ग्ने वृजि॒नव॑र्तनिं॒ नरं॒ सक्म॑न् पिपर्षि वि॒दथे॑ विचर्षणे ।
यः शूर॑साता॒ परि॑तक्म्ये॒ धने॑ द॒भ्रेभि॑श्चि॒त् समृ॑ता॒ हंसि॒ भूय॑सः ५५

त्वं तम॑ग्ने अमृत॒त्व उ॑त्त॒मे मर्तं॑ दधासि॒ श्रव॑से दि॒वेदि॑वे ।
यस्ता॑तृषा॒ण उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ मयः॑ कृ॒णोषि॒ प्रय॒ आ च॑ सू॒रये॑ ५६

त्वं नो॑ अग्ने स॒नये॒ धना॑नां य॒शसं॑ का॒रुं कृ॑णुहि॒ स्तवा॑नः ।
ऋ॒ध्याम॒ कर्मा॒पसा॒ नवे॑न दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ५७

त्वं नो॑ अग्ने पि॒त्रोरु॒पस्थ॒ आ दे॒वो दे॒वेष्व॑नवद्य॒ जागृ॑विः ।
त॒नू॒कृद् बो॑धि॒ प्रम॑तिश्च का॒रवे॒ त्वं क॑ल्याण॒ वसु॒ विश्व॒मोपि॑षे ५८

त्वम॑ग्ने॒ प्रम॑ति॒स्त्वं पि॒तासि॑ न॒स् त्वं व॑य॒स्कृत् तव॑ जा॒मयो॑ व॒यम् ।
सं त्वा॒ रायः॑ श॒तिनः॒ सं स॑ह॒स्रिणः॑ सु॒वीरं॑ यन्ति व्रत॒पाम॑दाभ्य ५९

त्वाम॑ग्ने प्रथ॒ममा॒युमा॒यवे॑ दे॒वा अ॑कृण्व॒न् नहु॑षस्य वि॒श्पति॑म् ।
इळा॑मकृण्व॒न् मनु॑षस्य॒ शास॑नीं पि॒तुर्यत् पु॒त्रो मम॑कस्य॒ जाय॑ते ६०

त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र् म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य ।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒सि अनि॑मेषं॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ६१

त्वम॑ग्ने॒ यज्य॑वे पा॒युरन्त॑रो ऽनिष॒ङ्गाय॑ चतुर॒क्ष इ॑ध्यसे ।
यो रा॒तह॑व्यो ऽवृ॒काय॒ धाय॑से की॒रेश्चि॒न् मन्त्रं॒ मन॑सा व॒नोषि॒ तम् ६२

त्वम॑ग्न उरु॒शंसा॑य वा॒घते॑ स्पा॒र्हं यद् रेक्णः॑ पर॒मं व॒नोषि॒ तत् ।
आ॒ध्रस्य॑ चि॒त् प्रम॑तिरुच्यसे पि॒ता प्र पाकं॒ शास्सि॒ प्र दिशो॑ वि॒दुष्ट॑रः ६३

त्वम॑ग्ने॒ प्रय॑तदक्षिणं॒ नरं॒ वर्मे॑व स्यू॒तं परि॑ पासि वि॒श्वतः॑ ।
स्वा॒दु॒क्षद्मा॒ यो व॑स॒तौ स्यो॑न॒कृज् जी॑वया॒जं यज॑ते॒ सोप॒मा दि॒वः ६४

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन् मर्त्यानाम् ६५

मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनम् आ सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ६६

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त् सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ६७

॥ १० ॥ (ऋ० १।३६।१-१२, १५-२०)

[६८- ८५] कण्वो घौरः। प्रगाथः = बृहती (८।८।१२।८) + सतो बृहती (१२।८।१२।८)।

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ६८

जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ६९

प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ७०

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ७१

मन्द्रो होता गृहपतिर् अग्ने दूतो विशामसि।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ७२

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ७३

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ७४

घ्नन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे।
भुवत् कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ७५

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ७६

यं त्वां देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ७७

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस् तमग्निं वर्धयामसि ७८
रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ७९

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ८०
घनेव विष्वग् वि जह्यराव्णस् तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर् मा नः स रिपुरीशत ८१

अग्निर्वव्ने सुवीर्यम् अग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन् मित्रोत मेध्यातिथिम् अग्निः साता उपस्तुतम् ८२
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन् नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ८३

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ८४
त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ८५

॥ ११ ॥ (ऋ० १।४४।१-१४)

[८६ – १०९] प्रस्कण्वः काण्वः। प्रगाथः= बृहती (८।८।१२।८) + सतो बृहती (१२।८।१२।८

अग्ने विवस्वदुषसश् चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वम् अ[illegible] [illegible]षुधः ८६
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनो ऽ[illegible] [illegible]म् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यम् अ[illegible] बृहत्

अया दूतं वृणीमहे [illegible]
धूमकेतुं भार्जीक [illegible]

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं　जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसम्　अग्निमीळे व्युष्टिषु　८९

स्तविष्यामि त्वामहं　विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य　यजिष्ठं हव्यवाहन　९०
सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य　मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे　नमस्या दैव्यं जनम्　९१

होतारं विश्ववेदसं　सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसो ऽग्ने देवाँ इह द्रवत्　९२
सवितारमुषसमश्विना भगम्　अग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते　हव्यवाहं स्वध्वर　९३

पतिर्ह्यध्वराणाम्　अग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये　देवाँ अद्य स्वर्दृशः　९४
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो　दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितो ऽसि यज्ञेषु मानुषः　९५

नि त्वा यज्ञस्य साधनम्　अग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं　जीरं दूतममर्त्यम्　९६
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो ऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः　९७

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्　देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा　प्रातर्यावाणो अध्वरम्　९८
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतो ऽश्विभ्यामुषसा सजूः　९९

॥ १२ ॥ (ऋ० १ । ४५ । १-१०) अनुष्टुप् (८×४) ।

ग्ने वसूँरिह　रुद्राँ आदित्याँ उत　। यजा स्वध्वरं जनं　मनुजातं घृतप्रुषम् १००
ष्टीवानो हि दाशुषे　देवा अग्ने विचेतसः । तान् रोहिदश्व गिर्वणस्　त्रयस्त्रिंशतमा वह १०१
मियमेधवदत्रिवज्　जातवेदो विरूपवत्　। अङ्गिरस्वन् महिव्रत　प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् १०२

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ७७

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस् तमग्निं वर्धयामसि ७८
रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ७९

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ८०
घनेव विष्वग् वि जह्यराव्णस् तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर् मा नः स रिपुरीशत ८१

अग्निर्वव्ने सुवीर्यम् अग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन् मित्रोत मेध्यातिथिम् अग्निः साता उपस्तुतम् ८२
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन् नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ८३

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ८४
त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ८५

॥ ११ ॥ (ऋ० १ । ४४ । १-१४)

[८६ – १०९] प्रस्कण्वः काण्वः । प्रगाथः = बृहती (८।८।१२।८) + सतो बृहती (१२।८।१२।

अग्ने विवस्वदुषसश् चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वम् अद्या देवाँ उषर्बुधः ८६
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनो ऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यम् अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ८७

अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ८८

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं　जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसम्　अग्निमीळे व्युष्टिषु　८९

स्तविष्यामि त्वामहं　विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य　यजिष्ठं हव्यवाहन　९०
सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य　मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे　नमस्या दैव्यं जनम्　९१

होतारं विश्ववेदसं　सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसो　ऽग्ने देवाँ इह द्रवत्　९२
सवितारमुषसमश्विना भगम्　अग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते　हव्यवाहं स्वध्वर　९३

पतिर्ह्यध्वराणाम्　अग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये　देवाँ अद्य स्वर्दृशः　९४
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो　दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितो　ऽसि यज्ञेषु मानुषः　९५

नि त्वा यज्ञस्य साधनम्　अग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं　जीरं दूतममर्त्यम्　९६
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो　ऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो　ऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः　९७

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्　देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा　प्रातर्यावाणो अध्वरम्　९८
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवो　ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबन्तु सोमं वरुणो धृतव्रतो　ऽश्विभ्यामुषसा सजूः　९९

॥ १२ ॥ (ऋ० १ । ४५ । १-१०) अनुष्टुप् (८×४) ।

त्वमग्ने वसूँरिह　रुद्राँ आदित्याँ उत　। यजा स्वध्वरं जनं　मनुजातं घृतप्रुषम् १००
श्रुष्टीवानो हि दाशुषे　देवा अग्ने विचेतसः । तान् रोहिदश्व गिर्वणस्　त्रयस्त्रिंशतमा वह १०१
प्रियमेधवदत्रिवज्　जातवेदो विरूपवत्　। अङ्गिरस्वन् महिव्रत　प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् १०२

महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत । राजन्तमध्वराणाम् अग्निं शुक्रेण शोचिषा १०३
घृताहवन सन्त्य इमा उ षु श्रुधी गिरः । याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा १०४
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रिय अग्ने हव्याय वोळ्हवे १०५
नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् । श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु १०६
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः। बृहद् भा बिभ्रतो हविर् अग्ने मर्ताय दाशुषे १०७
प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य । इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो १०८
अर्वाञ्चं दैव्यं जनम् अग्ने यक्ष्व सहूतिभिः । अयं सोमः सुदानवस् तं पात तिरोअह्न्यम् १०९

॥१३॥ (ऋ० १।५८।१-९) [११०-१२२] नोधा गौतमः । जगती, (१२×४) ११५-१२२ त्रिष्टुप् (११×४)।

नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ११०

आ स्वमद्म युवमानो अजरस् तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् १११

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग् वार्या देव ऋण्वति ११२

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ११३

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ११४

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ११५

होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ११६

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्य ऊर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ११७

भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ११

॥ १४ ॥ (ऋ० १ । ६० । १-५)

[११९—१२३] नोधा गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वह्निं॑ य॒शसं॑ वि॒दथ॑स्य के॒तुं सु॑प्रा॒व्यं॑ दू॒तं स॒द्योअ॑र्थम् ।
द्वि॒जन्मा॑नं र॒यिमि॑व प्रश॒स्तं रा॒तिं भ॑रद् भृग॑वे मात॒रिश्वा॑ ११९

अ॒स्य शासु॑रु॒भया॑सः सचन्ते ह॒विष्म॑न्त उ॒शिजो॒ ये च॒ मर्ताः॑ ।
दि॒वश्चि॒त् पूर्वो॒ न्य॑सादि॒ होता॑ ऽऽपृच्छ्यो॑ वि॒श्पति॑र्वि॒क्षु वे॒धाः १२०

तं नव्य॑सी हृ॒द आ जाय॑मानम् अ॒स्मत् सु॑की॒र्तिर्मधु॑जिह्वमश्याः ।
यमृ॒त्विजो॑ वृ॒जने॒ मानु॑षासः प्रय॑स्वन्त आ॒यवो॒ जीज॑नन्त १२१

उ॒शिक् पा॑व॒को वसु॒र्मानु॑षेषु वरे॑ण्यो॒ होता॑धायि वि॒क्षु ।
दमू॑ना गृ॒हप॑ति॒र्दम॒ आँ अ॒ग्निर्भु॑वद् रयि॒पती॑ रयी॒णाम् १२२

तं त्वा॑ व॒यं पति॑मग्ने रयी॒णां प्र शं॑सामो म॒तिभि॒र्गोत॑मासः ।
आ॒शुं न वा॑ज॒म्भ॒रं म॒र्जय॑न्तः प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात् १२३

॥ १५ ॥ (ऋ० १ । ६५ । १-१०)

[१२४-२१४] पराशरः शाक्त्यः । द्विपदा विराट् ।

प॒श्वा न ता॒युं, गुहा॒ चत॑न्तं नमो॑ यु॒जानं॒, नमो॒ वह॑न्तम् १२४
स॒जोषा॒ धीराः॑, प॒दैरनु॑ ग्मन् उप॑ त्वा सीदन्, विश्वे॒ यज॑त्राः १२५
ऋ॒तस्य॑ दे॒वा, अनु॑ व्र॒ता गु॒र् भुव॒त् परि॑ष्टि॒र्, द्यौर्न भूम॑ १२६
वर्ध॑न्ती॒माप॑ः, प॒न्वा सुशि॑श्विम् ऋ॒तस्य॒ योना॒, गर्भे॒ सुजा॑तम् १२७
पु॒ष्टिर्न र॒ण्वा, क्षि॒तिर्न पृ॒थ्वी गि॒रिर्न भुज्म॒, क्षोदो॒ न श॒म्भु १२८
अत्यो॒ नाज्म॒न्, त्सर्ग॑प्रतक्तः सिन्धु॒र्न क्षोदः॑, क ईं॑ वराते १२९
जा॒मिः सिन्धू॑नां॒, भ्रातेव॒ स्वस्रा॑म् इभ्या॒न् न राजा॒, वना॑न्यत्ति १३०
यद्वात॑जूतो, वना॒ व्यस्था॑द् अ॒ग्निर्ह॑ दाति॒, रोमा॑ पृथि॒व्याः १३१
श्वसि॑त्य॒प्सु, हं॒सो न सीद॒न् क्रत्वा॒ चेति॑ष्ठो, वि॒शामु॑ष॒र्भुत् १३२
सोमो॒ न वे॒धा, ऋ॒तप्र॑जातः प॒शुर्न शिश्वा॑, वि॒भुर्दू॒रेभाः॑ १३३

॥ १६ ॥ (ऋ० १।६६।१-१०)

र॒यिर्न चि॒त्रा, सूरो॒ न सं॒दृग् आयु॒र्न प्रा॒णो, नित्यो॒ न सू॒नुः १३४
त॒क्वा न भूर्णि॒र्, वना॑ सिषक्ति॒ पयो॒ न धे॒नुः, शुचि॒र्विभावा॑ १३५

दाधार क्षेमम्,ओको न रण्वो यवो न पक्वो, जेता जनानाम् १३६
ऋषिर्न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो, वयो दधाति १३७
दुरोकशोचिः, क्रतुर्न नित्यो जायेव योनाव्,अरं विश्वस्मै १३८
चित्रो यदभ्राट्,छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी, त्वेषः समत्सु १३९
सेनेव सृष्टा,ऽमं दधाति अस्तुर्न दिद्युत्, त्वेषप्रतीका १४०
यमो ह जातो, यमो जनित्वं जारः कनीनां, पतिर्जनीनाम् १४१
तं वश्चराथा, वयं वसत्यास्तं न गावो, नक्षन्त इद्धम् १४२
सिन्धुर्न क्षोदः, प्र नीचीरैनोन् नवन्त गावः, स्वर्दृशीके १४३

॥ १७ ॥ (ऋ० १। ६७। १-१०)

वनेषु जायुर्,मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं, राजेवाजुर्यम् १४४
क्षेमो न साधुः, क्रतुर्न भद्रो भुवत् स्वाधीर्,होता हव्यवाट् १४५
हस्ते दधानो, नृम्णा विश्वानि अमे देवान् धाद्, गुहा निषीदन् १४६
विदन्तीमत्र, नरो धियंधा हृदा यत् तष्टान्, मन्त्राँ अशंसन् १४७
अजो न क्षां, दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां, मन्त्रेभिः सत्यैः १४८
प्रिया पदानि, पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने, गुहा गुहं गाः १४९
य ईं चिकेत, गुहा भवन्तम् आ यः ससाद, धारामृतस्य १५०
वि ये चृतन्त्य्,ऋता सपन्त आदिद् वसूनि, प्र ववाचास्मै १५१
वि यो वीरुत्सु, रोधन् महित्वा उत प्रजा, उत प्रसूष्वन्तः १५२
चित्तिरपां, दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः, संमाय चक्रुः १५३

॥ १८ ॥ (ऋ० १। ६८। १—१०)

श्रीणन्नुप स्थाद्, दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथम्,अक्तून् व्यूर्णोत् १५४
परि यदेषाम्,एको विश्वेषां भुवद् देवो, देवानां महित्वा १५५
आदित् ते विश्वे, क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद् देव, जीवो जनिष्ठाः १५६
भजन्त विश्वे, देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो, अमृतमेवैः १५७
ऋतस्य प्रेषा, ऋतस्य धीतिर् विश्वायुर्विश्वे, अपांसि चक्रुः १५८
यस्तुभ्यं दाशाद्, यो वा ते शिक्षात् तस्मै चिकित्वान्, रयिं दयस्व १५९
होता निषत्तो, मनोरपत्ये स चिन् न्वासां, पती रयीणाम् १६०

इच्छन्त रेतो, मिथस्तनूषु　सं जानत स्वैर्, दक्षैरमूराः　१६१
पितुर्न पुत्राः, क्रतुं जुषन्त　श्रोषन् ये अस्य, शासं तुरासः　१६२
वि राय और्णोद्, दुरः पुरुक्षुः　पिपेश नाकं, स्तृभिर्दमूनाः　१६३

॥ १९ ॥ (ऋ० १ । ६९ । १-१०)

शुक्रः शुशुक्वाँ, उषो न जारः　पप्रा समीची, दिवो न ज्योतिः　१६४
परि प्रजातः, क्रत्वा बभूथ　भुवो देवानां, पिता पुत्रः सन्　१६५
वेधा अदृप्तो, अग्निर्विजानन्　ऊधर्न गोनां, स्वाद्मा पितूनाम्　१६६
जने न शेव, आहूर्यः सन्　मध्ये निषत्तो, रण्वो दुरोणे　१६७
पुत्रो न जातो, रण्वो दुरोणे　वाजी न प्रीतो, विशो वि तारीत्　१६८
विशो यदह्वे, नृभिः सनीळा　अग्निर्देवत्वा, विश्वान्यश्याः　१६९
नकिष्ट एता, व्रता मिनन्ति　नृभ्यो यदेभ्यः, श्रुष्टिं चकर्थ　१७०
तत् तु ते दंसो, यदहन्त्समानैर्　नृभिर्यद् युक्तो, विवे रपांसि　१७१
उषो न जारो, विभावोस्रः　संज्ञातरूपश्, चिकेतदस्मै　१७२
त्मना वहन्तो, दुरो व्यृण्वन्　नवन्त विश्वे, स्व१र्दृशीके　१७३

॥ २० ॥ (ऋ० १ । ७० । १-११)

वनेम पूर्वीर्, अर्यो मनीषा　अग्निः सुशोको, विश्वान्यश्याः　१७४
आ दैव्यानि, व्रता चिकित्वान्　आ मानुषस्य, जनस्य जन्म　१७५
गर्भो यो अपां, गर्भो वनानां　गर्भश्च स्थातां, गर्भश्चरथाम्　१७६
अद्रौ चिदस्मा, अन्तर्दुरोणे　विशां न विश्वो, अमृतः स्वाधीः　१७७
स हि क्षपावाँ, अग्नी रयीणां　दाशद् यो अस्मा, अरं सूक्तैः　१७८
एता चिकित्वो, भूमा नि पाहि　देवानां जन्म, मर्तांश्च विद्वान्　१७९
वर्धान्यं पूर्वीः, क्षपो विरूपाः　स्थातुश्च रथम्, ऋतप्रवीतम्　१८०
अराधि होता, स्व१र्निषत्तः　कृण्वन् विश्वानि, अपांसि सत्या　१८१
गोषु प्रशस्तिं, वनेषु धिषे　भरन्त विश्वे, बलिं स्वर्णः　१८२
वि त्वा नरः, पुरुत्रा सपर्यन्　पितुर्न जिव्रेर्, वि वेदो भरन्त　१८३
साधुर्न गृध्नुर्, अस्तेव शूरो　यातेव भीमस्, त्वेषः समत्सु　१८४

॥ २१ (ऋ० १ । ७१ । १—१०) । त्रिष्टुप् ।

उप॒ प्र जि॑न्वन्नुश॒तीरु॒शन्तं॒ पतिं॒ न नित्यं॒ जन॑यः॒ सनी॑ळाः ।
स्वसा॑रः श्या॒वीमरु॑षीमजुष्रञ्चि॒त्रमु॒च्छन्ती॑मु॒षसं॒ न गावः॑ ॥ १८५

वी॒ळु चि॑द् दृ॒ळ्हा पि॒तरो॑ न उ॒क्थैरद्रिं॑ रुज॒न्नङ्गि॑रसो॒ रवे॑ण ।
च॒क्रुर्दि॒वो बृ॑ह॒तो गा॒तुम॒स्मे अहः॒ स्व॑र्विविदुः के॒तुमु॒स्राः ॥ १८६

दध॑न्नृ॒तं ध॒नय॑न्नस्य धी॒तिमादिद॒र्यो दि॑धि॒ष्वो॒३ विभृ॑त्राः ।
अतृ॑ष्यन्तीर॒पसो॑ यन्त्यच्छा॑ दे॒वाञ्जन्म॒ प्रय॑सा व॒र्धय॑न्तीः ॥ १८७

मथी॑द् यदीं॒ विभृ॑तो मात॒रिश्वा॑ गृ॒हेगृ॑हे श्ये॒तो जेन्यो॒ भूत् ।
आदीं॒ राज्ञे॒ न सही॑यसे॒ सचा॒ सन्ना दू॒त्यं१ भृग॑वाणो विवाय ॥ १८८

म॒हे यत् पि॒त्र ईं॒ रसं॑ दि॒वे करव॑ त्सरत् पृ॒शन्य॑श्चिकि॒त्वान् ।
सृ॒जदस्ता॑ धृष॒ता दि॒द्युम॑स्मै॒ स्वायां॑ दे॒वो दु॑हि॒तरि॒ त्विषिं॑ धात् ॥ १८९

स्व आ यस्तुभ्यं॒ दम॒ आ वि॒भाति॒ नमो॑ वा॒ दाशा॑दुश॒तो अनु॒ द्यून् ।
वर्धो॑ अग्ने॒ वयो॑ अस्य द्वि॒बर्हा॒ यास॑द् रा॒या स॒रथं॒ यं जु॒नासि॑ ॥ १९०

अ॒ग्निं विश्वा॑ अ॒भि पृक्षः॑ सचन्ते समु॒द्रं न स्र॒वतः॑ स॒प्त य॒ह्वीः ।
न जा॒मिभि॒र्वि चि॑कि॒ते वयो॑ नो वि॒दा दे॒वेषु॒ प्रम॑तिं चिकि॒त्वान् ॥ १९१

आ यदि॒षे नृ॒पतिं॒ तेज॒ आन॒ट् शुचि॒ रेतो॒ निषि॑क्तं॒ द्यौर॒भीके॑ ।
अ॒ग्निः शर्ध॑मनव॒द्यं युवा॑नं स्वा॒ध्यं॑ जनयत् सू॒दय॑च्च ॥ १९२

मनो॒ न योऽध्व॑नः स॒द्य एत्येकः॑ स॒त्रा सूरो॒ वस्व॑ ईशे ।
राजा॑ना मि॒त्रावरु॑णा सुपा॒णी गोषु॑ प्रि॒यम॒मृतं॒ रक्ष॑माणा ॥ १९३

मा नो॑ अग्ने स॒ख्या पित्र्या॑णि॒ प्र म॑र्षिष्ठा अ॒भि वि॒दुष्क॒विः सन् ।
नभो॒ न रू॒पं ज॑रि॒मा मि॑नाति पु॒रा तस्या॑ अ॒भिश॑स्ते॒रधी॑हि ॥ १९४

॥ २२ ॥ (ऋ० १ । ७२ । १-१०)

नि काव्या॑ वे॒धसः॒ शश्व॑तस्क॒र्हस्ते॒ दधा॑नो॒ नर्या॑ पु॒रूणि॑ ।
अ॒ग्निर्भु॑वद् र॒यिप॑ती रयी॒णां स॒त्रा च॑क्रा॒णो अ॒मृता॑नि॒ विश्वा॑ ॥ १९५

अ॒स्मे व॒त्सं परि॒ षन्तं॒ न वि॑न्दन्नि॒च्छन्तो॒ विश्वे॑ अ॒मृता॒ अमू॑राः ।
श्र॒म॒युवः॑ प॒दव्यो॑ धियं॒धास्त॒स्थुः प॒दे प॑र॒मे चार्व॒ग्नेः ॥ १९६

त्रिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ १९७

आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन् मर्तो नेमधिता चिकित्वान् अग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ १९८

संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ १९९

त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन् निहिता यज्ञियासः।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ २००

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ २०१

स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन्।
विदद् गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ २०२

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ २०३

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥ २०४

॥ २३ ॥ (ऋ० १।७२।१-१०)

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥ २०५

देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥ २०६

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ २०७

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥ २०८

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर् वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः । २०९

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् २१०

त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः २११

यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् २१२

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः २१३

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं ते ऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः २१४

॥ २४ ॥ (ऋ० १ । ७४ । १-९) [२१५-२५५] गोतमो राहूगणः । गायत्री ।

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते २१५
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद् दाशुषे गयम् २१६
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणेरणे २१७
यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत् कृणोष्यध्वरम् २१८
तमित् सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो । जना आहुः सुबर्हिषम् २१९
आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये २२०
न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् २२१
त्वोतो वाज्यह्रयो ऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् २२२
उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे २२३

॥ २५ ॥ (ऋ० १ । ७५ । १-५)

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि २२४
अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि २२५
कस्ते जामिर्जनानाम् अग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः २२६

त्वं जामिर्जनानाम् अग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः २२७
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम् २२८

॥ २६ ॥ (ऋ० १। ७६। १-५) त्रिष्टुप्।

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम २२९
एह्यग्न इह होता नि षीद अदब्धः सु पुरएता भवा नः।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् २३०
प्र सु विश्वान् रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्याम् आतिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने २३१
प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् २३२
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर् देवाँ अयजः कविभिः कविः सन्।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्य अग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व २३३

॥ २७ ॥ (ऋ० १। ७७। १-५)

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत् कृणोति देवान् २३४
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम्।
अग्निर्यद् वेर्मर्ताय देवान् त्स चा बोधाति मनसा यजाति २३५
स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर् मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर् विश उप ब्रुवते दस्ममारीः २३६
स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम्।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म २३७
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः।
स एषु द्युम्नं पीपयत् स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् २३८

॥ २८ ॥ (ऋ०१। ७८। १-५) गायत्री

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः २३९

तमु॑ त्वा॒ गोत॑मो गि॒रा रा॒यस्का॑मो दुवस्यति । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः २४०
तमु॑ त्वा वाज॒सात॑मम् अङ्गिर॒स्वद् ह॑वामहे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः २४१
तमु॑ त्वा वृत्र॒हन्त॑मं॒ यो दस्यूँ॑रवधूनु॒षे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः २४२
अवो॑चाम॒ रहू॑गणा अ॒ग्नये॒ मधु॑म॒द् वचः॑ । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः २४३

॥ २९ ॥ (ऋ० १ । ७९ । १-१२)

२४४-४६ त्रिष्टुप्, २४७-४९ उष्णिक्, २५०-२५५ गायत्री ।

हिर॑ण्यकेशो॒ रज॑सो विसा॒रे ऽहि॒र्धुनि॒र्वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
शुचि॑भ्राजा उ॒षसो॒ नवे॑दा॒ यश॑स्वतीरप॒स्युवो॒ न स॒त्याः २४४

आ ते॑ सुप॒र्णा अ॑मिनन्तँ॒ एवैः॑ कृ॒ष्णो नो॑नाव वृष॒भो यदी॒दम् ।
शि॒वाभि॒र्न स्मय॑मानाभि॒रागा॒त् पत॑न्ति॒ मिहः॑ स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रा २४५

यदी॑मृ॒तस्य॒ पय॑सा॒ पिया॑नो॒ नय॑न्नृ॒तस्य॑ प॒थिभी॒ रजि॑ष्ठैः ।
अ॒र्य॒मा मि॒त्रो वरु॑णः॒ परि॑ज्मा॒ त्वचं॑ पृञ्च॒न्त्युप॑रस्य॒ योनौ॑ २४६

अग्ने॒ वाज॑स्य॒ गोम॑त॒ ईशा॑नः सहसो यहो । अ॒स्मे धे॑हि जातवेदो॒ महि॒ श्रवः॑ २४७
स इ॑धा॒नो वसु॑ष्क॒विर् अ॒ग्निरी॒ळेन्यो॑ गि॒रा । रे॒वद॒स्मभ्यं॑ पुर्वणीक दीदिहि २४८
क्ष॒पो रा॑जन्नु॒त त्मना ऽग्ने॒ वस्तो॑रु॒तोषसः॑ । स ति॑ग्मजम्भ र॒क्षसो॑ दह॒ प्रति॑ २४९
अवा॑ नो अग्न ऊ॒तिभि॑र् गाय॒त्रस्य॒ प्रभ॑र्मणि । विश्वा॑सु धी॒षु व॑न्द्य २५०
आ नो॑ अग्ने र॒यिं भ॑र सत्रा॒साहं॒ वरे॑ण्यम् । विश्वा॑सु पृ॒त्सु दु॒ष्टर॑म् २५१
आ नो॑ अग्ने सुचे॒तुना॑ र॒यिं वि॒श्वायु॑पोषसम् । मा॒र्डी॒कं धे॑हि जी॒वसे॑ २५२
प्र पू॒तास्ति॒ग्मशो॑चिषे॒ वाचो॑ गोतमा॒ग्नये॑ । भर॑स्व सुम्न॒युर्गिरः॑ २५३
यो नो॑ अग्नेऽभि॒दास॒ति अन्ति॑ दू॒रे प॑दी॒ष्ट सः । अ॒स्माक॒मिद् वृ॒धे भ॑व २५४
स॒ह॒स्रा॒क्षो विच॑र्षणिर् अ॒ग्नी रक्षां॑सि सेधति । होता॑ गृणीत उ॒क्थ्यः॑ २५५

॥ ३० ॥ (ऋ० १ । ९४ । १-१६)

[२५६-२७१] कुत्स आङ्गिरस । जगती; २७०-७१ त्रिष्टुप् ।

इ॒मं स्तोम॒मर्ह॑ते जा॒तवे॑दसे॒ रथ॑मिव॒ सं म॑हेमा मनी॒षया॑ ।
भ॒द्रा हि नः॒ प्रम॑तिरस्य सं॒सदि॒ अग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ २५६

यस्मै॒ त्वमा॒यज॑से॒ स सा॑धति अन॒र्वा क्षे॑ति॒ दध॑ते सु॒वीर्य॑म्
स तू॑ताव॒ नैन॑मश्नोत्यंह॒तिर् अग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ २५७

शकेम त्वा समिधं साधया धियस् त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यु१श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २५८

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २५९

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६०

त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६१

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित् सन्तळिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६२

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथो ऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६३

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६४

यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुना ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६५

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्यो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६६

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे ऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६७

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन् त्स्याम तव सप्रथस्तमे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६८

तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६९

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो ऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम २७०

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वान् अस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः २७१

॥ ३१ ॥ (ऋ० १ । १२७ । १—११)

[२७२—२९१] परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः, २७७ अतिधृतिः ।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा ऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः २७२

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर् विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः २७३

स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहंतरः परशुर्न द्रुहंतरः ।
वीळु चिद् यस्य समृतौ श्रुवद् वनेव यत् स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते २७४

दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसे ऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद् वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा २७५

तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातराद् अप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद् वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः २७६

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिर् अप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिर् आर्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददिर् यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् २७७

द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः ।
अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः २७८

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दंपतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः २७९

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर २८०

प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान् विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् २८१

स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भर अग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन् त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा २८२

॥ ३२ ॥ (ऋ० १ । १२८ । १-८)

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतम् अग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे २८३

तं यज्ञसाधमपि वातयामसि ऋतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृत्य अया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः २८४

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद् दधद् रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर् देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुषु अग्निः परेषु सानुषु २८५

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे ऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत २८६

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चते ऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्या इषिराय न भोज्या ।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।
स नस् त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः २८७

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच् छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृण्वत्य् अग्निर्द्वारा व्यृण्वति २८८

स मानुषे वृजने शंतमो हितो ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः ।
स हव्या मानुषाणाम् इळा कृतानि पत्यते ।
स नस् त्रासते वरुणस्य धूर्तेर् महो देवस्य धूर्तेः २८९

अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे ।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः २९०

॥ ३३ ॥ (ऋ० १।१२८।७)

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा २९१

॥ ३४ ॥ (ऋ० १।१४०।१-१३)

[२९२-३६०] दीर्घतमा औचथ्य । जगती, ३०१ त्रिष्टुब्वा, ३०३-४ त्रिष्टुप् ।

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् २९२

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यन्येन वनिनो मृष्ट वारणः २९३

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतम् आ साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः २९४

मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः २९५

आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत् सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशद् अभिश्वसन् त्स्तनयन्नेति नानदत् २९६

भूषन् न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस् तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः २९७

स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यम् अन्यद् वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा २९८

तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास् तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदद् असुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् २९९

अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत् पद्वते रेरिहत् सदा अनु श्येनी सचते वर्तनीरह ३००

अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिहि अध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर् वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ३०१

इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन् मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत् ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ३०२

रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ३०३

अभी नो अग्न उक्थमिज् जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहा इषं वरमरुण्यो वरन्त ३०४

॥ ३५ ॥ (ऋ० १ । १४१ । १-१३) जगती, ३१६-१७ त्रिष्टुप् ।

बळित्था तद् वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर् ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ३०५

पृक्षो वपुः पितुमान् नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ३०६

निर्यदीं बुध्नान् महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ३०७

प्र यत् पितुः परमान्नीयते परि आ पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद् यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः ३०८

आदिन्मातृराविशद् यास्वा शुचिर् अहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे।
अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ३०९

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते।
देवान् यत् क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ३१०

वि यदस्थाद् यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः।
तस्य पत्मन् दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ३११

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्याम् अङ्गेभिररुषेभिरीयते।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ३१२

त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः।
यत् सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुर् अरान् न नेमिः परिभूरजायथाः ३१३

त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन् वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ३१४

अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम्।
रश्मींरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ३१५

उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच् चन्द्ररथः।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरो ऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ३१६

अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ३१७

॥ ३६ ॥ (ऋ० १ । १४३ । १-८) जगती, ३२५ त्रिष्टुप्।

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे।
अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ३१८

स जायमानः परमे व्योमनि आविरग्निरभवन् मातरिश्वने।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ३१९

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवो ऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजराः ३२०

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ३२१

न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस् तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून् त्स वना न्यृञ्जते ३२२

कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद् वसुष्कुविद् वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित् तुतुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ३२३

घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदम् अग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच् छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ३२४

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टे ऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ३२५

॥ ३७ ॥ (ऋ० १ । १४४ । १-७) जगती ।

एति प्र होता व्रतमस्य माययो ऊर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ३२६

अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसद् अध स्वधा अधयद् याभिरीयते ३२७

युयूषतः सवयसा तदिद् वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोह्लुर्न रश्मीन् त्समयंस्त सारथिः ३२८

यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ३२९

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वति अभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ३३०

त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ३३१

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद् वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ३३२

॥ ३८ ॥ (ऋ० १ । १४५ । १-५) जगती, ३३७ त्रिष्टुप् ।

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ३३३

तमित् पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचो ऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदपितः ३३४

तमिद् गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर् विश्वान्येकः शृणवद् वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस् ततुरिर्यज्ञसाधनो ऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ३३५

उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो जातस् तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्यै मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ३३६

स ईं मृगो अप्यो वनर्गुर् उप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद् वयुना मर्त्येभ्यो ऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ३३७

॥ ३९ ॥ (ऋ० १ । १४६ । १-५) त्रिष्टुप् ।

त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषे ऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ३३८

उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस् तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ३३९

समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग् धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान् केताँ अधि महो दधाने ३४०

धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुम् आविरेभ्यो अभवत् सूर्यो नॄन् ३४१

दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत् सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ३४२

॥ ४० ॥ (ऋ० १ । १४७ । १-५)

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर् ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत् तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ३४३

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ३४४

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान् सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः ३४५

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुर् अरातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ३४६

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तम् अग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ३४७

॥ ४१ ॥ (ऋ० १ । १४८ । १-५)

मथीद् यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ३४८

ददानमिन्न ददभन्त मन्म अग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्म उपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ३४९

नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टौ अश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ३५०

पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैर् आद् रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिर् अस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ३५१

न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ३५२

॥ ४२ ॥ (ऋ० १ । १४९ । १-५) विराट्

महः स राय एषते पतिर्दन्न् इन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ३५३

स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ३५४

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेद् अत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ३५५

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ३५६

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ३५७

॥ ४३ ॥ (ऋ० १। १५०। १-३) उष्णिक् ।

पुरु त्वा दाश्वान् वोचे अरिरग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ३५८
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः । कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ३५९
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि । प्रप्रेत् ते अग्ने वनुषः स्याम ३६०

॥ ४४ ॥ (ऋ० १। १८९। १-८)
(३६१-३६८) अगस्त्यो मैत्रावरुणः । त्रिष्टुप् ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्य१स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ३६१

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ३६२

अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ३६३

पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैर् उत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन् मापरं सहस्वः ३६४

मा नो अग्नेऽव सृजो अघाय अविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ३६५

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वे३ वरूथम् ।
विश्वाद् रिरिक्षोरुत वा निनित्सोर् अभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ३६६

त्वं ताँ अग्न उभयान् वि विद्वान् वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर् मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ३६७

अवोचाम निवचनान्यस्मिन् मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ३६८

॥ ४५ ॥ (ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलं २, सूक्तं १, मन्त्राः १-१६)

जगती । (३६९—४१५) गृत्समदः शौनकः (आङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवः) ।

त्वमग्ने द्युभिस् त्वमाशुशुक्षणिस् त्वमद्भ्यस् त्वमश्मनस् परि ।
त्वं वनेभ्यस् त्वमोषधीभ्यस् त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ३६९

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश् च नो दमे ३७०

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरंध्या । ३७१

त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस् त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ३७२

त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ३७३

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस् त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयस् त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ३७४

त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस् तेऽविधत् ३७५

त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विशस् त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ३७६

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस् त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम् ।
त्वं पुत्रो भवसि यस् तेऽविधत् त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ३७७

त्वमग्न ऋभुराके नमस्य१स् त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।
त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ३७८

त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।
त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ३७९

त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस् तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः ।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ३८०

त्वाम॑ग्न आदि॒त्यास॑ आ॒स्यं१॒॑ त्वां जि॒ह्वां शुच॑यश् चक्रिरे कवे ।
त्वां रा॑ति॒षाचो॑ अध्व॒रेषु॑ सश्चिरे॒ त्वे दे॒वा ह॒विर॑द॒न्त्याहु॑तम् । ३८१

त्वे अ॑ग्ने॒ विश्वे॑ अ॒मृता॑सो अ॒द्रुह॑ आ॒सा दे॒वा ह॒विर॑द॒न्त्याहु॑तम्
त्वया॒ मर्ता॑सः स्वदन्त आसु॒तिं त्वं गर्भो॑ वी॒रुधां॑ जज्ञिषे॒ शुचिः॑ ३८२

त्वं तान् त्सं च॒ प्रति॑ चासि म॒ज्मना अग्ने॑ सुजात॒ प्र च॑ देव रिच्यसे ।
पृ॒क्षो यद॑त्र॑ महि॒ना वि ते॒ भुव॒द् अनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी रोद॑सी उ॒भे ३८३

ये स्तो॒तृभ्यो॒ गोअ॑ग्रा॒मश्व॑पेशस॒म् अग्ने॑ रा॒तिमु॑पसृ॒जन्ति॑ सू॒रयः॑ ।
अ॒स्माञ्च॒ तांश्च॒ प्र हि नेषि॒ वस्य॒ आ बृ॒हद् व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ३८४

॥ ४६ ॥ (ऋ० २ । २ । १-१३)

य॒ज्ञेन॑ वर्धत जा॒तवे॑दसम् अ॒ग्निं य॑जध्वं ह॒विषा॒ तना॑ गि॒रा ।
स॒मि॒धा॒नं सु॑प्र॒यसं॒ स्व॑र्णरं द्यु॒क्षं होता॑रं वृ॒जने॑षु धू॒र्षद॑म् ३८५

अ॒भि त्वा॒ नक्ती॑रु॒षसो॑ ववाशि॒रे अग्ने॑ व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नवः॑ ।
दि॒व इ॒वेद॑र॒तिर्मानु॑षा यु॒गा आ क्षपो॑ भासि पुरुवार सं॒यतः॑ ३८६

तं दे॒वा बु॒ध्ने रज॑सः सु॒दंस॑सं दि॒वस्पृ॑थि॒व्योर॑र॒तिं न्ये॑रिरे ।
रथ॑मिव॒ वेद्यं॑ शु॒क्रशो॑चिषम् अ॒ग्निं मि॒त्रं न क्षि॒तिषु॑ प्र॒शंस्य॑म् ३८७

तमु॒क्षमा॑णं॒ रज॑सि॒ स्व आ दमे॑ च॒न्द्रमि॑व सु॒रुचं॑ ह्वा॒र आ द॑धुः ।
पृश्न्याः॑ पत॒रं चि॒तय॑न्तम॒क्षभिः॑ पा॒थो न पा॒युं जन॑सी उ॒भे अनु॑ ३८८

स होता॒ विश्वं॒ परि॑ भूत्वध्व॒रं तमु॑ ह॒व्यैर्मनु॑ष ऋञ्जते गि॒रा ।
हि॒रि॒शि॒प्रो वृ॑धसा॒नासु॒ जर्भु॑रद् द्यौर्न स्तृ॒भिश् चि॒तय॒द् रोद॑सी॒ अनु॑ ३८९

स नो॑ रे॒वत् स॑मिधा॒नः स्व॒स्तये॑ संद॑दस्वान् र॒यिम॒स्मासु॑ दीदिहि ।
आ नः॑ कृणुष्व सुवि॒ताय॒ रोद॑सी॒ अग्ने॑ ह॒व्या मनु॑षो देव वी॒तये॑ ३९०

दा नो॑ अग्ने बृह॒तो दाः स॑ह॒स्रिणो॑ दु॒रो न वाजं॒ श्रुत्या॒ अपा॑ वृधि ।
प्राची॒ द्यावा॑पृथि॒वी ब्रह्म॑णा कृधि॒ स्व१॒॑र्ण शु॒क्रमु॒षसो॒ वि दि॑द्युतः ३९१

स इ॑धा॒न उ॒षसो॒ राम्या॒ अनु॒ स्व१॒॑र्ण दी॑देदरु॒षेण॑ भा॒नुना॑ ।
होत्रा॑भिर॒ग्निर्मनु॑षः स्वध्व॒रो राजा॑ वि॒शामति॑थि॒श् चारु॑राय॒वे ३९२

एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष् पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ३९३

वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषु उच्चा स्व१र्ण शुशुचीत दुष्टरम् ३९४

स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन् त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ३९५

उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश् च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ३९६
ये स्तोतृभ्यो० (३८४)

॥ ४७ ॥ (ऋ० २ । ८ । १-६) गायत्री, ४०२ अनुष्टुप् ।

वाजयन्निव नू रथान् योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ३९७
यः सुनीथो ददाशुषे अजुर्यो जरयन्नरिम् । चारुप्रतीक आहुतः ३९८
य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ३९९
आ यः स्व१र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अञ्जानो अजरैरभि ४००
अत्रिमनु स्वराज्यम् अग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ४०१
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् । अरिष्यन्तः सचेमहि अभि ष्याम पृतन्यतः ४०२

॥४८॥ (ऋ० २ । ९ । १-६) । त्रिष्टुप् ।

नि होता होतृषदने विदानस् त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ४०३

त्वं दूतस् त्वमु नः परस्पास् त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस् तने तनूनाम् अप्रयुच्छन् दीद्यद् बोधि गोपाः ४०४

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद् योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ४०५

अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ् छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ४०६

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ४०७

सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद् दिदीहि ४०८

॥ ४९ ॥ (ऋ० २।१०।१-६)

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेव इळस्पदे मनुषा यत् समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ४०९

श्रूया अग्निश् चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वा उतारुषाह चक्रे विभृत्रः ४१०

उत्तानायामजनयन् त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिर् अपरीवृतो वसति प्रचेताः ४११

जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानं ४१२

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्य् अरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद् वर्णो अग्निर् नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ४१३

ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद् वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ४१४

॥ ५० ॥ (ऋ० २।४१।१९ तृतीयः पादः) गायत्री ।

अग्निं च हव्यवाहनम् ४१५

॥ ५१ ॥ (ऋ० २।४।१-९) (४१६-४४६) सोमाहुतिर्भार्गवः । त्रिष्टुप् ।

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद् देव आदेवे जने जातवेदाः ४१६

इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ४१७

अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ४१८

अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वाम् अत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ४१९
आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्त उशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ४२०
आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश् चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ४२१
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वी पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन् कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ४२२
नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ४२३
त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद् वयो धाः ४२४

॥ ५२ ॥ (ऋ० २ । ५ । १-८)। अनुष्टुप्।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ४२५
आ यस्मिन् त्सप्त रश्मयस् तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद् दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ४२६
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश् चक्रमिवाभवत् ४२७
साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ४२८
ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुवित् तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ४२९
यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ४३०
स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ४३१

यथा विद्वाँ अरं करद् विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ४३२

॥ ५३ ॥ (ऋ० २ । ६ । १-८) गायत्री ।

इमां मे अग्ने समिधम् इमामुपसदं वनेः । इमा उ षु श्रुधी गिरः ४३३
अया ते अग्ने विधेम ऊर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ४३४
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ४३५
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्य१स्मद् द्वेषांसि ४३६
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ४३७
ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ४३८
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वान् जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ४३९
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् । आ चास्मिन् त्सत्सि बर्हिषि ४४०

॥ ५४ ॥ (ऋ० २ । ७ । १-६)

श्रेष्ठं यविष्ठ भारत अग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ४४१
मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ४४२
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ४४३
शुचिः पावक वन्द्यो अग्ने बृहद् वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ४४४
त्वं नो असि भारत अग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ४४५
द्र्वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ४४६

॥ ५५ ॥ (ऋग्वेदस्य तृतीय मण्डल ३, सूक्तं १, मन्त्रा १ – २३)
(४४७—५७३) विश्वामित्रो गाथिन । त्रिष्टुप् ।

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद् युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ४४७
प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित् तवसे गातुमीषुः ४४८
मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१न्तर् देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ४४९

अवर्धयन् त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन् वपुष्यन् ४५०

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ४५१

वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीर् एकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ४५२

स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ४५३

बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद् दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ४५४

पितुश् चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद् वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर् दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ४५५

पितुश् च गर्भं जनितुश् च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत् पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये३ नि पाहि ४५६

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्ध आपो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद् दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ४५७

अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजान अपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ४५८

अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश् चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ४५९

बृहन्त इद् भानवो भाऋजीकम् अग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तर् अपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ४६०

ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिर् ईळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ४६१

उपक्षेतारस् तव सुप्रणीते अग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ४६२

आ देवानांमभवः केतुरंग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्तां अवासयो दमूंना अनु देवान् रथिरो यासि साधन् ४६३

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौद् अग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ४६४

आ नों गहि सख्येभिः शिवेभिर् महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं संतरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ४६५

एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मंजन्मन् निहितो जातवेदाः ४६६

जन्मंजन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्य अपि भद्रे सौमनसे स्याम ४६७

इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नो अग्ने महि द्रविणमा यजस्व ४६८

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस् तनयो विजावा अग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ४६९

॥ ५६ ॥ (ऋ० ३ । ५ । १-११)

प्रत्यग्निरुषसश् चेकितानो ऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धो ऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ४७०

प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर् गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश् चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ४७१

अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्षु अपां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थाद् अभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ४७२

मित्रो अग्निर्भवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ४७३

पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश् चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ४७४

ऋध्यश् चंक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
सुसस्य चर्म घृतवत् पदं वेस् तदिदुग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ४७५

आ योनिमुग्निर्घृतवन्तमस्थात् पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ४७६

सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदुग्निः पित्रोरुपस्थे ४७७

उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद् वर्ष्मन् दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद् यजथाय देवान् ४७८

उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वोऽ३ग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ४७९
इळामग्ने० (४६९)

॥ ५७ ॥ (ऋ० ३ । ६ । १-११)

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ४८०

आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश् चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ४८१

द्यौश् च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ४८२

महान् त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो ऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ४८३

व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस् त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ४८४

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर् घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान् देव विश्वान् त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ४८५

दिवश् चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग् वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ४८६

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ४८७

ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस् त्रिंशतं त्रींश् च देवान् अनुष्वधमा वह मादयस्व ४८८*

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ४८९
इळामग्ने० (४६९)

॥ ५८ ॥ (ऋ० ३ । ७ । १-११)

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेर् आ मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।
परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ४९०

दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद् वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ४९१

आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः पतिश् चिकित्वान् रयिविद् रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस् ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः ४९२

महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ४९३

जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवम् उत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ४९४

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोर् अनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ४९५

अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ४९६

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुर् अनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ४९७

वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर् वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश् चिकित्वान् महो देवान् रोदसी एह वक्षि ४९८

---

* ४८८ अथर्व० २० । १३ । ४

पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः　सुकेतवं उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः　कृतं चिदेनः सं महे दशस्य　४९९

इळामग्ने० (४६९)

॥ ५९ ॥ (ऋ० ३।९।१—९) बृहती, ५०८ त्रिष्टुप्।

सखायस् त्वा ववृमहे　देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं　सुप्रतूर्तिमनेहसम्　५००

कायमानो वना त्वं　यन्मातृरजगन्नपः ।
न तत् ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं　यद् दूरे सन्निहाभवः　५०१

अति तृष्टं ववक्षिथ　अथैव सुमना असि ।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते　येषां सख्ये असि श्रितः　५०२

ईयिवांसमति स्रिधः　शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन् निचिरासो अद्रुहो　अप्सु सिंहमिव श्रितम्　५०३

ससृवांसमिव त्मना　अग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन् मातरिश्वा परावतो　देवेभ्यो मथितं परि　५०४

तं त्वा मर्ता अगृभ्णत　देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान् यद् यज्ञाँ अभिपासि मानुष　तव क्रत्वा यविष्ठ्य　५०५

तद् भद्रं तव दंसना　पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते　समिद्धमपिशर्वरे　५०६

आ जुहोता स्वध्वरं　शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं　श्रुष्टी देवं सपर्यत　५०७

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं　त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा　आदिद्धोतारं न्यसादयन्त　५०८

॥ ६० ॥ (ऋ० ३।१०।१-९)। उष्णिक्।

त्वामग्ने मनीषिणः　सम्राजं चर्षणीनाम् । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे　५०९
त्वां यज्ञेष्वृत्विजम्　अग्ने होतारमीळते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे　५१०
स घा यस् ते ददाशति　समिधा जातवेदसे । सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति　५११

स केतुरध्वराणाम् अग्निर्देवेभिरा गमत् । अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ५१२
प्र होत्रे पूर्व्यं वचो अग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ५१३
अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ५१४
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज । होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ५१५
स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् । भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ५१६
तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ५१७

॥ ६१ ॥ (ऋ० ३ । ११ । १—९) गायत्री ।

अग्निर्होता पुरोहितो अध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ५१८
स हव्यवाळमर्त्य उशिग् दूतश् चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ५१९
अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ५२०
अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ५२१
अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ५२२
साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस् तुविश्रवस्तमः ५२३
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ५२४
परि विश्वानि सुधिता अग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ५२५
अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ५२६

॥ ६२ ॥ (ऋ० ३ । २४ । १-५) ५२७ अनुष्टुप्, ५२८-५३१ गायत्री ।

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस् तरन्नरातीर् वर्चो धा यज्ञवाहसे ५२७
अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सू नो अध्वरम् ५२८
अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ५२९
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर् देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ५३०
अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ५३१

॥ ६३ ॥ (ऋ० ३ । २५ । १-५) विराट् ।

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास् तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग् देवाँ इह यजा चिकित्वः ५३२
अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान् सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एह वहा पुरुक्षो ५३३

अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भांति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन् वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ५३४
अग्न इन्द्रश् च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ५३५
अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।
सधस्थानि महयमान ऊती ५३६

॥ ६४ ॥ (ऋ० ३ । २७ । १-१५) गायत्री ।

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ५३७
ईळे अग्नि विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ५३८
अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ५३९
समिध्यमानो अध्वरेऽ अग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस् तमीमहे ५४०
पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ५४१
तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ५४२
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ५४३
वाजी वाजेषु धीयते अध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ५४४
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ५४५
नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत । अग्ने सुदीतिमुशिजम् ५४६
अग्निं यन्तुरमप्तुरम् ऋतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ५४७
ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि । अग्निमीळे कविक्रतुम् ५४८
ईळेन्यो नमस्यस् तिरस् तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ५४९ *
वृषो अग्निः समिध्यते अश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ५५० *
वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ५५१ *

॥ ६५ ॥ (ऋ० ३ । २८ । १-६)
५५२-५५३, ५५७ गायत्री, ५५४ उष्णिक्, ५५५ त्रिष्टुप्, ५५६ जगती ।

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ५५२
पुरोळा अग्ने पचतस् तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ५५३
अग्ने वीहि पुरोळाशम् आहुतं तिरोअह्न्यम् । सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ५५४

* ५४९-५५१ अथर्व. २० । १०२ । १-३

माध्यंदिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ५५५

अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ५५६

अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः । जुषस्व तिरोअह्न्यम् ५५७

॥ ६६ ॥ (ऋ० ३ । २९ । १-१६) त्रिष्टुप्,
५५८, ५६१, ५६७, ५६९ अनुष्टुप्, ५६३, ५६८, ५७१, ५७२ जगती ।

अस्तीदमधिमन्थनम् अस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भर अग्निं मन्थाम पूर्वथा ५५८

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर् हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ५५९

उत्तानायामव भरा चिकित्वान् सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास् पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ५६०

इळायास् त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीमहि अग्ने हव्याय वोळ्हवे ५६१

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्ताद् अग्निं नरो जनयता सुशेवम् ५६२

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचते अश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस् तृणा दहन् ५६३

जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ५६४

सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान् सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान् हविषा यजासि अग्ने बृहद् यजमाने वयो धाः ५६५

कृणोत धूमं वृषणं सखायो अस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ५६६

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ सीद अथा नो वर्धया गिरः ५६७

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद् विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि ५६८

सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान् देवयते यज ५६९

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासो ऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ५७०

प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ५७१

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद् विदुः ।
द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ५७२

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ५७३

॥ ६७ ॥ (ऋ० ३ । १३ । १-७) [५७४-५८०] ऋषभो वैश्वामित्रः । अनुष्टुप् ।

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।
गमद् देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ५७४

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस् तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ५७५

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ५७६

स नः शर्माणि वीतये ऽग्निर्यच्छतु शंतमा ।
यतो नः प्रुष्णवद् वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ५७७

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ५७८

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधो अग्ने सहस्रसातमः ५७९

नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ५८०

॥६८॥ (ऋ० ३ । १४ । १-७) त्रिष्टुप् ।

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ५८१

अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस् तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ५८२

द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत् सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिर् आ वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ५८३

मित्रश् च तुभ्यं वरुणः सहस्वो अग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन् त्सूर्यो नॄन् ५८४

वयं ते अद्य ररिमा हि कामम् उत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवान् अस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ५८५

त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर् देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नो अद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ५८६

तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ५८७

॥ ६९ ॥ (ऋ० ३ । १५ । १-७) (५८८-५९९) उत्कीलः कात्यः । त्रिष्टुप् ।

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्याम् अग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ५८८

त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ५८९

त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ५९०

अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि   पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्   जातवेदो बृहतः सुप्रणीते   ५९१

अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि   देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजम्   अग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके   ५९२

प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजान्   अग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो   मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात्   ५९३

इळामग्ने० (४६९)

॥ ७० ॥ (ऋ० ३। १६। १-६) प्रगाथः (=बृहती + सतोबृहती।)

अयमग्निः सुवीर्यस्य   ईशे महः सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत   ईशे वृत्रहथानाम्   ५९४

इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं   यस्मिन् रायः शेवृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो   विश्वाहा शत्रुमादभुः   ५९५

स त्वं नो रायः शिशीहि   मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतो   अनमीवस्य शुष्मिणः   ५९६

चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिः   चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्ये   आ शंस उत नृणाम्   ५९७

मा नो अग्नेऽमतये   मावीरतायै रीरधः ।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदे   अप द्वेषांस्या कृधि   ५९८

शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतो   अग्ने बृहतो अध्वरे ।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना   तुविद्युम्न यशस्वता   ५९९

॥ ७१ ॥ (ऋ० ३। १७। १-५) ६००—६०२ कतो वैश्वामित्रः। त्रिष्टुप्।

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा   समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः   सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान्   ६००

यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या   यथा दिवो जातवेदश् चिकित्वान् ।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्   मनुष्वद् यज्ञं प्र तिरेममद्य   ६०१

त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस् तिस्र आजानीरुषसस् ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वान् अथा भव यजमानाय शं योः ६०२

अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस् त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ६०३

यस् त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान् द्विता च सत्ता स्वधया च शंभुः ।
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वो अथा नो धा अध्वरं देववीतौ ६०४

॥ ७२ ॥ (ऋ० ३ । १८ । १-५)

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ६०५

तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान् वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ६०६

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ६०७

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद् वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर् मर्मृज्मा ते तन्वं भूरि कृत्वः ६०८

कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत् सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ६०९

॥ ७३ ॥ (ऋ० ३ । १९ । १-५) [६१०—६२६] गाथी कौशिकः ।

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद् देवताता यजीयान् राये वाजाय वनते मघानि ६१०

प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्मि अच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ६११

स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश् च वस्वः ६१२

भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीका अग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ६१३

यत् त्वा होतारमनजन् मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोधि अधि श्रवांसि धेहि नस् तनूषु ६१४

॥ ७४ ॥ (ऋ० ३।२०।२—४)

अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस् ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास् ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ६१५

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश् च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ६१६

अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद् विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ६१७

॥ ७५ ॥ (ऋ० ३।२१।१-५)

६१८, ६२१ त्रिष्टुप्, ६१९-२० अनुष्टुप्, ६२२ विराड्रूपा सतोबृहती।

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहि इमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ६१८

घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ६१९

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतो अग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ६२०

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ६२१

ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि ६२२

॥ ७६ ॥ (ऋ० ३।२२।१-५) ६२६ पुरीष्याग्नयः। त्रिष्टुप्, ६२६ अनुष्टुप्।

अयं सो अग्निर्यस्मिन् त्सोमम् इन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान् त्सन् त्स्तूयसे जातवेदः ६२३

अग्ने यत् ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ६२४

अग्ने॑ दि॒वो अर्ण॒मच्छा॑ जिगा॒सि　अच्छा॑ दे॒वाँ ऊ॑चिषे॒ धिष्ण्या॒ ये ।
या रो॑च॒ने प॒रस्ता॒त् सूर्य॑स्य　याश्॑ चा॒वस्ता॑दुप॒तिष्ठ॑न्त॒ आपः॑　६२५

पु॒री॒ष्या॑सो अ॒ग्नयः॑　प्रा॒व॒णेभिः॑ स॒जोष॑सः ।
जु॒षन्तां॑ य॒ज्ञम॒द्रुहो॑　अन॒मी॒वा इषो॑ म॒हीः　६२६
इळा॑मग्ने० (४६९)

॥ ७७ ॥ (ऋ० ३ । २३ । १-५)
६२७-६३० देवश्रवा देववातश्च भारतौ । त्रिष्टुप्, ६२९ सतोबृहती ।

निर्म॑थितः॒ सुधि॑त॒ आ स॒धस्थे॒　युवा॑ क॒विर॑ध्व॒रस्य॑ प्रणे॒ता ।
जूर्य॑त्स्व॒ग्निर॒जरो॒ वने॒ष्व　त्रा॑ दधे अ॒मृतं॑ जा॒तवे॑दाः　६२७

अम॑न्थिष्टां॒ भार॑ता रे॒वद॒ग्निं　दे॒वश्र॑वा दे॒ववा॑तः सु॒दक्ष॑म् ।
अग्ने॒ वि प॑श्य बृह॒ताभि रा॒या　इ॒षां नो॑ ने॒ता भ॑वता॒दनु॒ द्यून्　६२८

दश॒ क्षिपः॑ पू॒र्व्यं सी॑मजीजन॒न्　त्सुजा॑तं मा॒तृषु॑ प्रि॒यम् ।
अ॒ग्निं स्तु॑हि दैववा॒तं दे॑वश्रवो॒　यो जना॑ना॒मस॑द् व॒शी　६२९

नि त्वा॑ दधे॒ वर॒ आ पृ॑थि॒व्या　इळा॑यास्प॒दे सु॑दिन॒त्वे अह्ना॑म् ।
दृ॒षद्व॑त्यां॒ मानु॑ष आप॒याया॑ं　सर॑स्वत्यां रे॒वद॑ग्ने दिदीहि　६३०
इळा॑मग्ने० (४६९)

॥ ७८ ॥ (ऋग्वेदस्य चतुर्थं मण्डलं, सूक्तं १, मंत्राः १, ६-२०)
[६३१—७५५] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, ६३१ अष्टिः ।

त्वां ह्य॑ग्ने॒ सद॒मित् स॑म॒न्यवो॑　दे॒वासो॑ दे॒वम॑र॒तिं न्ये॑रि॒र　इति॒ क्रत्वा॑ न्येरि॒रे ।
अम॑र्त्यं यजत॒ मर्त्ये॒ष्वा　दे॒वमादे॑वं जनत॒ प्रचे॑तसं　विश्व॒मादे॑वं जनत॒ प्रचे॑तसम्　६३१

अ॒स्य श्रेष्ठा॑ सु॒भग॑स्य सं॒दृग्　दे॒वस्य॑ चि॒त्रत॑मा॒ मर्त्ये॑षु ।
शुचि॑ घृ॒तं न त॒प्तमघ्न्या॑याः　स्पा॒र्हा दे॒वस्य॑ मं॒हने॑व धे॒नोः　६३२

त्रिर॑स्य॒ ता प॑र॒मा स॑न्ति स॒त्या　स्पा॒र्हा दे॒वस्य॒ जनि॑मान्य॒ग्नेः ।
अ॒न॒न्ते अ॒न्तः परि॑वीत॒ आगा॒च्　छुचिः॑ शु॒क्रो अ॒र्यो रोरु॑चानः　६३३

स दू॒तो विश्वेद॒भि व॑ष्टि॒ सद्मा॑　होता॒ हिर॑ण्यर॒थो रंसु॑जिह्वः ।
रो॒हिद॑श्वो वपु॒ष्यो॑ वि॒भावा॑　सदा॑ र॒ण्वः पि॑तु॒मती॑व सं॒सत्　६३४

स चेतयन् मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन् देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ६३५
स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन् अच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य।
धिया यद् विश्वे अमृता अकृण्वन् द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ६३६
स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्ता आयोयुवानो वृषभस्य नीळे ६३७
प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ६३८
अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तर् उदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ६३९
ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन्।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन् विदन्त ज्योतिश् चकृपन्त धीभिः ६४०
ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम्।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ६४१
ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस् त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन्।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ६४२
नेशत् तमो दुधितं रोचत द्यौर् उद् देव्या उषसो भानुरर्त।
आ सूर्यो बृहतस् तिष्ठदज्रां ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ६४३
आदित् पश्चा बुबुधाना व्यख्यन् आदिद् रत्नं धारयन्त द्युभक्तम्।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ६४४
अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्।
शुच्यूधो अतृणन्न गवाम् अन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ६४५
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम्।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ६४६

॥ ७२ ॥ (ऋ० ४।२।१-२०) त्रिष्टुप्।

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ६४७

इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान् वृषणः शुक्रांश्च ६४८

अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश् च देवान् विश आ च मर्तान् ६४९

अर्यमणं वरुणं मित्रमेषाम् इन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ६५०

गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ६५१

यस् त इध्मं जभरत् सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
भुवस् तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात् सीमघायत उरुष्य ६५२

यस् ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन् मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन् रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ६५३

यस् त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान् तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ६५४

यस् तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस् त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषत् नैनमंहः परि वरदघायोः ६५५

यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठ असाम यस्य विधतो वृधासः ६५६

चित्तिमचित्तिं चिनवद् वि विद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान्
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ६५७

कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस् त्वं दृश्याँ अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ६५८

त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथु श्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ६५९

अधा ह यद् वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश् चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर् ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ६६०

* इषु च द्रम् भवथे (पदानि)

अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेम अद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ६६१

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ६६२

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रम् ऊर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ६६३

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ६६४

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ६६५

एता ते अग्न उचथानि वेधो अवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ६६६

॥ ८० ॥ (ऋ० ४।३।२-१६)

अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीद इमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ६६७

आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद् यमीळे ६६८

त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित् स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ६६९

कथा ह तद् वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद् भगाय ६७०

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद् वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ६७१

कथा महे पुष्टिंभराय पूष्णे कद् रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद् विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ६७२

कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश् चिकित्वान् ६७३

ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोर् आमा सचा मधुमत् पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ६७४

ऋतेन हि ष्मा वृषभश् चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद् वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ६७५

ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासम् आविः स्वरभवज् जाते अग्नौ ६७६

ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित् स्रवितवे दधन्युः ६७७

मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर् मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ६७८

रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद् वावृधानम् ६७९

एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैर् इमान् त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ६८०

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यानि अशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ६८१

॥ ८१ ॥ (ऋ० ४ । ३ । १-११)

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतर् अग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश् चित् तिरसि मनीषाम् ६८२

अमूरो होता न्यसादि विक्षु अग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन् मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ६८३

यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ६८४

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ६८५

परि त्मना मितद्रुरेति होता अग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ६८६

भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग् घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत् ते शोचिस् तमसा वरन्त न ध्वस्मानस् तन्वी३ रेप आ धुः ६८७

न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावको अग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ६८८

द्विर्यं पञ्च जीजनन् त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ६८९

तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ६९०

ये ह त्ये ते सहमाना अयासस् त्वेषासो अग्ने अर्चयश् चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ६९१

अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर् नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः । ६९२

॥ ८२ ॥ (ऋ० ४ । ७ । १-११) त्रिष्टुप्, ६९३ जगती, ६९४-९८ अनुष्टुप् ।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर् होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर् वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ६९३

अग्ने कदा त आनुषग् भुवद् देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ६९४

ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ६९५

आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश् चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ६९६

तमग्निं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ६९७

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ६९८

ससस्य यद् वियुता सस्मिन्नूधन् ऋतस्य धामन् रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ६९९

वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वान् उभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ७००

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश् चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश् चिज् जातो भवसीदु दूतः ७०१

सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ७०२

तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन् आशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ७०३

॥ ८३ ॥ (ऋ० ४ । ८ । १-८) गायत्री ।

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ७०४
स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ७०५
स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद् वसु ७०६
स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ७०७
ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ७०८
ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ७०९
अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ७१०
स विप्रश् चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ७११

॥ ८४ ॥ (ऋ० ४ । ९ । १-८)

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ७१२
स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ७१३

स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता नि षीदति ७१४
उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि षीदति ७१५
वेषि ह्यध्वरीयताम् उपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ७१६
वेषीद् वस्य दूत्यं यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ७१७
अस्माकं जोष्यध्वरम् अस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ७१८
परि ते दूळभो रथो अस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ७१९

॥ ८५ ॥ (ऋ० ४ । १० । १-८)
पदपंक्तिः, (७२३, ७२५, ७२६ उष्णिग्वा,) ७२४ महापदपंक्तिः, ७२७ उष्णिक् ।

अग्ने तमद्य अश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ७२०
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ७२१
एभिर्नो अर्कैर् भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ७२२
आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तो अग्ने दाशेम । प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ७२३
तव स्वादिष्ठा अग्ने संदृष्टिर् इदा चिदह्न इदा चिदक्तोः । श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ७२४
घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् । तत् ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ७२५
कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि, द्वेषो अग्न इनोषि मर्तात् । इत्था यजमानादृतावः ७२६
शिवा नः सख्या सन्तु, भ्रात्रा अग्ने देवेषु युष्मे । सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ७२७

॥ ८६ ॥ (ऋ० ४ । ११ । १-६) त्रिष्टुप् ।

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकम् उपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद् दृशे ददृशे नक्तया चिद् अरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ७२८

वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद् वावनः शुक्र देवैस् तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ७२९

त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास् त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ७३०

त्वद् वाजी वाजंभरो विहाया अभिष्टिकृज् जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद् रयिर्देवजूतो मयोभुस् त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ७३१

त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर् दमूनसं गृहपतिममूरम् ७३२

आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ७३३

॥ ८७ ॥ (ऋ० ४ । १२ । १-६)

यस् त्वामग्न इनधते यतस्रुक् त्रिस् ते अन्नं कृणवत् सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत् तव क्रत्वा जातवेदश् चिकित्वान् ७३४
इध्मं यस् ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन् रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ७३५
अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्य अग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ् मर्त्याय स्वधावान् ७३६
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठ अचित्तिभिश् चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्व१स्माँ अदितेरनागान् व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ७३७
महश् चिदग्न एनसो अभीके ऊर्वाद् देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद् रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ७३८
यथा ह त्यद् वसवो गौर्यं चित् पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ७३९

॥ ८८ ॥ (ऋ० ४ । १३ । १-५)

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद् विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणम् उत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ७४०
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् द्रप्सं दविध्वद् गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ७४१
यं सीमकृण्वन् तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ७४२
वहिष्ठेभिर्विहरन् यासि तन्तुम् अवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस् तमो अप्स्व१न्तः ७४३
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ७४४

॥ ८९ ॥ (ऋ० ४ । १४ । १—५)

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद् देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेन इमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ७४५

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज् ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश् चेकितानः ७४६

आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान् मही चित्रा रश्मिभिश् चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देवी उषा ईयते सुयुजा रथेन ७४७

आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ७४८

अनायतो० (७४४)

॥ ९० ॥ (ऋ० ४ । १५ । १-६) गायत्री ।

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ७४९
परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ७५०
परि वाजपतिः कविर् अग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद् रत्नानि दाशुषे ७५१
अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ७५२
अस्य घा वीर ईवतो अग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ७५३
तमर्वन्तं न सानसिम् अरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ७५४

॥ ९१ ॥ (ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-१२)
(७५५-७६६) बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । त्रिष्टुप् ।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ७५५

अबोधि होता यजथाय देवान् ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस् तमसो निरमोचि ७५६

यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद् दक्षिणा युज्यते वाजयन्ती उत्तानामूर्ध्वो अधयज् जुहूभिः ७५७

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ७५८

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानो अग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ७५९

अग्निर्होता न्यसीदद् यजीयान् उपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ७६०

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुम् अग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस् ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ७६१

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस् तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ७६२

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यान् आविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ७६३

तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत् ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ७६४

आद्य रथं भानुमो भानुमन्तम् अग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान् पथीनामुर्व१न्तरिक्षम् एह देवान् हविरद्याय वक्षि ७६५

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ७६६

॥ ९२ ॥ (ऋ० ५।२।१-१२)
(७६७-७७८) कुमार आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा, २, ९ वृशो जानः । त्रिष्टुप्, १२ शक्वरी।

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ७६७

कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्ध अपश्यं जातं यदसूत माता ७६८

हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत् किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ७६९

क्षेत्रा॑दपश्यं सनु॒तश् चर॑न्तं सु॒मद् यू॒थं न पु॒रु शोभ॑मानम् ।
न ता अ॑गृभ्र॒न्नज॑निष्ट॒ हि षः पलि॑क्नी॒रिद् यु॑व॒तयो॑ भवन्ति ७७०

के मे॑ मर्य॒कं वि य॑वन्त॒ गोभि॒र् न येषां॑ गो॒पा अर॑णश् चि॒दास॑ ।
य ईं॑ जगृ॒भुरव॒ ते सृ॑ज॒न्त्वाजा॑ति प॒श्व उप॑ नश् चिकि॒त्वान् ७७१

व॒सां राजा॑नं वस॒तिं जना॑ना॒मरा॑तयो॒ नि द॑धु॒र्मर्त्ये॑षु ।
ब्रह्मा॒ण्यत्रे॒रव॒ तं सृ॑जन्तु निन्दि॒तारो॒ निन्द्या॑सो भवन्तु ७७२

शुनः॑श्चि॒च्छेपं॒ निदि॑तं स॒हस्रा॒द् यूपा॑दमुञ्चो॒ अश॑मिष्ट॒ हि षः ।
ए॒वास्मद॑ग्ने॒ वि मु॑मुग्धि॒ पाशा॒न् होत॑श् चिकित्व इ॒ह तू नि॒षद्य॑ ७७३

हृ॒णी॒यमा॑नो॒ अप॒ हि मदैये॑: प्र मे॑ दे॒वानां॑ व्रत॒पा उ॑वाच ।
इन्द्रो॑ वि॒द्वाँ अनु॒ हि त्वा॑ च॒चक्ष॒ तेना॒हम॑ग्ने॒ अनु॑शिष्ट॒ आगा॑म् ७७४

वि ज्योति॑षा बृह॒ता भा॑त्य॒ग्निरा॒विर्विश्वा॑नि कृणुते महि॒त्वा ।
प्रादे॑वीर्मा॒याः स॑हते दु॒रेवाः॒ शिशी॑ते॒ शृङ्गे॒ रक्ष॑से वि॒निक्षे॑ ७७५

उ॒त स्वा॒नासो॑ दि॒वि ष॑न्त्व॒ग्नेस् ति॒ग्मायु॑धा॒ रक्ष॑से॒ हन्त॒वा उ॑ ।
मदे॑ चिदस्य॒ प्र रु॑जन्ति॒ भामा॒ न व॑रन्ते परि॒बाधो॒ अदे॑वीः ७७६

ए॒तं ते॒ स्तोमं॑ तुविजात॒ विप्रो॒ रथं॒ न धीरः॒ स्वपा॑ अतक्षम् ।
यदीद॑ग्ने॒ प्रति॒ त्वं दे॑व॒ हर्याः॒ स्व॑र्वतीर॒प ए॑ना जयेम ७७७

तु॒वि॒ग्रीवो॑ वृष॒भो वा॑वृधा॒नो॑ऽश॒त्र्व१॒र्यः सम॑जाति॒ वेदः॑ ।
इ॒तीमम॒ग्निम॒मृता॑ अवोचन् ब॒र्हिष्म॑ते॒ मन॑वे॒ शर्म॑ यंसद्ध॒विष्म॑ते॒ मन॑वे॒ शर्म॑ यंसत् ७७८

॥ ९३ ॥ (ऋ० ५।३।१-२, ४-१२)

(७७९-८१०) वसुश्रुत आत्रेयः । ७७९ विराट्, ७८०-७८९ त्रिष्टुप् ।

त्वम॑ग्ने॒ वरु॑णो॒ जाय॑से॒ यत् त्वं मि॒त्रो भ॑वसि॒ यत् समि॑द्धः ।
त्वे विश्वे॑ सहसस्पुत्र दे॒वास् त्वमिन्द्रो॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ७७९

त्वम॑र्य॒मा भ॑वसि॒ यत् क॒नीनां॒ नाम॑ स्वधाव॒न् गुह्यं॑ बिभर्षि ।
अ॒ञ्जन्ति॑ मि॒त्रं सुधि॑तं॒ न गोभि॒र् यद् दंप॑ती॒ सम॑नसा कृ॒णोषि॑ ७८०

तव॑ श्रि॒या सु॒दृशो॑ देव दे॒वाः पु॒रू दधा॑ना अ॒मृतं॑ सपन्त ।
होता॑रम॒ग्निं मनु॑षो॒ नि षे॑दुर् दश॒स्यन्त॑ उ॒शिजः॒ शंस॑मा॒योः ७८१

न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान् न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश् च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद् देव मर्तान् ७८२

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ७८३

यो न आगो अभ्येनो भराति अधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेताम् अग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ७८४

त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ७८५

अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस् ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नो अग्ने कदाँ ऋतचिद् यातयासे ७८६

भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज् जोषयासे ।
कुविद् देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ७८७

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन् रिपवो जनासो अज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ७८८

इमे यामासस् त्वद्रिगभूवन् वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाह्ायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ७८९

॥ ९४ ॥ (ऋ० ५ । ४ । १-११) त्रिष्टुप् ।

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनाम् अभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेम अभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ७९०

हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीहि अस्मद्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ७९१

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ७९२

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान् हविरद्याय वक्षि ७९३

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ७९४

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस् तन्वे३ स्वायै ।
पिपर्षि यत् सहसस्पुत्र देवान् त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ७९५

वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्व अस्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ७९६

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस् त्रिवरूथेन पाहि ७९७

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिं पर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो३ अस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ७९८

यस् त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानो अमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ७९९

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ८००

॥ ९५ ॥ (ऋ० ५ । ६ । १-१०) पङ्क्तिः ।

अग्निं तं मन्ये यो वसुर् अस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवो अस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०१

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०२

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यम् इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०३

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०४

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०५

ओ त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिंन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषग् इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०६
तव त्ये अग्ने अर्चयो महिं व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनाम् इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०७
नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस् त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०८
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत् पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०९
एवाँ अग्निमजुर्यमुर् गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्यम् उत त्यदाश्वश्व्यम् इषं स्तोतृभ्य आ भर ८१०

॥ ९६ ॥ (ऋ० ५ । ७ । १-१०) (८११-८२७) इष आत्रेयः। अनुष्टुप्, ८२० पङ्क्तिः।

सखायः सं वः सम्यञ्चम् इषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनाम् ऊर्जो नप्त्रे सहस्वते ८११
कुत्रा चिद् यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश् चिद् यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ८१२
सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ८१३
स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद् दूर आ सते ।
पावको यद् वनस्पतीन् प्र स्मा मिनात्यजरः ८१४
अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ८१५
यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद् विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनाम् अस्ततातिं चिदायवे ८१६
स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्न् ऋभुरनिभृष्टतविषिः ८१७

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत् प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ८१८

आ यस्ते सर्पिरासुते अग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ८१९

इति चिन् मन्युमध्रिजस् त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतो अत्रिः सासह्याद् दस्यून् इषः सासह्यान्नॄन् ८२०

॥ ९७ ॥ (ऋ० ५ । ८ । १-७) जगती ।

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ८२१

त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ८२२

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ८२३

त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ८२४

त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ८२५

त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ८२६

त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोऽभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ८२७

॥ ९८ ॥ (ऋ० ५ । ९ । १-७)

(८२८-८४१) गय आत्रेयः । अनुष्टुप् । ८३२; ८३४ पङ्क्तिः ।

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ८२८

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश् चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ८२९

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ८३०

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वना अग्ने पशुर्न यवसे ८३१

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिवि उप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ८३२

तवाहमग्न ऊतिभिर् मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ८३३

तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत् स पोषयद् भुवद् वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ८३४

॥ ९९ ॥ (ऋ० ५ । १० । १–७) अनुष्टुप्, ८३८, ८४१ पङ्क्तिः ।

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ८३५

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यमारुहत् क्राणा मित्रो न यज्ञियः ८३६

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ८३७

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश् चिद् येषां बृहत् सुकीर्तिर्बोधति त्मना ८३८

तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ८३९

नू नो अग्न ऊतये सबाधसश् च रातये ।
अस्माकासश् च सूरयो विश्वा आशास् तरीषणि ८४०

त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ८४१

॥ १०० ॥ (ऋ० ५ । ११ । १-६) (८४२-८६५) सुतंभर आत्रेयः । जगती ।

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविर् अग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद् वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ८४२
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितम् अग्निं नरस् त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ८४३
असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर् मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस् ते केतुरभवद् दिवि श्रितः ८४४
अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुया अग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनो अग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ८४५
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस् तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीर् आ पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ८४६
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितम् अन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ८४७

॥ १०१ ॥ (ऋ० ५ । १२ । १-६) त्रिष्टुप् ।

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये३ सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ८४८
ऋतं चिकित्व ऋतमिच् चिकिद्धि ऋतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ८४९
कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ८५०
के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ८५१
सखायस् ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर् ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ८५२
यस् ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ८५३

॥ १०२ ॥ (ऋ० ५ ।१३ । १-६) गायत्री ।

अर्चन्तस् त्वा हवामहे अर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ८५४
अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ८५५
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद् दैव्यं जनम् ८५६
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ८५७
त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ८५८
अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस् त्वं परिभूरसि । आ राधश् चित्रमृञ्जसे ८५९

॥ १०३ ॥ (ऋ० ५ । १४ । १-६)

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ८६०
तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ८६१
तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ८६२
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन् दस्यून् ज्योतिषा तमः । अविन्दद् गा अपः स्वः ८६३
अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ८६४
अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ८६५

॥ १०४ ॥ (ऋ० ५ । १५ । १-५) (८६६-८७०) धरुण आङ्गिरसः। त्रिष्टुप् ।

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ८६६
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन् धरुणे सेदुषो नॄञ् जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ८६७
अंहोयुवस् तन्वस् तन्वते वि वयो महद् दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस् तुतुर्यात् सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ८६८
मातेव यद् भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद् दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ८६९
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तम् उरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ८७०

॥ १०५ ॥ (ऋ० ५। १६। १-५) [८७१-८८०] पूरुरात्रेयः। अनुष्टुप्, ८७५ पङ्क्तिः।

बृहद् वयो हि भानवे ऽर्चा देवायाग्नये।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर् मर्तासो दधिरे पुरः ८७१

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः।
वि हव्यमग्निरानुषग् भगो न वारमृण्वति ८७२

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः।
विश्वा यस्मिन् तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ८७३

अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना।
तमिद् यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ८७४

नू न एहि वार्यम् अग्ने गृणान आ भर।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचा उतैधि पृत्सु नो वृधे ८७५

॥ १०६ ॥ (ऋ० ५। १७। १-५) अनुष्टुप्, ८८० पङ्क्तिः।

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ८७६

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन् मन्यसे।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ८७७

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ८७८

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ।
अधा विश्वासु हव्यो ऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ८७९

नू न इद्धि वार्यम् आसा सचन्त सूरयः।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तये उतैधि पृत्सु नो वृधे ८८०

॥ १०७ ॥ (ऋ० ५। १८। १-५)

[८८१-८८५] द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः। अनुष्टुप्, ८८५ पङ्क्तिः।

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ८८१

द्वितार्य मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुपक् स्तोता चित् ते अमर्त्य ८८२

तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन् नीयते ८८३

चित्रा वा येषु दीधितिर् आसन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ८८४

ये मे पञ्चाशतं ददुर् अश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत् कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ८८५

॥ १०८ ॥ (ऋ० ५ । १९ । १-५)

[८८६—८९०] वव्रिरात्रेय । ८८६-८८७ गायत्री, ८८८-८८९ अनुष्टुप्, ८९० विराड्रूपा ।

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश् चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ८८६

जुहुरे वि चितयन्तो ऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ८८७

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद् वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ८८८

प्रियं दुग्धं न काम्यम् अजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरो ऽदब्धः शश्वतो दभः ८८९

क्रीळन् नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन् धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ८९०

॥ १०९ ॥ (ऋ० ५ । २० । १-४) [८९१-८९४] प्रयस्वन्त आत्रेयाः । अनुष्टुप्, ८९४ पङ्क्तिः ।

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन् मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ८९१

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरो ऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ८९२

होतारं त्वा वृणीमहे ऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ८९३

इत्था यथा त ऊतये सहसावन् दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ८९४

॥ ११० ॥ (ऋ० ५ । २१ । १-४) [८९५-८९८] सस आत्रेयः । अनुष्टुप्, ८९८ पङ्क्तिः ।

मनुष्वत् त्वा नि धीमहि मनुष्वत् समिधीमहि । अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ८९५
त्वं हि मानुषे जने ऽग्ने सुप्रीत इध्यसे । स्रुचस् त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ८९६
त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत । सपर्यन्तस् त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ८९७
देवं वो देवयज्यया अग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिहि ऋतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ८९८

॥ १११ ॥ (ऋ० ५ । २२ । १-४) [८९९-९०२] विश्वसामा आत्रेयः । अनुष्टुप्, ९०२ पङ्क्ति ।

प्र विश्वसामन्नत्रिवद् अर्चा पावकशोचिषे । यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ८९९
न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् । प्र यज्ञ एत्वानुषग् अद्या देवव्यचस्तमः ९००
चिकित्विन् मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये । वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ९०१
अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दंपते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ९०२

॥ ११२ ॥ (ऋ० ५ । २३ । १-४) [९०३-९०६] द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः । अनुष्टुप्, ९०६ पङ्क्तिः ।

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् । विश्वा यश् चर्षणीरभि आसा वाजेषु सासहत् ९०३
तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर । त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ९०४
विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः । होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ९०५
स हि ष्मा विश्वचर्षणिर् अभिमाति सहो दधे ।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन् नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि ९०६

॥ ११३ ॥ (ऋ० ५ । २४ । १-४)
[९०७-९१०] बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा । द्विपदा विराट् ।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ९०७
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ९०८
स नो बोधि श्रुधी हवम् उरुष्या णो अघायतः समस्मात् ९०९
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ९१०

॥ ११४ ॥ (ऋ० ५ । २५ । १-९) [९११-९१९] वसूयव आत्रेयाः । अनुष्टुप् ।

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत् पुत्र ऋषूणाम् ऋतावा पर्षति द्विषः ९११

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद् देवासश् चिद् यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित् सुदीतिभिर्विभावसुम् ९१२

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ९१३

अग्निर्देवेषु राजति अग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ९१४

अग्निस् तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत् पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ९१५

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ९१६

यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद् रयिस् त्वद् वाजा उदीरते ९१७

तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ९१८

एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ९१९

॥ ११५ ॥ (ऋ० ५ । २६ । १-८) गायत्री ।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ९२०
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ९२१
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ९२२
अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ९२३
यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि ९२४
समिधानः सहस्रजिद् अग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ९२५
न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ९२६
प्र यज्ञ एत्वानुषग् अद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ९२७

॥ ११६ ॥ (ऋ० ५।२७।१-५)

[९२८-९३२] त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः, अश्वमेधश्च भारताः राजानः (अत्रिर्भौम इति केचित्)। त्रिष्टुप्, ९३१-९३२ अनुष्टुप्।

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर् वैश्वानर त्र्यरुणश् चिकेत ९२८
यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानो ऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ९२९
एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।
यो मे गिरस् तुविजातस्य पूर्वीर् युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ९३०
यो म इति प्रवोचति अश्वमेधाय सूरये ।
दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ९३१
यस्य मा परुषाः शतम् उद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ९३२

॥ ११७ ॥ (ऋ० ५।२८।१-६)

[९३३-९३८] विश्ववारात्रेयी। ९३३, ९३५ त्रिष्टुप्, ९३४ जगती, ९३६ अनुष्टुप्, ९३७-९३८ गायत्री।

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर् देवाँ ईळाना हविषा घृताची ९३३
समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष् कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वसि आतिथ्यमग्ने नि च धत्त इत् पुरः ९३४
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ९३५
समिद्धस्य प्रमहसो ऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ९३६
समिद्धो अग्न आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ९३७
आ जुहोता दुवस्यत अग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ९३८

॥ ११८ ॥ (ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-१३)
[९३९ १०९०] भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता अस्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ९३९

अधा होता न्यसीदो यजीयान् इळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ९४०

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैस् त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ९४१

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ९४२

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ९४३

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर् होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसम् उप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ९४४

तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ९४५

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ९४६

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर् विश्वेत् स वामा दधते त्वोतः ९४७

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर् आ ते भद्रायां सुमतौ यतेम ९४८

आ यस् ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१स् तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ९४९

नृवद् वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ९५०

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्ति अग्ने वसु विधते राजनि त्वे ९५१

॥ ११९ ॥ (ऋ० ६ । २ । १-११) अनुष्टुप्, ९६२ शक्वरी ।

त्वं हि क्षैतवद् यशो ऽग्ने मित्रो न पत्यसे । त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ९५२
त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते । त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ९५३
सजोषस् त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते । यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ९५४
ऋधद् यस् ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते । ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ९५५
समिधा यस् त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् । वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ९५६
त्वेषस् ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः । सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ९५७
अधा हि विक्ष्वीड्यो ऽसि प्रियो नो अतिथिः । रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ९५८
क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसे ऽग्ने वाजी न कृत्व्यः । परिज्मेव स्वधा गयो ऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ९५९
त्वं त्या चिदच्युता ऽग्ने पशुर्न यवसे । धामा ह यत् ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ९६०
वेषि ह्यध्वरीयताम् अग्ने होता दमे विशाम् । समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ९६१
अच्छा नो मित्रमहो देव देवान् अग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन् द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम, ता तरेम, तवावसा तरेम ९६२

॥ १२० ॥ (ऋ० ६ । ३ । १—८) त्रिष्टुप् ।

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ९६३
ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर् ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर् नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ९६४
सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस् त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद् रण्वो वसतिर्वनेजाः ९६५
तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ९६६
स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ् छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर् वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ९६७

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄन् अमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ९६८

दिवो न यस्य विधतो नवीनोद् वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन् ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ९६९

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर् विद्युन्न दविद्योत् स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ९७०

॥ १२१ ॥ (ऋ० ६ । ४ । १-८)

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानान् उशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ९७१

स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोर् अग्निर्वन्दारु वेद्यश् चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषु उषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ९७२

द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावको ऽश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ९७३

वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ९७४

नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस् त आदिशामरातीर् अत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ९७५

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैर् अग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत् परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ९७६

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर् ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ९७७

नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ९७८

॥ १२२ ॥ (ऋ० ६ । ५ । १-७)

हुवे वः सूनुं सहसो युवानम् अद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ९७९

त्वे वसू॑नि पुर्वणीक होतर् दोषा वस्तो॒रेरि॑रे य॒ज्ञिया॑सः ।
क्षामे॑व॒ विश्वा॒ भुव॑नानि॒ यस्मि॒न् त्सं सौभ॑गानि दधि॒रे पा॑व॒के ९८०

त्वं वि॒क्षु प्र॒दिवः॑ सीद आ॒सु क्रत्वा॑ र॒थीर॑भवो॒ वार्या॑णाम् ।
अत॑ इनोषि विध॒ते चि॑कित्वो॒ व्या॑नु॒षग् जा॑तवेदो॒ वसू॑नि ९८१

यो नः॑ सनु॒त्यो अ॑भि॒दास॑दग्ने॒ यो अन्त॑रो मित्रमहो व॒नुष्या॑त् ।
तम॒जरे॑भि॒र्वृष॑भि॒स् तव॒ स्वैस् तपा॑ तपिष्ठ॒ तप॑सा॒ तप॑स्वान् ९८२

यस् ते॑ य॒ज्ञेन॑ स॒मिधा॒ य उ॒क्थैर् अ॒र्केभिः॑ सूनो सहसो॒ ददा॑शत् ।
स मर्त्ये॑ष्वमृत॒ प्रचे॑ता रा॒या द्यु॒म्नेन॒ श्रव॑सा॒ वि भा॑ति ९८३

स तत् कृ॑धीषि॒तस् तूय॑मग्ने॒ स्पृधो॑ बाधस्व॒ सह॑सा॒ सह॑स्वान् ।
यच्छ॒स्यसे॒ द्युभि॑र॒क्तो वचो॑भि॒स् तज् जु॑षस्व जरि॒तुर्घोषि॒ मन्म॑ ९८४

अ॒श्याम॒ तं काम॑मग्ने॒ तवो॒ती अ॒श्याम॑ र॒यिं र॑यिवः सु॒वीर॑म् ।
अ॒श्याम॒ वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जरा॒जरं॑ ते ९८५

॥ १२३ ॥ (ऋ० ६।६।१-७)

प्र नव्य॑सा॒ सह॑सः सू॒नुमच्छा॑ य॒ज्ञेन॑ गा॒तुमव॑ इ॒च्छमा॑नः ।
वृ॒श्चद्व॑नं कृ॒ष्णया॑मं॒ रुश॑न्तं वी॒ती होता॑रं दि॒व्यं जि॑गाति ९८६

स श्वि॑ता॒नस् त॑न्य॒तू रो॑चन॒स्था अ॒जरे॑भि॒र्नान॑दद्भि॒र्यवि॑ष्ठः ।
यः पा॑व॒कः पु॑रु॒तमः॑ पु॒रूणि॑ पृ॒थून्य॒ग्निर॑नु॒याति॒ भर्व॑न् ९८७

वि ते॒ विष्व॒ग् वात॑जूतासो अग्ने॒ भामा॑सः शुचे॒ शुच॑यश् चरन्ति ।
तु॒वि॒म्र॒क्षासो॑ दि॒व्या नव॑ग्वा॒ वना॑ वनन्ति धृष॒ता रु॒जन्तः॑ ९८८

ये ते॑ शु॒क्रासः॒ शुच॑यः शुचिष्मः॒ क्षां वप॑न्ति॒ विषि॑तासो॒ अश्वाः॑ ।
अध॑ भ्र॒मस् त॑ उर्वि॒या वि भा॑ति या॒तय॑मानो॒ अधि॒ सानु॒ पृश्नेः॑ ९८९

अध॑ जि॒ह्वा पा॑पतीति॒ प्र वृष्णो॑ गोषु॒युधो॒ नाश॒निः सृ॑जा॒ना ।
शूर॑स्येव॒ प्रसि॑तिः क्षा॒तिर॒ग्नेर् दु॒र्वर्तु॑र्भी॒मो द॑यते॒ वना॑नि ९९०

आ भा॒नुना॒ पार्थि॑वानि॒ ज्रयां॑सि म॒हस् तो॒दस्य॑ धृष॒ता त॑तन्थ ।
स बा॑धस्वाप॑ भ॒या सहो॑भिः॒ स्पृधो॑ वनु॒ष्यन् व॒नुषो॒ नि जू॑र्व ९९१

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ९९२

॥ १२४ ॥ (ऋ० ६ । १० । १-७) त्रिष्टुप्; ९९९ द्विपदा विराट् ।

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ९९३

तमु द्युमः पुर्वणीक होतर् अग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ९९४

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस् तमूतिभिश् चित्रशोचिर् व्रजस्य साता गोमतो दधाति ९९५

आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित् तम ऊर्म्यायास् तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ९९६

नू नश् चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश् च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान् त्सुवीर्येभिश् चाभि सन्ति जनान् ९९७

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन् यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिम् अवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ९९८

वि द्वेषांसीनुहि-वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ९९९

॥ १२५ ॥ (ऋ० ६ । ११ । १-६) त्रिष्टुप् ।

यजस्व होतरिषितो यजीयान् अग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः १०००

त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुग् अन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासा ऽग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम् १००१

धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ् जन्म गृणते यजध्यै ।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ १००२

अदिद्युतत् स्वपाको विभावा ऽग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः १००३

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नौ अयामि स्रुग् घृतवती सुवृक्तिः ।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥ १००४

दशस्या नः पुर्वणीक होतर् देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥ १००५

॥ १२६ ॥ (ऋ० ६ । १२ । १-६)

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळ् अग्निस् तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात् सूर्यो न शोचिषा ततान ॥ १००६

आ यस्मिन् त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद् राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिषधस्थस् ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥ १००७

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन् अमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ १००८

सास्माकेभिरेतरी न शूषैर् अग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा उस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥ १००९

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत् तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयान् ऋणो न तायुरति धन्वा राट् ॥ १०१०

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १०११

॥ १२७ ॥ (ऋ० ६ । १३ । १-६)

त्वद् विश्वा सुभग सौभगानि अग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥ १०१२

त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्य असि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥ १०१३

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रम् अग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ १०१४

यस् ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर् यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥ १०१५

ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीरा अग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये १०१६

वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः १०१७

॥ १२८ ॥ (ऋ० ६ । १४ । १-६) अनुष्टुप्, ९६२ शक्वरी ।

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः । भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे १०१८
अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः । अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः १०१९
नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः । तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् १०२०
अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् । यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया १०२१
अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति । सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः १०२२
अच्छा नो मित्रमहो० (९६२)

॥ १२९ ॥ (ऋ० ६ । १५ । १-१९)

जगती, १०२५, १०३७ शक्वरी, १०२८ अतिशक्वरी, १०२९ अनुष्टुप्, १०४० बृहती,
१०३२-३६, १०३८, १०४१ त्रिष्टुप् ।

इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद् दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर् ज्योक् चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् १०२३

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर् वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे १०२४

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्य अन्तरस्य तरुषः ।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः १०२५

घृतानं वो अतिथिं स्वर्णरम् अग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर् हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे १०२६

पावकया यश् चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः १०२७

अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः १०२८

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् १०२९

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश् च मर्तासश् च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे १०३०

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत् ते धीतिं सुमतिमावृणीमहे ऽध स्मा नस् त्रिवरूथः शिवो भव १०३१

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चम् अविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् १०३२

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस् त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित् पृणक्षि शवसोत राया १०३३

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री १०३४

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा १०३५

अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद् भूर् हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य १०३६

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो, नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन् वाजसातौ, अग्ने विश्वानि दुरिता तरेम, ता तरेम तवावसा तरेम १०३७

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैर् ऊर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु १०३८

इममु त्यमथर्ववद् अग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन् अमूरं श्याव्याभ्यः १०३९

जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान् वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः १०४०

वयमु त्वा गृहपते जनानाम् अग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस् तेजसा सं शिशाधि १०४१

॥ १३० ॥ (ऋ० ६ । १६ । १—१८)

गायत्री; १०४२,१०४७ वर्धमाना; १०६८।१०८८-१०८९ अनुष्टुप्; १०८७ त्रिष्टुप्।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः	।	देवेभिर्मानुषे जने	१०४२
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः	।	आ देवान् वक्षि यक्षि च	१०४३
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश् च देवाञ्जसा	।	अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो	१०४४
त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम्	।	ईजे यज्ञेषु यज्ञियम्	१०४५
त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते	।	भरद्वाजाय दाशुषे	१०४६
त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम्	।	शृण्वन् विप्रस्य सुष्टुतिम्	१०४७
त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये	।	यज्ञेषु देवमीळते	१०४८
तव प्र यक्षि संदृशम् उत क्रतुं सुदानवः	।	विश्वे जुषन्त कामिनः	१०४९
त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः	।	अग्ने यक्षि दिवो विशः	१०५०
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये	।	नि होता सत्सि बर्हिषि	१०५१
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि	।	बृहच्छोचा यविष्ठ्य	१०५२
स नः पृथु श्रवाय्यम् अच्छा देव विवाससि	।	बृहदग्ने सुवीर्यम्	१०५३
त्वामग्ने पुष्करादधि अथर्वा निरमन्थत	।	मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः	१०५४
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः	।	वृत्रहणं पुरंदरम्	१०५५
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम्	।	धनंजयं रणेरणे	१०५६
एह्यू षु ब्रवाणि ते ऽग्न इत्थेतरा गिरः	।	एभिर्वर्धास इन्दुभिः	१०५७
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्	।	तत्रा सदः कृणवसे	१०५८
नहि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमानां वसो	।	अथा दुवो वनवसे	१०५९
आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः	।	दिवोदासस्य सत्पतिः	१०६०
स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन् महित्वना	।	वन्वन्नवातो अस्तृतः	१०६१
स प्रत्नवन्नवीयसा अग्ने द्युम्नेन संयता	।	बृहत् ततन्थ भानुना	१०६२
प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया	।	अर्च गाय च वेधसे	१०६३
स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः	।	दूतश् च हव्यवाहनः	१०६४
ता राजाना शुचिव्रता आदित्यान् मारुतं गणम्	।	वसो यक्षीह रोदसी	१०६५
वस्वी ते अग्ने संदृष्टिर् इषयते मर्त्याय	।	ऊर्जो नपादमृतस्य	१०६६
क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठो ऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः	।	मर्त आनाश सुवृक्तिम्	१०६७

ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर् वन्वन्तो अर्यो अरातीः १०६८

अग्निस् तिग्मेन शोचिषा यासद् विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् १०६९
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो १०७०
त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः । रक्षा णो ब्रह्मणस् कवे १०७१
यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति । तस्मान्नः पाह्यंहसः १०७२
त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् । मर्तो यो नो जिघांसति १०७३
भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य । अग्ने वरेण्यं वसु १०७४
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः १०७५
गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा १०७६
ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद् दीदयद् दिवि १०७७
उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः १०७८
उप च्छायामिव घृणेर् अगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः १०७९
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ १०८०
आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निं स्वध्वरं १०८१
प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु १०८२
आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् १०८३
अग्ने युक्ष्वा हि ये तव अश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे १०८४
अच्छा नो याह्या वह अभि प्रयांसि वीतये । आ देवान् त्सोमपीतये १०८५
उदग्ने भारत द्युमद् अजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर १०८६

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येद् अग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योर् उत्तानहस्तो नमसा विवासेत् १०८७

आ ते अग्न ऋचा हविर् हृदा तष्टं भरामसि । ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत १०८८
अग्निं देवासो अग्रियम् इन्धते वृत्रहन्तमम् । येना वसून्याभृता तृह्ळा रक्षांसि वाजिना १०८९

॥ १३१ ॥ (ऋ० ६ । ४८ । १-१०)

(१०९०-१०९९) शंयुर्बार्हस्पत्य. (तृणपाणि) । प्रगाथ = १०९०, १०९२ बृहती, १०९१, १०९३ सतोबृहती, १०९४ बृहती, १०९५ महा सतोबृहती, १०९६ महा बृहती, १०९७ महा सतो बृहती, १०९८ बृहती, १०९९ सतोबृहती ।

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् १०९०

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर् दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम् १०९१

वृषा ह्यग्ने अजरो महान् विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच् छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि १०९२

महो देवान् यजसि यक्ष्यानुषक् तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व १०९३

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि १०९४

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस् तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा १०९५

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि १०९६

विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति १०९७

त्वं नश् चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस् त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः १०९८

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वम् अदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नो ऽदेवानि ह्वरांसि च १०९९

॥ १३२ ॥ (ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-२५)
[११००-१२१३] वासिष्ठो मैत्रावरुणिः । विराट्, १११८-२४ त्रिष्टुप् ।

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्　हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम्　११००

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्　त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः　११०१

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो　ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः　११०२

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः　सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः　११०३

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं　स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान्　११०४

उप यमेति युवतिः सुदक्षं　दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः　११०५

विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्　येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् ।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम्　११०६

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं　वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः　११०७

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं　मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः　११०८

इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा　विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम्　११०९

मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां　माशेषसोऽवीरता परि त्वा ।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य　१११०

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं　प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम्　११११

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् पाहि धूर्तेररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ११११२

सेदग्निरग्नींरत्यस्त्वन्यान् यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ११११३

सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् ।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः ११११४

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ११११५

त्वे अग्न आहवनानि भूरि ईशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ११११६

इमो अग्ने वीततमानि हव्या ऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ११११७

मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ११११८

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११११९

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक् सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ् मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् १११२०

मा नो अग्ने दुर्भृतये सचा एषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः ।
मा ते अस्मान् दुर्मतयो भृमाच्चिद् देवस्य सूनो सहसो नशन्त १११२१

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवान् अमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति १११२२

महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान् रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन् मदेम अविक्षितास आयुषा सुवीराः १११२३

नू मे ब्रह्माण्यग्न० (११११९)

॥ १३३ ॥ (ऋ० ७ । ३ । १-१०) त्रिष्टुप् ।

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः　　११२४

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिर् अध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति　　११२५

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णो ऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान्　　११२६

वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत् तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि　　११२७

तमिद् दोषा तमुषसि यविष्ठम् अग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः　　११२८

सुसंदृक् ते स्वनीक प्रतीकं वि यद् रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश् चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम्　　११२९

यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश् च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि　　११३०

या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत् सूरीञ् जरितॄञ् जातवेदः　　११३१

निर्यत् पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः　　११३२

एता नो अग्ने सौभगा दिदीहि अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः　　११३३

॥ १३४ ॥ (ऋ० ७ । ४ । १-१०)

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंषि अन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति　　११३४

स गृत्सो अग्निस् तरुणश् चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः　　११३५

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ११३६

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ११३७

आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्य१ग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ११३८

ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ११३९

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ११४०

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ११४१

त्वमग्ने वनुष्यतो० (१०३४)

एता नो अग्ने० (११३४)

॥ १३५ ॥ (ऋ० ७ । ७ । १-७)

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ११४२

आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ११४३

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ११४४

सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ११४५

असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ११४६

एवे द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस् तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ११४७
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११४८

॥ १३६ ॥ (ऋ० ७।८।१-७)

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर् यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ११४९
अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ११५०
कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ११५१
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ११५२
असन्नित् त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश् चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ११५३
इदं वचः शतसाः संसहस्रम् उदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ११५४
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा० (११५०)

॥ १३७ ॥ (ऋ० ७।९।१-६)

अबोधि जार उषसामुपस्थाद् होता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर् हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ११५५
स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास् तिरस् तमो ददृशे राम्याणाम् ११५६
अमूरः कविरदितिर्विवस्वान् त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रे ऽपां गर्भः प्रस्व आ विवेश ११५७

ई॒ळेन्यो॑ वो॒ मनु॑षो यु॒गेषु॑ समन॒गा अ॑शुचज् जा॒तवे॑दाः ।
सु॒सं॒दृशा॑ भा॒नुना॑ यो वि॒भाति॑ प्रति॒ गावः॑ समिधा॒नं बु॑धन्त ११५८

अग्ने॑ या॒हि दू॒त्यं१॒॑ मा रि॑षण्यो दे॒वाँ अच्छा॑ ब्रह्म॒कृता॑ ग॒णेन॑ ।
सर॑स्वतीं म॒रुतो॑ अ॒श्विना॒पो यक्षि॑ दे॒वान् र॑त्न॒धेया॑य॒ विश्वा॑न् ११५९

त्वाम॑ग्ने समिधा॒नो वसि॑ष्ठो॒ जरू॑थं ह॒न् यक्षि॑ रा॒ये पुरं॑धिम् ।
पु॒रु॒णी॒था जा॑तवेदो जरस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ११६०

॥ १३८ ॥ (ऋ० ७ । १० । १-५) ।

उ॒षो न जा॒रः पृ॒थु पाजो॑ अश्रेद् दवि॑द्युतत् दीद्य॒च्छोशु॑चानः ।
वृषा॒ हरिः॒ शुचि॒रा भा॑ति भा॒सा धियो॑ हिन्वा॒न उ॑श॒तीर॑जीगः ११६१

स्व१॒॑र्ण वस्तो॑रु॒षसा॑मरोचि य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना उ॒शिजो॒ न मन्म॑ ।
अ॒ग्निर्जन्मा॑नि दे॒व आ वि वि॒द्वान् द्र॒वद् दू॒तो दे॑व॒यावा॒ वनि॑ष्ठः ११६२

अच्छा॒ गिरो॑ म॒तयो॑ देव॒यन्ती॑र् अ॒ग्निं य॑न्ति॒ द्रवि॑णं॒ भिक्ष॑माणाः ।
सु॒सं॒दृशं॑ सु॒प्रती॑कं॒ स्वञ्चं॑ हव्य॒वाह॑मर॒तिं मानु॑षाणाम् ११६३

इन्द्रं॑ नो अग्ने॒ वसु॑भिः स॒जोषा॑ रु॒द्रं रु॒द्रेभि॒रा व॑हा बृ॒हन्त॑म् ।
आ॒दि॒त्येभि॒रदि॑तिं वि॒श्वज॑न्यां॒ बृह॒स्पति॒मृक्व॑भिर्वि॒श्ववा॑रम् ११६४

म॒न्द्रं होता॑रमु॒शिजो॒ यवि॑ष्ठम् अ॒ग्निं विश॑ ईळते अध्व॒रेषु॑ ।
स हि क्षपा॑वाँ॒ अभ॑वद् रयी॒णाम् अत॑न्द्रो दू॒तो य॒जथा॑य दे॒वान् ११६५

॥ १३९ ॥ (ऋ० ७ । ११ । १-५)

म॒हाँ अ॑स्यध्व॒रस्य॑ प्रके॒तो न ऋ॒ते त्वद॒मृता॑ मादयन्ते ।
आ विश्वे॑भिः स॒रथं॑ याहि दे॒वैर् न्य॑ग्ने॒ होता॑ प्रथ॒मः स॑देह ११६६

त्वामी॑ळते अजि॒रं दू॒त्या॑य ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मिन् मानु॑षासः ।
यस्य॑ दे॒वैरास॑दो ब॒र्हिर॒ग्ने ऽहा॑न्यस्मै सु॒दिना॑ भवन्ति ११६७

त्रिश् चि॑द॒क्तोः प्र चि॑कितु॒र्वसू॑नि॒ त्वे अ॒न्तर्दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ।
म॒नु॒ष्वद॑ग्न इ॒ह य॑क्षि दे॒वान् भवा॑ नो दू॒तो अ॑भिशस्ति॒पावा॑ ११६८

अ॒ग्निरी॑शे बृह॒तो अ॑ध्व॒रस्या॒ग्निर्विश्व॑स्य ह॒विषः॑ कृ॒तस्य॑
क्रतुं॒ ह्य॑स्य॒ वस॑वो जु॒षन्ता॒था दे॒वा द॑धिरे हव्य॒वाह॑म् ११६९

आग्ने॑ वह ह॒विर॑द्याय दे॒वान् इन्द्र॑ज्येष्ठास इ॒ह मा॑दयन्ताम्।
इ॒मं य॒ज्ञं दि॒वि दे॒वेषु॑ धेहि यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ११७०

॥ १४० ॥ (ऋ० ७। १२। १-३)

अग॑न्म म॒हा नम॑सा यवि॑ष्ठं यो दी॒दाय॒ समि॑द्धः स्वे दु॑रो॒णे।
चि॒त्रभा॑नुं रोद॑सी अ॒न्तरु॒र्वी स्वा॑हुतं वि॒श्वत॑ः प्र॒त्यञ्च॑म् ११७१

स म॒ह्ना विश्वा॑ दुरि॒तानि॑ सा॒ह्वान् अ॒ग्निः ष्ट॑वे॒ दम॒ आ जा॒तवे॑दाः।
स नो॑ रक्षिषद् दुरि॒ताद॑व॒द्याद् अ॒स्मान् गृ॑ण॒त उ॒त नो॑ म॒घोनः॑ ११७२

त्वं वरु॑ण उ॒त मि॒त्रो अ॑ग्ने त्वां व॑र्धन्ति म॒तिभि॒र्वसि॑ष्ठाः।
त्वे वसु॑ सुषण॒नानि॑ सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ११७३

॥ १४१ ॥ (ऋ० ७। १४। १-३) त्रिष्टुप्, ११७४ बृहती।

स॒मिधा॑ जा॒तवे॑दसे दे॒वाय॑ दे॒वहू॑तिभिः।
ह॒विर्भिः॑ शु॒क्रशो॑चिषे नम॒स्विनो॑ व॒यं दा॑शेमा॒ग्नये॑ ११७४

व॒यं ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम व॒यं दा॑शेम सुष्टु॒ती य॑जत्र।
व॒यं घृ॒तेना॑ध्वरस्य होतर् व॒यं दे॑व ह॒विषा॑ भद्रशोचे ११७५

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ दे॒वहू॑ति॒म् अग्ने॑ या॒हि वष॑ट्कृतिं जुषा॒णः।
तुभ्यं॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ११७६

॥ १४२ ॥ (ऋ० ७। १५। १-१५) गायत्री।

उ॒प॒सद्या॑य मी॒ळ्हुष॑ आ॒स्ये॑ जुहुता ह॒विः । यो नो॒ नेदि॑ष्ठ॒माप्य॑म् ११७७
यः पञ्च॑ चर्ष॒णीर॒भि नि॑षसा॒द दमे॑दमे । क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑ ११७८
स नो॒ वेदो॑ अ॒मात्य॑म् अ॒ग्नी र॑क्षतु वि॒श्वतः॑ । उ॒तास्मान् पा॒त्वंह॑सः ११७९
नवं॒ नु स्तोम॑म॒ग्नये॑ दि॒वः श्ये॒नाय॑ जीजनम् । वस्वः॑ कु॒विद् व॒नाति॑ नः ११८०
स्पा॒र्हा यस्य॒ श्रियो॑ दृ॒शे र॒यिर्वी॒रव॑तो यथा । अग्रे॑ य॒ज्ञस्य॒ शोच॑तः ११८१
सेमां वे॑तु॒ वष॑ट्कृतिम् अ॒ग्निर्जु॑षत॒ नो॒ गिरः॑ । यजि॑ष्ठो हव्य॒वाह॑नः ११८२
नि त्वा॑ नक्ष्य विश्पते द्यु॒मन्तं॑ देव धीमहि । सु॒वीर॑मग्न आहुत ११८३
क्षप॑ उ॒स्रश्च॑ दीदिहि स्व॒ग्नय॒स् त्वया॑ व॒यम्। सु॒वीर॒स् त्वम॑स्म॒युः ११८४
उप॑ त्वा सा॒तये॒ नरो॒ विप्रा॑सो यन्ति धी॒तिभिः॑। उपाक्ष॑रा सह॒स्रिणी॑ ११८५

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ११८६
स नो राधांस्या भर ईशानः सहसो यहो । भगश् च दातु वार्यम् ११८७
त्वमग्ने वीरवद् यशो देवश् च सविता भगः । दितिश् च दाति वार्यम् ११८८
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ११८९
अधा मही न आयसि अनाधृष्टो नृपीतये । पूर्भवा शतभुजिः ११९०
त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्य ११९१

॥ १४३ ॥ (ऋ० ७ । १६ । १-१२) प्रगाथः- (बृहती, सतोबृहती ।)

एना वो अग्निं नमसा ऊर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ११९२
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ११९३
उदस्य शोचिरस्थाद् आजुह्वानस्य मीळ्हुषः ।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ११९४
तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद् यत् त्वेमहे ११९५
त्वमग्ने गृहपतिस् त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ११९६
कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश् च दक्षते ११९७
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानाम् ऊर्वान् दयन्त गोनाम् ११९८
येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस् त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ११९९
स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय १२००

ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य   १२०१

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद् वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वम् आदिद् वो देव ओहते   १२०२

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यम् अग्निर्जनाय दाशुषे   १२०३

॥ १४४ ॥ (ऋ० ७ । १७ । १-७) द्विपदा त्रिष्टुप् ।

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम्   १२०४
उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्ताम् उत देवाँ उशत आ वहेह   १२०५
अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान् स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः   १२०६
स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद् देवाँ अमृतान् पिप्रयच्च   १२०७
वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य   १२०८
त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम्   १२०९
ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः   १२१०

॥ १४५ ॥ (ऋ० ७ । ५० । २) जगती ।

यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवद् अष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः   १२११

॥ १४६ ॥ (ऋ० ७ । १०४ । १०, १४) त्रिष्टुप् ।

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस् तनूनाम् ।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वाऽ तना च   १२१२

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस् ते निर्ऋथं सचन्ताम्   १२१३

॥ १४७ ॥ (ऋग्वेदस्य अष्टमं मण्डलम् । सूक्तं ११, मन्त्राः १-१०)

(१२१४—१२२३) वत्सः काण्वः । गायत्री, १२१४ प्रतिष्ठा, १२१५ वर्धमाना, १२२३ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः   १२१४

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् १२१५
स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः १२१६
अन्ति चित् सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेषि जातवेदः १२१७
मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः १२१८
विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं गीर्भिर्हवामहे १२१९
आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् । अग्ने त्वां-कामया गिरा १२२०
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे १२२१
समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् १२२२

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश् च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्व अस्मभ्यं च सौभगमा यजस्व १२२३

॥ १४८ ॥ (ऋ० ८ । १९ । १—३३)

(१२२४—१२६९) सोभरिः काण्वः । प्रगाथः=(ककुप्+ सतोबृहती), १२५० द्विपदा विराट् ।

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमोहिरे १२२४

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषम् अग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् १२२५

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् १२२६

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिम् अग्निं श्रेष्ठशोचिषम्
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपाम् आ सुम्नं यक्षते दिवि १२२७

यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये । यो नमसा स्वध्वरः १२२८

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस् तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश् चन न मर्त्यकृतं नशत् १२२९

स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते । सुवीरस् त्वमस्मयुः १२३०

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियो ऽग्नी रथो न वेद्यः ।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस् त्वं राजा रयीणाम् १२३१

सो अद्धा दाश्वध्वरो ऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः । स धीभिरस्तु सनिता १२३२

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् १२३३

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः । हव्या वा वेविषद् विषः १२३४
विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः १२३५

यो अग्निं हव्यदातिभिर् नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति । गिरा वाजिरशोचिषम् १२३६
समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः ।
विश्वेत् स धीभिः सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत् १२३७

तदग्ने द्युम्नमा भर यत् सासहत् सदने कं चिदत्रिणम् । मन्युं जनस्य दूढ्यः १२३८
येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः ।
वयं तत् ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि १२३९

ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम् । विप्रासो देव सुक्रतुम् १२४०
त इद् वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।
त इद् वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे १२४१

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः १२४२
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः १२४३

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे । यजिष्ठं हव्यवाहनम् १२४४
तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये ।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यम् अग्निर्घृतेभिराहुतः १२४५

यदी घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च । असुर इव निर्णिजम् १२४६
यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना ।
विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः १२४७

यदग्ने मर्त्यस् त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः । सहसः सूनवाहुत १२४८

न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य ।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया १२४९

पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः १२५०

तवाहमग्न ऊतिभिर् नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो । सदा देवस्य मर्त्यः १२५१

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिर् अग्ने तव प्रशस्तिभिः ।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो मम अग्ने हर्षस्व दातवे १२५२

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस् तिरते वाजभर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः १२५३

तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि १२५४

तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे । सम्राजं त्रासदस्यवम् १२५५

यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव ।
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् १२५६

॥ १४९ ॥ (ऋ० ८ । १०३ । १-१३)
बृहती; १२६१ विराड्रूपा, १२६३, १२६५, १२६७, १२६९, सतोबृहती;
१२६४, १२६८ ककुप्, १२६६ ह्रसीयसी ।

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनम् अग्निं नक्षन्त नो गिरः १२५७

प्र दैवोदासो अग्निर् देवाँ अच्छा न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि १२५८

यस्माद् रेजन्त कृष्टयश् चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मना अग्निं धीभिः सपर्यत १२५९

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस् ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् १२६०

स दृळ्हे चिदभि तृणत्ति वाजम् अर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि १२६१

यो विश्वा दयते वसु　होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै　प्र स्तोमा यन्त्वग्नये　　१२६२

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो　मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते　पर्षि राधो मघोनाम्　　१२६३

प्र मंहिष्ठाय गायत　ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये　　१२६४

आ वंसते मघवा वीरवद् यशः　समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयसी　अच्छा वाजेभिरागमत्　　१२६५

प्रेष्ठमु प्रियाणां　स्तुह्यासावातिथिम् ।
अग्निं रथानां यमम्　　१२६६

उदिता यो निदिता वेदिता वसु　आ यज्ञियो ववर्तति ।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो　धिया वाजं सिषासतः　　१२६७

मा नो हृणीतामतिथिर्　वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
यः सुहोता स्वध्वरः　　१२६८

मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसो　ऽग्ने केभिश् चिदेवैः ।
कीरिश् चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय　रातहव्यः स्वध्वरः　　१२६९

॥ १५० ॥ (ऋ० ८।२३।१-३०)

(१२७०—१२९९) विश्वमना वैयश्वः। उष्णिक्।

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं　यजस्व जातवेदसम्　। चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम्　१२७०
दामानं विश्वचर्षणे　ऽग्निं विश्वमनो गिरा　। उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम्　१२७१
येषामाबाध ऋग्मिय　इषः पृक्षश् च निग्रभे　। उपविदा वह्निर्विन्दते वसु　१२७२
उदस्य शोचिरस्थाद्　दीदियुषो व्यजरम्　। तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः　१२७३
उदु तिष्ठ स्वध्वर　स्तवानो देव्या कृपा　। अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः　१२७४
अग्ने याहि सुशस्तिभिर्　हव्या जुह्वान आनुषक्　। यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः　१२७५
अग्निं वः पूर्व्यं हुवे　होतारं चर्षणीनाम्　। तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे　१२७६
यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं　यं कृपा सूदयन्त इत्　। मित्रं न जने सुधितमृतावनि　१२७७

ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा । उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे १२७८
अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः । होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः १२७९
अग्ने तव त्ये अजर इन्धानासो बृहद् भाः । अश्वा इव वृषणस् तविषीयवः १२८०
स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम् । प्राव नस् तोके तनये समत्स्वा १२८१
यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि । विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति १२८२
श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते । नि मायिनस् तपुषा रक्षसो दह १२८३
न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः । यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः १२८४
व्यश्वस् त्वा वसुविदम् उक्षण्युरप्रीणादृषिः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि १२८५
उशना काव्यस् त्वा नि होतारमसादयत् । आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम् १२८६
विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत । श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः १२८७
इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः । पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् १२८८
तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम् । विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् १२८९
यो अस्मै हव्यदातिभिर् आहुतिं मर्तोऽविधत्। भूरि पोषं स धत्ते वीरवद् यशः १२९०
प्रथमं जातवेदसम् अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् । प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती १२९१
आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् । मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे १२९२
नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् । ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये १२९३
अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् । विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते १२९४
महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा। अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि १२९५
वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः । सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः १२९६
त्वं वरो सुषाम्णे ऽग्ने जनाय चोदय । सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते १२९७
त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः । महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि १२९८
अग्ने त्वं यशा असि आ मित्रावरुणा वह । ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा १२९९

॥ १५१ ॥ (ऋ० ८ । ३९ । १-१०) [१३००-१३०९] नाभाकः काण्वः । महापङ्क्तिः ।

अग्निमस्तोष्यृग्मियम् अग्निमीळा यजध्यै ।
अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे कविर् अन्तश्चरति दूत्यं१ नभन्तामन्यके समे १३००
न्यग्ने नव्यसा वचस् तनूषु शंसमेषाम् ।
न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अरातीर् इतो युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे १३०१

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि ।
स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः शिवो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे १३०२
तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति ।
ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे विश्वस्यै देवहूत्यै नभन्तामन्यके समे १३०३
स चिकेत सहीयसा अग्निश् चित्रेण कर्मणा ।
स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरभीवृत इनोति च प्रतीव्यं नभन्तामन्यके समे १३०४
अग्निर्जाता देवानामग्निर् वेद मर्तानामपीच्यम् ।
अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते स्वाहुतो नवीयसा नभन्तामन्यके समे १३०५
अग्निर्देवेषु संवसुः स विक्षु यज्ञियास्वा ।
स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमेव पुष्यति देवो देवेषु यज्ञियो नभन्तामन्यके समे १३०६
यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तमम् अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं नभन्तामन्यके समे १३०७
अग्निस् त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः ।
स त्रींरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे १३०८
त्वं नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्व्य वस्व एक इरज्यसि ।
त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके समे १३०९

॥ १५२ ॥ (ऋ० ८। ४३। १-३३) [१३१०-१३८८] विरूप आङ्गिरसः । गायत्री ।

इमे विप्रस्य वेधसो ऽग्नेरस्तृतयज्वनः । गिरः स्तोमास ईरते १३१०
अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् १३११
आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः । दद्भिर्वनानि बप्सति १३१२
हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथगग्नयः १३१३
एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत । उषसामिव केतवः १३१४
कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः । अग्निर्यद् रोधति क्षमि १३१५
धासिं कृण्वान ओषधीर् बप्सदग्निर्न वायति । पुनर्यन् तरुणीरपि १३१६
जिह्वाभिरह नन्नमद् अर्चिषा जञ्जणाभवन् । अग्निर्वनेषु रोचते १३१७
अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सन् जायसे पुनः १३१८

उदग्ने तव तद् घृतात्   अर्ची रोचत आहुतम्   । निंसानं जुह्वो३ मुखें   १३१९
उक्षान्नाय वशान्नाय   सोमपृष्ठाय वेधसें   । स्तोमैर्विधेमाग्नयें   १३२०
उत त्वा नमसा वयं   होतर्वरेण्यक्रतो   । अग्ने समिद्भिरीमहे   १३२१
उत त्वा भृगुवच्छुचे   मनुष्वदग्न आहुत   । अङ्गिरस्वद्धवामहे   १३२२
त्वं ह्यग्ने अग्निना   विप्रो विप्रेण सन्त्सता   । सखा सख्या समिध्यसें   १३२३
स त्वं विप्राय दाशुषे   रयिं देहि सहस्रिणम्   । अग्ने वीरवतीमिषम्   १३२४
अग्ने भ्रातः सहस्कृत   रोहिदश्व शुचिव्रत   । इमं स्तोमं जुषस्व मे   १३२५
उत त्वाग्ने मम स्तुतो   वाश्राय प्रतिहर्यते   । गोष्ठं गाव इवाशत   १३२६
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम   विश्वाः सुक्षितयः पृथक्   । अग्ने कामाय येमिरे   १३२७
अग्निं धीभिर्मनीषिणो   मेधिरासो विपश्चितः   । अद्मसद्याय हिन्विरे   १३२८
तं त्वामज्मेषु वाजिनं   तन्वाना अग्ने अध्वरम्   । वह्निं होतारमीळते   १३२९
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि   विशो विश्वा अनु प्रभुः   । समत्सु त्वा हवामहे   १३३०
तमीळिष्व य आहुतो   ऽग्निर्विभ्राजते घृतैः   । इमं नः शृणवद्धवम्   १३३१
तं त्वा वयं हवामहे   शृण्वन्तं जातवेदसम्   । अग्ने घ्नन्तमप द्विषः   १३३२
विशां राजानमद्भुतम्   अध्यक्षं धर्मणामिमम्   । अग्निमीळे स उ श्रवत्   १३३३
अग्निं विश्वायुवेपसं   मर्यं न वाजिनं हितम्   । सप्तिं न वाजयामसि   १३३४
घ्नन् मृध्राण्यप द्विषो   दहन् रक्षांसि विश्वहा   । अग्ने तिग्मेन दीदिहि   १३३५
यं त्वा जनास इन्धते   मनुष्वदङ्गिरस्तम   । अग्ने स बोधि मे वचः   १३३६
यदग्ने दिविजा असि   अप्सुजा वा सहस्कृत   । तं त्वा गीर्भिर्हवामहे   १३३७
तुभ्यं घेत् ते जना इमे   विश्वाः सुक्षितयः पृथक्   । धासिं हिन्वन्त्यत्तवे   १३३८
ते घेदग्ने स्वाध्यो   ऽहा विश्वा नृचक्षसः   । तरन्तः स्याम दुर्गहा   १३३९
अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं   शीरं पावकशोचिषम्   । हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे   १३४०
स त्वमग्ने विभावसुः   सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः   । शर्धन् तमांसि जिघ्नसे   १३४१
तत् ते सहस्व ईमहे   दात्रं यन्नोपदस्यति   । त्वदग्ने वार्यं वसु   १३४२

॥ १५३ ॥ (ऋ० ८ । ४४ । १-३०)

समिधाग्निं दुवस्यत   घृतैर्बोधयतातिथिम्   ।   आस्मिन् हव्या जुहोतन   १३४३
अग्ने स्तोमं जुषस्व मे   वर्धस्वानेन मन्मना   ।   प्रति सूक्तानि हर्य नः   १३४४

अग्निं दूतं पुरो दधे　हव्यवाहमुप ब्रुवे　। देवाँ आ सादयादिह　१३४५
उत् ते बृहन्तो अर्चयः　समिधानस्य दीदिवः　। अग्ने शुक्रास ईरते　१३४६
उप त्वा जुह्वो३ मम　घृताचीर्यन्तु हर्यत　। अग्ने हव्या जुषस्व नः　१३४७
मन्द्रं होतारमृत्विजं　चित्रभानुं विभावसुम्　। अग्निमीळे स उ श्रवत्　१३४८
प्रत्नं होतारमीड्यं　जुष्टमग्निं कविक्रतुम्　। अध्वराणामभिश्रियम्　१३४९
जुषाणो अङ्गिरस्तम　इमा हव्यान्यानुषक्　। अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा　१३५०
समिधान उ सन्त्य　शुक्रशोच इहा वह　। चिकित्वान् दैव्यं जनम्　१३५१
विप्रं होतारमद्रुहं　धूमकेतुं विभावसुम्　। यज्ञानां केतुमीमहे　१३५२
अग्ने नि पाहि नस् त्वं　प्रति ष्म देव रीषतः　। भिन्धि द्वेषः सहस्कृत　१३५३
अग्निः प्रत्नेन मन्मना　शुम्भानस् तन्वं१ स्वाम्　। कविर्विप्रेण वावृधे　१३५४
ऊर्जो नपातमा हुवे　ऽग्निं पावकशोचिषम्　। अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे　१३५५
स नो मित्रमहस् त्वम्　अग्ने शुक्रेण शोचिषा　। देवैरा सत्सि बर्हिषि　१३५६
यो अग्निं तन्वो३ दमे　देवं मर्तः सपर्यति　। तस्मा इद् दीदयद् वसु　१३५७
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्　पतिः पृथिव्या अयम्　। अपां रेतांसि जिन्वति　१३५८
उदग्ने शुचयस् तव　शुक्रा भ्राजन्त ईरते　। तव ज्योतींष्यर्चयः　१३५९
ईशिषे वार्यस्य हि　दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः　। स्तोता स्यां तव शर्मणि　१३६०
त्वामग्ने मनीषिणस्　त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः　। त्वां वर्धन्तु नो गिरः　१३६१
अदब्धस्य स्वधावतो　दूतस्य रेभतः सदा　। अग्नेः सख्यं वृणीमहे　१३६२
अग्निः शुचिव्रततमः　शुचिर्विप्रः शुचिः कविः　। शुची रोचत आहुतः　१३६३
उत त्वा धीतयो मम　गिरो वर्धन्तु विश्वहा　। अग्ने सख्यस्य बोधि नः　१३६४
यदग्ने स्यामहं त्वं　त्वं वा घा स्या अहम्　। स्युष्टे सत्या इहाशिषः　१३६५
वसुर्वसुपतिर्हि कम्　अस्यग्ने विभावसुः　। स्याम ते सुमतावपि　१३६६
अग्ने धृतव्रताय ते　समुद्रायेव सिन्धवः　। गिरो वाश्रास ईरते　१३६७
युवानं विश्पतिं कविं　विश्वादं पुरुवेपसम्　। अग्निं शुम्भामि मन्मभिः　१३६८
यज्ञानां रथ्ये वयं　तिग्मजम्भाय वीळवे　। स्तोमैरिषेमाग्नये　१३६९
अयमग्ने त्वे अपि　जरिता भूतु सन्त्य　। तस्मै पावक मृळय　१३७०
धीरो ह्यस्यद्मसद्　विप्रो न जागृविः सदा　। अग्ने दीदयसि द्यवि　१३७१

पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे । प्र ण आयुर्वसो तिर १३७२

॥१५४॥ (ऋ० ८ । ७५ । १-१६)

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः १३७३
उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः । श्रद् विश्वा वार्या कृधि १३७४
त्वं ह यद् यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः १३७५
अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् १३७६
तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः १३७७
तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् १३७८
कमु ष्विदस्य सेनयाऽग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे १३७९
मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः १३८०
मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् १३८१
नमस् ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय १३८२
कुवित् सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस् कृधि १३८३
मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्ग्भारभृद् यथा । संवर्गं सं रयिं जय १३८४
अन्यमस्मद्भिया इयम् अग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः १३८५
यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति १३८६
परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर । यत्राहमस्मि ताँ अव १३८७
विद्मा हि ते पुरा वयम् अग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुम्नमीमहे १३८८

॥१५५॥ (ऋ० ८।६०।१-२०) [१३८९-१४०८] भर्गः प्रागाथः ।
प्रगाथः= (बृहती+सतोबृहती)।

अग्न आ याह्यग्निभिर् होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे १३८९

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश् चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् १३९०

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः ।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः १३९१

अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः १३९२

त्वमित् सप्रथा असि अग्ने त्रातर्ऋतस् कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः १३९३

शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन् मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः १३९४

यथा चिद् वृद्धमतसम् अग्ने संजूर्वसि क्षमि ।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग् दुर्मन्मा कश् च वेनति १३९५

मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।
अस्रेधद्भिस् तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः १३९६

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस् तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो १३९७

पाहि विश्वस्माद् रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे १३९८

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यं ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् १३९९

येन वंसाम पृतनासु शर्धतस् तरन्तो अर्य आदिशः ।
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः १४००

शिशानो वृषभो यथा अग्निः शृङ्गे दविध्वत् ।
तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजम्भः सहसो यहुः १४०१

नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जम्भासो यद् वितिष्ठसे ।
स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु १४०२

शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद् देवेषु राजसि १४०३

सप्त होतारस् तमिदीळते त्वा अग्ने सुत्यजमह्रयम् ।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति १४०४

अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम् १४०५

केतेन शर्मन्त्सचते सुषामणि अग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये १४०६

अग्ने जरितर्विश्पतिस् तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः १४०७

मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधम् अग्ने सेध रक्षस्विनः १४०८

॥ १५६ ॥ (ऋ० ८।७१।१-१५)

[१४०८—१४२३] सुदीति-पुरुमीह्ळावाङ्गिरसौ, तयोर्वान्यतरः । गायत्री, १४१८-१४२३ प्रगाथः=(बृहती, सतोबृहती) ।

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य १४०९
नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात । त्वमिदसि क्षपावान् १४१०
स नो विश्वेभिर्देवेभिर् ऊर्जो नपाद् भद्रशोचे । रयिं देहि विश्ववारम् १४११
न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम् १४१२
यं त्वं विप्र मेधसातौ अग्ने हिनोषि धनाय । स तवोती गोषु गन्ता १४१३
त्वं रयिं पुरुवीरम् अग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ १४१४
उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः । दुराध्ये३ मर्ताय १४१५
अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत । त्वमीशिषे वसूनाम् १४१६
स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य । सखे वसो जरितृभ्यः १४१७

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये १४१८

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि १४१९

अग्निं वो देवयज्यया अग्निं प्रयत्यध्वरे ।
अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वत्य् अग्निं क्षैत्राय साधसे १४२०

अग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणाम् ।
अग्निं तोके तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं तनूपाम् १४२१

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरो ऽग्निं सुदीतये छर्दिः १४२२ ×

अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमसि अग्निं शं योश्च दातवे ।
विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भुवद् वस्तुर्ऋषूणाम् १४२३

॥ १५७ ॥ (ऋ० ८।७२।१-१८) [१४२४-१४४१] हर्यतः प्रागाथः । गायत्री ।

हविष्कृणुध्वमा गमद् अध्वर्युर्वनते पुनः	। विद्वाँ अस्य प्रशासनम्	१४२४
नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्धोता मनावधि	। जुषाणो अस्य सख्यम्	१४२५
अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया	। गृभ्णन्ति जिह्वया ससम्	१४२६
जाम्यतीतपे धनुर् वयोधा अरुहद्वनम्	। दृषदं जिह्वयावधीत्	१४२७
चरन् वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते	। वेति स्तोतव अम्ब्यम्	१४२८
उतो न्वस्य यन्महद् अश्वावद् योजनं बृहत्	। दामा रथस्य ददृशे	१४२९
दुहन्ति सप्तैकाम् उप द्वा पञ्च सृजतः	। तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे	१४३०
आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत्	। खेदया त्रिवृता दिवः	१४३१
परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी	। मध्वा होतारो अञ्जते	१४३२
सिञ्चन्ति नमसावतम् उच्चाचक्रं परिज्मानम्	। नीचीनबारमक्षितम्	१४३३
अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु	। अवतस्य विसर्जने	१४३४
गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा	। उभा कर्णा हिरण्यया	१४३५
आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम्	। रसा दधीत वृषभम्	१४३६
ते जानत स्वमोक्यं सं वत्सासो न मातृभिः	। मिथो नसन्त जामिभिः	१४३७
उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि	। इन्द्रे अग्ना नमः स्वः	१४३८
अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः	। सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः	१४३९
सोमस्य मित्रावरुणा उदिता सूर आ ददे	। तदातुरस्य भेषजम्	१४४०
उतो न्वस्य यत् पदं हर्यतस्य निधान्यम्	। परि द्यां जिह्वयातनत्	१४४१

× अथर्व० २०।१०३।१

॥ १५८ ॥ (ऋ० ८ । ७४ । १-१२)

[१४४२ १४५३] गोपवन आत्रेय । अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः= (अनुष्टुप्+गायत्री)।

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः १४४२
यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः १४४३
पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद् दिवि १४४४

आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यस्य श्रुतर्वा बृहन् आर्क्षो अनीक एधते १४४५
अमृतं जातवेदसं तिरस् तमांसि दर्शतम् । घृताहवनमीड्यम् १४४६
सबाधो यं जना इमे ऽग्निं हव्येभिरीळते । जुह्वानासो यतस्रुचः १४४७

इयं ते नव्यसी मतिर् अग्ने अधाय्यस्मदा ।
मन्द्र सुजात सुक्रतो ऽमूर दस्मातिथे १४४८
सा ते अग्ने शंतमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्धस्व सुष्टुतः १४४९
सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहद् उपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये १४५०

अश्वमिद् गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः १४५१
यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् १४५२
यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये । स बोधि वृत्रतूर्ये १४५३

॥ १५९ ॥ (ऋ० ८ । ८४ । १-९) (१४५४-१४६२) उशना काव्यः । गायत्री ।

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् १४५४
कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः १४५५
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना १४५६
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे १४५७
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः १४५८
अधा त्वं हि नस् करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः। वाजद्रविणसो गिरः १४५९
कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दंपते । गोषाता यस्य ते गिरः १४६०
तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् १४६१
क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर् नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः । अग्ने सुवीर एधते १४६२

॥ १६० ॥ (ऋ० ८ । १०२ । १-२२)

१४६३-१४८४ प्रयोगो भार्गवः, पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रौ अन्यतरो वा ।

त्वम॑ग्ने बृ॒हद् वयो॒ दधा॑सि देव दा॒शुषे॑ । क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑ १४६३
स न॒ ईळा॑नया स॒ह दे॒वाँ अ॑ग्ने दुव॒स्युवा॑ । चि॒कि॒द् वि॑भान॒वा व॑ह १४६४
त्वया॑ ह स्वि॒द् यु॒जा व॒यं चोदि॑ष्ठेन यविष्ठ्य । अ॒भि ष्मो॒ वाज॑सातये १४६५
औ॒र्व॒भृ॒गु॒वच्छु॒चिम् अप्नवान॒वदा हु॑वे । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् १४६६
हु॒वे वात॑स्वनं क॒विं प॒र्जन्य॑क्रन्द्यं॒ सह॑ः । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् १४६७
आ स॒वं स॑वि॒तुर्य॑था॒ भग॑स्येव भु॒जिं हु॑वे । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् १४६८
अ॒ग्निं वो॑ वृ॒धन्त॑म् अध्व॒राणां॑ पुरू॒तम॑म् । अच्छा॒ नप्त्रे॒ सह॑स्वते १४६९
अ॒यं यथा॑ न आ॒भुव॒त् त्वष्टा॑ रू॒पेव॒ तक्ष्या॑ । अ॒स्य क्रत्वा॒ यश॑स्वतः १४७०
अ॒यं विश्वा॑ अ॒भि श्रियो॒ ऽग्निर्दे॒वेषु॑ पत्यते । आ वाजै॒रुप॑ नो गमत् १४७१
विश्वे॑षामि॒ह स्तु॑हि॒ होतॄ॑णां य॒शस्त॑मम् । अ॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यम् १४७२
शी॒रं पा॑व॒कशो॑चिषं॒ ज्येष्ठो॒ यो दमे॒ष्वा । दी॒दाय॑ दी॒र्घश्रु॑त्तमः १४७३
तमर्व॑न्तं॒ न सा॑न॒सिं गृ॑णी॒हि वि॑प्र शु॒ष्मिण॑म् । मि॒त्रं न या॑तु॒यज्ज॑नम् १४७४
उप॑ त्वा जा॒मयो॒ गिरो॒ देदि॑शतीर्हवि॒ष्कृत॑ः । वा॒योरनी॑के अस्थिरन् १४७५
यस्य॑ त्रि॒धात्ववृ॑तं ब॒र्हिस् त॒स्थावसं॑दिनम् । आप॑श् चि॒न्नि द॑धा प॒दम् १४७६
प॒दं दे॒वस्य॑ मी॒ळ्हुषो ऽना॑धृष्टाभिरू॒तिभि॑ः । भ॒द्रा सूर्य॑ इवोप॒दृक् १४७७
अग्ने॑ घृ॒तस्य॑ धी॒तिभि॑स् तेपा॒नो दे॑व शो॒चिषा॑ । आ दे॒वान् व॑क्षि॒ यक्षि॑ च १४७८
तं त्वा॑जनन्त मा॒तर॑ः क॒विं दे॒वासो॑ अङ्गिरः । ह॒व्य॒वाह॒मम॑र्त्यम् १४७९
प्रचे॑तसं त्वा क॒वे ऽग्ने॑ दू॒तं वरे॑ण्यम् । ह॒व्य॒वाहं॒ नि षे॑दिरे १४८०
न॒हि मे॒ अस्त्यघ्न्या॒ न स्वधि॑ति॒र्वन॑न्वति । अथै॑ता॒दृग् भ॑रामि ते १४८१
यद॑ग्ने॒ कानि॒ कानि॑ चि॒द् आ ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि॑ । ता जु॑षस्व यविष्ठ्य १४८२
यदत्त्यु॑प॒जिह्वि॑का॒ यद् व॒म्रो अ॑ति॒सर्प॑ति । सर्वं॒ तद॑स्तु ते घृ॒तम् १४८३
अ॒ग्निमिन्धा॑नो॒ मन॑सा॒ धियं॑ सचेत॒ मर्त्य॑ः । अ॒ग्निमी॑धे वि॒वस्व॑भिः १४८४

॥ १६१ ॥ ऋग्वेदस्य मण्डलं १० । सूक्त १ । मन्त्राः १-७)

[१४८५—१५३३] त्रित आप्त्यः । त्रिष्टुप् ।

अग्ने॑ बृ॒हन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वो अ॑स्थान् निर्जग॒न्वान् तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त् ।
अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता॒ स्वङ्ग॒ आ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॑न्यप्राः १४८५

स जातो गर्भो असि रोदस्योर् अग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून् प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद् गाः १४८६

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ् जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र १४८७

अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीर् अन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता १४८८

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्व१ग्निमतिथिं जनानाम् १४८९

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन् यक्षीह देवान् १४९०

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठ अथा वह सहस्येह देवान् १४९१

॥ १६२ ॥ (ऋ० १० । २ । १-७)

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस् तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः १४९२

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् १४९३

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान् त्स यजात् सेदु होता सो अध्वरान् त्स ऋतून् कल्पयाति १४९४

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद् विश्वमा पृणाति विद्वान् येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति १४९५

यत् पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद् विजानन् यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति १४९६

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः १४९७

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस् त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान् पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि १४९८

॥ १६३ ॥ (ऋ० १० । ३ । १-७)

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद् वि भाति भासा बृहता असिक्नीमेति रुशतीमपाजन् १४९९
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज् जनयन् योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति १५००
भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् १५०१
अस्य यामासो बृहतो न वग्नून् इन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश् चिकित्रे १५०२
स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस् तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर् वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् १५०३
अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर् जेहमानस्य स्वनयन् नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा १५०४
स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः १५०५

॥ १६४ ॥ (ऋ० १० । ४ । १-७)

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् १५०६
यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानाम् अन्तर्महाँश् चरसि रोचनेन १५०७
शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ् जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः १५०८
मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश् चरति जिह्वयादन् रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् १५०९

कृचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः १५१०

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः १५११

ब्रह्म च ते जातवेदो नमश् च इयं च गीः सदमिद् वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस् तन्वोऽ अप्रयुच्छन् १५१२

॥ १६५ ॥ (ऋ० १० । ५ । १—७)

एकः समुद्रो धरुणो रयीणां अस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः १५१३

समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि १५१४

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश् चित् तन्तुं मनसा वियन्तः १५१५

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातम् इषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् १५१६

सप्त स्वसॄररुषीर्वावशानो विद्वान् मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन् वव्रिमविदत् पूषणस्य १५१७

सप्त मर्यादाः कवयस् ततक्षुस् तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ १५१८

असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश् च धेनुः १५१९

॥ १६६ ॥ (ऋ० १० । ६ । १-७)

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिर् अग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा १५२०

यो भानुभिर्विभावा विभात्य् अग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्यो ऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः १५२१

ईशे यो विश्वस्या देववीतेर् ईशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन् मना हवींष्यग्नौ अरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः १५२२

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर् देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा यजिष्ठः संमिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् १५२३

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानम् अग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् १५२४

सं यस्मिन् विश्वा वसूनि जग्मुर् वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व १५२५

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन् अधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः १५२६

॥ १६७ ॥ (ऋ० १०।७।१-७)

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैर् उरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः १५२७

इमा अग्ने मतयस् तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड् वसो दधानो मतिभिः सुजात १५२८

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिम् अग्निं भ्रातरं सदमित् सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य १५२९

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर् यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर् द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु १५३०

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त १५३१

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान् किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवान् एवा यजस्व तन्वं सुजात १५३२

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस् तन्वो अप्रयुच्छन् १५३३

॥ १६८ ॥ (ऋ० १० । ८ । १-६) [१५३४-१५३९] त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः ।

प्र केतुना बृहता यात्यग्निर् आ रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश् चिदन्ताँ उपमाँ उदानळ् अपामुपस्थे महिषो ववर्ध १५३४

मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मान् अस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन् स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति १५३५

आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त १५३६

उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन् मित्रं तन्वे३ स्वायै १५३७

भुवश् चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः १५३८

भुवो यज्ञस्य रजसश् च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् १५३९

॥१६९॥ (ऋ० १०।११। १-९) [१५४०-१५५६] हविर्धान आङ्गिः। जगती, १५४६-४८ त्रिष्टुप्।

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् १५४०

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति १५४१

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वती उषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुम् अग्निं होतारं विदथाय जीजनन् १५४२

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत १५४३

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं१ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः १५४४

उदीरय पितरा जार आ भगम् इयक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस् तविष्यते असुरो वेपते मती १५४५

यस् ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैर् आ स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् १५४६

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् १५४७

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः १५४८

॥ १७० ॥ (ऋ० १० । १२ । १-९) त्रिष्टुप् ।

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेन अभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन् सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् १५४९

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश् चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् १५५०

स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोर् अतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर् दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः १५५१

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् १५५२

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्य अति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश् चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ् छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति १५५३

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्तु अग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् १५५४

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा १५५५

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्ति अपीच्ये न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त् सविता देवो वरुणाय वोचत् १५५६

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे० । (१५४८)

॥ १७१ ॥ (ऋ० १० । १६ । १—१४)

[१५५७-१५७०] दमनो यामायनः । त्रिष्टुप्, १५६९-७० अनुष्टुप् ।

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदो ऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः १५५७

शृतं यदा करसि जातवेदो ऽथेमेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेताम् अथा देवानां वशनीर्भवाति १५५८

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितम् ओषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः १५५९

अजो भागस् तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस् तपतु तं ते अर्चिः ।
यास् ते शिवास् तन्वो जातवेदस् ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् १५६०

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस् त आहुतश् चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः १५६१

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश् च यो ब्राह्मणाँ आविवेश १५६२

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाते १५६३

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश् चमसो देवपानस् तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ते १५६४

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् १५६५

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश वो गृहम् इमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात् परमे सधस्थे १५६६

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन् यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश् च पितृभ्य आ १५६७

उशन्तस् त्वा नि धीमहि उशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे १५६८

यं त्वम॑ग्ने स॒मद॑ह॒स् तमु॒ निर्वा॑पया॒ पुन॑: ।
क्रि॒याम्ब्वत्र॑ रोहतु पाकदू॒र्वा व्य॑ल्कशा १५६९

शीति॑के॒ शीति॑कावति॒ ह्लादि॑के॒ ह्लादि॑कावति ।
म॒ण्डू॒क्या॒३॒॑ सु सं ग॑म इ॒मं स्व१॒॑ग्निं ह॑र्षय १५७०

॥ १७२ ॥ (ऋ० १० । २० । १-१०)

[१५७१-१५८८] विमद ऐन्द्रः, प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुकः । गायत्री, १५७१ एकपदा विराट् (एष मन्त्रः शान्त्यर्थः), १५७२ अनुष्टुप्, १५७९ विराट्, १५८० त्रिष्टुप् ।

भ॒द्रं नो॒ अपि॑ वातय॒ मन॑: १५७१

अ॒ग्निमी॑ळे भु॒जां यवि॑ष्ठं शा॒सा मि॒त्रं दु॒र्धरी॑तुम् ।
यस्य॒ धर्म॒न् त्स्व१॒॑रेनी॑: सप॒र्यन्ति॑ मा॒तुरूध॑: १५७२

यमा॒सा कृ॒पनी॑ळं भा॒साके॑तुं व॒र्धय॑न्ति । भ्राज॑ते॒ श्रेणि॑दन् १५७३
अ॒र्यो वि॒शां गा॒तुरे॑ति॒ प्र यदान॑ड् दि॒वो अन्ता॑न् । क॒विर॒भ्रं दीद्या॑नः १५७४
जु॒षद्ध॒व्या मानु॑षस्य ऊ॒र्ध्वस् त॑स्थावृ॒भ्वा य॒ज्ञे । मि॒न्वन् त्सद्म॑ पु॒र ए॑ति १५७५
स हि क्षेमो॑ ह॒विर्य॒ज्ञः श्रु॒ष्टीद॑स्य गा॒तुरे॑ति । अ॒ग्निं दे॒वा वाशी॑मन्तम् १५७६
य॒ज्ञा॒सा॒हं दुव॑ इषे॒ऽग्निं पूर्व॑स्य॒ शेव॑स्य । अद्रे॑: सू॒नुमा॒युमा॑हुः १५७७
नरो॒ ये के॑ चा॒स्मदा॒ विश्वेत् ते वा॒म आ स्यु॑: । अ॒ग्निं ह॒विषा॒ वर्ध॑न्तः १५७८

कृ॒ष्णः श्वे॒तो॑ऽरु॒षो यामो॑ अस्य ब्र॒ध्न ऋ॒ज्र उ॒त शोणो॒ यश॑स्वान् ।
हिर॑ण्यरूपं॒ जनि॑ता जजान १५७९

ए॒वा ते॑ अग्ने विम॒दो म॑नी॒षाम् ऊर्जो॑ नपाद॒मृते॑भिः स॒जोषा॑: ।
गिर॒ आ व॑क्षत् सुम॒तीरि॑या॒न इष॒मूर्जं॑ सुक्षि॒तिं विश्व॒माभा॑: १५८०

॥ १७३ ॥ (ऋ० १० । २१ । १-८) आस्तारपंक्तिः (८+८+१२+१२) ।

आग्निं न स्ववृ॑क्तिभि॒र् होता॑रं त्वा वृणीमहे ।
य॒ज्ञाय॑ स्ती॒र्णब॑र्हिषे॒ वि वो॒ मदे॑ शी॒रं पा॑व॒कशो॑चिषं॒ विव॑क्षसे १५८१

त्वामु॒ ते स्वा॒भुव॑: शु॒म्भन्त्यश्व॑राधसः ।
वेति॒ त्वामु॑प॒सेच॑नी॒ वि वो॒ मद॒ ऋजी॑तिरग्न॒ आहु॑ति॒र्विव॑क्षसे १५८२

त्वे ध॒र्माण॑ आसते जु॒हूभि॑: सिञ्च॒तीरि॑व ।
कृ॒ष्णा रू॒पाण्यर्जु॑ना॒ वि वो॒ मदे॒ विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॑ धिषे॒ विव॑क्षसे १५८३

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे १५८४

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद् विश्वानि काव्या ।
भुवद् दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे १५८५

त्वां यज्ञेष्वीळते ऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।
त्वं वसूनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे १५८६

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे १५८७

अग्ने शुक्रेण शोचिषा उरु प्रथयसे बृहत्
अभिक्रन्दन् वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे १५८८

॥ १७४ ॥ (ऋ० १०।४५।१-१२) [१५८९-१६१०] वत्सप्रिर्भालन्दनः। त्रिष्टुप्।

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निर् अस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रम् इन्धान एनं जरते स्वाधीः १५८९

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद् विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ १५९०

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर् नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसम् अपामुपस्थे महिषा अवर्धन् १५९१

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यद् आ रोदसी भानुना भात्यन्तः १५९२

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः १५९३

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिदद्रिमभिनत् परायञ् जना यदग्निमयजन्त पञ्च १५९४

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रद् उच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् १५९५

इ॒षा॒नो रु॒क्म उ॒र्वि॑या॒ व्य॑द्यौद् दु॒र्मर्ष॒मायुः॑ श्रि॒ये रु॑चा॒नः ।
अ॒ग्निर॒मृतो॑ अभव॒द् वयो॑भि॒र् यदे॑नं॒ द्यौर॒जन॑यत् सु॒रेताः॑　　१५९६

यस् ते॑ अ॒द्य कृ॒णव॑द् भद्रशोचे ऽपू॒पं दे॑व घृ॒तव॑न्तमग्ने ।
प्र तं न॑य प्रत॒रं वस्यो॒ अच्छ॑ अ॒भि सु॒म्नं दे॒वभ॑क्तं यविष्ठ　　१५९७

आ तं भ॑ज सौश्रव॒सेष्व॑ग्न उ॒क्थउ॑क्थ॒ आ भ॑ज श॒स्यमा॑ने ।
प्रि॒यः सूर्ये॑ प्रि॒यो अ॒ग्ना भ॑वा॒ति उज्जा॒तेन॑ भि॒नद॒दुज्ज॑नित्वैः　　१५९८

त्वाम॑ग्ने॒ यज॑माना॒ अनु॒ द्यून् विश्वा॒ वसु॑ दधिरे॒ वार्या॑णि ।
त्वया॑ स॒ह द्रवि॑णमि॒च्छमा॑ना व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः　　१५९९

अस्ता॑व्य॒ग्निर्न॒रां सु॒शेवो॑ वैश्वान॒र ऋषि॑भिः॒ सोम॑गोपाः ।
अ॒द्वे॒षे द्यावा॑पृथि॒वी हु॑वेम॒ देवा॑ ध॒त्त र॒यिम॒स्मे सु॒वीर॑म्　　१६००

॥ १७५ ॥ (ऋ० १० । ४६ । १-१०)

प्र होता॑ जा॒तो म॒हान् न॑भो॒विन् नृ॒षद्वा॑ सीदद॒पामु॒पस्थे॑ ।
दधि॒र्यो धायि॒ स ते॒ वयां॑सि य॒न्ता वसू॑नि विध॒ते त॑नू॒पाः　　१६०१

इ॒मं वि॒धन्तो॑ अ॒पां स॒धस्थे॑ प॒शुं न न॒ष्टं प॒दैरनु॑ ग्मन् ।
गुहा॒ चत॑न्तमु॒शिजो॒ नमो॑भिर् इ॒च्छन्तो॒ धीरा॒ भृग॑वोऽविन्दन्　　१६०२

इ॒मं त्रि॒तो भूर्य॑विन्ददि॒च्छन् वै॑भूव॒सो मू॒र्धन्यघ्न्या॑याः ।
स शेवृ॑धो जा॒त आ ह॒र्म्येषु॒ नाभि॒र्युवा॑ भवति रोच॒नस्य॑　　१६०३

म॒न्द्रं होता॑रमु॒शिजो॒ नमो॑भिः॒ प्राञ्चं॑ य॒ज्ञं ने॒तार॑मध्व॒राणा॑म् ।
वि॒शाम॑कृण्वन्नर॒तिं पा॑व॒कं ह॑व्य॒वाहं॒ दध॑तो॒ मानु॑षेषु　　१६०४

प्र भू॒र्जय॑न्तं म॒हां वि॑पो॒धां मू॒रा अमू॑रं पु॒रां द॒र्माण॑म् ।
नय॑न्तो॒ गर्भं॑ व॒नां धियं॑ धु॒र् हिरि॑श्मश्रुं॒ नार्वा॑णं॒ धन॑र्चम्　　१६०५

नि प॒स्त्या॑सु त्रि॒तः स्त॑भू॒यन् परि॑वीतो॒ योनौ॑ सीददु॒न्तः ।
अतः॑ सं॒गृभ्या॑ वि॒शां दमू॑ना॒ विध॑र्मणाय॒न्त्रैरी॑यते॒ नॄन्　　१६०६

अ॒स्याज॒रासो॑ द॒माम॒रित्रा॑ अ॒र्चद्धू॑मासो अ॒ग्नयः॑ पाव॒काः ।
श्वि॒ती॒चयः॑ श्वा॒त्रासो॑ भुर॒ण्यवो॑ वन॒र्षदो॑ वा॒यवो॒ न सोमाः॑　　१६०७

प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् १६०८

द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टाम् आपस् त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईळेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास् ततक्षुर्मनवे यजत्रम् १६०९

यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन् यशसः सं हि पूर्वीः १६१०

॥ १७६ ॥ (ऋ० १० । ५१ । १, ३, ५ ७, ९,) [१६११-१६२४] देवा ।

महत् तदुल्वं स्थविरं तदासीद् येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ।
विश्वा अपश्यद् बहुधा ते अग्ने जातवेदस् तन्वो देव एकः १६११

ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु ।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् १६१२

एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामो ऽरंकृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान् पथः कृणुहि देवयानान् वह हव्यानि सुमनस्यमानः १६१३

कुर्मस् त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात १६१४

तव प्रयाजा अनुयाजाश् च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञो३ऽयमस्तु सर्वस् तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश् चतस्रः १६१५

॥ १७७ ॥ (ऋ० १० । ५३ । १-३, ६-११) जगती, १६१६-१८, १६२१ त्रिष्टुप् ।

यमैच्छाम मनसा सो३ऽयमागाद् यज्ञस्य विद्वान् परुषश् चिकित्वान् ।
स नो यक्षद् देवताता यजीयान् नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् १६१६

अराधि होता निषदा यजीयान् अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।
यजामहै यज्ञियान् हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन १६१७

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात् सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य १६१८

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् १६१९

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् १६२०

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वम् उत् तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत् तरेमाभि वाजान् १६२१

त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत् पात्रा देवपानानि शंतमा ।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः १६२२

सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः १६२३

गर्भे योषामदधुर्वत्समासनि अपीच्येन मनसोत जिह्वया ।
स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम् १६२४

॥१७८॥ (ऋ० १० । ६९ । १-१२) [१६२५-१६३६] सुमित्रो वाध्र्यश्वः । त्रिष्टुप्, १६२५-२६ जगती ।

भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् १६२५

घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्य इव रोचते सर्पिरासुतिः १६२६

यत् ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः १६२७

यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व ।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे १६२८

भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम् ।
शूर इव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम १६२९

समज्र्या पर्वत्या३ वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।
शूर इव धृष्णुश् च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः १६३०

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु १६३१

*

त्वे धेनुः सुदुघा जातवेदो ऽसश्चतेव समना सबर्धुक् ।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः १६३२

देवाश् चित् ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन् ।
यत् संपृच्छं मानुषीर्विश आयन् त्वं नृभिरजयस् त्वावृधेभिः १६३३

पितेव पुत्रमबिभरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन् ।
जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठ उत पूर्वाँ अवनोर्व्राधतश् चित् १६३४

शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून् नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश् चित्रभानो ऽव व्राधन्तमभिनद् वृधश् चित् १६३५

अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात् प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।
स नो अजामीँरुत वा विजामीन् अभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व १६३६

॥ १७९ ॥ (ऋ० १० । ७९ । १-७)

[१६३७—१६५०] अग्निः सौचीको, वैश्वानरो वा, (सप्तिर्वाजंभरो वा)। त्रिष्टुप्।

अपश्यमस्य महतो महित्वम् अमर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः १६३७

गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्ति उत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु १६३८

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन् कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः १६३९

तद् वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।
नाहं देवस्य मर्त्यश् चिकेत अग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः १६४०

यो अस्मा अन्नं तृष्वादधाति आज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षे ऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् १६४१

किं देवेषु त्यज एनश् चकर्थ अग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन् क्रीळन् हरिरत्तवेऽदन् वि पर्वशश् चकर्त गामिवासिः १६४२

विषूचो अश्वान् युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।
चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः १६४३

॥ १८० ॥ (ऋ० १० । ८० । १-७)

अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददाति अग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिःष्ठाम् ।
अग्नी रोदसी वि चरत् समञ्जन् अग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम् १६४४

अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्रा ऽग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।
अग्निरेकं चोदयत् समत्सु अग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि १६४५

अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमाव अग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम् ।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तर् अग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत् सम् १६४६

अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततान अग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा १६४७

अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्ते ऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तो ऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् १६४८

अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्य अग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता १६४९

अग्नये ब्रह्म ऋभवस् ततक्षुर् अग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम् ।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठ अग्ने महि द्रविणमा यजस्व १६५०

॥ १८१ ॥ (ऋ० १० । ९१ । १-१५) [१६५१-१६६५] अरुणो वैतहव्यः । जगती, १६६५ त्रिष्टुप् ।

सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे ।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते १६५१

स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।
जनंजनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्यो३ विशंविशम् १६५२

सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुर् अग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद् द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः १६५३

प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियम् इळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयो ऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः १६५४

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश् चित्राश् चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये १६५५

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित् समानं वनिनश् च वीरुधो ऽन्तर्वतीश् च सुवते च विश्वहा १६५६

वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद् वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः १६५७

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनम् अग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित् तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् १६५८

त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद् देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः १६५९

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश् च नो दमे १६६०

यस् तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्य१म् उप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि १६६१

इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद् वर्धनो यासु चाकनत् १६६२

इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः १६६३

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये १६६४

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् १६६५

॥ १८२ ॥ (ऋ० १० । ११५ । १-९)

[१६६६-१६७४] उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः । जगती, १६७३ त्रिष्टुप्, १६७४ शक्वरी ।

चित्र इच्छिशोस् तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं१ चरन् १६६६

अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा १६६७

तं वो विं न द्रुपदं देवमन्धंस इन्दुं प्रोथंन्तं प्रवपंन्तमर्णवम् ।
आसा वह्निं न शोचिषां विरप्शिनं महिंव्रतं न सरजंन्तमध्वंनः १६६८

वि यस्यं ते ज्रयसानस्यांजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युंताः ।
आ रण्वासो युयुंधयो न संत्वनं त्रितं नंशन्त प्र शिषन्तं इष्टये १६६९

स इदुग्निः कण्वंतमः कण्वंसखा अर्यः परस्यान्तंरस्य तरुंषः ।
अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीन् अग्निर्ददातु तेषामवों नः १६७०

वाजिन्तंमाय सह्यंसे सुपित्र्य तृषु च्यवांनो अनुं जातवेंदसे ।
अनुद्रे चिद् यो धृंषता वरं सते महिन्तंमाय धन्वनेदंविष्यते १६७१

एवाग्निर्मर्तैंः सह सूरिभिर् वसुः ष्टवे सहंसः सूनरो नृभिः ।
मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युम्नैरभि सन्ति मानुंषान् १६७२

ऊर्जो नपात् सहसावन्निति त्वा उपस्तुतस्यं वन्दते वृषा वाक् ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीयं आयुः प्रतरं दधानाः १६७३

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।
तांश्च पाहि गृणतश्च सूरीन् वषड्वषळित्यूर्ध्वासों अनक्षन्
नमो नम इत्यूर्ध्वासों अनक्षन् १६७४

१८३ ॥ (ऋ० १० । १२२ । १-८) [१६७५-१६८२] चित्रमहा वासिष्ठः । जगती; १६७५-१६७९ त्रिष्टुप् ।

वसुं न चित्रमंहसं गृणीषे वामं शेवमतिथिमद्विषेण्यम् ।
स रासते शुरुधों विश्वधायसो ऽग्निर्होता गृहपंतिः सुवीर्यंम् १६७५

जुषाणो अंग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान् वयुनानि सुक्रतो ।
घृतंनिर्णिग् ब्रह्मणे गातुमेरंय तवं देवा अजनयन्ननुं व्रतम् १६७६

सप्त धामानि परियन्नमर्त्यो दाशंद् दाशुषे सुकृतें मामहस्व ।
सुवीरेंण रयिणाग्ने स्वाभुवा यस्त आनंट् समिधा तं जुषस्व १६७७

यज्ञस्यं केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनंम् ।
शृण्वन्तंमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यंम् १६७८

त्वं दूतः प्रथमो वरेंण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व ।
त्वां मर्जयन् मरुतों दाशुषो गृहे त्वां स्तोमेभिर्भृगवो वि रुरुचुः [illegible]

इषं दुहन् त्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।
अग्ने घृतस्नुस् त्रिर्ऋतानि दीद्यद् वर्तिर्यज्ञं परियन् त्सुक्रतूयसे १६८०

त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुर् आज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे १६८१

नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः ।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १६८२

॥ १८४ ॥ (ऋ० १० । १२४ । १) [१६८३] अग्निः । त्रिष्टुप् ।

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ।
असो हव्यवाळुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घं तम आशयिष्ठाः १६८३

॥ १८५ ॥ (ऋ० १० । १४० । १-६)

[१६८४-१६८९] अग्निः पावकः । सतोबृहती, १६८४-८६ विष्टारपङ्क्तिः, १६८९ उपरिष्टाज्ज्योतिः ।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे १६८४

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे १६८५

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर् मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश् चित्रोतयो वामजाताः १६८६

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिर् अस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् १६८७

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् १६८८

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतम् अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा १६८९

॥ १८६ ॥ (ऋ० १० । १४२ । १—८)

[१६९०—१६९७] १६९०-१६९१ जरिता, १६९२-९३ द्रोणः, १६९४-९५ सारिसृक्वः, १६९६-९७ स्तम्बमित्रः (एते शार्ङ्गाः) । त्रिष्टुप्, १६९०-९१ जगती, १६९६—९७ अनुष्टुप् ।

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि　सहसः सूनो नह्यन्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त　आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि　१६९०

प्रवत् ते अग्ने जनिमा पितूयतः　साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः　पुरश् चरन्ति पशुपा इव त्मना　१६९१

उत वा उ परि वृणक्षि बप्सद्　बहोरग्न उलपस्य स्वधावः ।
उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति　मा ते हेतिं तविषीं चुक्रुधाम　१६९२

यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत्　पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना ।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्　वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम　१६९३

प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र　एकं नियानं बहवो रथासः ।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो　न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम्　१६९४

उत् ते शुष्मा जिहतामुत् ते अर्चिर्　उत् ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान　आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु　१६९५

अपामिदं न्ययनं　समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां　तेन याहि वशाँ अनु　१६९६

आयने ते परायणे　दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
ह्रदाश् च पुण्डरीकाणि　समुद्रस्य गृहा इमे　१६९७

॥ १८७ ॥ (ऋ० १० । १५० । १-५)

[१६९८-१७०२] मृळीको वासिष्ठः । बृहती, १७०१-२ उपरिष्टाज्ज्योतिः, १७०१ जगती वा ।

समिद्धश् चित् समिध्यसे　देवेभ्यो हव्यवाहन ।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि　मृळीकाय न आ गहि　१६९८

इमं यज्ञमिदं वचो　जुजुषाण उपागहि ।
मर्तासस् त्वा समिधान हवामहे　मृळीकाय हवामहे　१६९९

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान् मृळीकाय प्रियव्रतान् १७००
अग्निर्देवो देवानामभवत् पुरोहितो ऽग्निं मनुष्या३ ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये १७०१
अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः १७०२

॥ १८८ ॥ (ऋ० १० । १५६ । १-५) [१७०३-१७०७] केतुराग्नेयः । गायत्री ।

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् १७०३
यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये १७०४
आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्घि खं वर्तया पणिम् १७०५
अग्ने नक्षत्रमजरम् आ सूर्यं रोहयो दिवि । दधज् ज्योतिर्जनेभ्यः १७०६
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् १७०७

॥१८९॥ (ऋ० १०।१७६।२-४) [१७०८-१७१०] सूनुरार्भवः । गायत्री, १७०९-१० अनुष्टुप् ।

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् १७०८
अयमु ष्य प्र देवयुर् होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवान् चेतति त्मना १७०९
अयमग्निरुरुष्यति अमृतादिव जन्मनः ।
सहसश् चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः १७१०

॥ १९० ॥ (ऋ० १० । १८७ । १-५) [१७११—१७१५] वत्स आग्नेयः । गायत्री ।

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः १७११
यः परस्याः परावतस् तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः १७१२
यो रक्षांसि निजूर्वति वृषा शुक्रेण शोचिषा । स नः पर्षदति द्विषः १७१३
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पर्षदति द्विषः १७१४
यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विषः १७१५

॥ १९१ ॥ (ऋ० १ । १९१ । १) [१७१६] संवनन आङ्गिरसः । अनुष्टुप् ।

संसमिद् युवसे वृषन् अग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर १७१६

वैश्वानरोऽग्निः ।

॥ १९२ ॥ (ऋ० १ । ५९ । १-७) [१७१७-१७२३] नोधा गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वया इदग्ने अग्नयस् ते अन्ये　त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां　स्थूणेव जनाँ उपमिद् ययन्थ　१७१७

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या　अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं　वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय　१७१८

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो　वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु　या मानुषेष्वसि तस्य राजा　१७१९

बृहती इव सूनवे रोदसी　गिरो होता मनुष्यो न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्　वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः　१७२०

दिवश् चित् ते बृहतो जातवेदो　वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां　युधा देवेभ्यो वरिवश् चकर्थ　१७२१

प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं　यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ　अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत्　१७२२

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्　भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः　पुरुणीथे जरते सूनृतावान्　१७२३

॥ १९३ ॥ (ऋ० १ । ९८ । १-३) [१७२४-१७२६] कुत्स आङ्गिरसः ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम　राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे　वैश्वानरो यतते सूर्येण　१७२४

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां　पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः　स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्　१७२५

वैश्वानर तव तत् सत्यमस्तु　अस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्　अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः　१७२६

॥ १९४ ॥ (ऋ० ३।२।१-१५) [१७२७-१७५१] विश्वामित्रो गाथिनः । जगती ।

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति १७२७

स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः १७२८

क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे १७२९

आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा १७३०

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् १७३१

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः १७३२

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः १७३३

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः १७३४

तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः १७३५

विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् १७३६

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे १७३७

वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं मन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः १७३८

ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१म् आ यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे १७३९
शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् १७४०
मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद् राय ईमहे १७४१

॥ १९५ ॥ (ऋ० ३ । ३ । १-११)

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यति अथा धर्माणि सनता न दूदुषत् १७४२
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर् देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः १७४३
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिरस् तस्मिन् त्सुम्नानि यजमान आ चके १७४४
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः १७४५
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः १७४६
अग्निर्देवेभिर्मनुषश् च जन्तुभिस् तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर् जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः १७४७
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुनि ऊर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश् च जागृव उशिग् देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् १७४८
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे १७४९
विभावा देवः सुरणः परि क्षितीर् अग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयम् उप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः १७५०
वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना १७५१

वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहद् अरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायत अग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा १७५२

॥ १९६ ॥ (ऋ० ३ । २६ । १-३, ७-८) जगती, [१७५६-१७५७] त्रिष्टुप् ।

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे १७५३

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् १७५४

अश्वो न क्रन्दञ् जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः १७५५

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस् त्रिधातू रजसो विमानो ऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम १७५६

त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिर् आदिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् १७५७

॥ १९७ ॥ (ऋ० ४ । ५ । १—१५) [१७५८-१७७२] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद् भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेन उप स्तभायदुपमिन्न रोधः १७५८

मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः १७५९

साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस् तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वान् अग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् १७६०

प्र ताँ अग्निर्बभसत् तिग्मजम्भस् तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि १७६१

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् १७६२

इदं मे अग्ने कियते पावक अमिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद् दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु १७६३

तमिन्न्वे॑३॒॑व स॑म॒ना स॑मा॒नम् अ॒भि क्रत्वा॑ पुन॒ती धी॒तिर॑श्याः ।
स॒सस्य॒ चर्म॒न्नधि॒ चारु॒ पृश्ने॒र् अग्रे॑ रु॒प आरु॑पितं॒ जबा॑रु १७६४

प्र॒वाच्यं॒ वच॑सः॒ किं मे॑ अ॒स्य गुहा॑ हि॒तमुप॑ नि॒णिग् व॑दन्ति ।
यदु॒स्रिया॑णा॒मप॒ वारि॑व॒ व्रन् पाति॑ प्रि॒यं रु॒पो अग्रं॑ प॒दं वेः १७६५

इ॒दमु॒ त्यन्महि॑ म॒हामनी॑कं॒ यदु॒स्रिया॒ सच॑त पू॒र्व्यं गौः ।
ऋ॒तस्य॑ प॒दे अधि॒ दीद्या॑नं॒ गुहा॑ र॒घुष्यद् र॑घु॒यद् वि॑वेद १७६६

अध॑ द्युता॒नः पि॒त्रोः सचा॒सा ऽम॑नुत॒ गुह्यं॒ चारु॒ पृश्नेः॑ ।
मा॒तुष् प॒दे प॑र॒मे अन्ति॒ षद् गोर् वृष्णः॑ शो॒चिषः॒ प्रय॑तस्य जि॒ह्वा १७६७

ऋ॒तं वो॑चे॒ नम॑सा पृ॒च्छ्यमा॑न॒स् तवा॒शसा॑ जातवेदो॒ यदी॒दम् ।
त्वम॒स्य क्ष॑यसि॒ यद्ध॒ विश्वं॑ दि॒वि यदु॒ द्रवि॑णं॒ यत् पृ॑थि॒व्याम् १७६८

किं नो॑ अ॒स्य द्रवि॑णं॒ कद्ध॒ रत्नं॒ वि नो॑ वोचो जातवेदश् चिकि॒त्वान् ।
गुहाध्व॑नः पर॒मं यन्नो॑ अ॒स्य रेकु॑ प॒दं न नि॑दा॒ना अग॑न्म १७६९

का म॒र्यादा॑ व॒युना॒ कद्ध॑ वा॒मम् अच्छा॑ गमेम र॒घवो॒ न वाज॑म् ।
क॒दा नो॑ दे॒वीर॒मृत॑स्य॒ पत्नीः॒ सूरो॒ वर्णे॑न ततनन्नु॒षासः॑ १७७०

अ॒नि॒रेण॒ वच॑सा फ॒ल्ग्वे॑न प्र॒तीत्ये॑न कृ॒धुना॑तृ॒पासः॑ ।
अधा॒ ते अ॑ग्ने॒ किमि॒हा व॑दन्ति अना॒युधा॑स॒ आस॑ता सचन्ताम् १७७१

अ॒स्य श्रि॒ये स॑मिधा॒नस्य॒ वृष्णो॒ वसो॒रनी॑कं॒ दम॒ आ रु॑रोच ।
रुश॒द् वसा॑नः सु॒दृशी॑करूपः क्षि॒तिर्न रा॒या पु॑रु॒वारो॑ अद्यौत् १७७२

॥ १९८ ॥ (ऋ० ६ । ७ । १-७)

[१७७३-१७९३] भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप्, १७७८—१७७९ जगती ।

मू॒र्धानं॑ दि॒वो अ॑र॒तिं पृ॑थि॒व्या वै॑श्वान॒रमृ॒त आ जा॒तम॒ग्निम् ।
क॒विं स॒म्राज॒मति॑थिं॒ जना॑नाम् आ॒सन्ना पात्रं॑ जनयन्त दे॒वाः १७७३

नाभिं॑ य॒ज्ञानां॒ सद॑नं रयी॒णां म॒हामा॑हा॒वम॒भि सं न॑वन्त ।
वै॒श्वा॒न॒रं र॒थ्य॑मध्व॒राणां॑ य॒ज्ञस्य॑ के॒तुं ज॑नयन्त दे॒वाः १७७४

त्वद् विप्रो॑ जायते वा॒ज्य॑ग्ने॒ त्वद् वी॒रासो॑ अभिमाति॒षाहः॑ ।
वैश्वा॑नर॒ त्वम॒स्मासु॑ धेहि॒ वसू॑नि राजन् त्स्पृह॒याय्या॑णि १७७५

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत् पित्रोरदीदेः १७७६

वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज् जायमानः पित्रोरुपस्थे ऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् १७७७

वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः १७७८

वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर् वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथे ऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता १७७९

॥ १९९ ॥ (ऋ० ६ । ८ । १—७) जगती, १७८६ त्रिष्टुप् ।

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये १७८०

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर् वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् १७८१

व्यस्तभ्नाद् रोदसी मित्रो अद्भुतो ऽन्तर्वावदकृणोज् ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद् वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् १७८२

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद् विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः १७८३

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्यो ऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा १७८४

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारया ऽनामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः १७८५

अदब्धेभिस् तव गोपाभिरिष्टे ऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः १७८६

॥ २०० ॥ (६ । ९ । १-७) त्रिष्टुप् ।

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजा ऽवातिरज् ज्योतिषाग्निस् तमांसि १७८७

नाहं तन्तुं न वि जा॑नाम्योतुं न यं वय॑न्ति समरेऽत॑मानाः ।
कस्य॑ स्वित् पुत्र इह वक्त्वा॑नि परो व॑दात्यव॑रेण पित्रा १७८८

स इत् तन्तुं स वि जा॑नात्योतुं स वक्त्वा॑न्यृतुथा व॑दाति ।
य ईं चिके॑तदमृत॑स्य गोपा अवश् चर॑न् परो अन्येन पश्य॑न् १७८९

अयं होता॑ प्रथमः पश्य॑तेमम् इदं ज्योति॑रमृतं मर्त्ये॑षु ।
अयं स ज॑ज्ञे ध्रुव आ निष॑त्तो ऽम॑र्त्यस् तन्वा३ वर्ध॑मानः १७९०

ध्रुवं ज्योति॑र्निहि॑तं दृशये कं मनो जवि॑ष्ठं पतय॑त्स्वन्तः ।
विश्वे॑ देवाः सम॑नसः सके॑ता एकं क्रतु॑मभि वि य॑न्ति साधु १७९१

वि मे कर्णा॑ पतयतो वि चक्षुर् वीदं ज्योति॑र्हृद॑य आहि॑तं यत् ।
वि मे मन॑श् चरति दूरआ॑धीः किं स्वि॑द् वक्ष्यामि किमु नू म॑निष्ये १७९२

विश्वे॑ देवा अ॑नमस्यन् भियानास् त्वाम॑ग्ने तम॑सि तस्थिवां॑सम् ।
वैश्वानरो॑ऽवतूतये नो ऽम॑र्त्यो॑ऽवतूतये॑ नः १७९३

॥ २०१ ॥ (ऋ० ७ । ५ । १-९) [१७९४-१८१२] वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

प्राग्नये॑ तवसे॑ भरध्वं गिरं॑ दिवो अ॑रतये॑ पृथिव्याः ।
यो विश्वे॑षाममृता॑नामुपस्थे॑ वैश्वानरो वा॑वृधे जा॑गृवद्भिः १७९४

पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृ॑थिव्यां नेता सिन्धू॑नां वृषभः स्तिया॑नाम् ।
स मानु॑षीरभि विशो वि भा॑ति वैश्वानरो वा॑वृधानो वरे॑ण १७९५

त्वद् भिया विश॑ आयन्नसि॑क्नीर् असमना जह॑तीर्भोज॑नानि ।
वैश्वा॑नर पूरवे शोशु॑चानः पुरो यद॑ग्ने दरयन्नदी॑देः १७९६

तव॑ त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर् वैश्वा॑नर व्रतम॑ग्ने सचन्त ।
त्वं भासा रोद॑सी आ त॑तन्थ अज॑स्रेण शोचिषा शोशु॑चानः १७९७

त्वाम॑ग्ने हरितो॑ वावशाना गिरः॑ सचन्ते धुन॑यो घृताचीः ।
पतिं॑ कृष्टीनां रथ्यं॑ रयीणां वैश्वानर॑मुषसां॑ केतुमह्ना॑म् १७९८

त्वे अ॑सुर्यं॑ वस॑वो न्यृ॑ण्वन् क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त॑ ।
त्वं दस्यूं॑रोक॑सो अग्न आज उरु ज्योति॑र्जनय॑न्नार्या॑य १७९९

स जायमानः परमे व्योमन् वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्न् अपत्याय जातवेदो दशस्यन् १८००

तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय १८०१

तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः १८०२

॥ २०२ ॥ (ऋ० ७ । ६ । १-७)

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि १८०३

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर् हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासे ऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि १८०४

न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणींरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान् दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश् चकारापराँ अयज्यून् १८०५

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश् चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषे ऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् १८०६

यो देह्यो३ अनमयद् वधस्नैर् यो अर्यपत्नीरुषसश् चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर् विशश् चक्रे बलिहृतः सहोभिः १८०७

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस् तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योर् आग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् १८०८

आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्माद् आग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः १८०९

॥ २०३ ॥ (ऋ० ७ । १३ । १-३)

प्राग्नये विश्वशुचे धियंधे ऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् १८१०

त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा १८११

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून् न गोपा इर्यः परिज्मा ।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १८१२

३ रक्षोहाऽग्निः ।

॥ २०४ ॥ (ऋ० ४ । ४ । १-१५) [१८१३-१८२७] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानो ऽस्तासि विध्य रक्षसस् तपिष्ठैः १८१३

तव भ्रमास आशुया पतन्त्य अनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान् असंदितो वि सृज विष्वगुल्काः १८१४

प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्य् अग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् १८१५

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात् तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् १८१६

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मद् आविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् १८१७

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् १८१८

सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर् यस् त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः १८१९

अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास् त्वा सुरथा मर्जयेम अस्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् १८२०

इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन् दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस् त्वा सुमनसः सपेम अभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् १८२१

यस् त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस् त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् १८२२

म॒हो रु॑जामि ब॒न्धुता॒ वचो॑भि॒स् तन्मा॑ पि॒तुर्गोत॑मा॒दन्वि॑याय ।
त्वं नो॑ अ॒स्य वच॑सश् चिकिद्धि॒ होत॑र्यविष्ठ सुक्रतो॒ दमू॑नाः ॥ १८२३

अस्व॑प्नजस् त॒रण॑यः सु॒शेवा॒ अत॑न्द्रासोऽवृ॒का अश्र॑मिष्ठाः ।
ते पा॒यवः॑ स॒ध्र्य॑ञ्चो नि॒षद्या॒ अग्ने॒ तव॑ नः पान्त्वमूर ॥ १८२४

ये पा॒यवो॑ माम॒तेयं॑ ते अग्ने॒ पश्य॑न्तो अ॒न्धं दु॑रि॒तादर॑क्षन् ।
र॒रक्ष॒ तान् सु॒कृतो॑ वि॒श्ववे॑दा॒ दिप्स॑न्त॒ इद् रि॒पवो॒ नाह॑ देभुः ॥ १८२५

त्वया॑ व॒यं स॑ध॒न्य१॒॑स् त्वोता॒स् तव॒ प्रणी॑त्यश्याम॒ वाजा॑न् ।
उ॒भा शंसा॑ सूदय सत्यताते ऽनुष्ठु॒या कृ॑णुह्यह्रयाण ॥ १८२६

अ॒या ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम॒ प्रति॒ स्तोमं॑ श॒स्यमा॑नं गृभाय ।
दहा॒शसो॑ र॒क्षसः॑ पा॒ह्य१॒॑स्मान् द्रु॒हो नि॒दो मि॑त्रमहो अव॒द्यात् ॥ १८२७

॥ २०५ ॥ (ऋ० १० । ८७ । १-२५)

[१८२८—१८५२] पायुर्भारद्वाजः । त्रिष्टुप्, १८४९-५२ अनुष्टुप् ।

र॒क्षो॒हणं॑ वा॒जिन॒मा जि॑घर्मि मि॒त्रं प्रथि॑ष्ठ॒मुप॑ यामि॒ शर्म॑ ।
शिशा॑नो अ॒ग्निः क्रतु॑भिः॒ समि॑द्धः॒ स नो॒ दिवा॒ स रि॒षः पा॑तु॒ नक्त॑म् ॥ १८२८

अयो॑दंष्ट्रो अ॒र्चिषा॑ यातु॒धाना॒न् उप॑ स्पृश जातवेदः॒ समि॑द्धः ।
आ जि॒ह्वया॒ मूर॑देवान् रभस्व क्र॒व्यादो॑ वृ॒क्त्व्यपि॑ धत्स्वा॒सन् ॥ १८२९

उ॒भोभ॑यावि॒न्नुप॑ धेहि॒ दंष्ट्रा॑ हिं॒स्रः शिशा॒नोऽव॑रं॒ परं॑ च ।
उ॒तान्तरि॑क्षे॒ परि॑ याहि राज॒ञ् जम्भैः॒ सं धे॑ह्य॒भि या॑तु॒धाना॑न् ॥ १८३०

य॒ज्ञैरिषूः॑ सं॒नम॑मानो अग्ने वा॒चा श॒ल्याँ अ॒शनि॑भिर्दिहा॒नः ।
ताभि॑र्विध्य॒ हृद॑ये यातु॒धाना॑न् प्रती॒चो बा॒हून् प्रति॑ भङ्ध्येषाम् ॥ १८३१

अग्ने॒ त्वचं॑ यातु॒धान॑स्य भिन्धि हिं॒स्राशनि॒र्हर॑सा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वा॑णि जातवेदः शृणीहि क्र॒व्यात् क्र॑वि॒ष्णुर्वि चि॑नोतु वृ॒क्णम् ॥ १८३२

यत्रे॒दानीं॒ पश्य॑सि जातवेद॒स् तिष्ठ॑न्तमग्न उ॒त वा॒ चर॑न्तम् ।
यद्वा॒न्तरि॑क्षे प॒थिभिः॒ पत॑न्तं॒ तमस्ता॑ विध्य॒ शर्वा॒ शिशा॑नः ॥ १८३३

उ॒तालब्धं॑ स्पृणुहि जातवेद आलेभा॒नादृ॒ष्टिभि॑र्यातु॒धाना॑त् ।
अग्ने॒ पूर्वो॒ नि ज॑हि॒ शोशु॑चान आ॒मादः॒ क्ष्विङ्का॒स् तम॒दन्त्वेनीः॑ ॥ १८३४

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश् चक्षुषे रन्धयैनम् १८३५

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः १८३६

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च १८३७

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एतु ऋतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि १८३८

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् ।
अथर्ववज् ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष १८३९

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस् तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् १८४०

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवान् छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः १८४१

पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु तृष्टाः ।
वाचास् तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः १८४२

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च १८४३

संवत्सरीणं पय उस्रियायास् तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस् तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् १८४४

विषं गवां यातुधानाः पिबन्तु आ वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।
परैनान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् १८४५

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान् क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः १८४६

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात् त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस् तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु १८४७

पश्चात् पुरस्तादधरादुदक्तात् कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णे ऽग्ने मर्तां अमर्त्यस् त्वं नः १८४८

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् १८४९*

विषेण भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः १८५०

प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृहि अदब्धं विप्र मन्मभिः १८५१

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् १८५२

॥ २०६ ॥ (ऋ० १० । ११८ । १—९) [१८५३-१८६१] उरुक्षय आमहीयव । गायत्री ।

अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन् मर्त्येष्वा । स्वे क्षये शुचिव्रत १८५३
उत् तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे । यत् त्वा स्रुचः समस्थिरन् १८५४
स आहुतो वि रोचते ऽग्निरीळेन्यो गिरा । स्रुचा प्रतीकमज्यते १८५५
घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः । रोचमानो विभावसुः १८५६
जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन । तं त्वा हवन्त मर्त्याः १८५७
तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत । अदाभ्यं गृहपतिम् १८५८
अदाभ्येन शोचिषा ऽग्ने रक्षस् त्वं दह । गोपा ऋतस्य दीदिहि १८५९
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत् १८६०
तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे । यजिष्ठं मानुषे जने १८६१

४ जातवेदा अग्निः ।

॥२०७॥ (ऋ० १ । ९९ । १) [१८६२] कश्यपो मारीचः । त्रिष्टुप् ।

जातवेदसे सुनवाम सोमम् अरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः १८६२

* अथर्व १ । ७१ (७४) ॥ १ ॥ (ऋषि – अथर्वा) पाठभेदः– 'भङ्गुरावतः' ।

॥ २०८ ॥ (ऋ० १० । १८८ । १-३) [१८६३-१८६५] श्येन आग्नेयः । गायत्री ।

प्र नूनं जातवेदसम् अश्वं हिनोत वाजिनम् । इदं नो बर्हिरासदे १८६३
अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीळ्हुषः । महीमियर्मि सुष्टुतिम् १८६४
या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः । ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु १८६५

॥ २०९ ॥ (अथर्ववेदे कां० ७ । ८४ (८९) । १) [१८६६] भृगुः । जगती ।

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह ।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् १८६६

५ घर्मोऽग्निः ।

॥ २१० ॥ (ऋ० १ । ११२ । १ द्वितीयः पादः) [१८६७] कुत्स आंगिरसः ।

अग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये । १८६७

६ औपसोऽग्निः ।

॥ २११ ॥ (ऋ० १ । ९५ । १-११) [१८६८-१८७८] कुत्स आंगिरसः । त्रिष्टुप् ।

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ् छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः १८६८

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भम् अतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति १८६९

त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानाम् ऋतून् प्रशासद् वि दधावनुष्ठु १८७०

क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान् महान् कविर्निश्चरति स्वधावान् १८७१

आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते १८७२

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूव अञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः १८७३

उद् यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मात् नवा मातृभ्यो वसना जहाति १८७४

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव १८७५

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धो ऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् १८७६

धन्वन् त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते ऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु १८७७

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १८७८

७ द्रविणोदा अग्निः ।

॥ २१२ ॥ (ऋ० १ । ९६ । १-९) [१८७९—१८८७] कुत्स आंगिरसः । त्रिष्टुप् ।

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश् च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८७९

स पूर्वया निविदा कव्यतायोर् इमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश् च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८०

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८१

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर् विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८२

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८३

रा॒यो बु॒ध्नः सं॒गम॑नो॒ वसू॑नां य॒ज्ञस्य॑ के॒तुर्म॑न्म॒साध॑नो॒ वेः ।
अ॒मृ॒त॒त्वं रक्ष॑माणास एनं दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन् द्रविणो॒दाम् १८८४

नू च॑ पु॒रा च॒ सद॑नं रयी॒णां जा॒तस्य॑ च॒ जाय॑मानस्य च॒ क्षाम् ।
स॒तश्च॑ गो॒पां भव॑तश्च॒ भूरे॑र् दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन् द्रविणो॒दाम् १८८५

द्र॒वि॒णो॒दा द्रवि॑णसस् तु॒रस्य॑ द्रविणो॒दाः सन॑रस्य॒ प्र यं॑सत् ।
द्र॒वि॒णो॒दा वी॒रव॑ती॒मिषं॑ नो द्रविणो॒दा रा॑सते दी॒र्घमायुः॑ १८८६

ए॒वा नो॑ अग्ने स॒मिधा॑ वृधा॒नो० । (१८७८)

७ शुचिरग्निः।

॥ २१३ ॥ (ऋ० १।९७।१-८) (१८८७-१८९४) कुत्स आङ्गिरसः। गायत्री।

अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् अग्ने॑ शुशु॒ग्ध्या र॒यिम् ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् १८८७

सु॒क्षे॒त्रि॒या सु॑गातु॒या व॑सू॒या च॑ यजामहे ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् १८८८

प्र यद् भन्दि॑ष्ठ एषां॒ प्रास्माका॑सश्च सू॒रयः॑ ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् १८८९

प्र यत् ते॑ अग्ने सू॒रयो॒ जाये॑महि॒ प्र ते॑ व॒यम् ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् १८९०

प्र यद॒ग्नेः सह॑स्वतो वि॒श्वतो॒ यन्ति॑ भा॒नवः॑ ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् १८९१

त्वं हि वि॑श्वतोमुख वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑ ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् १८९२

द्विषो॑ नो विश्वतोमु॒खाति॑ ना॒वेव॑ पारय ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम्

स नः॒ सिन्धु॑मिव ना॒वयाति॑ पर्षा स्व॒स्तये॑ ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम्

८ अग्निरापो गावश्च ।

अग्निः सूर्यो वा आपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा ।

॥ २१४ ॥ (ऋ० ४।५८। १-११) [१८९५-१९०५] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, १९०५ जगती ।

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारद् उपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः १८९५

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्य अस्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् १८९६

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश १८९७

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः १८९८

एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्रात् शतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् १८९९

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः १९००

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः १९०१

अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः १९०२

कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते १९०३

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिम् अस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते १९०४*

धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रितम् अन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतम् तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् १९०५

* अथर्व० ७।८२ (८७) । १, पाठभेदः- अभ्यर्चत । मधुमत् पवन्ताम् ।

९ आप्रीसूक्तानि ।

॥ २१५ ॥ (ऋ० १ । १३ । १-१२)

१९०६-१७ मेधातिथिः काण्वः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण-१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः, ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उषासानक्ता, ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः] । गायत्री ।

सुसमिद्धो न आ वह　देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च　१९०६
मधुमन्तं तनूनपाद्　यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये　१९०७
नराशंसमिह प्रियम्　अस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम्　१९०८
अग्ने सुखतमे रथे　देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः　१९०९
स्तृणीत बर्हिरानुषग्　घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम्　१९१०
वि श्रयन्तामृतावृधो　द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे　१९११
नक्तोषासा सुपेशसा　अस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे　१९१२
ता सुजिह्वा उप ह्वये　होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम्　१९१३
इळा सरस्वती मही　तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः　१९१४
इह त्वष्टारमग्रियं　विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः　१९१५
अव सृजा वनस्पते　देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम्　१९१६
स्वाहा यज्ञं कृणोतन　इन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उप ह्वये　१९१७

॥ २१६ ॥ (ऋ० १ । १४२ । १-१३)

१९१८-३० दीर्घतमा औचथ्यः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः, ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उषासानक्ता, ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः, १३ इन्द्रः] । अनुष्टुप् ।

समिद्धो अग्न आ वह　देवाँ अद्य यतस्रुचे । तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं　सुतसोमाय दाशुषे　१९१८
घृतवन्तमुप मासि　मधुमन्तं तनूनपात् । यज्ञं विप्रस्य मावतः　शशमानस्य दाशुषः १९१९
शुचिः पावको अद्भुतो　मध्वा यज्ञं मिमिक्षति । नराशंसस्त्रिरा दिवो　देवो देवेषु यज्ञियः १९२०
ईळितो अग्न आ वह　इन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । इयं हि त्वा मतिर्मम　अच्छा सुजिह्व वच्यते १९२१
स्तृणानासो यतस्रुचो　बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे । वृञ्जे देवव्यचस्तमम्　इन्द्राय शर्म सप्रथः १९२२
वि श्रयन्तामृतावृधः　प्रयै देवेभ्यो महीः । पावकासः पुरुस्पृहो　द्वारो देवीरसश्चतः १९२३

*

आ मन्दमाने उषाके नक्तोषासा सुपेशसा । यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् १९२४
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् १९२५
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती । इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः १९२६
तन्नस् तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना । त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः १९२७
अवसृजन्नुप त्मना देवान् यक्षि वनस्पते । अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः १९२८
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन १९२९
स्वाहाकृतान्या गहि उप हव्यानि वीतये । इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे १९३०

॥ २१७ ॥ (ऋ० १ । १८८ । १-११)

१९३१-४१ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । आप्रीसूक्तं= (क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । गायत्री ।

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह १९३१
तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिषः १९३२
आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि १९३३
प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ १९३४
विराट् सम्राड् विभ्वीः प्रभ्वीर् बह्वीश् च भूयसीश् च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् १९३५
सुरुक्मे हि सुपेशसा अधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् १९३६
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् १९३७
भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश् चोदयत श्रिये १९३८
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून् विश्वान् त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज १९३९
उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् १९४०
पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते १९४१

॥ २१८ ॥ (ऋ० २ । ३ । १-११)

१९४२-५२ गृत्समदः शौनकः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः] । त्रिष्टुप्; १९४८ जगती ।

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् १९४२

नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन् मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ १९४३

ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन् देवान् यक्षि मानुषात् पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतम् इन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥ १९४४

देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥ १९४५

वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥ १९४६

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥ १९४७

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान् यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ १९४८

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदम् अच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ १९४९

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ १९५०

वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थाद् अग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन् देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥ १९५१

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर् घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ १९५२

॥ २१९ ॥ (ऋ० ३।४।१-११)

१९५३-६३ विश्वामित्रो गाथिनः। आप्रीसूक्तं= [क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः]। त्रिष्टुप् ।

समित्समित् सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान् यजथाय वक्षि सखा सखीन् त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥ १९५३

यं देवासस् त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस् तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् १९५४

प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान् यक्षदिषितो यजीयान् १९५५

ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकारि ऊर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः १९५६

सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः १९५७

आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषद् इन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः १९५८

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुर् अनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः १९५९

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु १९६०

तन्नस् तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः १९६१

वनस्पतेऽव सृजोप देवान् अग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद १९६२

आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङ् इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् १९६३

॥ २२० ॥ (ऋ० ५।५।१-११)

१९६४-७४ वसुश्रुत आत्रेयः। आप्रीसूक्तं= (क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। गायत्री।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे १९६४
नराशंसः सुषूदति इमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः १९६५

ईळितो अग्न आ वह इन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये १९६६
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्व अभ्य१र्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये १९६७
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन १९६८
सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे १९६९
वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः। इमं नो यज्ञमा गतम् १९७०
इळा सरस्वती मही० । (१९१४)
शिवस् त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना। यज्ञेयज्ञे न उदव १९७१
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय १९७२
स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः १९७३

॥ २२१ ॥ (ऋ० ७।२।१-११)

१९७४-८० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। आप्रीसूक्तं- (क्रमेण १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः,३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। त्रिष्टुप्।

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद् यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस् ततनः सूर्यस्य १९७४

नराशंसस्य महिमानमेषाम् उप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या १९७५

ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षम् अन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम १९७६

सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वद् अध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् १९७७

स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तो ऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् १९७८

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् १९७९

विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि १९८०

आ भारती भारतीभिः सजोषा०। (१९६०)
तन्नस् तुरीपमध पोषयित्नु० । (१९६१)
वनस्पतेऽव सृजोप देवान्० । (१९६२)
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङ्० । (१९६३)

॥ २२२ ॥ (ऋ० ९ । ५ । १-११)

१९८१-९१ असितः काश्यपो देवलो वा । आप्रीसूक्तं=(क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः । गायत्री,) १९९४-९७ अनुष्टुप् ।

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति । प्रीणन् वृषा कनिक्रदत् १९८१
तनूनपात् पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति । अन्तरिक्षेण रारजत् १९८२
ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् । मधोर्धाराभिरोजसा १९८३
बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन् हरिः । देवेषु देव ईयते १९८४
उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः । पवमानेन सुष्टुताः १९८५
सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते १९८६
उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पवमान इन्द्रो वृषा १९८७
भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही । इमं नो यज्ञमा गमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः १९८८
त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे । इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः १९८९
वनस्पतिं पवमान मध्वा समङ्ग्धि धारया । सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् १९९०
विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत । वायुर्बृहस्पतिः सूर्यो ऽग्निरिन्द्रः सजोषसः १९९१

॥ २२३ ॥ (ऋ० १० । ७० । १-११)

१९९२-२००२ सुमित्रो वाध्र्यश्वः । आप्रीसूक्तं= (क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । त्रिष्टुप् ।

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्व इळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।
वर्ष्मन् पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नाम् ऊर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या १९९२
आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् १९९३

शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वर्हिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेन आ देवान् वक्षि नि षदेह होता १९९४

वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेळता मनसा देव बर्हिर् इन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान् १९९५

दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भिर् देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् १९९६

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे १९९७

ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन् विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् १९९८

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम् ।
मनुष्वद् यज्ञं सुधिता हवींषि इळा देवी घृतपदी जुषन्त १९९९

देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड् यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वान् उशन् यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः २०००

वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींषि अवतां द्यावापृथिवी हवं मे २००१

आग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् २००२

॥ २२४ ॥ (ऋ० १० । ११० । १-११)

११ जमदग्निर्भार्गवः, रामो वा जामदग्न्यः। आप्रीसूक्तं=(क्रमेण-१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ५। १२। १-११ [अथर्ववेदे अंगिरा ऋषिः।] काठक सं० १६। २०; मैत्रायणी सं० ४।१३। ३; तै० ब्रा० ३।६।३)

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः २००३

तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन् त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः २००४

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च आ याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् २००५

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् २००६

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः २००७

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने २००८

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता २००९

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु २०१०

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् २०११

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन २०१२

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञम् अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः २०१३

॥ २२५ ॥ (वा० यजुर्वेद २०।३६-४६; तैत्ति० सं० २।६।८; काठकसं० ३८।६; मैत्रायणीसं० ३।११।१)

समिद्धे इन्द्र उपसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद् वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस् त्रिंशता वज्रबाहुर् जघान वृत्रं वि दुरो ववार २०१४

नराशंसः प्रति शूरो मिमानस् तनूनपात् प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन् हिरण्यैश् चन्द्री यजति प्रचेताः २०१५

मैत्रायणी-पाठभेदाः- २०१४ (१ समिद्धा) (२००४-५ मध्ये 'नराशंसस्य०' इति मन्त्रोऽस्ति वा० यजुर्वेदे ... २९-२५-३१ द्रष्टव्यः)

काठकपाठभेदाः- २०१५ (१ यक्षत्)

ईडितो देवैर्हरिवाँ २ अभिष्टिर् आजुह्वानो हविषा शर्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद् वज्रबाहुर् आ यातु यज्ञमुप नो जुषाणः २०१६

जुषाणो बर्हिर्हरिवान् न इन्द्रः प्राचीनꣳ सीदत् प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳ स्योनम् आदित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः २०१७

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ताꣳ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः २०१८

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे २०१९

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्धन् यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः २०२०

तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः ।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वती इडा देवी भारती विश्वतूर्तिः २०२१

त्वष्टा दधच् छुष्ममिन्द्राय वृष्णे ऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन् वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् २०२२

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस् त्मन्या समञ्जञ् छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन २०२३

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस् तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् २०२४

॥ २२६ ॥ (वा० यजुर्वेद २० । ५५-६६; मैत्रा० सं० ३।११।३; काठक सं० ३८।८; तैत्ति० ब्रा० २।६।१०)

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः ।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् २०२५

मैत्रा० पाठ०- २०१६ (१ गोत्रभृद्), २०१७ (१ ना, २ सीदात्) २०१८ (१ यन्ति); २०१९ (१ पेशस्वती तन्तुना), २०२० (१ मनसा ; २ होतारा इन्द्रं) २०२१ (१ वृषणं); २०२२ (१ दधदिन्द्राय शुष्ममपाको) २०२३ (१स्वदातु), २०२४ (१ हव्यमुन्द्र स्वाहाकृतं जुषतां हव्यमिन्द्रः)

काठ० पाठ०- २०१९ (१ पेशस्वती तन्तुना), २०२० (१ मनसा ; २ होतारा इन्द्रं) २०२१ (१ वृषणं), २०२२ (१ दधदिन्द्राय शुष्ममपाको) २०२४ (१ हव्यमुन्द्रमुपेन्द्रस्य जुषतां स्वाहा)

तनूपा भिषजा सुते ऽश्विनोभा सरस्वती ।
मध्वा रजांसीन्द्रियम् इन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ २०२६

इन्द्रायेन्दुं सरस्वती नराशंसेन नग्नहुम् ।
अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ २०२७

आजुह्वाना सरस्वती इन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।
इडाभिरश्विनाविषं समूर्जं सं रयिं दधुः ॥ २०२८

अश्विना नमुचेः सुतं सोमं शुक्रं परिस्रुता ।
सरस्वती तमा भरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ २०२९

कवष्यो न व्यचस्वतीर् अश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान् त्सरस्वती ॥ २०३०

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रं सायमिन्द्रियैः ।
सञ्जानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥ २०३१

पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तं सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रं सचा सुते ॥ २०३२

तिस्रस् त्रेधा सरस्वती अश्विना भारतीडा ।
तीव्रं परिस्रुता सोमम् इन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ २०३३

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती ।
इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियं रूपंरूपमधुः सुते ॥ २०३४

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।
कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥ २०३५

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता ।
समधातं सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥ २०३६

मैत्रा० पाठः- २०२६ (१ पथिभिर्वह), २०२८ (१ ०श्विना दध), २०३३ (१ ०न्द्रायासुषुवु०)
२०३६ (१ समधात)

काठ० पाठः- २०२८ (१ ०श्विना दधे); २०३० (१ दुघे); २०३३ (१ ०न्द्रायासुषुवु०)
२०३४ (१ त्रिविष्टपं, मधु वपोह २०२५ [illegible]); २०३६ (१ समधात्तां)

॥ २२७ ॥ (वा० यजुर्वेद २१ । १२-२२; मैत्रा० सं० ३।११।११; काठक सं० ३८।१०; तै० ब्रा० २।६।१८)

समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ।
गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥ २०३७

तनूनपाच् छुचिव्रतस् तनूपाश् च सरस्वती ।
उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ २०३८

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो अमर्त्यः ।
अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥ २०३९

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान् स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः ।
बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥ २०४०

दुरो देवीर्दिशो महीर् ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
पङ्क्तिश् छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ २०४१

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः ।
त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ॥ २०४२

दैव्या होतारा भिषजा इन्द्रेण सयुजा युजा ।
जगती छन्द इन्द्रियम् अनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥ २०४३

तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः ।
विराट् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥ २०४४

त्वष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।
द्विपदा छन्द इन्द्रियम् उक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ २०४५

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥ २०४६

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् ।
अतिच्छन्दा इन्द्रियं बृहद् ऋषभो गौर्वयो दधुः ॥ २०४७

मैत्रा० पाठ०— २०३७ (१ त्रिवि०); २०३८ (१ अयं प्रथमोऽर्धो न दृश्यते; २ दत्यिवाड्); २०४१ (१ इन्द्रियं); २०४४ (१ तिस्रो देवीरिडा मही; २ इन्द्रियं); २०४६ (१ ऋषभो गौर्वयो), २०४७ (१ बृहद्वा वेहद्वयो)

काठ० पाठ०— २०३७ (१ त्रिवि०); २०४१ (२ इहेन्द्रियं); २०४७ (१ अतिच्छन्दाः २ बृहदृषभो)

॥ २२८ ॥ (वा० यजुर्वेद २१ । २९—४०; मैत्रायणी सं० ३ । ११ । १; तै० ब्रा० २ । ६ । ११)

होता यक्षत् समिधाग्निमिडस्पदे॒ऽश्विनेन्द्रं॑ सरस्वती॒मजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलै॑र्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०४८

होता यक्षत् तनूनपात् सरस्वती॒मविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भर॒न्नश्विनेन्द्राय वीर्यं॒ बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०४९

होता यक्षन्नराशंसं न नग्नहुं पतिं सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग् रथो न चन्द्र्यश्विनो॒र्वपा इन्द्रस्य वीर्यं॒ बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५०

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वती॒मिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियम॒श्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभि॒र्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५१

होता यक्षद् बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग् धेनुः सरस्वती भिषग् दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५२

होता यक्षद् दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वती॒रश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्य॒श्विनेन्द्राय भेषजं शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५३

होता यक्षत् सुपेशसोषे नक्तं दिवा॒श्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजं श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५४

मैत्रा० पाठ० – २०४९ (१ मधुमदाभरन्न०; २ वेत्वाज्यस्य); २०५० (१ सुराया, २ वेत्वाज्यस्य), २०५२ (१ भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं); २०५३ (१ दिशा; २ 'अश्विनेन्द्राय भेषजं' इति न दृश्यते) २०५४ (१ मंजानाने सुपेशसा गमभाते, २ त्विषिमिन्द्रेण; ३ हृदा पयः; ४ वीतामाज्यस्य)

होता यक्षद् दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूषंꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५५

होता यक्षत् तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५६

होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५७

होता यक्षद् वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५८

होता यक्षदग्निꣳ स्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳ सरस्वत्यै स्वाह ऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहस इन्द्रियꣳ स्वाहाग्निं न भेषजꣳ स्वाहा सोममिन्द्रियं स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳ सवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳ स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजꣳ स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५९

॥ २२८ ॥ (वा० यजुर्वेद २७ । ११—२२; काठक सं० १८ । १७; मैत्रा० सं० २ । १२ । ६)

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति ऊर्ध्वा शुक्रा शोचीꣳष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः २०६०
तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन २०६१
मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः २०६२

मैत्रा० पाठ०— २०५५ (१ वीतामाज्यस्य); २०५६ (१ रूपमिन्द्रो, २ महा); २०५७ (१ यशस्वष्टारं-रूपकृतं सुपेशसं वृषभं; २ सुराया; ३ वेन्त्वाज्यस्य); २०५८ (१ वेन्त्वाज्यस्य); २०५९ (१ स्वाहा; २ भेषजैः; ३ ०मिन्द्रियैः) [पंक्तिच्छेदपद्धतिः क्वचिद्भिन्ना;] २०६० (१ देवेभ्यो देवयानान्) २०६२ (१ नक्षति; २ अग्निः;)

काठ० पाठ०— [पंक्तिच्छेदपद्धतिर्भिन्ना] २०६१ (१ घृतेन......प्रीणानः इत्येव एका पंक्तिः) २०६२ (१नक्षति)

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा ।
अग्निं स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु २०६३
स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रो सुप्रयसः ।
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च २०६४
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः ।
उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः २०६५
ते अस्य योषणे दिव्ये न योनौ उषासानक्ता ।
इमं यज्ञमवतामध्वरं नः २०६६
दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नो ऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ।
कृणुतं नः स्विष्टिम् २०६७
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु इडा सरस्वती भारती ।
मही गृणाना २०६८
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् ।
रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे २०६९
वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु ।
अग्निर्हव्यं शमिता सूदयाति २०७०
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् ।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् २०७१

॥ २३० ॥ (अथर्व० कां० ५।२७)

१—१२ ब्रह्मा । अग्निः। १ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; २ द्विपदा साम्नी भुरिगनुष्टुप्; ३ द्विपदार्ची बृहती; ४ द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती; ५ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्; ६ द्विपदा विराण्नाम गायत्री; ७ द्विपदा साम्नी बृहती; ८ संस्तारपङ्क्तिः; ९ षट्पदानुष्टुब्गर्भा पराति-जगती; १०—१२ पुरउष्णिक (२-७ एकावसाना)।

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति ऊर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस् तनूनपादसुरो भूरिपाणिः २०७२

मैत्रा० पाठ०- २०६४ (१ स ईं मन्द्रा सुप्रयसा स्तरीमन् । बर्हिषो मित्रमहाः) २०६५ (१ विश्वा); २०६७ (१ होतारा ऊर्ध्वमिमम्ध्वरं; २ स्विष्टम्); २०६८ (१ स्योनम्; २ मही शब्दः नास्ति) २०६९ (१ त्वष्टः) २०७० (१ विष्य; २ देवेभ्यः) २०७१ (१ जातवेदा; २ देवेभ्यः)

काठ० पाठ० – २०६३ (१ अच्छायं यन्ति; २ घृताचीः ईळाना बर्हिः; २०६४ (१ स्तनी मन्द्रस्सुप्रयक्षु); २०६६ (१ दिव्यो न योनिरुषासानक्तामेः); २०६७ (१ होतारोर्ध्वमिमम्ध्वरं; २ स्विष्टम्) २०६८ (१ महीर्गृणानाः); २०६९ (१ त्वष्टः पोषाय विष्य नाभिमस्मे) २०७० (१ सृज; २ हविः)

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन । २०७३
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः सविता विश्ववारः २०७४
अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा २०७५
अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः २०७६
तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च २०७७
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा २०७८
उरुव्यचसाऽग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः २०७९
दैव्या होतार ऊर्ध्वम् अध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वया अभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्त्विडा सरस्वती मही भारती गृणाना २०८०
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य २०८१
वनस्पतेऽव सृजा रराणः । त्मना देवेभ्यो अग्निर् हव्यं शमिता स्वदयतु २ ८२
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः । इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् २०८३

॥ २३१ ॥ (वा० यजुर्वेद २८ । १-११)

होता यक्षत् समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।
दिवो वर्ष्मन् त्समिध्यत ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०८४
होता यक्षत् तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम् ।
इन्द्रं देवꣳ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०८५
होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०८६
होता यक्षद् बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् ।
वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०८७
होता यक्षदोजो न वीर्यꣳ सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् ।
सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०८८
होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही ।
सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज २०८९

होता यक्षद् दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः ।
कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज २०९०

होता यक्षत् तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः ।
इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०९१

होता यक्षत् त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजंꣳ सुयजं घृतश्रियम् ।
पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९२

होता यक्षद् वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् ।
मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९३

होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा
स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् ।
स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज २०९४

॥ २३२ ॥ (वा० यजुर्वेद २८ । २४-३४)

होता यक्षत् समिधानं महद् यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् ।
गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९५

होता यक्षत् तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् ।
उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९६

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यꣳ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् ।
अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९७

होता यक्षत् सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् ।
बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९८

होता यक्षद् व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् ।
पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०९९

होता यक्षत् सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् ।
त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद् वीतामाज्यस्य होतर्यज २१००

होता यक्षत् प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् ।
जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद् वीतामाज्यस्य होतर्यज २१०१

होता यक्षत् पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम्।
विराजं छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१०२

होता यक्षत् सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्।
द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१०३

होता यक्षद् वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ
रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्।
ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१०४

होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग् वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्।
अतिच्छन्दसं छन्द इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१०५

२३३ ॥ (वा० यजुर्वेद २९ । १-११ काठक, सं० ५।६।२; मैत्रा० सं० ३ । १६ । २; तै० ब्रा० ५।१।११)

समिद्धो अञ्जन्कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः।
वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् २१०६

घृतेनाञ्जन् त्सं पथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान्।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताꣳ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि २१०७

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः २१०८

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम्।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु २१०९

एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु २११०

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने।
उषासा वाꣳ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि २१११

मैत्रा० पाठ० — २१०७ (१ तनूनपात्सं, २ स्वधां देवैर्); २१०८ (१ मेध्यवासि); २१०९ (१ देवेभिरयम०)
२११० (१ विश्ववारा); २१११ (४ योना इह)

काठ० पाठ०— २१०९ (१ देवेभिरक्त०); २११० (१ विश्ववारा; २ कवषा, ३ सुप्रयाणा) २१११ (१ योना इह)

प्र॒थ॒मा वां॑ स॒र॒थिना॑ सु॒वर्णा॑ दे॒वौ पश्य॑न्तौ॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
अपि॑प्रयं॒ चोद॑ना वां॒ मिमा॑ना॒ होता॑रा॒ ज्योति॑ः प्र॒दिशा॑ दि॒शन्ता॑ ॥ २११२

आ॒दि॒त्यैर्नो॒ भार॑ती वष्टु य॒ज्ञं सर॑स्वती स॒ह रु॒द्रैर्न॑ आवीत् ।
इ॒डोप॑हूता॒ वसु॑भिः स॒जोषा॑ य॒ज्ञं नो॑ देवीर॒मृते॑षु धत्त ॥ २११३

त्वष्टा॑ वी॒रं दे॒वका॑मं जजान॒ त्वष्टु॒रर्वा॑ जायत आ॒शुरश्वः॑ ।
त्वष्टे॒दं विश्वं॒ भुव॑नं जजान ब॒होः क॒र्तार॑मि॒ह य॑क्षि होतः ॥ २११४

अश्वो॑ घृ॒तेन॒ त्मन्या॒ सम॑क्त॒ उप॑ दे॒वाँ २ ऋ॑तु॒शः पाथ॑ एतु ।
व॒न॒स्पति॑र्देवलो॒कं प्र॑जा॒नन्न॒ग्निना॑ ह॒व्या स्व॑दि॒तानि॑ वक्षत् ॥ २११५

प्र॒जाप॑ते॒स्तप॑सा वावृधा॒नः स॒द्यो जा॒तो द॑धिषे य॒ज्ञम॑ग्ने ।
स्वाहा॑कृतेन ह॒विषा॑ पुरोगा या॒हि सा॒ध्या ह॒विर॑दन्तु दे॒वाः ॥ २११६

॥ २३४ ॥ (वा० यजुर्वेद २९।२५-३६; काठकसं० १६।२०, मैत्रा० सं० ४।१३।३; तैत्ति० ब्रा० ३।६।३)

समि॑द्धो अ॒द्य मनु॑षो दुरो॒णे दे॒वो दे॒वान् य॑जसि जातवेदः ।
आ च॒ वह॑ मित्रमहश्चिकि॒त्वान् त्वं दू॒तः क॒विर॑सि॒ प्रचे॑ताः ॥ २११७

तनू॑नपात् प॒थ ऋ॒तस्य॒ याना॒न् मध्वा॑ सम॒ञ्जन् त्स्व॑दया सुजिह्व ।
मन्मा॑नि धी॒भिरु॒त य॒ज्ञमृ॒न्धन् दे॑व॒त्रा च॑ कृणुह्यध्व॒रं नः॑ ॥ २११८

न॒रा॒शंस॑स्य महि॒मान॑मेषा॒मुप॑ स्तोषाम यज॒तस्य॑ य॒ज्ञैः ।
ये सु॒क्रत॑वः॒ शुच॑यो धिय॒न्धाः स्वद॑न्ति दे॒वा उ॒भया॑नि ह॒व्या ॥ २११९

आ॒जुह्वा॑न॒ ईड्यो॒ वन्द्य॒श्चा या॑ह्यग्ने॒ वसु॑भिः स॒जोषा॑ः ।
त्वं दे॒वाना॑मसि यह्व होता॒ स ए॑नान् यक्षीषि॒तो यजी॑यान् ॥ २१२०

प्रा॒चीनं॑ ब॒र्हिः प्र॒दिशा॑ पृथि॒व्या वस्तो॑र॒स्या वृ॑ज्यते॒ अग्रे॒ अह्ना॑म् ।
व्यु॑ प्रथते वित॒रं वरी॑यो दे॒वेभ्यो॒ अदि॑तये स्यो॒नम् ॥ २१२१

व्यच॑स्वतीरु॒र्वि॒या वि श्र॑यन्ता॒ं पति॑भ्यो॒ न जन॑यः॒ शुम्भ॑मानाः ।
देवी॑र्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा दे॒वेभ्यो॑ भवत सुप्राय॒णाः ॥ २१२२

मैत्रा० पाठ० – २११३ (१ रयीनं कृण्वाना सुविते दधातु) २११४ (१ त्वष्टेमा विश्वा भुवना) २११५ (१ समक्त, २ देवं); २११९ (१ स्वदन्तु); २१२० (१ आजुह्वाना)

काठ० पाठ०— २११६ (१ अमिमि, २ मध्या), २११९ अयं मन्त्रो नास्ति ।

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियंꣳ शुक्रपिशं दधाने २१२३

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता २१२४

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु २१२५

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् २१२६

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवीꣳषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन २१२७

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः २१२८

॥ २३५ ॥ (ऋग्वेदीय-परिशिष्ट-प्रैषाध्याये १-१३ । मैत्रा० सं० ४ । १३ । २; २०० । १; काठक सं० १५ । १३; तै० ब्रा० ३ । ६ । २ । १)

होता यक्षदग्निं समिधा सुषमिधा समिद्धं नाभा पृथिव्याः संगथे वामस्य ।
वर्ष्मन् दिव इळस्पदे वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१२९

होता यक्षत् तनूनपातमदितेर्गर्भे भुवनस्य गोपाम् ।
मध्वाद्य देवो देवेभ्यो देवयानान् पथो अनक्तु वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३०

होता यक्षन्नराशंसं नृशस्तं नॄः प्रणेत्रं ।
गोभिर्वपावान् त्स्याद् वीरैः शक्तीवान् रथैः प्रथमयावा हिरण्यैश्चन्द्री वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३१

होता यक्षदग्निमीळ ईळितो देवो देवाँ आवक्षद्दूतो हव्यवाळमूरः ।
उपेमं यज्ञमुपेमो देवो देवहूतिमवतु वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३२

मैत्रा० पाठ०- २१२८ मंत्रः नोपलभ्यते; २१३१ (१ नृशस्तं, नृप्रणेत्रं); २१३२ (१ इळितः, २ देवं आ च वक्षद्, ३ ०मूरा),

काठ० पाठ०- २१२९ (१ समिद्धं), २१३१ अयं मन्त्र नोपलभ्यते; २१३२ (१ देवहूतिं नो वा०),

होता यक्षद् बर्हिः सुष्टरीमोर्णम्रदा अस्मिन् यज्ञे वि च प्र च प्रथताँ स्वासस्थं देवेभ्यः ॥
एमेनदद्य वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु प्रियमिंद्रस्यास्तु वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३३

होता यक्षद् दुर ऋष्वाः कवष्यो कोषधावनीरुद्रातामिर्जिहतां विपक्षोभिः श्रयतां ।
सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१३४

होता यक्षदुषासानक्ता बृहती सुपेशसा नॄँःपतिभ्यो योनिं कृण्वाने ।
संस्मयमाने इन्द्रेण देवैरेदं बर्हिः सीदतां वीतामाज्यस्य होतर्यज २१३५

होता यक्षद् दैव्या होतारा मन्द्रा पोतारा कवी प्रचेतसा ।
स्विष्टमद्यान्यः करदिषा स्वभिगूर्तमन्य ऊर्जा सतवसेमं यज्ञं दिवि
देवेषु धत्तां वीतामाज्यस्य होतर्यज २१३६

होता यक्षत् तिस्रो देवीरपसामपस्तमा अच्छिद्रमद्येदमपस्तन्वतां ।
देवेभ्यो देवीर्देवमपो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१३७

होता यक्षत् त्वष्टारमचिष्टमपाकं रेतोधां विश्रवसं यशोधां ।
पुरुरूपमकामकर्शनं सुपोषः पोषैः स्यात् सुवीरो वीरैर्वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३८

होता यक्षद् वनस्पतिमुपावस्रक्षद्धियो जोष्टारं शशमं नरः ।
स्वदान् स्वधितिर्ऋतुथाद्य देवो देवेभ्यो हव्यंवाड् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३९

अग्नेदमिरसनद्वाजं नि देवो देवेभ्यो हव्यवाट् प्रांजोभिर्हिन्वानो धेनाभिः ।
कल्पमानो यज्ञस्यायुः प्रतिरन्नुपप्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्यः २१४०

होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानां स्वाहा
स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् ॥
स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज २१४१

मैत्रा० पाठ०- २१३३ (१ देवेभ्या, स्वदन्तु); २१३४ (१ श्रयंतां); २१३५ (नॄःस्पतिभ्यो);
२१३९ (१ स्वदात्, २ हव्यावाट्); २१४०–२१४२ मन्त्राः नोपलभ्यन्ते ।

काठ० पाठ०- २१३४ (१ श्रयंतां); २१३६ (१ करतस्वभि०, २ ०मन्यस्सवतसेमं); २११८ (१ ०मविष्टुमपाकं)
२१३९ (१ स्वदात्), २१४० अयं मंत्रो नोपलभ्यते ।

अथर्ववेदेऽग्निमन्त्राः ।

(अथर्ववेदे कां०१, सू० ९, मं० ३-४ अथर्वा । त्रिष्टुप् ।)

येनेन्द्राय समभरः पयां-स्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः,।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं　सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम्　२१४२

ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं　रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भव-न्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम्　२१४३

(अथर्व० २ । १९ । १-४ । विचृद्विषमा गायत्री, २१४८ भुरिग्विषमा ।)

अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप　योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः　२१४४
अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर　योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः　२१४५
अग्ने यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च　योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । २१४६
अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच　योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः　२१४७
अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु　योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः　२१४८

(अथर्व० २।२९।१—२। २१४९ अनुष्टुप्, २१५० त्रिष्टुप्।)

पार्थिवस्य रस देवा　भगस्य तन्वोऽ बले ।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो　वर्च आ धाद् बृहस्पतिः　२१४९

आयुरस्मै धेहि जातवेदः　प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै　शतं जीवाति शरदस्तवायम्　२१५०

(अथर्व० २ । ३४ । ३ । त्रिष्टुप्)

ये बध्यमानमनु दीध्याना　अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो　विश्वकर्मा प्रजया संरराणः　२१५१

(अथर्व० कां० ३ । १ । १-३, ५-६। २१५० त्रिष्टुप्, २१५३ विराड्गर्भा भुरिक्, २१५४ अनुष्टुप्, २१५६ विराट्पुर उष्णिक् ।)

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान्　प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स सेनां मोहयतु परेषां　निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः　२१५२

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्था—अभि प्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् २१५३

अमित्रसेनां मघवन् अस्मान् छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन् अग्निश्च दहतं प्रति २१५४

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता २१५५

(अथर्व० ३ । २ । १—३ । २१५६ त्रिष्टुप्, २१५७-५८ अनुष्टुप् ।)

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः २१५६

अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः २१५७

इन्द्र चित्तानि मोहय—अर्वाङाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय २१५८

(अथर्व० ३ । ३ । १ । त्रिष्टुप्)

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् २१५९

(अथर्व० ३।४।२)

अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चरातै ।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः २१६०

(अथर्व० ३ । २७ । १ । पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भाऽष्टिः ।)

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मः २१६१

(अथर्व० ४ । ४ । ६ । भुरिक् ।)

अद्याग्ने अद्य सवित—रद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः २१६२

(अथर्व० ५।८।१-३। अनुष्टुप्, २१६४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती।)

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह।
अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् २१६३

इन्द्रा याहि मे हवम् इदं करिष्यामि तच्छृणु।
इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे।
तेभिः शकेम वीर्यं१ जातवेदस्तनूवशिन् २१६४

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन २१६५

(अथर्व ५।२४।२। चतुष्पदातिशक्करी।)

अग्निर्वनस्पतीनाम् अधिपतिः स मावतु।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा २१६६

(अथर्व० ५।२८।१-१४। त्रिष्टुप्, २१७२ पञ्चपदातिशक्करी २१७३, ७५, ७६, ७८ ककुम्मत्यनुष्टुप् २१७९ पुरउष्णिक्।)

नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
हरिते त्रीणि रजते त्रीणि अयसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि २१६७

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु २१६८

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्ताम् अनक्तु पूषा पयसा घृतेन।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् २१६९

इममादित्या वसुना समुक्षते--ममग्ने वर्धय वावृधानः।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणा--स्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु २१७०

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृ--दग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् २१७१

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्य--मग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत्।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस् तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे २१७२

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् २१७३

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्न् एकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकम् अन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा २१७४

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् २१७५

इमास्तिस्रो देवपुरा–स्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद्वर्च–स्व्युत्तरो द्विषतां भव २१७६

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणो–म्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे २१७७

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि २१७८

ऋतुभिष्ट्वार्तवै–रायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि २१७९

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय २१८०

(अथर्व० ६ । ३६ । १-३ । गायत्री ।)

ऋतावानं वैश्वानरम् ऋतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे २१८१
स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत्सृजते वशी । यज्ञस्य वय उत्तिरन् २१८२
अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको वि राजति २१८३

(अथर्व०६ । ११० । २-३ । त्रिष्टुप् ।)

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय २१८४

व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् २१८५

(अथर्व० ६ । १११ । १-४ । अनुष्टुप्, २१८६ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।)

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्य—यं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं　यदानुन्मदितोऽसति　　२१८६
मेष्टे नि शमयतु　यदि ते मन उद्युतम् । कृणोमि विद्वान् भेषजं　यथानुन्मदितोऽससि २१८७
नुसादुन्मदितम्　उन्मत्तं रक्षसस्परि । कृणोमि विद्वान् भेषजं　यदानुन्मदितोऽसति　२१८८
स्त्वा दुरप्सरसः　पुनरिन्द्रः पुनर्भगः । पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा　यथानुन्मदितोऽससि २१८९

(अथर्व० ६ । ११२ । १-३ । त्रिष्टुप् ।)

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां　मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन्　तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे　　२१९०
उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां　त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन्　पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान्　　२१९१
येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धो　ऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति　भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व　　२१९२

(अथर्व० ७ । ३४ (३५) । १ ॥ जगती ।)

अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान्　प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवो　ऽनागसस्ते वयमदितये स्याम　　२१९३

(अथर्व० ७ । ३५ [३६] १-३ ॥ त्रिष्टुप्, २१९४ अनुष्टुप् ।)

प्रान्यान् त्सपत्नान् त्सहसा सहस्व　प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय　विश्व एनमनु मदन्तु देवाः　　२१९४
इमा यास्ते शतं हिराः　सहस्रं धमनीरुत ।
तासां ते सर्वासामहं—मश्मना बिलमप्यधाम्　　२१९५
परं योनेरवरं ते कृणोमि　मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः ।
अस्वं१ त्वाप्रजसं कृणोम्य—श्मानं ते अपिधानं कृणोमि　　२१९६

(अथर्व० ७ । ७४ [७८] । ४ ॥ अनुष्टुप् ।)

व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो　विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं　प्रजावन्त उप सदेम सर्वे　　२१९७

(अथर्व० ७।७८ (८३) १-२॥ २१९८ परोष्णिक्, २१९९ त्रिष्टुप्।)

वि तें मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम्। इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने २१९८
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन।
दीदिह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु २१९९

(अथर्व० ७।१०६ [१११]।१। बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्।)

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः २२००

(अथर्व० ७।११५ [१२०] १-४॥ अनुष्टुप्, २२०२-३ त्रिष्टुप्।)

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत। अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि २२०१

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टा अभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः २२०२

एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ २२०३

एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् २२०४

(अथर्व० १९।३।१-४॥ त्रिष्टुप्, २२०६ भुरिक्।)

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि २२०५

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः २२०६

यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथे ऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि २२०७

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम्।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्व् अव देवानां यज हेडो अग्ने २२०८

अथर्व० १९।४।१-२॥ त्रिष्टुप्, २२०९ पञ्चपदा विराडतिजगती, २२१० जगती।

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा २२०९

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् २२१०

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेहि अथो नः सुहवो भव २२११

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् २२१२

(अथर्व० १९ । ३७ । १-४॥ २२१३ त्रिष्टुप्; २२१४ आस्तारपंक्तिः; २२१५ त्रिपदा महाबृहती; २२१६ पुरोष्णिक् ।)

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे २२१३

वर्च आ धेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय २२१४

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय २२१५

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे २२१६

(अथर्व० ४ । १४ । १-९ । भृगुः । त्रिष्टुप्; २२१८, २२२० अनुष्टुप्; २२१९ प्रस्तारपङ्क्तिः; २२२३, २२२५ जगती; २२२४ पञ्चपदातिशक्वरी ।)

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः २२१७

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् २२१८

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षम् आरुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्व१र्ज्योतिरगामहम् २२१९

स्व१र्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे २२२०

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति २२२१

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् २२२२

पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभि-र्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् ।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् २२२३

प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेहि उत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।
ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यं अन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य २२२४

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् ।
स उत्तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु २२२५

(अथर्व० ७ । ८४ । १ । जगती ।)

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह ।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् २२२६

(अथर्व० ७ । १०८ [११३] । १-२॥ २२२७ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २२२८ त्रिष्टुप् ।)

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने ।
प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् २२२७

यो नः सुप्ताञ्जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास् तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः २२२८

(अथर्व० १२ । २ । १-१३, ३३-५५॥ त्रिष्टुप्, २२३०, २२३३, २२३८-४५, २२४७-४९, २२५१-५४, २२५६, २२५८, २२६७ अनुष्टुप् (२२४२ ककुम्मती पराबृहती, २२४४ निचृत्, २२५३ पुरस्तात्ककुम्मती), २२३१ आस्तारपङ्क्तिः, २२३४ भुरिगार्षी पङ्क्तिः २२५८ जगती; २२६१-६२ भुरिग्, २२३५ अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः, २२५० पुरस्ताद्बृहती; २२५५ त्रिप० एकाव० भुरिगार्ची गायत्री, २२५७ एकाव० द्विप० आर्ची बृहती, २२५९ एकाव० द्विप० साम्नी त्रिष्टुप्, २२६० पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती; २२६३ उपरिष्टाद्विराड् बृहती, २२६५ पुरस्ताद्विराड् बृहती, २२६८ बृहतीगर्भा ।)

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्म-स्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि २२२९

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च । यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि २२३०

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निरर्रातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमंद्ध्यग्ने अक्रव्याद्यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि २२३१
यद्यग्निः क्रव्याद्यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिंणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् २२३२
यत्त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते । सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि २२३३
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय २२३४
यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश० (ऋ० १० । १६ । १०) (१५६६)
क्रव्यादमग्निं प्र हिंणोमि दूरं० (१० । १६ । ९) (१५६६)
क्रव्यादमग्निमितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितृणां लोकेऽपि भागो अस्तु २२३५
क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिंणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् २२३६
समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति २२३७
देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् ।
मुच्यमानो निरेणसो ऽमोगस्माँ अशस्त्याः २२३८
अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् २२३९
संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः । ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् २२४०
यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु । क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः २२४१
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः २२४२
यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत । तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह २२४३
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः । अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे २२४४
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वम् अग्नौ संकसुके च यत् । अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे २२४५

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तरा विवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् २२४६

अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा। प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् २२४७

द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या। अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः २२४८

यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते। सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याचेदनिराहितः २२४९

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे । छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते २२५०

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य । क्रव्याद्यानग्निरन्तिका दनुविद्वान्वितावति २२५१

ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो३ यः क्रव्यादं निरादधत् २२५२

यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् । आपो मा तस्माच्छुम्भ न्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् २२५३

ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः २२५४

अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह २२५५

इमं क्रव्यादा विवेशा यं क्रव्यादमन्वगात्। व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् २२५६

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणाम् अग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः २२५७

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिम् उषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै २२५८

सर्वानग्ने सहमानः सपत्ना नैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि २२५९

इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् २२६०

अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम २२६१

अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान् त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज् ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि २२६२

ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा। क्रव्याद्यानग्निरन्तिकाद श्व इवानुवपते नडम् २२६३

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते । ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा २२६४

ये पिपतिपति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः । क्रव्यायानग्निरन्तिका दनुविद्वान्वितावति २२६५

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्य मरण्यान्या गह्वरं सचस्व २२६६

इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ २२६७

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।
परामीषामसून्दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान् त्सृजामि २२६८

(अथर्व० १९ । ५५ । १-६ ॥ त्रिष्टुप्; २२७० आस्तारपंक्तिः;२२७३ त्र्यवसाना पंचपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती।)

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तो ऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम २२६९

या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम २२७०

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम २२७१

प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधी न्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम २२७२

अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः २२७३

त्वामिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत् ।
अहरहर्बलिमित् ते हरन्तो ऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने २२७४

(अथर्व० कां०१, सू० २५, मं० १-४। भृग्वङ्गिराः। २२७१ त्रिष्टुप् २२७२-७३ विराड्गर्भा, २२७४ पुरोऽनुष्टुप्।)

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि ।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् २२७५

यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् ।
हूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् २२७६

यदि॑ शो॒को यदि॑ वाभिशो॒को यदि॑ वा॒ राज्ञो॒ वरु॑ण॒स्यासि॑ पु॒त्रः ।
हू॒डुर्नामा॑सि हरितस्य देव॒ स नः॑ सं॒विद्वान् परि॑ वृङ्ग्धि तक्मन् २२७७

नमः॑ शी॒ताय॑ त॒क्मने॒ नमो॑ रू॒राय॑ शो॒चिषे॑ कृणोमि ।
यो अ॑न्येद्यु॒रुभयद्यु॒र॒भ्येति॒ तृतीयकाय॒ नमो॑ अस्तु त॒क्मने॑ २२७८

(अथर्व० २ । ३१ । १ ॥ अङ्गिराः । त्रिष्टुप् ।)

ये भ॒क्षय॑न्तो न वसू॑न्यानृ॒धु॒र्यान॒ग्नयो॑ अ॒न्वत॑प्यन्त॒ धिष्ण्याः॑ ।
या तेषा॑मव॒या दुरि॑ष्टिः॒ स्वि॑ष्टिं न॒स्तां कृ॑णवद् वि॒श्वक॑र्मा २२७९

(अथर्व० ४ । ३९ । १, २, ९, १० ॥ अङ्गिराः । २२८० त्रिपदा महाबृहती, २२८१ संस्तारपङ्क्तिः । २२८२-८३ त्रिष्टुप् ।)

पृ॒थि॒व्याम॒ग्नये॒ सम॑नम॒न्त्स आ॑र्ध्नोत् ।
यथा॑ पृथि॒व्याम॒ग्नये॑ स॒मन॑म॒न्नेवा मह्यं॑ सं॒नमः॒ सं न॑मन्तु २२८०

पृ॒थि॒वी धे॒नुस्तस्या॑ अ॒ग्निर्व॒त्सः । सा मे॒ऽग्निना॑ व॒त्सेने॒षमू॒र्जं कामं॑ दुहाम् ।
आयुः॑ प्रथ॒मं प्र॒जां पोषं॑ र॒यिं स्वाहा॑ २२८१

अ॒ग्नाव॒ग्निश्च॑रति॒ प्रवि॑ष्ट॒ ऋषी॑णां पु॒त्रो अ॑भिशस्ति॒पा उं॑ ।
न॒म॒स्का॒रेण॒ नम॑सा ते जुहोमि॒ मा दे॒वानां॑ मिथु॒या क॑र्म भा॒गम् २२८२

हृ॒दा पू॒तं मन॑सा जातवेदो॒ विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान् ।
स॒प्तास्या॑नि॒ तव॑ जातवेद॒स्तेभ्यो॑ जुहोमि॒ स जु॑षस्व ह॒व्यम् २२८३

(अथर्व० १ । ७ । १-७ ॥ चातनः । अनुष्टुप्, २२८८ त्रिष्टुप् ।)

स्तु॒वा॒नम॑ग्न॒ आ व॑ह यातु॒धानं॑ किमी॒दिन॑म् । त्वं हि दे॑व वन्दि॒तो ह॒न्ता दस्यो॑र्ब॒भूवि॑थ २२८४
आज्य॑स्य परमेष्ठि॒न् जात॑वेद॒स्तनू॑वशिन् । अग्ने॑ तौ॒लस्य॒ प्राशा॑न यातु॒धाना॒न् वि ला॑पय २२८५
वि ल॑पन्तु यातु॒धाना॑ अ॒त्त्रिणो॒ ये कि॑मी॒दिनः॑ । अथे॒दम॑ग्ने नो ह॒वि॒रिन्द्र॑श्च॒ प्रति॑ हर्यतम् २२८६
अ॒ग्निः पूर्व॒ आ र॑भतां॒ प्रेन्द्रो॑ नुदतु बाहु॒मान् । ब्रवी॑तु॒ सर्वो॑ यातु॒मान॒यम॒स्मीत्येत्य॑ २२८७

पश्या॑म ते वी॒र्यं॑ जातवेदः॒ प्र णो॑ ब्रूहि यातु॒धाना॑न्नृचक्षः ।
त्वया॒ सर्वे॒ परि॑तप्ताः पु॒रस्ता॒त् त आ य॑न्तु प्रब्रु॒वा॒णा उपे॒दम् २२८८

आ र॑भस्व जातवेदो॒ऽस्माका॒र्थाय॑ जज्ञिषे । दू॒तो नो॑ अग्ने भू॒त्वा यातु॒धाना॒न् वि ला॑पय २२८९
त्वम॑ग्ने यातु॒धाना॒नुप॑बद्धाँ इ॒हा व॑ह । अथै॑षा॒मिन्द्रो॒ वज्रे॒णापि॑ शी॒र्षाणि॑ वृश्चतु २२९०

(अथर्व० १ । ८ । ३-४ ॥ २२९१ अनुष्टुप्, २२९२ बार्हतगर्भा त्रिष्टुप् ।

यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च । नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् २२९१

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने २२९२

(अथर्व० १ । २८ । १-२ । अनुष्टुप् ।)

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः । दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः २२९३
प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः । प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः २२९४

(अथर्व० ४ । ३६ । १-१० ॥ अनुष्टुप्, २३०३ भुरिक् ।)

तान् त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा । यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् २२९५
यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति । वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् २२९६
य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये । क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान् त्सहसा सहे २२९७
सहे पिशाचान् त्सहसैषां द्रविणं ददे । सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् २२९८
ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् । नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे २२९९

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् २३००

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे २३०१
यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते २३०२
ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव । तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव २३०३
अभि तं निर्ऋतिर्धत्ताम् अश्वमिवाश्वाभिधान्या । मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते २३०४

(अथर्व० ५ । २९ । १-१५ । त्रिष्टुप्, २३०७ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री; २३०९ पुरोऽतिजगती विराड्जगती
२३१५-१८ अनुष्टुप् (२३१५ भुरिक्; २३१७ चतुष्पदा पराबृहती ककुम्मती ।)

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम २३०५

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति २३०६

यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः २३०७

अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दुतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघास अग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि २३०८

यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतम् आत्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः २३०९

आमे सुपक्के शबले विपक्के यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु २३१०

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भा कृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु २३११

अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु २३१२

दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु २३१३

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः २३१४

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्० (ऋ० १०।८७।१९) (१८४६)

समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् । गात्राण्यस्य वर्धन्ताम् अंशुरिवा प्यायतामयम् २३१५

सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् । अग्ने विरप्शिनं मेध्यम् अयक्ष्मं कृणु जीवतु २३१६

एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः । तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः २३१७

तार्ष्टाघीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा । जहातु क्रव्याद् रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति २३१८

(अथर्व० ५।२९।१-५ ॥ चातनः। त्रिष्टुप्, २३११ चतुष्पदार्षी पङ्क्तिः, २३१३ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः।)

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः २३१९

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेमम् उच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये २३२०

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् २३२१

क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञाम् अग्ने विहव्यो दीदिहीह		२३२२

अति निहो अति स्रिधो ऽत्यचित्तीरति द्विषः।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः		२३२३

(अथर्व० ६।१०८।४। अनुष्टुप्।)

याम्रृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः। तया मामद्य मेधया ऽग्ने मेधाविनं कृणु २३२४

(अथर्व० ७।८२ (८७)।१–६॥ त्रिष्टुप्, २३२५ ककुम्मती बृहती, २३२६ जगती।)

मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।
मयि प्रजां मय्यायु–र्दधामि स्वाहा मय्यग्निम्		२३२५

इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यम् उपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः		२३२६

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन् अहानि प्रथमो जातवेदाः।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीन् अनु द्यावापृथिवी आ विवेश		२३२७

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान		२३२८

घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे।
घृतं ते देवीर्नप्त्य१ आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने		२३२९

(अथर्व० ४।२३।१–७। मृगारः। त्रिष्टुप्, २३३० पुरस्ताज्ज्योतिष्मती, २३३२ अनुष्टुप्, २३३५ प्रस्तारपङ्क्तिः।)

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः		२३३०

यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन्।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः		२३३१

यामन् यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन् कर्मन्नाभगम्।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः		२३३२

सुजातं जातवेदसम् अग्निं वैश्वानरं विभुम्।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः		२३३३

येन॒ ऋष॑यो॒ बल॒मद्यो॑तयन् यु॒जा येना॒सु॑राणा॒मयु॑वन्त मा॒याः ।
येना॒ग्निना॑ प॒णीनिन्द्रो॑ जि॒गाय॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः २३३४

येन॑ दे॒वा अ॒मृत॑म॒न्ववि॑न्द॒न् येनौष॑धी॒र्मधु॑मती॒रकृ॑ण्वन् ।
येन॑ दे॒वाः स्व१॒राभ॑र॒न् त्स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः २३३५

यस्ये॒दं प्र॒दिशि॒ यद् वि॒रोच॑ते॒ यज्जा॒तं ज॑नित॒व्यं॑ च॒ केव॑लम् ।
स्तौम्य॒ग्निं ना॑थि॒तो जो॑हवीमि॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः २३३६

(अथर्व० ६ । ४९ १-२ ॥ गार्ग्यः । २३३७ अनुष्टुप्, २३३८ जगती ।)

न॒हि ते॑ अग्ने त॒न्वः॑ क्रू॒रमा॒नंश॒ मर्त्यः॑ ।
क॒पिर्ब॑भस्ति॒ तेज॑नं॒ स्वं ज॒रायु॒ गौरि॑व २३३७

मे॒ष इ॑व॒ वै सं च॒ वि चो॒र्व॑च्यसे॒ यदु॑त्तर॒द्रावुप॑रश्च॒ खाद॑तः ।
शी॒र्ष्णा शिरो॑ऽप्स॒साप्सो॑ अ॒र्दय॑न्न॒ अं॒शून् ब॑भस्ति॒ हरि॑तेभिरा॒सभिः॑ २३३८

(अथर्व० २ । ३६ । १, ३ । पतिवेदनः । २३३९ त्रिष्टुप्, २३४० भुरिक् ।)

आ नो॑ अग्ने सुम॒तिं सं॑भ॒लो ग॑मे॒—दि॒मां कु॑मा॒रीं स॒ह नो॒ भगे॑न ।
जु॒ष्टा व॒रेषु॒ सम॑नेषु व॒ल्गु—रो॒षं पत्या॒ सौभ॑गमस्त्व॒स्यै २३३९

इ॒यम॑ग्ने॒ नारी॒ पतिं॑ विदेष्ट॒ सोमो॒ हि राजा॑ सु॒भगां॑ कृ॒णोति॑ ।
सुवा॑ना पु॒त्रान् महि॑षी भवाति॒ ग॒त्वा पतिं॑ सु॒भगा॒ वि रा॑जतु २३४०

(अथर्व० २० । २ । २। गृत्समदो मेधातिथिर्वा । विराड् गायत्री ।)

अ॒ग्निरा॒ग्नीध्रा॑त् सु॒ष्टुभः॑ स्व॒र्का॑दृ॒तुना॒ सोमं॑ पिबतु २३४१

(अथर्व० ४ । ४० । १ । शुक्रः । त्रिष्टुप् ।)

ये पु॒रस्ता॒ज्जुह्व॑ति जातवेदः॒ प्राच्या॑ दि॒शो॒ऽभि॒दास॑न्त्य॒स्मान् ।
अ॒ग्निमृ॒त्वा ते परा॑ञ्चो व्यथन्तां॒ प्र॒त्यगे॑नान् प्रतिस॒रेण॑ हन्मि २३४२

(अथर्व० ३ । ३१ । १, ६ । ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।)

वि दे॒वा ज॒रसा॑वृत॒न् वि त्वम॑ग्ने॒ अरा॑त्या । व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा २३४३

अ॒ग्निः प्रा॒णान् त्सं द॑धाति॒ च॒न्द्रः प्रा॒णेन॒ संहि॑तः ।
व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा २३४४

(अथर्व० ५ । २६ । १ । द्विपदार्ची उष्णिक् ।)

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहा ऽग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥ २३४५

(अथर्व० ६ । ७१ । १-३ । जगती, २३४८ त्रिष्टुप् ।)

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहम् अग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २३४६

यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्य ग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २३४७

यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥ २३४८

(अथर्व० १९ । ६५ । १ । जगती ।)

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदो ऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥ २३४९

(अथर्व० १९ । ६६ । १ । अति जगती ।)

अयोजाला असुरा मायिनो ऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ २३५०

(अथर्व० १९ । ६४ । १-४ । अनुष्टुप् ।)

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ २३५१
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि । तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २३५२
यदग्ने यानि कानि चि दा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २३५३
एतास्ते अग्ने समिध स्त्वमिद्धः समिद्भव । आयुरस्मासु धेह्य मृतत्वमाचार्याय ॥ २३५४

(अथर्व० ३ । २१ । १—१० । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्, २३५५ पुरोनुष्टुप्, २३५६-५७, २३६० भुरिक्; २३५९ जगती; २३६० उपरिष्टाद्विराड्बृहती; २३६१ विराड्गर्भा, २३६३ निचृदनुष्टुप्; २३६४ अनुष्टुप् ।)

ये अग्नयो अप्स्व१न्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।
य आविवेशोषधीर्यो वनस्पतीं स्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ २३५५

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पद स्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ २३५६

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५७

यो देवो विश्वाधमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस् तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५८

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस् त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५९

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३६०

दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस् तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३६१

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् २३६२

शान्तो अग्निः क्रव्याच् छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्यस् तं क्रव्यादमशीशमम् २३६३

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस् ते क्रव्यादमशीशमन् २३६४

(अथर्व० ७ । १०९ (११४) । १-७ । बादरायणिः । अनुष्टुप् २३६५ विराट् पुरस्ताद्बृहती, २३६६-६७, २३६९-७० त्रिष्टुप्)

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी ।
घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे २३६५

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च ।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या २३६६

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु २३६७

आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।
वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति २३६८

यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।
स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम २३६९
संवसव इति वो नामधेयम् उग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः ।
तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् २३७०
देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम । अक्षान् यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे २३७१

(अथर्व० ६ । ४७ । १ । अङ्गिराः प्रचेताः । त्रिष्टुप् ।)

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधातु आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम २३७२

(अथर्व० ७ । ६२ (६४) । १ । मरीचिः काश्यपः । जगती ।)

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतद् अधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः २३७३

(अथर्व० ७ । ६३ (६५) । १ । जातवेदाः । जगती ।)

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर् हवामहे परमात् सधस्थात् ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितान्यग्निः । २३७४

(अथर्व० ६ । ३५ । १-३ । कौशिकः । गायत्री ।)

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप २३७५
वैश्वानरो न आगमद् इमं यज्ञं सजूरुप । अग्निरुक्थेष्वंहसु २३७६
वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत् । ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत् २३७७

(अथर्व० ६ । ११७ । १-३ । त्रिष्टुप् ।)

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् २३७८
इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज् जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्य धान्यं१ यज्जघसाहम् इदं तदग्ने अनृणो भवामि २३७९
अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम २३८०

(अथर्व० ६ । ११८ । १-३ । त्रिष्टुप्)

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः ।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः ॥ २३८१

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥ २३८२

यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः ।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥ २३८३

(अथर्व० ६ । ११९ । १-३ । त्रिष्टुप् ।)

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि ।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ २३८४

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु ।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ २३८५

वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम् ।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ॥ २३८६

(अथर्व० ६ । १२१ । १, २, ४ । २३८७, २३८८, त्रिष्टुप्, २३८९, २३९० अनुष्टुप् ।)

विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ २३८७

यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ २३८८

वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम् ।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वाँ अनु क्षिय ॥ २३८९

(अथर्व० ६ । ७६ । १-४ कबन्धः । अनुष्टुप्, २३९२ ककुम्मती ।)

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे । संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ॥ २३९०

अग्नेः सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे । अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ॥ २३९१

यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् । नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥ २३९२

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति। अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्यायुषे २३९३

(अथर्व० ६।७७।१-३। अनुष्टुप्।)

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिवि अस्थाद् विश्वमिदं जगत्।
आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् २३९४

य उदानट् परायणं य उदानण्न्यायनम्। आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे २३९५

जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः। सहस्रं त उपावृतस् ताभिर्नः पुनरा कृधि २३९६

अग्निसदृशाः देवगणः

१२ वैश्वानरोऽग्निः सूर्यश्च।

(ऋ० १०।८८।१-१९) मूर्धन्वानाङ्गिरसो, वामदेव्यो वा। सौर्य-वैश्वानरोऽग्निः। त्रिष्टुप्।)

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त २३९७

गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हम् आविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापो ऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य २३९८

देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिर् अग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम्।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमाम् आततान रोदसी अन्तरिक्षम् २३९९

यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद् यच् छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः २४००

यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्न् अतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः २४०१

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस् ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्।
मायामू तु यज्ञियानामेताम् अपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन् २४०२

दृशेन्यो यो महिना समिद्धो ऽरोचत दिवियोनिर्विभावा।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः २४०३

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निम् आदिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत् तनूपास् तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः २४०४

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमाम् ऋजूयमानो अतपन्महित्वा २४०५

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निम् अजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः २४०६

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूताम् आदित् प्रापश्यन् भुवनानि विश्वा २४०७

विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीर् अपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् २४०८

वैश्वानरं कवयो यज्ञियासो ऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् २४०९

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् २४१०

द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणाम् अहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च २४११

द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ् विश्वा भुवनानि तस्थाव् अप्रयुच्छन् तरणिर्भ्राजमानः २४१२

यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित् सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् २४१३

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् २४१४

यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः ।
तावद् दधात्युप यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् २४१५

१३ रक्षोहाऽग्निः ।

(ऋ० १० । १६२ । १-६ । रक्षोहा= (गर्भस्य दोषनिवारकः) (अत्रानुसंधेया मन्त्राः १८१३-१८६१) रक्षोहा ब्राह्मः । अनुष्टुप् ।)

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये २४१६

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् २४१७

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि २४१८

यस्त ऊरू विहरति अन्तरा दंपती शये ।
योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि २४१९

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि २४२०

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि २४२१

१४ अपां-न-पादग्निः ।

(ऋ० २ । ३५ । १-१५ । गृत्समदः शौनकः । त्रिष्टुप् ।)

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि २४२२

इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान २४२३

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसम् अपां नपातं परि तस्थुरापः २४२४

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु २४२५

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर् देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् २४२६

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर् द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि २४२७

स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर् वसुदेयाय विधते वि भाति २४२८

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः २४२९

अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर् हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः २४३०

हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृग् अपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात् परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै २४३१

तदस्यानीकमुत चारु नाम अपीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य २४३२

अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर् दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः २४३३

स ईं वृषाजनयत् तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णो ऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष २४३४

अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांसम् अध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः २४३५

अयांसमग्ने सुक्षितिं जनाय अयांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः २४३६

१५ अग्नीन्द्रादयः ।

(ऋ० ७ । ४१ । १ । वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः । जगती ।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम २४३७

१६ अग्निर्मरुतश्च।

(ऋ० १। १९। १-९। मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।)

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि २४३८
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि २४३९
ये महो रजसो विदुर् विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि २४४०
ये उग्रा अर्कमानृचुर् अनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि २४४१
ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि २४४२
ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि २४४३
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्न आ गहि २४४४
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस् तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि २४४५
अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि २४४६

(ऋ० ८। १०३। १४। सोभरिः काण्वः। अनुष्टुप्।)

अग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।
सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे २४४७

१७ अग्निमित्रावरुणादयः।

(ऋ० १। ३५। १। हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। अग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता च। जगती।)

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये २४४८

१८ अग्निर्वरुणश्च।

(ऋ० ४। १। २-३। वामदेवो गौतमः। त्रिष्टुप्, २४४९ अति जगती, २४५० धृतिः।)

स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् २४४९

सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि २४५०

त्वं नो॑ अग्ने॒ वरु॑णस्य वि॒द्वान् दे॒वस्य॒ हेळोऽव॑ यासिसीष्ठाः ।
यजि॑ष्ठो॒ वह्नि॑तमः॒ शोशु॑चानो॒ विश्वा॒ द्वेषां॑सि॒ प्र मु॑मुग्ध्य॒स्मत् २४५१

स त्वं नो॑ अग्नेऽव॒मो भ॑वो॒ती नेदि॑ष्ठो अ॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ ।
अव॑ यक्ष्व नो॒ वरु॑णं॒ ररा॑णो वी॒हि मृ॑ळी॒कं सु॒हवो॑ न एधि २४५२

१९ अग्नाविष्णू ।

(अथर्व कां० ७ । २९ (३०) । १-२ । मेधातिथिः । त्रिष्टुप् ।)

अग्ना॑विष्णू॒ महि॒ तद्वां॑ महि॒त्वं पा॒थो घृ॒तस्य॒ गुह्य॑स्य॒ नाम॑ ।
दमे॑दमे स॒प्त रत्ना॒ दधा॑नौ॒ प्रति॑ वां जि॒ह्वा घृ॒तमा च॑रण्यात् २४५३

अग्ना॑विष्णू॒ महि॒ धाम॑ प्रि॒यं वां॑ वी॒थो घृ॒तस्य॒ गुह्या॑ जुषा॒णौ ।
दमे॑दमे सुष्टु॒त्या वा॑वृधा॒नौ प्रति॑ वां जि॒ह्वा घृ॒तमुच्च॑रण्यात् २४५४

२० अग्निसूर्यौ ।

(ऋ० ८ । ५६ । (८) ५ । वालखिल्यसूक्तम् । पृषध्रः काण्वः । पंक्तिः ।)

अचे॑त्य॒ग्निश्चि॑कि॒तुर् ह॑व्य॒वाड् स सु॒मद्र॑थः ।
अ॒ग्निः शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ बृ॒हत्सूरो॑ अरोचत दि॒वि सूर्यो॑ अरोचत २४५५

२१ (केशिनः)–अग्निः सूर्यो वायुश्च ।

(ऋ० १ । १६४ । ४४ दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।)

त्रयः॑ के॒शिन॑ ऋतु॒था वि च॑क्षते संवत्स॒रे व॑पत॒ एक॑ एषाम् ।
विश्व॒मेको॑ अ॒भि च॑ष्टे॒ शची॑भि॒र् ध्राजि॒रेक॑स्य ददृशे॒ न रू॒पम् २४५६

२२ अग्निसूर्यानिलाः ।

(ऋ० ८ । १८ । ९ इरिम्बिठिः काण्वः । उष्णिक् ।)

शम॒ग्निर॒ग्निभिः॑ कर॒च् छं न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑ । शं वातो॑ वात्व॒रपा॒ अप॒ स्रिधः॑ २४५७

अग्निसूर्यवायवः ।

(ऋ० १० । १३६ । १-७ ॥ २४५८ जूतिः, २४५९ वातजूतिः २४६० विप्रजूतिः, २४६१ वृषाणकः, २४६२ करिक्रतः २४६३ एतशः, २४६४ ऋष्यशृङ्गः (एते वातरशना मुनयः)। (केशिनः=) अग्नि-सूर्य-वायवः । अनुष्टुप् ।)

केश्य१ग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते २४५८

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद् देवासो अविक्षत २४५९

उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम् ।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ २४६०

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः २४६१

वातस्याश्वो वायोः सखा अथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः २४६२

अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।
केशी केतस्य विद्वान् त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः २४६३

वायुरस्मा उपामन्थत् पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।
केशी विषस्य पात्रेण यद् रुद्रेणापिबत् सह २४६४

अग्नीषोमौ ।

(ऋ० १ । ९३ । १-१२ । गोतमो राहूगणः । २४६५-२४६७ अनुष्टुप्; २४६८-२४७१, २४७६ त्रिष्टुप्; २४७२ जगती त्रिष्टुब्वा; २४७३-२४७५ गायत्री ।

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् । प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः २४६५
अग्नीषोमा यो अद्य वाम् इदं वचः सपर्यति । तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् २४६६
अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् । स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् २४६७

अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषो ऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः २४६८

युवमेतानि दिवि रोचनानि अग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्याद् अग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् २४६९
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभार अमथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधाना उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् २४७०
अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतम् अथा धत्तं यजमानाय शं योः २४७१
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् २४७२
अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः २४७३
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् २४७४
अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् । आ यातमुप नः सचा २४७५
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् २४७६

(अथर्व० ६ । ५४ । १-३ । ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।)

इदं तद् युज उत्तरम् इन्द्रं शुम्भाम्यष्टये । अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् २४७७
अस्मै क्षत्रमग्नीषोमौ अस्मै धारयतं रयिम् । इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् २४७८
सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते २४७९

(अथर्व० ६ । ५८ । ३ । अथर्वा (यशस्कामः) । अग्निः, इन्द्रः, सोमः । अनुष्टुप् ।)

यशा इन्द्रो यशा अग्निर् यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्य अहमस्मि यशस्तमः २४८०

(अथर्व० ६ । ९३ । ३ । शन्तातिः । अग्निषोमौ वरुणः मरुतः वातपर्जन्यौ । त्रिष्टुप् ।)

त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम २४८१

(अथर्व० ७ । ११४ (११९) । १-२ ॥ भार्गवः । अग्नीषोमौ । अनुष्टुप् ।)

आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे ।
आ ते मुखस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे २४८२
प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः ।
अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः २४८३



सहायक उप-विद्यामंत्री

ब्रह्मणस्पतिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१८।१-३)
(१-३) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १ ॥
यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः ।
स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २ ॥
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।४० १-८)
(४-११) कण्वो घौरः । प्रगाथः =
[विषमा बृहती+समा सत बृहती] ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव
इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं
दधीत यो व आचके ॥ २ ॥
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं
देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

यो वाघते ददाति सूनरं वसु
स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे
सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा
देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५ ॥

तमिद् वोचेमा विदथेषु शंभुवं
मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो
विश्वेद् वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥
को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थितान्
अन्तर्वावत् क्षयं दधे ॥ ७ ॥
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिः
भये चित् सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने
नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० २।२३।१,५,९,११,१७,१९)
(१२-१८) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गव । जगती, १५,१९ त्रिष्टुप् ।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ १ ॥
न तमंहो न दुरितं कुतश्चन
नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे
यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥
त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते
स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयः
अभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥ ९ ॥
अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं
निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत
उग्रस्य चिद् दमिता वीळुहर्षिणः ॥ ११ ॥
विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि
त्वष्टाऽजनत् साम्नःसाम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिः
द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥ १७ ॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता
सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १९ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० २।२४।१-९, ११, १३-१५) जगती ।

यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोत
अदर्दर्मन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिः
आ चाविशद् वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥ २ ॥
तद् देवानां देवतमाय कर्त्वम्
अश्रथ्नन् दृळ्हाव्रदन्त वीळिता ।
उद् गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वलम्
अगूहत् तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥ ३ ॥
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिः
मधुधारमभि यमोजसाऽतृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशः
बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥ ४ ॥
सना ता का चिद् भुवना भवीत्वा
माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्
या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥
अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुः
निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनः
यत उ आयन् तदुदीयुराविशम् ॥ ६ ॥
ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनः
आत आ तस्थुः कवयो महस्पथः ।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि
नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥ ७ ॥
ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिः
यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति
नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥ ८ ॥
स संनयः स विनयः पुरोहितः
स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद् वाजं भरते मती धनाद्
इत् सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥ ९ ॥
(१५)

योऽवरे वृजने विश्वथा विभुः
महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु
विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥ ११ ॥

उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः
सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः
स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥ १३ ॥

ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशं
सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत् स दिवे वि चाभजन्
महीव रीतिः शवसाऽसरत् पृथक् ॥ १४ ॥

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा
रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं
यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥ १५ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० २।२५।१-५)

इन्धानो अग्निं वनवद् वनुष्यतः
कृतब्रह्मा शूशुवद् रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते
यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ १ ॥

वीरेभिर्वीरान् वनवद् वनुष्यतो
गोभी रयिं पप्रथद् बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते
यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ २ ॥

सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो
वृषेव वध्रीँरभि वष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे
यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः
स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा
यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४ ॥

तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवः
अच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते
यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० २।२६।१-४)

ऋजुरिच्छंसो वनवद् वनुष्यतो
देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद् वनवत् पृत्सु दुष्टरं
यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥ १ ॥

यजस्व वीर प्र विहि मनायतः
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाऽससि
ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥ २ ॥

स इज्जनेन स विशा स जन्मना
स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति
श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥

यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्
प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषो३
अंहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥ ४ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० १०।१५५।२-३)

(३९-४०) शिरिम्बिठो भारद्वाज । अनुष्टुप् ।

चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी ।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि ॥२॥
अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥३॥

(४०)

॥ ८ ॥ (ऋ० ९।८३।१)

(४१) पवित्र आङ्गिरस ।[पवमान सोम.] जगती ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥ १ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १०।६७।७)

(४२) अयास्य आङ्गिरस । [बृहस्पति] त्रिष्टुप् ।

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिः
गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः
घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० १०।१७४।१)

(४३) अभीवर्त आङ्गिरसः । अनुष्टुप् ।

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते, ऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥ १

॥ ११ ॥ (वा० य० ३४।५५)

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥५५

॥ १२ ॥ (अथर्व० १।२९।१-६)

(४५-५०) वसिष्ठ० (अभीवर्तमणिः)। अनुष्टुप् ।

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥१॥
अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२॥
अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥
अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४॥
उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः ।
यथाऽहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५॥
सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाऽहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥६॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० ६।६।१)

(५१-५२) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥१॥

(अथर्व० ६७४।१) अथर्वा । ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥१

(अथर्व० ६।१४०।१) अथर्वा । ब्रह्मणस्पति । उरोबृहती ।

यौ व्याघ्राववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च ।
यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥१

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।५६।४) विराट् प्रस्तारपंक्ति ।

अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो
मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ॥४॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० १९।२४।१) अनुष्टुप् ।

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ६।१०१।१-३)

(५४-५६) अथर्वाङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।
यथाऽङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥ १ ॥
येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥२॥
आऽहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥ ३ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ८।६।१५)

(५७) मातृनामा । त्र्यवसाना षट्पदा शक्वरी ।

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा.
ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः ।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥१५॥

(५९)

॥ १८ ॥ अथर्व० १९।८।६ ।
(५८) गार्ग्य । अनुष्टुप् ।
इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ६

॥ १९ ॥ (अथर्व० १९।६१।१)
(५९-६१) ब्रह्मा । विर ट्पथ्याबृहती ।
तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥१॥

॥ २० ॥ (अथर्व० १९।६२।१) अनुष्टुप् ।
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ २ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्व० १९।६३।१) विराडुपरिष्टाद्बृहती ।
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय १

ब्रह्मणस्पति–सहचारी देवगणः

(ऋ० १।१८।४,५)
मेधातिथि काण्व । ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पति सोमश्च, ५ ब्रह्मणस्पति सोम इन्द्रो दक्षिणा च । गायत्री ।
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।
दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥

(ऋ० २।२४।१२)
गृत्समदः (आंगिरस , शौनहोत्रः, पश्चात्) गृत्समद शौनकः । इन्द्राब्रह्मणस्पती । त्रिष्टुप् ।
विश्वं सत्यं मघवाना युवोरित्
आपश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नः
अन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥ १२ ॥

(ऋ० ६।७५।१७)
पायुर्भारद्वाज । युद्धभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्य दय । पवि ।
यत्र बाणाः सं पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु
विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥

(ऋ० ७।९७।३,९)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ । इन्द्राब्रह्मणस्पती । त्रिष्टुप् ।
तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः
सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु
यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥
इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिः
ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः
जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

(अथर्व० ३।१६।१)
अथर्वा । अग्नि , इन्द्र , मित्रावरुणौ, अश्विनौ, भगः पूषा, ब्रह्मणस्पति , सोम., रुद्र. । आर्षी जगती ।
प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥

(अथर्व० ६।४।१)
अथर्वा । त्वष्टा, पर्जन्य , ब्रह्मणस्पतिः अदिति । पथ्याबृहती ।
त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः १

(अथर्व० ६।५।१)
अथर्वा । अग्नि , सोम , ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।
यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

(अथर्व० ७।३०।१) भृग्वंगिरा । द्यावापृथिवी, मित्र , ब्रह्मणस्पति सविता च । बृहती ।
स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥१

॥ ८ ॥ (ऋ० ९।८३।१)
(४१) पवित्र आङ्गिरस । [पवमान सोम] जगती ।
पुवित्रं ते वितंतं ब्रह्मणस्पते
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥ १ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १०।६७।७)
(४२) अयास्य आङ्गिरस । [बृहस्पति] त्रिष्टुप् ।
स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिः
गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः
घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० १०।१७४।१)
(४३) अभीवर्त आङ्गिरस । अनुष्टुप् ।
अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते ऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥ १

॥ ११ ॥ (वा० य० ३४।५५)
सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥५५

॥ १२ ॥ (अथर्व० १।२९।१-६)
(४४-५०) वसिष्ठ (अभीवर्तमणि)। अनुष्टुप् ।
अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥१॥
अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२॥
अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥
अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४॥
उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः ।
यथाऽहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५॥
सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाऽहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥६॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० ६।६।१)
(५१-५३) अथर्वा । अनुष्टुप् ।
योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥१॥
(अथर्व० ६।७३।१) अथर्वा । ब्रह्मणस्पति । अनुष्टुप् ।
सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥१
(अथर्व० ६।१४०।१) अथर्वा । ब्रह्मणस्पति । उरोबृहती ।
यौ व्याघ्रावरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च ।
यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥१

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।५६।४) विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।
अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो
मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ॥४॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० १९।२४।१) अनुष्टुप् ।
येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ६।१०१।१-३)
(५४-५६) अथर्वाङ्गिरा । अनुष्टुप् ।
आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।
यथाऽङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥१॥
येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥२॥
आऽहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥ ३ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ८।६।१५)
(५७) मातृनामा । त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी ।
येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा
ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः ।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥१५॥

॥ १८ ॥ अथर्व० १९।८।६।
(५८) गार्ग्यः। अनुष्टुप्।
इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ६

॥ १९ ॥ (अथर्व० १९।६१।१)
(५९-६१) ब्रह्मा। विराट्पथ्याबृहती।
तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥१

॥ २० ॥ (अथर्व० १९।६२।१) अनुष्टुप्।
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ २ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्व० १९।६३।१) विराडुपरिष्टाद्बृहती।
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय. १

ब्रह्मणस्पति–सहचारी देवगणः

(ऋ० १।१८।४,५)
मेधातिथिः काण्वः। ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमश्च,
५ ब्रह्मणस्पतिः सोम इन्द्रो दक्षिणा च। गायत्री।
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः।
सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम्।
दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥

(ऋ० २।२४।१२)
गृत्समदः (आङ्गिरसः, शौनहोत्रः, पश्चात्) गृत्समदः शौनकः।
इन्द्राब्रह्मणस्पती। त्रिष्टुप्।
विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिद्
आपश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम्।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नः
अन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥ १२ ॥

(ऋ० ६।७५।१७)
पायुर्भारद्वाजः। युद्धभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्य इत्यादि। पङ्क्तिः।
यत्र बाणाः सं पतन्ति कुमारा विशिखा इव।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु
विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥

(ऋ० ७।९७।३,९)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। इन्द्राब्रह्मणस्पती। त्रिष्टुप्।
तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः
सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु
यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥
इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिः
ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः
जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

(अथर्व० ३।१६।१)
अथर्वा। अग्निः, इन्द्रः, मित्रावरुणौ, अश्विनौ, भगः, पूषा,
ब्रह्मणस्पतिः, सोमः, रुद्रः। आर्षी जगती।
प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥

(अथर्व० ६।४।१)
अथर्वा। त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः अदितिः। पथ्याबृहती।
त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः॥१

(अथर्व० ६।५४।३)
अथर्वा। अग्निः, सोमः, ब्रह्मणस्पतिः। अनुष्टुप्।
यस्मै कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम्।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

(अथर्व० ७।३०।१) भृग्वङ्गिराः। द्यावापृथिवी,
मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः सविता च। बृहती।
स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम्।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥१



सहायको द्वितीय उप-विद्यामंत्री

बृहस्पतिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१३९।१०)

(१) परुच्छेपो दैवोदासिः। अत्यष्टिः।

होता यक्षद् वनिनो वन्त वार्यं
बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः।
जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः
पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥१०॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१९०।१-८)

(१-८) अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। त्रिष्टुप्।

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं
बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा
आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥
तमृत्विया उप वाचः सचन्ते
सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि
विभ्वाभवत् समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥
उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च
श्लोकं यंसत् सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो यो अस्ति
मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३ ॥
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्या-
मत्यो न यंसद् यक्षभृद् विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा
बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥ ४ ॥
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः
पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये अनु ददासि वामं
बृहस्पते चयस इत् पियारुम् ॥ ५ ॥
सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था
दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नो-
ऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥
सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति
समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्
बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥
एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान्
बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद्
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥(८१)

॥ ३ ॥ (ऋ० २।२३।२-४, ६- , १०, १२-१६, १८)
(१०-२५) गृत्समद शौनक । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

देवाश्चित् ते असुर्य प्रचेतसो
बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो
विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥

आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च
ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीममभित्रदम्भनं
रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३ ॥

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं
यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि
बृहस्पते महि तत् ते महित्वनम् ॥ ४ ॥

त्वं नो गोपाः पथिकृद् विचक्षणः
तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे
स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥ ६ ॥

उत वा यो नो मर्चयादनागसः
अरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः
सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥ ७ ॥

त्रातारं त्वा तनूनां हवामहे
अवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय
मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥ ८ ॥

त्वया वयं सुवृधं धीमहे वयो
बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत
प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥ १० ॥

अदेवेन मनसा यो रिषण्यति
शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक् तस्य नो वधो
नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥ १२ ॥

भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो
गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो३ मृधो
बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव ॥ १३ ॥

तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप
ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत् कृष्व यदसत् त उक्थ्यं१
बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥ १४ ॥

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्
द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात
तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ १५ ॥

मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे
निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि
बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६ ॥

तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो
गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं
बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१९०।१, ७०) जगती ।

समामविड्ढि प्रभृति य ईशिषे
अया विधेम नवया महा गिरा ।
यथा नो मीढ्वान्त्स्तवते सखा तव
बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥ १ ॥

विश्व प्रभु प्रथमं मेहनावतः
बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो
येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥ १० ॥

॥ १० ॥ (ऋ० २।२०९) त्रिष्टुप् ।

यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुः
अभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्
द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ३।६२।४-६)
(२६-२८) विश्वामित्रो गाथिनः । गायत्री ।

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य ।
रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥
शुचिमर्कैर्बृहस्पतिं मध्वरेषु नमस्यत ।
अनाम्योज आ चके ॥ ५ ॥
वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् ।
बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ ६ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ४।५०।१-९)
(२९-३७) वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, १० जगती ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्
बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः
पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो
बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं
बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥
बृहस्पते या परमा परावद्
अत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा
मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः
महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण
वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥ ४ ॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन
वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः
कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे
यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तः
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥
स इद् राजा प्रतिजन्यानि विश्वा
शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति
वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥ ७ ॥
स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे
तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते
यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥ ८ ॥
अप्रतीतो जयति सं धनानि
प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति
ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥ ९ ॥

॥ ८ ॥ ऋ० ६।७३।१-३
(३८-४०) भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा
बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न
आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥ (१११)

जनाय चिद् य ईवत उ लोकं
बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति
जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥ २ ॥
बृहस्पतिः समजयद् वसूनि
महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो
बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ७।९७।१, ४-८)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि
बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा
यो नो दाता परावतः पितेव ॥ २ ॥
स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो
बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्
पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥ ४ ॥
तमा नो अर्कममृताय जुष्टं
इमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां
बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥ ५ ॥
तं शग्मासो अरुषासो अश्वा
बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद् यस्य नीलवत् सधस्थं
नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥
स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युः
हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः
पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥ ७ ॥

देवी देवस्य रोदसी जनित्री
बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः
करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० १०।६७।१-१२)
अयास्य आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न
ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्यो
ऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना
दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना
यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥
हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिः
अश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा
उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३ ॥
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा
गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्
उदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥ ४ ॥
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं
निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गां
अर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥
इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां
करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानो
ऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६ ॥

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिः
गोधायसं वि धनसैरदर्दः।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः
घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा
इयानास इषणयन्त धीभिः।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिः
उदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥
तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः
सिंहमिव नानदतं सधस्थे।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ
भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
यदा वाजमसनद्विश्वरूपम्
आ द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो
नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥ १० ॥
सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै
कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वाः
तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य
वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून्
देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १२ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० १०।६८।१-१२)

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा
वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो
बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ १ ॥
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो
भग इवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दंपती अनक्ति
बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥
साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः
स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या
निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥
आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य
योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा
भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षाद्
उद्नः शीपालमिव वात आजत्।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्य
अभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्
बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददद्
आविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥ ६ ॥
बृहस्पतिरमत हि त्यदासां
नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भम्
उदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ७ ॥
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्
मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद्
बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥
(१११)

सोपामविन्दत्स स्वः१ः सो अग्निं
अर्केण वि बंबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य
निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि
बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार
यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ १० ॥
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं
नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥ ११ ॥
इदमकर्म नमो अभ्रियाय
यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः
स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० १०।६८।१२)
अप्रतिरथ ऐन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते परि दीया रथेन
रक्षोहाऽमित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्
अस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ४ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० १०।१०३।४)
तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः
पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्
अथा करद्यजमानाय शं योः ॥ १ ॥
नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे
शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं० ॥ २ ॥
तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये
ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं० ॥ ३ ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० २।१३)

बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं
यज्ञꣳ समिमं दधातु ॥ १३ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० ४।७,११)

बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥
बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रण्वतु ॥ २१ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० ६।८)

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि ॥ ८ ॥

॥ १७ ॥ (वा० य० ७।४७)

बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु ॥ ४७ ॥

॥ १८ ॥ (वा० य० ९।१०-११ पूर्वार्ध)

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसः
बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसः
बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् ॥ १० ॥
बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत
बृहस्पतिं वाजं जापयत ॥ ११ ॥

॥ १९ ॥ (वा० य० १०।५)

बृहस्पतये स्वाहा ॥ ५ ॥

॥ २० ॥ (वा० य० ३६।२)

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो
वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

(अथर्व० २।१३।०-२)
अथर्वा । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं
जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत्
सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ २ ॥

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तये
अभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची
रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ७।८।१)
उपरिबभ्रव । त्रिष्टुप् ।

भद्रादधि श्रेयः प्रेहि
बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या
आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥ १ ॥

॥ ७७ ॥ (अथर्व० १९।१८।१०)
अथर्वा । द्विपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥१०॥

बृहस्पति-सहचारी देवगणः ।

(ऋ० १।१४।३)
मेधातिथि काण्वः । इन्द्रवायुबृहस्पतिमित्राग्निपूषभगादित्यमरुद्गणाः । गायत्री ।

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् ।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ३ ॥

(ऋ० ४।४९।१-६)
वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पती । गायत्री ।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती ।
उक्थं मदश्च शस्यते ॥ १ ॥
अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती ।
चारुर्मदाय पीतये ॥ २ ॥
आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् ।
अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥ ४ ॥
इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे ।
मादयेथां तदोकसा ॥ ६ ॥

(ऋ० ४।५०।१०,११)
वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पती । जगती, त्रिष्टुप् ।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते
अस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवः
अस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १० ॥
बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः
सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः
जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ११ ॥

(ऋ० ६।४७।२०)
गर्गो भारद्वाजः । देव-भूमि-बृहस्पतीन्द्राः । त्रिष्टुप् ।

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा
उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टौ
इत्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥ २० ॥

(ऋ० ७।९७।१०)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो
दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

(ऋ० ८।९६।१५)
तिरश्चीराङ्गिरसो द्युतानो वा मारुतः । इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप् ।

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठ
दीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
अधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीः
बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ १५ ॥

(ऋ० १०।१६७।३)
विश्वामित्र-जमदग्नी। सोम-वरुण-बृहस्पति-अनुमति-मघवत्-धाता-विधातारः। जगती।

सोम॑स्य॒ राज्ञो॒ वरु॑णस्य॒ धर्म॑णि
बृह॒स्पते॒रनु॑मत्या उ॒ शर्म॑णि।
तवा॒हम॒द्य म॑घव॒न्नुप॑स्तुतौ
धात॒र्विधा॑तः क॒लशाँ॑ अभक्षयम् ॥ ३ ॥

(९) बृहस्पतिसवितारौ, बृहस्पत्यादयः।
(वा० य० २७।८-९)

बृह॑स्पते सवितर्बो॒धयै॑नं
सᳬशि॑तं चि॒त्सन्त॒राᳬ सᳬ शि॑शाधि।
व॒र्धयै॑नं मह॒ते सौभ॑गाय॒
विश्व॑ एन॒मनु॑ मदन्तु दे॒वाः ॥ ८ ॥
अ॒मु॒त्र॒भूया॒दध॒ यद्य॒मस्य॒
बृह॑स्पते अ॒भिश॑स्ते॒रमु॑ञ्चः।
प्रत्यौ॑हताम॒श्विना॑ मृ॒त्युम॑स्माद्
दे॒वाना॑मग्ने भि॒षजा॒ शची॑भिः ॥ ९ ॥

(अथर्व० १।८।१-२)
चातनः। बृहस्पतिः अग्नीषोमौ। अनुष्टुप्।

इ॒दं ह॒विर्या॑तु॒धाना॑न् न॒दी फेन॑मि॒वा व॑हत्।
य इ॒दं स्त्री पुमा॒नक॑रि॒ह स स्तु॑वतां॒ जनः॑ ॥ १ ॥
अ॒यं स्तु॑वा॒न आग॑मदि॒मं स्म॒ प्रति॑ हर्यत।
बृह॑स्पते॒ वशे॑ ल॒ब्ध्वाग्नी॑षोमा॒ वि वि॑ध्यतम् ॥२॥

(अथर्व० १।१९।१)
अथर्वा। अग्निः सूर्यः बृहस्पतिः। अनुष्टुप्।

पार्थि॑वस्य॒ रसे॑ दे॒वा भग॑स्य त॒न्वो॒३॑ बले॑।
आ॒यु॒ष्य॒मि॒स्मा अ॒ग्निः
सूर्यो॒ वर्च॒ आ धा॒द् बृह॒स्पतिः॑ ॥ १ ॥

(अथर्व० ३।१४।०)
ब्रह्मा। अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः इन्द्रः। अनुष्टुप्।

सं वः॑ सृज॒त्वर्य॒मा सं पू॒षा सं बृह॒स्पतिः॑।
समिन्द्रो॒ यो ध॑नंज॒यो मयि॑ पुष्यत॒ यद्व॒सु ॥२॥

(अथर्व० ३।२०।३,४,७)
वसिष्ठः। ३ अर्यमा, भगः, बृहस्पतिः, देवीः, ४ सोमः, अग्निः, आदित्यः, विष्णुः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः; ७ अर्यमा, बृहस्पतिः, इन्द्रः, वातः, विष्णुः, सरस्वती, सविता, वाजी। अनुष्टुप्।

प्र णो॑ यच्छत्वर्य॒मा प्र भगः॒ प्र बृह॒स्पतिः॑।
प्र दे॒वीः प्रोत सू॒नृता॑ र॒यिं दे॒वी द॑धातु मे ॥३॥
सोमं॒ राजा॑न॒मव॑से॒ऽग्निं गी॒र्भिर्ह॑वामहे।
आ॒दि॒त्यं विष्णुं॒ सूर्यं॑ ब्र॒ह्माणं॑ च॒ बृह॒स्पति॑म् ॥४॥
अ॒र्य॒मणं॒ बृह॒स्पति॒मिन्द्रं॒ दाना॑य चोदय।
वातं॒ विष्णुं॒ सर॑स्वतीं सवि॒तारं॑ च वा॒जिन॑म् ॥७॥

(अथर्व० ३।२६।६)
अथर्वा। बृहस्पतियुता अवरस्वन्तः। जगती।

ये॒३॑स्यां स्थोर्ध्वायां॑ दि॒श्यव॑स्वन्तो॒
नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ वो॒ बृह॒स्पति॒रिष॑वः।
ते नो॑ मृडत॒ ते नो॒ऽधि॑ ब्रूत
तेभ्यो॑ वो॒ नम॒स्तेभ्यो॑ वः॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

(अथर्व० ३।२७।६)
अथर्वा। बृहस्पतिः, श्वित्रं, वर्षम्। पंचपदा ककुम्मती गर्भाऽष्टिः।

ऊ॒र्ध्वा दिग्बृह॒स्पति॒रधि॑पतिः।
श्वि॒त्रो र॑क्षि॒ता व॒र्षमिष॑वः।
तेभ्यो॒ नमो॑ऽधिपतिभ्यो॒ नमो॑
रक्षि॒तृभ्यो॒ नम॒ इषु॑भ्यो॒ नम॑ एभ्यो अस्तु।
यो॒३॑ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः
तं वो॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ ६ ॥

(अथर्व० ४।१।१-७)
वेनः। बृहस्पतिः, आदित्यः। त्रिष्टुप्, २,५ परोऽनुष्टुप्।

ब्रह्म॑ जज्ञा॒नं प्र॑थ॒मं पु॒रस्ता॒द्
वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒न आ॑वः।
स बु॒ध्न्या॒उप॒मा अ॑स्य वि॒ष्ठाः
स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ वि वः॑ ॥ १ ॥

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे
प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं
घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ॥ २ ॥

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुः
विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यात्
नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥ ३ ॥

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था
मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान्मही अस्कभायद्वि जातो
द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥ ४ ॥

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं
बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्ट
अथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥ ५ ॥

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति
महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था
पूर्वे अर्धे विषिते ससन्नु ॥ ६ ॥

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं
बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः
कविर्देवो न दभायत्स्वधावान् ॥

(अथर्व० ५।६।११)
[illegible]

अर्थिना महता भागमुर्वीश्वी
दरदूर्णान युधं युधयन्नी।

बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ्
यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा ॥१२॥

(१) त्विषिः, बृहस्पतिः।
॥ १४ ॥ (अथर्व० ६।३८।१-४)
अथर्वा (वर्चस्कामः)। त्रिष्टुप्।

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ
त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान
सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ १ ॥

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये
त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु।
इन्द्रं या देवी सुभगा० ॥ २ ॥

रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे
वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे।
इन्द्रं या देवी सुभगा० ॥ ३ ॥

राजन्ये दुन्दुभावायतायां
अश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ।
इन्द्रं या देवी सुभगा० ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० ६।३९।१-३)
१ जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्।

यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं
सुभृतं सहस्क
दीर्घाय चक्ष
वर्धय ज्येष्ठ ॥ १ ॥

विधेम

(३) बृहस्पतिः (इन्द्रः, द्यावापृथिवी, सविता)।
॥ ९६ ॥ (अथर्व० ६।५८।१-२)
(यशस्कामः)। १ जगती, २ प्रस्तारपङ्क्तिः।

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु
यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु
प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥ १ ॥
यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान्
यथाऽऽप ओषधीषु यशस्वतीः।
एवा विश्वेषु देवेषु
वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥ २ ॥

(अथर्व० ६।७३।१)
अथर्वा। वरुणसोमोऽग्निबृहस्पतिवसव.। भुरिक्।

एह यातु वरुणः सोमो
अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व
उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥ १ ॥

(अथर्व० ६।१०३।१)
उच्छोचनः। बृहस्पतिः सविता मित्रो अर्यमा भगो अश्विनौ।
अनुष्टुप्।

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत्।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥१॥

(अथर्व० ७।३३।१)
ब्रह्मा। मरुत., पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः। पथ्यापंक्तिः।

स मा सिंचन्तु मरुतः
सं पूषा सं बृहस्पतिः।
सं मायमग्निः सिंचतु प्रजया च धनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

(अथर्व० ७।५१।१)
अंगिराः। इन्द्रा बृहस्पती। त्रिष्टुप्।

बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चाद्
उतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः
सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ १ ॥

(अथर्व० ७।५३।१)
ब्रह्मा। बृहस्पतिः, अश्विनौ। त्रिष्टुप्।

अमुत्रभूयादधि यद्यमस्य
बृहस्पतेरभिशस्तेरमुंचः।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्
देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ १ ॥

(अथर्व. १९।४०।१)
ब्रह्मा। बृहस्पतिः विश्वेदेवाश्च। परानुष्टुप्, त्रिष्टुप्।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः
सरस्वती मन्युमन्तं जगाम।
विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः
सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥

(अथर्व० २०।१३।१)
वामदेवः। इन्द्राबृहस्पती। जगती।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते
अस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवः
अस्मे रयिं सर्ववीरं नियच्छतम् ॥ १ ॥
(२०८)

अध्यापकविघ्नशमनम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।५४।१-२) (१-२) १ ब्रह्मा, २ भृगुः । १ ऋक्सामनी, २ इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

ऋचं साम॑ यजामहे॒ याभ्यां॒ कर्मा॑णि कु॒र्वते॑ । ए॒ते सदा॑सि राजतो य॒ज्ञं दे॒वेषु॑ यच्छतः ॥ १ ॥

ऋचं॑ साम॒ यदप्रा॑क्षं ह॒विरोजो॒ यजु॒र्बल॑म् । ए॒ष मा॒ तस्मा॒न्मा हिंसी॒द्वेदः॑ पृ॒ष्टः श॑चीपते ॥ २ ॥

(११७)



संरक्षण-विभागः ।

इन्द्रदेवता ।

संरक्षण-मंत्री ।

(१-६९) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।३।४-६)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।४।१-१०)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

परेहि विग्रमस्तृत-मिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥

उत नः सुभगाँ अरि-र्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् ।
पतयन् मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

यो रायोऽवनिर्महान् त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।५।१-१०)

आ त्वेता नि षीदते—न्द्रमभि प्र गायत ।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥
पुरूतमं पुरूणा—मीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥
स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।
गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये ।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः ।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः ।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।६।१-३, १०)

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।७।१-१०)

इन्द्रमिद्गाथिनो बृह—दिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि ।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति ।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० १।८।१-१०)

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै ।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभि—रिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते।
उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० १।९।१-१०)

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे।
सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।
अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥
सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम्।
असदित् ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदये—न्द्र राये रभस्वतः।
तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥
सं गोमदिन्द्र वाजव—दस्मे पृथु श्रवो बृहत्।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्।
इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥
वसोरिन्द्र वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्।
होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० १।१०।१-१२) अनुष्टुप्।

गायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद् वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥
यत् सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥
एहि स्तोमाँ अभि स्वरा ऽभि गृणीह्या रुव।
ब्रह्म च नो वसो सचे—न्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥ ५ ॥
तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये।
स शक्र उत नः शक—दिन्द्रो वसु दयमानः ॥६॥
सुविवृतं सुनिरज—मिन्द्र त्वादातमिद्यशः।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥
नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥
आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥९॥
विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥
आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १।११।१-८)

जेता माधुच्छन्दसः। अनुष्टुप्।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥३॥
पुरां भिन्दुर्युवा कवि—रमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥४॥
त्वं वलस्य गोमतो ऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस् तुज्यमानास आविषुः ॥५॥
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास् तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥
इन्द्रमीशानमोजसा—भि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८॥

॥ १० ॥ (१।१६।१-९)
मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये ।
इन्द्रं त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥
इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः ।
इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥
इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः ।
सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥
सेमं नः स्तोममा ग—ह्युपेदं सवनं सुतम् ।
गौरो न तृषितः पिब ॥ ५ ॥
इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि ।
ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥
अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः ।
अथा सोमं सुत पिब ॥ ७ ॥
विश्वमित् सवनं सुत—मिन्द्रो मदाय गच्छति ।
वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥
सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो ।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ८।१।१-२९)
[प्रगाथो (घौरः) काण्वः, ३-२९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ ।] १-४ प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-२९ बृहती ।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते
मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु ते
ऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥
वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४॥
महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो
न शताय शतामघ ॥ ५ ॥
वस्याँ इन्द्रासि मे पितु—रुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो
वसुत्वनाय राधसे ॥ ६ ॥
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरंदर
प्र गायत्रा अगासिषुः ॥ ७ ॥
प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरंदरः ।
याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं
यासद् वज्री भिनत् पुरः ॥ ८ ॥
ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवः
तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥ ९ ॥

आ त्वाद्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषं—मुरुधारामरंकृतम् ॥१०॥
यत्तुदत्सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुः
त्सरद्गन्धर्वमस्तृतम् ॥ ११ ॥
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसु
रिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ १२ ॥
मा भूम निष्ट्या इवे—न्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो
दुरोषासो अमन्महि ॥ १३ ॥
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसा
ऽनु स्तोमं मुदीमहि ॥ १४ ॥
यदि स्तोमं मम श्रव—दस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।
तिरः पवित्रं ससवांस आशवो
मन्दन्तु तुग्र्यावृधः ॥ १५ ॥
आ त्व१द्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वाव-
त्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् ॥ १६ ॥
सोता हि सोममद्रिभि—रेमेनमप्सु धावत ।
गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो
निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥ १७ ॥
अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा
ऽऽजाता सुक्रतो पृण ॥ १८ ॥
इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।
शक्र एणं पीपयद्विश्वया धिया
हिन्वानं न वाजयुम् ॥ १९ ॥
मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं
क ईशानं न याचिषत् ॥ २० ॥
मदेनेषितं मद—मुग्रमुग्रेण शवसा ।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं
मदे हि ष्मा ददाति नः ॥ २१ ॥
शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे ।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते
विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥ २२ ॥
एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभि
रा सोमेभिरुरु स्फिरम् ॥ २३ ॥
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो
वहन्तु सोमपीतये ॥ २४ ॥
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो
विवक्षणस्य पीतये ॥ २५ ॥
पिबा त्व१स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिः
चारुर्मदाय पत्यते ॥ २६ ॥
य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्
हवं न परि वर्जति ॥ २७ ॥
त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता
यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥ २८ ॥
मम त्वा सूर उदिते मम मध्यंदिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसो
आ स्तोमासो अवृत्सत ॥ २९ ॥

॥१२॥ (ऋ० ८।२।१-४०)
[मेधातिथि काण्व, (आङ्गिरस प्रियमेधश्च)]।
गायत्री, २८ अनुष्टुप्।

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १ ॥ (११६)

नृभिर्धूतः सुतो अश्नै–रव्यो वारैः परिपूतः ।
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।
इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥ ३ ॥
इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः ।
अन्तर्देवान् मर्त्यांश्च ॥ ४ ॥
न यं शुक्रो न दुराशी–र्न तृप्रा उरुव्यचसम् ।
अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥ ५ ॥
गोभिर्यदीमन्ये अस्मन् मृगं न व्रा मृगयन्ते ।
अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥
त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य ।
स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥ ७ ॥
त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः ।
समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥
शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः ।
दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ ९ ॥
इमे त इन्द्र सोमा–स्तीव्रा अस्मे सुतासः ।
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ १० ॥
ताँ आशिरं पुरोळाश–मिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि ।
रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥ ११ ॥
हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ १२ ॥
रेवाँ इद् रेवतः स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः ।
प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥ १३ ॥
उक्थं चन शस्यमान–मगोररिरा चिकेत ।
न गायत्रं गीयमानं ॥ १४ ॥
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः ।
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ १५ ॥
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १६ ॥
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ १७ ॥
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ १८ ॥
ओ षु प्र याहि वाजेभि–र्मा हृणीथा अभ्य१स्मान् ।
महाँ इव युवजानिः ॥ १९ ॥
मो ष्व१द्य दुर्हणावान् त्सायं करदारे अस्मत् ।
अश्रीर इव जामाता ॥ २० ॥
विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् ।
त्रिषु जातस्य मनांसि ॥ २१ ॥
आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात् ।
यशस्तरं शतमूतेः ॥ २२ ॥
ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय ।
भरा पिबन्नर्याय ॥ २३ ॥
यो वेदिष्ठो अव्यथि–ष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः ।
वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥ २४ ॥
पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय ।
सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥
पाता वृत्रहा सुत–मा घा गमन्नारे अस्मत् ।
नि यमते शतमूतिः ॥ २६ ॥
एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥ २७ ॥
स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥ २८ ॥
स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय ।
इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥ २९ ॥
गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि ।
सत्रा दधिरे शवांसि ॥ ३० ॥
एवेदेष तुविकूर्मि–र्वाजाँ एको वज्रहस्तः ।
सनादमृक्तो दयते ॥ ३१ ॥
हन्ता वृत्रं दक्षिणेने–न्द्रः पुरू पुरुहूतः ।
महान् महीभिः शचीभिः ॥ ३२ ॥
यस्मिन् विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च ।
अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥ ३३ ॥ (१४)

एष एतानि चकारे—न्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे ।
वाजदावा मघोनाम् ॥ ३४ ॥
प्रभर्ता रथं गव्यन्त—मपाकाच्चिद् यमवति ।
इनो वसु स हि वोळ्हा ॥ ३५ ॥
सनिता विप्रो अर्वद्भि—र्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः ।
सत्योऽविता विधन्तम् ॥ ३६ ॥
यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा ।
यो भूत् सोमैः सत्यमद्वा ॥ ३७ ॥
गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम् ।
कण्वासो गात वाजिनम् ॥ ३८ ॥
य ऋते चिद् गास्पदेभ्यो
दात् सखा नृभ्यः शचीवान् ।
ये अस्मिन् काममश्रियन् ॥ ३९ ॥
इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् ।
मेषो भूतोऽभि यन्नयः ॥ ४० ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ८।३।१-२४)

[मेध्यातिथिः काण्वः] । प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ अनुष्टुप्, २२-२३ गायत्री, २४ बृहती ।

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३
ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं
मा नः स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिः
आ नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितो
ऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ३ ॥
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो
यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ४ ॥

इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह
इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर
इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ६ ॥
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्
रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ७ ॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो
मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवो
ऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ ८ ॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते
येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ९ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्
तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे
यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ १० ॥
शग्धी न इन्द्र यत् त्वा रयिं यामि सुवीर्यम् ।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते
शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥ ११ ॥
शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ
धिय इन्द्र सिषासतः ।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपम्
इन्द्र प्रावः स्वर्णरम् ॥ १२ ॥
कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं
स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १३ ॥

कदु स्तुवन्तं ऋतयन्त देवत
ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः
कदु स्तुवत आ गमः ॥ १४ ॥
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो
वाजयन्तो रथा इव ॥ १५ ॥
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव
विश्वमिद् धीतमानशुः।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः
प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ १६ ॥
युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय
उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ १७ ॥
इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया
विप्रासो मेधसातये।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो
वेनो न शृणुधी हवम् ॥ १८ ॥
निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो
निः पर्वतस्य गा आजः ॥ १९ ॥
निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं
कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ २० ॥
यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठम्
उपेव दिवि धावमानम् ॥ २१ ॥
रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम्।
अदाद् रायो विबोधनम् ॥ २२ ॥
यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः।
अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥ २३ ॥
आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम्।
तुरीयमिद् रोहितस्य पाकस्थामानं
भोजं दातारमब्रवम् ॥ २४ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० ८।३२।१-३०)
[मेधातिथिः काण्वः]। गायत्री।

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया।
मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥
यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम्।
वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥
न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर।
कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ ३ ॥
प्रति श्रुताय वो धृषत् तूर्णाशं न गिरेरधि।
हुवे सुशिप्रमूतये ॥ ४ ॥
स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः।
पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५ ॥
यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः।
आरादुप स्वधा गहि ॥ ६ ॥
वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः।
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥
उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम्।
मघवन् भूरि ते वसु ॥ ८ ॥
उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः।
इळाभिः सं रभेमहि ॥ ९ ॥
बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये।
साधु कृण्वन्तमवसे ॥ १० ॥
यः संस्थे चिच्छतक्रतु—रादीं कृणोति वृत्रहा।
जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥ ११ ॥
स नः शक्रश्चिदा शकद् दानवाँ अन्तराभरः।
इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥
यो रायोऽवनिर्महान् त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तमिन्द्रमभि गायत ॥ १३ ॥
(१५)

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम्।
भूरेरीशानमोजसा ॥ १४ ॥
नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्।
नकिर्वक्ता न दादिति ॥ १५ ॥
न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम्।
न सोमो अप्रता पपे ॥ १६ ॥
पन्य इदुप गायत पन्यं उक्थानि शंसत।
ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥ १७ ॥
पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः।
इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥ १८ ॥
वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः।
इन्द्र पिब सुतानाम् ॥ १९ ॥
पिब स्वधैनवाना—मुत यस्तुग्र्ये सचा।
उतायमिन्द्र यस्तव ॥ २० ॥
अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे।
इमं रातं सुतं पिब ॥ २१ ॥
इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति।
धेना इन्द्रावचाकशत् ॥ २२ ॥
सूर्यो रश्मिं यथा सृजा ऽऽत्वा यच्छन्तु मे गिरः।
निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २३ ॥
अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे।
भरा सुतस्य पीतये ॥ २४ ॥
य उद्नः फलिगं भिन—न्न्य१क् सिन्धूँरवासृजत्।
यो गोषु पक्वं धारयत् ॥ २५ ॥
अहन् वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम्।
हिमेनाविध्यदर्बुदम् ॥ २६ ॥
प्र व उग्राय निष्टुरे ऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे।
देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ २७ ॥
यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः।
इन्द्रो देवेषु चेतति ॥ २८ ॥
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या।
वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी।
सोमपेयाय वक्षतः ॥ ३० ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० ८।३३।१-१९)
[मेध्यातिथिः काण्वः]। बृहती, १६-१८ गायत्री, १९ अनुष्टुप्
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्
परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम
इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम्।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥
पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा
वज्री रथो हिरण्ययः ॥ ४ ॥
यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ
इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ॥ ५ ॥
यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः
क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥ ६ ॥
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा
मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ७ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो
महाँश्चरस्योजसा ॥ ८ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं
नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ९ ॥

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति
वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ १० ॥
वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी।
वृषा रथो मघवन् वृषणा हरी
वृषा त्वं शतक्रतो ॥ ११ ॥
वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा
तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥ १२ ॥
एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम्।
नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो
ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥ १३ ॥
वहन्तु त्वा रथेष्ठा—मा हरयो रथयुजः।
तिरश्चिदर्यं सवनानि वृत्रहन्
अन्येषां या शतक्रतो ॥ १४ ॥
अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह।
अस्माकं ते सवना सन्तु शंतमा
मदाय द्युक्ष सोमपाः ॥ १५ ॥
नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति।
यो अस्मान् वीर आनयत् ॥ १६ ॥
इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ १७ ॥
सप्ती चिद् घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम्।
एवेद् धूर्वृष्ण उत्तरा ॥ १८ ॥
अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥१९

॥ ३६ ॥ (ऋ० ८।३३।१-१९)
[देवातिथि काण्व.]। प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥
यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस
इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि
कण्वेषु सु सचा पिब ॥३॥
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं
ज्येष्ठं तद् दधिषे सहः ॥४॥
प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो
नि वृक्षा इव येमिरे ॥५॥
सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम्
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये
दाश्नोति नमउक्तिभिः ॥६॥
मा भेम मा श्रमिष्मो—ग्रस्य सख्ये तव।
महत् ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं
पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥७॥
सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा
न दानो अस्य रोषति।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवः
तूयमेहि द्रवा पिब ॥८॥
अश्वी रथी सुरूप इद् गोमाँ इदिन्द्र ते सखा।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा
चन्द्रो याति सभामुप ॥९॥
ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि
पिबा सोमं वशाँ अनु।
निमेघमानो मघवन् दिवेदिव
ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥१०॥
अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी
आ च जगाम वृत्रहा ॥११॥
(३११)

स्वयं चित् स मन्यते दाशुरिर्जनो
यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं
तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥
रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते
सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥ १३ ॥
उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो
वहन्तु सवनेदुप ॥ १४ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ. ८।६।१-४१)
[वत्सः काण्वः] । गायत्री ।

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः ।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ४ ॥
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ५ ॥
वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ६ ॥
इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः ।
अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥ ७ ॥
गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः ।
कण्वा ऋतस्य धारया ॥ ८ ॥
प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥ ९ ॥
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥ १० ॥
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ ११ ॥
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ १२ ॥
यदस्य मन्युरध्वनीद् वि वृत्रं पर्वशो रुजन् ।
अपः समुद्रमैरयत् ॥ १३ ॥
नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे ॥ १४ ॥
न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
न विव्यचन्त भूमयः ॥ १५ ॥
यस्त इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत् ।
नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥ १६ ॥
य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत् ।
तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥ १७ ॥
य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः ।
ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥ १८ ॥
इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ १९ ॥
या इन्द्र प्रस्वस्त्वा ऽऽसा गर्भमचक्रिरन् ।
परि धर्मेव सूर्यम् ॥ २० ॥
त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः ।
त्वां सुतास इन्दवः ॥ २१ ॥
तवेदिन्द्र प्रणीतिषू—त प्रशस्तिरद्रिवः ।
यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ २२ ॥
आ न इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमतीम् ।
उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ २३ ॥
उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा ।
अग्रे विक्षु प्रदीदयत् ॥ २४ ॥
अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम् ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २५ ॥
यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्रराजसि क्षितीः ।
महाँ अपार ओजसा ॥ २६ ॥

तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये ।
उरुज्रयसमिन्दुभिः ॥ २७ ॥
उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम् ।
धिया विप्रो अजायत ॥ २८ ॥
अतः समुद्रमुद्वत–श्चिकित्वाँ अव पश्यति ।
यतो विपान एजति ॥ २९ ॥
आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् ।
परो यदिध्यते दिवा ॥ ३० ॥
कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् ।
उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥ ३१ ॥
इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव ।
उत प्र वर्धया मतिम् ॥ ३२ ॥
उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः ।
विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥ ३३ ॥
अभि कण्वा अनूषता–ऽऽपो न प्रवता यतीः ।
इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥ ३४ ॥
इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः ।
अनुत्तमन्युमजरम् ॥ ३५ ॥
आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् ।
इममिन्द्र सुतं पिब ॥ ३६ ॥
त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
हवन्ते वाजसातये ॥ ३७ ॥
अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम् ।
अनु सुवानास इन्दवः ॥ ३८ ॥
मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति ।
मत्स्वा विवस्वतो मती ॥ ३९ ॥
वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् ।
वृत्रहा सोमपातमः ॥ ४० ॥
ऋषिर्हि पूर्वजा अस्ये–क ईशान ओजसा ।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥ ४१ ॥
अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः ।
शतं वहन्तु हरयः ॥ ४२ ॥
इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् ।
कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥ ४३ ॥
इन्द्रमिद् विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः ।
इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥ ४४ ॥
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी ।
सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० ८।१२।१-३३)

[पर्वतः काण्वः] । उष्णिक्, ११ ककुम्मती (पिपीलमध्या) ।

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥ १ ॥
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ २ ॥
येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः ।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ३ ॥
इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः ।
येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥ ४ ॥
इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते ।
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥ ५ ॥
यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे ।
दिवो न वृष्टिं प्रथयन् ववक्षिथ ॥ ६ ॥
ववक्षुरस्य केतवो उत वज्रो गभस्त्योः ।
यत् सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥ ७ ॥
यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः ।
आदित् त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥ ८ ॥
इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभि–र्न्यर्शसानमोषति ।
अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥ ९ ॥
इयं त ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी ।
सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥ १० ॥
गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक् ।
स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥ ११ ॥
सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये ।
प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥ १२ ॥ (२१९)

यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः ।
घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥ १३ ॥
उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् ।
पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥ १४ ॥
अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये ।
न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥ १५ ॥
यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद् वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद् वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १६ ॥
यद् वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ १७ ॥
यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ १८ ॥
देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।
अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥ १९ ॥
यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् ।
होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥ २० ॥
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥ २१ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ॥ २२ ॥
महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् ।
अर्कैरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥ २३ ॥
न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
अमादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥ २४ ॥
यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः ।
आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २५ ॥
यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः ।
आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २६ ॥
यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे ।
आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २७ ॥
यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे ।
आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २८ ॥
यदा ते मारुतीर्विश स्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ।
आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २९ ॥
यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।
आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ ३० ॥
इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः ।
जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥ ३१ ॥
यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् ।
नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥ ३२ ॥
सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः ।
होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ३३ ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० ८।१३।१-३३)

[नारदः काण्वः] । उष्णिक् ।

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षसो महान् हि षः ॥ १ ॥
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥
तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥
इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ४ ॥
नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत् त्वा सुन्वन्त ईमहे ।
रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥ ५ ॥
स्तोता यत् ते विचर्षणि रतिप्रशर्धयद् गिरः ।
वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥ ६ ॥
प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् ।
मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥ ७ ॥
क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः ।
अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥ ८ ॥
उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद् वशी ।
नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥ ९ ॥
स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा ।
गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥ १० ॥ (१३०)

तूतुजानो महेमते ऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥ ११ ॥
इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय ।
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥ १२ ॥
हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यंदिने दिवः ।
जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥ १३ ॥
आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥ १४ ॥
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
यद् वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥ १५ ॥
इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः ।
इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥ १६ ॥
तमिद् विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः ।
इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन् वया इव ॥ १७ ॥
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद् वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥ १८ ॥
स्तोता यत् ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे ।
शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९ ॥
तदिद् रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु ।
मनो यत्रा वि तद् दधुर्विचेतसः ॥ २० ॥
यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः ।
येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥ २१ ॥
कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शंतमः ।
कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥ २२ ॥
उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् ।
अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥ २३ ॥
तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदद्ध द्विता ॥ २४ ॥
वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः ।
धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥ २५ ॥
इन्द्र त्वमवितेदसी—त्था स्तुवतो अद्रिवः ।
ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् ॥ २६ ॥
इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये ।
हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥ २७ ॥
अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् ।
उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥ २८ ॥
इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद् दिवि ।
नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥ २९ ॥
अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे ।
मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥ ३० ॥
वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी ।
वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥ ३१ ॥
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥ ३२ ॥
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥ ३३ ॥

॥ २० ॥ (ऋ० ८।१४।१-१५)
[गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ]। गायत्री ।

यदिन्द्राहं यथा त्व—मीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥
व्य१न्तरिक्षमतिर—न्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ ७ ॥
उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ८ ॥ (३११)

इन्द्रे॑ण रोच॒ना दि॒वो दृ॒ळ्हानि॑ दृंहि॒तानि॑ च ।
स्थि॒राणि॒ न प॑रा॒णुदे॑ ॥ ९ ॥
अ॒पामू॒र्मिर्मद॑न्निव॒ स्तोम॑ इन्द्राजिरायते ।
वि ते॒ मदा॑ अराजिषुः ॥ १० ॥
त्वं हि स्तो॑म॒वर्ध॑न॒ इन्द्रास्यु॑क्थ॒वर्ध॑नः ।
स्तो॒तॄ॒णामु॒त भ॑द्र॒कृत् ॥ ११ ॥
इन्द्र॒मित् के॒शिना॒ हरी॒ सोम॒पेया॑य वक्षतः ।
उप॑ य॒ज्ञं सु॒राध॑सम् ॥ १२ ॥
अ॒पां फेने॑न॒ नमु॑चेः॒ शिर॑ इन्द्रोद॑वर्तयः ।
विश्वा॒ यदज॑यः॒ स्पृधः॑ ॥ १३ ॥
मा॒याभि॑रु॒त्सिसृ॑प्सत॒ इन्द्र॒ द्यामा॒रुरु॑क्षतः ।
अव॒ दस्यूँ॑रधूनुथाः ॥ १४ ॥
अ॒सु॒न्वामि॑न्द्र सं॒सदं॒ विषू॑चीं॒ व्य॑नाशयः ।
सो॒म॒पा उत्त॑रो॒ भव॑न् ॥ १५ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ८।१५।१-१३)

[गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ]। उष्णिक् ।

तम्व॒भि प्र गा॑यत पुरुहू॒तं पु॑रुष्टु॒तम् ।
इन्द्रं॑ गी॒र्भिस्त॑वि॒षमा वि॑वासत ॥ १ ॥
यस्य॑ द्वि॒बर्ह॑सो बृ॒हत् सहो॑ दा॒धार॒ रोद॑सी ।
गि॒रीँरज्राँ॑ अ॒पः स्व॑र्वृषत्व॒ना ॥ २ ॥
स रा॑जसि पुरुष्टुतँ॒ एको॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे ।
इन्द्र॒ जैत्रा॑ श्रव॒स्या॑ च॒ यन्त॑वे ॥ ३ ॥
तं ते॒ मदं॑ गृणीमसि॒ वृष॑णं पृ॒त्सु सा॑स॒हिम् ।
उ॒ लो॒क॒कृ॒त्नुम॑द्रिवो हरि॒श्रिय॑म् ॥ ४ ॥
येन॒ ज्योतीं॑ष्या॒यवे॒ मन॑वे च वि॒वेदि॑थ ।
म॒न्दा॒नो अ॒स्य ब॒र्हिषो॒ वि रा॑जसि ॥ ५ ॥
तद॒द्या चि॑त् त उ॒क्थिनोऽनु॑ ष्टुवन्ति पू॒र्वथा॑ ।
वृष॑पत्नीर॒पो ज॑या दि॒वेदि॑वे ॥ ६ ॥
तव॒ त्यदि॑न्द्रि॒यं बृ॒हत् तव॒ शुष्म॑मु॒त क्रतु॑म् ।
वज्रं॑ शिशाति धि॒षणा॒ वरे॑ण्यम् ॥ ७ ॥
तव॒ द्यौरि॑न्द्र॒ पौंस्यं॑ पृथि॒वी व॑र्धति॒ श्रवः॑ ।
त्वामापः॒ पर्व॑तासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥

त्वां विष्णु॑र्बृ॒हन् क्षयो॑ मि॒त्रो गृ॑णाति॒ वरु॑णः ।
त्वां शर्धो॑ मद॒त्यनु॒ मारु॑तम् ॥ ९ ॥
त्वं वृषा॒ जना॑नां॒ मंहि॑ष्ठ इन्द्र जज्ञिषे ।
स॒त्रा विश्वा॑ स्वप॒त्यानि॑ दधिषे ॥ १० ॥
स॒त्रा त्वं पु॑रुष्टुतँ॒ एको॑ वृ॒त्राणि॑ तोशसे ।
नान्य इन्द्रा॒त् कर॑णं॒ भूय॑ इन्वति ॥ ११ ॥
यदि॑न्द्र मन्म॒शस्त्वा॒ नाना॒ हव॑न्त ऊ॒तये॑ ।
अ॒स्माके॑भि॒र्नृभि॒रत्रा॒ स्व॑र्जय ॥ १२ ॥
अरं॒ क्षया॑य नो म॒हे विश्वा॑ रू॒पाण्या॑वि॒शन् ।
इन्द्रं॒ जैत्रा॑य हर्षया॒ शचीप॑तिम् ॥ १३ ॥

॥ २१ ॥ (ऋ० ८।१६।१-१२)

[इरिम्बिठिः काण्वः]। गायत्री।

प्र स॒म्राजं॑ चर्षणी॒नामिन्द्रं॑ स्तोता॒ नव्यं॑ गी॒र्भिः ।
नरं॑ नृ॒षाहं॒ मंहि॑ष्ठम् ॥ १ ॥
यस्मि॑न्नु॒क्थानि॒ रण्य॑न्ति॒ विश्वा॑नि च श्रव॒स्या॑ ।
अ॒पामवो॒ न स॑मु॒द्रे ॥ २ ॥
तं सु॑ष्टु॒त्या वि॑वासे ज्येष्ठ॒राजं॒ भरे॑ कृ॒त्नुम् ।
म॒हो वा॒जिनं॑ स॒निभ्यः॑ ॥ ३ ॥
यस्यानू॑ना गभी॒रा मदा॑ उ॒रव॒स्तरु॑त्राः ।
ह॒र्षु॒मन्तः॒ शूर॑सातौ ॥ ४ ॥
तमिद् धने॑षु हि॒तेष्व॑धिवा॒काय॑ हवन्ते ।
येषा॒मिन्द्र॒स्ते ज॑यन्ति ॥ ५ ॥
तमिच्च्यौ॒त्नैरार्य॑न्ति॒ तं कृ॒तेभि॑श्चर्ष॒णयः॑ ।
ए॒ष इन्द्रो॑ वरिव॒स्कृत् ॥ ६ ॥
इन्द्रो॑ ब्र॒ह्मेन्द्र॒ ऋषि॒रिन्द्रः॑ पु॒रू पु॑रुहू॒तः ।
म॒हान् म॒हीभिः॒ शची॑भिः ॥ ७ ॥
स स्तोम्यः॒ स हव्यः॑ स॒त्यः सत्वा॑ तुविकू॒र्मिः ।
एक॑श्चि॒त् सन्न॒भिभू॑तिः ॥ ८ ॥
तम॒र्केभि॒स्तं साम॑भि॒स्तं गा॑य॒त्रैश्च॑र्ष॒णयः॑ ।
इन्द्रं॑ वर्धन्ति क्षि॒तयः॑ ॥ ९ ॥
प्र॒णे॒तारं॒ वस्यो॒ अच्छा॒ कर्ता॑रं॒ ज्योतिः॑ स॒मत्सु॑ ।
सा॒स॒ह्वांसं॑ यु॒धामित्रा॑न् ॥ १० ॥ (३९१)

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ ११ ॥
स त्वं न इन्द्र वाजेभि—र्दशस्या च गातुया च।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ १२ ॥

॥ ९३ ॥ (ऋ० ८।९७।१-१५)
[इरिम्बिठि काण्वः]। [१४ बालखिल्या]। गायत्री, प्रगाथः = (१४ बृहती, १५ सतोबृहती)।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
आ नो याहि सुतावतो ऽस्माकं सुष्टुतीरुप।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ ४ ॥
आ ते सिञ्चामि कुक्ष्यो—रनु गात्रा वि धावतु।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥
स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव।
सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥
अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः।
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ८ ॥
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ९ ॥
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि।
यजमानाय सुन्वते ॥ १० ॥
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ११ ॥
शाचिगो शाचिपूजना—ऽयं रणाय ते सुतः।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ १२ ॥
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ १३ ॥
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणां—ऽसत्रं सोम्यानाम्।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीना—
मिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ १४ ॥
पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः।
भूर्णिमश्वं नयत् तुजा पुरो गृभा—
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ १५ ॥

॥ ९४ ॥ (ऋ० ८।२१।१-१६)
[सोभरिः काण्वः]। प्रगाथः = (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती)।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः।
वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवो—ग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
आ याहीम इन्दवो ऽश्वपते गोपत उर्वरापते।
सोमं सोमपते पिब ॥ ३ ॥
वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि
विश्वेभिः सोमपीतये ॥ ४ ॥
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ५ ॥
अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि
किं मुहुश्चिद् वि दीधयः।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं
स्मो वयं सन्ति नो धियः ॥ ६ ॥
नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः।
विद्मा पुरा परीणसः ॥ ७ ॥
विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्य१—
मा ते ता वज्रिन्नीमहे।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो
वाजे सुशिप्र गोमति ॥ ८ ॥

यो न इदमिदं पुरा
प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं
स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ १० ॥
त्वया ह स्विद् युजा वयं
प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि।
संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ११ ॥
जयेम कारे पुरुहूत कारिणो ऽभि तिष्ठेम दूढ्यः।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम च
अवेरिन्द्र प्र णो धियः ॥ १२ ॥
अभ्रातृव्यो अना त्व-मनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १३ ॥
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्या-
आदित् पितेव हूयसे ॥ १४ ॥
मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावतः।
नि षदाम सचा सुते ॥ १५ ॥
मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि।
दृळ्हा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर
न ते दामान आदभे ॥ १६ ॥

॥ २५ ॥ (ऋ० ८।३४।१-१८)
[नीपातिथिः काण्वः, १६-१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः।]
अनुष्टुप्, १६-१८ गायत्री।

एन्द्र याहि हरिभि-रुप कण्वस्य सुष्टुतिम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥
अत्रा वि नेमिरेषा-मुरां न धूनुते वृकः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥
आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥४॥
दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥५॥
स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥६॥
आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥
आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥८॥
आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥९॥
आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१०॥
आ नो याह्युपश्रु-त्युक्थेषु रणया इह।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥११॥
सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः संभृताश्वः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१२॥
आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१३॥
आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१४॥
आ नः सहस्रशो भरा-ऽयुतानि शतानि च।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१५॥
आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः।
ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥ १६ ॥
य ऋज्रा वातरंहसो ऽरुषासो रघुष्यदः।
भ्राजन्ते सूर्या इव ॥ १७ ॥
पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु।
तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥ १८ ॥

॥ २६ ॥ (ऋ० ८।४५।१-४२)

[त्रिशोकः काण्वः] । [१ अग्नीन्द्रौ] । गायत्री ।

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥
बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥
अयुद्ध इद् युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद् वि मातरम् ।
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ४ ॥
प्रति त्वा शवसी वदद् गिरावप्सो न योधिषत् ।
यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥ ५ ॥
उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् ।
यद् वीळयासि वीळु तत् ॥ ६ ॥
यदाजिं यात्याजिकृ-दिन्द्रः स्वश्वयुरुप ।
रथीतमो रथीनाम् ॥ ७ ॥
वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन् विष्वग्यथा वृह ।
भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ८ ॥
अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये ।
न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥ ९ ॥
वृज्याम ते परि द्विषो ऽरं ते शक्र दावने ।
गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥ १० ॥
शनैश्चिद् यन्तो अद्रिवो ऽश्वावन्तः शतग्विनः ।
विवक्षणा अनेहसः ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता ।
जरितृभ्यो विमंहते ॥ १२ ॥
विद्मा हि त्वा धनंजय-मिन्द्र दृळ्हा चिदारुजम् ।
आदारिणं यथा गयम् ॥ १३ ॥
ककुहं चित् त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः ।
आ त्वा पणिं यदीमहे ॥ १४ ॥
यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये ।
तस्य नो वेद आ भर ॥ १५ ॥
इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ १६ ॥
उत त्वाबधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये ।
दूरादिह हवामहे ॥ १७ ॥
यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत ।
भवेरापिर्नो अन्तमः ॥ १८ ॥
यच्चिद्धि ते अपि व्यथि-र्जगन्वांसो अमन्महि ।
गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥ १९ ॥
आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते ।
उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥ २० ॥
स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने ।
नकिर्यं वृण्वते युधि ॥ २१ ॥
अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ २२ ॥
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २३ ॥
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥ २४ ॥
या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे ।
ता संसत्सु प्र वोचत ॥ २५ ॥
अपिबत् कद्रुवः सुत-मिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।
अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥ २६ ॥
सत्यं तत् तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम् ।
व्यानट् तुर्वणे शमि ॥ २७ ॥
तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः ।
समानमु प्र शंसिषम् ॥ २८ ॥
ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २९ ॥
यः कृन्तदिद् वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् ।
गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥ ३० ॥
यद् दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि ।
मा तत् करिन्द्र मृळय ॥ ३१ ॥ (२३१)

दुभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि ।
जिगातिवन्द्र ते मनः ॥ ३२ ॥
तवेदु ताः सुकीर्तयो ऽसन्नुत प्रशस्तयः ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३३ ॥
मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु ।
वधीर्मा शूर भूरिषु ॥ ३४ ॥
विभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः ।
दस्मादहमृतीषहः ॥ ३५ ॥
मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो ।
आवृत्वद् भूतु ते मनः ॥ ३६ ॥
को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् ।
जहा को अस्मदीषते ॥ ३७ ॥
एवारे वृषभा सुते ऽसिन्वन् भूर्यावयः ।
श्वघ्नीव निवता चरन् ॥ ३८ ॥
आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा ।
यदीं ब्रह्मभ्य इद्दः ॥ ३९ ॥
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४० ॥
यद्वीळाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४१ ॥
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४२ ॥

॥ ९७ ॥ (ऋ० ८।४९।१-१०)

[प्रस्कण्वः काण्वः]। प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

अभि प्र वः सुराधस—मिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः
सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥
शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया
हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे
दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥
आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं सरः
पृणन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥
अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः
प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥ ४ ॥
आ नः स्तोममुप द्रव—द्धियानो अश्वो न सोतृभिः ।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव
इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥ ५ ॥
उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते
क्षरन्तीन्द्र धीतयः ॥ ६ ॥
यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत
उग्र उग्रेभिरा गहि ॥ ७ ॥
अजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ८ ॥
एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं
यथा नीपातिथिं धने ॥ ९ ॥
यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि
यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनि
इन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥ १० ॥

॥ ९८ ॥ (ऋ० ८।५०।१-१०)

[पुष्टिगुः काण्वः]। प्रगाथः – (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

प्र सु श्रुतं सुराधस—मर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु
सहस्रेणेव मंहते ॥ १ ॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा
इन्द्रस्य समिषो महीः।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते
यदीं सुता अमन्दिषुः ॥२॥
यदीं सुतास इन्दवो ऽभि प्रियममन्दिषुः।
आपो न धायि सवनं म आ वसो
दुघा इवोप दाशुषे ॥३॥
अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव
उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥४॥
आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः
पौरे छन्दयसे हवम् ॥५॥
प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना
सदा पीपेथ दाशुषे ॥६॥
यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत
ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥७॥
रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध
ओजो वातस्य पिप्रति।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो
येभिः स्वः परीयसे ॥८॥
एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने
यथा वशं दशव्रजे ॥९॥
यथा कण्वे मघवन्मेधे अध्वरे
दीर्घनीथे दमूनसि।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवः
मयि गोत्रं हरिश्रियम् ॥१०॥

॥ ७९ ॥ (ऋ० ८।५१।१-१०)
श्रुष्टिगु काण्वः। प्रगाथ – (विषमा बृहती; समा सतोबृहती)।

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम्।
नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ
पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥१॥
पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयत्
शयानं जिव्रिमुद्धितम्।
सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥२॥
य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मती
अरिष्यन्तं न भोजसे ॥३॥
यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे।
स त्विमा विश्वा भुवनानि चिक्रदद्
आदिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥४॥
यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं
गमेम गोमति व्रजे ॥५॥
यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि
स रायस्पोषमश्नुते।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः
सुतावन्तो हवामहे ॥६॥
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते
दानं देवस्य पृच्यते ॥७॥
प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं
वधैः शुष्णं निघोषयन्।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवम्
आदिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥८॥
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि
तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥९॥
(०११)

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवो
अस्मे सुवानास इन्दवः ॥ १० ॥

॥ ३० ॥ (ऋ० ८।५२।१-१०)
आयुः काण्व. । प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषसि
आयौ मादयसे सचा ॥ १ ॥
पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनी—न्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥२
य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रमे
उप मित्रस्य धर्मभिः ॥ ३ ॥
यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो
जुहूमसि श्रवस्यवः ॥ ४ ॥
यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसु गोरश्वस्य प्र दातु नः॥५॥
यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥६॥
कदा चन प्र युच्छस्यु—भे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियं
आ तस्थावमृतं दिवि ॥ ७ ॥
यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः
शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो
कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥ ८ ॥
अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥९॥
समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम्।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः
सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ १० ॥

॥ ३१ ॥ (ऋ० ८।५३।१-८)
मेध्यः काण्वः । प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥१
य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥२॥
आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ॥३
विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि
विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित् ते मदिरासो अंशवो
यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥ ४ ॥
इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभि-
रा स्वापे स्वापिभिः ॥ ५ ॥
आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः
क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥
यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।
यं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥७॥
अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयु-
राजिं यामि सदोतिभिः ।
त्वामिदेव तममे समश्वयु—र्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥८

॥ ३२ ॥ (ऋ० ८।५४।१-४; ५-८)
मातरिश्वा काण्व । प्रगाथ. = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

एतत् त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्चुतं
पौरासो नक्षन् धीतिभिः ॥ १ ॥

नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश
एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥

यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे
भगो दानाय वृत्रहन् ॥ ५ ॥

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः
ससवांसो वि शृण्विरे ॥ ६ ॥

सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान् नक्षस्व मघवन्नुपावसे
धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥ ७ ॥

वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं
प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥ ८ ॥

॥ ३३ ॥ (ऋ० ८।५५।१-५)

कृश काण्व । (प्रस्कण्वश्च) । गायत्री ३, ५ अनुष्टुप् ।

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं व्यख्यमभ्यायति ।
राधस्ते दस्यवे वृक ॥ १ ॥

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते ।
मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ २ ॥

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् । ॥३॥

सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः ।
अश्वासो न चङ्क्रमत ॥ ४ ॥

आदित् साप्तस्य चर्किर—न्नानूनस्य महि श्रवः ।
श्यावीरतिध्वसन् पथ—श्चक्षुषा चन संनशे ॥ ५ ॥

॥ ३४ ॥ (ऋ० ८।५६।१-४ ,
पृषध्रः काण्वः । गायत्री ।)

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम् ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥

दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः ।
नित्याद्रायो अमंहत ॥ २ ॥

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् ।
शतं दासाँ अति स्रजः ॥ ३ ॥

तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता ।
अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥ ४ ॥

॥ ३५ ॥ (ऋ० ८।६१।१-१८)

भर्गः प्रागाथः । प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १७ शंकुमती ।

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये
धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि
सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहि
मधृष्टं चिद् दधृष्वणिम् ॥ ३ ॥

अप्रामिसत्य मघवन् तथेदसत्
इन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा
मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविद
मनु शूर चरामसि ॥ ५ ॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामसि
उत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे
यद्यद्यामि तदा भर ॥ ६ ॥

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस
इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥

अविप्रो वा यदविध-द्विप्रो वेन्द्र ते वचः।
स प्र ममन्दत् त्वाया शतक्रतो
प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥

उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरंदरो यदि मे शृणवद्धवम्।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे १०

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते
सखायं कृणवामहै ॥ ११ ॥

उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहि-मृणकातिमदाभ्यम्।
वेदा भृमं चित् सनिता रथीतमः
वाजिनं यमिदू नशत् ॥ १२ ॥

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः
वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १३ ॥

त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः
सुतावन्तो हवामहे ॥ १४ ॥

इन्द्रः स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं
स पश्चात् पातु नः पुरः ॥ १५ ॥

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात् पुर
इन्द्र नि पाहि विश्वतः।
आरे अस्मत् कृणुहि दैव्यं भयं
आरे हेतीरदेवीः ॥ १६ ॥

अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा
दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १७ ॥

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो
नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ १८ ॥

॥ ३६ ॥ (ऋ. ८।६२।१-१२)

प्रगाथो घौरः काण्वः। पङ्क्तिः, ७-९ बृहती।

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति।
उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १ ॥

अयुजो असमो नृभि-रेकः कृष्टीरयास्यः।
पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥

अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति।
प्रवाच्यमिन्द्र तत् तव वीर्याणि करिष्यतो
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ३ ॥

आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥

धृषतश्चिद् धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत् त्वम्।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥

अव चष्ट ऋचीषमो ऽवताँ इव मानुषः।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ८ ॥

समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ९ ॥

उन्नातमिन्द्र ते शव उत त्वामुत तव क्रतुम् ।
भूर्णिगो भूरि वावृधु-र्मघवन् तव शर्मणि
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १० ॥
अहं च त्वं च वृत्रहन् त्सं युज्याव सनिभ्य आ।
अरातीवा चिदद्रिवो ऽनु नौ शूर मंसते
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ११ ॥
सत्यमिद् वा उ तं वय-मिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १२ ॥

॥ ३७ ॥ (ऋ० ८।६३।१-११)
प्रगाथ काण्व. । गायत्री; १, ४-५, ८ अनुष्टुप् ।

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे॥ १ ॥
दिवो मानं नोत्सदन् त्सोमपृष्ठासो अद्रयः ।
उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥
स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप ।
स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥
स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः ।
शिवो अर्कस्य होम-न्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥ ४ ॥
आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।
श्वात्रमर्का अनूषते-न्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥
इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च ।
यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥
यत् पाञ्चजन्यया विशे-न्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद्बर्हणा विपो ऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥७॥
इयमु ते अनुष्टुति-श्चकृषे तानि पौंस्या ।
प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥ ८ ॥
अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे ।
यवं न पश्व आ ददे ॥ ९ ॥
तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः ।
स्याम मरुत्वतो वृधे ॥ १० ॥
बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः ।
जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥

॥ ३८ ॥ (ऋ० ८।६४।१-१२) गायत्री ।

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥
त्वमीशिषे सुताना-मिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥
एहि प्रेहि क्षयो दि-व्या३ घोषञ्चर्षणीनाम् ।
ओभे पृणासि रोदसी ॥ ४ ॥
त्वं चित् पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥ ५ ॥
वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे ।
अस्माकं काममा पृण ॥ ६ ॥
क१ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ७ ॥
कस्य स्वित् सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति ।
इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥ ८ ॥
कं ते दाना असक्षत वृत्रहन् कं सुवीर्या ।
उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥ ९ ॥
अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते ।
तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १० ॥
अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः ।
आर्जीकीये मदिन्तमः ॥ ११ ॥
तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये ।
एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥

॥ ३९ ॥ (ऋ० ८।६५।१-१२)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
आ याहि तूयमाशुभिः ॥ १ ॥
यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे ।
यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥ २ ॥

आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे ।
इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
आ त इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः ।
रथे वहन्तु बिभ्रतः ॥ ४ ॥
इन्द्रं गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत् ।
एहि नः सुतं पिब ॥ ५ ॥
सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥
यच्चिद्धि शश्वतामसी-न्द्र साधारणस्त्वम् ।
तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥
इदं ते सोम्यं मध्व-धुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
जुषाण इन्द्र तत् पिब ॥ ८ ॥
विश्वाँ अर्यो विपश्चितो ऽति ख्यस्तूयमा गहि ।
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥
दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् ।
मा देवा मघवा रिषत् ॥ १० ॥
सहस्रे पृषतीना-मधि श्चन्द्रं बृहत् पृथु ।
शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥ ११ ॥
नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः ।
श्रवो देवेष्वक्रत ॥ १२ ॥

॥ ४० ॥ (ऋ० ८।६६।१-१५)

कलिः प्रागाथः । प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १५ अनुष्टुप् ।

तरोभिर्वो विदद्वसु-मिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे
हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥
न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते
दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥
यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः ।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिम्
इन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥
निखातं चिद्यः पुरुसंभृतं वसू-दिद्वपति दाशुषे ।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत् करद्
इन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥ ४ ॥
यद् वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम् ।
वयं तत् त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥५
सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः ।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः ॥६
वयमेनमिदा ह्यो ऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भर
आ नूनं भूषत श्रुते ॥ ७ ॥
वृकश्चिदस्य वारण उरामथि-रा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहि
इन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ ८ ॥
कद् न्व१स्याकृत-मिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे
जनुषः परि वृत्रहा ॥ ९ ॥
कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः
कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम् ।
इन्द्रो विश्वान् बेकनाटाँ अहर्दृश
उत क्रत्वा पणीँरभि ॥ १० ॥
वयं घा ते अपूर्व्ये-न्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन् ।
पुरूतमासः पुरुहूत वज्रिवो
भृतिं न प्र भरामसि ॥ ११ ॥
पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।
तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि
शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥ १२ ॥
वयं घा ते त्वे इ-द्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन
मघवन्नस्ति मर्डिता ॥ १३ ॥

त्वं नो॑ अ॒स्या अम॑तेरु॒त क्षु॒धो३॒॑
अ॒भिश॑स्ते॒रव॑ स्पृधि।
त्वं न॑ ऊ॒ती तव॑ चि॒त्रया॑ धि॒या
शिक्षा॑ शचिष्ठ गातु॒वित् ॥ १४ ॥
सोम॒ इद्वः॑ सु॒तो अ॑स्तु॒ कल॑यो॒ मा बि॑भीतन।
अपे॒दे॒ष ध्व॒स्माय॑ति स्व॒यं घै॒षो अपा॑यति ॥ १५ ॥

॥ ४१ ॥ (ऋ० ८।७६।१-१२)
कुरुसुति काण्वः। गायत्री।

इ॒मं नु मा॒यिनं॑ हुव॒ इन्द्र॒मीशा॑न॒मोज॑सा।
म॒रुत्व॑न्तं॒ न वृ॒ञ्जसे॑ ॥ १ ॥
अ॒यमिन्द्रो॑ म॒रुत्स॑खा॒ वि वृ॒त्रस्या॑भिन॒च्छिरः॑।
वज्रे॑ण श॒तप॑र्वणा ॥ २ ॥
वा॒वृ॒धा॒नो म॒रुत्स॒खे-न्द्रो॒ वि वृ॒त्रमै॑रयत्।
सृ॒जन्त्स॑मु॒द्रिया॑ अ॒पः ॥ ३ ॥
अ॒यं ह॒ येन॒ वा इ॒दं स्व॑र्म॒रुत्व॑ता जि॒तम्।
इन्द्रे॑ण॒ सोम॑पीतये ॥ ४ ॥
म॒रुत्व॑न्तमृजी॒षिण॒-मोज॑स्वन्तं विर॒प्शिन॑म्।
इन्द्रं॑ गी॒र्भिर्ह॑वामहे ॥ ५ ॥
इन्द्रं॑ प्र॒त्नेन॒ मन्म॑ना म॒रुत्व॑न्तं हवामहे।
अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ ६ ॥
म॒रुत्वाँ॑ इन्द्र मीढ्वः॒ पिबा॒ सोमं॑ शतक्रतो।
अ॒स्मिन् य॒ज्ञे पु॑रुष्टुत ॥ ७ ॥
तुभ्येदि॑न्द्र म॒रुत्व॑ते सु॒ताः सोमा॑सो अद्रिवः।
हृ॒दा हू॑यन्त उ॒क्थिनः॑ ॥ ८ ॥
पि॒बेदि॑न्द्र म॒रुत्स॑खा सु॒तं सोमं॒ दिवि॑ष्टिषु।
वज्रं॒ शिशा॑न॒ ओज॑सा ॥ ९ ॥
उ॒त्तिष्ठ॒न्नोज॑सा स॒ह पी॒त्वी शिप्रे॑ अवेपयः।
सोम॑मिन्द्र च॒मू सु॒तम् ॥ १० ॥
अनु॑ त्वा॒ रोद॑सी उ॒भे क्रक्ष॑माणमकृपेताम्।
इन्द्र॒ यद् द॑स्यु॒हाभ॑वः ॥ ११ ॥
वाच॑म॒ष्टाप॑दीम॒हं नव॑स्रक्तिमृत॒स्पृश॑म्।
इन्द्रा॒त् परि॑ त॒न्वं॑ ममे ॥ १२ ॥

॥ ४१ ॥ (ऋ० ८।७७।१-११)
[गायत्री, १०-११ प्रगाथः= (बृहती, सतोबृहती)]

ज॒ज्ञा॒नो नु श॒तक्र॑तु॒-र्वि पृ॑च्छ॒दिति॑ मा॒तर॑म्।
क उ॒ग्राः के ह॑ शृण्विरे ॥ १ ॥
आदीं॑ शव॒स्य॑ब्रवी-दौर्णवा॒भम॑ही॒शुव॑म्।
ते पु॑त्र सन्तु नि॒ष्टुरः॑ ॥ २ ॥
सम् इत् तान् वृ॑त्र॒हाखि॑द॒त् खे अ॒राँ इ॑व॒ खेद॑या।
प्रवृ॑द्धो दस्यु॒हाभ॑वत् ॥ ३ ॥
एक॑या प्रति॒धापि॑बत् सा॒कं सरां॑सि त्रिं॒शत॑म्।
इन्द्रः॒ सोम॑स्य काणु॒का ॥ ४ ॥
अ॒भि ग॑न्ध॒र्वम॑तृण-द॒बु॒ध्नेषु॒ रज॒स्स्वा।
इन्द्रो॑ ब्र॒ह्मभ्य॒ इद् वृ॒धे ॥ ५ ॥
निरा॑विध्यद् गि॒रिभ्य॒ आ धा॒रय॑त् प॒क्वमो॑द॒नम्।
इन्द्रो॑ बु॒न्दं स्वा॑ततम् ॥ ६ ॥
श॒तब्र॑ध्न॒ इषु॒स्तव॑ स॒हस्र॑पर्ण॒ एक॒ इत्।
यमि॑न्द्र चकृ॒षे युज॑म् ॥ ७ ॥
तेन॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र॒ नृभ्यो॒ नारि॑भ्यो॒ अत्त॑वे।
स॒द्यो जा॒त ऋ॑भुष्ठिर ॥ ८ ॥
ए॒ता च्यौ॒त्नानि॑ ते कृ॒ता वर्षि॑ष्ठानि॒ परी॑णसा।
हृ॒दा वी॒ड्व॑धारयः ॥ ९ ॥
विश्वेत् ता विष्णु॒राभ॑र-दुरुक्र॒मस्त्वेषि॑तः।
श॒तं म॑हि॒षान् क्षी॑रपा॒कमो॑द॒नं
व॑रा॒हमिन्द्र॑ एमु॒षम् ॥ १० ॥
तु॒वि॒क्षं ते॒ सुकृ॑तं सु॒मयं॒ धनुः॑ सा॒धुर्बु॒न्दो हि॑र॒ण्ययः॑।
उ॒भा ते॑ बा॒हू रण्या॑ सु॒संस्कृ॑त
ऋदू॒पे चि॑दृदू॒वृधा॑ ॥ ११ ॥

॥ ४३ ॥ (ऋ० ८।७८।१-१०)
[गायत्री, १० बृहती।]

पु॒रो॒ळाशं॑ नो॒ अन्ध॑स॒ इन्द्र॑ स॒हस्र॒मा भ॑र।
श॒ता च॑ शूर॒ गोना॑म् ॥ १ ॥
आ नो॑ भर॒ व्यञ्ज॑नं॒ गामश्व॑म॒भ्यञ्ज॑नम्।
सचा॑ म॒ना हि॑र॒ण्यया॑ ॥ २ ॥

उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर ।
त्वं हि शृण्विषे वसो ॥ ३ ॥
नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत ।
नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥
नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे ।
विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥
स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते ।
पुरा निदश्चिकीषते ॥ ६ ॥
क्रत्व इत् पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः ।
वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ॥ ७ ॥
त्वे वसूनि संगता विश्वा च सोम सौभगा ।
सुदात्वपरिह्वृता ॥ ८ ॥
त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः ।
त्वामश्वयुरेषते ॥ ९ ॥
तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे ।
दिनस्य वा मघवन्त्संभृतस्य वा
पूर्धि यवस्य काशिना ॥ १० ॥

॥ ४४ ॥ (ऋ० ८।८०।१-९)

एकद्यूर्नौधसः । गायत्री ।

नह्यन्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो ।
त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १ ॥
यो नः शश्वत् पुराविथाऽमृध्रो वाजसातये ।
स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ २ ॥
किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि ।
कुवित् स्विन्द्र णः शकः ॥ ३ ॥
इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित् सन्तमद्रिवः ।
पुरस्तादेनं मे कृधि ॥ ४ ॥
हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि ।
उपमं वाजयु श्रवः ॥ ५ ॥
अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित् परि ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि ॥ ६ ॥
इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम् ।
इयं धीर्ऋत्वियावती ॥ ७ ॥
मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनम् ।
अपावृक्ता अरत्नयः ॥ ८ ॥
तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि ।
आदित् पतिर्न ओहसे ॥ ९ ॥

॥ ४५ ॥ (ऋ० ८।८१।१-९)

कुसीदी काण्वः ।

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥
विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् ।
तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥
नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् ।
भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥
एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम् ।
न राधसा मर्धिषन्नः ॥ ४ ॥
प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत् साम गीयमानम् ।
अभि राधसा जुगुरत् ॥ ५ ॥
आ नो भर दक्षिणेनाऽभि सव्येन प्र मृश ।
इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक् ॥ ६ ॥
उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम् ।
अदाशूष्टरस्य वेदः ॥ ७ ॥
इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः ।
अस्माभिः सु तं सनुहि ॥ ८ ॥
सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः ।
वशैश्च मक्षू जरन्ते ॥ ९ ॥

इषा मन्दस्वादु ते ऽरं वराय मन्यवे।
भुवत् त इन्द्र शं हृदे ॥ ३ ॥
आ त्वशत्रवा गहि न्युक्थानि च हूयसे।
उपमे रोचने दिवः ॥ ४ ॥
तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम्।
प्र सोम इन्द्र हूयते ॥ ५ ॥
इन्द्र श्रुधि सु मे हव—मस्मे सुतस्य गोमतः।
वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥
य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ७ ॥
यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥
यं ते श्येनः पदाभरत् तिरो रजांस्यस्पृतम्।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ९ ॥

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।२८।१-४)
आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। अनुष्टुप्।

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे।
उलूखलसुताना—मवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥
यत्र द्वाविव जघना—धिषवण्या कृता।
उलूखलसुताना—मवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥
यत्र नार्यपच्यव—मुपच्यवं च शिक्षते।
उलूखलसुताना—मवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥
यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव।
उलूखलसुताना—मवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४ ॥

॥ ४८ ॥ (ऋ० १।२९।१-७) पङ्क्तिः।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥
शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

॥ ४९ ॥ (ऋ० १।३०।१-१६)
१-१०, १२-१५ गायत्री, ११ पादनिचृद्गायत्री, १६ त्रिष्टुप्।

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिरम्।
एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे।
समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतये ऽस्मिन् वाजे शतक्रतो।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

ा वा गमयद्दि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
जेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥
नु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥
त्वां वयं विश्ववारा ऽऽ शास्महे पुरुहूत ।
खे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥
साकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् ।
खे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११ ॥
था तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु ।
था त उश्मसीष्टये ॥ १२ ॥
वतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
मन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥
ा घ त्वावान् त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
णोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥
ा यद् दुवः शतक्रत वा कामं जरितॄणाम् ।
णोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥
श्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय
ानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
त नो हिरण्यरथं दंसनावान्
स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥

॥ ५० ॥ (ऋ० १।३२।१-१५)
हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं
यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द
प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना
अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रं
अहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥
यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनां
आन्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं
तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥
अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसं
इन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णा
अहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ५ ॥
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे
महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां
सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रं
आस्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्
पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥ ७ ॥
नदं न भिन्नममुया शयानं
मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्
तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥
नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रा
इन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्
दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां
काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो
दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ १० ॥
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्
निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्
वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार ॥ ११ ॥ (७६०)

अदन्यो वार्ग अभयस्तदिन्द्र
सुके यत् त्वा प्रत्यदन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोमं
अवासृजः सर्तवे सुत सिन्धून् ॥ १२ ॥
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध
न यां मिहमकिरद् ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिश्च
उतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र
हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः
श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ १४ ॥
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा
शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनां
अरान् न नेमिः परि ता बभूव ॥ १५ ॥

॥ ५१ ॥ (ऋ० १।३३।१-१५)

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रं
अस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो
गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥
उपेदहं धनदामप्रतीतं
जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैः
यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥
नि सर्वसेन इषुधींरसक्त
समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं
मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनं
एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्
अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्र
अयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र
निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनां
अयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः
प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥
त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्च
अयोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा
प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या
हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं
परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥
परि यदिन्द्र रोदसी उभे
अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैः
निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुः
न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो
निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १० ॥
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्य
अवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र
ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥ ११ ॥

न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा
वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो
वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्
वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः
प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्
प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यां
उच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु
क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्
छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥ १५ ॥

॥ ५१ ॥ (ऋ० १।५१।१-१५)
सव्य आङ्गिरसः । जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियम्
इन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा
भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥
अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयो
ऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं
शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २ ॥
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप
उतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद् विमदायावहो वसु
आजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३ ॥
त्वमपामपिधानावृणोरप
अधारयः पर्वते दानुमद् वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिम्
आदित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः
स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः
प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथ
अरन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा
सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता
तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो
वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥
वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो
बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता
विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतान्
आभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतो द्यामिनक्षतः
स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥ ९ ॥
तक्षद् यत् त उशना सहसा सहो
वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज
आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥ १० ॥
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ
इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्
वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः ॥ ११ ॥

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र
सृके यत् त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोमं
अवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥ १२ ॥
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध
न यां मिहमकिरद् ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिश्च
उतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र
हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः
श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ १४ ॥
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा
शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनां
अरान् न नेमिः परि ता बभूव ॥ १५ ॥

॥५१॥ (ऋ. १।३२।१-१५)

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रं
अस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो
गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥
उपेदहं धनदामप्रतीतं
जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैः
यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त
समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं
मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ
एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्
अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्र
अयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र
निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनां
अयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः
प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥
त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्च
अयोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा
प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या
हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं
परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥
परि यदिन्द्र रोदसी उभे
अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैः
निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुः
न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो
निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १० ॥
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्य
अवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र
ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥ ११ ॥

न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा
वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो
वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्
वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः
प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्
प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यां
उच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु
क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्
छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥ १५ ॥

॥ ५२ ॥ (ऋ० १।५२।१-१५)
सव्य आङ्गिरस ः । जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियं
इन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा
भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥
अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयो
ऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं
शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २ ॥
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप
उतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद् विमदायावहो वसु
आजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३ ॥
त्वमपामपिधानावृणोरप
अधारयः पर्वते दानुमद् वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिं
आदित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः
स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः
प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथ
अरन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा
सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता
तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो
वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥
वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो
बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता
विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतान्
आभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतो द्यामिनक्षतः
स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥ ९ ॥
तक्षद् यत् त उशना सहसा सहो
वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज
आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥ १० ॥
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ
इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्
वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः ॥ ११ ॥

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि
शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकन
अनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥ १२ ॥

अददा अर्भां महते वचस्यवे
कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो
विश्वेत् ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥ १३ ॥

इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके
पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयु-
रिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ १४ ॥

इदं नमो वृषभाय स्वराजे
सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः
स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥ १५ ॥

॥५२॥ (ऋ० १।५२।१-१५) जगती, १३, १५ त्रिष्टुप् ।

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं
शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथ-
मेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः
सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृत-
मुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥

स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि
चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया
मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥ ३ ॥

आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः
समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः
शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥ ४ ॥

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो
रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा
भिनद् वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥ ५ ॥

परी घृणा चरति तित्विषे शवो-
ऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनो
निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥

ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो
ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शव-
स्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ७ ॥

जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रत-
विन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायस-
मधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥

बृहत् स्वश्चन्द्रममवद् यदुक्थ्य-
मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः
स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥

द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वना-
दयोयवीद् भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद् बद्बधानस्य रोदसी
मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥ १० ॥

यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजि-
रहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो
द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥ ११ ॥

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः
स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसो
अपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १२ ॥
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या
ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा
सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥ १३ ॥
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो
न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत
एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १४ ॥
आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ
विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन
नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥ १५ ॥

॥ ५४ ॥ (ऋ० १।५३।१-११) जगती १०-११ त्रिष्टुप् ।

न्यू३ षु वाचं प्र महे भरामहे
गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्
न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि
दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः
सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम
तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर
मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिः
निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिः
युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि
सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया
गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥
ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या
ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति
बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया
पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति
निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीः
तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरो
अनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दश
अबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो
नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिः
तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं
महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥
य उदृचीन्द्र देवगोपाः
सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

॥ ५५ ॥ ऋ० १।५४।१-११) जगती; ६,८-९, ११ त्रिष्टुप्।

मा नो॑ अ॒स्मिन् म॑घवन् पृ॒त्स्वंह॑सि
न॒हि ते॒ अन्तः॒ शव॑सः परी॒णशे॑।
अक्र॑न्दयो न॒द्यो॒३॒॑ रोरु॑वद् वना॑
क॒था न क्षो॒णीर्भि॒यसा॒ समा॑रत ॥ १ ॥
अर्चा॑ श॒क्राय॑ शा॒किने॒ शची॑वते
शृ॒ण्वन्त॒मिन्द्रं॑ म॒हय॑न्न॒भि ष्टु॑हि।
यो धृ॒ष्णुना॒ शव॑सा॒ रोद॑सी उ॒भे
वृषा॑ वृष॒त्वा वृ॑ष॒भो न्यृ॒ञ्जते॑ ॥ २ ॥
अर्चा॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते शू॒ष्यं१॒॑ वचः॒
स्वक्ष॑त्रं॒ यस्य॑ धृष॒तो धृ॒षन्मनः॑।
बृ॒हच्छ्र॑वा॒ असु॑रो ब॒र्हणा॑ कृ॒तः
पु॒रो हरि॑भ्यां वृष॒भो रथो॒ हि षः ॥ ३ ॥
त्वं दि॒वो बृ॑ह॒तः सानु॑ कोपयो
ऽव॒ त्मना॑ धृष॒ता शम्ब॑रं भिनत्।
यन्मा॒यिनो॑ व्र॒न्दिनो॑ म॒न्दिना॑ धृ॒षत्
शि॒तां गभ॑स्तिम॒शनिं॑ पृत॒न्यसि॑ ॥ ४ ॥
नि यद् वृ॒णक्षि॑ श्वस॒नस्य॑ मू॒र्धनि॒
शुष्ण॑स्य चिद् व्र॒न्दिनो॒ रोरु॑वद् वना॑।
प्रा॒चीने॑न॒ मन॑सा ब॒र्हणा॑वता॒
यद॒द्या चि॑त् कृ॒णवः॒ कस्त्वा॒ परि॑ ॥ ५ ॥
त्वमा॑विथ॒ नर्यं॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॒
त्वं तु॒र्वीतिं॑ व॒य्यं॑ शतक्रतो।
त्वं रथ॒मेत॑शं॒ कृत्व्ये॒ धने॒
त्वं पुरो॑ नव॒तिं दम्भयो॒ नव॑ ॥ ६ ॥
स घा॒ राजा॒ सत्प॑तिः शूशुव॒ज्जनो॑
रा॒तह॑व्यः॒ प्रति॒ यः शास॒मिन्व॑ति।
उ॒क्था वा॒ यो अ॑भिगृ॒णाति॒ राध॑सा॒
दानु॑रस्मा॒ उप॑रा पिन्वते दि॒वः ॥ ७ ॥
अस॑मं क्ष॒त्रमस॑मा मनी॒षा
प्र सो॑म॒पा अप॑सा सन्तु॒ नेमे॑।
ये त॑ इन्द्र द॒दुषो॑ व॒र्धय॑न्ति
महि॑ क्ष॒त्रं स्थवि॑रं॒ वृष्ण्यं॑ च ॥ ८ ॥
तुभ्येदे॒ते ब॑हु॒ला अद्रि॑दुग्धाः
च॒मू॒षद॑श्चम॒सा इ॑न्द्र॒पानाः॑।
व्य॑श्नुहि त॒र्पया॒ काम॑मेषा॒म्
अथा॒ मनो॑ वसु॒देया॑य कृष्व ॥ ९ ॥
अ॒पाम॑तिष्ठद्ध॒रुण॑ह्वरं॒ तमो॒
ऽन्तर्वृ॒त्रस्य॑ ज॒ठरे॑षु॒ पर्व॑तः।
अ॒भीमिन्द्रो॑ न॒द्यो॑ व॒व्रिणा॑ हि॒ता
विश्वा॑ अनु॒ष्ठाः प्र॑व॒णेषु॑ जिघ्नते ॥ १० ॥
स शे॑वृ॒धमधि॑ धा द्यु॒म्नम॒स्मे
महि॑ क्ष॒त्रं ज॑ना॒षाळि॑न्द्र॒ तव्य॑म्।
रक्षा॑ च नो म॒घोनः॑ पा॒हि सू॒रीन्
रा॒ये च॑ नः स्वप॒त्या इ॒षे धाः॑ ॥ ११ ॥

॥ ५६ ॥ (ऋ० १।५५।१-८) जगती।

दि॒वश्चि॑दस्य वरि॒मा वि प॑प्रथ॒
इन्द्रं॒ न म॒ह्ना पृ॑थि॒वी च॒न प्रति॑।
भी॒मस्तुवि॑ष्माञ्चर्ष॒णिभ्य॑ आत॒पः
शिशी॑ते॒ वज्रं॒ तेज॑से॒ न वंस॑गः ॥ १ ॥
सो अ॑र्ण॒वो न न॒द्यः॑ समु॒द्रियः॒
प्रति॑ गृभ्णाति॒ विश्रि॑ता॒ वरी॑मभिः।
इन्द्रः॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ वृषायते
स॒नात् स यु॒ध्म ओज॑सा पनस्यते ॥ २ ॥
त्वं तमि॑न्द्र॒ पर्व॑तं॒ न भोज॑से
म॒हो नृ॒म्णस्य॒ धर्म॑णामिरज्यसि।
प्र वी॒र्ये॑ण दे॒वताति॑ चेकिते॒
विश्व॑स्मा उ॒ग्रः कर्म॑णे पु॒रोहि॑तः ॥ ३ ॥
स इद् वने॑ नम॒स्युभि॑र्वचस्यते॒
चारु॒ जने॑षु प्रब्रुवा॒ण इ॑न्द्रि॒यम्।
वृषा॒ छन्दु॑र्भवति हर्य॒तो वृषा॒
क्षेमे॑ण॒ धेनां॑ म॒घवा॒ यदिन्व॑ति ॥ ४ ॥ (८००)

स इन्महानि समिथानि मज्मना
कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद् दधति त्विषीमत
इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ५ ॥
स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा
क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवे
अव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६ ॥
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते
अर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते
न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥ ७ ॥
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोः
अषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिः
तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ ॥

॥ ५७ ॥ (ऋ० १।५६।१-६)

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषो
अत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं
रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १ ॥
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो
गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥ २ ॥
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये
गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे
दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥
देवी यदि तविषी त्वावृधोतय
इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम
इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४ ॥
वि यत् तिरो धरुणमच्युतं रजो
अतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्
वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा
पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो
वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥ ६ ॥

॥ ५८ ॥ (ऋ० १।५७।१-६)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये
सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं
राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय
आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत
इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर
उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं
ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत
ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्
क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥
भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मसि
अस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम
इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं
वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः
सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥

॥ ५९ ॥ (ऋ० १।१०१।१-११)

कुत्स आङ्गिरसः । (१ गर्भस्राविण्युपनिषद्) । जगती; ८-११ त्रिष्टुप् ।

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो
यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥
यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना
यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्
यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी
य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः
यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिः
यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुः
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो
रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥
यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे
यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा
त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥
त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष
त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिः
अस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र
वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तु
उशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा
वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

॥ ६० ॥ (ऋ० १।१०२।१-११)

१-१० जगती; ११ त्रिष्टुप् ।

इमां ते धियं प्र भरे महो महीम्
अस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिम्
इन्द्रं देवासः शवसामदन्नु ॥ १ ॥
अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति
द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे
श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥

तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये
जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत
त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३ ॥
वयं जयेम त्वया युजा वृतम्
अस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि
प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे
धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये
जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः
कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसा
अथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥
उत् ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस
उत् सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मही
अधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ॥ ७ ॥
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसः
तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथ
अशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे
त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदम्
इन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथ
अर्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमसि
अथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्तु
अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

॥ ६१ ॥ (ऋ० १।१०३।१-८) त्रिष्टुप् ।

तत् त इन्द्रियं परमं पराचैः
अधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद् दिव्य१न्यदस्य
समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च
वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं
व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः
पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः ।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्य
आर्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥
तदूचुषे मानुषेमा युगानि
कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री
यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं
श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान्
स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे
सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरो
अयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ
यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च
विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥ (८४५)

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र ।
यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता-
मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥
॥ ६१ ॥ (ऋ० १।१०४।१-९)
योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि
तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्
दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गु-
र्नू चित् तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्
ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥
अव त्मना भरते केतवेदा
अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे
हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥ ३ ॥
युयोप नाभिरुपरस्यायोः
प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी
पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥
प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योः
ओको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादि-
न्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥ ५ ॥
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्व-
नागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः
श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
अधा मन्ये श्रत् ते अस्मा अधायि
वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योना-
विन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥ ७ ॥
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा
मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्
मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि ॥ ८ ॥
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहु-
रयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व
पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ ९ ॥
॥ ६२ ॥ (ऋ० १।६१।१-१६)
नोधा गौतम ।
अस्मा इदु प्र तवसे तुराय
प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओह-
मिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥
अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि
भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा
प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥
अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां
सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि
रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्ति
इन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्ये-
न्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं
स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म
तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६ ॥
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो
महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान्
विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीः
इन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी
नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं
दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः
स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥
अस्येदेव शवसा शुषन्तं
वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चद्
अभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः
परि यद् वज्रेण सीमयच्छत्।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन्
तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो
वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चा
इष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि
तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधानि
ऋघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा
द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं
सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषा
एको यद् वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्ति
इन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः
प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

॥ ६४ ॥ (ऋ० १।६१।१-१६)

प्र मन्महे शवसानाय शूषम्
आङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियाय
अर्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥
प्र वो महे महि नमो भरध्वम्
आङ्गूष्यं शवसानाय साम।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा
अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २ ॥
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ
विदत् सरमा तनयाय धासिम्।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः
समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥ ३ ॥
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः
स्वरेणाद्रिं स्वर्यो नवग्वैः।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र
वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ ४ ॥
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वः
उषसा सूर्येण गोभिरन्धः।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु
दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ ५ ॥

तद् प्रयक्षतममस्य कर्म
दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्
मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ॥ ६ ॥
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे
अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्
अधारयद् रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥
सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे
पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिः
वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः
सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद् दधिषे पक्वमन्तः
पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु ॥ ९ ॥
सनात् सनीळा अवनीरवाता
व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीः
दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥ १० ॥
सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैः
वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं
स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषाः ॥ ११ ॥
सनादेव तव रायो गभस्तौ
न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः
शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥ १२ ॥
सनायते गोतम इन्द्र नव्यं
अतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः
प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १३ ॥

॥ ६५ ॥ (ऋ० १।६३।१-९)

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैः
द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा
भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेः
आ ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्
पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्
त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ
यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा
वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः ।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैः
वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्
दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वः
घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥ ५ ॥
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ
स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्ये
ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्
पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्क्
अंहो राजन् वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रां
इषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि
त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥ (८१९)

अकारि त इन्द्र गोतमेभिः
ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम्।
सुपेशसं वाजमा भरा नः
प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

॥ ६६ ॥ (ऋ० ८।८८।१-६)
[प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।]

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव
इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं
मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः।
यद् दित्ससि स्तुवते मावते वसु
नकिष्टदा मिनाति ते ॥ ३ ॥
योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना
विश्वा जाताभि मज्मना।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति
यं गोतमा अजीजनन् ॥ ४ ॥
प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवं
अनु स्वधां ववक्षिथ ॥ ५ ॥
नकिः परिष्टिर्मघवन् मघस्य ते
यद् दाशुषे दशस्यसि।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता
मंहिष्ठो वाजसातये ॥ ६ ॥

॥ ६७ ॥ (ऋ० १।८०।१-१६)
गोतमो राहूगणः। (अत्र्वा, मनुः, दध्यङ् च)। पंक्तिः।

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिं
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसा
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥
निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपो
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥
इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः।
अभिक्रम्याव जिघ्नते अपः सर्माय चोदयन्
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥
अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छति
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवो ऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीः
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७ ॥
वि ते वज्रासो अस्थिरन् नवतिं नाव्या अनु।
महत् त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितं
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥
सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवु: इन्द्राय ब्रह्मोद्यतं
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥
इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः।
महत् तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजद्
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १० ॥
इमे चित् तव मन्यवे वेपेते भियसा मही।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीः
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥

न वेपसा न तन्यत　इन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः
सहस्रभृष्टिरायता ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
यद् वृत्रं तव चाशनिं　वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो
दिवि ते बद्बधे शवो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १३ ॥
अभिष्टने ते अद्रिवो　यत् स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित् तव मन्यव
इन्द्र वेविज्यते भिया-ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥
नहि नु यादधीमसी-न्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं
देवा ओजांसि सं दधु-रर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥
यामथर्वा मनुष्पिता　दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथा
इन्द्र उक्था समग्मता-ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥

॥ ६८ ॥ (ऋ० १।८१।१-९)

इन्द्रो मदाय वावृधे　शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषु-तेमर्भे हवामहे
स वाजेषु प्र नोऽविषत्　　　　　॥ १ ॥
असि हि वीर सेन्यो　ऽसि भूरि परादुदिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो　यजमानाय शिक्षसि
सुन्वते भूरि ते वसु　　　　　॥ २ ॥
यदुदीरत आजयो　धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी　कं हनः कं वसौ दधो
ऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः　　　　　॥ ३ ॥
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं　भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयो-र्नि शिप्री हरिवान् दधे
हस्तयोर्वज्रमायसम्　　　　　॥ ४ ॥
आ पप्रौ पार्थिवं रजो　बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन　न जातो न जनिष्यते
ऽति विश्वं ववक्षिथ　　　　　॥ ५ ॥
यो अर्यो मर्तभोजनं　पराददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु　वि भजा भूरि ते वसु
भक्षीय तव राधसः　　　　　॥ ६ ॥
मदेमदे हि नो ददि-र्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतो-भयाहस्त्या वसु
शिशीहि राय आ भर　　　　　॥ ७ ॥
मादयस्व सुते सचा　शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसु-मुप कामान्त्ससृज्महे
ऽथा नोऽविता भव　　　　　॥ ८ ॥
एते त इन्द्र जन्तवो　विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनाना-मर्यो वेदो अदाशुषां
तेषां नो वेद आ भर　　　　　॥ ९ ॥

॥ ६९ ॥ (ऋ० १।८२।१-६) पंक्तिः; ६ जगती ।

उपो षु शृणुही गिरो　मघवन् मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः　कर आदर्थयास इद्
योजा न्विन्द्र ते हरी　　　　　॥ १ ॥
अक्षन्नमीमदन्त ह्य-व प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो　विप्रा नविष्ठया मती
योजा न्विन्द्र ते हरी　　　　　॥ २ ॥
सुसंदृशं त्वा वयं　मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः　स्तुतो याहि वशाँ अनु
योजा न्विन्द्र ते हरी　　　　　॥ ३ ॥
स घा तं वृषणं रथ-मधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं　पूर्णमिन्द्र चिकेतति
योजा न्विन्द्र ते हरी　　　　　॥ ४ ॥
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण　उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां　मन्दानो याह्यन्धसो
योजा न्विन्द्र ते हरी　　　　　॥ ५ ॥
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी
उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत् त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः
पूषण्वान् वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः　　　　　॥ ६ ॥

(९१०)

॥ ७० ॥ (ऋ० १।८३।१-६) जगती।

अश्वा॑वति प्रथ॒मो गोषु॑ गच्छति
सुप्रा॒वीरि॑न्द्र॒ मर्त्य॒स्तवो॒तिभिः॑ ।
तमित् पृ॑णक्षि॒ वसु॑ना॒ भवी॑यसा
सिन्धु॒मापो॒ यथा॒भितो॒ विचे॑तसः ॥ १ ॥
आपो॒ न दे॒वीरुप॑ यन्ति होत्रियं॑
अ॒वः प॑श्यन्ति॒ वित॑तं॒ यथा॒ रजः॑ ।
प्राचै॑र्दे॒वासः॒ प्र ण॑यन्ति देव॒युं
ब्र॑ह्मप्रियं॑ जोषयन्ते व॒रा इ॑व ॥ २ ॥
अधि॒ द्वयो॑रदधा उ॒क्थ्यं॑१ वचो॑
य॒तस्रु॑चा मिथु॒ना या स॑प॒र्यतः॑ ।
असं॑यत्तो व्र॒ते ते॑ क्षेति॒ पुष्य॑ति
भ॒द्रा श॒क्तिर्यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥ ३ ॥
आदङ्गि॑राः प्रथ॒मं द॑धिरे॒ वय॑
इ॒द्धाग्न॑यः॒ शम्या॒ ये सु॑कृ॒त्यया॑ ।
सर्वं॑ प॒णेः सम॑विन्दन्त॒ भोज॑नं
अश्वा॑वन्तं॒ गोम॑न्त॒मा प॒शुं नरः॑ ॥ ४ ॥
य॒ज्ञैरथ॑र्वा प्रथ॒मः प॒थस्त॑ते
ततः॒ सूर्यो॑ व्रत॒पा वे॒न आज॑नि ।
आ गा आ॑जदु॒शना॑ का॒व्यः सचा॑
य॒मस्य॑ जा॒तम॒मृतं॑ यजामहे ॥ ५ ॥
ब॒र्हिर्वा॒ यत् स्व॑प॒त्याय॑ वृ॒ज्यते
अ॒र्को वा॒ श्लोक॑मा॒घोष॑ते दि॒वि ।
ग्रावा॒ यत्र॒ वद॑ति का॒रुरु॒क्थ्य१॒स्
तस्येदिन्द्रो॑ अभिपि॒त्वेषु॑ रण्यति ॥ ६ ॥

॥ ७१ ॥ (ऋ० १।८४।१-२०)

[१-६ अनुष्टुप्; ७-९ उष्णिक्, १०-१२ पंक्तिः १३-१५ गायत्री; १६-१८ त्रिष्टुप्; (प्रगाथः= १९ बृहती, २० सतोबृहती ।)]

असा॑वि॒ सोम॑ इन्द्र ते॒ शवि॑ष्ठ धृष्ण॒वा ग॑हि ।
आ त्वा॑ पृणक्त्विन्द्रि॒यं रजः॒ सूर्यो॒ न र॒श्मिभिः॑ ॥१
इन्द्र॒मिद्धरी॑ वहतो॒ऽप्रति॑धृष्टशवसम् ।
ऋषी॑णां च स्तु॒तीरुप॑ य॒ज्ञं च॒ मानु॑षाणाम् ॥२॥
आ ति॑ष्ठ वृत्रह॒न् रथं॑ यु॒क्ता ते॒ ब्रह्म॑णा॒ हरी॑ ।
अ॒र्वा॒ची॒नं सु ते॒ मनो॒ ग्रावा॑ कृणोतु व॒ग्नुना॑ ॥३॥
इ॒ममि॑न्द्र सु॒तं पि॑ब॒ ज्येष्ठ॒मम॑र्त्यं॒ मद॑म् ।
शु॒क्रस्य॑ त्वा॒भ्य॑क्षर॒न् धारा॑ ऋ॒तस्य॒ साद॑ने ॥४॥
इन्द्रा॑य नू॒नम॑र्चतो॒—क्थानि॑ च ब्रवीतन ।
सु॒ता अ॑मत्सु॒रिन्द॑वो॒ ज्येष्ठं॑ नमस्यता॒ सहः॑ ॥५॥
नकि॒ष्ट्वद् र॒थीत॑रो॒ हरी॒ यदि॑न्द्र॒ यच्छ॑से ।
नकि॒ष्ट्वानु॑ म॒ज्मना॒ नकिः॒ स्वश्व॑ आनशे ॥ ६ ॥
य एक॒ इद् वि॒दय॑ते॒ वसु॒ मर्ता॑य दा॒शुषे॑ ।
ईशा॑नो॒ अप्र॑तिष्कुत॒ इन्द्रो॑ अ॒ङ्ग ॥ ७ ॥
क॒दा मर्त॑मरा॒धसं॑ प॒दा क्षुम्प॑मिव स्फुरत् ।
क॒दा नः॑ शुश्रव॒द् गिर॒ इन्द्रो॑ अ॒ङ्ग ॥ ८ ॥
यश्चि॒द्धि त्वा॑ ब॒हुभ्य॒ आ सु॒तावाँ॑ आ॒विवा॑सति ।
उ॒ग्रं तत् प॑त्यते॒ शव॒ इन्द्रो॑ अ॒ङ्ग ॥ ९ ॥
स्वा॒दोरि॒त्था वि॑षू॒वतो॒ मध्वः॑ पिबन्ति गौ॒र्यः॑ ।
या इन्द्रे॑ण स॒याव॑री॒—र्वृष्णा॒ मद॑न्ति शो॒भसे॒
वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ १० ॥
ता अ॑स्य पृशना॒युवः॒ सोमं॑ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।
प्रि॒या इन्द्र॑स्य धे॒नवो॒ वज्रं॑ हिन्वन्ति॒ साय॑कं
वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ ११ ॥
ता अ॑स्य॒ नम॑सा॒ सहः॑ सप॒र्यन्ति॒ प्रचे॑तसः ।
व्र॒तान्य॑स्य सश्चिरे पु॒रूणि॑ पू॒र्वचि॑त्तये
वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ १२ ॥
इन्द्रो॑ दधी॒चो अ॒स्थभि॒—र्वृ॒त्राण्यप्र॑तिष्कुतः ।
ज॒घान॑ नव॒तीर्नव॑ ॥ १३ ॥
इ॒च्छन्नश्व॑स्य॒ यच्छिरः॒ पर्व॑ते॒ष्वप॑श्रितम् ।
तद् वि॑दच्छर्य॒णाव॑ति ॥ १४ ॥
अत्राह॒ गोर॑मन्वत॒ नाम॒ त्वष्टु॑रपी॒च्य॑म् ।
इ॒त्था च॒न्द्रम॑सो गृ॒हे ॥ १५ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य
शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्
य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ १६ ॥
क ईषते तुज्यते को बिभाय
को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत राये
अधि ब्रवत् तन्वे३ को जनाय ॥ १७ ॥
को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन
स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम
को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८ ॥
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र
ब्रवीमि ते वचः ॥ १९ ॥
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसो
अस्मान् कदा चना दभन्।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष
वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २० ॥

॥ ७१ ॥ (ऋ० १।१००।१-१९)
वार्षागिराः ऋज्राश्वाऽम्बरीष-सहदेव-भयमान-सुराधसः।
त्रिष्टुप्।

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका
महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो
भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैः
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः
पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिः
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्
वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥
स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा
नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान्।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥
स मन्युमीः समदनस्य कर्ता
अस्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ
तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥
तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर्विदन्
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥
स सव्येन यमति व्राधतश्चित्
स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित् सनिता धनानि
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिः
विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्व१द्य।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीः
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥
स जामिभिर्यत् समजाति मीळ्हे
अजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥

स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः
सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १२ ॥
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा
दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १३ ॥
यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं
परिभुजद् रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत् क्रतुभिर्मन्दसानो
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥
न यस्य देवा देवता न मर्ता
आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १५ ॥
रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीः
द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं
मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६ ॥
एतत् त्यत् त इन्द्र वृष्ण उक्थं
वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः
सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैः
हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः
सनत् सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८ ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्तु
अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

॥ ७३ ॥ (ऋ० ८।९७।१-१५)
रेभः काश्यपः । बृहती, १०, १३ अतिजगती, ११-१२ उपरिष्टाद्बृहती, १४ त्रिष्टुप्, १५ जगती ।

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय
ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥
यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति
तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ २ ॥
य इन्द्र सस्त्यव्रतो ऽनुष्वापमदेवयुः ।
स्वैः ष एवैर्मुमुरत् पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ३
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः
सुतावाँ आ विवासति ॥ ४ ॥
यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टपि ।
यत् पार्थिवे सदने वृत्रहन्तम
यदन्तरिक्ष आ गहि ॥ ५ ॥
स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्पते ।
मादयस्व राधसा सूनृतावता
इन्द्र राया परीणसा ॥ ६ ॥
मा न इन्द्र परा वृणग् भवा नः सधमाद्यः ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं
मा न इन्द्र परा वृणक् ॥ ७ ॥
अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु ।
कृधी जरित्रे मघवन्नवो महद्
अस्मे इन्द्र सचा सुते ॥ ८ ॥
न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।
विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि
न त्वा देवास आशत ॥ ९ ॥
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः
सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिम्
उतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम्

समीं रेभासो अस्वरन् इन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे
धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ ११ ॥
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहः
अपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ १२ ॥
तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं
सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो
ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥१३॥
त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा
शविष्ठ शक्र नाशयध्यै ।
त्वद् विश्वानि भुवनानि वज्रिन्
द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥ १४ ॥
तन्म ऋतमिन्द्र शूर चित्र पातु
अपो न वज्रिन् दुरिताति पर्षि भूरि ।
कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः
विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥ १५ ॥

॥ ७४ ॥ (ऋ० ८।१००।१-९)
नेमो भार्गव , ४-५ इन्द्र , ९ वज्रो वा ।
त्रिष्टुप् , ६ जगती, ७,९ अनुष्टुप् ।

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्
विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्र
आदिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥ १ ॥
दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे
हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।
असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मे
अधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ॥ २ ॥
प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त
इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति ।
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह
क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम ॥ ३ ॥
अयमस्मि जरितः पश्य मेह
विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्ति
आदर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥ ४ ॥
आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ
एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचद्
अचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥ ५ ॥
विश्वेत् ता ते सवनेषु प्रवाच्या
या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते ।
पारावतं यत् पुरुसंभृतं वसु
अपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ॥ ६ ॥
प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो वो अवावरीत् ।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥७॥
समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः ।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिम् ॥ ९ ॥
सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व
द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धून्
इन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः ॥ १२ ॥

॥ ७५ ॥ (ऋ० १।१२९।१-११)
परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टि , ८-९ अतिशक्वर्यौ, ११ अष्टि।

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातये
अपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।
सद्यश्चित् तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसाम्
इमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्
दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभि–रसि प्रतूर्तये नृभिः ।
यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं
पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥ १००(

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं
कं चिद् यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद् दिवे तद् रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः
सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये
सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं
विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥
नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्
तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभि-रुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निः
आसा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥
प्र तद् वोचेयं भव्यायेन्दवे
हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति
रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव स्रवेदघशंसोऽवतर-मव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥६॥
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या
वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभि-रेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिः
यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती
परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥
त्वं न इन्द्र राया परीणसा
याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः
सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ९ ॥
त्वं न इन्द्र राया तरूषसा
उग्रं चित् त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद् रिरिषेः कं चिदद्रिवो
रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥
पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधो
अवयाता सदमिद् दुर्मतीनां देवः सन् दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्य रक्षस-स्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद् वसो
रक्षोहणं त्वा जीजनद् वसो ॥ ११ ॥

॥७३॥ (ऋ० १।१३०।१-१०) अत्यष्टिः; १० त्रिष्टुप् ।

एन्द्र याह्युप नः परावतो
नायमच्छा विदथानीव सत्पतिः
अस्तं राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये
मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः
कोशेन सिक्तमवतं न वंसगः
तातृषाणो न वंसगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्य-
महा विश्वेव सूर्यम् [illegible]
अविन्दद् दिवो निहितं गुहा निधिं
वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते [illegible]
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन् [illegible]
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता
द्वार इषः परीवृताः

दाद्दहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः
क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्य—दहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि
परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥
त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवे
अच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो
जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥
इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो
रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना
विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥
भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे
दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा
विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं
प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८॥
सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा
प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायती—शान आ मुषायति ।
उशना यत् परावतो ऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिः
अहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः
पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो
वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥ १० ॥

॥ ७७ ॥ (ऋ० १।१३१।१-७) अत्यष्टिः ।

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नत
इन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिः
द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा
रातानि सन्तु मानुषा ॥ १ ॥
विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते
समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः
स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो
व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं
वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३ ॥
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः
पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः
सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्य—मयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो
मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥
आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्
मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत
श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

उतो नो अस्या उषसो जुषेत हि
अर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः
स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो
मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुः
अमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिः
विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥

॥ ७८ ॥ (ऋ० १।१३२।१-६)
[१ (अर्धर्चस्य) इन्द्रापर्वतौ]।

त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन
इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन् यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं
वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥
स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मनि
उषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो
भद्रा भद्रस्य रातयः ॥ २ ॥
तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं
यस्मिन् यज्ञे वारमकृण्वत क्षयम्
ऋतस्य वारसि क्षयम् ।
वि तद् वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो
बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥
नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं
यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजं
इन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्यः समान्या दिशाऽस्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं
हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥
सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्
धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद् बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो
देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा
यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय च्छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो
दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥

॥ ७९ ॥ (ऋ० १।१३३।१-७)
१ त्रिष्टुप्, २-४ अनुष्टुप्, ५ गायत्री, ६ धृतिः, ७ अष्टिः ।

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन
द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा
वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥ १ ॥
अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥
अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥
यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत् सु ते मनायति तकत् सु ते मनायति ॥४॥
पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः
शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो
घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिः
त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः
सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥७॥

॥८०॥ (ऋ० १।१३३।६) अत्यष्टिः।

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव
इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदः
तुभ्यं सुतास उद्भिदः।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि
सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥

॥८१॥ (ऋ० १।१६७।१)
अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। त्रिष्टुप्।

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः
सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः।
सहस्रं रायो मादयध्यै
सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥

॥८२॥ (ऋ० १।१६९।१-८)
त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदा विराट्।

महश्चित् त्वमिन्द्र यत एतान्
महश्चिदसि त्यजसो वरूता।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्
सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥
अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीः
विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना
स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥
अम्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे
सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वान्
आपो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा
ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम्।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः
स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥
त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः
कस्य चिदृतायोः।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु
ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥
प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्
महः पार्थिवे सदने यतस्व।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एताः
तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥
प्रति घोराणामेतानामयासां
मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैः
ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या
रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैः
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

॥८३॥ (ऋ० १।१७०।१-५)
[इन्द्रः, (४ अगस्त्यो वा), २,५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः]।
१ बृहती, २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्।

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद् वेद यदद्भुतम्।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यम्
उताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥२॥
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे।
विद्मा हि ते यथा मनो ऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥३॥
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥

त्वमीशिषे वसुपते वसूनां
त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्व
अध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥

॥ ८४ ॥ (ऋ० १।१७३।१-१३)
त्रिष्टुप्, ४ विराट्स्थाना विषमपदा वा।

गायत् साम नभन्यं१ यथा वेः
अर्चाम तद् वावृधानं स्वर्वत्।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा
आ यत् सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥
अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैः
मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात्।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता
भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥
नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्
भरद् गर्भमा शरदः पृथिव्याः।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद् गौः
अन्तर्दूतो न रोदसी चरद् वाक् ॥ ३ ॥
ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा
नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥
तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा
यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः।
प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान्
ववव्रुषश्चित् तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥
प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्ति
अरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा
भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥
समत्सु त्वा शूर सतामुराणं
प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः
सूरिं चिद् ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥
एवा हि ते शं सवना समुद्र
आपो यत् त आसु मदन्ति देवीः।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद् गौः
सूरींश्चिद् यदि धिषा वेषि जनान् ॥ ८ ॥
असाम यथा सुषखाय एन
स्वभिष्टयो नरां न शंसैः।
असद् यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठाः
तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥
विष्पर्धसो नरां न शंसैः
अस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ
मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥
यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धन्
जुहुराणश्चिन्मनसा परियन्।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको
दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैः
अस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद् यस्य मीळ्हुषो यव्या
हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १२ ॥
एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे
एतेन गातुं हरिवो विदो नः।
आ नो ववृत्याः सुवितायं देव
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३ ॥

॥ ८५ ॥ (ऋ० १।१७४।१-१०) त्रिष्टुप्।

त्वं राजेन्द्र ये च देवा
रक्षा नॄन् पाह्यसुर त्वमस्मान्।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रः
त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा
यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्
द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं
सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ
प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद् युधा गाः
तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥
वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्
स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके
अभि स्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः ॥ ५ ॥
जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरून्
चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोः
त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥
रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रा
नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७ ॥
सना ता त इन्द्र नव्या आगुः
सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत् पुरो न भिदो अदेवीः
ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीः
ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि
पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या
अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

॥ ८६ ॥ (ऋ० १।१७५।१-६)
स्कन्धोग्रीवी बृहती, २-५ अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दु—र्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रत—मोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥
मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र
मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

॥ ८७ ॥ (ऋ० १।१७६।१-६) अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।

मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥१॥
तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद् वृषा ॥२॥
यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग् दिव्येवाशनिर्जहि ॥३॥
असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥
आवो यस्य द्विबर्हसो ऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र
मय इवापो न तृष्यते बभूथ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

॥ ८८ ॥ (ऋ० १।१७७।१-६) त्रिष्टुप्।

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां
राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्
युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥ १ ॥
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र
ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ्
हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते
सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां
हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥
अयं यज्ञो देवया अयं मियेध
इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि
पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥ ४ ॥
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङ्
उप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

॥ ८९ ॥ (ऋ० १।१७८।१-५)

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति
यया बभूथ जरितृभ्य ऊती।
मा नः कामं महयन्तमा धग्
विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो
या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्
गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः
श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक
उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥
एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या
प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत्।
समर्य इषः स्तवते विवाचि
सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रून्
अभि ष्याम महतो मन्यमानान्।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूः
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

॥ ९० ॥ (ऋ. २।११।१-२१)
गृत्समदः (आंगिरस शौनहोत्र. पश्चाद्) भार्गव. शौनकः।
विराट्स्थाना, २१ त्रिष्टुप्।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः
स्याम ते दावने वसूनाम्।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति
वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥ १ ॥
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः
परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
अमर्त्यं चिद् दासं मन्यमानं
अवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २ ॥
उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्
स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः
प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३ ॥
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः
शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे
दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥ ४ ॥

गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु
अपीवृतं मायिनं क्षियन्तम्।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसं
अहन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ ॥
स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महानि
उत स्तवाम नूतना कृतानि।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं
स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥ ६ ॥
हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता
घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम्।
वि समना भूमिरप्रथिष्ट
अरंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥ ७ ॥
नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्
सं मातृभिर्वावशानो अक्रान्।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त
इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन् नि ॥ ८ ॥
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं
मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः।
अरेजेतां रोदसी भियाने
कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥ ९ ॥
अरोरवीद् वृष्णो अस्य वज्रो
अमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात्।
नि मायिनो दानवस्य माया
अपादयत् पपिवान्त्सुतस्य ॥ १० ॥
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं
मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्तु
इत्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥ ११ ॥
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा
धियं वनेम ऋतया सपन्तः।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं
सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥ १२ ॥

स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती
अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देव
अस्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥ १३ ॥
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे
रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः।
सजोषसो ये च मन्दसानाः
प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥ १४ ॥
व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानः
तृपत् सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्र
अवर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥ १५ ॥
बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्र
उक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान्।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्
त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥ १६ ॥
उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानः
त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो
याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥ १७ ॥
धिष्वा शवः शूर येन वृत्रं
अवाभिनद् दानुमौर्णवाभम्।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय
नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥ १८ ॥
सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो
विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्।
अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपं
अरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥ १९ ॥
अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य
न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः।
अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं
भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥ २० ॥
(११९०)

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ २१ ॥

॥ ९१ ॥ (ऋ० २।१२।१-१५) त्रिष्टुप् ।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्
देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्
यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥
यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून्
यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान
संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि
यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददद्
अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरं
उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति
श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य
यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः
सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान
यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते
परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद् रथमातस्थिवांसा
नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानान्
अमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां
यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान
दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान्
अवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुः
द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते
शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुः
यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं
यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो
यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥

(११३५

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्
वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १५ ॥

॥ ९२ ॥ (ऋ० २।१३।१-१३) जगती, १३ त्रिष्टुप्।

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि
मक्षू जात आविशद् यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत् पिप्युषी पयः
अंशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥ १ ॥
सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो
विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे
यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ २ ॥
अन्वेको वदति यद् ददाति तद्
रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते
यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते
रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन् दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं
यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥
अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे
यो धौतीनामहिहन्नारिणक् पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं
देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ ॥
यो भोजनं च दयसे च वर्धनं
आर्द्रादा शुष्कं मधुमद् दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति
विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६ ॥
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणा
अधि दाने व्यवनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव
उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥ ७ ॥
यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे
पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यं
उतैवाद्य पुरुकृत् सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥
शतं वा यस्य दश साकमाद्य
एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये
सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ ९ ॥
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं
ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः
परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ १० ॥
सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं
यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो
या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥ ११ ॥
अरमयः सरपसस्तराय कं
तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं
प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥ १२ ॥
अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः
समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ ॥

॥ ९३ ॥ (ऋ० २।१४।१-१२) त्रिष्टुप्।

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोमं
आमत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं
जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥ १ ॥
(११५०)

अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं
वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ
एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान
यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातं
इन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३ ॥
अध्वर्यवो य उरणं जघान
नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे
तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥ ४ ॥
अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान
यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां
तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५ ॥
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य
पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रं
अपावपद् भरता सोममस्मै ॥ ६ ॥
अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं
भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्
न्यावृणग् भरता सोममस्मै ॥ ७ ॥
अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे
श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुताय
इन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥
अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै
वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व
इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९ ॥

अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः
सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्
दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ १० ॥
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो
यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेन
इन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११ ॥
अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः
समर्धयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १२ ॥

॥ ९४ ॥ (ऋ० २।१५।१-१०)

प्र घा न्वस्य महतो महानि
सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य
अस्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥
अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तम्
आ रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च
सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ २ ॥
सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैः
वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः
सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ३ ॥
स प्रवोळ्हॄन् परिगत्या दभीतेः
विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सं गोभिरश्वैरसृजद् रथेभिः
सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ४ ॥
स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्
सो अस्नातॄनपारयत् स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः
सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ५ ॥

सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा
वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्
सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६ ॥
स विद्वाँ अपगोहं कनीना-
माविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद् व्य१नगचष्ट
सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ७ ॥
भिनद् वलमङ्गिरोभिर्गृणानो
वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां
सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च
जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं
सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ९ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १० ॥

॥ ९० ॥ (ऋ० २।१६।१-९) जगती; ९ त्रिष्टुप्।

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुति-
मग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं
सनाद् युवानमवसे हवामहे ॥ १ ॥
यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते
विश्वान्यस्मिन्त्संभृताधि वीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो
हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २ ॥
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं
न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन
यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥ ३ ॥
विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे
क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः
पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥ ४ ॥
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मि-
र्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो
वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥ ५ ॥
वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो
वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष
इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृष्णुहि ॥ ६ ॥
प्र ते नावं न समने वचस्युवं
ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिष-
दिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥ ७ ॥
पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो
धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो
सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो ।
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

॥ ९१ ॥ (ऋ० २।१७।१-९) जगती; ८-९ त्रिष्टुप्।

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत
शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद् गोत्रा सहसा परीवृता
मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥ १ ॥

(११८१)

स भूतु यो हृ प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥ २ ॥
अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद् यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥ ३ ॥
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत् प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद् रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत् सीव्यन् तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥ ४ ॥
स प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥ ५ ॥
सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद् विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक् तुविष्वणिः ॥ ६ ॥
अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो येन मामहः ॥ ७ ॥
भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

॥ ९० ॥ ऋ० २।१८।१-९) त्रिष्टुप् ।

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १ ॥
सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥ २ ॥
हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ॥ ३ ॥
आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४ ॥
आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥ ५ ॥
आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६ ॥
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ७ ॥
न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥ ८ ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

॥ ९८ ॥ (ऋ० २।१९।१-९)

अपाय्यस्यान्धसो मदाय
मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान
ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥ १ ॥
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तो
अहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।
प्र यद् वयो न स्वसराण्यच्छा
प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां
प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत् सूर्यं विदद् गा
अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ ३ ॥
सो अप्रतीनि मनवे पुरूणि
इन्द्रो दाशद् दाशुषे हन्ति वृत्रम् ।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्
पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥ ४ ॥
स सुन्वत इन्द्रः सूर्यं
आ देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान् ।
आ यद् रयिं गुहदवद्यमस्मै
भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥ ५ ॥
स रन्धयत् सदिवः सारथये
शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नव
इन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥ ६ ॥
एवा त इन्द्रोचथमहेम
श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत् साप्तमाशुषाणा
ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ७ ॥
एवा ते गृत्समदाः शूर मन्म
अवस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय
इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

॥ ९९ ॥ (ऋ० २।२०।१-९ त्रिष्टुप, ३ विराड्रूपा ।)

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः
प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा
सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥ १ ॥
त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती
त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूता
इत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥ २ ॥
स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा
शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती
पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥ ३ ॥
तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे
यस्मिन् पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो
ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥
सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्
ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवान्
अश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥ ५ ॥
(१२११)

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव
ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वान्
शिरो भरद् दासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः
पुरंदरो दासीरैरयद् वि ।
अजनयन् मनवे क्षामपश्च
सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥
तस्मै तवस्य1मनु दायि सत्रा
इन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुः
हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत् ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

॥ १०० ॥ (ऋ० ३।३४।१-८) अयासः त्रिष्टुप् ।

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते
सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भर
इन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥ १ ॥
अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वते
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे
सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥
सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहः
च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित
इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥ ३ ॥
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो
गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुः
इन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥
यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे
धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव
इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि
चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां
स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ ६ ॥

॥ १०१ ॥ (ऋ० २।२२।१-४)

१ अष्टिः, २-३ अतिशक्वरी, ४ अष्टि अतिशक्वरी वा ।

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मः
तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं
सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवद्
आ रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत
सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥२॥
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु
सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥३॥
तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं
दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यद् देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद् विश्वमभ्यादेवमोजसा
विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥ ४ ॥

॥ १०२ ॥ (ऋ० ४।१८।१-१ ७-८ १०)
[८ पूर्वार्धर्चस्य सरस्वती] । त्रिष्टुप् ।

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र
इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां
कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥ १ ॥
यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्
प्र तं जनित्री विदुषं उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै
दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥ २ ॥
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षे
अधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्
तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥ ३ ॥
बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य
वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिद्
एवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥ ४ ॥
अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा
येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य साता तनयस्य भूरेः
अस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥ ५ ॥
न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्
न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद् यो ददद् यो निबोधाद्
यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥ ७ ॥
सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि
मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणम्
इन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥ ८ ॥
धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितम्
...
धियौं हृषि यानि ते वस्योनि ।
ज्योतिर्भुवनभ्रुमुपितासो
हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥ १० ॥

॥ १०३ ॥ ऋ० २।४१।१०-१२) गायत्री।

इन्द्रो अङ्ग महद् भय—मभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ १० ॥
इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ११ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १२ ॥

॥ १०४ ॥ (ऋ० ३।३०।१-११
गाथिनो विश्वामित्र । त्रिष्टुप् ।

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः
सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानाम्
इन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥ १ ॥
न ते दूरे परमा चिद् रजांसि
आ तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा
युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥ २ ॥
इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो
महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु
क्व त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥ ३ ॥
त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतानि
एको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासो
अनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥ ४ ॥
उताभये पुरुहूत श्रवोभिः
एको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे
यत् संगृभ्णा मघवन् काशिरित् ते ॥ ५ ॥

प्र सु त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां
प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो
विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥ ६ ॥

यस्मै धायुरदधा मर्त्याय
अभक्तं चिद् भजते गेह्यं१ सः ।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची
सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥ ७ ॥

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तं
अहस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुं
अपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ८ ॥

नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं
महीमपारां सदने ससत्थ ।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षं
अर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥ ९ ॥

अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः
पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः
प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥ १० ॥

एको द्वे वसुमती समीची
इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक
इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥ ११ ॥

दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा
दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैः
विमोचनं कृणुते तत् त्वस्य ॥ १२ ॥

दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोः
विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागाद्
इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥ १३ ॥

महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्व्
आमा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म संभृतमुस्रियायां
यत् सीमिन्द्रो अदधाद् भोजनाय ॥ १४ ॥

इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्
यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो
निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥ १५ ॥

सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैः
जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
वृश्चेमधस्ताद् वि रुजा सहस्व
जहि रक्षो मघवन् रन्धयस्व ॥ १६ ॥

उद् वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र
वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ
ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ १७ ॥

स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः
सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्तारो बृहतः स्याम
अस्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥ १८ ॥

आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं
नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे
तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥ १९ ॥

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैः
चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा
इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥ २० ॥

(१०५७)

आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः
समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मो
ऽस्मभ्यं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥ २१ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र-
मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥

॥ ७०१ ॥ (ऋ० ३।३१।१-२२)

ऋषिः ऐषीरथिः, गाथिनो विश्वामित्रो वा ।

शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्
विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्
सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥ १ ॥
न जामये तान्वो रिक्थमारैक्
चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्नि-
मन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥ २ ॥
अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो
महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां
मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥ ३ ॥
अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं
महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः
पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥
वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्
प्राचाहिन्वन् मनसा सप्त विप्राः ।
विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य
प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥ ५ ॥
विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रे-
र्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणा-
मच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥
अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्
असूदयत् सुकृते गर्भमद्रिः ।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्
अथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥
सतःसतः प्रतिमानं पुरोभू-
र्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्
सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥
नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः
कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां
येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ ९ ॥
संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं
पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद् घोष एषां
जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥ १० ॥
स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यै-
रुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद् भरन्ती
मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११ ॥
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै
महि त्विषीमत् सुकृतो वि हि ख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री
आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥ १२ ॥
मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्
सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीची-
र्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥ १३ ॥
(११७०)

मह्या ते सुख्यं वश्मि शक्तीः
आ वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेः
अस्माकं सु मघवन् बोधि गोपाः ॥ १४ ॥
महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वान्
आदित् सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनद् दीद्यानः
साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥ १५ ॥
अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः
प्र सध्रीचीरसृजद् विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैः
द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥ १६ ॥
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते
उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत् ते महिमानं वृजध्यै
सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥ १७ ॥
पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां
गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिः
महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥ १८ ॥
तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्
नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः
स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥ १९ ॥
मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्
स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो
मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥ २० ॥
अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा
अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन
दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ २१ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥

॥ १०६ ॥ (ऋ० ३।३१।१-१७)

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं
माध्यंदिनं सवनं चारु यत् ते ।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्
विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥ १ ॥
गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं
पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन
सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ २ ॥
ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्
अर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यंदिने सवने वज्रहस्त
पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥ ३ ॥
त इन्न्वस्य मधुमद् विविप्र
इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेद
अमर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥ ४ ॥
मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः
पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः
सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥ ५ ॥
त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ
अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन
वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥

यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं
बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य
न रोदसी महिमानं ममाते ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि
व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां
जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥ ८ ॥

अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं
सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो
नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥ ९ ॥

त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र
मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीः
अथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥ १० ॥

अहन्नहिं परिशयानमर्णः
ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौः
यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः ॥ ११ ॥

यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूद्
उत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्
यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ १२ ॥

यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वाक्
ऐनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिः
यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥ १३ ॥

विवेष यन्मा धिषणा जजान
स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद् यथा नो
नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ १४ ॥

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा
सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय
प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ १५ ॥

न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुः
नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्र
आ दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥ १६ ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ १७ ॥

॥ १०७ ॥ (ऋ० ३।३२।७-१७)

इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहुः
अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत् सविता सुपाणिः
तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥ ६ ॥

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ तत्
इन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघान
आयन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ ७ ॥

॥ १०८ ॥ (ऋ० ३।३४।१-११)

इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैः
विदद् वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो
भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥ १ ॥

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिं
इयर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां
विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २ ॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः
प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग्वनेषु
आविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि
जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नाम्
अविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश
नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे
प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥

महो महानि पनयन्त्यस्य
इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष
मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार
देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि
विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां
ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमां
इन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससान
इन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान
हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि
वनस्पतीरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचो
अथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

॥ १०९ ॥ ऋ० ३।३४।१-११)

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे
इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥ १ ॥

उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती
हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।
द्रवद् यथा संभृतं विश्वतश्चित्
उपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥ २ ॥

उपो नयस्व वृषणा तपुष्पा
उतेमव त्वं वृषभ स्वधावः ।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा
दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥ ३ ॥

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि
हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्
प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ ४ ॥

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा
नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ।
अत्यायाहि शश्वतो वयं ते
अरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥ ५ ॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ्
शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या
दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ ६ ॥

(१३१७)

स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः
कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे
मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥ ७ ॥

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः
समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि
प्रजानन् विद्वान् पथ्या३ अनु स्वाः ॥ ८ ॥

याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे
ये त्वामवर्धन्नभवन् गणस्ते ।
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३
ऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥ ९ ॥

इन्द्र पिब स्वधया चित् सुतस्य
अग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्तात्
होतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥ १० ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

॥ ११० ॥ (ऋ० ३।३५।१-११) [१० घोर आङ्गिरसः ।]

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः
शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिः
यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥ १ ॥

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना
ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान् प्रति षू गृभाय
इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥ २ ॥

पिबा वर्धस्व तव घा सुतास
इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ
एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥ ३ ॥

महाँ अमत्रो वृजने विरप्शी३
उग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं
यत् सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥ ४ ॥

महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय
समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः
प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥ ५ ॥

प्र यत् सिन्धवः प्रसवं यथायन्
आपः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्
यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥ ६ ॥

समुद्रेण सिन्धवो यादमाना
इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैः
मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥ ७ ॥

ह्रदा इव कुक्षयः सोमधानाः
समी विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश
वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥ ८ ॥

आ तू भर माकिरेतत् परि ष्ठाद्
विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत् ते माहिनं दत्रम्
अस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥ ९ ॥

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्
इन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा
अस्मे वीरान्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १० ॥

(१३१०)

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥
॥ १११ ॥ (ऋ० ३।३७।१-११) गायत्री, ११ अनुष्टुप्।
वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च ।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे ।
इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि ।
इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे ।
भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो ।
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च ।
इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ८ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ९ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ १० ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ११ ॥
॥ ११० ॥ (ऋ० ३।३८।१-१०)
[प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा, तावुभावपि वा गाथिनो विश्वामित्रो वा ।] त्रिष्टुप् ।
अभि तष्टेव दीधया मनीषाम्
अत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।
अभि प्रियाणि मर्मृशत् पराणि
कवींरिच्छामि संदृशे सुमेधाः ॥ १ ॥
इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां
मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।
इमा उ ते प्रण्यो३ वर्धमाना
मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥ २ ॥
नि षीमिदत्र गुह्या दधाना
उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी
अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥ ३ ॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्
छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नाम
आ विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ४ ॥
असूत पूर्वो वृषभो ज्यायान्
इमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः
क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥ ५ ॥
त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि
परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्
व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥ ६ ॥
तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोः
आ नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं१ वसाना
नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७ ॥
तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे
हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे
अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥ ८ ॥

युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्
दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम्।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा
विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥ ९ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ १० ॥

॥ ११३ ॥ (ऋ० ३।३९।१-९)

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमाना
अच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति।
या जागृविर्विदथे शस्यमान
इन्द्र यत् ते जायते विद्धि तस्य ॥ १ ॥
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना
वि जागृविर्विदथे शस्यमाना।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना
सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥ २ ॥
यमा चिदत्र यमसूरसूत
जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात्।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते
तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥ ३ ॥
नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु
ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावान्
उद् गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥ ४ ॥
सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैः
अभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन्।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः
सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥ ५ ॥
इन्द्रो मधु संभृतमुस्रियायां
पद्वद् विवेद शफवन्नमे गोः।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु
हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥ ६ ॥
ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्
आरे स्याम दुरितादभीके।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध
जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥ ७ ॥
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्याद्
आरे स्याम दुरितस्य भूरेः।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य
सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥ ८ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ९ ॥

॥ ११४ ॥ (ऋ० ३।४०।१-९) गायत्री।

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः।
तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते।
क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्।
तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे।
इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥ ६ ॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता।
पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्।
इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥

यदन्तरा परावतं—मर्वावतं च हूयसे ।
इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥
॥ ११५ ॥ (ऋ० ३।४१।१-९)
आ तू न इन्द्र मद्र्य—ग्घुवानः सोमपीतये ।
हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥
सत्तो होता न ऋत्वियः—स्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥ २ ॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोळाशम् ॥ ३ ॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।
न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥
॥ ११६ ॥ (ऋ० ३।४२।१-९)
उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् ।
कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥ २ ॥
इन्द्रमित्था गिरो ममा—ऽच्छागुरिषिता इतः ।
आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे ।
उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ।
जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥
विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब ।
आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये ।
एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे ।
कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥
॥ ११७ ॥ (ऋ० ३।४३।१-८) त्रिष्टुप्।
आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठा-
स्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हि-
स्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥ १ ॥
आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ
अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा
इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥ २ ॥
आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा
इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि
घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥ ३ ॥
आ च त्वामेता वृषणा वहातो
हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः
सखा सख्युः शृणवद् वन्दनानि ॥ ४ ॥
कुविन्मा गोपां करसे जनस्य
कुविद् राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य
कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥ ५ ॥
आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना
अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः
सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥ ६ ॥

इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण
आ यं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीः
यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥ ७ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र
मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ८ ॥

॥ ११८ ॥ (ऋ० ३।४४।१-५) बृहती ।

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गहि
आ तिष्ठ हरितं रथम् ॥ १ ॥
हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वांश्चिकित्वान् हर्यश्व वर्धस
इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥
द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् २
जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुध-मा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ४
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतम्
उद् गा हरिभिराजत ॥ ५ ॥

॥ ११९ ॥ (ऋ० ३।४५।१-५)

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभि-र्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्वि न पाशिनो
अति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥
वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर
इन्द्रो दृळ्हा चिदारुजः ॥ २ ॥
गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा
ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३ ॥
आ नस्तुजं रयिं भरा-ऽंशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुही-न्द्र संपारणं वसु ॥४
स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत
भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ५ ॥

॥ १२० ॥ (ऋ० ३।४६।१-५) त्रिष्टुप् ।

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज
उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्या३णि
इन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ १ ॥
महाँ असि महिष वृष्ण्येभिः
धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा
स योधया च क्षयया च जनान् ॥ २ ॥
प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः
प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः
प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥ ३ ॥
उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं
विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः
समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥ ४ ॥
यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा
गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्य
ध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥ ५ ॥

॥ १२१ ॥ (ऋ० ३।४७।१-५)

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय
पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं
त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥ १ ॥

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः
सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्व
अथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोमम्
इन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वा
अन्वहन् वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥ ३ ॥
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्
ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः
पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥ ४ ॥
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानम्
अकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनाय
उग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ५ ॥

॥ १०१ ॥ (ऋ० ३।४७।१-५)

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः
प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते
रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥ १ ॥
यज्जायथास्तदहरस्य कामे
अंशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री
महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥ २ ॥
उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट
तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान्
महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥
उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा
यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूय
आमुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥ ४ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥

॥ १०२ ॥ (ऋ० ३।४८।१-५)

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन् विश्वा
आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं
घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥ १ ॥
यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं
द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः
पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥ २ ॥
सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा
व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां
पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥ ३ ॥
धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो
रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य
विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥ ४ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥

॥ १०३ ॥ (ऋ० ३।४९।१-५)

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम
आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैः
आस्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥ १ ॥

आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि
ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोः ॥ २ ॥
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारं
इन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्
समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥ ३ ॥
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैः
चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा
इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥ ४ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥

॥ १६५ ॥ (ऋ० ३।५१।१-१२)
त्रिष्टुप्, १-३ जगती, १०-१२ गायत्री ।

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१
इन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिः
अमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ १ ॥
शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं
गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं
धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥ २ ॥
आकरे वसोर्जरिता पनस्यते
अनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये
सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥ ३ ॥
नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैः
अभि प्र वीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते
नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४ ॥
पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु
पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो
रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥ ५ ॥
तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं
सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्या३पिरवसो नूतनस्य
सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥ ६ ॥
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं
यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्
आ विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥ ७ ॥
स वावशान इह पाहि सोमं
मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत् त्वा परि देवा अभूषन्
महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥ ८ ॥
अप्तूर्ये मरुत आपिरेषो
अमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः
सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥ ९ ॥
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते ।
पिबा त्व१स्य गिर्वणः ॥ १० ॥
यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् ।
स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥ ११ ॥
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
प्र बाहू शूर राधसे ॥ १२ ॥

॥ १६६ ॥ (ऋ० ३।५२।१-८)
त्रिष्टुप्, १-४ गायत्री, ६ जगती ।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ १ ॥

पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च ।
तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २ ॥
पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः ।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥
पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः ।
इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥
माध्यंदिनस्य सवनस्य धानाः
पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो
वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥ ५ ॥
तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत
पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे
प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ॥ ६ ॥
पूषण्वते ते चकृमा करम्भं
हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः
सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥ ७ ॥
प्रति धाना भरत तूयमस्मै
पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं
वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥ ८ ॥

॥ १०७ ॥ (ऋ० ३।५३।२-१४)

त्रिष्टुप्, १० जगती, १२ अनुष्टुप्, १३ गायत्री ।

तिष्ठा सु कं मघवन् मा परा गाः
सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त
इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥ २ ॥
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहि
इन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीद
अथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥ ३ ॥
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिः
तदित् त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोमं
अग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥ ४ ॥
परा याहि मघवन्ना च याहि
इन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं
विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥ ५ ॥
अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं
विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥ ६ ॥
इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा
दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि
सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ ७ ॥
रूपंरूपं मघवा बोभवीति
मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम् ।
त्रिर्यद् दिवः परि मुहूर्तमागात्
स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८ ॥
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतो
अस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासं
अप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ९ ॥
हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभि-
र्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो
वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥ १० ॥
उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वं
अश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत् प्रागपागुदग्
अथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥ ११ ॥

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२॥
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
करदिन्नः सुराधसः ॥ १३ ॥
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो
नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो
नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः ॥ १४ ॥

॥ १२८ ॥ (ऋ० ४।१६।१-११)
वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी
द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षं
इहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥
अव स्य शूराध्वनो नान्ते
ऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधा
श्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन्
वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारून्
अह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥
स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कै
र्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे
नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीषी
उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेचि
अभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वान्
अपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभि
र्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्
प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः
पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्द
राविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं
गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥
अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ
स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ
नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥ ९ ॥
आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं
भुवत् ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा
वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥ १० ॥
यासि कुत्सेन सरथमवस्यु
स्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्
कविर्यदहन् पार्याय भूषात् ॥ ११ ॥
कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः
प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून् प्र मृण कुत्स्येन
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥ १२ ॥
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसं
ऋजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत् कृष्णा नि वपः सहस्रा
ऽत्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥ १३ ॥

सूरं उपाके तन्वं दधानो
वि यत् ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः
सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥ १४ ॥

इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्
स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैः
ओको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥ १५ ॥

तमिद् व इन्द्रं सुहवं हुवेम
यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्
मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥ १६ ॥

तिग्मा यदन्तरशनिः पताति
कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवाति
अध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥ १७ ॥

भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां
भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्म
उरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥ १८ ॥

एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा
मघवद्भिर्मघवन् विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः
क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥ १९ ॥

एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे
ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद् यथा नः सख्या वियोषत्
असन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥ २० ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान
इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥

॥ १९३ ॥ (ऋ० ४।१७।१-२१)
त्रिष्टुप्, १५ एकपदा विराट् ।

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा
अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्
सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ॥ १ ॥

तव त्विषो जनिमन् रेजत द्यौ
रेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास
आर्दन् धन्वानि सरयन्त आपः ॥ २ ॥

भिनद् गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्
आविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद् वृत्रं वज्रेण मन्दसानः
सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥ ३ ॥

सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौः
इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रम्
अनपच्युतं सदसो न भूम ॥ ४ ॥

य एक इच्च्यावयति प्र भूमा
राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति
रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥ ५ ॥

सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे
सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां
दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥ ६ ॥

त्वमध प्रथमं जायमानो
अमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानम्
अहिं वज्रेण मघवन् वि वृश्चः ॥ ७ ॥

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं
महामपारं वृषभं सुवज्रम्।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं
दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ८ ॥
अयं वृतश्चातयते समीचीः
य आजिषु मघवा शृण्व एकः।
अयं वाजं भरति यं सनोति
अस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥ ९ ॥
अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्
अयमुत प्र कृणुते युधा गाः।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो
विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् ॥ १० ॥
समिन्द्रो गा अजयत् सं हिरण्या
समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकैः
रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥ ११ ॥
कियत् स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः
कियत् पितुर्जनितुर्यो जजान।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति
वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥ १२ ॥
क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोति
इयर्ति रेणुं मघवा समोहम्।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौः
उत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥ १३ ॥
अयं चक्रमिषणत् सूर्यस्य
न्येतशं रीरमत् ससृमाणम्।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति
त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥ १४ ॥
असिक्न्यां यजमानो न होता ॥ १५ ॥
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा
अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिम्
आ च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥ १६ ॥
त्राता नो बोधि ददृशान आपिः
अभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां
कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥ १७ ॥
सखीयतामविता बोधि सखा
गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध
आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८ ॥
स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा
भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्
नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥ १९ ॥
एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी
करत् सत्या चर्षणीधृदनर्वा।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे
अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥ २० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान
इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥

॥ १३० ॥ (ऋ० ४।१८।१-१३)
[१३ वामदेवो गौतम, १ इन्द्र, ४ (उत्तरार्धर्चस्य), ५-७ अदितिः।]
[१,४ उत्तरार्धस्य, ५ ६,७ च मेदेः ; २,३,८ पूर्वार्धस्य, ८-१३ इन्द्रः।] त्रिष्टुप्।

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो
यतो देवा उदजायन्त विश्वे।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो
मा मातरममुया पत्तवे कः ॥ १ ॥

नाहमतो निरया दुर्गहैतत्
तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि
युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥ २ ॥
परायतीं मातरमन्वचष्ट
न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत् सोममिन्द्रः
शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥ ३ ॥
किं स ऋधक् कृणवद् यं सहस्रं
मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्ति
अन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ४ ॥
अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकः
इन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात् स्वयमत्कं वसान
आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥ ५ ॥
एता अर्षन्त्यललाभवन्तीः
ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति
कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६ ॥
किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्त
इन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान् पुत्रो महता वधेन
वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून् ॥ ७ ॥
ममच्चन त्वा युवतिः परास
ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युः
ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥
ममच्चन ते मघवन् व्यंसो
निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवान्
शिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥ ९ ॥
गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागाम्
अनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता
स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥ १० ॥
उत माता महिषमन्ववेनत्
अमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्
सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥ ११ ॥
कस्ते मातरं विधवामचक्रत्
शयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्
यत् प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥ १२ ॥
अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे
न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमानाम्
अधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥ १३ ॥

॥ १११ ॥ (ऋ० ४।१९।१-११)

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र
विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं
निरेकमिद् वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥
अवासृजन्त जिव्रयो न देवा
भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः
प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥
अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यम्
अबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानम्
अहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥

अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं
वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजो
अवाभिनत् ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं
रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्
त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ ॥

त्वं महीमवनिं विश्वधेनां
तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम्।
अरमयो नमसैजदर्णः
सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६ ॥

प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा
ध्वस्रा अपिन्वद् युवतीर्ऋतज्ञाः।
धन्वान्यज्राँ अपृणक् तृषाणाँ
अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥

पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता
वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून्।
परिष्ठिता अतृणद् बद्बधानाः
सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥

वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं
निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ।
व्य१न्धो अख्यदहिमाददानो
निर्भूदुखच्छित् समरन्त पर्व ॥ ९ ॥

प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्र
आविद्वाँ आह विदुषे करांसि।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्ता
अपांसि राजन् नर्याविवेषीः ॥ १० ॥

नू षुत इन्द्र नू गृणान
इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

॥ १३० ॥ (ऋ० ४।२०।१-११)

आ न इन्द्रो दूरादा न आसाद्
अभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः
संगे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥ १ ॥

आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छा
अर्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शी
इमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ २ ॥

इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र
पुरो दधत् सनिष्यसि क्रतुं नः।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां
त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥ ३ ॥

उशन्नु षु णः सुमना उपाके
सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः
समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४ ॥

वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिः
वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता।
मर्यो न योषामभि मन्यमानो
अच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ५ ॥

गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः
सनादेव सहसे जात उग्रः।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम
उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६ ॥

न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति
न राधस आमरीता मघस्य।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्र
अस्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥

ईशे रायः क्षयस्य चर्षणीनां
उत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्
वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ८ ॥
कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो
यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहो
अथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥ ९ ॥
मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः
प्र दाशुषे दातवे भूरि यत् ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन् त उक्थे
प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान
इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

॥ १३३ ॥ (ऋ० ४।२१।१-११)

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न
इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीः
द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १ ॥
तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि
तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट्
साह्वान् तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥ २ ॥
आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या
मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान्
परावतो वा सदनादृतस्य ॥ ३ ॥
स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे
तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु
प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥ ४ ॥
उप यो नमो नमसि स्तभायन्
इयर्ति वाचं जनयन् यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैः
एन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥ ५ ॥
धिया यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्
सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता
यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥ ६ ॥
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः
सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे
प्र यद् धिये प्रायसे मदाय ॥ ७ ॥
वि यद् वरांसि पर्वतस्य वृण्वे
पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद् गौरस्य गवयस्य गोहे
यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति ॥ ८ ॥
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी
प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि
किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥ ९ ॥
एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्
हन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो
भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान
इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥
(१५५४)

॥ १३४ ॥ (ऋ० ४।२२।१-११)

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि
तन्नो महान् करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था
यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥ १ ॥
वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्
उग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां
यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥ २ ॥
यो देवो देवतमो जायमानो
महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं
द्याममेन रेजयत् प्र भूम ॥ ३ ॥
विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीः
द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन् रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोः
नृवत् परिज्मन् नोनुवन्त वाताः ॥ ४ ॥
ता तू त इन्द्र महतो महानि
विश्वेष्वित् सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वान्
अहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥ ५ ॥
ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा
प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधा ह त्वद् वृषमणो भियानाः
प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥ ६ ॥
अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीः
अवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।
यत् सीमनु प्र मुचो बद्बधाना
दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥ ७ ॥
पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुः
आ त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्या
आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥ ८ ॥
अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा
नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥
अस्माकमित् सु शृणुहि त्वमिन्द्र
अस्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंधीः
अस्माकं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान
इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

॥ १३५ ॥ (ऋ० ४।२३।१-११) ८-१० ऋतं च ।

कथा महामवृधत् कस्य होतुः
यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो
ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥
को अस्य वीरः सधमादमाप
समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती
वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥ २ ॥
कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः
कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह
कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥ ३ ॥
कथा सबाधः शशमानो अस्य
नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां
नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥ ४ ॥

कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ
देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो
ये अस्मिन् कामं सुयुजं ततस्रे ॥ ५ ॥
किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः
कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः
स्वर्ण चित्रतममिष आ गोः ॥ ६ ॥
द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रां
तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद् यत्र ऋणया न उग्रो
दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥ ७ ॥
ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः
ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द
कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥ ८ ॥
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति
पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष
ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥ ९ ॥
ऋतं येमान ऋतमिद् वनोति
ऋतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे
ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान
इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

॥ १३६ ॥ (ऋ० ४।२४।१-११) त्रिष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्र
मर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि
स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥ १ ॥
स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः
स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय
ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥ २ ॥
तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत् त्यागमुभयासो अग्मन्
नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ३ ॥
क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्र
आशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद् विशोऽववृत्रन्त युध्मा
आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४ ॥
आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त
आदित् पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित् सोमो वि पपृच्यादसुष्वीन्
आदिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥ ५ ॥
कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थ
इन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्
तमित् सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥
य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य
पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्
तस्मिन् दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७ ॥
यदा समर्यं व्यचेदृघावा
दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद् वृषणं पत्न्यच्छा
दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥ ८ ॥
(१५८७)

भूयसा वस्नमचरत् कनीयो
अविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्
दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥ ९ ॥
क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान
इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

॥ १३७ ॥ (ऋ० ४।२५।१-८) त्रिष्टुप् ।

को अद्य नर्यो देवकाम
उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय
समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १ ॥
को नानाम वचसा सोम्याय
मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं
को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥ २ ॥
को देवानामवो अद्या वृणीते
क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥ ३ ॥
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसत्
ज्योक् पश्यात् सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह
नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥ ४ ॥
न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा
उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः
प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥ ५ ॥
सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः
सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिः
दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥
न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रो
असुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं
वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥ ७ ॥
इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास
इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना
इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥ ८ ॥

॥ १३८ ॥ (ऋ० ४।२६।१-३)
[१-३ इन्द्रो वा] । [१-३ आत्मा वा] ।

अहं मनुरभवं सूर्यश्च
अहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जे
अहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥
अहं भूमिमददामार्याय
अहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना
मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं
नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता
दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥

॥ १३९ ॥ (ऋ० ४।२८।१-५) [इन्द्रासोमौ वा ।]

त्वा युजा तव तत् सोम सख्य
इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून्
अपावृणोदपिहितेव खानि ॥ १ ॥

त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्य
इन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं
महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥ २ ॥
अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो
पुरा दस्यून् मध्यंदिनादभीके।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां
पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥ ३ ॥
विश्वस्मात् सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्
विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रून्
अविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥ ४ ॥
एवा सत्यं मघवाना युवं तद्
इन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना
रिरिचथुः क्षाश्चित् ततृदाना ॥ ५ ॥

॥ १४० ॥ (ऋ० ४।२९।१-५)

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती
इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूणि
आङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥ १ ॥
आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्
हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम्।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः
सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥ २ ॥
श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै
जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्
करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥ ३ ॥
अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती
इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम्।
उप त्मनि दधानो धुर्या३शून्
सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥ ४ ॥
त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा
वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय
आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥ ५ ॥

॥ १४१ ॥ (ऋ० ४।३०।१-८; १२-२४)

गायत्री; ८,२४ अनुष्टुप्।

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन्।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥
सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः।
सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २ ॥
विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः।
यदहा नक्तमातिरः ॥ ३ ॥
यत्रोत बाधितेभ्य—श्चक्रं कुत्साय युध्यते।
मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४ ॥
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत्।
त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ ॥
यत्रोत मर्त्याय क—मरिणा इन्द्र सूर्यम्।
प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥
किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः।
अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥
एतद् घेदुत वीर्य१—मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम्।
स्त्रियं यद् दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि।
परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम्।
पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३ ॥
उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि।
अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४ ॥
उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः।
अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥ १५ ॥
(१६१०)

उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः ।
उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥ १६ ॥
उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः ।
इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥ १७ ॥
उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः ।
अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥
अनु द्वा जहिता नयो ऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् ।
न तत् ते सुम्नमष्टवे ॥ १९ ॥
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् ।
दिवोदासाय दाशुषे ॥ २० ॥
अस्वापयद् दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः ।
दासानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥
स घेदुतासि वृत्रहन् त्समान इन्द्र गोपतिः ।
यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ २२ ॥
उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।
अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥ २३ ॥
वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥२४॥

॥ १४० ॥ (ऋ० ४।३०।१-२४)

गायत्री, ३ पादनिचृत् ।

कया नश्चित्र आ भुव—दूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
अभी षु णः सखीना—मविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥
अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः ।
नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥
प्रवता हि क्रतूना—मा हा पदेव गच्छसि ।
अभक्षि सूर्ये सचा ॥ ५ ॥
सं यत् त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे ।
अध त्वे अध सूर्ये ॥ ६ ॥
उत स्मा हि त्वामाहुरि—न्मघवानं शचीपते ।
दातारमविदीधयुम् ॥ ७ ॥
उत स्मा सद्य इत् परि शशमानाय सुन्वते ।
पुरू चिन्मंहसे वसु ॥ ८ ॥
नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः ।
न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥ ९ ॥
अस्माँ अवन्तु ते शत—मस्मान्त्सहस्रमूतयः ।
अस्मान् विश्वा अभिष्टयः ॥ १० ॥
अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये ।
महो राये दिवित्मते ॥ ११ ॥
अस्माँ अविड्ढि विश्वहे—न्द्र राया परीणसा ।
अस्मान् विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥
अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः ।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ १३ ॥
अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः ।
गव्युरश्वयुरीयते ॥ १४ ॥
अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य ।
वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥ १५ ॥

॥ १४१ ॥ (ऋ० ४।३१।१-१५) गायत्री ।

आ तू न इन्द्र वृत्रह—न्नस्माकमर्धमा गहि ।
महान् महीभिरूतिभिः ॥ १ ॥
भृमिश्चिद् घासि तूतुजि—रा चित्र चित्रिणीष्वा ।
चित्रं कृणोष्यूतये ॥ २ ॥
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा ।
सखिभिर्ये त्वे सचा ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः ।
अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥ ४ ॥
स नश्चित्राभिरद्रिवो ऽनवद्याभिरूतिभिः ।
अनाधृष्टाभिरा गहि ॥ ५ ॥
भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः ।
युजो वाजाय घृष्वये ॥ ६ ॥

(१९००)

त्वं ह्येक॒ ईशि॑ष॒ इन्द्र॒ वाज॑स्य॒ गोम॑तः ।
स नो॑ यन्धि म॒हीमिष॑म् ॥ ७ ॥
न त्वा॑ वरन्ते अ॒न्यथा॒ यद् दित्स॑सि स्तु॒तो म॒घम् ।
स्तो॒तृभ्य॑ इन्द्र गिर्वणः ॥ ८ ॥
अ॒भि त्वा॒ गोत॑मा गि॒रा ऽनू॑षत॒ प्र दा॒वने॑ ।
इन्द्र॒ वाजा॑य॒ घृष्व॑ये ॥ ९ ॥
प्र ते॑ वोचाम वी॒र्या॒३॒॑ या म॑न्दसा॒न आरु॑जः ।
पुरो॒ दासी॑र॒भीत्य॑ ॥ १० ॥
ता ते॑ गृणन्ति वे॒धसो॒ यानि॑ च॒कर्थ॒ पौंस्या॑ ।
सु॒तेष्वि॑न्द्र गिर्वणः ॥ ११ ॥
अवी॑वृधन्त॒ गोत॑मा॒ इन्द्र॒ त्वे स्तोम॑वाहसः ।
ऐषु॑ धा वी॒रव॒द् यशः॑ ॥ १२ ॥
यच्चि॒द्धि शश्व॑ताम॒सी—न्द्र॒ साधा॑रण॒स्त्वम् ।
तं त्वा॑ व॒यं ह॑वामहे ॥ १३ ॥
अ॒र्वा॒ची॒नो व॑सो भवा॒—ऽस्मे सु म॒त्स्वान्ध॑सः ।
सोमा॑नामिन्द्र सोमपाः ॥ १४ ॥
अ॒स्माकं॑ त्वा मती॒ना—मा स्तोम॑ इन्द्र यच्छतु ।
अ॒र्वागा व॑र्तया॒ हरी॑ ॥ १५ ॥
पु॒रो॒ळाशं॑ च नो॒ घसो॑ जो॒षया॑से॒ गिर॑श्च नः ।
व॒धू॒युरि॑व॒ योष॑णाम् ॥ १६ ॥
स॒हस्रं॒ व्यती॑नां यु॒क्ताना॒मिन्द्र॑मीमहे ।
श॒तं सोम॑स्य खा॒र्यः॑ ॥ १७ ॥
स॒हस्रा॑ ते श॒ता व॒यं गवा॒मा च्या॑वयामसि ।
अ॒स्म॒त्रा राध॑ एतु ते ॥ १८ ॥
दशा॑ ते क॒लशा॑नां॒ हिर॑ण्यानामधीमहि ।
भू॒रि॒दा अ॑सि वृत्रहन् ॥ १९ ॥
भूरि॑दा॒ भूरि॑ देहि नो॒ मा द॒भ्रं भूर्या भ॑र ।
भूरि॒ घेदि॑न्द्र दित्ससि ॥ २० ॥
भू॒रि॒दा ह्यसि॑ श्रु॒तः पु॑रु॒त्रा शू॑र वृत्रहन् ।
आ नो॑ भजस्व॒ राध॑सि ॥ २१ ॥
प्र ते॑ ब॒भ्रू वि॑चक्षण॒ शंसा॑मि गोषणो नपात् ।
माभ्यां॒ गा अनु॑ शिश्रथः ॥ २२ ॥

॥ १४४ ॥ (ऋ० ५।२९।१-१५)
गौरिवीति शाक्त्यः ।
[९ (प्रथमपादस्य) उशना वा] । त्रिष्टुप् ।

त्र्य॑र्य॒मा मनु॑षो दे॒वता॑ता॒
त्री रो॑च॒ना दि॒व्या धा॑रयन्त ।
अर्च॑न्ति त्वा म॒रुतः॑ पू॒तद॑क्षा॒
स्त्वमे॑षा॒मृषि॑रिन्द्रासि॒ धीरः॑ ॥ १ ॥
अनु॒ यदीं॑ म॒रुतो॑ मन्दसा॒न
मार्च॑न्निन्द्रं पपि॒वांसं॑ सु॒तस्य॑ ।
आद॑त्त॒ वज्र॑म॒भि यदहिं॒ हन्
न॒पो य॒ह्वीर॑सृज॒त् सर्त॒वा उ॑ ॥ २ ॥
उ॒त ब्र॑ह्माणो मरुतो मे अ॒स्य
इन्द्रः॒ सोम॑स्य॒ सुषु॑तस्य पेयाः ।
तद्धि ह॒व्यं मनु॑षे॒ गा अवि॑न्द॒द्
अह॒न्नहिं॑ पपि॒वाँ इन्द्रो॑ अस्य ॥ ३ ॥
आद् रोद॑सी वित॒रं वि ष्क॑भायत्
संवि॒व्यान॑श्चिद् भि॒यसे॑ मृ॒गं कः॑ ।
जिग॑र्ति॒मिन्द्रो॑ अप॒जर्गु॑राणः॒
प्रति॑ श्व॒सन्त॒मव॑ दान॒वं ह॑न् ॥ ४ ॥
अध॒ क्रत्वा॑ मघव॒न् तुभ्यं॑ दे॒वा
अनु॒ विश्वे॑ अददुः सोम॒पेय॑म् ।
यत् सूर्य॑स्य ह॒रितः॒ पत॑न्तीः
पु॒रः स॒तीरुप॑रा॒ एत॑शे॒ कः ॥ ५ ॥
नव॒ यद॑स्य नव॒तिं च॑ भो॒गान्
सा॒कं वज्रे॑ण म॒घवा॑ वि॒वृश्च॑त् ।
अर्च॒न्तीन्द्रं॑ म॒रुतः॑ स॒धस्थे॒
त्रैष्टु॑भेन॒ वच॑सा बाधत॒ द्याम् ॥ ६ ॥
सखा॒ सख्ये॑ अपच॒त् तूय॑म॒ग्निः
अ॒स्य क्रत्वा॑ महि॒षा त्री श॒तानि॑ ।
त्री सा॒कमिन्द्रो॒ मनु॑षः॒ सरां॑सि
सु॒तं पि॑बद् वृत्र॒हत्या॑य॒ सोम॑म् ॥ ७ ॥

त्री यच्छता महिषाणामघो माः
त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा
भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥ ८ ॥
उशना यत् सहस्यैरयातं
गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ
कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥ ९ ॥
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य
कुत्सायान्यद् वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन
नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ॥ १० ॥
स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्
अरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे
पचन् पक्तीरपिबः सोममस्य ॥ ११ ॥
नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं
दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं
तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥ १२ ॥
कथो नु ते परि चराणि विद्वान्
वीर्या मघवन् या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ
प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥ १३ ॥
एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूरि
अपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन् कृणवो दधृष्वान्
न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥ १४ ॥
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व
या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू
रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥ १५ ॥

॥ १४५ ॥ (ऋ० ५।३०।१-११) बभ्रुरात्रेयः ।

क्व स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं
सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्
तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥ १ ॥
अवाचचक्षं पदमस्य सस्वः
उग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुः
इन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥ २ ॥
प्र नु वयं सुते या ते कृतानि
इन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्
वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥ ३ ॥
स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र
वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि
विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥ ४ ॥
परो यत् त्वं परम आजनिष्ठाः
परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा
विश्वा अपो अजयद् दासपत्नीः ॥ ५ ॥
तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा
अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं
प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥ ६ ॥
वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्
अहन् गवा मघवन्त्संचकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यत्
अवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥ ७ ॥

(१९८८)

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र
शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित् स्वर्यं१ वर्तमानं
प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥ ८ ॥
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे
किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने
अथोप प्रैद् युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥
समत्र गावोऽभितोऽनवन्त
इहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैः
यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥ १० ॥
यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्
अरोरवीद् वृषभः सादनेषु ।
पुरंदरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य
पुनर्गवामददादुस्त्रियाणाम् ॥ ११ ॥

॥ १४६ ॥ (ऋ० ५।३१।१-८; १०-१३)
अवस्युरात्रेयः, (८ तृतीयपादस्य
कुत्सो वा, चतुर्थपादस्य उशना वा) ।

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति
यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा
अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥ १ ॥
आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः
पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्ति
अमेनाँश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥ २ ॥
उद्यत् सहः सहस आजनिष्ट
देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत् सुदुघा वव्रे अन्तः
वि ज्योतिषा संववृत्वत् तमोऽवः ॥ ३ ॥
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्
त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैः
अवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४ ॥
वृष्णे यत् ते वृषणो अर्कमर्चान्
इन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा
इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥ ५ ॥
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं
प्र नूतना मघवन् या चकर्थ ।
शक्तीवो यद् विभरा रोदसी उभे
जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥ ६ ॥
तदिन्नु ते करणं दस्म विप्र
अहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित् परि माया अगृभ्णाः
प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥ ७ ॥
त्वमपो यदवे तुर्वशाय
अरमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं
सं ह यद् वामुशनारन्त देवाः ॥ ८ ॥
वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्
कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय
इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥ १० ॥
सूरश्चिद् रथं परितक्म्यायां
पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति
पुरो दधत् सनिष्यति क्रतुं नः ॥ ११ ॥
आयं जना अभिचक्षे जगाम
इन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन् ग्रावाव वेदिं भ्रियाते
यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥ १२ ॥

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते
मर्ता अमृत मो ते अंह आरन्।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेहि
ओजो जनेषु येषु ते स्याम ॥ १३ ॥

॥ १८७ ॥ (ऋ० ५।३२।१-१२) गातुरात्रेयः।

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि
त्वमर्णवान् बद्बधानाँ अरम्णाः।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद् वः
सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥ १ ॥
त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ
अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन्।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं
जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥ २ ॥
त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य
वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान
आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥ ३ ॥
त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं
मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम्।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं
वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥ ४ ॥
त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तम्
अमर्मणो विददिदस्य मर्म।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य
युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥ ५ ॥
त्यं चिदित्था कत्पयं शयानम्
असूर्ये तमसि वावृधानम्।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्य
उच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥ ६ ॥
उद् यदिन्द्रो महते दानवाय
वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम्।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ
विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥ ७ ॥
त्यं चिदर्णं मधुपं शयानम्
असिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः।
अपादमत्रं महता वधेन
नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम् ॥ ८ ॥
को अस्य शुष्मं तविषीं वरात
एको धना भरते अप्रतीतः।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी
इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥ ९ ॥
न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत
इन्द्राय गातुरुशतीव येमे।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिः
अनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥ १० ॥
एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं
जातं शृणोमि यशसं जनेषु।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं
दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥ ११ ॥
एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं
मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो
ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥ १२ ॥

॥ १८८ ॥ (ऋ० ५।३३।१-१०) प्राजापत्यः संवरणः।

महि महे तवसे दीध्ये नॄन्
इन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान्।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ
स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥ १ ॥
स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैः
हरीणां वृषन् योक्त्रमश्रेः।
या इत्था मघवन्ननु जोषं
वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥ २ ॥

न ते त इन्द्राभ्य१स्मदृष्व
अयुक्तासो अब्रह्मता यदसन्।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्त
आ रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥ ३ ॥
पुरू यत् त इन्द्र सन्त्युक्था
गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे
वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥ ४ ॥
वयं ते त इन्द्र ये च नरः
शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा
भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥ ५ ॥
पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो
नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः
प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥ ६ ॥
एवा न इन्द्रोतिभिरव
पाहि गृणतः शूर कारून्।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ
पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥ ७ ॥
उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेः
त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य
गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥ ८ ॥
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः
क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान
आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥ ९ ॥
उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा
लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेः
व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥ १० ॥

॥ १४३ ॥ (ऋ० ५।३४।१-९)
जगती, ९ त्रिष्टुप्।

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्य
अनु स्वधामिता दस्ममीयते।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे
पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १ ॥
आ यः सोमेन जठरमपिप्रता
अमन्दत मघवा मध्वो अन्धसः।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः
सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥ २ ॥
यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि
सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति
तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥ ३ ॥
यस्यावधीत् पितरं यस्य मातरं
यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते।
वेतीद्वस्य प्रयता यतंकरो
न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥ ४ ॥
न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं
नासुन्वता सचते पुष्यता चन।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिः
आ देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५ ॥
वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजः
असुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो
यथावशं नयति दासमार्यः ॥ ६ ॥
समीं पणेरजति भोजनं मुषे
वि दाशुषे भजति सूनरं वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु
जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥ ७ ॥

सं यज्ञनौ सुधनौ विश्वशर्धसा
अवेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्
युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥ ८ ॥
सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे
शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त
तस्मिन् क्षत्रममवत् त्वेषमस्तु ॥ ९ ॥

॥ १५० ॥ (ऋ० ५।३५।१-८)
प्रभूवसुराङ्गिरस । अनुष्टुप्, ८ पङ्क्ति ।

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥ १ ॥
यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद् वा पञ्च क्षितीना–मवस्तत् सु न आ भर ॥२॥
आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥ ३ ॥
वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥ ४ ॥
त्वं तमिन्द्र मर्त्य–ममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ ॥
त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६ ॥
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७ ॥
अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं
दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८॥

॥ १५१ ॥ (ऋ० ५।३६।१-६) त्रिष्टुप्, जगती ।

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां
चिकेतद् दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणः
चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥ १ ॥
आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे
रुहत् सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन्
गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥ २ ॥
चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते
मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध
कुविन्नु स्तोषन्मघवन् पुरूवसुः ॥ ३ ॥
एष ग्रावेव जरिता त इन्द्र
इयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन् यंसि रायः
प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥ ४ ॥
वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौः
वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र
वृषक्रतो वृषा वज्रिन् भरे धाः ॥ ५ ॥
यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्
त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां
श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥ ६ ॥

॥ १५२ ॥ ऋ० ५।३७।१-५)
भौमोऽत्रि । त्रिष्टुप् ।

सं भानुना यतते सूर्यस्य
आजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्
य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १ ॥
समिद्धाग्निर्वनवत् स्तीर्णबर्हिः
युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्ति
अयदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥ २ ॥

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति
य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद् रथ आ च घोषात्
पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥ ३ ॥
न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रः
तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं
क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥ ४ ॥
पुष्यात् क्षेमे अभि योगे भवाति
उभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति
य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥ ५ ॥

॥ १५३ ॥ (ऋ० ५।३८।१-५) अनुष्टुप् ।

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥ १ ॥
यदीमिन्द्र श्रवाय्य-मिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २ ॥
शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥ ३ ॥
उतो नो अस्य कस्य चिद् दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरा-ऽस्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४ ॥
नू त आभिरभिष्टिभि-स्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥

॥ १५४ ॥ (ऋ० ५।३९।१-५) अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।

यदिन्द्र चित्र मेहना ऽस्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥
यन्मन्यसे वरेण्य-मिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वय-मकूपारस्य दावने ॥ २ ॥
यत् ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥
मंहिष्ठं वो मघोनां, राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥ ४ ॥
अस्मा इत् काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे
गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ५ ॥

॥ १५५ ॥ (ऋ० ५।४०।१-४) उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप् ।

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १ ॥
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २ ॥
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३ ॥
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्
शुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्
माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ४ ॥

॥ १५६ ॥ (ऋ० ८।३६।१-७)
श्यावाश्व आत्रेयः । शक्करी, ७ महापङ्क्तिः ।

अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु ज्रयः समप्सुजि-न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥
प्राव स्तोतारं मघव-न्नव त्वां पिबा सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु ज्रयः समप्सुजि-न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥
ऊर्जा देवाँ अवस्यो-जसा त्वां पिबा सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु ज्रयः समप्सुजि-न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु ज्रयः समप्सुजि-न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु ज्रयः समप्सुजि-न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥
अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु ज्रयः समप्सुजि-न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥
श्यावाश्वस्य सुन्वत-स्तथा शृणु यथाशृणोः
अत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य
इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

॥ १५७ ॥ (ऋ० ८।३७।१-७)
महापङ्क्तिः, १ अतिजगती ।

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्
अनेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥
सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपते
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य
पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ २ ॥
एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपते
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य
पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ३ ॥
सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपते
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य
पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ४ ॥
क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपते
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य
पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ५ ॥
क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपते
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य
पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ६ ॥
श्यावाश्वस्य रेभत-स्तथा शृणु यथाशृणोः
अत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य
इन्द्रं क्षत्राणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

॥ १५८ ॥ (ऋ० ८।९१।१-७)
आत्रेयी अपाला । अनुष्टुप्, १-२ पङ्क्तिः ।

कन्या३ वारवायती सोममपि स्रुताविदत् ।
अस्तं भरन्त्यब्रवी-दिन्द्राय सुनवै त्वा
शक्राय सुनवै त्वा ॥ १ ॥
असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत् ।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणं
अपूपवन्तमुक्थिनम् ॥ २ ॥
आ चन त्वा चिकित्सामो ऽधि चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवे-न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥
कुविच्छकत् कुवित् करत् कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित् पतिद्विषो यती-रिन्द्रेण संगमामहै ॥ ४ ॥
इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरा-मादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥
असौ च या न उर्वरा-दिमां तन्वं३ मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पू-त्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥

॥ १५९ ॥ (ऋ० ८।२४।१-३०)
विश्वमना वैयश्वः। उष्णिक्।

सखा॑य॒ आ शि॑षामहि॒ ब्रह्मेन्द्रा॑य व॒ज्रिणे॑।
स्तु॒ष ऊ॒ षु वो॒ नृत॑माय धृ॒ष्णवे॑ ॥ १ ॥
शव॑सा॒ ह्यसि॑ श्रु॒तो वृ॑त्र॒हत्ये॑न वृत्र॒हा।
म॒घैर्म॒घोनो॒ अति॑ शूर दाशसि ॥ २ ॥
स न॑ः स्तवा॑न॒ आ भ॑र र॒यिं चि॒त्रश्र॑वस्तमम्।
नि॒रे॒के चि॒द्यो ह॑रिवो॒ वसु॑र्द॒दिः ॥ ३ ॥
आ नि॑रे॒कमु॒त प्रि॒य—मिन्द्र॒ द॒र्षि जना॑नाम्।
धृ॒ष॒ता धृ॑ष्णो॒ स्तव॑मान॒ आ भ॑र ॥ ४ ॥
न ते॑ स॒व्यं न दक्षि॑णं॒ हस्तं॑ वरन्त आ॒मुर॑ः।
न प॑रि॒बाधो॑ हरिवो॒ गवि॑ष्टिषु ॥ ५ ॥
आ त्वा॒ गोभि॑रिव व्र॒जं गी॒र्भिर्ऋ॑णोम्यद्रिवः।
आ स्मा॒ काम॑ं जरि॒तुरा मन॑ः पृण ॥ ६ ॥
विश्वा॑नि वि॒श्वम॑नसो धि॒या नो॑ वृत्रहन्तम।
उग्र॑ प्रणेत॒रधि॒ षू व॑सो गहि ॥ ७ ॥
व॒यं ते॑ अ॒स्य वृ॑त्रहन् वि॒द्याम॑ शूर॒ नव्य॑सः।
वसो॑ः स्पा॒र्हस्य॑ पुरुहूत॒ राध॑सः ॥ ८ ॥
इन्द्र॒ यथा॒ ह्यस्ति॒ ते ऽप॑रीतं नृतो॒ शव॑ः।
अमृ॑क्ता रा॒तिः पु॑रुहूत दा॒शुषे॑ ॥ ९ ॥
आ वृ॑षस्व महामह म॒हे नृ॑तम॒ राध॑से।
दृ॒ळ्हश्चि॑द्दृह्य मघवन्म॒घत्त॑ये ॥ १० ॥
नू अ॒न्यत्रा॑ चिदद्रिव—स्त्वन्नो॑ जग्मुरा॒शस॑ः।
मघ॑वञ्छ॒ग्धि तव॒ तन्न॑ ऊ॒तिभि॑ः ॥ ११ ॥
न॒ह्य१॒॑ङ्ग नृ॑तो॒ त्व—द॒न्यं वि॒न्दामि॒ राध॑से।
रा॒ये द्यु॒म्नाय॒ शव॑से च गिर्वणः ॥ १२ ॥
एन्दु॒मिन्द्रा॑य सिञ्चत॒ पिबा॑ति सो॒म्यं मधु॑।
प्र राध॑सा चोदयाते महित्व॒ना ॥ १३ ॥
उपो॒ हरी॑णां॒ पतिं॒ दक्षं॑ पृ॒ञ्चन्त॑मब्रवम्।
नू॒नं श्रु॑धि स्तुव॒तो अ॒श्व्यस्य॑ ॥ १४ ॥
न॒ह्य१॒॑ङ्ग पु॒रा च॒न ज॒ज्ञे वी॒रत॑र॒स्त्वत्।
नकी॑ रा॒या नैवथा॒ न भ॒न्दना॑ ॥ १५ ॥
एदु॒ मध्वो॑ म॒दिन्त॑रं सि॒ञ्च वा॑ध्वर्यो॒ अन्ध॑सः।
ए॒वा हि वी॒रः स्तव॑ते स॒दावृ॑धः ॥ १६ ॥
इन्द्र॑ स्थातर्हरीणां॒ नकि॑ष्टे पू॒र्व्यस्तु॑तिम्।
उदा॑नंश॒ शव॑सा॒ न भ॒न्दना॑ ॥ १७ ॥
तं वो॒ वाजा॑नां॒ पति॒—मह्र॑महि श्रव॒स्यव॑ः।
अप्रा॑युभिर्य॒ज्ञेभि॑र्वावृ॒धेन्य॑म् ॥ १८ ॥
एतो॒ न्विन्द्र॒ स्तवा॑म॒ सखा॑यः॒ स्तोम्यं॒ नर॑म्।
कृ॒ष्टीर्यो विश्वा॑ अ॒भ्यस्त्येक॒ इत् ॥ १९ ॥
अगो॑रुधाय ग॒विषे॑ द्यु॒क्षाय॒ दस्म्यं॒ वच॑ः।
घृ॒तात् स्वादी॑यो॒ मधु॑नश्च वोचत ॥ २० ॥
यस्यामि॑तानि वी॒र्या॒३॒॑ न राध॒ः पर्ये॑तवे।
ज्योति॒र्न विश्व॑म॒भ्यस्ति॒ दक्षि॑णा ॥ २१ ॥
स्तु॒हीन्द्रं॑ व्यश्व॒व—दनू॑र्मिं वा॒जिनं॒ यम॑म्।
अ॒र्यो गयं॒ मंह॑मानं॒ वि दा॒शुषे॑ ॥ २२ ॥
ए॒वा नू॒नमुप॑ स्तुहि॒ वैय॑श्व दश॒मं नव॑म्।
सुवि॑द्वांसं च॒र्कृत्यं॑ च॒रणी॑नाम् ॥ २३ ॥
वेत्था॒ हि निर्ऋ॑तीनां॒ वज्र॑हस्त परि॒वृज॑म्।
अह॑रहः शु॒न्ध्युः प॑रि॒पदा॑मिव ॥ २४ ॥
तदि॒न्द्राव॒ आ भ॑र॒ येना॑ दंसिष्ठ॒ कृत्व॑ने।
द्वि॒ता कुत्सा॑य शिश्नथो॒ नि चो॑दय ॥ २५ ॥
तमु॑ त्वा नू॒नमी॑महे॒ नव्यं॑ दंसिष्ठ॒ सन्य॑से।
स त्वं नो॒ विश्वा॑ अ॒भिमा॑तीः स॒क्षणि॑ः ॥ २६ ॥
य ऋक्षा॒दंह॑सो मु॒चद्यो वार्या॑त् स॒प्त सिन्धु॑षु।
वध॑र्दा॒सस्य॑ तुविनृम्ण नीनमः ॥ २७ ॥

॥ १६० ॥ (ऋ० ८।४६।१-१०, १९-२१;३३)
वशोऽश्व्यः। गायत्री, १ पादनिचृत्; ५ ककुप्, ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ९ सतोबृहती, ११-१२ विपरीतोत्तरः प्रगाथः= (बृहती, विपरीता), १३ द्विपदा जगती, १४ बृहती पिपीलिकमध्या, १५ ककुम्न्यङ्कुशिरा, १६ विराट्, १७ जगती, १८ उपरिष्टाद् बृहती, १९ बृहती, २० विषमपदा बृहती, ३० द्विपदा विराट्, ३१ उष्णिक्।

त्वाव॑तः पुरूवसो व॒यमि॑न्द्र प्रणेतः।
स्मसि॑ स्थातर्हरीणाम् ॥ १ ॥

त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम्।
विद्म दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥
आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो।
गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥ ३ ॥
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा।
मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥ ४ ॥
दधानो गोमदश्ववत् सुवीर्यमादित्यजूत एधते।
सदा राया पुरुस्पृहा ॥ ५ ॥
तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम्।
ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥
तस्मिन् हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं
मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥
यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः।
य आददिः स्वर्नृभिः यः पृतनासु दुष्टरः ॥ ८ ॥
यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि
गमेम गोमति व्रजे ॥ ९ ॥
गव्यो षु णो यथा पुरा ऽश्वयोत रथया।
वरिवस्य महामह ॥ १० ॥
नहि ते शूर राधसो ऽन्तं विन्दामि सत्रा।
दशस्या नो मघवन् नू चिदद्रिवो
धियो वाजेभिराविथ ॥ ११ ॥
य ऋष्वः श्रावयत्सखा
विश्वेत् स वेद जनिमा पुरुष्टुतः।
तं विश्वे मानुषा युगा
इन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥ १२ ॥
स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः
पुरःस्थाता मघवा वृत्रहा भुवत् ॥ १३ ॥
अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय
गिरा महा विचेतसम्।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ १४ ॥

ददी रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु
ददिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम्। नूनमथ ॥ १५ ॥
विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां
सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः।
कृपयतो नूनमत्यथ ॥ १६ ॥
महः सु वो अरमिषे स्तवामहे
मीळ्हुषे अरंगमाय जग्मये।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतां
इयक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥ १७ ॥
ये पातयन्ते अज्मभिः गिरीणां स्नुभिरेषाम्।
यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥१८॥
प्रभङ्गं दुर्मतीना-मिन्द्र शविष्ठा भर।
रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते
ज्येष्ठं चोदयन्मते ॥ १९ ॥
सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत।
प्रासहा सम्राट् सहुरिं सहन्तं
भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ॥ २० ॥
अध प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम्।
अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥ २९ ॥
गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय
उप मा यन्ति वध्रयः ॥ ३० ॥
अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत्।
अध श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥ ३१ ॥
अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यम्।
अधिरुक्मा वि नीयते ॥ ३२ ॥

॥१६१॥ (ऋ० ६।१७।१-१५)
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। त्रिष्टुप्; १५ द्विपदा त्रिष्टुप्।

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द
ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त
विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥ १ ॥

स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो
यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद् वज्रभृद् यो हरिष्ठाः
स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥ २ ॥
एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा
श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो
जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ ३ ॥
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव
इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं
मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥
येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानो
ऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं
नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥ ५ ॥
तव क्रत्वा तव तद् दंसनाभिः
आमासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्हा
उदूर्वाद् गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥ ६ ॥
पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वीम्
उप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे
प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७ ॥
अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा
एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्
स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥
अध द्यौश्चित् ते अप सा नु वज्राद्
द्वितानमद् भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं
नि चिद् विश्वायुः शयथे जघान ॥ ९ ॥

अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं
सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन
नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥ १० ॥
वर्धान् यं विश्वे मरुतः सजोषाः
पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्
वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥ ११ ॥
आ क्षोदो महि वृतं नदीनां
परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां
प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥ १२ ॥
एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं
महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रम्
आ ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥ १३ ॥
स नो वाजाय श्रवस इषे च
राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्
दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥ १४ ॥
अया वाजं देवहितं सनेम
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १५ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० ६।१७।१-१५)

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा
वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्
गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा
तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणाम्
एकः कृष्टीनामभवत् सहावा

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँ
रेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत् त इन्द्र
न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥ ३ ॥

सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये
सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयो
ऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४ ॥

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे
इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद् दस्मेषयन्तं
ऋणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥ ५ ॥

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र
ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री
वितन्तसाय्यो अभवत् समत्सु ॥ ६ ॥

स मज्मना जनिम मानुषाणा
ममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया
स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥ ७ ॥

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्
सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक् पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः
पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥ ८ ॥

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च
वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्रा
ऽभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥ ९ ॥

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती
रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोज
अध्वानयद् दुरिता दम्भयच्च ॥ १० ॥

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया
तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चि
ददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥ ११ ॥

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वे
र्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति
न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ १२ ॥

प्र तत् ते अद्या करणं कृतं भूत्
कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षा
मुत् तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥ १३ ॥

अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा
मदन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय
दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ १४ ॥

अनु द्यावापृथिवी तत् त ओजो
ऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत् ते अस्त्यु
क्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ १५ ॥

॥ १६३ ॥ (ऋ० ६।१९।१-१३)

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा
उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्याय
उरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥

इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद्
बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं
सद्यश्चिद् यो वावृधे असामि ॥ २ ॥

पृथू करस्ना बहुला गभस्ती
अस्मद्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना
अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥ ३ ॥

तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैः
इह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित् पूर्वे जरितार आसुः
अनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥ ४ ॥

धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः
स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्
समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥ ५ ॥

शविष्ठं न आ भर शूर शवः
ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणां
अस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥ ६ ॥

यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र
इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ
मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥ ७ ॥

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र
धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्
तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चात्
ओत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङ्
इन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥

नृवत् त इन्द्र नृतमाभिरूती
वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्
धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥ १० ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानं
अकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनाय
उग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥

जनं वज्रिन् महि चिन्मन्यमानं
एभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ
हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ १२ ॥

वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः
शत्रोःशत्रोरुत्तर इत् स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर
राया मदेम बृहता त्वोताः ॥ १३ ॥

॥ १६४ ॥ (ऋ० ६।२०।१-१३) त्रिष्टुप्, ७ विराट् ।

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यः
तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां
दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥

दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रा
असुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद् वृत्रमपो वव्रिवांसं
हन्नृजीषिन् विष्णुना सचानः ॥ २ ॥

तूर्वन्नोजीयान् तवसस्तवीयान्
कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य
विश्वासां यत् पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥

शतैरपद्रन् पणय इन्द्रात्र
दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः
पित्वो नारिरेचीत् किं चन प्र ॥ ४ ॥

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि
वज्रस्य यत् पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये कः
इन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥ ५ ॥
प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै
शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं
पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥
वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः
पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन् तद् रेक्णो अप्रमृष्यं
ऋजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥
स वेतसुं दशमायं दशोणिं
तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय
मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८ ॥
स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो
बिभ्रद् वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते
वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९ ॥
सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र
प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्द्
धन् दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥ १० ॥
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूः
वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं
महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमती-
ऋर्णोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि
पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥
तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ
सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित् तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्
दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कैः ॥ १३ ॥

॥ १६५ ॥ (ऋ० ६।२१।१-८,१०,११)

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोः
हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो
रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १ ॥
तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो
गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः
पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥ २ ॥
स इत् तमोऽवयुनं ततन्वत्
सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धाम
इयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥ ३ ॥
यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः
कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय
को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥ ४ ॥
इदा हि ते वेविषतः पुराजाः
प्रत्नास आसुः पुरुकृत् सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास
उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥ ५ ॥
तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि
प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो
यादेव विद्म तात् त्वा महान्तम् ॥ ६ ॥

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे
महि जज्ञानमभि तत् सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या
वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ ७ ॥

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य
ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्यापिः प्रदिवि पितॄणां
शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ॥ ८ ॥

इमा उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो
जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो
न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥ १० ॥

स नो बोधि पुरएता सुगेषु
उत दुर्गेषु पथिकृद् विदानः ।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठाः
तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥ १२ ॥

॥ १६६ ॥ (ऋ० ६।२२।१-११)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनां
इन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्
सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः
सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठां
अद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः
पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्
तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चित्
जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः
पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४ ॥

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठां
इन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां
गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं
मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीळिता स्वोजो
रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं
प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्म
इन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि
दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान्
ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा
पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते
विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति
शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा
करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो
विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव
आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

(११९७)

॥ १६७ ॥ (ऋ० ६।२३।१-१०)

सुतं इत् त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे
स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद् वा युक्ताभ्यां मघवन् हरिभ्यां
बिभ्रद् वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १ ॥
यद् वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र
वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद् वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यद्
अरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २ ॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं
प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं
दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥ ३ ॥
गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां
बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं
श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥
अस्मै वयं यद् वावान तद् विविष्म
इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्था
इन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥ ५ ॥
ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि
तावत् त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शंतमानि
रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥ ६ ॥
स नो बोधि पुरोळाशं रराणः
पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीद
उरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ ७ ॥
स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र
प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे
आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८ ॥
तं वः सखायः सं यथा सुतेषु
सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित् तस्मा असति नो भराय
न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥ ९ ॥
एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे
भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद् यथा जरित्र उत सूरिः
इन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥ १० ॥

॥ ११६८ ॥ (ऋ० ६।२४।१-१०)

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था
सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैः
द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥
ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः
श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया
वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥ २ ॥
अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्
प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया
व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥
शचीवतस्ते पुरुशाक शाका
गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तंतयस्त इन्द्र
दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ ४ ॥
अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वो
असच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषा
अर्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ ॥

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठाद्
उक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त
आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥ ६ ॥
न यं जरन्ति शरदो न मासा
न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतामस्य तनूः
स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥ ७ ॥
न वीळवे नमते न स्थिराय
न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा
गम्भीरे चिद् भवति गाधमस्मै ॥ ८ ॥
गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्
प्रेषो यन्धि सुतपावन् वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्
अक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥ ९ ॥
सचस्व नायमवसे अभीके
इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १० ॥

॥ १६९ ॥ (ऋ० ६।२५।१-९)

या त ऊतिरवमा या परमा
या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न
एभिश्च वाजैर्महान् न उग्र ॥ १ ॥
आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्
अमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीः
आर्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥ २ ॥
इन्द्र जामय उत येऽजामयो
अर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि
जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥ ३ ॥
शूरो वा शूरं वनते शरीरैः
तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु
वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ ४ ॥
नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुः
न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां
विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥ ५ ॥
स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोः
यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा
व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥ ६ ॥
अध स्मा ते चर्षणयो यदेजान्
इन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य
इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥ ७ ॥
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय
सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्र
इन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ८ ॥
एवा नः स्पृधः समजा समत्सु
इन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो
भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥ ९ ॥

॥ १७० ॥ (ऋ० ६।२६।१-८)

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा
महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद् विशोऽयन्त शूरसाता
उग्रं नोऽवः पार्ये अहन् दा ॥ १ ॥
(११४७)

आ यस्मिन् हस्ते नर्या मिमिक्षुः
आ रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोः
आध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥ २ ॥
श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुः
धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं
स्व१र्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३ ॥
स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्
यस्मिन् पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा
उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥ ४ ॥
न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य
वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो
यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ ५ ॥
एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तु
ऊती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः
पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥ ६ ॥

॥ १७३ ॥ (ऋ० ६।२०।१-५)

भूय इद् वावृधे वीर्याय
एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या
अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥ १ ॥
अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य
यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्
वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २ ॥
अद्या चिन्नू चित् तदपो नदीनां
यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुः
त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥ ३ ॥
सत्यमित् तन्न त्वावाँ अन्यो अस्ति
इन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णो
अवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४ ॥
त्वमपो वि दुरो विषूचीः
इन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां
साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥ ५ ॥

॥ १७४ ॥ (ऋ० ६।३०।१-५)

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्र
इन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वान्
ऋधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १ ॥
प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्
पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद्
द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥ २ ॥
आसस्राणासः शवसानमच्छ
इन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुः
नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥ ३ ॥
वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्ति
इन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो
मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥ ४ ॥
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दाता
इन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥ ५ ॥
(११७७)

॥ १७५ ॥ (ऋ० ६।३८।१-५)

अपादित उदु नश्चित्रतमो
महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामन्
जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥

दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा
घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यात्
मद्र्य१गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥

तं वो धिया परमया पुराजां
अजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्
महांश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥ ३ ॥

वर्धाद् यं यज्ञ उत सोम इन्द्र
वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोः
वर्धान् मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४ ॥

एवा जज्ञानं सहसे असामि
वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नूनं
आ विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५ ॥

॥ १७६ ॥ (ऋ० ६।३९।१-५)

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेः
विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देव
इषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १ ॥

अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा
ऋतधीतिभिरृतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं
पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥ २ ॥

अयं द्योतयदद्युतो व्य१क्तून्
दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां
शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३ ॥

अयं रोचयदरुचो रुचानो३
अयं वासयद् व्य१तेन पूर्वीः ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः ।
स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥ ४ ॥

नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्
इषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।
अप ओषधीरविषा वनानि
गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥ ५ ॥

॥ १७७ ॥ (ऋ० ६।४०।१-५)

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदाय
अव स्य हरी वि मुचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्य
अथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥ १ ॥

अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र
मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिः
इन्दुं समह्यन् पीतये समस्मै ॥ २ ॥

समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम
आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमि
इन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥ ३ ॥

आ याहि शश्वदुशता ययाथ
इन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नः
अथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ॥ ४ ॥

यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्
यद् वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्
सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥ ५ ॥

॥ १७८ ॥ (ऋ० ६।४१।१-५)

अहेळमान उप याहि यज्ञं
तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छ
इन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥ १ ॥
या ते काकुत् सुकृता या वरिष्ठा
यया शश्वत् पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्
सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥ २ ॥
एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप
इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र
यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥ ३ ॥
सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यान्
अयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं
तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥ ४ ॥
ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङ्
अरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु
प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥ ५ ॥

॥ १७९ ॥ (ऋ० ६।४२।१-४) अनुष्टुप्, ४ बृहती ।

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरंगमाय जग्मयेऽपश्चाद्दध्वने नरे ॥ १ ॥
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिण-मिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत् तंतमिदेषते ॥ ३ ॥
अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित् समस्य जेन्यस्य शर्धतो
अभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ ॥

॥ १८० ॥ (ऋ० ६।४३।१-४) उष्णिक् ।

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥
यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥
यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥
यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥

॥ १८१ ॥ (ऋ० ६।३१।१-५)

सुहोत्रो भारद्वाजः । त्रिष्टुप्, ४ शक्वरी ।

अभूरेको रयिपते रयीणां
आ हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरे
अवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥ १ ॥
त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वा
अच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि
विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥ २ ॥
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्र
अशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य
मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३ ॥
त्वं शतान्यव शम्बरस्य
पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो
दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे
भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥ ४ ॥
स सत्यसत्वन् महते रणाय
रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्
प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥ ५ ॥

(२०१०)

॥ १८१ ॥ (ऋ० ६।३२।१-५)

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै
महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शंतमानि
वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥ १ ॥
स मातरा सूर्येणा कवीनां
अवासयद् रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान
उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥ २ ॥
स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्
मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्
दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥ ३ ॥
स नीव्याभिर्जरितारमच्छा
महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनां
आ गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥ ४ ॥
स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैः
अप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं
दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥ ५ ॥

॥ १८३ ॥ (ऋ० ६।३३।१-५)
शुनहोत्रो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा
मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत् स्वश्वो
वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥ १ ॥
त्वां हीन्द्रावसे विवाचो
हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायः
त्वोत इत् सनिता वाजमर्वा ॥ २ ॥
त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्
दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैः
आ पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३ ॥
स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती
सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा
युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥ ४ ॥
नूनं न इन्द्रापराय च स्या
भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्
दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥ ५ ॥

॥ १८४ ॥ (ऋ० ६।३४।१-५)

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीः
वि च त्वद् यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां
पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥ १ ॥
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ
एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो
अस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ २ ॥
न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीः
इन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत् सहस्रं
गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥ ३ ॥
अस्मा एतद् दिव्यर्चेव मासा
मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः
सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥ ४ ॥
अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा
इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद् यथा महति वृत्रतूर्ये
इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥ ५ ॥

ऋतस्य पथि वेधा अपायि
श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाम महो वचोभिः
वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८ ॥
द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे
सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिः
धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ९ ॥
इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम
वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा
किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥ १० ॥
मा जस्वने वृषभ नो ररीथा
मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु
जह्यसुष्वीन् प्र वृहापृणतः ॥ ११ ॥
उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्ति
इन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया
मा त्वादामान आ दभन् मघोनः ॥ १२ ॥
अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानां
इन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिः
गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥ १३ ॥
अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वान्
इन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै
सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥ १४ ॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं
हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा
वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥ १५ ॥

इदं त्यत् पात्रमिन्द्रपानं
इन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद् यथा सौमनसाय देवं
व्यस्मद् द्वेषो युयवद् व्यंहः ॥ १६ ॥
एना मन्दानो जहि शूर शत्रून्
जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्यादेदिशानान्
पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥ १७ ॥
आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्सु
अस्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष
इन्द्र सूरीन् कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥ १८ ॥
आ त्वा हरयो वृषणो युजाना
वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो
वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥ १९ ॥
आ ते वृषन् वृषणो द्रोणमस्थुः
घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां
वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥ २० ॥
वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या
वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय
स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥ २१ ॥
अयं देवः सहसा जायमान
इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानि
इन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥ २२ ॥
अयमकृणोदुषसः सुपत्नीः
अयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु
त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥ २३ ॥

(१०५८)

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायत्
अयं रथमयुनक् सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः
सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥ २४ ॥

॥ १८८ ॥ (ऋ० ६।४५।१-३०) गायत्री, २९ अतिनिचृत्।

य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ १ ॥
अविप्रे चिद् वयो दध-दनाशुना चिदर्वता ।
इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ २ ॥
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ३ ॥
सखायो ब्रह्मवाहसे ऽर्चत प्र च गायत ।
स हि नः प्रमतिर्मही ॥ ४ ॥
त्वमेकस्य वृत्रहन्-नविता द्वयोरसि ।
उतेदृशे यथा वयम् ॥ ५ ॥
नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः ।
नृभिः सुवीर उच्यसे ॥ ६ ॥
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् ।
गां न दोहसे हुवे ॥ ७ ॥
यस्य विश्वानि हस्तयो-रूचुर्वसूनि नि द्विता ।
वीरस्य पृतनाषहः ॥ ८ ॥
वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते ।
वृह माया अनानत ॥ ९ ॥
तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते ।
अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १० ॥
तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने ।
हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥
धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् ।
त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥
अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते ।
भरे वितन्तसाय्यः ॥ १३ ॥
या त ऊतिरमित्रहन् मक्षूजवस्तमासति ।
तया नो हिनुही रथम् ॥ १४ ॥
स रथेन रथीतमो ऽस्माकेनाभियुग्वना ।
जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥
य एक इत् तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः ।
पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥
यो गृणतामिदासिथा-ऽऽपिरूती शिवः सखा ।
स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥
धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः ।
सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥
प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् ।
ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९ ॥
स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते ।
गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥ २० ॥
स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः ।
गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥ २१ ॥
तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ॥ २२ ॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २३ ॥
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥ २४ ॥
इमा उ त्वा शतक्रतो ऽभि प्र णोनुवुर्गिरः ।
इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥
दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते ।
अश्वो अश्वायते भव ॥ २६ ॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।
न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥
इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः
वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥

(७०८७)

पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि ।
वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९ ॥
अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
अस्मान् राये महे हिनु ॥ ३० ॥

॥ १८९ ॥ (ऋ० ६।४६।१-१४)
प्रगाथ (= विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरः
त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया
महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर
सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥
य सत्राहा विचर्षणिः इन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते
भवा समत्सु नो वृधे ॥ ३ ॥
बाधसे जनान् वृषभेव मन्युना
घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४॥
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी
ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसो
अमित्रान्सुषहान् कृधि ॥ ६ ॥
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर
सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥
यद् वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने
यत् पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद् रिरीहि सं नृषाह्ये
अमित्रान् पृत्सु तुर्वणे ॥ ८ ॥
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च
यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ९ ॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुः
अभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणः
तनूपा अन्तमो भव ॥ १० ॥
अध स्मा नो वृधे भव इन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो
दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥ ११ ॥
यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते
प्रिया शर्म पितॄणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे३ तने च छर्दिः
अचित्तं यावय द्वेषः ॥ १२ ॥
यदिन्द्र सर्गे अर्वतः चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि
श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥ १३ ॥
सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो
यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि
गृभीता बाह्वोर्गवि ॥ १४ ॥

॥ १९० ॥ (ऋ० ६।४७।६-१९, ११)
गर्गो भारद्वाजः । त्रिष्टुप्, १९ बृहती ।

धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र
वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यंदिने सवन आ वृषस्व
रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६ ॥
इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य
प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो
भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥ ७ ॥

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्
स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू
उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥ ८ ॥

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा
वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां
मा नस्तारीन्मघवन् रायो अर्यः ॥ ९ ॥

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ
चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत् किं चाहं त्वायुरिदं वदामि
तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥ १० ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं
हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं
स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११ ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः
सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२ ॥

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्य
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे
आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३ ॥

अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिः
गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूणि
अपो गा वज्रिन् युवसे समिन्दून् ॥ १४ ॥

क ईं स्तवत् कः पृणात् को यजाते
यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं
कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥ १५ ॥

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्
अन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा
चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६ ॥

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति
वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः
पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥ १८ ॥

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत
उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९ ॥

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं
कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन् दासा वृषभो वस्नयन्त
उदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥ २१ ॥

॥ १३१ ॥ (ऋ० ७।१८।१-२१) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र
विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वाः
त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥ १ ॥

राजेव हि जनिभिः क्षेष्येव
अव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैः
त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥ २ ॥

इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र
मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु
स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥ ३ ॥

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्
उप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आह
आ न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ४ ॥
अर्णांसि चित् पप्रथाना सुदास
इन्द्रो गाधान्यकृणोत् सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः
शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥ ५ ॥
पुरोळा इत् तुर्वशो यक्षुरासीद्
राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च
सखा सखायमतरद् विषूचोः ॥ ६ ॥
आ पक्थासो भलानसो भनन्ता-
लिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत् सधमा आर्यस्य
गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नॄन् ॥ ७ ॥
दुराध्यो३ अदितिं स्रेवयन्तो-
ऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्नाविव्यक् पृथिवीं पत्यमानः
पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥ ८ ॥
ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णी-
माशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रा-
नरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥ ९ ॥
ईयुर्गावो न यवसादगोपा
यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः
श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च ॥ १० ॥
एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या
वैकर्णयोर्जनान् राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन् नि शिशाति बर्हिः
शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥ ११ ॥

अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्व-
नु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं
त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥
वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषा-
मिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्
जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥ १३ ॥
नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च
षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु
विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥ १४ ॥
इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा
आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना
जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥ १५ ॥
अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं
परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय
भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥ १६ ॥
आध्रेण चित् तद्वेकं चकार
सिंह्यं चित् पेत्वेना जघान ।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः
प्रायच्छद् विश्वा भोजना सुदासे ॥ १७ ॥
शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे
भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम् ।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति
तिग्मं तस्मिन् नि जहि वज्रमिन्द्र ॥ १८ ॥
आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च
प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च
बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥ १९ ॥

न ते इन्द्र सुमतयो न रायः
संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्था
अव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥ २० ॥
प्र ये गृहादममदुस्त्वाया
पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्त
अधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ २१ ॥

॥ १९१ ॥ (ऋ० ७।१९।१-११)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः
एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य
प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः
शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा
अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं
प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः
क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ
भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं च
अस्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि
नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीः
अहंश्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥
सना ता त इन्द्र भोजनानि
रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि
व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥
मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टौ
अघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैः
तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥
प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ
नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीहि
अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ
नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्
अस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यं
अस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः
सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥
नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥

॥ १९२ ॥ (ऋ० ७।२०।१-१०)

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावान्
चक्रिरपो नर्यो यत् करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिः
त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥ १ ॥
हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः
प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं
दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥ २ ॥

युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा
शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा
अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥ ३ ॥
उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा
आ पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान् मिमिक्षन्
समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥ ४ ॥
वृषा जजान वृषणं रणाय
तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्ति
इनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥ ५ ॥
नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन्
मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि
क्षयत् स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ ६ ॥
यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्
अयज्ज्यायान् कनीयसो देष्णम् ।
अमृत इत् पर्यासीत दूरं
आ चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥ ७ ॥
यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाशद्
असन्निरेके अद्रिवः सखा ते ।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः
स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥ ८ ॥
एष स्तोमो अचिक्रदद् वृषा ते
उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।
रायस्कामो जरितारं त आगन्
त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ॥ ९ ॥
स न इन्द्र त्वयताया इषे धाः
त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिः
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

॥ १९४ ॥ (ऋ० ७।२१।१-१०)

असावि देवं गोऋजीकमन्धो
न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैः
बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु ॥ १ ॥
प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः
सोममादो विदथे दुध्रवाचः ।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा
दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः ॥ २ ॥
त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः
परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
त्वद् वावक्रे रथ्यो३ न धेना
रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ॥ ३ ॥
भीमो विवेषायुधेभिरेषां
अपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्
वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥ ४ ॥
न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो
न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोः
मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥ ५ ॥
अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्
न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ
न शत्रुरन्तं विविदद् युधा ते ॥ ६ ॥
देवाश्चित् ते असुर्याय पूर्वे
अनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्य
इन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥

कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहाव
ईशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे
अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥ ८ ॥
सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम
नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके
अभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥ ९ ॥
स न इन्द्र त्वयताया इषे धाः
त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिः
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

॥ १९५ ॥ (ऋ० ७।२१।१-९) विराट्, ९ त्रिष्टुप् ।

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा
यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति
येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां
यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेः
बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ ४ ॥
न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य
न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ ५ ॥
भूरि हि ते सवना मानुषेषु
भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक् कः ॥ ६ ॥
तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा
तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्म
उदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥
ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्नाः
इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

॥ १९६ ॥ (ऋ० ७।२३।१-६)

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्या
इन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततान
उपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥
अयामि घोष इन्द्र देवजामिः
इरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु
तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥
युजे रथं गवेषणं हरिभ्याम्
उप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वा
इन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥
आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो न गावो
नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा
त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु
शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तान्
अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं
वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ १९७ ॥ (ऋ० ७।२४।१-६)

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि
तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च
ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ १ ॥
गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः
सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिः
इयमिन्द्र जोहुवती मनीषा ॥ २ ॥
आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्
इदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चम्
आङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥ ३ ॥
आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा
ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्र
अस्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥ ४ ॥
एष स्तोमो मह उग्राय वाहे
धुरीवात्यो न वाजयन्नधायि ।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां
दिवीव द्याममधि नः श्रोमतं धाः ॥ ५ ॥
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि
प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ १९८ ॥ (ऋ० ७।२५।१-६)

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र
समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोः
मा ते मनो विष्वद्र्य१ग्वि चारीत् ॥ १ ॥
नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्रान्
अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोः
आ नो भर संभरणं वसूनाम् ॥ २ ॥
शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे
सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य
अस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥ ३ ॥
त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि
त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्र
ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥ ४ ॥
कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषम्
इन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा
वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥ ५ ॥
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि
प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ १९९ ॥ (ऋ० ७।२६।१-५)

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद
नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्
नृवन्नवीयः शृणवद् यथा नः ॥ १ ॥
उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद
नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः
समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥

चकार ता कृणवन्नूनमन्या
यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो
नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥ ३ ॥
एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र
एको विभक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीः
अस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥ ४ ॥
एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नॄन्
कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ २०० ॥ (ऋ० ७।२७।१-५)

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते
यत् पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान
आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ १ ॥
य इन्द्र शुष्मो मघवन् ते अस्ति
शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन् विचेता
अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥ २ ॥
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनां
अधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि
चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥
नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती
दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय
वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥ ४ ॥
नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न
आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद् रथवद् व्यन्तो
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ २०१ ॥ (ऋ० ७।२८।१-५)

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वान्
अर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता
अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व ॥ १ ॥
हवं त इन्द्र महिमा व्यानड्
ब्रह्म यत् पासि शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद् वज्रं दधिषे हस्त उग्र
घोरः सन् क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः ॥ २ ॥
तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्
सं यन्नॄन् न रोदसी निनेथ ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञे
अतूतुजिं चित् तूतुजिरशिश्नत् ॥ ३ ॥
एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य
दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना
अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥ ४ ॥
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं
महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ २०२ ॥ (ऋ० ७।२९।१-५)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे
आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोः
ददो मघानि मघवन्नियानः ॥ १ ॥
ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणो
अर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्व
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २ ॥

का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः
कदा नूनं ते मघवन् दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वाया
अधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥ ३ ॥
उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन्
येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि
त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥ ४ ॥
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं
महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ २०३ ॥ (ऋ० ७।३०।१-५)

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्
भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र
महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥
हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि
तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु
त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥ २ ॥
भद्रा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्
दधो यत् केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता
हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥ ३ ॥
वयं ते त इन्द्र ये च देव
स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं
स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥ ४ ॥
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं
महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ २०४ ॥ (ऋ० ७।३१।१-१२) गायत्री, १०-१२ विराट् ।

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥
त्वं न इन्द्र वाजयु — स्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवो ऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्व१स्य नो वसो ॥ ४ ॥
मा नो निदे च वक्तवे ऽर्यो रन्धीरराव्णे ।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।
त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥
महाँ उतासि यस्य ते ऽनु स्वधावरी सहः ।
मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥
तं त्वा मरुत्वती परि भुवद् वाणी सयावरी ।
नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥
ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन् दस्ममुप द्यवि ।
सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं
प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥
उरुव्यचसे महिने सुवृक्ति-
मिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव
सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ १२ ॥

(११३४)

॥ २०५ ॥ (ऋ० ७।३२।१-२७)
२६ पूर्वार्धर्चस्य शक्तिर्वासिष्ठो वा (शाट्यायने ब्राह्मणे); २६-२७ शक्तिर्वासिष्ठो वा (ताण्ड्के ब्राह्मणे) । प्रगाथः- (बृहती, सतोबृहती), ३ द्विपदा विराट् ।

मो षु त्वा वाघतश्चन आरे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहि
इह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥
इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा
मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो
रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥
रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं
पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये
हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥
श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां
नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद् यः सहस्राणि शता ददन्
नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥ ५ ॥
स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्
सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥
भवा वरूथं मघवन् मघोनां
यत् समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमहि
आ दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्
पृणन्नित् पृणते मयः ॥ ८ ॥
मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे
कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति
न देवासः कवत्नवे ॥ ९ ॥
नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो
गमत् स गोमति व्रजे ॥ १० ॥
गमद् वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो
यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानां
अस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥
उदिन्न्वस्य रिच्यते ऽंशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपो
दक्षं दधाति सोमिनि ॥ १२ ॥
मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं
य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ १३ ॥
कस्तमिन्द्र त्वावसु-मा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत् ते मघवन् पार्ये दिवि
वाजी वाजं सिषासति ॥ १४ ॥
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय
ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिः
विश्वा तरेम दुरिता ॥ १५ ॥
तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि
नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ १६ ॥
त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो
य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवो
अवस्युर्नाम भिक्षते ॥ १७ ॥
यदिन्द्र यावतस्त्वं एतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो
न पापत्वाय रासीय ॥ १८ ॥

(०४५०)

दिवेदिवे
राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं
वस्यो अस्ति पिता चन ॥ १९ ॥
तरणिरित् सिषासति वाजं पुरंध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा
नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥ २० ॥
न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु
न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते
देष्णं यत् पार्ये दिवि ॥ २१ ॥
अभि त्वा शूर नोनुमो ऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशम्
ईशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो
न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो
गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥
अभी षतस्तदा भर इन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि
भरेभरे च हव्यः ॥ २४ ॥
परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्
सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने
भवा वृधः सखीनाम् ॥ २५ ॥
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि
जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ २६ ॥
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३
माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपो
अति शूर तरामसि ॥ २७ ॥

॥ १०६ ॥ (ऋ० ७।३३।१-९)

१-९ वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् ।

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा
धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नॄन्
न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥
दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन
तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्
सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥ २ ॥
एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततार
एवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं
प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥ ३ ॥
जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणाम्
अक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेण
इन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥
उद् द्यामिवेत् तृष्णजो नाथितासो
ऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोद्
उरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥ ५ ॥
दण्डा इवेद् गोअजनास आसन्
परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ
आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥
त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतः
तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते
सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥ ७ ॥
(१०१८)

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां
समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन
स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥
त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः
सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तो
अप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

॥ २०७ ॥ (ऋ० ७।५५।२-८)
(प्रस्वापिनी उपनिषद्)। १-४ उपरिष्टाद्‌बृहती, ५-८ अनुष्टुप्।

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय
उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥
स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि
किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ३ ॥
त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि
किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ४ ॥
सस्तु माता सस्तु पिता
सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥
य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥
सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्स्वापयामसि ॥७॥
प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि॥८॥

॥ २०८ ॥ (ऋ० ७।९७।१) त्रिष्टुप्।

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या
नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे
गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ १ ॥

॥ २०९ ॥ (ऋ० ७।९८।१-६)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं
जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो
विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥
यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं
दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण
उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥ २ ॥
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ
प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं
युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥
यद्योधया महतो मन्यमानान्
साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्या-
स्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि
प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया
अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥
तवेदं विश्वमभितः पशव्यं
यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र
भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥

॥ २१० ॥ (ऋ० ७।१०४।८, १६, १९-२०)
त्रिष्टुप्, २१ जगती।

यो मा पाकेन मनसा चरन्त-
मभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता
असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८ ॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह
यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन
विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥
प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र
सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्ता
अभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १९ ॥
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव
इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं
नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २० ॥
इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो
हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं
पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः ॥ २१ ॥
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं
जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं
दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥

अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नरः ।
नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥
परोमात्रमृचीषम—मिन्द्रमुग्रं सुराधसम् ।
ईशानं चिद्वसूनाम् ॥ ६ ॥
तन्तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये ।
यः पूर्व्यामनुष्टुति—मीशे कृष्टीनां नृतुः ॥ ७ ॥
न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः ।
नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥
त्वोतासस्त्वा युजा ऽप्सु सूर्ये महद्धनम् ।
जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ९ ॥
तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम ।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ १० ॥
यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः ।
यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ ११ ॥
उरु णस्तन्वे तन उरु क्षयाय नस्कृधि ।
उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥
उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् ।
देववीतिं मनामहे ॥ १३ ॥

॥ १११ ॥ (ऋ० ८।६८।१-१०, [११ पूर्वार्धः] १२-१८)
अनुष्टुप्, १ उष्णिक्, ४-६ गायत्री, १६ पङ्क्तिः,

इन्द्रा॑य॒ गाव॑ आ॒शिरं॑ दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑ ।
यत् सी॑मुपह्व॒रे वि॒दत् ॥ ६ ॥
उ॒द्यद्ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपं॑ गृ॒हमिन्द्र॑श्च॒ गन्व॑हि ।
मध्वः॑ पी॒त्वा स॑चेवहि॒ त्रिः स॒प्त सख्युः॑ प॒दे ॥७॥
अर्च॑त॒ प्रार्च॑त॒ प्रिय॑मेधासो॒ अर्च॑त ।
अर्च॑न्तु पुत्र॒का उ॒त पुरं॒ न धृ॒ष्ण्व॑र्चत ॥ ८ ॥
अव॑ स्वराति॒ गर्ग॑रो, गो॒धा परि॑ सनिष्वणत् ।
पिङ्गा॒ परि॑ चनिष्कद॒—दिन्द्रा॑य॒ ब्रह्मोद्य॑तम् ॥ ९ ॥
आ यत् पत॑न्त्ये॒न्यः॑ सु॒दुघा॒ अन॑पस्फुरः ।
अ॒प॒स्फुरं॑ गृभायत॒ सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥ १० ॥
अपा॒दिन्द्रो॒ अपा॑द॒ग्नि—र्विश्वे॑ दे॒वा अ॑मत्सत ।
(पूर्वार्धः) ॥ ११ ॥
यो व्य॒तीँरफा॑णय॒त् सुयु॑क्ताँ॒ उप॑ दा॒शुषे॑ ।
त॒क्वो ने॒ता तदिद्वपु॑—रुप॒मा यो अमु॑च्यत ॥ १३ ॥
अतीदु॑ श॒क्र ओ॑हत॒ इन्द्रो॒ विश्वा॒ अति॒ द्विषः॑ ।
भि॒नत् क॒नीन॑ ओद॒नं प॒च्यमा॑नं प॒रो गि॒रा ॥१४॥
अ॒र्भ॒को न कु॑मार॒को ऽधि॑ तिष्ठ॒न् नवं॒ रथ॑म् ।
स प॑क्षन्महि॒षं मृ॒गं पि॒त्रे मा॒त्रे वि॑भु॒क्रतु॑म् ॥१५॥
आ तू सु॑शिप्र दंपते॒ रथं॑ तिष्ठा हिर॒ण्यय॑म् ।
अध॑ द्यु॒क्षं स॑चेवहि स॒हस्र॑पादमरु॒षं
स्व॑स्ति॒गाम॑ने॒हस॑म् ॥ १६ ॥
तं घे॑मि॒त्था न॑म॒स्विन॒ उप॑ स्व॒राज॑मासते ।
अर्थं॑ चिदस्य॒ सुधि॑तं॒ यदेत॑व
आ॒व॒र्तय॑न्ति दा॒वने॑ ॥ १७ ॥
अनु॑ प्र॒त्नस्यौक॑सः प्रि॒यमे॑धास एषाम् ।
पूर्वा॒मनु॒ प्रय॑तिं वृ॒क्तब॑र्हिषो
हि॒तप्र॑यस आशत ॥ १८ ॥
॥ २२२ ॥ (ऋ० ८।७०।१–१५)
पुरुहन्मा आङ्गिरसः । बृहती; १–६ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १२ ककुमती, १३ उष्णिक्, १४ अनुष्टुप्, १५ पुरउष्णिक् ।
यो राजा॑ चर्षणी॒नां याता॒ रथे॑भि॒रध्रि॑गुः ।
विश्वा॑सां तरु॒ता पृत॑नानां॒
ज्येष्ठो॒ यो वृ॑त्र॒हा गृ॒णे ॥ १ ॥
इन्द्रं॒ तं शु॑म्भ पुरुहन्म॒न्नव॑से॒
यस्य॑ द्वि॒ता वि॑ध॒र्तरि॑ ।
हस्ता॑य॒ वज्रः॒ प्रति॑ धायि दर्श॒तो
म॒हो दि॒वे न सूर्यः॑ ॥ २ ॥
नकि॒ष्टं कर्म॑णा नश॒—द्यश्च॒कार॑ स॒दावृ॑धम् ।
इन्द्रं॒ न य॒ज्ञैर्वि॒श्वगू॑र्तमृ॒भ्व॑स॒
मधृ॑ष्टं धृ॒ष्ण्वोज॑सम् ॥ ३ ॥
अषा॑ळ्हमु॒ग्रं पृत॑नासु सास॒हिं
यस्मि॑न् म॒हीरु॑रु॒ज्रयः॑ ।
सं धे॒नवो॒ जाय॑माने अनोनवु॒
र्द्यावः॒ क्षामो॑ अनोनवुः ॥ ४ ॥
यद्द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः ।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒
न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥ ५ ॥
आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृष॒न्
विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा ।
अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न् गोम॑ति व्र॒जे
वज्रि॑ञ्चि॒त्राभि॑रू॒तिभिः॑ ॥ ६ ॥
न सी॒मदे॑व आप॒—दिषं॑ दीर्घायो॒ मर्त्यः॑ ।
एत॑ग्वा चि॒द्य एत॑शा यु॒योज॑ते
हरी॒ इन्द्रो॑ यु॒योज॑ते ॥ ७ ॥
तं वो॑ म॒हो म॒हाय्य॒मिन्द्रं॑ दा॒नाय॑ स॒क्षणि॑म् ।
यो गा॒धेषु॒ य आर॑णेषु॒ हव्यो॒
वाजे॒ष्वस्ति॒ हव्यः॑ ॥ ८ ॥
उदू॒ षु णो॑ वसो म॒हे मृ॒शस्व॑ शूर॒ राध॑से ।
उदू॒ षु म॒ह्यै म॑घवन् म॒घत्त॑य॒
उदि॑न्द्र॒ श्रव॑से म॒हे ॥ ९ ॥
त्वं न॑ इन्द्र ऋत॒यु—स्त्वानि॒दो नि तृ॑म्पसि ।
मध्ये॑ वसिष्व तुविनृम्णो॒र्वोः
नि दा॒सं शि॑श्नथो॒ हथैः॑ ॥ १० ॥
(१११०)

अन्यव्रतममानुष—मयज्वानमदेवयुम् ।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः
सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥ ११ ॥
त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने ।
धानानां न सं गृभायास्मयुः
द्विः सं गृभायास्मयुः ॥ १२ ॥
सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य ।
उपस्तुतिं भोजः सूरियो अह्रयः ॥ १३ ॥
भूरिभिः समह ऋषिभि—र्बर्हिष्मद्भिः स्तविष्यसे ।
यदित्थमेकमेकमि—च्छर वत्सान् पराददः ॥ १४ ॥
कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो
वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत् ।
अजां सूरिर्न धातवे ॥ १५ ॥
इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥९

॥ २१५ ॥ (ऋ० ८।९६।१-१३, १६-२१)
[द्युतानो वा मारुतः । त्रिष्टुप्, ४ विराट्, २१ पुरस्ताज्ज्योति]

अस्मा उषास आतिरन्त यामं
इन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः ।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थु
र्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः ॥ १ ॥
अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा
त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्
यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥ २ ॥
इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल
इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः ।

त्रिः षप्तिस्त्वा मरुतो वावृधाना
उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं
शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥ ८ ॥
तिग्ममायुधं मरुतामनीकं
कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष ।
अनायुधासो असुरा अदेवाः
चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन् ॥ ९ ॥
मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं
प्रेरय शिवतमाय पश्वः ।
गिर्वाहसे गिर इंद्राय पूर्वीः
धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् ॥ १० ॥
उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां
द्रुणा न पारमीरया नदीनाम् ।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य
जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत् ॥ ११ ॥
तद्विविड्ढि यत् त इन्द्रो जुजोषत्
स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः
श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥ १२ ॥
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठत्
इयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तं
अप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ १३ ॥
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानो
अशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो
विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १६ ॥
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो
वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैः
त्वं गा इंद्र शच्येदविन्दः ॥ १७ ॥
त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनां
घनो वृत्राणां तविषो बभूथ ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान्
त्वमपो अजयो दासपत्नीः ॥ १८ ॥
स सुक्रतु रणिता यः सुतेषु
अनुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान् ।
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता
स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः ॥ १९ ॥
स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत् तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम ।
स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता
स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता ॥ २० ॥
स वृत्रहेन्द्र ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूव ।
कृण्वन्नपांसि नर्या पुरूणि
सोमो न पीतो हव्यः सखिभ्यः ॥ २१ ॥

॥ २१६ ॥ (ऋ० ८।९८।१-१२)
नृमेध आङ्गिरसः । उष्णिक्,
७, १०-११ ककुप्; ९, १२ पुरउष्णिक् ।

इंद्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥
एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ ५ ॥
त्वं हि शश्वतीना-मिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हंता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ६ ॥

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे।
उदेव यन्त उदभिः ॥ ७ ॥
वार्ण त्वा यव्याभि—र्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ ८ ॥
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयो—रौ रथ उरुयुगे।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥
त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।
आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १० ॥
त्वं हि नः पिता वसो
त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ११ ॥
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्त—मुप ब्रुवे शतक्रतो।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

॥ २१७ ॥ (ऋ० ८।९९।१-८)

प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

त्वामिदा ह्यो नरो ऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः।
स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुधि
उप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥
मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे
त्वे आ भूषन्ति वेधसः।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा
प्रति भागं न दीधिम ॥ ३ ॥
अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि
भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति
मनो दानाय चोदयन् ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्व—भि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि
त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ५ ॥
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः
क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे
वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६ ॥
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतम
अतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ७ ॥
इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं
शतमूतिं शतक्रतुम्।
समानमिन्द्रमवसे हवामहे
वसवानं वसूजुवम् ॥ ८ ॥

॥ २१८ ॥ (ऋ० ८।८९।१-७)

नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ। १-४ प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-६ अनुष्टुप्, ७ बृहती।

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो
देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहा
अथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे
बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतु—र्वज्रेण शतपर्वणा ॥३॥
अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः
श्रवश्चित् ते असद्बृहत्।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो
हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥
यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय।
तत् पृथिवीमप्रथय—स्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥ ५ ॥
तत् ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ ६ ॥

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभिः
जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ७ ॥

॥ २१९ ॥ (ऋ० ८।२०।१-६)
प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा
परमज्या ऋचीषमः ॥ १ ॥
त्वं दाता प्रथमो राधसाम-स्यसि सत्य ईशानकृत्।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे
पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥
ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजना
इन्द्र या ते अमन्महि ॥ ३ ॥
त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषे
अर्वाञ्चं रयिमा कृधि ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्र यशा अस्य-ृजीषी शवसस्पते ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्
अनुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥
तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र
प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥ ६ ॥

॥ २२० ॥ (ऋ० ८।९२।१-३३)
श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । गायत्री, १ अनुष्टुप्।

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं सनश्रुतम् ।
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥
इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः ।
महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥ ३ ॥
अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥
तम्वभि प्रार्चते-न्द्रं सोमस्य पीतये ।
तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥
अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा ।
विश्वाभि भुवना भुवत् ॥ ६ ॥
त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
आ च्यावयस्यूतये ॥ ७ ॥
युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् ।
नरमवार्यक्रतुम् ॥ ८ ॥
शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम ।
अवा नः पार्ये धने ॥ ९ ॥
अतश्चिदिन्द्र ण उपा ऽऽयाहि शतवाजया ।
इषा सहस्रवाजया ॥ १० ॥
अयाम धीवतो धियो ऽर्वद्भिः शक्र गोदरे ।
जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ११ ॥
वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा ।
उक्थेषु रणयामसि ॥ १२ ॥
विश्वा हि मर्त्यत्वना ऽनुकामा शतक्रतो ।
अगन्म वज्रिन्नाशसः ॥ १३ ॥
त्वे सु पुत्र शवसो ऽवृत्रन् कामकातयः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १४ ॥
स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा ।
धियाविड्ढि पुरंध्या ॥ १५ ॥
यस्ते नूनं शतक्रत-विन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
तेन नूनं मदे मदेः ॥ १६ ॥
यस्ते चित्रश्रवस्तमो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
य ओजोदातमो मदः ॥ १७ ॥
विद्मा हि यस्ते अद्रिव-स्त्वादत्तः सत्य सोमपाः।
विश्वासु दस्म कृष्टिषु ॥ १८ ॥

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १९ ॥
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २० ॥
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ २१ ॥
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥
विव्यक्थ महिना वृषन् भक्षं सोमस्य जागृवे ।
य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २३ ॥
अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
अरं धामभ्य इन्दवः ॥ २४ ॥
अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ २५ ॥
अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विन्द्र भूषसि ।
अरं ते शक्र दावने ॥ २६ ॥
पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः ।
अरं गमाम ते वयम् ॥ २७ ॥
एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्यं मनः ॥ २८ ॥
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २९ ॥
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३० ॥
मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् ।
त्वा युजा वनेम तत् ॥ ३१ ॥
त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः ।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ३२ ॥
त्वामिद्धि त्वायवो ऽनुनोनुवतश्चरान् ।
सखाय इन्द्र कारवः ॥ ३३ ॥

॥ ०११ ॥ । ऋ० ८।९३।(-३३)
सुकक्ष आङ्गिरसः । गायत्री ।

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥
स न इन्द्रः शिवः सखा ऽश्वावद्गोमद्यवमत् ।
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ४ ॥
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।
उतो तत् सत्यमित् तव ॥ ५ ॥
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ७ ॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ९ ॥
दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः ।
त्वं च मघवन् वशः ॥ १० ॥
यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम् ।
न देवो नाध्रिगुर्जनः ॥ ११ ॥
अधा ते अप्रतिष्कुतं देवी शुष्मं सपर्यतः ।
उभे सुशिप्र रोदसी ॥ १२ ॥
त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च ।
परुष्णीषु रुशत् पयः ॥ १३ ॥
वि यदहेरध त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः ।
विदन्मृगस्य ताँ अमः ॥ १४ ॥
आदु मे निवरो भुवद् वृत्रहादिष्ट पौंस्यम् ।
अजातशत्रुरस्तृतः ॥ १५ ॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।
आ शुषे राधसे महे ॥ १६ ॥
अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत ।
यत् सोमेसोम आभवः ॥ १७ ॥
बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः ।
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ १८ ॥
कया त्वं न ऊत्याऽभि प्र मन्दसे वृषन् ।
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १९ ॥
कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान् वृषभो रणत् ।
वृत्रहा सोमपीतये ॥ २० ॥
अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम् ।
प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥ २१ ॥
पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये ।
अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥ २२ ॥
इष्टा होत्रा असृक्षते-न्द्रं वृधासो अध्वरे ।
अच्छावभृथमोजसा ॥ २३ ॥
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥ २४ ॥
इह त्वा सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।
वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥
तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥ २५ ॥
आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे ।
स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥ २६ ॥
आ ते दधामीन्द्रिय-मुक्था विश्वा शतक्रतो ।
स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥
भद्रंभद्रं न आ भरे-षमूर्जं शतक्रतो ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २८ ॥
स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २९ ॥
त्वामिद् वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३० ॥
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३१ ॥
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३२ ॥
त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३३ ॥

॥ २२२ ॥ (ऋ० १०।८।७-९)

त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । त्रिष्टुप् ।

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्त-
रिच्छन् धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे
जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥ ७ ॥
स पित्र्याण्यायुधानि विद्वा-
निन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्
त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ॥ ८ ॥
भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजो
ऽवाभिनत् सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद् विश्वरूपस्य गोना-
माचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ॥ ९ ॥

॥ २२३ ॥ (ऋ० १०।२२।१-१५)

ऐन्द्रो विमदः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । पुरस्ताद्बृहती,
५, ७, ९ अनुष्टुप्, १५ त्रिष्टुप् ।

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा ॥१॥
इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥ २ ॥
महो यस्पतिः शवसो असाम्या
महो नृम्णस्य तूतुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥३॥
युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥४॥
त्वं त्या चिद् वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥ ५ ॥

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां
कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद् दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥ ६ ॥
आ न इन्द्र पृक्षसे ऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत् त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥७॥
अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तु—रन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥ ८ ॥
त्वं न इन्द्र शूर शूरै—रुत त्वोतासो बर्हणा ।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥ ९ ॥
त्वं तान् वृत्रहत्ये चोदयो नॄन्
कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥ १० ॥
मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥११॥
माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वी—रस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥ १२ ॥
अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्या ऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥ १३ ॥
अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्
विश्वायवे नि शिश्नथः ॥ १४ ॥
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं
मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो
महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥ १५ ॥

॥ ८८४ ॥ (ऋ० १०।९३।१–७)
जगती; १, ७ त्रिष्टुप्, ५ अभिसारिणी ।

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं
हरीणां रथ्यं विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्
वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥ १ ॥
हरी न्वस्य या वने विदे वसु
इन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवो
अव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् ॥ २ ॥
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं
हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत
इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥ ३ ॥
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ
इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधू-
दिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ४ ॥
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः
पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि
पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ५ ॥
स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्
अपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यत्
आ पशुं न गोपाः करामहे ॥ ६ ॥
माकिर्न एना सख्या वि यौषुः
तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवत्
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ॥ ७ ॥

॥ ८८५ ॥ (ऋ० १०।२४।१–३) आस्तारपङ्क्तिः ।

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे
सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे ॥ १ ॥
त्वां यज्ञेभिरुक्थै—रुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे
श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥ २ ॥

यस्पतिर्वार्याणा—मसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे
द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥ ३ ॥

॥ ००६ ॥ (ऋ० १०।२७।१-२४)
ऐन्द्रो वसुक्रः । त्रिष्टुप् ।

असत् सु मे जरितः साभिवेगो
यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता
सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥ १ ॥
यदीदहं युधये संनयानि
अदेवयून् तन्वा३ शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि
तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥ २ ॥
नाहं तं वेद य इति ब्रवीति
अदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत् समरणमृघावत्
आदिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥
यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं
विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत् क्षेम आ सन्तमाभुं
प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥ ४ ॥
न वा उ मां वृजने वारयन्ते
न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात् कृधुकर्णो भयात
एवेदनु द्यून् किरणः समेजात् ॥ ५ ॥
दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्
बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायम्
अध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥ ६ ॥
अभूर्वौक्षीर्व्यु१ आयुरानड्
दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो
यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥ ७ ॥
गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्
ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्
कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥ ८ ॥
सं यद्वयं यवसादो जनानां
अहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छात्
अथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥ ९ ॥
अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं
द्विपाच्च यच्चतुष्पात् संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यात्
अयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः ॥ १० ॥
यस्यानक्षा दुहिता जात्वास
कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम् ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते
य ईं वहाते य ईं वा वरेयात् ॥ ११ ॥
कियती योषा मर्यतो वधूयोः
परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः
स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥ १२ ॥
पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति
शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम् ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति
न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ॥ १३ ॥
बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा
तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय
कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥ १४ ॥
(७१०४)

सप्त वीरासो अधरादुदायन्
अष्टोत्तरात्तात् समजग्मिरन्ते।
नव पश्चातात् स्थिविमन्त आयन्
दश प्राक् सानु वि तिरन्त्यश्नः ॥ १५ ॥
दशानामेकं कपिलं समानं
तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्व
वेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥ १६ ॥
पीवानं मेषमपचन्त वीरा
न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन्।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः
पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥ १७ ॥
वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्
पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः।
अयं मे देवः सविता तदाह
द्र्वन्न इद्वनवत् सर्पिरन्नः ॥ १८ ॥
अपश्यं ग्रामं वहमानमारात्
अचक्रया स्वधया वर्तमानम्।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां
सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥ १९ ॥
एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ
मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं
सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥ २० ॥
अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तो
ऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात्।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति
तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥ २१ ॥
वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौः
ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात
इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥ २२ ॥
देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्
कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन्।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा
द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥ २३ ॥
सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि
मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं
स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते ॥ २४ ॥
॥ २२७ ॥ (ऋ० १०।२९।१-८)

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्
छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता
नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥
प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या
नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्
कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥ २ ॥
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्
दुरो गिरो अभ्यु१ग्रो वि धाव।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा
आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३ ॥
कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्
कया धिया करसे कन्न आगन्।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या
अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः ॥ ४ ॥
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं
ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन्।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीः
नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५ ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी
द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः
स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रम्
इन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या
अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा
आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ
यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥ ८ ॥

॥ २५८ ॥ (ऋ० १०।२८।१,३-५,७,९,११)
[१ इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी ऋषिका; ३-५, ७, ९, ११ ऐन्द्रो वसुक्र ऋषिः।]

विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम
ममेदह श्वशुरो ना जगाम।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्
स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥ १ ॥

अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्
सुन्वन्ति सोमान् पिबसि त्वमेषाम्।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां
पृक्षेण यन्मघवन् हूयमानः ॥ ३ ॥

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि
प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः
क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥ ४ ॥

कथा त एतदहमा चिकेतं
गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम्।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो
यमर्धं ते मघवन् क्षेम्या धूः ॥ ५ ॥

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं
कर्मन्कर्मन् वृषणमिन्द्र देवाः।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानो
अप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥ ७ ॥

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगार
अद्रिं लोगेन व्यभेदमारात्।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि
वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥ ९ ॥

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतत्
ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति
स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥ ११ ॥

॥ २५९ ॥ (ऋ० १०।३२।१-९)
कवष ऐलूषः। जगती, ६-९ त्रिष्टुप्।

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि
वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति
यत् सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥ १ ॥

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना
वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप
ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः ॥ २ ॥

तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं
पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्
पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥ ३ ॥

तदित् सधस्थमभि चारु दीधय
गावो यच्छासन् वहतुं न धेनवः।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्या
अभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥ ४ ॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र
संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्
नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४ ॥
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै
तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो
नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥
यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे
यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रु-
र्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥ ६ ॥
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरं
उग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र
कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्
तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्
नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥ ८ ॥
उत प्रहामतिदीव्या जयाति
कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि
समित् तं राया सृजति स्वधावान् ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां
यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्य-
स्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चा-
दुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः
सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

॥ २३३ ॥ (ऋ० १०।४३।१-११)
जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः
सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं
मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥
न घा त्वद्रिगप वेति मे मन-
स्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्य-
स्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः
स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो
वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥
वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्
सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्
विदत् स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने
संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्
न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥ ५ ॥
विशंविशं मघवा पर्यशायत
जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति
स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥ ६ ॥
आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्
सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने
यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा
यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवे
अविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह
भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः
स्व१र्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां
यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनानि
अस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चात्
उतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः
सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

॥ २३४ ॥ (ऋ० १०।४४।१-११)
जगती; १-३, १०-११ त्रिष्टुप् ।

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय
यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांसि
अपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते
मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ्
वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुं
उग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्मं
एमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसं
ऊर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अपि
असो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं
स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिषि
अनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयो
अकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहं
ईर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो
अश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने
पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥

गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद्
द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति
वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं
येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं
सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां
यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनानि
अस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चात्
उतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः
सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

(१५७८)

॥ २३५ ॥ (ऋ० १०।४८।१-११)
वैकुण्ठ इन्द्रः। जगती; ७, १०-११ त्रिष्टुप्।

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः
अहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवो
अहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥ १ ॥
अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणः
त्रिताय गा अजनयमहेरधि।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे
गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने ॥ २ ॥
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं
मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम्।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं
मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥ ३ ॥
अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं
पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम्।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे
यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥ ४ ॥
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं
न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु
न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥ ५ ॥
अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वा
इन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं
दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥ ६ ॥
अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाळ्
अभी द्वा किमु त्रयः करन्ति।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि
किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥ ७ ॥
अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करम्
इषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम्।
यत् पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे
प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥ ८ ॥
प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्
गवामेषे सख्या कृणुत द्विता।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयम्
आदिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥ ९ ॥
प्र नेमस्मिन् ददृशे सोमो अन्तः
गोपा नेममाविरस्था कृणोति।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन्
द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥ १० ॥
आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां
देवो देवानां न मिनामि धाम।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुः
अपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ॥ ११ ॥

॥ २३६ ॥ (ऋ० १०।४९।१-११) जगती; २, ११ त्रिष्टुप्।

अहं दां गृणते पूर्व्यं वसु
अहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्।
अहं भुवं यजमानस्य चोदिता
अयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन् भरे ॥ १ ॥
मां धुरिन्द्रं नाम देवता
दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू
अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे ॥ २ ॥
अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैः
अहं कुत्समावमाभिरूतिभिः।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं
न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥ ३ ॥
अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये
तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम्।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि
प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ॥ ४ ॥

अहं रंधयं मृगयं श्रुतर्वणे
यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकरं
अहं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम् ॥ ५ ॥
अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं
सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम् ।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्
दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ॥ ६ ॥
अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः
प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा ।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज
ऋधक् कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ॥ ७ ॥
अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः
प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम् ।
अहं न्य१न्यं सहसा सहस्करं
नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम् ॥ ८ ॥
अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा
द्रवित्न्वः पृथिव्यां सीरा अधि ।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतुः
युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ॥ ९ ॥
अहं तदासु धारयं यदासु न
देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा
मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् ॥ १० ॥
एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन्
प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत् ता ते हरिवः शचीवो
अभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥ ११ ॥

॥ ३१७ ॥ (ऋ० १०।५०।१-७)
वामदेव्यः। इन्द्रः। १,४ अभिसारिणी, ५ त्रिष्टुप्।

प्र वो महे मन्दमानायान्धसो
अर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि
श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥ १ ॥
सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतः
चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते
वृत्रे वाप्स्व१भि शूर मंदसे ॥ २ ॥
के ते नर इन्द्र ये त इषे
ये ते सुम्नं सधन्य१मियक्षान् ।
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे
के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ॥ ३ ॥
भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्
भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नॄँश्च्यौत्नो विश्वास्मिन् भरे
ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥ ४ ॥
अवा नु कं ज्यायान् यज्ञवनसो
महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।
असो नु कमजरो वर्धाश्च
विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ॥ ५ ॥
एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे
स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे ।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना
यज्ञो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः ॥ ६ ॥
ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा
वसूनां च वसुनश्च दावने ।
प्र ते सुम्नस्य मनसा पथा भुवन्
मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः ॥ ७ ॥

॥ ३१८ ॥ (ऋ० १०।५४।१-६)
बृहदुक्थो वामदेव्यः। त्रिष्टुप्।

तां सु ते कीर्तिं मघवन् महित्वा
यत् त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः
प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥ १ ॥

यदचरस्तन्वा वावृधानो
बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहुः
नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥ २ ॥
क उ नु ते महिमनः समस्य
अस्मत् पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकं
अजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥ ३ ॥
चत्वारि ते असुर्याणि नाम
अदाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से
येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥ ४ ॥
त्वं विश्वा दधिषे केवलानि
यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।
काममिन्मे मघवन् मा वि तारीः
त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ॥ ५ ॥
यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तः
यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म
ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ॥ ६ ॥

॥ २३९ ॥ (ऋ० १०।५५।१-८)

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैः
यत् त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके
भ्रातुः पुत्रान् मघवन् तित्विषाणः ॥ १ ॥
महत् तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्
येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य
प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च ॥ २ ॥
आ रोदसी अपृणादोत मध्यं
पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे
सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥ ३ ॥
यदुष औच्छः प्रथमा विभानां
अजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत् ते जामित्वमवरं परस्या
महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥
विधुं दद्राणं समने बहूनां
युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वा
अद्या ममार स ह्यः समान ॥ ५ ॥
शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण
आ यो महः शूरः सनादनीळः ।
यच्चिकेत सत्यमित् तन्न मोघं
वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥ ६ ॥
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि
येभिरौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न
ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ७ ॥
युजा कर्माणि जनयन् विश्वौजा
अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः
शूरो निर्युधाधमद् दस्यून् ॥ ८ ॥

॥ २४० ॥ (ऋ० १०।६०।५)

बन्धु श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः गायत्री ।

इन्द्र क्षत्रासमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय ।
दिवीव सूर्यं दृशे ॥ ५ ॥

॥ २४१ ॥ (ऋ० १०।७३।१-११)

गौरिवीतिः शाक्त्यः । त्रिष्टुप् ।

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय
मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र
माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥ १ ॥

द्रुह्यो निर्पसा पृशानी चिदेवैः
पुरू शंसैन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।
अभीवृतेव ता महापदेन
ध्वान्तात् प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः ॥ २ ॥
ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगासि
अर्वर्धन् वाजा उत ये चिदत्र ।
त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रं
आसन् दधिषे अश्विना ववृत्याः ॥ ३ ॥
समना तूर्णिरुप यासि यज्ञं
आ नासत्या सख्याय वक्षि ।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्रा
अश्विना शूर ददतुर्मघानि ॥ ४ ॥
मन्दमान ऋतादधि प्रजायै
सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।
आभिर्हि माया उप दस्युमागात्
मिहः प्र तम्रा अवपत् तमांसि ॥ ५ ॥
सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा
अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः
साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥ ६ ॥
त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं
दासं कृण्वान ऋषये विमायम् ।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्
पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥ ७ ॥
त्वमेतानि पप्रिषे वि नाम
ईशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।
अनु त्वा देवाः शवसा मदन्ति
उपरिबुध्नान् वनिनश्चकर्थ ॥ ८ ॥
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तं
उतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः
पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥ ९ ॥
अश्वादियायेति यद्वदन्ति
ओजसो जातमुत मन्य एनम् ।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ
यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद ॥ १० ॥
वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं
प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुः
मुमुग्ध्य१स्मान् निधयेव बद्धान् ॥ ११ ॥

॥ १४१ ॥ (ऋ० १०।७४।१-६)

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन्
धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ
वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ॥ १ ॥
हव एषामसुरो नक्षत द्यां
श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।
चक्षाणा यत्र सुविताय देवा
द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ॥ २ ॥
इयमेषाममृतानां गीः
सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञं च साधन्तः
ते नो धान्तु वसव्य१मसामि ॥ ३ ॥
आ तत् त इन्द्रायवः पनन्त
अभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं१ ये पुरुपुत्रां महीं
सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ ४ ॥
शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वं
अनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं
भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ॥ ५ ॥

यद्वायानं पुरुतमं पुराषाद्
आ वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्
यदीमुश्मसि कर्तवे करत् तत् ॥ ६ ॥

॥ ९४३ ॥ (ऋ० १०।८६।१-२३)
इन्द्रः, ७, १३, २३ ऐन्द्रो वृषाकपिः;
२-६, ९-१०, १५-१८ इन्द्राणी। पङ्क्तिः ।

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपि—रर्यः पुष्टेषु मत्सखा
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्द—स्यन्यत्र सोमपीतये
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥

किमयं त्वां वृषाकपि—श्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्व1र्यो वा पुष्टिमद्वसु
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिष—दपि कर्णे वराहयुः
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥

प्रिया तष्टानि मे कपि—र्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥

न मत् स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्व—मभ्यमीषि वृषाकपिं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८ ॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणी—न्द्रपत्नी मरुत्सखा
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९ ॥

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणी - न्द्रपत्नी महीयते
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १० ॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिः
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ११ ॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १२ ॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविः
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १३ ॥

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इ—दुभा कुक्षी पृणन्ति मे
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १४ ॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गो ऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुः
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥

न सेशे यस्य रम्बते ऽन्तरा सक्थ्या3 कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १६ ॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बते ऽन्तरा सक्थ्या3 कपृद्
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरु—मादेधस्यान आचितं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥

(०६५७)

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम्।
पिबामि पाकसुत्वनो ऽभि धीरमचाकशं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १९ ॥
धन्व च यत् कृन्तत्रं च
कति स्वित् ता वि योजना।
नेदीयसो वृषाकपे ऽस्तमेहि गृहाँ उप
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २० ॥
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै।
य एष स्वप्ननंशनो ऽस्तमेषि पथा पुनः
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २१ ॥
यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन।
क्व स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥
पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम्।
भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद्
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥

॥ ३४४ ॥ (ऋ० १०।८९।१-४, ६-१८)
रेणुर्वैश्वामित्र। त्रिष्टुप्।

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य मह्ना
विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान्।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः
प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा ॥ १ ॥
स सूर्यः पर्युरू वरांस्य
इन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा।
अतिष्ठन्तमपस्यं न सर्गं
कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥ २ ॥
समानमस्मा अनपावृदर्च
क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम्।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य
इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे ॥ ३ ॥
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा
अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात्।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिः
विष्वक् तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ४ ॥
न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व
नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः
शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ॥ ६ ॥
जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव
रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून्।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भं
आ गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥ ७ ॥
त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरो
असिर्न पर्व वृजिना शृणासि।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम
युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥ ८ ॥
प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः
प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति।
न्यमित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं
वृषन् वृषाणमरुषं शिशीहि ॥ ९ ॥
इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या
इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम्।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणां
इन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥ १० ॥
प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः
प्रान्तरिक्षात् प्र समुद्रस्य धासेः।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात्
प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ॥ ११ ॥
प्र शोशुचत्या उषसो न केतुः
असिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानः
तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥ १२ ॥

(०६७१)

अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥ १३ ॥
कर्हि स्वित् सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद् भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥ १४ ॥
शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र ।
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः ॥ १५ ॥
पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन् गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् ॥ १६ ॥
एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् ॥ १७ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ १८ ॥

॥ १४५ ॥ (ऋ० १०।९९।१-१२) वम्रो वैखानसः ।

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान् पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।
कत् तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद् वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत् ॥ १ ॥
स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ॥ २ ॥
स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत् सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥ ३ ॥
स यह्व्योऽवनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्त्रिः ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥ ४ ॥
स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारेअवद्य आगात् ।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥ ५ ॥
स इद् दासं तुवीरवं पतिर्दन् षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ॥ ६ ॥
स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम् ।
स नृतमो नहुषोऽस्मत् सुजातः पुरोऽभिनदर्हन् दस्युहत्ये ॥ ७ ॥
सो अभ्रियो न यवस उदन्यन् क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे ।
उप यत् सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥ ८ ॥
स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥ ९ ॥

अयं दंशस्यन् नर्येभिरस्य
दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवेदि
अमिमीताररुं यश्चतुष्पात् ॥ १० ॥

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा
व्रजं दरयद् वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद् यजतो दीदयद्गीः
पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥ ११ ॥

एवा महो असुर वक्षथाय
वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम् ।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा
इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥ १२ ॥

॥ ८८३ ॥ (ऋ० १०।१०३।१-३,५-११,१३)
ऐन्द्रोऽप्रतिरथ । [१३ मरुतो वा] । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं
जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वम्
इन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥ ६ ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानो
अदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्यो३
अस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिः
दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां
जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ
आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह
नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं
तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥ २ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां
प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व
धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ ३ ॥
ऊती शचीवस्तव वीर्येण
वयो दधाना उशिजं ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे
तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ४ ॥
प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः
सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः
स्तोतारं इन्द्र तव सूनृताभिः ॥ ५ ॥
उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां
सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इन्द्रं त्वा यज्ञः क्षममाणमानड्
दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ॥ ६ ॥
सहस्रवाजमभिमातिषाहं
सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीतं
इन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ॥ ७ ॥
सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता
याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीः
देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ॥ ८ ॥
अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चो
अजागरास्वधि देव एकः ।
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ
ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ॥ ९ ॥

वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिः
उतापि धेना पुरुहूतमीट्टे ।
आर्दयद् वृत्रमकृणोदु लोकं
ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः ॥ १० ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र
मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

॥ ३४८ ॥ (ऋ० १०।१०५।१-११)

कौत्सो दुर्मित्रः सुमित्रो वा । उष्णिक्, १ गायत्री च, २, ७ पिपीलिकमध्या, ११ त्रिष्टुप् ।

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः ।
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥ १ ॥
हरी यस्य सुयुजा विव्रता वे—रर्वन्तानु शेपा ।
उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ॥ २ ॥
अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो
न शश्रमाणो बिभीवान् ।
शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ॥ ३ ॥
सचायोरिन्द्रश्चर्कृष आँ उपानसः सपर्यन् ।
नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ॥ ४ ॥
अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै ।
वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥ ५ ॥
प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभि—स्ततक्ष शूरः शवसा ।
ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ॥ ६ ॥
वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान् ।
अरुतहनुरद्भुतं न रजः ॥ ७ ॥
अव नो वृजिना शिशी—ह्यृचा वनेमानृचः ।
नाब्रह्मा यज्ञ ऋधग्जोषति त्वे ॥ ८ ॥
ऊर्ध्वा यत् ते त्रेतिनी भूद् यज्ञस्य धूर्षु सद्मन् ।
सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः ॥ ९ ॥
श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भू—च्छ्रिये दर्विररेपाः ।
यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् ॥ १० ॥

(९७१३)

शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा
सुमित्र इत्थास्तौद् दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं
प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ॥ ११ ॥

॥ १४९ ॥ (ऋ० १०।१११।१-१०)
वैरूपोऽष्टादंष्ट्रः । त्रिष्टुप् ।

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां
यथायथा मतयः सन्ति नृणाम् ।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः
स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः ॥ १ ॥

ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत्
सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट् ।
उदतिष्ठत् तविषेणा रवेण
महान्ति चित् सं विव्याचा रजांसि ॥ २ ॥

इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद
स हि जिष्णुः पथिकृत् सूर्याय ।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः
पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः ॥ ३ ॥

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य
व्रतामिनादङ्गिरोभिर्गृणानः ।
पुरूणि चिन्नि तताना रजांसि
दाधार यो धरुणं सत्यताता ॥ ४ ॥

इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या
विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ।
महीं चिद् द्यामातनोत् सूर्येण
चास्कम्भ चित् कम्भनेन स्कभीयान् ॥ ५ ॥

वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तः
अदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थ
अथाभवो मघवन् बाह्वोजाः ॥ ६ ॥

सचन्त यदुषसः सूर्येण
चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न
पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ॥ ७ ॥

दूरं किल प्रथमा जग्मुरासां
इन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः ।
क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसां
आपो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ॥ ८ ॥

सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ
आदिदेताः प्र विविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुच्रे
अधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥ ९ ॥

सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्
सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसूनि
अस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥ १० ॥

॥ १५० ॥ (ऋ० १०।११२।१-१०)
वैरूपो नभःप्रभेदनः ।

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्य
प्रातःसावस्तव हि पूर्वपीतिः ।
हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रून्
उक्थेभिष्टे वीर्या प्र ब्रवाम ॥ १ ॥

यस्ते रथो मनसो जवीयान्
एन्द्र तेन सोमपेयाय याहि ।
तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु
येभिर्यासि वृषभिर्मन्दमानः ॥ २ ॥

हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य
श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः
सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ॥ ३ ॥

यस्य त्यत् ते महिमानं मदेषु
इमे मही रोदसी नाविविक्ताम् ।
तदोक आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः
प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ ॥ ४ ॥
यस्य शश्वत् पपिवाँ इन्द्र शत्रून्
अनानुकृत्या रण्या चकर्थ ।
स ते पुरंधिं तविषीमियर्ति
स ते मदाय सुत इन्द्र सोमः ॥ ५ ॥
इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र
पिबा सोममेना शतक्रतो ।
पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वो
यं विश्व इदभिहर्यन्ति देवाः ॥ ६ ॥
वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो
हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।
अस्माकं ते मधुमत्तमानी
आ भुवन्त्सवना तेषु हर्य ॥ ७ ॥
प्र ते इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं
वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं
सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥ ८ ॥
नि षु सीद गणपते गणेषु
त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे
महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥ ९ ॥
अभिख्या नो मघवन् नाधमानान्
सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।
रणं कृधि रणकृत् सत्यशुष्मा
अभक्ते चिदा भजा राये अस्मान् ॥ १० ॥

॥ १५१ ॥ (ऋ० १०।११२।१-१०)
वैरूपः शतप्रभेदनः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा
विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदैत् कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं
पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत ॥ १ ॥
तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसा
अंशुं दधन्वान् मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिः
वृत्रं जघन्वाँ अभवद् वरेण्यः ॥ २ ॥
वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा
समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मना
अवर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥ ३ ॥
जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः
प्रापश्यद् वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजद्
अस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ॥ ४ ॥
आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत
वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत ।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायसं
शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ॥ ५ ॥
इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिनं
ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसा
अपो बिभ्रतं तमसा परीवृतम् ॥ ६ ॥
या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा
महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत
इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ॥ ७ ॥
विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि ते
अवर्धयन्त्सोमवत्या वचस्यया ।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मना
अग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत् ॥ ८ ॥

भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः
सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयन्
श्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये ॥ ९ ॥
त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या
येभिर्मंसै निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम
विदो षु ण उर्विया गाधमद्य ॥ १० ॥

॥ २५२ ॥ (ऋ० १०।११६।१-९)
स्थौराऽग्नियुत स्थौरोऽग्नियूपो वा । त्रिष्टुप् ।

पिबा सोमं महत इन्द्रियाय
पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिब राये शवसे हूयमानः
पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व ॥ १ ॥
अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्य
इन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्व
अर्वाचीनो रेवते सौभगाय ॥ २ ॥
ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र
ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।
ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ
ममत्तु येन निरिणासि शत्रून् ॥ ३ ॥
आ द्विबर्हा अमिनो यात्विन्द्रो
वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः
सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ॥ ४ ॥
नि तिग्मानि भ्राशयन् भ्राश्यानि
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बलं ददामि
प्रतीत्या शत्रून् विगदेषु वृश्च ॥ ५ ॥
व्यर्य इन्द्र तनुहि श्रवांसि
ओजः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।
अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभिः
अनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ॥ ६ ॥
इदं हविर्मघवन् तुभ्यं रातं
प्रति सम्राळहृणानो गृभाय ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यं पक्वोऽ
द्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ॥ ७ ॥
अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि
चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा
सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ८ ॥
प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि
सिन्धाविव प्रेरयं नावमर्कैः ।
अया इव परि चरन्ति देवा
ये अस्मभ्यं धनदा उद्भिदश्च ॥ ९ ॥

॥ २५३ ॥ (ऋ० १०।१२०।१-९)
आथर्वणो बृहद्दिवः ।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं
यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून्
अनु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः
शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि
सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे
द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा सं
अदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ३ ॥
इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं
मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व
मा त्वा दभन् यातुधाना दुरेवाः ॥ ४ ॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु
प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः
सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ५ ॥
स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वम्
इनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्
प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ॥ ६ ॥
नि तद्दधिषेऽवरं परं च
यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू
अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ॥ ७ ॥
इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्ति
इन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो
दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ ८ ॥
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वा
अवोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा
हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥ ९ ॥

॥ १५४ ॥ (ऋ० १०।१३१।१-३, ६-७)

सुकीर्तिः काक्षीवतः ।

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रान्
अपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच
उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥ १ ॥
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्
यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि
ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ २ ॥
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति
नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा
अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३ ॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः
सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्य
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे
आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ ७ ॥

॥ १५५ ॥ (ऋ० १०।१३३।१-७)

सुदाः पैजवनः । शक्वरी, ४-६ महापङ्क्तिः, ७ त्रिष्टुप् ।

प्रो ष्वस्मै पुरोरथ—मिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहा
अस्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ १ ॥
त्वं सिन्धूँरवासृजो ऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं
तं त्वा परि ष्वजामहे
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥
वि षु विश्वा अरातयो ऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति
या ते रातिर्ददिर्वसु
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥
यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहिः
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥
यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ५ ॥

अयमस्मासु काव्य ऋभुर्वज्रो दास्वते ।
अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदं
ऋभुर्न कृत्व्यं मदम् ॥ २ ॥
घृषुः श्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः ।
अव दीधेदहीशुवः ॥ ३ ॥
यं सुपर्णः परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् ।
शतचक्रं यो३ऽह्यो वर्तनिः ॥ ४ ॥
यं ते श्येनश्चारुमवृकं पदाभरद्
अरुणं मानमन्धसः ।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवसे
एना जागार बन्धुता ॥ ५ ॥
एवा तदिन्द्र इन्दुना
देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो
क्रत्वायमस्मदा सुतः ॥ ६ ॥

॥ २५९ ॥ (ऋ० १०।१४७।१-५)
सुवेदाः शैरीषिः । जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

श्रत् ते दधामि प्रथमाय मन्यवे
अहन्यद् वृत्रं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत् त्वा भवतो रोदसी अनु
रेजते शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवः ॥ १ ॥
त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं
श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु
त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥ २ ॥
ऐषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु
वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम् ।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु
मेधसाता वाजिनमह्रये धने ॥ ३ ॥
स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनत्
मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति ।
त्वावृधो मघवन् दाश्वध्वरो
मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ॥ ४ ॥
त्वं शर्धाय महिना गृणान
उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः ।
त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी
पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता ॥ ५ ॥

॥ २६० ॥ (ऋ० १०।१४८।१-५) पृथुर्वैन्यः । त्रिष्टुप् ।

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा
ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य चाकन्
त्मना तना सनुयाम त्वोताः ॥ १ ॥
ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो
दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु
बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् ॥ २ ॥
अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वान्
ऋषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैः
एनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ॥ ३ ॥
इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि
दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्
उत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥ ४ ॥
श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या
उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वाः
ऊर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ॥ ५ ॥

॥ २६१ ॥ (ऋ० १०।१५२।१-५)
शासो भारद्वाजः । अनुष्टुप् ।

शास इत्था महाँ अस्य—मित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥ १ ॥

स्वस्तिदा विशस्पति–र्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ २ ॥
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रह–न्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदास–त्यधरं गमया तमः ॥ ४ ॥
अपेन्द्र द्विषतो मनो ऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥५॥

॥ ९६० ॥ (ऋ० १०।१५३।१-५)

देवजामय इन्द्रमातरः । गायत्री ।

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ २ ॥
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्य१न्तरिक्षमतिरः ।
उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ३ ॥
त्वमिन्द्र सजोषस–मर्कं बिभर्षि बाह्वोः ।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभवः ॥ ५ ॥

॥ ९६१ ॥ (ऋ० १०।१६०।१-५)

पूरणो वैश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि
सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये
नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासः
त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो
विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥ २ ॥
य उशता मनसा सोममस्मै
सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति
प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ३ ॥
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य
यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति
ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ ४ ॥
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो
हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां
वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५ ॥

॥ ९६४ ॥ (ऋ० १०।१६७।१-२,४)

विश्वामित्र-जमदग्नी । जगती ।

तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते मधु
त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि
त्वं तपः परितप्याजयः स्वः ॥ १ ॥
स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो
हवामहे परि शक्रं सुताँ उप ।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि
स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे ॥ २ ॥
प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि
स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे ।
सुते सातेन यद्यागमं वां
प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥ ४ ॥

॥ ९६५ ॥ (ऋ० १०।१७१।१-४)

इटो भार्गवः । गायत्री ।

त्वं त्यमिटतो रथ–मिन्द्र प्रावः सुतावतः ।
अशृणोः सोमिनो हवम् ॥ १ ॥
त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः ।
अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥ २ ॥
त्वं त्यमिन्द्र मर्त्य–मास्त्रबुध्नाय वेन्यम् ।
मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥ ३ ॥

त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि।
देवानां चित् तिरो वशम् ॥ ४ ॥

॥ २६६ ॥ (ऋ० १०।१७९।१-३)
क्रमेण शिबिरौशीनरः, काशिराजः प्रतर्दनः,
रौहिदश्वो वसुमनाः। त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्।

उत् तिष्ठताव पश्यते-न्द्रस्य भागमृत्वियम्।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥ १ ॥
श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि
जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम्।
परि त्वासते निधिभिः सखायः
कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥ २ ॥
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ
सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य दध्नः
पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ॥ ३ ॥

॥ २६७ ॥ (ऋ० १०।१८०।१-३) जय ऐन्द्रः। त्रिष्टुप्।

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रून्
ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु।
इन्द्रा भर दक्षिणेना वसूनि
पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥ १ ॥
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः
परावत आ जगन्था परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं
वि शत्रून् ताळ्हि वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजो
अजायथा वृषभ चर्षणीनाम्।
अपानुदो जनममित्रयन्त-
मुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥ ३ ॥

॥ २६८ ॥ (ऋ० १०।४७।१-८)
सप्तगुराङ्गिरसः। [वैकुण्ठ इन्द्रः]।

जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं
वसूयवो वसुपते वसूनाम्।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोना-
मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ १ ॥
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं
चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवार-
मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ २ ॥
सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्त-
मुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाह-
मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ३ ॥
सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं
धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्य-
मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ४ ॥
अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं
सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षा-
मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ५ ॥
प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां
बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्यो-
ऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ६ ॥
वनीवानो मम दूतास इन्द्रं
स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना
अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ७ ॥
यत् त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र
बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम्।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीता-
मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ८ ॥
(९८७१)

॥ १६९ ॥ (ऋ० १०।११९।१-१३,
ऐन्द्रो लव। [आत्मा (इन्द्र)]। गायत्री।

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १ ॥
प्र वाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ २ ॥
उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ३ ॥
उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम्।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ४ ॥
अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम्।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ५ ॥
नहि मे अक्षिपच्चना-ऽच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ६ ॥
नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ७ ॥
अभि द्यां महिना भुव-मभी३मां पृथिवीं महीम्।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ८ ॥
हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ९ ॥
ओषमित् पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १० ॥
दिवि मे अन्यः पक्षो३ ऽधो अन्यमचीकृषम्।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ११ ॥
अहमस्मि महामहो ऽभिनभ्यमुदीषितः।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १२ ॥
गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १३ ॥

॥ १७० ॥ (अथर्व० २।५।१-४)
भृगुराथर्वणः। १ निचृदुपरिष्टाद्बृहती, २ उपरिष्टाद् विराड्बृहती, ३ विराट्पथ्या बृहती, ४ जगती पुरोविराट्।

इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिभ्याम्।
पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१॥
इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न।
अस्य सुतस्य स्व१र्णोप
त्वा मदाः सुवाचो अगुः ॥ २ ॥
इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥३॥
आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व
कुक्षी विड्ढि शक्र धियेह्या नः।
श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र
स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ॥ ४ ॥

॥ १७१ ॥ (अथर्व० ४।२४।१-७)
मृगार। त्रिष्टुप्, १ शाक्करीगर्भा पुर शक्वरी।

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे
वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१
य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुः
यो दानवानां बलमारुरोज।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥
यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद्
यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम्।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥
यस्य वशास ऋषभास उक्षणो
यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥
यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते
यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ५ ॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे
यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायतार्हि
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥
यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी
यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥

॥ २७० ॥ (अथर्व० ५।२३।१-१३)
कण्वः । अनुष्टुप्, १३ विराट् ।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥१॥
अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन्धनपते जहि ।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥ २ ॥
यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३॥
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥ ४ ॥
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।
ये के च विश्वरूपा—स्तान्क्रिमीञ्जम्भयामसि ॥५॥
उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन्क्रिमीन् ॥६॥
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमि—रुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥ ७ ॥
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।
सर्वान्नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ॥ ८ ॥
त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥ ९ ॥
अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥१०॥
हतो राजा क्रिमीणा—मुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमि—र्हतभ्राता हतस्वसा ॥११॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥१२
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥१३॥

॥ २७१ ॥ (अथर्व० ६।३३।१-३)
जाटिकायनः । गायत्री २ अनुष्टुप् ।

यस्येदमा रजो युजः—स्तुजे जना वनं स्वः ।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ १ ॥
नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः ।
पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥२॥
स नो ददातु तां रयि—मुरुं पिशङ्गसंदृशम् ।
इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥ ३ ॥

॥ २७२ ॥ (अथर्व० ६।६६।१-३)
अथर्वा । अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप् ।

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये
सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन
द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ॥ १ ॥
आतन्वाना आयच्छन्तो ऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थने—न्द्रो वोऽद्य पराशरीत् ॥२
निर्हस्ताः सन्तु शत्रवो ऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥ ३ ॥

॥ २७३ ॥ (अथर्व० ६।६७।१-३) अनुष्टुप् ।

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥ १ ॥
मूढा अमित्राश्चरता—शीर्षाण इवाहयः ।
तेषां वो अग्निमूढाना—मिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥२॥
ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि ।
पराङमित्र एषत्—वर्वाची गौरुपेषतु ॥ ३ ॥

॥ २७४ ॥ (अथर्व० ६।७५।१-३)
कबन्धः । अनुष्टुप्, ३ षट्पदा जगती ।

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति ।
नैर्बाध्येन हविषे—न्द्र एनं पराशरीत् ॥ १ ॥

(२८९६)

परमां तं परावत मिन्द्रो नुदतु वृत्रहा ।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥
एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति ।
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति
शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत्सूर्यो असद्दिवि ॥३॥

॥ २७७ ॥ (अथर्व० ६।८२।१-३) भगः । अनुष्टुप् ।

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥ १ ॥
येन सूर्यां सावित्री—मश्विनोहतुः पथा ।
तेन मामब्रवीद्भगो जायामा वहतादिति ॥ २ ॥
यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥ ३ ॥

॥ २७८ ॥ (अथर्व० ६।९८।१-३)
अथर्वा । त्रिष्टुप्, २ बृहतीगर्भास्तारपङ्क्तिः ।

इन्द्रो जयाति न परा जयाता
अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्च
उपसद्यो नमस्यो भवेह ॥ १ ॥
त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युः
त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् ।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजा
आयुष्मत्क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥ २ ॥
प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजा
उतोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहोऽसि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते
दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥ ३ ॥

॥ २७९ ॥ (अथर्व० ७।३१।१)
मृगारोऽङ्गिराः । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य
यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट
यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ १ ॥

॥ २८० ॥ (अथर्व० ७।५०।१-३,५,८-९)
अङ्गिराः (कितववधकामः) । अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप् ।

यथा वृक्षमशनि—र्विश्वाहा हन्त्यप्रति ।
एवाहमद्य कितवा—नक्षैर्बध्यासमप्रति ॥ १ ॥
तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम् ।
समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥ २ ॥
ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिः
इह प्रसक्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः
प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥ ३ ॥
अजैषं त्वा संलिखित—मजैषमुत संरुधम् ।
अवि वृको यथा मथ—देवा मथ्नामि ते कृतम् ५
कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद्भूयासमश्वजि—द्धनंजयो हिरण्यजित् ॥ ८ ॥
अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।
सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत ॥९॥

॥ २८१ ॥ (अथर्व० ७।५५।१)
भृगुः । विराट् परोष्णिक् ।

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः ।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥ १ ॥

॥ २८२ ॥ (अथर्व० ७।९३।१)
भृग्वङ्गिराः । गायत्री ।

इन्द्रेण मन्युना वय—मभि ष्याम पृतन्यतः ।
घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥ १ ॥

॥ २८३ ॥ (अथर्व० १९।१३।१) अप्रतिरथः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ
चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते
याभ्यां जितमसुराणां स्व१र्यत् ॥ १ ॥

॥ १८४ ॥ (अथर्व० १९।१५।१-३)

अथर्वा। त्रिष्टुप्, ३ पथ्यापङ्क्तिः।

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहे
अनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
मा नः सेना अररुषीरुप गुः
विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥ २ ॥
इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः
स पश्चात्स पुरस्तान्नो अस्तु ॥ ३ ॥

॥ १८५ ॥ (अथर्व० २०।२।३)

गृत्समदो मेधातिथिर्वा। आर्च्युष्णिक्।

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात्सुष्टुभः
स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ३ ॥

॥ १८६ ॥ (वा० य० १।४)

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि
विष्णो हव्यꣳ रक्ष ॥ ४ ॥

॥ १८७ ॥ (वा० य० ३।४९-५०)

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणावहा ऽइषमूर्जꣳ शतक्रतो ॥४९॥
देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि मे
निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

॥ १८८ ॥ (वा० य० ५।२८,३०)

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानो
अस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथा
इन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥
इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि।
ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥ ३० ॥

॥ १८९ ॥ (वा० य० ७।४,१४-१५,२५)

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोमम्।
उरुष्य राय ऽ एषो यजस्व ॥ ४ ॥
आच्छिन्नस्य ते देव सोम
सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा सꣳस्कृतिर्विश्ववारा
स प्रथमो वरुणो मित्रो ऽ अग्निः ॥ १४ ॥
स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वान्
तस्मा ऽ इन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा।
तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा
याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत् ॥ १५ ॥
ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि।
अथा न ऽ इन्द्र इद्विशो
असपत्नाः समनसस्करत् ॥ २५ ॥

॥ १९० ॥ (वा० य० ८।३२,३६)

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥
यस्मान्न जातः परो ऽ अन्यो ऽ अस्ति
य ऽ आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणः
त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ ३६ ॥

॥ १९१ ॥ (वा० य० १२।६६)

निवेशनः संगमनो वसूनां
विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः।
देव ऽ इव सविता सत्यधर्मे
इन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

॥ १९२ ॥ (वा० य० १३।१४)

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या ऽ अयम्।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ १४ ॥

॥ १९३ ॥ (वा० १७।२३,३६,४४-४५,५२,६३)

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये
मनोजुवं वाजे ऽ अद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्
विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥

(९३२१)

बृहस्पते परि दीया रथेन
रक्षोहामित्राँ२ऽअपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्
नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ३६ ॥
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती
गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैः
रन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ ४४ ॥
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥ ४५
इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी ।
समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदाऽअसत् ॥ ५१ ॥
पार्जस्य मा प्रसय उद्ग्राभेणोदग्रभीत् ।
अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ अकः ॥ ६३

॥ ९४ ॥ (वा० य० १९।३२,८०-९५)

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं
यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु
मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥
सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण
ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।
अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वती
न्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥ ८० ॥
तदस्य रूपममृतꣳ शचीभिः
तिस्रो दधुर्देवताः सꣳरराणाः ।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिः
त्वगस्य माꣳसमभवन्न लाजाः ॥ ८१ ॥
तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी
सरस्वती वयति पेशोऽअन्तरम् ।
अस्थि मज्जानं मासरैः
कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥ ८२ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु
नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं
नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ८३ ॥
पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ
सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना
ऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात् ॥ ८४ ॥
इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं
पुरोडाशेन सविता जजान ।
यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्
मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥
आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना
गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः ।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिः
आसन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥
कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिः
यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोऽअन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधारऽउत्सो
दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥ ८७ ॥
मुखꣳ सदस्य शिरऽइत् सतेन
जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती ।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो
वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥
अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां
छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि
पेशो न शुक्लमसितं वसाते ॥ ८९ ॥
अविर्न मेषो नसि वीर्याय
प्राणस्य पन्थाऽअमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं
नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥
(११४८)

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय
कर्णाभ्या२ श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि
कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥ ९१ ॥
आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम
मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम ।
केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा
सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥ ९२ ॥
अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विना
आत्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूप२ शतमानमायुः
चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥ ९३ ॥
सरस्वती योन्यां गर्भमन्तः
अश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।
अपा२ रसेन वरुणो न साम्ना
इन्द्र२ श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४ ॥
तेजः पशूना२ हविरिन्द्रियावत्
परिस्रुता पयसा सारघं मधु ।
अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या
सुतासुताभ्याममृतः सोम ऽ इन्दुः ॥ ९५ ॥

॥ ९५१ ॥ (वा० य० २०।३१, ७१-७७, ८०, ९०)

अध्वर्यो ऽ अद्रिभिः सुत२ सोमं पवित्र ऽ आ नय ।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥
सविता वरुणो दधद् यजमानाय दाशुषे ।
आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥
अश्विना गोभिरिन्द्रिय—मश्वेभिर्वीर्यं बलम् ।
हविषेन्द्र२ सरस्वती यजमानमवर्धयन् ॥ ७३ ॥
ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा ।
सरस्वती हविष्मती—न्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥
ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती ।
स वृत्रहा शतक्रतु—रिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥
युव२ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपानाः सरस्वती—न्द्रं कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥
पुत्रमिव पितरावश्विना
उभेन्द्रावथुः काव्यैर्द२ सनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः
सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ७७ ॥
अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् ।
वाचेन्द्रो बलेने—न्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥
अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ता२ सोम्यं मधु ॥ ९० ॥

॥ ९५२ ॥ (वा० य० २६।४-५, १०)

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोम२ शतक्रतो ।
विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् ॥ ४ ॥
इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोम२ शतक्रतो ।
गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम् ॥ ५ ॥
महाँ२ ऽ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु ।
हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि ॥ १० ॥

॥ ९५३ ॥ वा० य० २९।५७)

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरो
अस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ५७ ॥

॥ ९५४ ॥ (वा० य० ३३।२७, ७८-७९, ९०)

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते
किं त ऽ इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो
हरिवो यत्ते ऽ अस्मे ॥ २७ ॥
ब्रह्माणि मे मतयः श२ सुतासः
शुष्म ऽ इयर्ति प्रभृतो मे ऽ अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा
हरी वहतस्ता नो ऽ अच्छ ॥ ७८ ॥

(९६:९)

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न
त्वावाँ२ ऽ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो
यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ७२ ॥
चन्द्रमा ऽ अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ९० ॥

॥ २९९ ॥ (वा० य० ३५।१८)

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क ऽ इमाँ२ ऽ आ दधर्षति १८

॥ ३०० ॥ (वा० य० ३६।८)

इन्द्रो विश्वस्य राजति ।
शं नो ऽ अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

॥ ३०१ ॥ (वा० य० ३८।२६)

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो
वितस्थिरे ।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहं
ऊर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥ २६ ॥

॥ ३०२ ॥ (साम० १९०)

य इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् ।
स नो वसून्या भरात् ॥ १९० ॥

॥ ३०३ ॥ (साम० १९६)

सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् ।
न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ १९६ ॥

॥ ३०४ ॥ (साम० २०९, २१२)

अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
अरं शक्र परेमणि ॥ २०९ ॥
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः ।
तेभिर्मत्स्व प्रभूवसो ॥ २१२ ॥

॥ ३०५ ॥ (साम० २२६, २३१)

इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।
हरिवान्त्सुतानां सखा ॥ २२६ ॥
एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः ।
सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥ २३१ ॥

॥ ३०६ ॥ (साम० २९४, २९८)

इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व
स्तोत्राय गिर्वणः ॥ २९४ ॥
यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये
अधि बर्हय ॥ २९८ ॥

॥ ३०७ ॥ (साम० ३२७)

मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं
पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम् ।
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युः
इन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥ ३२७ ॥

॥ ३०८ ॥ (साम० ३३६, ३३७)

यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त
उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्र
अभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥ ३३६ ॥
यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना
यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन्
यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ३३७ ॥

॥ ३०९ ॥ (साम० ४३८,१७६८,४४४-४४६,१११३-१५)

एष ब्रह्मा य ऋत्विय
इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ ४३८ ॥

उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः
पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥ ४४४ ॥

अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ
स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ ४४५ ॥

प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय
विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥ ४४६ ॥

॥ ३१० ॥ (साम० ४४९,४५३,४५६,१७७०)

भगो न चित्रो अग्निः
महोनां दधाति रत्नम् ॥ ४४९ ॥

वि स्रुतयो यथा पथा
इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ४५३ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ ४५६ ॥

॥ ३११ ॥ (साम० ५८८)

यस्येदमा रजोयुज—स्तुजे जने वनं स्वः ।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ५८८ ॥

॥ ३१२ ॥ (साम० ६२३-६२५)

हरी त इन्द्र श्मश्रू—ण्युतो ते हरितौ हरी ।
तं त्वा स्तुवन्ति कवयः
पुरुषासो वनर्गवः ॥ ६२३ ॥

यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चः
तेन मा संसृजामसि ॥ ६२४ ॥

सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज
ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं
वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥ ६२५ ॥

॥ ३१३ ॥ (साम० ९५२-९५४)

इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
पिबा सुतस्य मतिर्न
मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥ ९५२ ॥

इन्द्र जठरं नव्यं न
पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप
त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ ९५३ ॥

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न
जघान वृत्रं यतिर्न ।
बिभेद वलं भृगुर्न
ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥ ९५४ ॥

॥ ३१४ ॥ (साम० १८६९)

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानौ
अनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते
याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥ १८६९ ॥

॥ ३१५ ॥ (साम० १८७१)

अन्धा अमित्रा भवता—शीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानां
इन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ १८७१ ॥

(३००१)

❀

इन्द्रसहचारी-देवगणः ।

(१) इन्द्राग्नी ।

॥ ३१६ ॥ (ऋ० १।२१।१-६)
मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित् स्तोममुश्मसि ।
ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥
ता यज्ञेषु प्र शंसते—न्द्राग्नी शुम्भता नरः ।
ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे ।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् ।
अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥
तेन सत्येन जागृत— मधि प्रचेतुने पदे ।
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

॥ ३१७ ॥ (ऋ० १।१०८।१-१३)
कुत्स आंगिरसः । त्रिष्टुप् ।

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वा
मभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसा
अथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्यु
रुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्व
रमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥ २ ॥
चक्राथे हि सध्र्य१ङ्नाम भद्रं
सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या
वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३ ॥
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना
यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वाग्
इन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि
यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि
तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ५ ॥
यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३
अयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातं
अथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६ ॥
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे
यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातं
अथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु
यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातं
अथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ८ ॥
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां
मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातं
अथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां
मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातं
अथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १० ॥
यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत् पृथिव्यां
यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातं
अथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११ ॥
(३०१८)

यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य
मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातं
अथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२ ॥
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य
विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १३ ॥

॥ ३१८ ॥ (ऋ० १।१०९।१-८)

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्
इन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं
स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां
विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्याम्
इन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २ ॥
मा च्छेद्म रश्मींरिति नाधमानाः
पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति
ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३ ॥
युवाभ्यां देवी धिषणा मदाय
इन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी
आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे
तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्
प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु
प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा
प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू
अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य
येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥
पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ता
अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

॥ ३१९ ॥ (ऋ० १।१३९।१)
परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः ।

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः
प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुः
ते मे पूर्वे मनुर्विदुः ।
तेषां देवेष्वायति—रस्माकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरा
इन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥

॥ ३२० ॥ (ऋ० ३।१२।१-९)
गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ।
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता ।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४ ॥
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ ५ ॥
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
साकमेकेन कर्मणा ॥ ६ ॥

(३०२५)

इन्द्राग्नी अपसस्परि-उप प्र यन्ति धीतयः ।
ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥ ७ ॥
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ८ ॥
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद् वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ९ ॥

॥ ३०१ ॥ (ऋ० ५।२७।६)
त्रैवृष्णस्त्र्यरुण, पौरुकुत्स्यस्त्रसदस्यु, भारतोऽश्वमेधश्च राजान.
(अत्रिर्भौम इति केचित्) । अनुष्टुप् ।

इन्द्राग्नी शतदाव्न्य-श्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद् दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ ॥

॥ ३०२ ॥ (ऋ० ५।८६।१-६)
भौमोऽत्रि० । अनुष्टुप्, ६ विराट्पूर्वा ।

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित् स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः १
या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभी-न्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥
तयोरिदमवच्छव-स्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्यो-र्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३ ॥
ता वामेषे रथाना-मिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥
ता वृधन्तावनु द्यून् मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित् पुरो दधे-ऽंशेव देवावर्वते ॥ ५ ॥
एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं
शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्
रयिं गृणत्सु दिधृत-मिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥ ६ ॥

॥ ३०३ ॥ (ऋ० ६।५९।१-१०)
बार्हस्पत्यो भरद्वाज । बृहती, ७-१० अनुष्टुप् ।

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव
इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥ १ ॥
बळित्था महिमा वा-मिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं
यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥
ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रा न्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा
वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥
य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत् तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा
न देवा भसथश्चन ॥ ४ ॥
इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान् युयुजान ईयत
एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्
त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत् ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥७॥
इन्द्राग्नी तपन्ति मा-ऽघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥
इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥९॥
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गत-मस्य सोमस्य पीतये १०

॥ ३०४ ॥ (ऋ० ६।६०।१-१५)
गायत्री, १-३, १३ त्रिष्टुप्, १४ बृहती, १५ अनुष्टुप् ।

श्नथद् वृत्रमुत सनोति वाज-
मिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः
सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ १ ॥

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनं
अपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा
अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ २ ॥
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मै-
रिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्रा—ऽग्ने
अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ३ ॥
ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥
उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ ५ ॥
हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती ।
हतो विश्वा अप द्विषः ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी युवामिमे ऽभि स्तोमा अनूषत ।
पिबतं शंभुवा सुतम् ॥ ७ ॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥
ताभिरा गच्छतं नरो—पेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥
तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥
य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ ११ ॥
ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः ।
इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥ १२ ॥
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या
उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषां रयीणा-
मुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥
आ नो गव्येभिरश्व्यैः वसव्यैरुप गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्याय शंभुवे-
न्द्राग्नी ता हवामहे ॥ १४ ॥
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥

॥ ३७५ ॥ (ऋ० ७।९३।१-८)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्ये-
न्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि
ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥ १ ॥
ता सानसी शवसाना हि भूतं
साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः
पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥ २ ॥
उपो ह यद् विदथं वाजिनो गु-
र्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा
इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥
गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान
ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा
प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥
सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने
तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः
सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥ ५ ॥
इमामु षु सोमसुतिमुप न
एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्मा-
ना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः

सो अग्न एना नमसा समिद्धो-
ऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळ
तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥
एता अग्न आशुषाणास इष्टी-
र्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान्।
मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

॥ ३२६ ॥ (ऋ० ७।९४।१-१०)
गायत्री, १२ अनुष्टुप्।

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः।
अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥
शृणुतं जरितुर्हव-मिन्द्राग्नी वनतं गिरः।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥
मा पापत्वाय नो नरे-न्द्राग्नी माभिशस्तये।
मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥
इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे।
धिया धेना अवस्यवः ॥ ४ ॥
ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये।
सबाधो वाजसातये ॥ ५ ॥
ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे।
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी अवसा गत-मस्मभ्यं चर्षणीसहा।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥
मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य।
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
गोमद्धिरण्यवद् वसु यद् वामश्वावदीमहे।
इन्द्राग्नी तद् वनेमहि ॥ ९ ॥
यत् सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः।
सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥ १० ॥
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा।
आङ्गूषैराविवासतः ॥ ११ ॥
ताविद् दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम्।
आभोगं हन्मना हत-मुदधिं हन्मना हतम् ॥ १२ ॥

॥ ३२७ ॥ (ऋ० ८।३८।१-१०)
श्यावाश्व आत्रेय। गायत्री।

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥
तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥
इदं वां मदिरं मध्व-धुक्षन्नद्रिभिर्नरः।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती।
इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ४ ॥
इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः।
इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ५ ॥
इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम।
इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ६ ॥
प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ७ ॥
श्यावाश्वस्य सुन्वतो ऽत्रीणां शृणुतं हवम्।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ८ ॥
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥
आहं सरस्वतीवतो-रिन्द्राग्न्योरवो वृणे।
याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥ १० ॥

॥ ३२८ ॥ (ऋ० ८।४०।१-१२)
नाभाकः काण्वः। महापंक्तिः, ? शक्वरी, १२ त्रिष्टुप्।

इन्द्राग्नी युवं सु नः सहन्ता दासथो रयिम्।
येन दृळ्हा समत्स्वा वीळु चित् साहिषीमहि
अग्निर्वनेव वात इ-न्नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

नहि वां वव्रयामहे ऽथेन्द्रमिद् यजामहे
शविष्ठं नृणां नरम्।
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये
गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

ता हि मध्यं भराणा-मिन्द्राग्नी अधिक्षितः।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते
सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥

अभ्यर्च नभाकव-दिन्द्राग्नी यजसा गिरा।
ययोर्विश्वमिदं जग-दियं द्यौः पृथिवी मही
उपस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

प्र ब्रह्माणि नभाकव-दिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत
इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितं
ओजो दासस्य दम्भय।
वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजेमहि
नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो
वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥

या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः।
इन्द्राग्न्योरनु व्रत-मुहाना यन्ति सिन्धवो
यान्त्सीं बन्धादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥

पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः
सूनो हिन्वस्य हरिवः।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो
नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥

तं शिशीता सुवृक्तिभि-स्त्वेषं सत्वानमृग्मियम्।
उतो नु चिद् य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति
जेषत् स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम्।
उतो नु चिद् य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदति
अजैः स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥ ११ ॥

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो
मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान्
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १२ ॥

॥ ३२९ ॥ (ऋ० १०।१६१।१-५)

प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः, राजयक्ष्मघ्नं वा। त्रिष्टुप्, ५ अनुष्टुप्।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कं
अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं
तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो
यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थाद्
अस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ २ ॥

सहस्राक्षेण शतशारदेन
शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
शतं यथेमं शरदो नयाति
इन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः
शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः
शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥ ४ ॥

आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ ५ ॥

॥ ३३० ॥ (वा० य० १३।११)

इन्द्राग्नी अव्यथमाना-मिष्टकां दृंहतं युवम्।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी अंतरिक्षं च विबाधसे ॥ ११ ॥

(३११८)

॥ ३३१ ॥ (वा० य० १७।६४)

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ६४

॥ ३३२ ॥ (अथर्व० ७।९७।१-८)

अथर्वा । त्रिष्टुप्, ५ त्रिपदार्षी भुरिग्गायत्री, ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, ७ त्रिपदा साम्नी भुरिग्जगती, ८ उपरिष्टाद्बृहती ।

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्
होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ
प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् ॥ १ ॥
समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः
सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति
सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥ २ ॥
यानावह उशतो देव देवान्
तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्य-
स्मै धत्त वसवो वसूनि ॥ ३ ॥
सुगा वो देवाः सदना अकर्म
य आजग्म सवने मा जुषाणाः ।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि
वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ॥ ४ ॥
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ ।
स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥ ५ ॥
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः ।
सुवीर्यः स्वाहा ॥ ६ ॥
वषड्हुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः ।
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥ ७ ॥
मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां
स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥ ८ ॥

॥ ३३३ ॥ (अथर्व० ६।१०४।१-३)

प्रशोचन । ३ सोम इन्द्रश्च । अनुष्टुप् ।

आदानेन संदानेना-ऽमित्राना द्यामसि ।
अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् १
इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम् ।
अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् २
ऐनान्द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ ।
इन्द्रो मरुत्वानादान-ममित्रेभ्यः कृणोतु नः ३

॥ ३३४ ॥ (अथर्व० ७।११०।१-३)

भृगुः । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति ।
उभा हि वृत्रहन्तमा ॥ १ ॥
याभ्यामजयन्त्स्वरग्र एव
यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा ।
प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू
अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् ॥ २ ॥
उप त्वा देवो अग्रभी-च्चमसेन बृहस्पतिः ।
इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

(२) इन्द्रावरुणौ !

॥ ३३५ ॥ (ऋ० १।१७।१-९)

मेधातिथिः काण्वः । गायत्री, ४-५ पादनिचृत् , (५ हसीयसी वा) गायत्री ।

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे ।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः ।
धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥
अनुकामं तर्पयेथा-मिन्द्रावरुण राय आ ।
ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् ।
भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् ।
क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ।
स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा ।
अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
प्र वामश्नोतु सुष्टुति-रिन्द्रावरुण यां हुवे ।
यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥

॥ ३३६ ॥ (ऋ० ३।६२।१-३)
गाथिनो विश्वामित्रः । १-३ त्रिष्टुप् ।

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना
युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व१ त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां
येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥ १ ॥
अयमु वां पुरुतमो रयीयन्
छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिः
दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥ २ ॥
अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यात्
अस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान् वरूत्रीः शरणैरवन्तु
अस्मान् होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥ ३ ॥

॥ ३३७ ॥ (ऋ० ४।४१।१-११)
वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप
स्तोमो हविष्मॉं अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमॉं अस्मदुक्तः
पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥ १ ॥
इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी
देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रून्
अवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥ २ ॥
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठा
इत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः
सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥ ३ ॥
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्
ओजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिः
तस्मिन् मिमाथामभिभूत्योजः ॥ ४ ॥
इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या
धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद् यवसेव गत्वी
सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ५ ॥
तोके हिते तनय उर्वरासु
सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातां
अवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥ ६ ॥
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय
परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय
शूरा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ॥ ७ ॥
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीः
आजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुः
इन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ ८ ॥
इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा
अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो
रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥ ९ ॥
अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेः
नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिः
अस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम्

आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती
इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद् दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान्
तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥ ११ ॥

॥ ३१८ ॥ (ऋ० ४।४२।७-१०)

त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । त्रिष्टुप् ।

विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य
ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्
त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ७ ॥

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्
सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या
इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥ ८ ॥

पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्
हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या
वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥ ९ ॥

राया वयं ससवांसो मदेम
हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो
विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥ १० ॥

ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः
सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं
सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥ ३ ॥

ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त
विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा
द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥ ४ ॥

स इत् सुदानुः स्ववाँ ऋतावा
इन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद् दास्वान्
वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ॥ ५ ॥

यं युवं दाश्वध्वराय देवा
रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्
प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥ ६ ॥

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः
सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्
प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥ ७ ॥

नू न इन्द्रावरुणा गृणाना
पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य
वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥ ११ ॥

॥ ३४० ॥ (ऋ० ७।८२।१-१०)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । जगती ।

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो
विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति
वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥
सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां
महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि
सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥ २ ॥
अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा
सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनो
अपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ ३ ॥
युवामिद् युत्सु पृतनासु वह्नयो
युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव
इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥ ४ ॥
इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुः
विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति
मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥ ५ ॥
महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष
ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत् स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद्
दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥ ६ ॥
न तमंहो न दुरितानि मर्त्य
इन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं
न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ॥ ७ ॥
अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं
शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं
मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥ ८ ॥
अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे
पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद् वां हवन्त उभये अध स्पृधि
नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥ ९ ॥
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा
द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो
देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥

॥ ३४१ ॥ (ऋ० ७।८३।१-१०)

युवां नरा पश्यमानास आप्यं
प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च
सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥ १ ॥
यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो
यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशः
तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥ २ ॥
सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षत
इन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयो
अर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥ ३ ॥
इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति
भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि
सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहितिः ॥ ४ ॥

इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति
माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथो
अध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥ ५ ॥
युवां हवन्त उभयास आजिषु
इन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं
प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥ ६ ॥
दश राजानः समिता अयज्यवः
सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिः
देवा एषामभवन् देवहूतिषु ॥ ७ ॥
दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः
सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो
धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥ ८ ॥
वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते
व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिः
अस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ॥ ९ ॥
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा
द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो
देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥

॥ ३४० ॥ (ऋ० ७।८४।१-५) त्रिष्टुप् ।

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां
हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना
परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥ १ ॥
युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौः
यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या
उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥ २ ॥
कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं
कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु
प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥ ३ ॥
अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं
रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनाति
अमिता शूरो दयते वसूनि ॥ ४ ॥
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः
प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ ३४१ ॥ (ऋ० ७।८५।१-५)

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां
सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं
ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥ १ ॥
स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र
येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्
हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥ २ ॥
आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु
देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता
वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥ ३ ॥
स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता
य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मान्
असदित् स सुविताय प्रयस्वान् ॥ ४ ॥

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः
प्रावत् तोके तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ ३४४ ॥ (ऋ० ८।५९।१-७)
सुपर्णः काण्वः। जगती।

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत
इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम्।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो
यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥ १ ॥
निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्तां
इन्द्रावरुणा महिमानमाशत।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो
ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥ २ ॥
सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां
मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती
यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥ ३ ॥
घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः
सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतः
ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ॥ ४ ॥
अवोचाम महते सौभगाय
सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम्।
अस्मान् त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतः
त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ॥ ५ ॥
इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां
वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा
यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् ॥ ६ ॥
इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं
रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम्।
प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं
दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः ॥ ७ ॥

॥ ३४५ ॥ (वा० य० ८।३७) त्रिष्टुप् यजुरन्ता।

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा
तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽएतम्।
तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी
जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥३७॥

(३) इन्द्र-वायू।

॥ ३४६ ॥ (ऋ० १।२।४-६)
मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। गायत्री।

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू।
तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥
वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।
मक्ष्वि१त्था धिया नरा ॥ ६ ॥

॥३४७॥ (ऋ० १।२३।२-३)
मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।

उभा देवा दिविस्पृशे—न्द्रवायू हवामहे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये।
सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥

॥ ३४८ ॥ (ऋ० १।१३५।४-८)
परुच्छेपो दैवोदासिः। अत्यष्टिः, ७-८ अष्टिः।

आ वां रथो नियुत्वान् वक्षदवसे
अभि प्रयांसि सुधितानि वीतये
वायो हव्यानि वीतये।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम्।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतं
इन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४ ॥

आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उप
इममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनं
आशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं
मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥
इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इह
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत
वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया
सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥
अति वायो ससतो याहि शश्वतो
यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं
गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृतम्
आ पूर्णया नियुता याथो अध्वरं
इन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥
अत्राह तद् वहेथे मध्व आहुतिं
यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवो
अस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो
न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो
नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

॥ ३४९ ॥ (ऋ० २।४१।३)
गृत्समदः शौनकः । गायत्री ।

शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः ।
आ यातं पिबतं नरा ॥ ३ ॥

॥ ३५० ॥ (ऋ० ४।४६।२-७)
वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

शतेना नो अभिष्टिभि-र्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥ २ ॥
आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः ।
वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥
रथं हिरण्यवन्धुर-मिन्द्रवायू स्वध्वरम् ।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥
रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् ।
इन्द्रवायू इहा गतम् ॥ ५ ॥
इन्द्रवायू अयं सुत-स्तं देवेभिः सजोषसा ।
पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ६ ॥
इह प्रयाणमस्तु वा-मिन्द्रवायू विमोचनम् ।
इह वां सोमपीतये ॥ ७ ॥

॥ ३५१ ॥ (ऋ० ४।४७।२-४) अनुष्टुप् ।

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२॥
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसे-न्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ४ ॥

॥ ३५२ ॥ (ऋ० ५।५१।४, ६-७)
स्वस्त्यात्रेयः । गायत्री; (६, ७) उष्णिक् ।

अयं सोमश्चमू सुतो ऽमत्रे परि षिच्यते ।
प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥
इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥
सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥

॥ ३५३ ॥ (ऋ० ७।९०।५-७)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः
स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वा-
मीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥

ईशानासो ये दधते स्वर्णो
गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुः
अर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥ ६ ॥
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा
इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

॥ ३५४ ॥ (ऋ० ७।९१।१, ४-७)

उशन्ता दूता न दभाय गोपा
मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना
मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥ २ ॥
यावत् तरस्तन्वो३ यावदोजो
यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे
इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥ ४ ॥
नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा
इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक्।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रं
अध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥ ५ ॥
या वां शतं नियुतो याः सहस्रं
इन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्
पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥ ६ ॥
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा
इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

॥ ३५५ ॥ (ऋ० ७।९२।१, ४)

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्
सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै।
प्र यद् वां मध्वो अग्रियं भरन्ति
अध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥ २ ॥
ये वायव इन्द्रमादनास
आदेवासो नितोशनासो अर्यः।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम
सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥ ४ ॥

॥ ३५६ ॥ (वा० य० ३३।८६)

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्वऽइज्जनोऽनमीवः
सङ्गमे सुमनाऽअसत् ॥ ८६ ॥

॥ ३५७ ॥ (अथर्व० ३।२०।६) वसिष्ठः। पथ्याबृहतिः।

इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद्
दानकामश्च नो भुवत् ॥ ६ ॥

(४) इन्द्र–मरुतश्च।

॥ ३५८ ॥ (ऋ० १।६।५,७)
मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। गायत्री।

वीळु चिदारुजत्नुभि–र्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥

(५) मरुत्वानिन्द्रः।

॥ ३५९ ॥ (ऋ० १।२३।७-९)
मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये।
सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥

॥ ३६० ॥ (ऋ० १।१६५।१-१५)
इन्द्रः, ३, ५, ७, ९ मरुतः, १३-१५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

कया॑ शु॒भा सव॑यसः॒ सनी॑ळाः
स॒मा॒न्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः ।
कया॑ म॒ती कुत॒ एता॑स ए॒ते
अर्च॑न्ति॒ शुष्मं॒ वृष॑णो वसू॒या ॥ १ ॥

कस्य॒ ब्रह्मा॑णि जुजुषु॒र्युवा॑नः
को अ॑ध्व॒रे म॒रुत॒ आ व॑वर्त ।
श्ये॒नाँ इ॑व॒ ध्रज॑तो अ॒न्तरि॑क्षे
केन॑ म॒हा मन॑सा रीरमाम ॥ २ ॥

कु॒तस्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्
एको॑ यासि सत्पते॒ किं त॑ इ॒त्था ।
सं पृ॑च्छसे समरा॒णः शु॑भा॒नैः
वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत् ते॑ अ॒स्मे ॥ ३ ॥

ब्रह्मा॑णि मे म॒तयः॒ शं सु॒तासः॒
शुष्म॑ इयर्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ अद्रिः॑ ।
आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्यन्त्यु॒क्था
इ॒मा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ अच्छ॑ ॥ ४ ॥

अतो॑ व॒यम॑न्त॒मेभि॑र्युजा॒नाः
स्वक्ष॑त्रेभिस्त॒न्व१ः शुम्भ॑मानाः ।
महो॑भि॒रेताँ॒ उप॑ युज्महे॒ नु
इन्द्र॑ स्व॒धामनु॒ हि नो॑ ब॒भूथ॑ ॥ ५ ॥

क्व१ स्या वो॑ मरुतः स्व॒धासी॒द्
यन्मामेक॑ स॒मध॑त्ताहि॒हत्ये॑ ।
अ॒हं ह्यु१ग्रस्त॑वि॒षस्तुवि॑ष्मान्
विश्व॑स्य॒ शत्रो॒रन॑मं वधस्नैः ॥ ६ ॥

भूरि॑ चकर्थ॒ युज्ये॑भिर॒स्मे
स॑मा॒नेभि॑र्वृषभ॒ पौंस्ये॑भिः ।
भूरी॑णि॒ हि कृ॒णवा॑मा शविष्ठ
इन्द्र॒ क्रत्वा॑ मरुतो॒ यद् वशा॑म ॥ ७ ॥

वधी॑ वृ॒त्रं म॑रुत इन्द्रि॒येण
स्वेन॒ भामे॑न तवि॒षो ब॑भूवान् ।
अ॒हमे॒ता मन॑वे वि॒श्वश्च॑न्द्राः
सु॒गा अ॒पश्च॑कर॒ वज्र॑बाहुः ॥ ८ ॥

अनु॑त्त॒मा ते॑ मघव॒न्नकि॒र्नु
न त्वावाँ॑ अस्ति दे॒वता॒ विदा॑नः ।
न जाय॑मानो॒ नश॑ते॒ न जा॒तो
यानि॑ करि॒ष्या कृ॑णु॒हि प्र॑वृद्ध ॥ ९ ॥

एक॑स्य चिन्मे वि॒भ्व१स्त्वोजो॒
या नु द॑धृ॒ष्वान् कृ॒णवै॑ मनी॒षा ।
अ॒हं ह्यु१ग्रो म॑रुतो॒ विदा॑नो
यानि॒ च्यव॒मिन्द्र॒ इदी॑श ए॒षाम् ॥ १० ॥

अम॑न्दन्मा मरुतः॒ स्तोमो॒ अत्र॒
यन्मे॑ नरः॒ श्रुत्यं॒ ब्रह्म॑ च॒क्र ।
इन्द्रा॑य॒ वृष्णे॒ सुम॑खाय॒ मह्यं॒
स॒ख्ये सखा॑यस्त॒न्वे॑ त॒नूभिः॑ ॥ ११ ॥

ए॒वेदे॒ते प्रति॑ मा॒ रोच॑माना॒
अने॑द्यः॒ श्रव॒ एषो॒ दधा॑नाः ।
सं॒चक्ष्या॑ मरुतश्च॒न्द्रव॑र्णा॒
अच्छा॑न्त मे छ॒दया॑था च नू॒नम् ॥ १२ ॥

को न्वत्र॑ मरुतो मामहे वः॒
प्र या॑तन॒ सखीँ॒रच्छा॑ सखायः ।
मन्मा॑नि चित्रा अपिवा॒तय॑न्त
ए॒षां भू॑त॒ नवे॑दा म ऋ॒ताना॑म् ॥ १३ ॥

आ यद् दु॑व॒स्याद् दु॒वसे॒ न का॒रुः
अ॒स्माञ्च॒क्रे मा॒न्यस्य॑ मे॒धा ।
ओ षु व॑र्त्त मरुतो॒ विप्र॒मच्छ॒
इ॒मा ब्रह्मा॑णि जरि॒ता वो॑ अर्चत् ॥ १४ ॥

ए॒ष वः॒ स्तोमो॑ मरुत इ॒यं गीः
मा॒न्दा॒र्यस्य॑ मा॒न्यस्य॑ का॒रोः ।
एषा या॑सीष्ट त॒न्वे॑ व॒यां
वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ १५ ॥
(३११४)

॥ ३६१ ॥ (ऋ० १।१७१।३-६)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। त्रिष्टुप्।

स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तु
उत स्तुतो मघवा शंभविष्ठः।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनानि
अहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥
अस्मादहं तविषादीषमाण
इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्
तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥
येन मानासश्चितयन्त उस्रा
व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा
उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्
भवा मरुद्भिरवयातहेळाः।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

(६) इन्द्रामरुतौ।

॥ ३६२ ॥ (ऋ० ८।९६।१४)

तिरश्चीराङ्गिरसो, द्युतानो वा मारुतः। त्रिष्टुप्।

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तं
उपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसं
इष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ १४ ॥

(७) इन्द्रासोमौ।

॥ ३६३ ॥ (ऋ० २।३०।६)

गृत्समदः शौनकः। त्रिष्टुप्।

प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो
रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टं
अस्मिन् भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥ ६ ॥

॥ ३६४ ॥ (ऋ० ६।७२।१-५)

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। त्रिष्टुप्।

इन्द्रासोमा महि तद् वां महित्वं
युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१र्
विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥ १ ॥
इन्द्रासोमा वासयथ उषासं
उत् सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेन
अप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥ २ ॥
इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां
हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनां
आ समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥ ३ ॥
इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तः
नि गवामिद् दधथुर्वक्षणासु।
जगृभथुरनपिनद्धमासु
रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥
इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रं
अपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः
सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥ ५ ॥

॥ ३६५ ॥ (ऋ० १०।८९।५)

रेणुर्वैश्वामित्रः। त्रिष्टुप्।

आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा
धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि
नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥ ५ ॥

॥ ३६६ ॥ (ऋ० १०।१२४।९)
अग्निः (सोमेन्द्रौ) । त्रिष्टुप् ।

बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुः
अपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणं
इन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ॥ ९ ॥

॥ ३६७ ॥ (अथर्व० ८।४।१-२५)
चातनः । जगती, ८-१४, १६-१७, १९, २२, २४ त्रिष्टुप्, २०, २३ भुरिक्; २५ अनुष्टुप् ।

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं
न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं
हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः ॥ १ ॥

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं
तपुर्ययस्तु चरुरग्निमाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे
द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥ २ ॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तः
अनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत्
तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ३ ॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं
सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत्तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो
येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥ ४ ॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्परि
अग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो
नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥ ५ ॥

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत
इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधया
इमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥ ६ ॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैः
हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्
यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ॥ ७ ॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तं
अभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता
असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८ ॥

ये पाकशंसं विहरन्त एवैः
ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान्प्रददातु सोम
आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥ ९ ॥

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने
अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
रिपु स्तेन स्तेयकृद्दभ्रमेतु
नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥ १० ॥

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च
तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा
यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥ ११ ॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय
सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयः
तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ १२ ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति
न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तं
उभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥ १३ ॥

यदि वाहमनृतदेवो अस्मि
मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे
द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥ १४ ॥
(२९९१)

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि
यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो
मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ १५ ॥
यो मायातुं यातुधानेत्याह
यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन
विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तं
अप द्रुहुस्तन्वं गूहमाना ।
वव्रमनन्तमव सा पदीष्ट
ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥ १७ ॥
वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वीच्छत
गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिः
ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ १८ ॥
प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र
सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तो
अभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १९ ॥
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव
इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं
नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २० ॥
इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो
हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं
पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥ २१ ॥
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं
जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं
दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥
मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावत्
अपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसो
अन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥ २३ ॥
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानं
उत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु
मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ २४ ॥
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्र–श्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यत–मशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २५ ॥

(८) इन्द्राविष्णू ।

॥ ३६८ ॥ (ऋ० १।१५५।१–३)
दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते
महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या
महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोः
इन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्
कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं
नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुः
नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

॥ ३६९ ॥ (ऋ० ६।६९।१–८)
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमि
इन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तं
अरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥

(३३०६)

या विश्वासां जनितारा मतीनां
इन्द्राविष्णू कलशा सोमधानां।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु
प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥ २ ॥
इन्द्राविष्णू मदपती मदानां
आ सोमं यातं द्रविणो दधाना।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां
सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥ ३ ॥
आ वामश्वासो अभिमातिषाह
इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु।
जुषेथां विश्वा हवना मतीना
उप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥ ४ ॥
इन्द्राविष्णू तत् पनयाय्यं वां
सोमस्य मद उरु चक्रमाथे।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयो
अप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥ ५ ॥
इन्द्राविष्णू हविषा वावृधाना
अग्राद्वाना नमसा रातहव्या।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे
समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥ ६ ॥
इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य
सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्
उप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥
उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे
न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां
त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ ८ ॥

॥ ३७० ॥ (ऋ० ७।९९।४-६)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। त्रिष्टुप्।

उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं
जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्।
दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया
जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥
इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य
नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं
हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥
इयं मनीषा बृहती बृहन्तो
उरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो
पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥

(९) इन्द्राबृहस्पती।

॥ ३७१ ॥ (ऋ० ४।४९।१-६)
वामदेवो गौतमः। गायत्री।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती।
उक्थं मदश्च शस्यते ॥ १ ॥
अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती।
चारुर्मदाय पीतये ॥ २ ॥
आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम्।
अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥ ४ ॥
इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे।
मादयेथां तदोकसा ॥ ६ ॥

॥ ३७२ ॥ (ऋ० ४।५०।१०-११)
त्रिष्टुप्, १० जगती।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते
अस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवो
अस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १० ॥
(३२१२)

बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः
सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः
जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ११ ॥

॥ ३७३ ॥ (ऋ० ७।९७-९८।१०, ७)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो
दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

॥ ३७४ ॥ (ऋ० ८।९६।१५)
तिरश्चीराङ्गिरसो, द्युतानो वा मारुतः । त्रिष्टुप् ।

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थे
अधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीः
बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ १५ ॥

(१०) देव-भूमि-बृहस्पतीन्द्राः ।

॥ ३७५ ॥ (ऋ० ६।४७।२०) गर्गो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा
उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टौ
इत्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥ २० ॥

॥ ३७६ ॥ (अथर्व० ७।५१।१) अङ्गिराः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चाद्
उतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः
सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ १ ॥

॥ ३७७ ॥ (अथर्व० २०।१३।१) जगती ।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते
अस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे
रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १ ॥

(११) इन्द्रापूषणौ ।

॥ ३७८ ॥ (ऋ० ६।५७।१-६)
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । गायत्री ।

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये ।
हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥
सोममन्य उपासदत् पातवे चम्वोः सुतम् ।
करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता ।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।
तत्र पूषाभवत् सचा ॥ ४ ॥
तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव ।
इन्द्रस्य चा रभामहे ॥ ५ ॥
उत् पूषणं युवामहे ऽभीशूँरिव सारथिः ।
मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६ ॥

॥ ३७९ ॥ (अथर्व० ६।३।१)
अथर्वा । पथ्या बृहती ।

पातं न इन्द्रापूषणाऽदितिः पान्तु मरुतः ।
अपां नपात्सिन्धवः सप्त पातन
पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥ १ ॥

(१२) ऋणंचयेन्द्रौ ।

॥ ३८० ॥ (ऋ० ५।३०।१२-१५)
बभ्रुरात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्
गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि
प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥ १२ ॥
सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं
गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासो
अक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः

औच्छत् सा रात्री परितक्म्या याँ
ऋणंचये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो
बभ्रुश्चत्वार्यसनत् सहस्रा ॥ १४ ॥
चतुः सहस्रं गव्यस्य पश्वः
प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित् तप्तः प्रवृजे य आसीत्
अयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥ १५ ॥

(१३) इन्द्र ऋभवश्च ।

॥ ३८१ ॥ (ऋ० ३।६०।५-७)
विश्वामित्रो गाथिन । जगती ।

इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं
सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः ।
धियेषितो मघवन् दाशुषो गृहे
सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ॥ ५ ॥
इन्द्र ऋभुमान् वाजवान् मत्स्वेह नो
अस्मिन् त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे
व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥ ६ ॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह
स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे
सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥ ७ ॥

॥ ३८२ ॥ (ऋ० ८।९३।३४)
सुकक्ष आङ्गिरसः । गायत्री ।

इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ३४ ॥

(१४) इन्द्रोषसौ ।

॥ ३८३ ॥ (ऋ० ४।३०।९-११)
वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

दिवश्चिद् घा दुहितरं महान् महीयमानाम् ।
उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥
अपोषा अनसः सरत् संपिष्टादह बिभ्युषी ।
नि यत् सीं शिश्नथद् वृषा ॥ १० ॥
एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या ।
ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥

(१५) इन्द्राश्वौ ।

॥ ३८४ ॥ (ऋ० ४।३२।२३-२४)
वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके ।
बभ्रू यामेषु शोभेते ॥ २३ ॥
अरं म उस्रयाम्णे ऽरमनुस्रयाम्णे ।
बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥ २४ ॥

(१६) इन्द्रस्त्वष्टा ।

॥ ३८५ ॥ (ऋ० २।३२।२-३)
गृत्समदः शौनकः । जगती ।

मा नो गुहा रिप आयोरहन् दभन्
मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः
सुम्नायता मनसा तत् त्वेमहे ॥ २ ॥
अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह
दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं
त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ३ ॥

(१७) इन्द्रो गावश्च ।

॥ ३८६ ॥ (ऋ० ६।२८।२, ८)
भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । जगती, ८ अनुष्टुप् ।

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षति
उपेद् ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्
अभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥ २ ॥
उपेदमुपपर्चन—मासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेत—स्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥

(३३५३)

(१८) इन्द्राकुत्सौ।

॥ ३८७ ॥ (ऋ० ५।३१।९)
अवस्युरात्रेयः। त्रिष्टुप्।

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेन
आ वामत्या अपि कर्णे वहन्तु।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थात्
मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥ ९ ॥

(१९) इन्द्रद्यावापृथिव्यः।

॥ ३८८ ॥ (ऋ० १०।५९।१०)
बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। त्रिष्टुप् (पंक्त्युत्तरा)।

समिन्द्रेरय गामनड्वाहं
य आवहदुशीनराण्या अनः।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो
मो षु ते किं चनाममत् ॥ १० ॥

(२०) इन्द्रापर्वतौ।

॥ ३८९ ॥ (ऋ० ३।५३।१)
गाथिनो विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्।

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन
वामीरिष आ वहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा
वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥ १ ॥

(२१) इन्द्रः, सोमो, ब्रह्मणस्पतिर्दक्षिणा च।

॥ ३९० ॥ (ऋ० १।१८।४-५)
मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।

स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः।
सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम्।
दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥

(२२) इन्द्राब्रह्मणस्पती।

॥ ३९१ ॥ (ऋ० २।२४।१२)
गृत्समदः शौनकः। त्रिष्टुप्।

विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिद्
आपश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम्।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नो
अन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥ १२ ॥

॥ ३९२ ॥ (ऋ० ७।९७।३, ९)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। त्रिष्टुप्।

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः
सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु
यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥
इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिः
ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः
जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

(२३) दुन्दुभीन्द्रौ।

॥ ३९३ ॥ (ऋ० ६।४७।३१) गर्गो भारद्वाजः। त्रिष्टुप्।

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः
केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरो
अस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ३१ ॥

(२४) इन्द्रसूर्यादयः।

॥ ३९४ ॥ (अथर्व० १९।७०।१) ब्रह्मा। गायत्री।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

(२५) शत्रुसेनामोहनम्।

॥ १ ॥ (अथर्व० ३।१।५)
अथर्वा। इन्द्रः। विराट् पुर उष्णिक्।

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० ३।१।४) अनुष्टुप्।

व्या॒कृतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत।
अथो यद॒द्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥ ४ ॥

(२६) मायाभेदः।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१७७।१-३)
पतङ्गः प्राजापत्यः। त्रिष्टुप्; १ जगती।

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया
हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते
मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥ १ ॥
पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति
तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्तः।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषां
ऋतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥ २ ॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानम्
आ च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान
आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३ ॥

(२७) शत्रुनाशनम्।

॥ १ ॥ (अथर्व० २।२३।१-५)
आपः। (एकावसानम्) १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा।

आपो यद्वस्तपस्तेन तं प्रति तपत
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ १ ॥
आपो यद्वो हरस्तेन तं प्रति हरत
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ २ ॥
आपो यद्वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ३ ॥
आपो यद्वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ४ ॥
आपो यद्वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० ६।६५।१-३)
(चन्द्रमाः), इन्द्रः, पराशरः। अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः।

अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दय
अधा नो रयिमा कृधि ॥ १ ॥
निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाऽहम् ॥ २ ॥
इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ५।३।११)
बृहद्दिवोऽथर्वा। इन्द्रः (विजयाय प्रार्थना)। त्रिष्टुप्।

अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे
यो गोजिद्धनजिदश्वजिद्यः।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोतु
अस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ॥ ११ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० २।१८।१-५)
चातनः। अग्निः। (द्वैपदम्) साम्नी बृहती।

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा ॥१॥
सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा ॥२॥
अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥ ३ ॥
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ४
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ५

॥ ५ ॥ (अथर्व० ८।३।२५)
अग्निः। पञ्चपदा बृहतीगर्भा जगती।

ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं
प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व ॥ २५ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० २।२४।१-८)
ब्रह्मा। (आयुष्यम्)। पङ्क्तिः।

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु
यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः
प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥ १ ॥

शेवृंधक शेवृध पुनर्वो यन्तु
यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः० ॥ २ ॥
म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु
यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः० ॥ ३ ॥
सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः
पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्० ॥ ४ ॥
जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः
पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्० ॥ ५ ॥
उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः
पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्० ॥ ६ ॥
अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः
पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्० ॥ ७ ॥
भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः
पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्० ॥ ८ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० १०।५। [६-७] ३६-५०)

ब्रह्मा। मंत्रोक्ताः। ३६ मार्त्वी पञ्चपदातिशाक्वराभिजागतगर्भाष्टिः, ३७ विराट् पुरस्ताद्बृहती, ३८ पुर उष्णिक्, ३९,४१ आर्षी गायत्री; ४० विराड्विषमा गायत्री। विहव्यः। प्राजापत्या। प्राजापत्या अनुष्टुप्; ४४ त्रिपदा गायत्रीगर्भाऽनुष्टुप्; ५० त्रिष्टुप्।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं
अभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य
वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामिदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३६ ॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम्।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३७
दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते।
ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३८
सप्तऋषीनभ्यावर्ते।
ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३९ ॥
ब्रह्माभ्यावर्ते।
तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४० ॥
ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते।
ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४१ ॥
यं वयं मृगयामहे तं वधैः स्तृणवामहै।
व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥ ४२ ॥
वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि।
इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद्देवी सहीयसी ॥ ४३ ॥
राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि।
सोऽमुमामुष्यायणममुष्याः
पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥ ४४ ॥
यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥ ४५ ॥
अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ४६ ॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ ४७
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो
यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या
तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥ ४८ ॥
परा शृणीहि तपसा यातुधानान्
पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि
परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥ ४९ ॥

अपामस्मै वज्रं प्र हरामि
चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान्।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा
तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ ५० ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० २।२७।१-७)
कपिञ्जलः। १-५ वनस्पति, ६ रुद्रः, ७ इन्द्रः। अनुष्टुप्।

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ १ ॥
सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ २ ॥
इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ३ ॥
पाटामिन्द्रो व्याऽश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ४ ॥
तयाऽहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँ इव।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ५ ॥
रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत्।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ६ ॥
तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ॥ ७

॥ ९ ॥ (अथर्व० ७।९५।१-३)
गृध्रौ। अनुष्टुप्, २-३ भुरिक्।

उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः।
उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः ॥ १ ॥
अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव।
कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव ॥ २ ॥
आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत।
अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमान् जभार ॥ ३

॥ १० ॥ (अथर्व० ७।९६।१) वयः। अनुष्टुप्।

असदन् गावः सदनेऽपप्तद्वसतिं वयः।
आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥ १

॥ ११ ॥ (अथर्व० ३।६।१-८)
जगद्बीजं पुरुषः। वानस्पत्योऽश्वत्थः। अनुष्टुप्।

पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि।
स हन्तु शत्रून् मामकान्
यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ १ ॥
तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाधदोधतः।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥ २ ॥
यथाऽश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे।
एवा तान्त्सर्वान् निर्भङ्ग्धि
यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ ३ ॥
यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥ ४ ॥
सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान्
यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ ५ ॥
यथाऽश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान्।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग्भिन्द्धि सहस्व च ॥६॥
तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात्।
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ ७ ॥
प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाऽश्वत्थस्य नुदामहे ॥ ८ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ४।३०।२,४,७-८)
शुक्रः। २ यमः, ४ सोमः, ७ सूर्यः, ८ दिशः। २ जगती;
४,७ त्रिष्टुप्, ८ पुरोऽतिशक्वरी पादयुग्जगती।

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो
दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां
प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ २ ॥
य उत्तरतो जुह्वति जातवेद
उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
सोममृत्वा ते पराञ्चो० ॥ ४ ॥

(३४१७)

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद
ऊर्ध्वायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो० ॥ ७ ॥
ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः
सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान्। ब्रह्मर्त्वा ते० ८
॥ १३ ॥ (अथर्व० ६।१३४।१-३)
वज्रः। १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ भुरिक् त्रिपदा गायत्री
अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्य
अवास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम्।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा
वृत्रस्येव शचीपतिः ॥ १ ॥
अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत्।
वज्रेणावहतः शयाम् ॥ २ ॥
यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥ ३ ॥
॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।९०।१-३)
अङ्गिराः। मन्त्रोक्ताः। १ गायत्री, २ विराट् पुरस्ताद्बृहती, ३ त्र्यवसाना षट्पदा भुरिग्जगती।
अपि वृश्च पुराणवद्व्रततेरिव गुष्पितम्।
ओजो दासस्य दम्भय ॥ १ ॥
वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहै।
म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते ॥ २ ॥
यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः।
अवस्थस्य क्नदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः।
यदाततमव तत् तनु यदुत्ततं नि तत् तनु ॥ ३ ॥
॥ १५ ॥ (अथर्व० ८।८।१-२४)
भृग्वङ्गिराः। इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च। अनुष्टुप्; २,८-१०,२३ उपरिष्टाद्बृहती; ३ विराड्बृहती; ४ बृहती पुरस्तात्प्रस्तारपङ्क्तिः, ६ आस्तारपङ्क्तिः, ७ विपरीत पादलक्ष्मा चतुष्पदातिजगती; ११ पथ्याबृहती; १२ भुरिक्; १९ पुरस्ताद्विराड्बृहती; २० पुरस्तान्निचृद्बृहती; २१ त्रिष्टुप्; २२ चतुष्पदा शक्वरी; २४ त्र्यवसाना त्रिष्टुबुष्णिग्गर्भा पराशक्वरी पञ्चपदा जगती।
इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥ १ ॥
पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम्।
धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥२॥
अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम्।
ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां
हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥ ३ ॥
परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु
हन्त्वेनान् वधको वधैः।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां
बृहज्जालेन संदिताः ॥ ४ ॥
अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ॥ ५ ॥
बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज
यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥ ६ ॥
बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर
सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं
जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥ ७ ॥
अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान्।
तेनाहमिन्द्रजालेन
अमूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥ ८ ॥
सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥९॥
मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः।
मृत्योर्ये अघला दूताः
तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥ १० ॥
नयताभून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत।
परःसहस्रा हन्यन्तां
तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥ ११ ॥
साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा।
रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥ १२ ॥

विश्वे॑ दे॒वा उ॒परि॑ष्टादु॒ब्जन्तो॒ य॒न्त्वोज॑सा ।
मध्ये॑न॒ घ्नन्तो॑ यन्तु॒ सेना॒मङ्गि॑रसो म॒हीम् ॥ १३ ॥
वन॒स्पती॑न् वानस्प॒त्यानोष॑धीरु॒त वी॒रुधः॑ ।
द्वि॒पाच्चतु॑ष्पादिष्णा॒मि॒ यथा॒ सेना॑म॒मूं हन॑न् ॥१४॥
ग॒न्ध॒र्वाप्स॒रसः॑ स॒र्पान् दे॒वान् पु॑ण्यज॒नान् पि॒तॄन् ।
दृ॒ष्टान॒दृष्टा॑निष्णा॒मि॒ यथा॒ सेना॑म॒मूं हन॑न् ॥ १५ ॥
इ॒म उ॒प्ता मृ॑त्युपा॒शा याना॒क्रम्य॒ न मु॒च्यसे॑ ।
अ॒मुष्या॑ हन्तु॒ सेना॑या इ॒दं कूटं॑ सहस्र॒शः ॥ १६ ॥
घ॒र्मः॑ समि॑द्धो अ॒ग्निना॒ऽयं होमः॑ सहस्र॒हः ।
भ॒वश्च॒ पृश्नि॑बाहुश्च॒ शर्व॒ सेना॑म॒मूं ह॑तम् ॥ १७ ॥
मृ॒त्योरा॒षमा पद्य॑न्तां क्षुधं॒ सेदिं॑ व॒धं भ॒यम् ।
इन्द्र॑श्चाक्षुजा॒लाभ्या॒ शर्व॒ सेना॑म॒मूं ह॑तम् ॥ १८ ॥
परा॑जिताः॒ प्र त्र॑सताम॒मित्रा॑ नु॒त्ता धा॑वत॒ ब्रह्म॑णा ।
बृह॒स्पति॑प्रणुत्ताना॒ं माऽमीषां॑ मोचि॒ कश्च॒न ॥ १९ ॥
अवं॑ पद्यन्तामेषा॒मायु॑धानि॒ मा श॑कन्प्रति॒धामिषु॑म् ।
अथै॑षां ब॒हु बिभ्य॑ता॒मिष॑वो घ्नन्तु॒ मर्म॑णि ॥ २० ॥
सं क्रो॑शताम॒ना॒न् द्यावा॑पृथि॒वी
सम॒न्तरि॑क्षं स॒ह दे॒वता॑भिः ।
मा ज्ञा॒तारं॒ मा प्र॑ति॒ष्ठां वि॑दन्त
मि॒थो वि॑घ्ना॒ना उप॑ यन्तु मृ॒त्युम् ॥ २१ ॥
दिश॒श्चत॑स्रोऽश्व॒तर्यो॑ दे॒वर॑थस्य॒
पु॒रो॒डाशाः॑ श॒फा अ॒न्तरि॑क्षमु॒द्धिः ।
द्यावा॑पृथि॒वी पक्ष॑सी ऋ॒तवो॒ऽभीश॑वः
अ॒न्त॒र्दे॒शाः कि॑ङ्क॒रा वाक् परि॑रथ्यम् ॥ २२ ॥
सं॒व॒त्स॒रो रथः॑ परिवत्स॒रो र॑थोप॒स्थः
वि॒राडी॒षाग्नी र॑थमु॒खम् ।
इन्द्रः॑ सव्य॒ष्ठाश्च॒न्द्रमा॒ सार॑थिः ॥ २३ ॥
इ॒तो ज॑ये॒तो वि ज॑य॒ सं ज॑य॒ जय॒ स्वाहा॑ ।
इ॒मे ज॑यन्तु॒ परा॒मी ज॑यन्तां॒ स्वाहै॑भ्यो दु॒राहा॒मीभ्यः॑ ।
नी॒ल॒लो॒हि॒तेना॒मून॒भ्यव॑तनोमि ॥ २४ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ११।१०।१-२७)

त्रिषन्धि । अनुष्टुप्, १ विराट् पथ्याबृहती, २ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुब्गर्भातिजगती, ३ विराडास्तारपङ्क्तिः, ४ विराट्; ८ विराट् त्रिष्टुप्, ९ पुरोविराट् पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्; १२ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः, १३ षट्पदा जगती; १६ त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मत्यनुष्टुप्त्रिष्टुब्गर्भा शाक्वरी, १७ पथ्यापङ्क्तिः, २१ त्रिपदा गायत्री; २२ विराट्पुरस्ताद्बृहती, २५ ककुप्; २६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

उत्ति॑ष्ठत॒ सं न॑ह्यध्वमु॒दाराः॑ के॒तुभिः॑ स॒ह ।
सर्पा॒ इत॑रजना॒ रक्षां॑स्य॒मित्रा॒ननु॑ धावत ॥ १ ॥
ईशां॑ वो॑ वेद॒ राज्यं॒
त्रिष॑न्धे अ॒रुणैः॑ के॒तुभिः॑ स॒ह ।
ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ ये दि॒वि पृ॑थि॒व्यां ये च॑ मान॒वाः ।
त्रिष॑न्धेस्ते॒ चेत॑सि दु॒र्णामा॑न॒ उपा॑सताम् ॥ २ ॥
अयो॑मुखाः सू॒चीमु॑खा॒ अथो॑ विकङ्क॒तीमु॑खाः ।
क्र॒व्यादो॒ वात॑रंहस
आ स॑जन्त्व॒मित्रा॒न् वज्रे॑ण॒ त्रिष॑न्धिना ॥ ३ ॥
अ॒न्तर्धे॑हि जातवेद॒ आदि॑त्य कु॒णपं॑ ब॒हु ।
त्रिष॑न्धेरि॒यं सेना॒ सुहि॑तास्तु॒ मे॒ वशे॑ ॥ ४ ॥
उत्ति॑ष्ठ॒ त्वं दे॑वज॒नार्बु॑दे॒ सेन॑या स॒ह ।
अ॒यं ब॒लिर्व॒ आहु॑त॒स्त्रिष॑न्धे॒राहु॑तिः प्रि॒या ॥ ५ ॥
शि॒ति॒प॒दी सं द्य॑तु शर॒व्ये॒३॒॑यं चतु॑ष्पदी ।
कृत्ये॒ऽमित्रे॑भ्यो भव॒ त्रिष॑न्धेः स॒ह सेन॑या ॥ ६ ॥
धू॒मा॒क्षी सं प॑तत कृधुक॒र्णी च॑ क्रोशतु ।
त्रिष॑न्धेः॒ सेन॑या जि॒ते अ॑रु॒णाः स॑न्तु के॒तवः॑ ॥ ७ ॥
अवा॑यन्तां प॒क्षिणो॒ ये वयां॑सि॒
अ॒न्तरि॑क्षे दि॒वि ये चर॑न्ति ।
श्वाप॑दो॒ मक्षि॑काः॒ सं र॑भन्ता॒म्
आ॒मा॒दो॒ गृध्राः॒ कुण॑पे रदन्ताम् ॥ ८ ॥
यामिन्द्रे॑ण सं॒धां स॒मध॑त्था॒
ब्रह्म॑णा च बृहस्पते ।
त॒याऽहमि॑न्द्रसं॒धया
सर्वा॑न् दे॒वानि॒ह हु॑व इ॒तो ज॑यत॒ मामु॒तः ॥ ९ ॥

(१४६८)

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥
येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११ ॥
सर्वांल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं
यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२ ॥
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं
यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि
बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥ १३ ॥
सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४ ॥
सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥
वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु
चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥ १६ ॥
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना
यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥ १७ ॥
क्रव्यादानुवर्तयन्मृत्युना च पुरोहितम् ।
त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥ १८ ॥
त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुत्तानां माऽमीषां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥
शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥ २० ॥
मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् ।
अनया जहि सेनया ॥ २१ ॥

यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥ २२ ॥
ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे हतांछ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥
ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान्
गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४ ॥
सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् ।
विविद्धा ककजाकृता ॥ २५ ॥
मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु
दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६ ॥
यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ २७ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० ७।११३।१-२)

भार्गव । तृष्टिका । १ विराडनुष्टुप् । २ शङ्कुमती चतुष्पदा भुरिगुष्णिक् ।

तृष्टिके तृष्टवन्दन उदमूं छिन्धि तृष्टिके ।
यथा कृतद्विष्टासोऽमुष्मै शेप्यावते ॥ १ ॥
तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि ।
परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव ॥ २ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० ११।९।१-२६)

काङ्कायन । अर्बुदि । अनुष्टुप्, १ सप्तपदा विराट् शक्वरी त्र्यवसाना, ३ पुरोष्णिक्; ४ त्र्यवसाना उष्णिग्बृहतीगर्भा परा त्रिष्टुप् षट्पदातिजगती, ९,११,१४,२३,२६ पथ्यापङ्क्तिः; १५,२२,२४-२५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी, १६ त्र्यवसाना पञ्चपदा विराडुपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्; १७ त्रिपदा गायत्री ।

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।
असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो
दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १ ॥

(१४८९)

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत
सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम्॥२६॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० १०।५।१-२४)

सिन्धुद्वीपः। आपः, चन्द्रमाः (विजयप्राप्ति.) अनुष्टुप्; । १-५ त्रिपदा पुरोभिकृतिककुम्मतीगर्भा पङ्क्तिः, ६ चतुष्पदा जगतीगर्भा जगती; ७-१४ व्यवसाना पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहती (११,१४ पथ्यापङ्क्तिः); १५-२१ चतुरवसाना दशपदा त्रैष्टुब्गर्भातिधृतिः (१९,२० कृतिः, २४ त्रिपदा विराड् गायत्री)

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थ
इन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।
जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥ १ ॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य०।
जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥ २ ॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य०।
जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥ ३ ॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य०।
जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥ ४ ॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य०।
जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥ ५ ॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थ
इन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।
जिष्णवे योगाय विश्वानि
मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ॥ ६ ॥
अग्नेर्भाग स्थ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ७ ॥
इन्द्रस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो०।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ८ ॥
सोमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो०।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ९ ॥
वरुणस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो०।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १० ॥
मित्रावरुणयोर्भाग स्थ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो०।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय० ॥ ११ ॥
यमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो०।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १२ ॥
पितृणां भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो०।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १३ ॥
देवस्य सवितुर्भाग स्थ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो०।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय० ॥ १४ ॥
यो व आपोऽपां भागोऽ
अप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि।
तेन तमभ्यतिसृजामो
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन
ब्रह्मणाऽनेन कर्मणाऽनया मेन्या ॥ १५ ॥
यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः।
इदं०। तेन०। तं वधेयं तं स्तृषी० ॥ १६ ॥
यो व आपोऽपां वत्सोऽ
अप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः।
इदं०। तेन०। तं वधेयं तं० ॥ १७ ॥
यो व आपोऽपां वृषभोऽ
अप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः।
इदं०। तेन०। तं वधेयं तं० ॥ १८ ॥
यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भोऽ
अप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः।
इदं०। तेन०। तं वधेयं० ॥ १९ ॥

यो वं आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्यो३
ऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः।
इदं०। तेन०। तं वधेयं० ॥ २० ॥

ये वं आपोऽपामग्नयोऽप्स्व१न्तर्यजुष्या देवयजनाः।
इदं तानति सृजामि तान्माभ्यवनिक्षि।
तैस्तमभ्यतिसृजामो०।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन
कर्मणानया मेन्या० ॥ २१ ॥

यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः २२

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन।
अरिष्टाः सर्ववीरा मा च नः किं चनाममत् २३

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत्।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः
प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥ २४ ॥

(२८) श्रेयःप्राप्तिः।

॥ १ ॥ (अथर्व० २।११।१-५)

शुक्रः। कृत्यादूषणम्। १ चतुष्पदा विराट् गायत्री,
२-५ त्रिपदा परोष्णिक्, ४ पिपीलिकमध्या निचृत्।

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ १ ॥

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ २ ॥

प्रति तमभि चर यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ३ ॥

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ४ ॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ५ ॥

(२९) बलप्राप्तिः।

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।१३५।१-३)

वज्रः। अनुष्टुप्।

यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे।
स्कन्धानमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥ १ ॥

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः।
प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ॥ २ ॥

यद्गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ॥ ३ ॥

(३०) वर्चःप्राप्तिः।

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।५।१-३)

अथर्वा। १ अग्निः, २ इन्द्रः, ३ अग्निः, सोमः, ब्रह्मणस्पतिः।
अनुष्टुप्, २ भुरिक्।

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत।
समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ १ ॥

इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद्वशी।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥ २ ॥

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम्।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

(३१) ऊर्जःप्राप्तिः।

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।७९।१-३)

संस्फानम्। गायत्री, ३ त्रिपदा प्राजापत्या गायत्री।

अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु।
असमातिं गृहेषु नः ॥ १ ॥

त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय।
आ पुष्टमेत्वा वसु ॥ २ ॥

देवं संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे।
तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि
तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ॥ ३ ॥

(३२) विश्वजित्।

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।१०७।१-४)

शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि ।
त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष
चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥ १ ॥
त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि ।
विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष
चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥ २ ॥
विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि ।
कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष
चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥ ३ ॥
कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि ।
सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष
चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥ ४ ॥

(३३) राष्ट्रसभा।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।१२।१-३)

शौनकः । १-२ सभा, पितरः, ३ इन्द्रः । अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप् ।

सभा च मा समितिश्चावतां
प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षात्
चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥ १ ॥
विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥ २ ॥
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे ।
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ३

(३४) अश्वः।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१६२।१-२२)

दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप्, ३-६ जगती ।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुः
इन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः
प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य
रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप
इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥
एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना
पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत् पुरोळाशमर्वता
त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं
त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति
यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो
ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन
स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाः
चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभरन्ति
उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥
उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म
देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति
देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥
यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो
या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं
सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाऽऽश
यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु
सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति
य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तु
उत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० ॥

यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानाद्
अभि शूलं निहतस्यावधावति।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु
देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ११ ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं
य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत
उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया
या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।
ऊष्मण्याऽपिधाना चरूणाम्
अङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास
सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥

मा त्वाऽग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिः
मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं
तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्ति
अधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।
संदानमर्वन्तं पड्बीशं
प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

यत् ते सादे महसा शूकृतस्य
पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु
सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥

चतुस्त्रिंशद् वाजिनो देवबन्धोः
वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत
परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥ १८ ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता
द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि
ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥

मा त्वा तपत् प्रिय आत्माऽपियन्तं
मा स्वधितिस्तन्व१ आ तिष्ठिपत् ते।
मा ते गृध्नुरविशस्ताऽतिहाय
छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि
देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूताम्
उपास्थाद् वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः
पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम्।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु
क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१६३।१-१३) त्रिष्टुप्।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान
उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू
उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥
(३५८१)

यमेन॑ द॒त्तं त्रि॒त ए॑नमायुन॒क्
इन्द्र॑ एणं प्रथ॒मो अध्य॑तिष्ठत्।
ग॒न्ध॒र्वो अ॑स्य रश॒नाम॑गृभ्णात्
सूरा॑दश्वं वसवो॒ निर॑तष्ट ॥ २ ॥
असि॑ य॒मो अस्या॑दि॒त्यो अ॑र्वन्
असि॑ त्रि॒तो गुह्ये॑न व्र॒तेन॑।
असि॒ सोमे॑न स॒मया॒ विपृ॑क्त
आहुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि बन्ध॑नानि ॥ ३ ॥
त्रीणि॑ त आहुर्दि॒वि बन्ध॑नानि॒
त्रीण्य॒प्सु त्रीण्य॒न्तः स॑मु॒द्रे।
उ॒तेव॑ मे॒ वरु॑णश्छन्त्स्यर्व॒न्
यत्रा॑ त आ॒हुः प॑र॒मं ज॒नित्र॑म् ॥ ४ ॥
इ॒मा ते॑ वाजिन्नव॒मार्ज॑नानी॒
इ॒मा श॒फानां॑ सनि॒तुर्नि॒धाना॑।
अत्रा॑ ते भ॒द्रा र॑श॒ना अ॑पश्य॒म्
ऋ॒तस्य॒ या अ॑भि॒रक्ष॑न्ति गो॒पाः ॥ ५ ॥
आ॒त्मानं॑ ते॒ मन॑सा॒ऽऽरादजा॑नाम्
अ॒वो दि॒वा प॒तय॑न्तं पत॒ङ्गम्।
शिरो॑ अपश्यं प॒थिभि॑ः सु॒गेभि॑ः
अरे॒णुभि॒र्जेह॑मानं पत॒त्रि ॥ ६ ॥
अत्रा॑ ते रू॒पमु॑त्त॒मम॑पश्यं
जिगी॑षमाणमि॒ष आ प॒दे गोः।
य॒दा ते॒ मर्तो॒ अनु॒ भोग॒मान॒ळ्
आदिद् ग्रसि॑ष्ठ॒ ओष॑धीरजीगः ॥ ७ ॥
अनु॑ त्वा॒ रथो॒ अनु॒ मर्यो॑ अर्व॒न्
अनु॒ गावोऽनु॒ भग॑ः क॒नीना॑म्।
अनु॒ व्राता॑स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑युः
अनु॑ दे॒वा म॑मिरे वी॒र्यं॑ ते ॥ ८ ॥
हिर॑ण्यशृ॒ङ्गोऽयो॑ अस्य॒ पादा॒
मनो॑जवा॒ अव॑र॒ इन्द्र॑ आसीत्।
दे॒वा इद॑स्य हवि॒रद्य॑माय॒न्
यो अर्व॑न्तं प्रथ॒मो अ॒ध्यति॑ष्ठत् ॥ ९ ॥
ई॒र्मान्ता॑सः॒ सिलि॑कमध्यमा॒सः
सं शूर॑णासो दि॒व्यासो॒ अत्या॑ः।
ह॒ंसा इ॑व श्रेणि॒शो य॑तन्ते॒
यदाक्षि॑षुर्दि॒व्यमज्म॒मश्वा॑ः ॥ १० ॥
तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न्
तव॑ चि॒त्तं वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान्।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रा
अर॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥ ११ ॥
उप॒ प्रागा॒च्छस॑नं वा॒ज्यर्वा॑
दे॒व॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नः।
अ॒जः पु॒रो नी॑यते॒ नाभि॑र॒स्य
अनु॑ प॒श्चात् क॒वयो॑ यन्ति रे॒भाः ॥ १२ ॥
उप॒ प्रागा॑त् पर॒मं यत् स॒धस्थ॒म्
अर्वाँ॒ अच्छा॒ पित॑रं मा॒तरं॑ च।
अ॒द्या दे॒वाञ्जुष्ट॑तमो॒ हि ग॒म्या
अथा शा॑स्ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ १३ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० ७।३८।७-८)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वाजिनः । त्रिष्टुप् ।

शं नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु
दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः।
ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॒ वृकं॒ रक्षां॑सि॒
सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः ॥ ७ ॥
वाजे॑वाजेऽवत वाजिनो नो॒
धने॑षु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
अ॒स्य मध्व॑ः पिबत मा॒दय॑ध्वं
तृ॒प्ता या॑त प॒थिभि॑र्देव॒यानै॑ः ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ७।४७)

यमाय॑ त्वा मह्यं॒ वरु॑णो ददातु॒ सो॒ऽमृत॒त्वम॑शीय॒
हयो॑ दा॒त्र ए॑धि॒ वयो॒ मह्यं॑ प्रतिग्रही॒त्रे ॥ ४७ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० ८।१२)

यस्ते॑ अश्वस॒निर्भ॒क्षो यो गो॒सनि॑ः
तस्य॑ त इ॒ष्टय॑जुष स्तु॒तस्तो॑मस्य
श॒स्तोक्थ॒स्योप॑हूत॒स्योप॑हूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥
(७५९८)

॥ ६ ॥ (वा० य० ९।६-९.१३ [उत्तरार्धं], -१५,१९)

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत
प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः ।
देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतूर्तिः
ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥ ६ ॥
वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः ।
ते अग्रेऽश्वमयुञ्जंस्ते अस्मिञ्जवमा दधुः ॥ ७ ॥
वातरꣳहा भव वाजिन् युज्यमान
इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस
आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥ ८ ॥
जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा
यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते ।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन
वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो
बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥
वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो
योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥ १३ ॥
एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति
ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु सꣳसनिष्यदत्
पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥ १४ ॥
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः
पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि
दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥
आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्याद्
एमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।
आ मा गन्तां पितरा मातरा च
आ मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो
बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० ११।१२,१५,१८-२२,४४,४६)

प्रतूर्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम् ।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे
तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥
प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती
रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि ।
उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिः
अभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥
आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो वि धूनुते ।
अग्निꣳसधस्थे महति चक्षुषा नि चिकीषते ॥१८॥
आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।
भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् १९
द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थं
आत्माऽन्तरिक्षꣳ समुद्रो योनिः ।
विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः ॥ २० ॥
उत्क्राम महते सौभगाय
अस्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्या
अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥
उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः
सुलोकꣳ सुकृतं पृथिव्याम् ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ
स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥
स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् ।
पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥
प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा ।
भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ।
वृषाऽग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम् ।
अग्न आ याहि वीतये ॥ ४६ ॥
(३६१५)

॥ ८ ॥ (वा० य० २२।३-४,१९)
समिधा असि भुवनमसि यन्ताऽसि धर्ता ।
स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ३
स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये
ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये
तेन राध्यासम् ।
तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥ ४ ॥
विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राऽश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि
मयोऽस्यर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसि
वृषाऽसि नृमणा असि ।
ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामाऽसि
आदित्यानां पत्वाऽन्विहि ।
देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय
प्रोक्षितꣳ रक्षत इह रन्ति—रिह रमता—
मिह धृति—रिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥
॥ ९ ॥ (वा० य० २३।१-७,१४-१७,२०-२१,३४-३७
३९-४४)
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥
यद्वातो अपो अगनीगन् प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।
एतꣳ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नः ७
सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः।
सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः॥ १४ ॥
स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व
स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ १५ ॥
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि
देवाँ२ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुः
तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥
अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्त
स एतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः
स ते लोको भविष्यति
तं जेष्यसि पिबैता अपः ।
वायुः पशुरासीत् तेनायजन्त
स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन् वायुः
स ते लोको भविष्यति
तं जेष्यसि पिबैता अपः ।
सूर्यः पशुरासीत् तेनायजन्त
स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः
स ते लोको भविष्यति
तं जेष्यसि पिबैता अपः ॥ १७ ॥
ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव
स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां
वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥
उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् ।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥
द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः
सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥
महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥
नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥
रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि
सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥
कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति
कस्ते गात्राणि शम्यति ।
क उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥
(३८११)

ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु ।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥
अर्धमासाः परूंषि ते मासा
आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥
दैव्या अध्वर्यवस्त्वा च्छ्यन्तु वि च शासतु ।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ४२
द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥ ४३ ॥
शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः ।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥ ४४ ॥

॥ १० ॥ (वा० य० २९।४४)

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयः
अश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्
क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।९२।२)
अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

तनूष्टे वाजिन् तन्वं नयन्ती
वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवो
दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० १९।२५।१)
गोपथः । अनुष्टुप् ।

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥

॥ १३ ॥ (सा० ४३५)
ऋण-त्रसदस्यू । पुर उष्णिक् ।

आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो
अग्मं देवस्य सवितुः सवम् ।
स्वर्गाँ अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥

(२५) दधिक्रा ।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।३८।१-१०)
वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं
दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं
चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥
यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं
विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं
रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ ३ ॥
यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु
सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्
तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥ ४ ॥
उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुं
अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं
श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥ ५ ॥
उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्
नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा
रेणुं रेरिहत् किरणं ददश्वान् ॥ ६ ॥
उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा
शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्यो
अधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥ ७ ॥
उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योः
ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्
दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥ ८ ॥
(३६४८)

उत स्मास्य पनयन्ति जना
जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः
परा दधिक्रा असरत् सहस्रैः ॥ ९ ॥

आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः
सूर्य इव ज्योतिषाऽपस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा
पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥ १० ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ४।३९।१-६) त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।

आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम
दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्तु
अति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥ १ ॥

महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा
दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं
ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥ २ ॥

यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्
समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु
स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥ ३ ॥

दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यत्
अमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं
हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥ ४ ॥

इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त
उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय
ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥ ५ ॥

दधिक्राव्णो अकारिषं
जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० ४।४०।१-४) १ त्रिष्टुप्, २-४ जगती ।

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम
विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य
बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥ १ ॥

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसत्
श्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो
दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥ २ ॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः
पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि
दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥ ३ ॥

उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति
ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्
पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० ७।४४।१-५)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । दधिक्राः, १ दधिक्राग्न्युषोऽश्विभगेन्द्र-
विष्णुपूषब्रह्मणस्पत्यादित्यद्यावापृथिव्यापः ।
१ जगती, २-५ त्रिष्टुप् ।

दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निम्
उप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम्।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं
ते विश्वास्मद्दुरिता यावयन्तु ॥ ३ ॥
दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वा
ऽग्रे रथानां भवति प्रजानन्।
संविदान उषसा सूर्येण
आदित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ॥ ४ ॥
आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्तु
ऋतस्य पन्थामन्वेतवा उं।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः
शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ॥ ५ ॥
॥ ५ ॥ (वा० य० ३४।३९)
समध्वरायोषसो नमन्त
दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो
रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ३९ ॥

(३६) हरिः।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९६।१-१३)
बरुराङ्गिरस, सर्वहरिर्वा ऐन्द्रः। जगती, १२-१३ त्रिष्टुप्।
प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी
प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम्।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत
आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥ १ ॥
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्
हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव
इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥ २ ॥
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो
हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक
इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो
विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः
सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥ ४ ॥
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः
पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यं
असामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥ ५ ॥
ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद
इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत
इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ ६ ॥
अरं कामाय हरयो दधन्विरे
स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते
सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥ ७ ॥
हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसः
तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुः
अति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥ ८ ॥
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः
शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी
पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥ ९ ॥
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्यो३ः
अत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत्।
मही चिद्धि धिषणाऽहर्यदोजसा
बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥ १० ॥
आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा
नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम्।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोः
आविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ ११ ॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां
रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो
हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥ १२ ॥
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानां
अथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र
सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥ १३ ॥
॥ २ ॥ (वा० य० ८।११)
उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि
हारियोजनो हरिभ्यां त्वा ।
हर्योर्धाना स्थ सहसोमा इन्द्राय ॥ ११ ॥

(३७) रथः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।४७।२६-२८)
गर्गो भारद्वाजः । २६ त्रिष्टुप्, २७ जगती ।
वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया
अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्व
आस्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ २६ ॥
दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं
वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतं
इन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ २७ ॥
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं
मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो
देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ २८ ॥
॥ २ ॥ (४-५) (वा० य० ९।५)
इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयायं वाजं सेत् ५
॥ ३ ॥ (वा० य० १०।२१)
इन्द्रस्य वज्रोऽसि
मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि ।
अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वा
अरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जया
अपाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

(३८) रथाङ्गानि ।

॥ १ ॥ (ऋ० ३।५३।१७-२०)
विश्वामित्रो गाथिनः । त्रिष्टुप्, १८ बृहती, २० अनुष्टुप् ।
स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो
मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोः
अरिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥ १७ ॥
बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे
त्वं हि बलदा असि ॥ १८ ॥
अभि व्ययस्व खदिरस्य सारं
ओजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व
मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥ १९ ॥
अयमस्मान् वनस्पतिः
मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आऽवसा आ विमोचनात् ॥ २० ॥

(३९) दुन्दुभिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।४७।२९-३१)
गर्गो भारद्वाजः । (३१ दुन्दुभीन्द्रौ) । त्रिष्टुप् ।
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां
पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैः
दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ २९ ॥
आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा
निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत
इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥ ३० ॥
(३६११)

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः
केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरो
ऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ३१ ॥

॥ २ ॥ [४-५] (वा० य० ९।११-१२)

बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत
बृहस्पतिं वाजं जापयत ।
इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदत
इन्द्रं वाजं जापयत ॥ ११ ॥
एषा वः सा सत्या संवागभूद्
यया बृहस्पतिं वाजमजीजपत
अजीजपत बृहस्पतिं वाजं
वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ।
एषा वः सा सत्या संवागभूद्
ययेन्द्रं वाजमजीजपत
अजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ५।२०।१-१२)

ब्रह्मा । वनस्पतिः, दुन्दुभिः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन्
वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्
सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥ १ ॥
सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धः
ऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना
ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥ २ ॥
वृषेव यूथे सहसा विदानो
गव्यन्नभि रुव संधनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां
हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥ ३ ॥
संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुः
गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व
वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥ ४ ॥
दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीम्
आशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्य
अमित्री भीता समरे वधानाम् ॥ ५ ॥
पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं
भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो
द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥ ६ ॥
अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु
पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः
श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥ ७ ॥
धीभिः कृतः प्र वदाति वाचम्
उद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व
मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि ॥ ८ ॥
संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः
प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान्
कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे ॥ ९ ॥
श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्
संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणाऽसि ।
अंशूनिव ग्रावाऽधिषवणे
अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः ॥ १० ॥
शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो
गवेषणः सहमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं
सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ॥ ११ ॥

अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो
मृधो जेता पुरएताऽयोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्
हृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥ १२ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ५।२१।१-१२)
अनुष्टुप्, १,४-५ पथ्यापङ्क्तिः; ६ जगती ।

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु
नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ॥ १ ॥
उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च ।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ॥ २ ॥
वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः ।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥ ३ ॥
यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द
प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥ ४ ॥
यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र० ॥ ५ ॥
यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते
अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।
एवा त्वं दुन्दुभे० ॥ ६ ॥
पराऽमित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च ।
सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ॥ ७ ॥
यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह ।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥ ८ ॥
ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः ।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥ ९ ॥

(४०) द्रुघण, इन्द्रो वा ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१०२।१-१२)
मुद्गलो भार्म्यश्वः । त्रिष्टुप्; १,३,१२ बृहती ।

प्र ते रथं मिथूकृत-मिन्द्रोऽवतु धृष्णुया ।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव ॥१॥
उत् स्म वातो वहति वासो अस्या
अधिरथं यदजयत् सहस्रम् ।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ
भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥ २ ॥
अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा
सनुतर्यवया वधम् ॥ ३ ॥
उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः
कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।
प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानो
अजिरं बाहू अभरत् सिषासन् ॥ ४ ॥
न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एन-
ममेहयन् वृषभं मध्य आजेः ।
तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रं
गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ॥ ५ ॥
ककर्दवे वृषभो युक्त आसीद्
अवावचीत् सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस
ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ॥ ६ ॥
उत प्रधिमुदहन्नस्य विद्वान्
उपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन् ।
इन्द्र उदावत् पतिमघ्न्यानां
अरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ॥ ७ ॥
शुनमष्ट्राव्यचरत् कपर्दी
वरत्रायां दार्वानह्यमानः ।
नृम्णानि कृण्वन् बहवे जनाय
गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त ॥ ८ ॥
इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं
काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
येन जिगाय शतवत् सहस्रं
गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ॥ ९ ॥

आरे अघा को न्वि१त्था ददर्श
यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।
नास्मै तृणं नोदकमा भरन्ति
उत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत् ॥ १० ॥

परिवृक्तेव पतिविद्यमानट्
पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन् ।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम
सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् ॥ ११ ॥

त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।
वृषा यदाजिं वृषणा सिषाससि
चोदयन् वध्रिणा युजा ॥ २० ॥

(४१) सङ्ग्रामाशिषः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।७५।१-१९)

पायुर्भारद्वाजः । १ वर्म, २ धनुः, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ इषुधिः, ६ (पूर्वार्धस्य) सारथिः, ६ (उत्तरार्धस्य) रश्मयः, ७ अश्वाः, ८ रथः, ९ रथगोपाः, १० ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावापृथिवी-पूषणः, ११-१२ १५-१६ इषवः, १३ प्रतोदः, १४ हस्तघ्नः, १७ युद्धभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्यादयः, १८ वर्म-सोम-वरुणाः, १९ देवब्रह्माणि । त्रिष्टुप्, ६-१० जगती, १२,१३ १५,१६,१९ अनुष्टुप्; १७ पङ्क्तिः।

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं
यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं
स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ १ ॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम
धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति
धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं
प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन्
ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ३ ॥

ते आचरन्ती समनेव योषा
मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने
आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४ ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रः
चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः
पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ५ ॥

रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो
यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत
मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयो
अश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्
क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥

रथवाहनं हविरस्य नाम
यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम
विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः
कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः
सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ९ ॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः
शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ १० ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो
गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति
तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ ११ ॥

(१०१८)

ऋजीते परि वृङ्धि नो ऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नो ऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२
आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसो ऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥१३॥
अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं
ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्
पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ १४ ॥
आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यो
अथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व
मामीषां कं चनोच्छिषः ॥ १६ ॥
यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पति—रदितिः शर्म यच्छतु
विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥
मर्माणि ते वर्मणा छादयामि
सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु
जयन्तं त्वाऽनु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥
यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९॥

॥ २ ॥ (सा० १८६४-६५,१८७१) त्रिष्टुप् ।

कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान्
गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र
वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥ १ ॥
अमित्रसेनां मघवन्नस्मां छत्रुयतीमभि ।
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥
अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ ३ ॥

(४२) राजा।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१७३।१-६)
ध्रुव आङ्गिरसः । अनुष्टुप् ।

आ त्वाऽहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु
मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥ १ ॥
इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठे—ह राष्ट्रमु धारय ॥ २ ॥
इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत् तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ३
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ४
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५॥
ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ऽभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्रः केवली—र्विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥

॥ २ ॥ (ऋ० १०।१७४।१-५)
अभीवर्त आङ्गिरसः । अनुष्टुप् ।

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते ऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥ १ ॥
अभिवृत्य सपत्ना—नभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठा—भि यो न इरस्यति ॥ २ ॥
अभि त्वा देवः सविता ऽभि सोमो अवीवृतत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्य भीवर्तो यथाऽससि ॥३॥
येनेन्द्रो हविषा कृत्व्य—भवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥ ४ ॥

असपत्नः सपत्नहा ऽभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाऽहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥५॥

॥ ३ ॥ (ऋ० ६।१७।८)
भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । चायमानो राजा । त्रिष्टुप् ।

द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा
वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति
दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ४।२२।१-७)
वसिष्ठ, अथर्वा वा । क्षत्रियो राजा, इन्द्रश्च । त्रिष्टुप् ।

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं
विशामेकवृषं कृणु त्वम् ।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान्
रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥ १ ॥
एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु
निष्टं भज यो अमित्रो अस्य ।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र
शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥ २ ॥
अयमस्तु धनपतिर्धनानाम्
अयं विशां विश्पतिरस्तु राजा ।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेहि
अवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥ ३ ॥
अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं
दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू ।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात्
प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥ ४ ॥
युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं
येन जयन्ति न पराजयन्ते ।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानां
उत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ॥ ५ ॥
उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना
ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवान्
शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ ६ ॥
सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा
व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां
शत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥ ७ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ६।८८।३)
अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रून्
शत्रूयतोऽधरान् पादयस्व ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः
ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥ ३ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ७।९४।१)
सोमः (राजा) । अनुष्टुप् ।

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽव सोमं नयामसि ।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः समनसस्करत् ॥ १ ॥

(१६७०)

ॐ

उप रक्षा-मंत्री ।

विष्णुः (उपेन्द्रः)

॥ १ ॥ (ऋ० १।२२।१६-२१)

मेधातिथिः काण्वः । विष्णुः । गायत्री ।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २१ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१५४।१-६)

दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं
यः पार्थिवानि वि ममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥
प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु
अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म
गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थं
एको विममे त्रिभिरित् पदेभिः ॥ ३ ॥
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदानि
अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यां
एको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां
नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था
विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः ।
परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१५५।१-६)

दीर्घतमा औचथ्यः। विष्णुः, १-३ इन्द्राविष्णू। जगती।

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते
महे शूराय विष्णवे चार्चत।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या
महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोः
इन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्
कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं
नि मातरा नयति रेतसे भुजे।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुः
नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि
इनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभिः
उरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो
अभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति
वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः
चक्रं न वृत्तं व्यतीरवीविपत्।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिः
युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१५६।१-५)

दीर्घतमा औचथ्यः। विष्णुः। जगती।

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिः
विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः
स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे
सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्
सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद
ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन
महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना
क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं
व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥
आ यो विवाय सचथाय दैव्य
इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः।
वेधा अजिन्वत् त्रिषधस्थ आर्यं
ऋतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० ५।३।३)

ऋषिः-वसुश्रुत आत्रेयः। मरुद्रुद्रविष्णवः। त्रिष्टुप्।

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त
रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम्।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि
तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ६।६९।१-८)

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्राविष्णू। त्रिष्टुप्।

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमि
इन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तं
अरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥
या विश्वासां जनितारा मतीनां
इन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु
प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥ २ ॥

(२०९९)

इन्द्रा॑विष्णू मदपती मदाना॒म्
आ सोमं॑ यातं॒ द्रवि॑णो॒ दधा॑ना ।
सं वा॑मञ्जन्त्व॒क्तुभि॑र्मती॒नां
सं स्तोमा॑सः शस्यमा॑नास उ॒क्थैः ॥ ३ ॥

आ वा॒मश्वा॑सो अभिमाति॒षाह॒
इन्द्रा॑विष्णू सध॒मादो॑ वहन्तु ।
जु॒षेथां॒ विश्वा॒ हव॑ना मती॒नाम्
उप॒ ब्रह्मा॑णि शृणुतं॒ गिरो॑ मे ॥ ४ ॥

इन्द्रा॑विष्णू॒ तत् प॑न॒याय्यं॑ वां॒
सोम॑स्य॒ मद॑ उ॒रु च॑क्रमाथे ।
अकृ॑णुतम॒न्तरि॑क्षं॒ वरी॑यो
ऽप्र॑थतं जी॒वसे॑ नो॒ रजां॑सि ॥ ५ ॥

इन्द्रा॑विष्णू ह॒विषा॑ वावृधा॒ना
ग्रा॑द्वाना॒ नम॑सा रातहव्या ।
घृता॑सुती॒ द्रवि॑णं धत्तम॒स्मे
स॑मु॒द्रः स्थः॑ क॒लशः॑ सोम॒धानः॑ ॥ ६ ॥

इन्द्रा॑विष्णू॒ पिब॑तं॒ मध्वो॑ अ॒स्य
सोम॑स्य दस्रा ज॒ठरं॑ पृणेथाम् ।
आ वा॒मन्धां॑सि मदि॒राण्य॑ग्मन्
उप॒ ब्रह्मा॑णि शृणुतं॒ हवं॑ मे ॥ ७ ॥

उ॒भा जि॑ग्यथु॒र्न परा॑ जयेथे॒
न परा॑ जिग्ये कत॒रश्च॒नैनोः॑ ।
इन्द्र॑श्च विष्णो॒ यदप॑स्पृधेथां
त्रे॒धा स॒हस्रं॒ वि तदै॑रयेथाम् ॥ ८ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ७।९९।१-७)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विष्णुः, ४-६ इन्द्राविष्णू । त्रिष्टुप् ।

प॒रो मात्र॑या त॒न्वा॑ वृधान
न ते॑ महि॒त्वमन्व॑श्नुवन्ति ।
उ॒भे ते॑ विद्म॒ रज॑सी पृथि॒व्या
विष्णो॑ देव॒ त्वं प॑र॒मस्य॑ वित्से ॥ १ ॥

न ते॑ विष्णो॒ जाय॑मानो॒ न जा॒तो
देव॑ महि॒म्नः पर॒मन्त॑माप ।
उद॑स्तभ्ना॒ नाक॑मृ॒ष्वं बृ॒हन्तं॑
दा॒धर्थ॒ प्राचीं॑ क॒कुभं॑ पृथि॒व्याः ॥ २ ॥

इरा॑वती धेनु॒मती॒ हि भू॒तं
सू॑यव॒सिनी॒ मनु॑षे दश॒स्या ।
व्य॑स्तभ्ना॒ रोद॑सी विष्णवे॒ते
दा॒धर्थ॑ पृथि॒वीम॒भितो॑ म॒यूखैः॑ ॥ ३ ॥

उ॒रुं य॒ज्ञाय॑ चक्रथुरु लो॒कं
ज॒नय॑न्ता॒ सूर्य॑मु॒षास॑म॒ग्निम् ।
दास॑स्य चिद् वृषशि॒प्रस्य॑ मा॒या
ज॒घ्नथु॑र्नरा पृत॒नाज्ये॑षु ॥ ४ ॥

इन्द्रा॑विष्णू दृंहि॒ताः शम्ब॑रस्य
नव॒ पुरो॑ नव॒तिं च॑ श्नथिष्टम् ।
श॒तं व॒र्चिनः॑ स॒हस्रं॑ च सा॒कं
ह॒थो अ॑प्र॒त्यसु॑रस्य वी॒रान् ॥ ५ ॥

इ॒यं म॑नी॒षा बृ॑ह॒ती बृ॒हन्तो॑
रुक्र॒मा त॒वसा॑ व॒र्धय॑न्ती ।
र॒रे वां॒ स्तोमं॑ वि॒दथे॑षु विष्णो॒
पिन्व॑त॒मिषो॑ वृ॒जने॑ष्विन्द्र ॥ ६ ॥

वष॑ट् ते विष्णवा॒स आ कृ॑णोमि॒
तन्मे॑ जुषस्व शिपिविष्ट ह॒व्यम् ।
वर्ध॑न्तु त्वा सुष्टु॒तयो॒ गिरो॑ मे
यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ७ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ७।१००।१-६)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

नू मर्तो॑ दयते सनि॒ष्यन्
यो विष्ण॑व उरुगा॒याय॒ दाश॑त् ।
प्र यः स॒त्राचा॒ मन॑सा॒ यजा॑त
ए॒ताव॑न्तं॒ नर्य॑मा॒विवा॑सात् ॥ १ ॥

(३८१०)

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यां
अप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेः
अश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥ २ ॥

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां
वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्
त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ ३ ॥

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां
क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास
उरुक्षितिं सु जनिमा चकार ॥ ४ ॥

प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नाम
अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ ५ ॥

किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्
प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्
यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ ६ ॥

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि
तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १०।१८४।१)

त्वष्टा, गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्य । १ विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः, २ सिनीवाली सरस्वत्यश्विनः, ३ अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिंचतु प्रजापति-र्धाता गर्भं दधातु ते ॥ १ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ३।१०।४,७)

वसिष्ठः । ४ सोमः, अग्निः, आदित्यः, विष्णुः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः, ७ अर्यमा, बृहस्पतिः इन्द्रः, वातः, विष्णुः, सरस्वती, सविता, वाजीः । अनुष्टुप् ।

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ४ ॥
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ७ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ३।२७।५)

अथर्वा । विष्णुः, कल्माषग्रीवो, वीरुधः । भुरिक् ।

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः
कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
तं वो जम्भे दध्मः ॥ ५ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ५।२६।७)

ब्रह्मा । विष्णुः । द्विपदा प्राजापत्या बृहती ।

विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७

॥ १३ ॥ (अथर्व० ६।३।१)

अथर्वा । इन्द्रापूषणौ, अदितिः, मरुतः, अपां नपात्, सिन्धवः, विष्णुः, द्यौः । पथ्याबृहती ।

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।
अपां नपात्सिन्धवः सप्त पातन
पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।१७।४)

भृगुः । अग्निः, त्वष्टा, विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां
प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो
यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० ७।२५।१-२)

मेधातिथिः । विष्णुः, वरुणः । त्रिष्टुप् ।

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि
यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा ।
यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिः
विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः ॥ १ ॥

यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते
प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिः
विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः ॥ २ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ७।२६।१-८)

मेधातिथिः । विष्णुः । १ त्रिष्टुप्, २ त्रिपदा विराड्गायत्री ३ त्र्यवसाना षट्पदा विराट् शक्वरी ।

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि
यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्याणि
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत आ जगम्यात्परस्याः ॥ २ ॥

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु
अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा
उरु विष्णो वि क्रमस्व उरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥ ३ ॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा ।
समूढमस्य पांसुरे ॥ ४ ॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
इतो धर्माणि धारयन् ॥ ५ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ६ ॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ७ ॥

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्याः
महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः
आप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ ८ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ७।२९।१, २)

मेधातिथिः । अग्नाविष्णू । त्रिष्टुप् ।

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं
पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ
प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥ १ ॥

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां
वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ
प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥ २ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० ७।४४।१)

प्रस्कण्वः । इन्द्राविष्णू । त्रिष्टुप् ।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे
न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां
त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ १ ॥

(१०११)

ॐ

सेनाध्यक्षः ।

रुद्रदेवता ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।४३।१-२, ४-६)

कण्वो घौरः । गायत्री ।

कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे ।
वोचेम शंतमं हृदे ॥ १ ॥

यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे ।
यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥

गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् ।
तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते ।
श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये ।
नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।११४।१-११)

कुत्स आङ्गिरस । जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने
क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे
विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १ ॥

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि
क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता
तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २ ॥

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया
क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमा चर
अरिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३ ॥

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं
वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु
सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं
त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि
शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः
स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं
त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं
मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ७ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीः
हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ ८ ॥
उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं
रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तम
अथा वयमव इत् ते वृणीमहे ॥ ९ ॥
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं
क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देव
अधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥ १० ॥
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः
शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तां
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० २।३३।१-१५)
गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः ।
त्रिष्टुप् ।

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु
मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत
प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥
त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः
शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्यस्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो
व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ २ ॥
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि
तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति
विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥ ३ ॥
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिः
मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिः
भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥
हवीमभिर्हवते यो हविर्भिः
अव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै
बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥ ५ ॥
उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्
त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीय
आ विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥
क्व स्य ते रुद्र मृळयाकुः
हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्य
अभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे
महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिः
गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो
बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेः
न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम् ॥ ९ ॥
अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्व
अर्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं
न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ १० ॥
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं
मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानो
अन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥ ११ ॥
(३८६३)

कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं
प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे
स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि
या शंतमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नः
ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ १३ ॥
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः
परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व
मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥ १४ ॥
एवा बभ्रो वृषभ चेकितान
यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० ७।४६।१-४)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। जगती, ४ त्रिष्टुप्।

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः।
क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे
तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥ १ ॥
स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः
साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरा
अनमीवो रुद्र जासु नो भव ॥ २ ॥
या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि
क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा
मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥ ३ ॥
मा नो वधी रुद्र मा परा दा
मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० ७।५९।१२)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः रुद्रः (त्र्यम्बकः) (मृत्युविमोचनी ऋक्)।
अनुष्टुप्।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥१२

॥ ६ ॥ (वा० य० ३।५७-६३)

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व
स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥
अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्।
यथा नो वस्यसस्करद् यथा नः श्रेयसस्करद्
यथा नो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥
भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्।
सुखं मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनं।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥
एतत् ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि।
अवततधन्वा पिनाकावसः
कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥
त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥
शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता
नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः।
निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय
रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ६३ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० १०।२०)

रुद्र यत् ते क्रिवि परं नाम
तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥

(३८८०)

॥ ८ ॥ (वा० य० ११।५४)

रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे ।
तेषां भानुरजस्र इ—च्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ ५४ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० १६।१-६६)

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः ।
बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥
या ते रुद्र शिवा तनूर—घोरापापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया
गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ २ ॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा
हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगद—यक्ष्मꣳ सुमना असत् ॥४॥
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहीꣳश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च
यातुधान्योऽधराचीः परासुव ॥ ५ ॥
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः
सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ईमहे ॥ ६ ॥
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः
स दृष्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये अस्य सत्वानो—ऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥८॥
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमु—भयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ २ उत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥१०॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तयास्मान् विश्वतस्त्वम—यक्ष्मया परिभुज ॥ ११ ॥
परि ते धन्वनो हेतिर—स्मान् वृणक्तु विश्वतः ।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् ॥ १२ ॥
अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव १३
नमस्त आयुधाया—नातताय धृष्णवे ।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥१४॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं
मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ १५ ॥
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीः
हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ १६ ॥
नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो
नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो
नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो
नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः १७
नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नानां पतये नमो
नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो
नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो
नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः ॥ १८ ॥
नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो
नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो
नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो
नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥१९॥
नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो
नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां
पतये नमो
नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो
नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः २०

नमो॑ वञ्च॑ते परिवञ्च॑ते स्ता॒यू॒नां पत॑ये॒ नमो॒
नमो॑ निष॒ङ्गिण॑ इषुधि॒मते॒ तस्क॑राणां॒ पत॑ये॒ नमो॒
नम॑: सृका॒यिभ्यो॒ जिघां॑सद्भ्यो मुष्णतां पत॑ये॒ नमो॒
नमो॑ऽसि॒मद्भ्यो॒ नक्त॒ञ्चर॑द्भ्यो विकृन्ता॒नां पत॑ये
नम॑: ॥ २१ ॥
नम॑ उष्णी॒षिणे॑ गिरिच॒राय॑ कुलु॒ञ्चानां॒ पत॑ये॒ नमो॒
नम॑ इषु॒मद्भ्यो॑ धन्वा॒यिभ्य॑श्च वो॒ नमो॒
नम॑ आतन्वा॒नेभ्य॑: प्रति॒दधा॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒
नम॑ आ॒यच्छ॑द्भ्योऽस्य॑द्भ्यश्च वो॒ नम॑: ॥ २२ ॥
नमो॑ विसृ॒जद्भ्यो॒ विध्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒
नम॑: स्व॒पद्भ्यो॒ जाग्र॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒
नम॑: शया॑नेभ्य॒ आसी॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒
नम॒स्तिष्ठ॑द्भ्यो॒ धाव॑द्भ्यश्च वो॒ नम॑: ॥ २३ ॥
नम॑: स॒भाभ्य॑: स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒
नमो॒ऽश्वेभ्यो॒ऽश्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒
नम॑ आव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒
नम॒ उग॑णाभ्यस्तृंह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नम॑: ॥ २४ ॥
नमो॑ ग॒णेभ्यो॑ ग॒णप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒
नमो॒ व्रातेभ्यो॒ व्रात॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒
नमो॒ गृत्से॑भ्यो॒ गृत्स॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒
नमो॒ विरू॑पेभ्यो वि॒श्वरू॑पेभ्यश्च वो॒ नम॑: ॥ २५ ॥
नम॑: सेना॑भ्यः सेना॒निभ्य॑श्च वो॒ नमो॒
नमो॑ र॒थिभ्यो॑ अर॒थेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒
नम॑: क्ष॒त्तृभ्य॑: संग्रही॒तृभ्य॑श्च वो॒ नमो॒
नमो॑ म॒हद्भ्यो॑ अर्भ॒केभ्य॑श्च वो॒ नम॑: ॥ २६ ॥
नम॒स्तक्ष॑भ्यो रथका॒रेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒
नम॑: कुला॑लेभ्य॑: क॒र्मारे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒
नमो॑ निषा॒देभ्य॑: पुञ्जि॒ष्ठेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒
नम॑: श्व॒निभ्यो॑ मृग॒युभ्य॑श्च वो॒ नम॑: ॥ २७ ॥
नम॒: श्वभ्य॑: श्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒
नमो॑ भ॒वाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒
नम॑: श॒र्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒
नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च ॥ २८ ॥
नम॑: कप॒र्दिने॑ च॒ व्यु॑प्तकेशाय च॒
नम॑: सहस्रा॒क्षाय॑ च श॒तध॑न्वने च॒
नमो॑ गिरि॒श॒याय॑ च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒
नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च ॥ २९ ॥
नमो॑ ह्र॒स्वाय॑ च वाम॒नाय॑ च॒
नमो॑ बृह॒ते च॒ वर्षी॑यसे च॒
नमो॑ वृ॒द्धाय॑ च स॒वृधे॑ च॒
नमोऽग्र्या॑य च प्रथ॒माय॑ च ॥ ३० ॥
नम॑ आ॒शवे॑ चाजि॒राय॑ च॒
नम॑: शीघ्र्या॑य च॒ शीभ्या॑य च॒
नम॒ ऊर्म्या॑य चावस्व॒न्या॑य च॒
नमो॑ नादे॒याय॑ च॒ द्वीप्या॑य च ॥ ३१ ॥
नमो॑ ज्ये॒ष्ठाय॑ च कनि॒ष्ठाय॑ च॒
नम॑: पूर्व॒जाय॑ चापर॒जाय॑ च॒
नमो॑ मध्य॒माय॑ चापग॒ल्भाय॑ च॒
नमो॑ जघ॒न्या॑य च॒ बुध्न्या॑य च ॥ ३२ ॥
नम॑: सो॒भ्या॑य च प्रतिस॒र्या॑य च॒
नमो॒ याम्या॑य च॒ क्षेम्या॑य च॒
नम॑: श्लोक्या॑य चावसा॒न्या॑य च॒
नम॑ उर्व॒र्या॑य च॒ खल्या॑य च ॥ ३३ ॥
नमो॒ वन्या॑य च॒ कक्ष्या॑य च॒
नम॑: श्र॒वाय॑ च प्रतिश्र॒वाय॑ च॒
नम॑ आ॒शुषे॑णाय चा॒शुर॑थाय च॒
नम॑: शूरा॑य चावभे॒दिने॑ च ॥ ३४ ॥
नमो॑ बिल्मि॒ने च कव॒चिने॑ च॒
नमो॑ व॒र्मिणे॑ च वरू॒थिने॑ च॒
नम॑: श्रु॒ताय॑ च श्रुतसे॒नाय॑ च॒
नमो॑ दुन्दु॒भ्या॑य चाहन॒न्या॑य च ॥ ३५ ॥
(१११६)

नमो॑ धृष्णवे॑ च प्रमृशाय॑ च
नमो॑ निषङ्गिणे॑ चेषुधिमते॑ च
नम॑स्तीक्ष्णेषवे चायुधिने॑ च
नम॑: स्वायुधाय॑ च सुधन्व॑ने च ॥ ३६ ॥
नम॑: स्रुत्याय॑ च पथ्या॑य च
नम॑: काट्या॑य च नीप्या॑य च
नम॑: कुल्या॑य च सरस्या॑य च
नमो॑ नादेयाय॑ च वैशन्ताय॑ च ॥ ३७ ॥
नम॑: कूप्या॑य चावट्या॑य च
नमो॑ वीध्र्या॑य चातप्या॑य च
नमो॑ मेघ्या॑य च विद्युत्या॑य च
नमो॑ वर्ष्या॑य चावर्ष्याय॑ च ॥ ३८ ॥
नमो॑ वात्या॑य च रेष्म्या॑य च
नमो॑ वास्तव्या॑य च वास्तुपाय॑ च
नम॑: सोमा॑य च रुद्राय॑ च
नम॑स्ताम्राय॑ चारुणाय॑ च ॥ ३९ ॥
नम॑: शङ्गवे॑ च पशुपत॑ये च
नम॑ उग्राय॑ च भीमाय॑ च
नमो॑ऽग्रेवधाय॑ च दूरेवधाय॑ च
नमो॑ हन्त्रे॑ च हनी॑यसे च
नमो॑ वृक्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यो॒ नम॑स्ताराय॑ ॥ ४० ॥
नम॑: शम्भवाय॑ च मयोभवाय॑ च
नम॑: शङ्कराय॑ च मयस्कराय॑ च
नम॑: शिवाय॑ च शिवत॑राय च ॥ ४१ ॥
नम॑: पार्या॑य चावार्या॑य च
नम॑: प्रतर॑णाय चोत्तर॑णाय च
नम॑स्तीर्थ्या॑य च कूल्या॑य च
नम॑: शष्प्या॑य च फेन्या॑य च ॥ ४२ ॥
नम॑: सिकत्या॑य च प्रवाह्या॑य च
नम॑: किꣳशिलाय॑ च क्षयणाय॑ च
नम॑: कपर्दिने॑ च पुलस्तये॑ च
नम॑ इरिण्या॑य च प्रपथ्या॑य च ॥ ४३ ॥
नमो॑ व्रज्या॑य च गोष्ठ्या॑य च
नम॒स्तल्प्या॑य च गेह्या॑य च
नमो॑ हृदय्या॑य च निवेष्प्या॑य च
नम॑: काट्या॑य च गह्वरेष्ठाय॑ च ॥ ४४ ॥
नम॑: शुष्क्या॑य च हरित्या॑य च
नम॑: पाꣳसव्या॑य च रजस्या॑य च
नमो॑ लोप्या॑य चोलप्या॑य च
नम॑ ऊर्व्या॑य च सूर्व्या॑य च ॥ ४५ ॥
नम॑: पर्णाय॑ च पर्णशदाय॑ च
नम॑ उद्गुरमा॑णाय चाभिघ्नते॑ च
नम॑ आखिदते॑ च प्रखिदते॑ च
नम॑ इषुकृद्भ्यो॑ धनुष्कृद्भ्य॑श्च वो नमो॑
नमो॑ वः किरिकेभ्यो॑ देवानाꣳ हृद॑येभ्यो
नमो॑ विचिन्वत्केभ्यो
नमो॑ विक्षिणत्केभ्यो॒ नम॑ आनिर्हतेभ्य॑: ॥ ४६ ॥
द्रापे॒ अन्ध॑सस्पते॒ दरि॑द्र नील॑लोहित।
आसां॑ प्रजाना॑मेषां॑ पशूनां
मा भेर्मा रोङ्मो च॑ नः किञ्चनाम॑मत् ॥ ४७ ॥
इमा रुद्राय॑ तवसे॑ कपर्दिने॑
क्षयद्वी॑राय प्रभ॑रामहे मतीः
यथा॑ शमस॑द् द्विपदे॒ चतु॑ष्पदे
विश्वं॑ पुष्टं॑ ग्रामे॑ अस्मिन्न॑नातुरम् ॥ ४८ ॥
या ते॑ रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा॑ भेषजी।
शिवा रुतस्य॑ भेषजी तया॑ नो मृड जीवसे॑ ॥४९॥
परि॑ नो रुद्रस्य॑ हेतिर्वृ॑णक्तु
परि॑ त्वेषस्य॑ दुर्मतिर॑घायोः।
अव॑ स्थिरा म॒घव॑द्भ्यस्तनुष्व
मीढ्व॑स्तोकाय तन॑याय मृड ॥ ५० ॥
(२९३१)

*

॥ १३ ॥ (अथर्व० ६।५७।१)

कपिञ्जलः। अनुष्टुप्।

रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत्।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।८७।१)

अथर्वा। जगती।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तः
य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ १ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० १५।५।१-१६)

१ त्रिपदा समविषमा गायत्री; २ त्रिपदा भुरिगार्ची त्रिष्टुप्; ३, ६, ९, १२, १५, १८, २१ द्विपदा प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ४ त्रिपदा स्वराट् प्राजापत्या पङ्क्तिः; ५, ८, ११, १७ त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री; ७, १०, १६ त्रिपदा ककुप्; १३, १९ भुरिग् विषमा गायत्री, १४ निचृद्ब्राह्मी गायत्री; २० विराट्;

तस्मैः प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद्
भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥
भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥
नास्य पशून् समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥
तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशात्
शर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥
शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः।
नास्य पशून् समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ५ ॥
तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात्
पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥
पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति।
नैनं शर्वो न भवो नेशानः।
नास्य पशून् समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ७ ॥
तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशात्
उग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ८ ॥
उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति।
नैनं शर्वो न भवो नेशानः।
नास्य पशून् समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ९ ॥
तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद्
रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १० ॥
रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति।
नैनं शर्वो न भवो नेशानः।
नास्य पशून् समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥
तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशात्
महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १२ ॥
महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो
अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति।
नैनं शर्वो न भवो नेशानः।
नास्य पशून् समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ १३ ॥
तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य
ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १४ ॥
ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो
अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ १५ ॥
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद १६

॥ १६ ॥ (अथर्व० १३।१८।३) आर्च्यनुष्टुप्।

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु।
ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥ ३ ॥

रुद्र-सहचारी देवगणः ।

(१) रुद्रः मित्रावरुणौ च ।

॥ १७ ॥ (ऋ० १।४१।२)
कण्वो घौरः । गायत्री ।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति ।
यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३ ॥

(२) रुद्रः, दिशः ।

॥ १८ ॥ (अथर्व० ३।२६।१-६)
अथर्वा । दिशः, रुद्रः, १ साग्नयो हेतयः, २ सकामा अविष्यवः, ३ वैराजः, ४ सवाताः प्रविध्यन्तः, ५ सौषधिका निलिम्पाः, ६ बृहस्पतियुता अवस्वन्तः । त्रिष्टुप्; २, ५-६ जगती; १-४ भुरिक्; १-६ पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा ।

येऽ३ऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि
हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ १ ॥

येऽ३ऽस्यां स्थ दक्षिणायां दिशि
अविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ २ ॥

येऽ३ऽस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि
वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ३ ॥

येऽ३ऽस्यां स्थोदीच्यां दिशि
प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ४ ॥

येऽ३ऽस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि
निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ५ ॥

येऽ३ऽस्यां स्थोर्ध्वायां दिशि
अवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ६ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० ३।२७।१-६)
दिशः, रुद्रः, १ अग्निः असित, आदित्याः, २ इन्द्रः, तिरश्चीराजी, पितरः, ३ वरुणः, पृदाकुः, अन्नं, ४ सोमः, स्वजः, अशनिः, ५ विष्णुः, कल्माषग्रीवो वीरुधः, ६ बृहस्पतिः, श्वित्रं, वर्षम् । १-६ पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भाष्टिः, (२ अत्यष्टिः, ५ भुरिक्)

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो
रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी
रक्षिता पितर इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः
पृदाकू रक्षितान्नमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥

(११८०)

इन्द्रस्य शर्मासि। तं त्वा प्र पद्ये तं
त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १२ ॥
इन्द्रस्य वर्मासि। तं त्वा प्र पद्ये तं
त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १३ ॥
इन्द्रस्य वरूथमसि। तं त्वा प्र पद्ये तं
त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १४ ॥

(५) भव-शर्व-रुद्राः।

॥ ११ ॥ (अथर्व० ११।२।१-३१)
त्रिष्टुप्; १ पराऽतिजागता विराड्जगती; २ अनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदा पथ्याजगती, ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्; ४-५,७,१३,१५-१६,२१ अनुष्टुप्, ६ आर्षी गायत्री; ८ महाबृहती, ९ आर्षी, १० पुरोकृति त्रिपदा विराट्; ११ पञ्चपदा विराड्जगतीगर्भा शक्वरी, १२ भुरिक्, १४,१७-१९,२३,२६-२७ विराड्गायत्री; २० भुरिग्गायत्री, २२ विषमपादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती; २४,२९ जगती, २५ पञ्चपदाऽतिशक्वरी, ३० चतुष्पदा उष्णिक्; ३१ त्र्यवसाना विपरीतपादलक्ष्मा षट्पदा (जगती ?)।

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं
भूतपती पशुपती नमो वाम्।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं
मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ १ ॥
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो
ये च कृष्णा अविष्यवः।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि
ते विघसे मा विदन्त ॥ २ ॥
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वायां आस्याय ते।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत
आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय
दश कृत्वः पशुपते नमस्ते।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता
गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ९ ॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौः
तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम्।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु
उरुः कोशो वसुधानस्तवायं
यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः।
स नो मृड पशुपते नमस्ते
परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः
परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥
धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं
सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम्।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिः
तस्यै नमो यतमस्यां दिशीऽतः ॥ १२ ॥
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥
भवारुद्रौ सयुजा संविदानौ
उभावुग्रौ चरतो वीर्याय।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीऽतः ॥ १४ ॥

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५ ॥
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद्
रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् । ॥ १७ ॥
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं
भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥
मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं
मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥ १९ ॥
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि
परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥
मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥ २१ ॥
यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकं
अश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥
योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितो
अयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३ ॥
तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने
हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तः
तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥ २४ ॥
शिशुमारा अजगराः पुरीकया
जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते
भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि
भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्समुद्रे ॥ २५ ॥
मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण
मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥ २६ ॥
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या
भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७ ॥
भव राजन् यजमानाय मृड
पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति
चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च
स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥ २९ ॥
रुद्रस्यैलबकारेभ्यो-ऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥
नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः
स्वस्ति नो अभयं च नः ॥ ३१ ॥

॥ ६३ ॥ (अथर्व० ६।९३।१-२)

शन्तातिः । रुद्र १ यमो मृत्युः, शर्वः, २ भवः, शर्वः । त्रिष्टुप् ।

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो
बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसः
ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥ १ ॥
मनसा होमैर्हरसा घृतेन
शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः
कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु ॥ २ ॥

(६) रुद्रः, व्याघ्रः ।

॥ १४ ॥ (अथर्व० ४।३।१-७)
अथर्वा । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः, ३ गायत्री
७ ककुम्मतीगर्भोपरिष्टाद्बृहती ।

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।
हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो
हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ्नमन्तु शत्रवः ॥ १ ॥
परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ २ ॥
अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥ ३ ॥
व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥ ४ ॥
यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति ।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥ ५ ॥
मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।
निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥ ६ ॥
यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः ।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥७॥

(७) रुद्रः (अग्निः) ।

॥ १५ ॥ (ऋ० ४।३।१)
वामदेवो गौतमः । रुद्र० । त्रिष्टुप् ।

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं
होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्
हिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० १०।१८।१-४)
संकुसुको यामायनः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां
यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि
मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥ १ ॥
मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन
शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥ २ ॥
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्
अभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ३ ॥
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि
मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीः
अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ ४ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ६।१३।१-३)
अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । मृत्युः । अनुष्टुप् ।

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।
अथो ये विश्यानां वधाः
तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः ।
सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः ॥ २ ॥
नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥ ३ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० ४।३५।१-७)
प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप्, ३ भुरिग्जगती ।

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य
प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ १ ॥
येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं
यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ २ ॥

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं
यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ३ ॥
यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः
संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुः
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ४ ॥
यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव
यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वाः
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ५ ॥
यस्मात् पक्वादमृतं संबभूव
यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ६ ॥
अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं
सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि
शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ॥ ७ ॥

॥ २९ ॥ (अथर्व० ७।१०२।१)

द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्, मृत्युः । विराट् पुरस्ताद्बृहती ।

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मा हिंसिषुरीश्वराः ॥ १ ॥

॥ ३० ॥ (अथर्व० ६।६३।२-३)

द्रुहणः । २ यमः, ३ मृत्युः । २ अतिजगतीगर्भा, ३ जगती ।

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजो
अयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति
तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ २ ॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इह
अभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान
उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ३ ॥

ॐ

सेना विभागः ।

मरुद्देवता

॥ १ ॥ (ऋ० १।६।४,६,८,९)
मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । गायत्री ।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

देवयन्तो यथा मति मच्छा विदद्वसुं गिरः ।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

अनवद्यैरभिद्युभि र्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१५।२)
मेधातिथिः काण्व । गायत्री ।

मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन ।
यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।३७।१-१५)
कण्वो घौरः । गायत्री ।

क्रीळं वः शर्धो मारुत मनर्वाणं रथेशुभम् ।
कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः ।
अजायन्त स्वभानवः ॥ २ ॥

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद् वदान् ।
नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे ।
देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥

प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् ।
जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः ।
यत् सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे ।
जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः ।
भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे ।
यत् सीमनु द्विता शवः ॥ ९ ॥

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत ।
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ १० ॥

त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् ।
प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन ।
गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना ।
शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३ ॥

प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः।
तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४ ॥
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्।
विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।३८।१-१५)

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः।
दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥
क्व नूनं कद् वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः।
क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता।
क्वो३ विश्वानि सौभगा ॥ ३ ॥
यद् यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन।
स्तोता वो अमृतः स्यात्। ॥ ४ ॥
मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः।
पथा यमस्य गादुप ॥ ५ ॥
मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्।
पदीष्ट तृष्णया सह ॥ ६ ॥
सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः।
मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति।
यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥
दिवा चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन।
यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्।
अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ १० ॥
मरुतो वीळुपाणिभि-श्चित्रा रोधस्वतीरनु।
यातेमखिद्रयामभिः ॥ ११ ॥
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम्।
सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२ ॥
अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम्।
अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥
मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥
वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्।
अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ १५ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।३९।१-१०)
(प्रगाथः = (विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती।)

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा
कं याथ कं ह धूतयः ॥ १ ॥
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे
वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी
मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥
परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु।
वि याथन वनिनः पृथिव्या
व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि
न भूम्यां रिशादसः।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा
रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥
प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव
देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोद्
अबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरा
इत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित
आ यो नो अभ्व ईषते।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा
वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥ ८ ॥

असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिः
गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥
असाम्योजो बिभृथा सुदानवो
असामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव
इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ८।७।१-३६)
पुनर्वत्सः काण्वः । गायत्री ।

प्र यद् वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् ।
वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥
यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।
नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥
उदीरयन्त वायुभि— र्वाश्रासः पृश्निमातरः ।
धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥ ३ ॥
वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् ।
यद् यामं यान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥
नि यद् यामाय वो गिरि— र्नि सिन्धवो विधर्मणे ।
महे शुष्माय येमिरे ॥ ५ ॥
युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान् दिवा हवामहे ।
युष्मान् प्रयत्यध्वरे ॥ ६ ॥
उदु त्ये अरुणप्सव— श्चित्रा यामेभिरीरते ।
वाश्रा अधि ष्णुना दिवः ॥ ७ ॥
सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे ।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ८ ॥
इमां मे मरुतो गिर— मिमं स्तोममृभुक्षणः ।
इमं मे वनता हवम् ॥ ९ ॥
त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥ १० ॥
मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।
आ तू न उप गन्तन ॥ ११ ॥
यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे ।
उत प्रचेतसो मदे ॥ १२ ॥
आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् ।
इयर्ता मरुतो दिवः ॥ १३ ॥
अधीव यद् गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।
सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥ १४ ॥
एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः ।
अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥ १५ ॥
ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः ।
उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥ १६ ॥
उदु स्वानेभिरीरत उद् रथैरुदु वायुभिः ।
उत् स्तोमैः पृश्निमातरः ॥ १७ ॥
येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् ।
राये सु तस्य धीमहि ॥ १८ ॥
इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः ।
वर्धान् काण्वस्य मन्मभिः ॥ १९ ॥
क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः ।
ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥ २० ॥
नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः ।
शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ ॥ २१ ॥
समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥ २२ ॥
वि वृत्रं पर्वशो ययु— र्वि पर्वताँ अराजिनः ।
चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥ २३ ॥
अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् ।
अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ २४ ॥
विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः ।
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥ २५ ॥
उशना यत् परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।
द्यौर्न चक्रदद् भिया ॥ २६ ॥
आ नो मखस्य दावने ऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः ।
देवास उप गन्तन ॥ २७ ॥
यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥ २८ ॥

सुषोमे शर्यणावं—त्यार्जीके पस्त्यावति।
ययुर्निचक्रया नरः ॥ २९ ॥
कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम्।
मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥ ३० ॥
कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन।
को वः सखित्व ओहते ॥ ३१ ॥
सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः।
स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥
ओ षु वृष्णः प्रयज्यू—ना नव्यसे सुविताय।
ववृत्यां चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥
गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः।
पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥
आक्ष्णयावानो वहन्—त्यन्तरिक्षेण पततः।
धातारः स्तुवते वयः ॥ ३५ ॥
अग्निर्हि जानि पूर्व्य—श्छन्दो न सूरो अर्चिषा।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ३६ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ८।२०।१-२६)

सोभरिः काण्वः। प्रगाथः=(विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); १४ सतो विराट्।

आ गन्ता मा रिषण्यत
प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः।
स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥ १ ॥
वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण
आ रुद्रासः सुदीतिभिः।
इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो
यज्ञमा सोभरीयवः ॥ २ ॥
विद्मा हि रुद्रियाणां
शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम्।
विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥ ३ ॥
वि द्वीपानि पापतन् तिष्ठद् दुच्छुना
उभे युजन्त रोदसी।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो
यदेजथ स्वभानवः ॥ ४ ॥
अच्युता चिद् वो अज्मन्ना
नानदति पर्वतासो वनस्पतिः।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥
अमाय वो मरुतो यातवे द्यौः
जिहीत उत्तरा बृहत्।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा
त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥ ६ ॥
स्वधामनु श्रियं नरो
महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः।
वहन्ते अह्रुतप्सवः ॥ ७ ॥
गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां
रथे कोशे हिरण्यये।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे
महान्तो नः स्परसे नु ॥ ८ ॥
प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे
शर्धाय मारुताय भरध्वम्।
हव्या वृषप्रयाव्णे ॥ ९ ॥
वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो
हव्या नो वीतये गत ॥ १० ॥
समानमञ्ज्येषां
वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु।
दविद्युतत्यृष्टयः ॥ ११ ॥
त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो
नकिष्टनूषु येतिरे।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वो
अनीकेष्वधि श्रियः ॥ १२ ॥
येषामर्णो न सप्रथो
नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद् भुजे।
वयो न पित्र्यं सहः ॥ १३ ॥

तान् वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि
तेषां हि धुनीनाम्।
अराणां न चरमस्तदेषां
दाना मह्ना तदेषाम् ॥ १४ ॥
सुभगः स व ऊतिषु
आस पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु ।
यो वा नूनमुतासति ॥ १५ ॥
यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर
आ हव्या वीतये गथ
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः
सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥ १६ ॥
यथा रुद्रस्य सूनवो
दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः ।
युवानस्तथेदसत् ॥ १७ ॥
ये चार्हन्ति मरुतः सुदानवः
स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये ।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा
युवान आ ववृध्वम् ॥ १८ ॥
यून ऊ षु नविष्ठया
वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा ।
गाय गा इव चर्कृषत् ॥ १९ ॥
साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो
विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा
वन्दस्व मरुतो अह ॥ २० ॥
गावश्चिद् घा समन्यवः
सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
रिहते ककुभो मिथः ॥ २१ ॥
मर्तश्चिद् वो नृतवो रुक्मवक्षस
उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व
आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥ २२ ॥
मरुतो मारुतस्य न
आ भेषजस्य वहता सुदानवः ।
यूयं सखायः सप्तयः ॥ २३ ॥
याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ
याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः
शिवाभिरसचद्विषः ॥ २४ ॥
यत् सिन्धौ यदसिक्न्यां
यत् समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत् पर्वतेषु भेषजम् ॥ २५ ॥
विश्वं पश्यन्तो विभृथा तनूष्वा
तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न
इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ २६ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० १।६४ १-१५)
नोधा गौतमः। जगती, १५ त्रिष्टुप्।

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे
नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो
गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो
रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव
सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २ ॥
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो
ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा
प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३ ॥
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते
वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुरृष्टयः
साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो
वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो
भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ ॥

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः
पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनं
उत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६ ॥

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो
गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना
यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७ ॥

सिंहा इव नानदति प्रचेतसः
पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः
समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८ ॥

रोदसी आ वदता गणश्रियो
नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता
विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥

विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः
संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योः
अनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध
उज्जिघ्नन्त आपथ्यो न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो
दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं
रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणं
ऋजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥

प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति
तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिः
आपृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ १३ ॥

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं
द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं
तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तं
ऋतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं
प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १।८५।१-१०)

गोतमो राहूगणः । जगती; ५,१२ त्रिष्टुप् ।

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो
यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे
मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥

त उक्षितासो महिमानमाशत
दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियं
अधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिः
तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप
वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः
प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा
वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥

प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं
वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराः
चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो
रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं
मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ ६ ॥
तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना
नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं
वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥
शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः
श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो
राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८ ॥
त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं
सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवे
अहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा
दादृहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो
मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा
असिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः
कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११ ॥
या वः शर्म शशमानाय सन्ति
त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त
रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० १।८६।१-१०) गायत्री ।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।
स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् ।
मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत ।
स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ३ ॥
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
सूरं चित् सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥
पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् ।
अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः ।
यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७ ॥
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।
विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥
यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना ।
विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० १।८७।१-६) जगती ।

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनो
अनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिः
व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ १ ॥
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं
वय इव मरुतः केन चित् पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा
घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥

(४१०१)

ग्रैवामजेषु विधुरेव रेजते
भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः
स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥

स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणोऽ३
अया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्यो
अस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि
सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशत
आदिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे
ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो
विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० १।८८।१-६)

(त्रिष्टुप्, १,६ प्रस्तारपंक्तिः, ५ विराड्रूपा) ।

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कैः
रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः
शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्
पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २ ॥

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीः
मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजाताः
तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥

अहानि गृध्राः पर्या व आगुः
इमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैः
ऊर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥ ४ ॥

एतत् त्यन्न योजनमचेति
सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्
विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री
प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० १।१३९।८)

परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः ।

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या
सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुः
अस्मत् पुरोत जारिषुः ।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं
दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० १।१६६।१-१५)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने
पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन् मरुतस्तुविष्वणो
युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १ ॥

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप
क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं
न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥

यस्मा ऊमासो अमृता अरासत
रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव
पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत
प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या
चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥
यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्
दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन् भयते वनस्पती
रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ ॥
यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना
अरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती
रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६ ॥
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसो
अलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये
विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्
पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः
पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो
मिथुस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयो
अक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९ ॥
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु
वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि
वयो न पक्षान् व्यनु श्रियो धिरे ॥ १० ॥
महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो
दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः
संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥
तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं
दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तत्
जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥ १२ ॥
तद् वो जामित्वं मरुतः परे युगे
पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या
साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥ १३ ॥
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम
युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
आ यत् ततनन् वृजने जनास
एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥ १४ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः
मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० १।१६७।१-११)
त्रिष्टुप्; (१० पुरस्ताज्ज्योतिः)।

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा
ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः
समुद्रस्य चिद् धनयन्त पारे ॥ २ ॥
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची
हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा
सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ ३ ॥
परा शुभ्रा अयासो यव्या
साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा
जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥

जोषद् यदीमसुर्या सचध्यै
विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्
त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥
आस्थापयन्त युवतिं युवानः
शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद् वो मरुतो हविष्मान्
गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥
प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां
मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः
स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७ ॥
पान्ति मित्रावरुणाववद्यात्
चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि
वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥
नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे
आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसो
अर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥ ९ ॥
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून्
तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥ १० ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः
मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० १।१६८,१-१०)
जगती; ८-१० त्रिष्टुप् ।

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिः
धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योः
महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस
इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय
आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो
हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
एषामंसेषु रम्भिणीव रारभे
हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३ ॥
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुः
अमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुः
दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो
रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि
पुरुप्रैषा अहन्यो३ नैतशः ॥ ५ ॥
क्व स्विदस्य रजसो महस्परं
क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं
व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥
सातिर्न वोऽमवती स्ववती
त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा
पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७ ॥
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो
यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां
यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥

असूत पृश्निर्महते रणाय
त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वम्
आदित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः
मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० १।१७१।१-२) त्रिष्टुप् ।

प्रति व एना नमसाहमेमि
सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिः
नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्
हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा
यूयं हि ष्ठा नमस इद् वृधासः ॥ २ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० १।१७२।१-३) गायत्री ।

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः ।
मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥
आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः ।
आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥
तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊर्ध्वान् नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० २।३०।११)
गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः)
शौनकः । जगती ।

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरा
उप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा
अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥ ११ ॥

॥ २० ॥ (ऋ० २।३४।१-१५)
जगती; १५ त्रिष्टुप् ।

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो
मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो
भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो
व्यभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद् वो मरुतो रुक्मवक्षसो
वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥ २ ॥
उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु
नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः
पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥ ३ ॥
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे
मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस
ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥ ४ ॥
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिः
अध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन
मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ५ ॥
आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो
नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि
कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ ६ ॥
तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ
आपानं ब्रह्म चितयद् दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे
सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥ ७ ॥

यद् युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसो
अश्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते
जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ८ ॥
यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो
रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तं
अव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥ ९ ॥
चित्रं तद् वो मरुतो याम चेकिते
पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद् वा निदे नवमानस्य रुद्रियाः
त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ १० ॥
तान् वो महो मरुत एवयाव्नो
विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान् ककुहान् यतस्रुचो
ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥ ११ ॥
ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे
ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते
महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥ १२ ॥
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी
रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा
सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥ १३ ॥
ताँ इयानो महि वरूथमूतय
उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान् पञ्च होतॄनभिष्टय
आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥ १४ ॥
यया रध्रं पारयथात्यंहो
यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिः
ओ षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥ १५ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ३।२६।४-६)

गाथिनो विश्वामित्रः । जगती ।

प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः
शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः
प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥ ४ ॥
अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टयः
आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः
सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥ ५ ॥
व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः
अग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो
गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥ ६ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० ५।५२।१-१७)

श्यावाश्व आत्रेयः । अनुष्टुप्; ६,१६,१७ पङ्क्तिः ।

प्र श्यावाश्व धृष्णुया ऽर्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥
ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनः त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥
ते स्पन्द्रासो नोक्षणो ऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥
मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४ ॥
अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥
आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव
भानुरर्त त्मना दिवः ॥ ६ ॥
ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥ ७ ॥
(४९८०)

शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ८
उत स्म ते परुष्ण्या – मूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथाना – मद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥
आपथयो विपथयो ऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभि – र्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥
अधा नरो न्योहते ऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥
छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायवः
ऊमा आसन् दृशि त्विषे ॥ १२ ॥
य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥
अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा
स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥
नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभि – र्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥
प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः
पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६ ॥
सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुत – मुद् राधो गव्यं मृजे
नि राधो अश्व्यं मृजे ॥ १७ ॥

॥ ९३ ॥ (ऋ० ५।५३।१-१६)
ककुप्; २ बृहती, ३ अनुष्टुप्, ४ पुरउष्णिक्, ६,७,९,११,१४,१६ सतोबृहती; ८,१२ गायत्री) ।

को वेद जानमेषां
को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद् युयुज्रे किलास्यः ॥ १ ॥
ऐतान् रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय
इळाभिर्वृष्टयः सह ॥ २ ॥
ते म आहुर्य आययु – रुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान् पश्यन्निति ष्टुहि ॥३॥
ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः
स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥
युष्माकं स्मा रथाँ अनु
मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥
आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे
दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु
धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥
ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः
प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने
वि यद् वर्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥
आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ॥ ८ ॥
मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुः
मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात् सरयुः पुरीषिणि
अस्मे इत् सुम्नमस्तु वः ॥ ९ ॥
तं वः शर्धं रथानां
त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥
शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥
(४२०१)

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः।
एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥
येन तोकाय तनयाय धान्यं
बीजं वहध्वे अक्षितम्।
अस्मभ्यं तद् धत्तन यद् व ईमहे
राधो विश्वायु सौभगम् ॥ १३ ॥
अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिः
हित्वावद्यमरातीः।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं
स्याम मरुतः सह ॥ १४ ॥
सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥
स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि
रणन् गावो न यवसे।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय
गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥

॥ ३४ ॥ (ऋ० ५।५४।१-१५) जगती, १४ त्रिष्टुप्।

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव
इमां वाचमनजा पर्वतच्युते।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने
द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १ ॥
प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो
वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः
स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥ २ ॥
विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो
वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः
स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥ ३ ॥
व्यक्तून् रुद्रा व्यहानि शिक्वसो
व्यन्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा
वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ ४ ॥
तद् वीर्यं वो मरुतो महित्वनं
दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम्।
एता न यामे अगृभीतशोचिषो
अनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥ ५ ॥
अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषस
श्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ ६ ॥
न स जीयते मरुतो न हन्यते
न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय
ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरो
ऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्
व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८ ॥
प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः
प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः
प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥ ९ ॥
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः
सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः
सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥ १० ॥
अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो
वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः
शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥ ११ ॥

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं
रुशत् पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ।
समचयन्त वृजनातित्विषन्त यत्
स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥ १२ ॥
युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो
रायः स्याम रथ्योऽ वयस्वतः।
न यो युच्छति तिष्योऽ यथा दिवोऽ
अस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥ १३ ॥
यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं
यूयमृषिमवथ सामविप्रम्।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं
यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १४ ॥
तद् वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो
येना स्व१र्ण ततनाम नॄँरभि।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो
यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥ १५ ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० ५।५५।१-१०) जगती, १० त्रिष्टुप्।

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो
बृहद् वयो दधिरे रुक्मवक्षसः।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १ ॥
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद
बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २ ॥
साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः
श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ३ ॥
आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं
दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ४ ॥
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो
यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ५ ॥
यदश्वान् धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं
हिरण्ययान् प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम्।
विश्वा इत् स्पृधो मरुतो व्यस्यथ
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ६ ॥
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो
यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ७ ॥
यत् पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं
यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ८ ॥
मृळत नो मरुतो मा वधिष्टना
अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ९ ॥
यूयमस्मान् नयत वस्यो अच्छा
निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० ५।५६।१-९)
बृहती, ३; ७ सतोबृहती।

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये
दिवश्चित् रोचनादधि ॥ १ ॥

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्
तान् वर्ध भीमसंदृशः ॥ २ ॥
मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो
दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥
नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित् स्वर्यं पर्वतं गिरिं
प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ४ ॥
उत् तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥ ५ ॥
युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे
वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥ ६ ॥
उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिः
इह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्
प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥
रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती
सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥
तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते
सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥ ९ ॥

॥ २७ ॥ (ऋ० ५।५७।१-८ जगती, ७-८ त्रिष्टुप्)

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो
हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मतिः
तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥ १ ॥
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः
सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः
स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥ २ ॥
धूनुथ द्यां पर्वतान् दाशुषे वसु
नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः
शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ३ ॥
वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो
यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः
प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥ ४ ॥
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवः
त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो
दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥ ५ ॥
ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि
सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो
विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥ ६ ॥
गोमदश्वावद् रथवत् सुवीरं
चन्द्रवद् राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो
भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥ ७ ॥
हये नरो मरुतो मृळता नः
तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो
बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥

॥ २८ ॥ (ऋ० ५।५८।१-८) त्रिष्टुप् ।

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां
स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद् वहन्त
उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥

त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं
धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम्।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा
वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥ २ ॥
आ वो यन्तूदवाहासो अद्य
वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्धः
एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ ३ ॥
यूयं राजानमिर्यं जनाय
विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो
युष्मत् सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥ ४ ॥
अरा इवेदचरमा अहेव
प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः
स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥ ५ ॥
यत् प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैः
वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः।
क्षोदन्त आपो रिणते वनानि
अवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥ ६ ॥
प्रथिष्ट यामन् पृथिवी चिदेषां
भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः।
वातान् ह्यश्वान् धुर्यायुयुज्रे
वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥
हये नरो मरुतो मृळता नः
तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो
बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥

॥ ६२ ॥ (ऋ० ५।५९।१-८) जगती, ८ त्रिष्टुप्।

प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावने
अर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे।
उक्षन्ते अश्वान् तरुषन्त आ रजो
अनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥ १ ॥
अमादेषां भियसा भूमिरेजति
नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिः
अन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥ २ ॥
गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं
सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने।
अत्या इव सुभ्वश्चारवः स्थन
मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥ ३ ॥
को वो महान्ति महतामुदश्नवत्
कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ
प्र यद् भरध्वे सुविताय दावने ॥ ४ ॥
अश्वा इवेदरुषासः सबन्धवः
शूरा इव प्रयुधः प्रोत युयुधुः।
मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नरः
सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥ ५ ॥
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो
अमध्यमासो महसा वि वावृधुः।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो
दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥ ६ ॥
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसा
अन्तान् दिवो बृहतः सानुनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः
प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥ ७ ॥
मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः
सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत
ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥ ८ ॥
(४२६१)

॥ ३० ॥ (ऋ० ५।६१।१-४,११-१६) गायत्री, ३ निचृत्

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय ।
पुरमस्याः परावतः ॥ १ ॥
क्व वोऽश्वाः क्वाभीशवः
कथं शेक कथा यय ।
पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥ २ ॥
जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः ।
पुत्रकृथे न जनयः ॥ ३ ॥
परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः ।
अग्नितपो यथासथ ॥ ४ ॥
य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु ।
अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥
येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा ।
दिवि रुक्म इवोपरि ॥ १२ ॥
युवा स मारुतो गण स्त्वेषरथो अनेद्यः ।
शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥ १३ ॥
को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः ।
ऋतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥
यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया ।
श्रोतारो यामहूतिषु ॥ १५ ॥
ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः ।
आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

॥ ३१ ॥ (ऋ० ५।८७।१-९)
एवयामरुदात्रेयः । अतिजगती

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे
मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये
तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ १ ॥
प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं
प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद् वो मरुतो नाधृषे शवो
दाना मह्ना तदेषा मधृष्टासो नाद्रयः ॥ २ ॥
प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा
सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ
अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ३
स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः
समानस्मात् सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिः
विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥
स्वनो न वोऽमवान् रेजयद् वृषा
त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः
स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ५
अपारो वो महिमा वृद्धशवसः
त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन
ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥
ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा
तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं
येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७ ॥
अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन
श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन
स्मद् रथ्यो न दंसना ऽप द्वेषांसि सनुतः ८
गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि
श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि
यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥९॥
(४१८१)

॥ ३२ ॥ (ऋ० ६।४८।११-१५,२०-२१)
शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) [१३-१५ लिङ्गोक्ता वा]।
११ ककुप्, १२ सतो बृहती, १३ पुरउष्णिक्, १४ बृहती,
१५ अतिजगती, २० बृहती, २१ महाबृहती यवमध्या।

आ सखायः सबर्दुघां
धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥ ११ ॥
या शर्धाय मारुताय स्वभानवे
श्रवोऽमृत्यु धुक्षत।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी १२
भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता।
धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् १३
तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम्।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं
विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ १४ ॥
त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वणि
अनर्वाणं पूषणं सं यथा शता।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ
आविर्गूळ्हा वसू करत् सुवेदा नो वसू करत् १५
वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वा
ईजानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥
सद्यश्चिद् यस्य चर्कृतिः
परि द्यां देवो नैति सूर्यः।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं
मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ २१ ॥

॥ ३३ ॥ (ऋ० ६।६६।१-११)
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। त्रिष्टुप्।

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु
समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद् दोहसे पीपाय
सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥
ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना
द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त।
अरेणवो हिरण्ययास एषां
साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥ २ ॥
रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा
यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा
सेत् पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ॥ ३ ॥
न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१
न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोष-
मनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥ ४ ॥
मक्षू न येषु दोहसे चिदया
आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः।
न ये स्तौना अयासो मह्ना
नू चित् सुदानुरव यासदुग्रान् ॥ ५ ॥
त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा
उभे युजन्त रोदसी सुमेके।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचि-
रामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥
अनेनो वो मरुतो यामो अस्तु
अनश्वश्चिद् यमजत्यरथीः।
अनवसो अनभीशू रजस्तू-
र्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ७ ॥
नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति
मरुतो यमवथ वाजसातौ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु
स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥ ८ ॥
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय
मारुताय स्वतवसे भरध्वम्।
ये सहांसि सहसा सहन्ते
रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ९ ॥

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्
तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा
भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ १० ॥
तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं
रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा
गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥ ११ ॥

॥ ३४ ॥ (ऋ० ७।५६।१-२५)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप्, १-११ द्विपदा विराट् ।

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा
रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥
नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते
अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥
अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त
वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥ ३ ॥
एतानि धीरो निण्या चिकेत
पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ ४ ॥
सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु
सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥ ५ ॥
यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः
श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥ ६ ॥
उग्रं व ओजः स्थिरा शवांसि
अधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ ७ ॥
शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि
धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥ ८ ॥
सनेम्यस्मद् युयोत दिद्युं
मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ् नः ॥ ९ ॥
प्रिया वो नाम हुवे तुराणां
आ यत् तृपन्मरुतो वावशानाः ॥ १० ॥
स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का
उत स्वयं तन्वः१ शुम्भमानाः ॥ ११ ॥
शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां
शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयन्
शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥ १२ ॥
अंसेष्वा मरुतः खादयो वो
वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना
अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥ १३ ॥
प्र बुध्न्या व ईरते महांसि
प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं
गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ १४ ॥
यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथ
इत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात
नू चिद् यमन्य आदभदरावा ॥ १५ ॥
अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो
यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा
वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥ १६ ॥
दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु
वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु
सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥ १७ ॥
आ वो होता जोहवीति सत्तः
सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः
सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥ १८ ॥
इमे तुरं मरुतो रामयन्ति
इमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति
गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥ १९ ॥
(१४१९)

इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति
भृमिं चिद् यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि
धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥ २० ॥
मा वो दात्रान्मरुतो निरराम
मा पश्चाद् दध्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये३
यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥ २१ ॥
सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः
शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासः
त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥ २२ ॥
भूरि चक्र मरुतः पित्र्याणि
उक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा
मरुद्भिरित् सनिता वाजमर्वा ॥ २३ ॥
अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु
जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेम
अध स्वमोको अभि वः स्याम ॥ २४ ॥
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निः
आप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

॥ ३५ ॥ (ऋ० ७।५७।१-७) त्रिष्टुप् ।

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः
प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी
पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥ १ ॥
निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं
प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिः
आ वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥
नैतावदन्ये मरुतो यथेमे
भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः
समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥ ३ ॥
ऋधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु
यद् व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा
अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ४ ॥
कृते चिदत्र मरुतो रणन्त
अनवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः
प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥ ५ ॥
उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु
विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै
जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥ ६ ॥
आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती
अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

॥ ३६ ॥ (ऋ० ७।५८।१-६)

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय
यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा
नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥ १ ॥
जनूश्चिद् वो मरुतस्त्वेष्येण
भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति
विश्वो वो यामन् भयते स्वर्दृक् ॥ २ ॥

बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात
जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं
प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥ ३ ॥
युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी
युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं
प्र तद् वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥ ४ ॥
ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे
कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत् सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविः
अव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ ५ ॥
प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनाम्
इदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ ३७ ॥ (ऋ० ७।५९।१-११)

(प्रगाथः- (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ७-८ त्रिष्टुप्, ९-११ गायत्री।)

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्
मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय
ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो
यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥
नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा
विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥
नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति
यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त् सुमतिर्नवीयसी
तूयं यात पिपीषवः ॥ ४ ॥
ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं
मो ष्वन्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥
आ च नो बर्हिः सदताविता च नः
स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ
स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥
सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना
आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद
नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥ ७ ॥
यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुः
तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति स मुचीष्ट
तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥
सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन ।
युष्माकोती रिशादसः ॥ ९ ॥
गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन ।
युष्माकोती सुदानवः ॥ १० ॥
इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः ।
यज्ञं मरुत आ वृणे ॥ ११ ॥

॥ ३८ ॥ (ऋ० ७।१०४।१८) जगती ।

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत
गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिः
ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ १८ ॥

॥ ३९ ॥ (ऋ० ८।९४।१-१२)

बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । गायत्री ।

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् ।
युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ १ ॥

(५५११)

यस्<u>यां</u> दे<u>वा</u> उ<u>प</u>स्थे॒ व्र॒ता विश्वे॑ धा॒रय॑न्ते ।
सूर्या॒मासा॑ दृ॒शे कम् ॥ २ ॥
तत् सु नो॒ विश्वे॑ अ॒र्य आ सदा॑ गृणन्ति का॒रवः॑।
म॒रुतः॒ सोम॑पीतये ॥ ३ ॥
अस्ति॒ सोमो॑ अ॒यं सु॒तः पिब॑न्त्यस्य म॒रुतः॑ ।
उ॒त स्व॒राजो॑ अ॒श्विना॑ ॥ ४ ॥
पिब॑न्ति मि॒त्रो अ॑र्य॒मा तना॑ पू॒तस्य॒ वरु॑णः ।
त्रि॒ष॒ध॒स्थस्य॒ जाव॑तः ॥ ५ ॥
उ॒तो न्व॑स्य॒ जोष॒माँ इन्द्रः॑ सु॒तस्य॒ गोम॑तः ।
प्रा॒तर्होते॑व मत्सति ॥ ६ ॥
कद॑त्विषन्त सू॒रय॒—स्ति॒र आप॑ इव॒ स्रिधः॑।
अर्ष॑न्ति पू॒तद॑क्षसः ॥ ७ ॥
कद्वो॑ अ॒द्य म॒हानां॑ दे॒वाना॒मवो॑ वृणे ।
त्मना॑ च द॒स्मव॑र्चसाम् ॥ ८ ॥
आ ये विश्वा॒ पार्थि॑वानि प॒प्रथ॑न् रोच॒ना दि॒वः।
म॒रुतः॒ सोम॑पीतये ॥ ९ ॥
त्यान् नु पू॒तद॑क्षसो दि॒वो वो॑ मरुतो हुवे ।
अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ १० ॥
त्यान् नु ये वि रोद॑सी तस्त॒भुर्म॒रुतो॑ हुवे ।
अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ ११ ॥
त्यं नु मारु॑तं ग॒णं गि॑रि॒ष्ठां वृष॑णं हुवे ।
अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ १२ ॥

॥ ४० ॥ (ऋ० १०।७७।१-८)
स्यूमरश्मिर्भार्गवः। त्रिष्टुप्, ५ जगती।

अ॒भ्र॒प्रुषो॒ न वा॒चा प्रु॒षा वसु॑
ह॒विष्म॑न्तो॒ न य॒ज्ञा वि॑जा॒नुषः॑ ।
सु॒मारु॑तं॒ न ब्र॒ह्माण॑म॒र्हसे॑
ग॒णम॑स्तोष्येषां॒ न शो॒भसे॑ ॥ १ ॥
श्रि॒ये मर्या॑सो अ॒ञ्जीँर॑कृण्वत
सु॒मारु॑तं॒ न पू॒र्वीरति॒ क्षपः॑ ।
दि॒वस्पु॒त्रास॒ एता॒ न ये॑तिर
आ॑दि॒त्यास॒स्ते अ॒क्रा न वा॑वृधुः ॥ २ ॥

प्र ये दि॒वः पृ॑थि॒व्या न ब॒र्हणा॑
त्मना॑ रिरि॒च्रे अ॒भ्रान्न सूर्यः॑ ।
पाज॑स्वन्तो॒ न वी॒राः प॑न॒स्यवो॑
रि॒शाद॑सो॒ न मर्या॑ अ॒भिद्य॑वः ॥ ३ ॥
यु॒ष्माकं॑ बु॒ध्ने अ॒पां न याम॑नि
वि॑थु॒र्यति॒ न म॒ही श्र॑थ॒र्यति॑ ।
वि॒श्वप्सु॑र्य॒ज्ञो अ॒र्वाग॒यं सु वः॒
प्रय॑स्वन्तो॒ न स॒त्राच॒ आ ग॑त ॥ ४ ॥
यू॒यं धू॒र्षु प्र॒युजो॒ न र॒श्मिभि॒र्
ज्योति॑ष्मन्तो॒ न भा॒सा व्यु॑ष्टिषु ।
श्ये॒नासो॒ न स्वय॑शसो रि॒शाद॑सः
प्र॒वासो॒ न प्रसि॑तासः परि॒प्रुषः॑ ॥ ५ ॥
प्र यद् वह॑ध्वे मरुतः परा॒काद्
यू॒यं म॒हः सं॒वर॑णस्य॒ वस्वः॑ ।
वि॒दा॒नासो॑ वसवो॒ राध्य॑स्य
आ॒राच्चि॒द् द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योत ॥ ६ ॥
य उ॒दृचि॑ य॒ज्ञे अ॑ध्वरे॒ष्ठा
म॒रुद्भ्यो॒ न मानु॑षो॒ ददा॑शत् ।
रे॒वत् स वयो॑ दधते सु॒वीरं॒
स दे॒वाना॒मपि॑ गोपी॒थे अ॑स्तु ॥ ७ ॥
ते हि य॒ज्ञेषु॑ य॒ज्ञिया॑स॒ ऊमा॑
आ॑दि॒त्येन॒ नाम्ना॒ शंभ॑विष्ठाः।
ते नो॑ऽवन्तु रथ॒तूर्म॑नी॒षां
म॒हश्च॒ याम॑न्नध्व॒रे च॑का॒नाः ॥ ८ ॥

॥ ४१ ॥ (ऋ० १०।७८।१-८) त्रिष्टुप्, २,५-७ जगती ।

विप्रा॑सो॒ न मन्म॑भिः स्वा॒ध्यो॑
दे॒वा॒व्यो॒३॒॑ न य॒ज्ञैः स्वप्न॑सः ।
राजा॑नो॒ न चि॒त्राः सु॑सं॒दृशः॑
क्षि॒ती॒नां न मर्या॑ अरे॒पसः॑ ॥ १ ॥

अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो
वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः
सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते ॥ २ ॥
वातासो न ये धुनयो जिगत्नवो
अग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः
पितॄणां न शंसाः सुरातयः ॥ ३ ॥
रथानां न ये३ऽराः सनाभयो
जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषो
अभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥ ४ ॥
अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो
दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो
विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः ॥ ५ ॥
ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर
आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा।
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो
महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ॥ ६ ॥
उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः
शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन्।
सिन्धवो ययियो भ्राजदृष्टयः
परावतो न योजनानि ममिरे ॥ ७ ॥
सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नान्
अस्मान्त्स्तोतॄन् मरुतो वावृधानाः।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात
सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥ ८ ॥

॥ ४१ ॥ (य० ३।४४)

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः।
करम्भेण सजोषसः ॥ ४४ ॥

॥ ४३ ॥ (य० ७।३६)

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वते
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते।
उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ॥ ३६ ॥

॥ ४४ ॥ (य० १७।८४-८६)

ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः
सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन।
मितासश्च सम्मितासो नो अद्य
सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥ ८४ ॥
स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च।
क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥ ८५ ॥
इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्
यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्।
एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो
मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥

॥ ४५ ॥ (य० १५।२०)

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः
शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो
विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥ २० ॥

॥ ४६ ॥ (साम० ३५६) श्यावाश्व आत्रेयः। अनुष्टुप्।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा।
१ २ ३२७ ३ २ ३ १ २
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥ ५ ॥

॥ ४७ ॥ (अथर्व० १।२६।३-४)

ब्रह्मा। ३ गायत्री, ४ एकावसाना पादनिचृत्।

यूयं नः प्रवतो नपा[illegible]न्मरुतः सूर्यत्वचसः।
शर्म यच्छाथ सप्रथाः ॥ ३ ॥
सुषूदत मृडत मृडया
नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥ ४ ॥

(४४८

॥ ४८ ॥ (अथर्व० ५।२६।५) द्विपदार्षी उष्णिक्।
छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा
मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥ ५ ॥
॥ ४९ ॥ (अथर्व० १३।१।३) जगती।
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर
इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवः
त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥ ३ ॥
॥ ५० ॥ (अथर्व० ३।१।२)
अथर्वा। विराड्गर्भा भुरिक्।
यूयमुग्रा मरुत ईदृशे
स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम्।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे
अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥ २ ॥
॥५१॥ (अथर्व० ३।२।६) त्रिष्टुप्।
असौ या सेना मरुतः परेषा
अस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना।
तां विध्यत तमसापव्रतेन
यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ६ ॥
॥ ५२ ॥ (अथर्व० ५।२४।६) चतुष्पदातिशक्वरी।
मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां
पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ ६ ॥
॥ ५३ ॥ (अथर्व० ४।१३।४)
शंतातिः। अनुष्टुप्।
त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४॥
॥ ५४ ॥ (अथर्व० ६।२२।२-३)
चतुष्पदा भुरिग्जगती, ३ त्रिष्टुप्।
पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा
यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत
यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥ २ ॥
उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त
वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्ना
एरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥ ३ ॥
॥ ५५ ॥ (अथर्व० ४।२७।१-७)
मृगारः। त्रिष्टुप्।
मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु
प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये
ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥
उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा
य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄन्
ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥
पयो धेनूनां रसमोषधीनां
जवमर्वतां कवयो य इन्वथ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनाः
ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३ ॥
अपः समुद्राद् दिवमुद्वहन्ति
दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति
ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४ ॥
ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन
ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति
ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ५ ॥
यदीदिदं मरुतो मारुतेन
यदि देवा दैव्येनेदृगार।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेः
ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

(४५०१)

तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्
मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम्।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि
ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ७ ॥

॥ ५६ ॥ (अथर्व० ७।७७ [८२]।३)
अङ्गिराः। जगती।

संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का
उरुक्षयाः सगणा मानुषासः।
ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः
सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ॥ ३ ॥

मरुत्सहचारी देवगणः।

(१) मरुद्द्रविणवः।

॥ ५७ ॥ (ऋ० ५।३।३)
वसुश्रुत आत्रेयः। त्रिष्टुप्।

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त
रुद्र यत् ते जनिम चारु चित्रम्।
पदं यद् विष्णोरुपमं निधायि
तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥

(२) मरुतोऽग्निमरुतौ वा।

॥ ५८ ॥ (ऋ० ५।६०।१-८)
श्यावाश्व आत्रेयः। त्रिष्टुप्, ७-८ जगती।

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिः
इह प्रसत्तो वि चयत् कृतं नः।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः
प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥ १ ॥

आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु
सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया
पृथिवी चिद् रेजते पर्वतश्चित् ॥ २ ॥

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय
दिवश्चित् सानु रेजत स्वने वः।
यत् क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त
आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥ ३ ॥

वरा इवेद् रैवतासो हिरण्यैः
अभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु
सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां
सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा
यद् वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्य
अग्ने वित्ताद्धविषो यद् यजाम ॥ ६ ॥

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो
दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो
वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥ ७ ॥

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः
सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिः
वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥ ८ ॥

(३) सोमः मरुतः।

॥ ५९ ॥ (अथर्व० १।२०।१) अथर्वा। त्रिष्टुप्।

अदारसृद् भवतु देव सोम
अस्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिः
मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥ १ ॥

(४) मरुत्पर्जन्यौ ।

॥ ६० ॥ (अथर्व० ४।१५।४) विराट्पुरस्ताद्बृहती ।

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः
पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ४ ॥

(५) मरुत आपः ।

॥ ६१ ॥ (अथर्व० ४।१५।५-१०)

(५ विराड् जगती, ७ अनुष्टुप्, ६, ८ त्रिष्टुप्, ९ पथ्या पंक्तिः, १० भुरिक् ।)

उदीरयत मरुतः समुद्रतः
त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो
वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥ ५ ॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं
भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षम्
आशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥ ६ ॥

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ७ ॥

आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥८॥

आपो विद्युदभ्रं वर्षं
सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो
य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः
प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥ १० ॥

(४५१०)



अश्विनौ-देवता।

॥ १ ॥ (ऋ० १।३।१-३)

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। गायत्री।

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती।
पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।
आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१५।११)

मेधातिथिः काण्वः। (ऋतुसंहिता)। गायत्री।

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता।
ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

॥ ३ ॥ (१।२२।१-४)

प्रातर्युजा वि बोधया श्विनावेह गच्छताम्।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
या सुरथा रथीतमो भा देवा दिविस्पृशा।
अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥
या वां कशा मधुमत्य श्विना सूनृतावती।
तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥
नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः।
अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।३०।१७-१९)

शुनःशेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः।

आश्विनावश्वावत्ये षा यातं शवीरया।
गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः।
समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥
न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः।
परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।३४।१-१२)

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। जगती; ९, १२ त्रिष्टुप्।

त्रिश्चिन् नो अद्या भवतं नवेदसा
विभुर्वां याम उत रातिरश्विना।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससो
ऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे
सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे
त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ २ ॥

समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना
त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं
दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३ ॥
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने
त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं
त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४ ॥
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं
त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नः
त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद् रथम् ॥ ५ ॥
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा
त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे
त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ६ ॥
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे
परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत
आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥ ७ ॥
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिः
त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम्।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो
नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥ ८ ॥
क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य
क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य
येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥ ९ ॥
आ नासत्या गच्छतं हूयते हवि-
र्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथ-
मृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ॥
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह
देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं
सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ११ ॥
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेन
अर्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम्।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि
वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० १।४६।१-१५)

प्रस्कण्व काण्व। गायत्री।

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्।
धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि।
यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा।
पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा।
पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः।
तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे।
युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः।
धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥
दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे।
स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥
अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः।
व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥
अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया।
अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥

तत् तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति ।
मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा ।
मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥ १३ ॥
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् ।
ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् ।
अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० १।४७।१-१०)
प्रगाथः = (विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती ।

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं
धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा
रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे
तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २ ॥
अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे
दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥
त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा
मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो
युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती
पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥
सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे
पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्परि
अस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो
वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव
आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू
अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं
सोमं पपथुरश्विना ॥ १० ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० १।३१।१६-१८)
गोतमो राहूगणः । उष्णिक् ।

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥
याविस्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ १७ ॥
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १।११२।१-२५)
कुत्स आङ्गिरसः । १ (आद्यपादस्य) द्यावापृथिव्यौ,
१ (द्वितीयपादस्य) अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ;
२-२५ अश्विनौ । जगती; २४-२५ त्रिष्टुप् ।

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये
अग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथः
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो
रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने
विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥

याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना
द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणः
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥

याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्यः
उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ५ ॥

याभिरन्तकं जसमानमारणे
भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथः
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६ ॥

याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं
तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ७ ॥

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं
प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ८ ॥

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं
वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ९ ॥

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं
सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १० ॥

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे
दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ११ ॥

याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुः
अनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १२ ॥

याभिः सूर्यं परियाथः परावति
मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३ ॥

याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं
दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १४ ॥

याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं
कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १५ ॥

याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये
याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥

याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १७ ॥
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १८ ॥
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम्।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १९ ॥
याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम्।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २० ॥
याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम्।
मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २१ ॥
याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २२ ॥
याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम्।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २३ ॥
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४ ॥
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २५ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० १।११६।१-२५)
कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। त्रिष्टुप्।

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना।
तद् रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ ४ ॥
अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥
यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति।
तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६ ॥

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय
कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः
शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां
पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतं
उन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥

परावतं नासत्यानुदेथां
उच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये
सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं
प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्राद्
इत् पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ १० ॥

तद् वां नरा शंस्यं राध्यं च
अभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद् विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हं
उद् दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥

तद् वां नरा सनये दंस उग्रं
आविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वां
अश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥ १२ ॥

अजोहवीन्नासत्या करा वां
महे यामन् पुरुभुजा पुरंधिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या
हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३ ॥

आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके
युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह
कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णं
आजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै
धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानं
ऋज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष
आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६ ॥

आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य
कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः
समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७ ॥

यदयातं दिवोदासाय वर्तिः
भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां
वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥

रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः
सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैः
त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥ १९ ॥

परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं
सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन
वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥ २० ॥

एकस्या वस्तोरावतं रणाय
वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता
पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥

शुरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा
नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिः
जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय
ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय
विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥
दश रात्रीरशिवेना नव द्यून्
अवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तं
उन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचं
अस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायुः
अस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० १।११७।१-२५)

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय
प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीः
इषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥
यो वामश्विना मनसो जवीयान्
रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं
तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥
ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यं
ऋबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया
अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥
अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैः
ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिः
न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥ ४ ॥
सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे
सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातं
उदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥
तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण
कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय
शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥ ६ ॥
युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय
विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे
पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७ ॥
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं
महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां
यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥
पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना
नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतं
अहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥
एतानि वां श्रवस्या सुदानू
ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद् वां पज्रासो अश्विना हवन्ते
यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥ १० ॥
सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना
वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना
सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥

कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य
दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातम्
उदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं
पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य
सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥ १३ ॥
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः
पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्
विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां
प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन
मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥ १५ ॥
अजोहवीदश्विना वर्तिका वाम्
आस्नो यत् सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेः
जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥
शतं मेषान् वृक्ये मामहानं
तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं
ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥ १७ ॥
शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा
वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीन इव चक्षदान
ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥
मही वामूतिरश्विना मयोभूः
उत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत् पुरंधिः
आगच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ताम्
अपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां
न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० ॥
यवं वृकेणाश्विना वपन्त
इषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्त
उरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥
आथर्वणायाश्विना दधीचे
अश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्
त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥
सदा कवी सुमतिमा चके वां
विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तम्
अपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥ २३ ॥
हिरण्यहस्तमश्विना रराणा
पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तम्
उज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥ २४ ॥
एतानि वामश्विना वीर्याणि
प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २५ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० १।११८।१-११)

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा
सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्
त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन
त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो
वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥

प्रवद्यामना सुवृता रथेन
दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठा
आहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु
रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा
अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥

आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र
जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा
वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ ॥

उद् वन्दनमैरतं दंसनाभिः
उद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्
पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥

युवमत्रयेऽवनीताय तप्तं
ऊर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः
प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

युवं धेनुं शयवे नाधिताय
अपिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः
प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ८ ॥

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतं
अहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं
सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

ता वां नरा स्ववसे सुजाता
हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन
गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १० ॥

आ श्येनस्य जवसा नूतनेन
अस्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः
शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥ ११ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० १।११९।१-१०) जगती ।

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं
जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं
श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥

ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामनि
अधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय
आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥ २ ॥

सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत
शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो
यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥ ३ ॥

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं
स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं
दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥ ४ ॥

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं
रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी
योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥ ५ ॥

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो
हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि
प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया
रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया
प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥ ७ ॥
अगच्छतं कृपमाणं परावति
पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह
चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्
मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथो
अथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥ ९ ॥
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना
स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं
चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥ १० ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० १।१२०।१-१२)

(१२ दुःस्वप्ननाशनम्)। १ गायत्री, २ ककुप्, ३ का-विराट्, ४ नष्टरूपी, ५ तनुशिरा, ६ उष्णिक्, ७ विष्टार-बृहती, ८ कृति:, ९ विराट्, १०-१२ गायत्री ।

का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः ।
कथा विधात्यप्रचेताः ॥ १ ॥
विद्वांसाविद् दुरः पृच्छेद्
अविद्वानित्थापरो अचेताः ।
नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥
ता विद्वांसा हवामहे वां
ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद् दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥
वि पृच्छामि पाक्या न देवान्
वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥
प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे
यया वाचा यजति पज्रियो वाम् ।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥
श्रुतं गायत्रं तकवानस्य
अहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥
युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं
पातं नो वृकादघायोः ॥ ७ ॥
मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो
माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८ ॥
दुहीयन् मित्रधितये युवाकु
राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥
अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः ।
तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥
अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु ।
सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥
अध स्वप्नस्य निर्विदे ऽभुञ्जतश्च रेवतः ।
उभा ता बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० १।१३९।३-५)

परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः, ५ बृहती ।

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना
आश्रावयन्त इव श्लोकमायवो
युवां हव्याभ्या३युवः ।
युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये
रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥

अर्चेति दस्रा व्युनार्कमृण्वथो
युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिषु
अध्वसानो दिविष्टिषु।
अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये।
पथेव यन्तावनुशासता रजो
अञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम्।
मा वां रातिरुप दसत् कदा चन
अस्मद् रातिः कदा चन ॥ ५ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० १।१५७।१-६)
दीर्घतमा औचथ्यः। जगती, ५-६ त्रिष्टुप्।

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो
व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं
प्रासावीद् देवः सविता जगत् पृथक् ॥ १ ॥
यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं
घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं
वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो
जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः
शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं
मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम्।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं
सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो
युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः।
युवमग्निं च वृषणावपश्च
वनस्पतींरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिः
अथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा
यो वां हविष्मान् मनसा ददाश ॥ ६ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० १।१५८।१-६) त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप्।

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता
दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद् रेक्णं औचथ्यो वां
प्र यत् सस्राथे अकवाभिरूती ॥ १ ॥
को वां दाशत् सुमतये चिदस्यै
वसू यद् धेथे नमसा पदे गोः।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः
कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥
युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय पेरुः
वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः।
उप वामवः शरणं गमेयं
शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येत्
मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक्
प्र यद् वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥ ४ ॥
न मा गरन् नद्यो मातृतमा
दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्
स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५ ॥
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० १।१८०।१-१०)
अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। त्रिष्टुप्।

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा
रथो यद् वां पर्यर्णांसि दीयत्।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्
मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥

युवमत्यस्याव नक्षथो
यद् विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद् वां विश्वगूर्ती भराति
वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥
युवं पय उस्रियायामधत्तं
पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद् वनिनो वामृतप्सू
ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥
युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये
अपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद् वां नरावश्विना पश्वइष्टी
रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥
आ वां दानाय ववृतीय दस्रा
गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां
जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥
नि यद् युवेथे नियुतः सुदानू
उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् ।
प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिः
आ महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ३ ॥
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या
विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या
पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्
विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः
काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥ ८ ॥
प्र यद् वहेथे महिना रथस्य
प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं
नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥
तं वां रथं वयमद्या हुवेम
स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० १।१८१।१-९)

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणा-
मध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं
वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥ १ ॥
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा
वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा
एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २ ॥
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्
सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयान्
अहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥ ३ ॥
इहेह जाता समवावशीतां
अरेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः
दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु
पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैः
मथ्रा रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥
प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट्
पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैः
वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥
(१९०)

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिः
दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजुयेव यन्ता
मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य
प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैः
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

॥ २२ ॥ (ऋ० १।१८४।१-६)

ता वामद्य तावपरं हुवेम
उच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित् सन्तावर्यो
दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥
अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथां
उत् पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनां
एष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २ ॥
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा
नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता
युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥ ३ ॥
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु
स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद् वां श्रवस्या सुदानू
सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि
मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने च
अगस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य
प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैः
विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

॥ २३ ॥ (ऋ० २।३७।५)

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः।
(ऋतुदेवते)। जगती।

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं
रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतं
अथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥ ५ ॥

॥ २४ ॥ (ऋ० २।३९।१-८) त्रिष्टुप्।

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे
गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा
दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥ १ ॥
प्रातर्यावाणा रथ्येव वीरा
अजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेने इव तन्वा३ शुम्भमाने
दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥ २ ॥
शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक्
शफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रा
अर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥
नावेव नः पारयतं युगेव
नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां
खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४ ॥
वातेवाजुर्या नद्येव रीतिः
अक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शंभविष्ठा
पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता
स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा
कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥
हस्तेव शक्तिमभि संददी नः
क्षामेव नः समजतं रजांसि।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः
क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥ ७ ॥
एतानि वामश्विना वर्धनानि
ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन्।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ८ ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० १।४६।७-९) गायत्री

गोमदू षु नासत्या ऽश्वावद् यातमश्विना।
वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥
न यत् परो नान्तर आदधर्षद् वृषण्वसू।
दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८ ॥
ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम्।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ९ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० ३।५८।१-९)
गाथिनो विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्।

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहाना
अन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामा
उषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥ १ ॥
सुयुग् वहन्ति प्रति वामृतेन
ऊर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः।
जरेथामस्मद् वि पणेर्मनीषां
युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥ २ ॥
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन
दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठा
आहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥
आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैः
विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि
प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥ ४ ॥
तिरः पुरू चिदश्विना रजांसि
आङ्गूषो वां मघवाना जनेषु।
एह यातं पथिभिर्देवयानैः
दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ५ ॥
पुराणमोकः सख्यं शिवं वां
युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम्।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि
मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥ ६ ॥
अश्विना वायुना युवं सुदक्षा
नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा
सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥ ७ ॥
अश्विना परि वामिषः पुरूचीः
ईयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः
परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥ ८ ॥
अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः
सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्
सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥ ९ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० ४।१५।२-१०)
वामदेवो गौतमः। गायत्री।

एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः।
दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ९ ॥
तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम्।
दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १० ॥

॥ ३८ ॥ (ऋ० ४।४५।१-७) जगती, त्रिष्टुप्।

एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते
रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि।
पृक्षासो अस्मिन् मिथुना अधि त्रयो
दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥ १ ॥

उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते
रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं
स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥ २ ॥

मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः
उत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम्।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो
दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥ ३ ॥

हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो
हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो
मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥ ४ ॥

स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नयं

कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां
हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥ १ ॥

को मृळाति कतम आगमिष्ठो
देवानामु कतमः शंभविष्ठः।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं
यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥ २ ॥

मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यून्
इन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम्।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा
कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥ ३ ॥

का वां भूदुपमातिः कया न
आश्विना गमथो हूयमाना।
को वां महश्चित् त्यजसो अभीक
उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥ ४ ॥

उरु वां रथः परि नक्षति द्यां
आ यत् समुद्रादभि वर्तते वाम्।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्

युवं श्रियमश्विना देवता तां
दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते
वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥
को वामद्या करते रातहव्य
ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय
नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेन
इमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य
दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या
हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः
सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं
दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्
सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥
इहेह यद् वां समना पपृक्षे
सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह
श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

॥ ३१ ॥ (ऋ० ५।७३।१-१०)
पौर आत्रेयः । अनुष्टुप् ।

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद् वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥
इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥
ईर्मान्यद् वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥३॥
तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद् वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४ ॥
आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठद् रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥
युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद् वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥
उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः ।
यद् वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥
मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत् समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥
सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन् यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥
इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शंतमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥

॥ ३२ ॥ (ऋ० ५।७४।१-१०) अनुष्टुप्, ८ निचृत् ।

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥
कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२॥
कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥
पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ ॥
अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां संदृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥
को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥ ७ ॥
आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।
पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥ ८ ॥

शम् षु वां मधूयुवा ऽस्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९॥
अश्विना यद्ध कर्हि चि—च्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१०॥

॥ ३३ ॥ (ऋ० ५।७५।१-९)
अवस्युरात्रेयः । पङ्क्तिः ।

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥
आ नो रत्नानि बिभ्रता—वश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
बोधिन्मनसा रथ्ये—षिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनम्
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥
आ वां नरा मनोयुजो ऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६ ॥
अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ७ ॥
अस्मिन् यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ८ ॥
अभूदुषा रुशत् पशु—राग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ९ ॥

॥ ३४ ॥ (ऋ० ५।७६।१-५)
भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप् ।

आ भात्यग्निरुषसामनीक-
मुद् विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं
पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥
न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठा
अन्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा
प्रत्यवर्तिं दाशुषे शंभविष्ठा ॥ २ ॥
उता यातं संगवे प्रातरह्नो
मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शंतमेन
नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥
इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक
इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा
अद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥ ४ ॥
समश्विनोरवसा नूतनेन
मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीरान्
आ विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ ॥

॥ ३५ ॥ (ऋ० ५।७७।१-५)

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं
पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते
प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥ १ ॥

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत
न सायमस्ति देवया अजुष्टम्।
उतान्यो अस्मद् यजते वि चावः
पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥ २ ॥
हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः
पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम्।
मनोजवा अश्विना वातरंहा
येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥ ३ ॥
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष
चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिः
अनूर्ध्वभासः सदमित् तुतुर्यात् ॥ ४ ॥
समश्विनोरवसा नूतनेन
मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीरान्
आ विश्वान्यमृता सौभगानि

॥ ३६ ॥ (ऋ० ५।७८।१-९)

सप्तवध्रिरात्रेयः। (५-९ गर्भस्राविण्युपनिषद्)। अनुष्टुप्, १-३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १ ॥
अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम्।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २ ॥
अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३ ॥
अत्रिर्यद् वामवरोहन्नृबीसम्
अजोहवीन्नाधमानेव योषा।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेन
आगच्छतमश्विना शंतमेन ॥ ४ ॥
वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६ ॥
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७ ॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८ ॥
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥

॥ ३७ ॥ (ऋ० ६।६२।१-११)

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। त्रिष्टुप्।

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ता
अश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्
युयूषतः पर्युरु वरांसि ॥ १ ॥
ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा
रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः।
पुरू वरांस्यमिता मिमाना
अपो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥ २ ॥
ता ह त्यद् वर्तिर्यदरध्रमुग्रा
इत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै
परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥
ता नव्यसो जरमाणस्य मन्म
उप भूषतो युयुजानसप्ती।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता
होता यक्षत् प्रत्नो अध्रुग् युवाना ॥ ४ ॥
ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा
प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा
बभूवतुर्गृणते चित्ररती ॥ ५ ॥

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्
तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता
पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥

वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं
श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गा
इति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥ ७ ॥

यद् रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा
हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो
रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥ ८ ॥

य ईं राजानावृतुथा विदधद्
रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य
द्रोघाय चिद् वचस आनवाय ॥ ९ ॥

अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिः
द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य
वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥ १० ॥

आ परमाभिरुत मध्यमाभिः
नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
दृळ्हस्य चिद् गोमतो वि व्रजस्य
दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥ ११ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० ६।६३।१-११)
त्रिष्टुप्, १ विराट्, ११ एकपदा त्रिष्टुप्।

क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य
दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ् नासत्या ववर्त
प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥ १ ॥

अरं मे गन्तं हवनायास्मै
गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद् वर्तिर्याथो रिषो
न यत् परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥ २ ॥

अकारि वामन्धसो वरीमन्
अस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्द
आ वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्
प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणो
अयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥ ४ ॥

अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य
रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र
नरा नृतू जनिमन् यज्ञियानाम् ॥ ५ ॥

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः
शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्
नक्षद् वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥ ६ ॥

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा
अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जि
इषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥ ७ ॥

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं
धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च
रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥ ८ ॥

उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी
सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्
दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥ ९ ॥

सं वां शता नासत्या सहस्रा
मश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्
हता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥ १० ॥
आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥ ११ ॥

॥ ३९ ॥ (ऋ० ७।६७।१-१०)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै
हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीग
अच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ॥ १ ॥
अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे
उपो अदृश्रन् तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्तात्
श्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २ ॥
अभि वां नूनमश्विना सुहोता
स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्
स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥ ३ ॥
अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुः
हुवे यद् वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः
पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ॥ ४ ॥
प्राचीमु देवाश्विना धियं मे
अमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीः
ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥ ५ ॥
अविष्टं धीष्वश्विना न आसु
प्रजावद् रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः
सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥ ६ ॥
एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये
निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वाग्
अश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥
एकस्मिन् योगे भुरणा समाने
परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता
ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥
असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं
ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते
गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ॥ ९ ॥
नू मे हवमा शृणुतं युवाना
यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

॥ ४० ॥ (ऋ० ७।६८।१-९) विराट्; ८-९ त्रिष्टुप् ।

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा
गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥
प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुः
अरं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥
प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति
तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥
अयं ह यद् वां देवया उ अद्रिः
ऊर्ध्वो विवक्ति सोमसुद् युवभ्याम् ।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥
चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति
न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥

उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूत्
च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद् वर्प इतऊति धत्थः ॥ ६ ॥
उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो
मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥
वृकाय चिज्जसमानाय शक्त
उत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न
स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥ ८ ॥
एष स्य कारुर्जरते सूक्तै
रग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभि
र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

॥ ४१ ॥ (ऋ० ७।६९।१-८) त्रिष्टुप् ।

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो
हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान
इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥ १ ॥
स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा
त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः
कुत्रा चिद् याममश्विना दधाना ॥ २ ॥
स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्
दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा३ यादमानो
ऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥ ३ ॥
युवोः श्रियं परि योषावृणीत
सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद् देवयन्तमवथः शचीभिः
परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥ ४ ॥

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा
रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ
न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ ५ ॥
नरा गौरेव विद्युतं तृषाणा
ऽस्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ॥ ६ ॥
युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र
उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिः
र्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ ७ ॥
नू मे हवमा शृणुतं युवाना
यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

॥ ४२ ॥ (ऋ० ७।७०।१-७)

आ विश्ववाराश्विना गतं नः
प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थाद्
आ यत् सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥ १ ॥
सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठा
ऽतापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्ति
एतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥ २ ॥
यानि स्थानान्यश्विना दधाथे
दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्ता
इषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ ३ ॥

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु
यद् योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे
अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४ ॥
शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूणि
अभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनाय
अस्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥
यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्
कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठं
इमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥ ६ ॥
इयं मनीषा इयमश्विना गीः
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥
॥ ४३ ॥ (ऋ० ७।७१।१-६)

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते
रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम
दिवा नक्तं शरुमस्मद् युयोतम् ॥ १ ॥
उपायातं दाशुषे मर्त्याय
रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां
दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ २ ॥
आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ
सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैः
आश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥
यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा
त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यात
अभि यद् वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥ ४ ॥
युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं
नि पेदवं ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं
नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥ ५ ॥
इयं मनीषा इयमश्विना गीः
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
॥ ४४ ॥ (ऋ० ७।७२।१-५)

आ गोमता नासत्या रथेन
अश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते
स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥ १ ॥
आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्
सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि
समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥ २ ॥
उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रन्
जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
आविवासन् रोदसी धिष्ण्येमे
अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥ ३ ॥
वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः
प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्
बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥ ४ ॥
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्ताद्
आश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥
(३७१)

॥ ४५ ॥ (ऋ० ७।७३।१-५)

अतारिष्म तमसस्पारमस्य
प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा
अमर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ १ ॥
न्यु प्रियो मनुषः सादि होता
नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाके
आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥ २ ॥
अहेम यज्ञं पथामुराणा
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि
प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥ ३ ॥
उप त्या वह्नी गमतो विशं नो
रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि
मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥ ४ ॥
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्ताद्
आश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ ४६ ॥ (ऋ० ७।७४।१-६)

प्रगाथ. = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू
विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग् रथं समनसा नि यच्छतं
पिबतं सोम्यं मधु ॥ २ ॥
आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू
मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ३ ॥
अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं
युवां दीयन्ति बिभ्रतः ।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना
आ देवा यातमस्मयू ॥ ४ ॥
अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः ।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशः
छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥ ५ ॥
प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर
उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥ ६ ॥

॥ ४७ ॥ (ऋ० ८।५।१-३७)

ब्रह्मातिथिः काण्वः । (३७ पूर्वार्धः) । गायत्री; ३७ बृहती ।

दूरादिहेव यत् स—त्यरुणप्सुरशिश्वितत् ।
वि भानुं विश्वधातनत् ॥ १ ॥
नृवद् दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।
सचेथे अश्विनोषसम् ॥ २ ॥
युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत ।
वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥
पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू ।
स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥
मंहिष्ठा वाजसातमे—षयन्ता शुभस्पती ।
गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥
ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् ।
घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥
आ नः स्तोममुप द्रवत् तूयं श्येनेभिराशुभिः ।
यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥
येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना ।
त्रीँरक्तून् परिदीयथः ॥ ८ ॥
उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा ।
वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥

आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम्।
वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥ १० ॥
वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी।
पिबतं सोम्यं मधु ॥ ११ ॥
अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः।
छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥ १२ ॥
नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम्।
मो ष्व१न्याँ उपारतम् ॥ १३ ॥
अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः।
मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥ १४ ॥
अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम्।
पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥ १५ ॥
पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः।
वाघद्भिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥
जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरंकृतः।
युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥
अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १८ ॥
यो ह वां मधुनो दृति—राहितो रथचर्षणे।
ततः पिबतमश्विना ॥ १९ ॥
तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे।
वहतं पीवरीरिषः ॥ २० ॥
उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा।
अप द्वारेव वर्षथः ॥ २१ ॥
कदा वां तौग्र्यो विधत् समुद्रे जहितो नरा।
यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ २२ ॥
युवं कण्वाय नासत्या ऽपिरिप्ताय हर्म्ये।
शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥ २३ ॥
ताभिरा यातमूतिभि—र्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः।
यद् वां वृषण्वसू हुवे ॥ २४ ॥
यथा चित् कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम्।
अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥ २५ ॥
यथोत कृत्व्ये धने—ऽशुं गोष्वगस्त्यम्।
यथा वाजेषु सोभरिम् ॥ २६ ॥
एतावद् वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना।
गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥ २७ ॥
रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ २८ ॥
हिरण्ययी वां रभि—रीषा अक्षो हिरण्ययः।
उभा चक्रा हिरण्यया ॥ २९ ॥
तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम्।
उपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ३० ॥
आ वहेथे पराकात् पूर्वीरश्नन्तावश्विना।
इषो दासीरमर्त्या ॥ ३१ ॥
आ नो द्युम्नैरा श्रवोभि—रा राया यातमश्विना।
पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥ ३२ ॥
एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः।
अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥ ३३ ॥
रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह।
न चक्रमभि बाधते ॥ ३४ ॥
हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः।
धीजवना नासत्या ॥ ३५ ॥
युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू।
ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥ ३६ ॥
ता मे अश्विना सनीनां
विद्यातं नवानाम्। (पूर्वार्धः) ॥ ३७ ॥

॥४८॥ (ऋ० ८।८।१-२३)

सध्वंसः काण्वः। अनुष्टुप्।

आ नो विश्वाभिरूतिभि—
रश्विना गच्छतं युवम्।
दस्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥
आ यातं नहुषस्पर्या ऽऽन्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥३॥
आ नो यातं दिवस्पर्या ऽन्तरिक्षादधप्रिया ।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥ ४ ॥
आ नो यातमुपश्रु—त्यश्विना सोमपीतये ।
स्वा हि स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥५॥
यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गत—मुपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ६ ॥
दिवश्चिद् रोचनाद—ध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥
किमन्ये पर्यासते ऽस्मत् स्तोमेभिरश्विना ।
पुत्रः कण्वस्य वामृषि—र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥८
आ वां विप्र इहावसे ऽह्वत् स्तोमेभिरश्विना ।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥ ९ ॥
आ यद् वां योषणा रथ—मतिष्ठद् वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥१०॥
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वत्सो वां मधुमद् वचो ऽशंसीत् काव्यः कविः ११
पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम् ।
स्तोमं मे अश्विनाविम—मभि वह्नी अनूषाताम् १२
आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥१३॥
यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥१४॥
यो वां नासत्यावृषि—र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिज—मिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥१५॥
प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुत—मश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वां सुम्नाय तुष्टवद् वसूयाद् दानुनस्पती१६
आ नो गन्तं रिशादसे—मं स्तोमं पुरुभुजा ।
कृतं नः सुश्रियो नरे—मा दातमभिष्टये ॥ १७ ॥
आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तावध्वराणा—मश्विना यामहूतिषु ॥ १८ ॥
आ नो गन्तं मयोभुवा ऽश्विना शंभुवा युवम् ।
यो वां विपन्यू धीतिभि—र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् १९
याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥ २० ॥
याभिर्नरा त्रसदस्यु—मावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये २१
प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥२२॥
त्रीणि पदान्यश्विनो—राविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभि—रर्वाग् जीवेभ्यस्परि ॥२३॥

॥ ४९ ॥ (ऋ० ८।९।१-२१)

शशकर्णः काण्वः । अनुष्टुप्; १,४,६ १४–१५, बृहती;
२–३, २०–२१ गायत्री, ५ ककुप्; १० त्रिष्टुप्।
११ विराट्, १२ जगती ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दि-
र्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥
यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु ।
नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः ।
एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू
येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥
यदप्सु यद् वनस्पतौ
यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वां देव भिषज्यथः।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते
हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥
आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ ७ ॥
आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥८॥
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि।
यद् वा वाणीभिरश्विना
इवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ९ ॥
यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व
ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेषु
एवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ १० ॥
यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा
भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ ११ ॥
यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना
यद् वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा
यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥ १२ ॥
यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥१३॥
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदौ
इमे कण्वेषु वामथ ॥ १४ ॥
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम्।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा
छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ १५ ॥
अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥१७॥
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥१८
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः।
यद् वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥१९
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ २० ॥
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः।
यद् वां सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ २१ ॥

॥ ५० ॥ (ऋ० ८।१०।१-६)

प्रगाथो (घौरः) काण्वः। १ बृहती, २ मध्येज्योतिः, ३ अनुष्टुप्, (विराडमतेन-ककुम्मती) ४ आस्तारपङ्क्तिः, ५-६ प्रगाथः = (५ बृहती + ६ सतोबृहती)

यत् स्थो दीर्घप्रसद्मनि
यद् वादो रोचने दिवः।
यद् वा समुद्रे अध्याकृते गृहे
अत आ यातमश्विना ॥ १ ॥
यद् वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुः
एवेत् काण्वस्य बोधतम्।
बृहस्पतिं विश्वान् देवाँ अहं हुवे
इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा ॥ २ ॥
त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता।
ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥ ३ ॥
ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा
स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥ ४ ॥
यदद्याश्विनावपाग् यत् प्राक् स्थो वाजिनीवसू।
यद् द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ
हुवे वामथ मा गतम् ॥ ५ ॥

यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा
यद् वेमे रोदसी अनु ।
यद् वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथं
अत आ यातमश्विना ॥ ६ ॥

॥ ५१ ॥ (ऋ० ८।१८।८)
इरिम्बिठि काण्व । उष्णिक् ।

उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना ।
युयुयातामितो रपो अप स्त्रिधः ॥ ८ ॥

॥ ५२ ॥ (ऋ० ८।२२।१-१८)
सोभरिः काण्व । १-६ प्रगाथ = (विषमा बृहती+समा सतोबृहती), ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ११ ककुप्, १२ मध्येज्योति, प्रगाथ = (९, १३, १५, १७, ककुप्; १०, १४, १६, १८ सतोबृहती)

ओ त्यमह्व आ रथ—मद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी
आ सूर्यायै तस्थथुः ॥ १ ॥
पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे
विद्वेषसमनेहसम् ॥ २ ॥
इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे
गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ३ ॥
युवो रथस्य परि चक्रमीयत
ईर्मान्यद् वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती
आ धेनुरिव धावतु ॥ ४ ॥
रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतः
तेन नासत्या गतम् ॥ ५ ॥
दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती
अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥ ६ ॥

उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं
महे क्षत्राय जिन्वथः ॥ ७ ॥
अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥
आ हि रुहतमश्विना
रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥
याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं
याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं
भिषज्यतं यदातुरम् ॥ १० ॥
यदध्रिगावो अध्रिगू
इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे ।
वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥ ११ ॥
ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं
विश्वप्सुं विश्ववार्यम् ।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा
याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् ॥ १२ ॥
ताविदा चिदहानां
तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे ।
ता ऊ नमोभिरीमहे ॥ १३ ॥
ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती
ता यामन् रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू
परो रुद्रावति ख्यतम् ॥ १४ ॥
आ सुग्म्याय सुग्म्यं
प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।
हुवे पितेव सोभरी ॥ १५ ॥

मनोजवसा वृषणा मदच्युता
मक्षुंगमाभिरूतिभिः ।
आरात्ताच्चिद् भूतमस्मे अवसे
पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥ १६ ॥
आ नो अश्वावदश्विना
वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा ।
गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्य—मनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू
विश्वा वामानि धीमहि ॥ १८ ॥

॥ ५३ ॥ (ऋ० ८।२६।१-१९)

विश्वमना वैयश्वः, व्यश्वो वाङ्गिरसः । उष्णिक्, १६-१९ गायत्री ।

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु ।
अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥ १ ॥
युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या ।
अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥ २ ॥
ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू ।
पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥ ३ ॥
आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा ।
उप स्तोमान् तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥ ४ ॥
जुहुराणा चिदश्विना ऽऽमन्येथां वृषण्वसू ।
युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥ ५ ॥
दस्रा हि विश्वमानुषङ् मक्षूभिः परिदीयथः ।
धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥ ६ ॥
उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह ।
मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥
आ मे अस्य प्रतीव्य—मिन्द्रनासत्या गतम् ।
देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥
वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् ।
सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥
अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित् ते श्रवतो हवम् ।
नेदीयसः कूळयातः पणींरुत ॥ १० ॥
वैयश्वस्य श्रुतं नरो—तो मे अस्य वेदथः ।
सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ११ ॥
युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः ।
अहरहर्वृषण मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥
यो वां यज्ञेभिरावृतो ऽधिवस्त्रा वधूरिव ।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥ १३ ॥
यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।
वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥ १४ ॥
अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् ।
विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥ १५ ॥
वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १६ ॥
यददो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे ।
श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥ १७ ॥
उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् ।
सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥
स्मदेतया सुकीर्त्या ऽश्विना श्वेतया धिया ।
वहेथे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥

॥ ५४ ॥ (ऋ० ८।३५।१-२४)

श्यावाश्व आत्रेयः । उपरिष्टाज्ज्योति (त्रिष्टुप्), २२, २४ पङ्क्तिः, २३ महाबृहती ।

अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुना
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
सोमं पिबतमश्विना ॥ १ ॥
विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना
दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
सोमं पिबतमश्विना ॥ २ ॥

विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिह
अद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
सोमं पिबतमश्विना ॥ ३ ॥
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे
विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
इषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥
स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां
विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
इषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥
गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां
विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
इषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ६ ॥
हारिद्रवेव पतथो वनेदुप
सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ७ ॥
हंसाविव पतथो अध्वगाविव
सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥
श्येनाविव पतथो हव्यदातये
सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥
पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं
प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
ऊर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥
जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं
प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
ऊर्जं नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥
हतं च शत्रून् यततं च मित्रिणः
प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
ऊर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १२ ॥
मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता
मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
आदित्यैर्यातमश्विना ॥ १३ ॥
अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता
मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
आदित्यैर्यातमश्विना ॥ १४ ॥
ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता
मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
आदित्यैर्यातमश्विना ॥ १५ ॥
ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो
हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १६ ॥
क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन्
हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १७ ॥
धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो
हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १८ ॥
(५१५)

अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं
श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
अश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ १९ ॥

सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप
श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
अश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ २० ॥

रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप
श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च
अश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ २१ ॥

अर्वाग् रथं नि यच्छतं
पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गत-मवस्युर्वामहं हुवे
धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ २२ ॥

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा
विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गत-मवस्युर्वामहं हुवे
धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ २३ ॥

स्वाहाकृतस्य तृम्पतं
सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गत-मवस्युर्वामहं हुवे
धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ २४ ॥

॥ ५५ ॥ (ऋ० ८।४२।४-६)

नाभाकः काण्वः, अर्चनाना आत्रेयो वा । अनुष्टुप् ।

आ वां ग्रावाणो अश्विना
धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥

॥ ५६ ॥ (ऋ० ८।५७। [९ वाल०] १-४)

मेध्यः काण्वः । त्रिष्टुप् ।

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण
युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभिः
इदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥ १ ॥

युवां देवास्त्रय एकादशासः
सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा
पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥ २ ॥

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां
वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ
सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ३ ॥

अयं वां भागो निहितो यजत्रा
इमा गिरो नासत्योप यातम् ।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे
प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥ ४ ॥

॥ ५७ ॥ (ऋ० ८।७३।१-१८)

गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । गायत्री ।

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १ ॥

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ २ ॥

उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ३ ॥

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ४ ॥

यद्‌ध कर्हि कर्हि चि— च्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५ ॥
अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ६ ॥
अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ७ ॥
वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ८ ॥
प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ९ ॥
इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १० ॥
किमिदं वां पुराणव— ज्जरतोरिव शस्यते ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ११ ॥
समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १२ ॥
यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १३ ॥
आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १४ ॥
मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १५ ॥
अरुणप्सुरुषा अभू— दकर्ज्योतिर्ऋतावरी ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १६ ॥
अश्विना सु विचाकशद् वृक्षं परशुमाँ इव ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १७ ॥
पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १८ ॥

॥ ५८ ॥ (ऋ० ८।८५।१-९)

कृष्ण आङ्गिरसः । गायत्री ।

आ मे हवं नासत्या ऽश्विना गच्छतं युवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
इमं मे स्तोममश्विने— मं मे शृणुतं हवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥
छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
गच्छतं दाशुषो गृह— मित्था स्तुवतो अश्विना ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥
युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥
नू मे गिरो नासत्या ऽश्विना प्रावतं युवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥

॥ ५९ ॥ (ऋ० ८।८६।१-५)

कृष्ण आङ्गिरसः, विश्वको वा कार्ष्णि । जगती ।

उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवा
उभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे
मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ १ ॥
कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्
युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे
मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ २ ॥
युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं
विष्णाप्वे ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे
मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ३ ॥

उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं
दूरे चित् सन्तमवसे हवामहे ।
यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा
मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ४ ॥
ऋतेन देवः सविता शमायत
ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे ।
ऋतं सासाह महि चित् पृतन्यतो
मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ५ ॥

॥ ६० ॥ (ऋ० ८।८७।१-६)
कृष्ण आङ्गिरसो वासिष्ठो वा द्युम्नीकः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा । प्रगाथः = (विषमा बृहती+समा सतोबृहती)

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना
क्रिविर्न सेक आ गतम् ।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा
पातं गौराविवेरिणे ॥ १ ॥
पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना
आ बर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ
नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥
आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो
जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥ ३ ॥
पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना
आ बर्हिः सीदतं सुमत् ।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो
गन्तं गौराविवेरिणम् ॥ ४ ॥
आ नूनं यातमश्विना ऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती
पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥
वयं हि वां हवामहे विपन्यवो
विप्रासो वाजसातये ।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धिया
अश्विना श्रुष्ट्या गतम् ॥ ६ ॥

॥ ६१ ॥ (ऋ० ८।१०१।७-८)
जमदग्निर्भार्गवः । प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।
उभा यातं नासत्या सजोषसा
प्रति हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥
रातिं यद् वामरक्षसं हवामहे
युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा
गृणाना जमदग्निना ॥ ८ ॥

॥ ६२ ॥ (ऋ० १०।२४।४-६)
ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । अनुष्टुप् ।

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥ ४ ॥
विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्यावब्रुवन् देवाः पुनरा वहतादिति ॥ ५ ॥
मधुमन्मे परायणं मधुमत् पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥ ६ ॥

॥ ६३ ॥ (ऋ० १०।३९।१-१४)
काक्षीवती घोषा । जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो
दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं
पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥ १ ॥
चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय
उत् पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना
सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥ २ ॥

अमाजुरश्चिद् भवथो युवं भगो
अनाशोश्चिदवितारापमस्य चित्।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्
युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ॥ ३ ॥
युवं च्यवानं सनयं यथा रथं
पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि
विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥ ४ ॥
पुराणा वां वीर्या३ प्र ब्रवा जने
अथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा।
ता वां नु नव्याववसे करामहे
अयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥ ५ ॥
इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना
पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम्।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः
पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥ ६ ॥
युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं
न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम्।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं
युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये ॥ ७ ॥
युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः
पुनः कलेरकृणुतं युवद् वयः।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुः
युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ॥ ८ ॥
युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितं
उदैरयतं ममृवांसमश्विना।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय
ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥ ९ ॥
युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं
नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम्।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं
भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥ १० ॥
न तं राजानावदिते कुतश्चन
नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम्।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी
पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥ ११ ॥
आ तेन यातं मनसो जवीयसा
रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव
उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ॥ १२ ॥
ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतं
अपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना।
वृकस्य चिद् वर्तिकामन्तरास्याद्
युवं शचीभिर्ग्रसितामसुञ्चतम् ॥ १३ ॥
एतं वां स्तोममश्विनावकर्म
अतक्षाम भृगवो न रथम्।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये
नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥ १४ ॥

॥ ६४ ॥ (ऋ० १०।४०।१-१४)

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा
प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे
वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥ १ ॥
कुह स्विद् दोषा कुह वस्तोरश्विना
कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं
मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥ २ ॥
प्रातर्जरेथे जरणेव कापया
वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम्।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा
राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥ ३ ॥

युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो
दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरा
इषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥ ४ ॥

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती
राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवे
अश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥ ५ ॥

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं
विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मधु
आसा भरत निष्कृतं न योषणा ॥ ६ ॥

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं
युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते
युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥ ७ ॥

युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं
युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विना
अप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥ ८ ॥

जनिष्ट योषा पतयत् कनीनको
वि चारुहन् वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवो
अस्मा अह्ने भवति तत् पतित्वनम् ॥ ९ ॥

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे
दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे
मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥ १० ॥

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत
युवा ह यद् युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो
गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥ ११ ॥

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू
न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती
प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥ १२ ॥

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ
धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती
स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥ १३ ॥

क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना
विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुः
विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥ १४ ॥

॥ ६१ ॥ (ऋ० १०।४१।१-३)
सुहस्त्यो घौषेयः । जगती ।

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं
रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिः
वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥ १ ॥

प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः
प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा
कीरेश्चिद् यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥ २ ॥

अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यं
अग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत् सवनानि गच्छथो
अत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥ ३ ॥

॥ ६२ ॥ (ऋ० १०।१०६।१-११)
भूतांशः काश्यपः । त्रिष्टुप् ।

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे
वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः
सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे ॥ १ ॥

उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे
प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु
माप स्थातं महिषेवावपानात् ॥ २ ॥

साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा
पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा
परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥ ३ ॥

आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रः
अग्रेव रुचा नृपतीव तुर्ये ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै
श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥ ४ ॥

वंसगेव पूषर्या शिम्बाता
मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता ।
वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा
मेषेवेषा सपर्या३ पुरीषा ॥ ५ ॥

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू
नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू
ता मे जराय्वजरं मरायु ॥ ६ ॥

पज्रेव चर्चरं जारं मरायु
क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।
ऋभू नापत् खरमज्रा खरज्रुः
वायुर्न पर्फरत् क्षयद् रयीणाम् ॥ ७ ॥

घर्मेव मधु जठरे सनेरू
भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।
पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णिक्
मनऋङ्गा मनन्या३ न जग्मी ॥ ८ ॥

बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां
पादेव गाधं तरते विदाथः ।
कर्णेव शासुरनु हि स्मराथः
अंशेव नो भजतं चित्रमप्नः ॥ ९ ॥

आरङ्गरेव मध्वेरयेथे
सारघेव गवि नीचीनवारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना
क्षामेवोर्जा सूयवसात् सचेथे ॥ १० ॥

ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजं
आ नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।
यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तः
आ भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ॥ ११ ॥

॥ ६७ ॥ (ऋ० १०।१३१।४-५)

सुकीर्तिः काक्षीवतः । ४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभा
इन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः
सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ५ ॥

॥ ६८ ॥ (ऋ० १०।१४३।१-६)

अत्रिः सांख्यः । अनुष्टुप् ।

त्यं चिदत्रिमृतजुर मर्थमश्वं न यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥१॥

त्यं चिदश्वं न वाजिन मरेणवो यमत्नत ।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यत मत्रिं यविष्ठमा रजः ॥२

नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ३

चिते तद् वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ॥ ४ ॥

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पारः ईङ्खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभि र्नासत्या सातये कृतम् ॥५॥

आ वां सुम्नैः शंयू इव मंहिष्ठा विश्ववेदसा।
समस्मे भूषतं नरोत्सं न पिप्युषीरिषः ॥ ६ ॥

॥ ६९ ॥ (ऋ० १०।१८४।३)
त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः। अनुष्टुप्।

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥ ३ ॥

॥ ७० ॥ (वा० य० १४।१-५)

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि
ध्रुवं योनिमासीद साधुया।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाण
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ १ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरंन्धिः
स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्तु
इमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद
देवानां सुम्ने बृहते रणाय।
पितेवैधि सूनवऽआ सुशेवा
स्वावेशा तन्वा संविशस्व
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम
तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद
प्रजावदस्मे द्रविणायजस्व
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य
धर्त्री विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम्।
ऊर्मिर्द्रप्सोऽअपामसि विश्वकर्मा
तऽऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥

॥ ७१ ॥ (वा० य० ३८।१०,१३)

विश्वाऽआशा दक्षिणसद् विश्वान् देवानयाडिह।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥१०॥
अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवीऽअमंसाताम्।
इहैव रातयः सन्तु ॥ १३ ॥

॥ ७२ ॥ (साम० ३०५)
अश्विनौ वैवस्वतौ। बृहती।

कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः।
घ्नता वामश्मया क्षयमाणोऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ३

॥ ७३ ॥ (अथर्व ७।१२।६) अथर्वा। त्रिष्टुप्।

शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयामि
अनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतं
अश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥ ६ ॥

॥ ७४ ॥ (अथर्व० ६।५०।१-३)
अथर्वा (अभयकामः)। १ विराड् जगती,
२-३ पथ्यापङ्क्तिः।

हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना
छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम्।
यवान्नेददानपि नह्यतं मुखं
अथाभयं कृणुतं धान्याय ॥ १ ॥
तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस।
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त
इमान्यवानहिंसन्तो अपोदित ॥ २ ॥
तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे।
य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ
व्यद्वरास्तान्त्सर्वान् जम्भयामसि ॥ ३ ॥

॥ ७५ ॥ (अथर्व० ७।३०।२) प्रजापतिः। अनुष्टुप्।

सं चेन्नयाथो अश्विना
कामिना सं च वक्षथः।
सं वां भगासो अग्मत
सं चित्तानि समु व्रता ॥ २ ॥

॥ ७६ ॥ (अथर्व० ६।१०२।१-३)

जमदग्निः । अनुष्टुप्

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।
एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् १
आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव ।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२॥
आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥ ३ ॥

॥ ७७ ॥ (अथर्व० ६।१४१।१-३) विश्वामित्रः । अनुष्टुप् ।

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ।
इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु १
लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥ २ ॥
यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥ ३ ॥

अश्विसहचारी-देवगणः ।

(१) अश्विसरस्वतीन्द्राः ।

॥ ७८ ॥ (वा० य० १९।३३-३५)

यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु
सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन
सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥
यमश्विना नमुचेरासुरादधि
सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं तᳬ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुᳬ
सोमᳬ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३४ ॥
यदत्र रिप्तᳬ रसिनः सुतस्य
यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन
सोमᳬ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३५ ॥

॥ ७९ ॥ (वा० य० २०।६७-६९)

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥
यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् ।
स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥ ६८ ॥
तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।
दधानाऽअभ्यनूषत हविषा यज्ञऽइन्द्रियैः ॥ ६९ ॥

॥ ८० ॥ (वा० य० २१।४८-५८)

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रेऽअश्विना ।
तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४८ ॥
देवीर्द्वारोऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती ।
प्राणं न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४९ ॥
देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती ।
बलं न वाचमास्य ऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५० ॥
देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् ।
श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५१ ॥
देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे
सरस्वत्यश्विना भिषजावतः ।
शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५२ ॥
देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना ।
वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न
हृदये मतिᳬ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५३ ॥
देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती ।
शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५४ ॥

दे॒वेऽइन्द्रो॒ नरा॒शꣳसस्त्रि॒वरू॒थः
सर॑स्वत्या॒श्विभ्या॑मीयते॒ रथः॑ ।
रेतो॒ न रू॒पम॒मृतं॑ ज॒नित्र॒मिन्द्रा॑य
त्वष्टा॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑
वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५५ ॥

दे॒वो दे॒वैर्वन॒स्पति॒र्हिर॑ण्यपर्णो ऽ अ॒श्विभ्या॒ꣳ
सर॑स्वत्या सुपिप्प॒लऽइन्द्रा॑य पच्यते॒ मधु॑ ।
ओजो॒ न जू॒तिर्ऋ॑ष॒भो न भामं॒
वन॒स्पति॑र्नो॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑
वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५६ ॥

दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनामध्व॒रे स्ती॒र्णम॒श्विभ्या॒मूर्ण॑म्रदाः
सर॑स्वत्या स्यो॒नमि॑न्द्र ते॒ सदः॑ ।
ई॒शायै॑ म॒न्युꣳ राजा॑नं ब॒र्हिषा॑ दधुरिन्द्रि॒यं
वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५७ ॥

दे॒वोऽअ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद् दे॒वान् य॑क्षद् यथाय॒थꣳ
होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑ वा॒चा वाच॒ꣳ सर॑स्वती॒
अ॒ग्निꣳ सोम॑ꣳ स्विष्ट॒कृत् स्वि॑ष्ट॒ऽइन्द्रः॑
सु॒त्रामा॑ सवि॒ता वरु॑णो
भि॒षगि॒ष्टो दे॒वो वन॒स्पतिः॑ स्वि॒ष्टा दे॒वाऽआ॑ज्य॒पाः
स्वि॑ष्टोऽअ॒ग्निर॒ग्निना॒ होता॑ हो॒त्रे स्वि॑ष्ट॒कृद्
यशो॒ न दध॑दिन्द्रि॒यमूर्ज॒मप॑चिति॒ꣳ स्व॒धां
वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५८ ॥

(२) अश्विसूर्यादयः ।

॥ ८१ ॥ (वा० य० ३८।११)

अ॒श्विना॑ घ॒र्मं पा॑त॒ꣳ हार्द्वा॑न॒मह॑र्दि॒वाभि॑रू॒तिभिः॑ ।
त॒न्त्रा॒यिणे॒ नमो॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म् ॥ १२ ॥

(३) अश्विनौ, बृहस्पतिः ।

॥ ८२ ॥ (अथर्व० ५।२६।१२)

ब्रह्मा । परातिजगती चतुष्पदा गायत्री ।

अ॒श्विना॑ ब्रह्म॑णा या॒तम॒र्वाञ्चौ॑
वषट्का॒रेण॑ य॒ज्ञं व॒र्धय॑न्तौ ।
बृह॑स्पते॒ ब्रह्म॑णा या॒ह्य॒र्वाङ्
य॒ज्ञो अ॒यं स्व॒रि॒दं यज॑मानाय॒ स्वाहा॑ ॥ १२ ॥

(४) श्येनः, अश्विनौ ।

॥ ८३ ॥ (अथर्व० ३।३।४) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

श्येनो हव्यं नयत्वा परस्माद्
अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त
इमं संजाता अभिसंविशध्वम् ॥ ४ ॥

(५) अश्विनौ, द्यौष्पिता ।

॥ ८४ ॥ (अथर्व० ६।४।३) त्रिपदा विराड् गायत्री ।

धिये समश्विना प्रावतं न
उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन् ।
द्यौष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥ ५ ॥

(६) बृहस्पतिः, अश्विनौ ।

॥ ८५ ॥ (अथर्व० ६।६९।१-३) अनुष्टुप् ।

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद्यशः ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥ १ ॥
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥ २ ॥
मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः ।
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ ३ ॥

(७) सांमनस्यं, अश्विनौ ।

॥ ८६ ॥ (अथर्व० ७।५१।१-२)
ककुम्मत्यनुष्टुप्, २ जगती ।

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥ १ ॥
सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा
मा युष्महि मनसा दैव्येन ।
मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते
मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥ २ ॥

(६७७)

(८) घर्मः, अश्विनौ।

॥ ८७ ॥ (अथर्व० ७।७३।१-५,८)

जगती, २ पथ्याबृहती, ३,५,८ त्रिष्टुप्।

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवः
तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना
हवामहे सधमादेषु कारवः ॥ १ ॥
समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो
वां घर्म आ गतम्।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो
दस्रा मदन्ति वेधसः ॥ २ ॥
स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो
यो अश्विनोश्चमसो देवपानः।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा
गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥ ३ ॥
यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं
स वामश्विना भाग आ गतम्।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती
तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥ ४ ॥
तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता
प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान्।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया
वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ५ ॥
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां
वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं
सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ८ ॥

(९) मधु, अश्विनौ।

॥ ८८ ॥ (अथर्व० ९।१।११,१६-१७,१९)

अनुष्टुप्, १७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती।

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥११॥
यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१६॥
यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्चः
तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥ १७ ॥
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती।
यथा वर्चस्वतीं वाच-मावदानि जनाँ अनु ॥१९॥

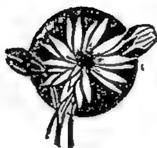
(१०) सिनीवालीसरस्वत्यश्विनः।

॥ ८९ ॥ (ऋ० १०।१८४।२)

त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः। अनुष्टुप्।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवा-वा धत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥

(६८८)



ॐ

आयुर्वेद-प्रकरणम्

दीर्घायुष्यम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० २।२८।२-५)

शम्भुः । १, ३ जरिमा, आयुः; २ मित्रावरुणौ; ३-५ द्यावापृथिव्यादयो देवाः । त्रिष्टुप्, १ जगती, ५ भुरिक् ।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं
मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे
मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः ॥ १ ॥

मित्र एनं वरुणो वा रिशादा
जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान्
विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥ २ ॥

त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां
ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो
मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥ ३ ॥

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता
जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे
प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥ ४ ॥

इममग्न आयुषे वर्चसे नय
प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ
विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० ८।१।१-२१)

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप्; १ पुरोबृहती त्रिष्टुप्; २-३, १७-२१ अनुष्टुप्; ४,९,१५-१६ प्रस्तारपङ्क्तिः; ७ त्रिपदा विराड्गायत्री; ८ विराट्पथ्याबृहती; १२ त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती; १३ त्रिपाद्भुरिङ्महाबृहती; १४ एकावसाना द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती

अन्तकाय मृत्यवे नमः
प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना
सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥ १ ॥

उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ २ ॥

इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो
दैव्या वाचा भरामसि ॥ ३ ॥

उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था
मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥ ४ ॥

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा
तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति
त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥ ५ ॥

उद्यानं ते पुरुष नावयानं
जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथं
अथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ ६ ॥
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भूत्
मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥ ७ ॥
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योति
रेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥ ८ ॥
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ
यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो
मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥ ९ ॥
मैतं पन्थामनु गा भीम एष
येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था
भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥ १० ॥
रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्ता
रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा
दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ॥ ११ ॥
मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी
सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥ १२ ॥
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतां
अस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥ १३ ॥
ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु
तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो
धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि १५
मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदत्
मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये १६
उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्यु१त् प्रजापतिरग्रभीत् ।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥१७॥
अयं देवा इहैवास्त्व१यं मामुत्र गादितः ।
इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥ १८ ॥
उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन् ॥१९॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम्॥२०॥
व्यवात् ते ज्योतिरभूद१प त्वत् तमो अक्रमीत्।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिम१प यक्ष्मं नि दध्मसि॥२१॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ८।२।१-२८)

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप्; १-२, ७ भुरिक्; ३, २६ आस्तारपङ्क्तिः, ४ प्रस्तारपङ्क्तिः, ६,१५ पथ्यापङ्क्तिः; ८ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती; ९ पञ्चपदा जगती; ११ विष्टारपङ्क्तिः, १२, २२, २८ पुरस्ताद्बृहती; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; १९ उपरिष्टाद्बृहती, २१ सतः पङ्क्तिः; ५,१०,१६-१८,२०, २३-२५, २७ अनुष्टुप् (१७ त्रिपाद्) ।

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टि
मच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि
रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥ १ ॥
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङ्
आ त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं
द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥ २ ॥

वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि
सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥ ३ ॥
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदाम्
अग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥ ४ ॥
अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥ ५ ॥
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीम्
इह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥
अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं
तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतं
अपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥ ७ ॥
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा
शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥ ८ ॥
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु
पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं
जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥ ९ ॥
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि १०
कृणोमि ते प्राणापानौ
जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतान्
चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥ ११ ॥
आरादरातिं निर्ऋतिं परो
ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि १२ ।

अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसः
तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥ १३ ॥
शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः १४
शिवास्ते सन्त्वोषधय उत
त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥ १५ ॥
यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे तत् कृण्मः
संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥ १६ ॥
यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा
वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ १७ ॥
शिवौ ते स्तां व्रीहियवा—वबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥१८॥
यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि १९
अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥२०॥
शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे
त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु
मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ २१ ॥
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय
ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः २२
मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः २३

सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ॥ २४ ॥
सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥ २५ ॥
परि त्वा पातु समानेभ्यो ऽभिचारात् सबन्धुभ्यः।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो
मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥ २६ ॥
ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि॥२७॥
अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥ २८ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १।३०।१-४)

अथर्वा (आयुष्कामः) । विश्वे देवाः (१ वसवः, आदित्याः, १-४ देवाः) । त्रिष्टुप्, ३ शाक्वरगर्भा विराड्जगती ।

विश्वे देवा वसवो रक्षतेमं
उतादित्या जागृत यूयमस्मिन् ।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिः
मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः ॥ १ ॥
ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः
सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं
स्वस्त्येनं जरसे वहाथ ॥ २ ॥
ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां
ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै
शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥ ३ ॥
येषां प्रयाजा उत वानुयाजा
हुतभागा अहुतादश्च देवाः ।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्ताः
तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० १।३५।१-४)

अथर्वा (आयुष्कामः) हिरण्यम्, इन्द्राग्नी, विश्वे देवाः । जगती, ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा त्रिष्टुप् ।

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं
शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ १ ॥
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते
देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं
स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ २ ॥
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च
वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो
अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ॥ ३ ॥
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं
संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु
मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ ४ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ६।४१।१-३)

ब्रह्मा । चन्द्रमाः, २ सरस्वती, ३ दैव्या ऋषयः । अनुष्टुप्, १ भुरिक्, ३ त्रिष्टुप् ।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥
अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥ २ ॥
मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये
तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वं
आयुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥ ३ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० २।४।१-६)

अथर्वा । (चन्द्रमाः,) जङ्गिडः । अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणाय
अरिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥ १ ॥
जङ्गिडो जम्भाद् विशराद्
विष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः ॥ २ ॥
अयं विष्कन्धं सहते ऽयं बाधते अत्त्रिणः ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ॥ ३ ॥
देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥ ४ ॥
शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ॥ ५ ॥
कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ६

॥ ८ ॥ (अथर्व० ३।११।१-८)

ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च । इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम् । त्रिष्टुप्, ४ शक्वरीगर्भा जगती, ५-६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिग्बृहतीगर्भा पथ्यापङ्क्तिः, ८ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कं
अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं
तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो
यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थात्
अस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ २ ॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण
शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयाति
अति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः
शतं हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः
शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ४ ॥
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान् छतम् ॥५॥
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥ ६ ॥
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु
मृत्यवो यानाहुरितरान् छतम् ॥ ७ ॥
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥ ८ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० २।९।१-५)

भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या
अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥ १ ॥
आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात् ।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥ २ ॥
अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् ।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ॥ ३ ॥
देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः ।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि ॥ ४ ॥
यश्चकार स निष्करत् स एव [illegible]
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् [illegible]

॥ १० ॥ (अथर्व० ६।११०।१-३)

अथर्वा। अग्निः। त्रिष्टुप्, १ पङ्क्तिः।

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु
सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्व
अस्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥ १ ॥
ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य
मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ २ ॥
व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो
नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो
मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।४७।१-३)

अङ्गिराः प्रचेताः। १ अग्निः, २ विश्वे देवाः, ३ सुधन्वा। त्रिष्टुप्।

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान्
वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः।
स नः पावको द्रविणे दधातु
आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥ १ ॥
विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मान्
अस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो
वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ २ ॥
इदं तृतीयं सवनं कवीनां
ऋतेन ये चमसमैरयन्त।
ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः
स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० २।२९।१-७)

अथर्वा। १ अग्निः, सूर्यः, बृहस्पतिः, २ जातवेदाः सविता, ३ इन्द्रः, ४-५ द्यावापृथिवी, विश्वे देवाः, मरुतः, आपः, ६ अश्विनौ, ७ इन्द्रः। त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ४ पराबृहती निचृत्प्रस्तारपङ्क्तिः।

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो३ बले।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो
वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥ १ ॥
आयुरस्मै धेहि जातवेदः
प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै
शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥ २ ॥
आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं
दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र
कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥ ३ ॥
इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो
मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन्।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे
मा क्षुधन्मा तृषत् ॥ ४ ॥
ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं
पयो अस्मै पयस्वती धत्तम्।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां
विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥ ५ ॥
शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयामि
अनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतं
अश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥ ६ ॥
इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र
ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा
मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ॥ ७ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० ५।३०।१-१७)

उन्मोचनः (आयुष्कामः) । आयुष्यम् । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः, ९ भुरिक्, १२ चतुष्पदा विराड्जगती, १४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः, १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः
पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥ १ ॥
यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ २ ॥
यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ ३ ॥
यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ ४ ॥
यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः
प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥ ५ ॥
इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥ ६ ॥
अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ॥ ७ ॥
मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥ ८ ॥
अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ९
ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् १०
अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते ।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ११
नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे
नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं
पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ १२ ॥
ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम् ।
शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु १३
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं
समीरय तन्वा३ सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् १४
मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते ।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥ १५ ॥
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा ।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः ॥ १६ ॥
अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः १७

॥ १४ ॥ (अथर्व० १९।६४।१-४)

ब्रह्म । अग्निः (दीर्घायुष्यम्) । अनुष्टुप् ।

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २ ॥
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० १९।६७।१-८)

ब्रह्म । सूर्यः (दीर्घायुष्यम्) । प्राजापत्या गायत्री ।

पश्येम शरदः शतम् ॥ १ ॥
जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥
बुध्येम शरदः शतम् ॥ ३ ॥
रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥
पूषेम शरदः शतम् ॥ ५ ॥
भवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥
भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥
भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ५।२८।१-१४)

अथर्वा । त्रिवृत्, अग्न्यादयः (दीर्घायुः) । त्रिष्टुप्, ६ पञ्चपदातिशक्करी, ७,९,१०,१२ ककुम्मत्यनुष्टुप्, १३ पुरउष्णिक् ।

नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीणि
अयसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥ १ ॥

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो
द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना
अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु ॥ २ ॥

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्ता-
मनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा
भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥ ३ ॥

इममादित्या वसुना समुक्षत
इममग्ने वर्धय वावृधानः ।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येण
अस्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ॥ ४ ॥

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृत्
अग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं
दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥ ५ ॥

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यं
अग्नेरेकं प्रियतमं बभूव
सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहु-
स्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ॥ ६ ॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥ ७ ॥

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्
नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकं
अन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥ ८ ॥

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥ ९ ॥

इमास्तिस्रो देवपुरा-स्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥ १० ॥

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं
य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोमि
अनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥ ११ ॥

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥ १२ ॥

ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥ १३ ॥

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं
भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वत्
आ मा रोह महते सौभगाय ॥ १४ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ७।३२।१)

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व ७।३३।१)

ब्रह्मा । मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः, (दीर्घायु) । पथ्यापङ्क्तिः ।

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

(८३०)

॥ १९ ॥ (अथर्व० ७।५३।१-७)

ब्रह्मा । आयुः, बृहस्पतिः अश्विनौ च । त्रिष्टुप्, ३ भुरिक् ४ उष्णिग्गर्भार्षी पङ्क्तिः, ५-७ अनुष्टुप् ।

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य
बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्
देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ १ ॥
सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं
प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानो
अग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥ २ ॥
आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैः
अपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात्
तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥ ३ ॥
मेमं प्राणो हासीन्मो ऽपानो ऽवहाय परा गात् ।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि
त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ॥ ४ ॥
प्र विशतं प्राणापाना—वनड्वाहाविव व्रजम् ।
अयं जरिम्णः शेवधि—ररिष्ट इह वर्धताम् ॥ ५ ॥
आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते ।
आयुर्नो विश्वतो दध—दयमग्निर्वरेण्यः ॥ ६ ॥
उद्वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम् ।
देवं देवत्रा सूर्य—मगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ७ ॥

॥ २० ॥ (अथर्व० ६।७६।१-४)

कबन्धः । सान्तपनाग्निः (आयुष्यम्) । अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती ।

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे ।
संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभि—रुदेतु हृदयादधि ॥ १ ॥
अग्नेः सान्तपनस्याह—मायुषे पदमा रभे ।
अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ॥ २ ॥
यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् ।
नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥ ३ ॥
नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति ।
अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्यायुषे ॥ ४ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्व० १९।६३।१)

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः (आयुर्वर्धनम्) । विराडुपरिष्टाद्बृहती ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥१॥

॥ २२ ॥ (अथर्व० १९।६१।१)

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः (सर्वमायु) । विराट्पथ्याबृहती ।

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

॥ २३ ॥ (अथर्व० १९।७०।१)

ब्रह्मा । इन्द्रसूर्यादयः (सर्वमायुः) गायत्री ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

अरिष्टानि अङ्गानि ।

॥ २४ ॥ (अथर्व० १९।६०।१-२)

ब्रह्मा । वाक्, अङ्गानि च । १ पथ्याबृहती; २ ककुम्मती पुरउष्णिक् ।

वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥१॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ २ ॥

सुमङ्गली दन्तौ ।

॥ २५ ॥ (अथर्व० ६।१४०।१-३)

अथर्वा । ब्रह्मणस्पतिः, दन्ताः । (अनुष्टुप् ?) १ उरोबृहती, २ उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्, ३ आस्तारपङ्क्तिः ।

यौ व्याघ्रावरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च ।
यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥ १ ॥

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् ।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय
दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ २ ॥
उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।
अन्यत्र वां घोरं तन्वः परैतु
दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ ३ ॥

यक्ष्म-नाशनम् ।

॥ २६ ॥ (ऋ० १०।१६३।१-६)

विवृहा काश्यपः । यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्कात्
जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां
बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ २ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः
प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥ ३ ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्
भंससो वि वृहामि ते ॥ ४ ॥
मेहनाद्वनंकरणा--ल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मन--स्तमिदं वि वृहामि ते ॥५॥
अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मन--स्तमिदं वि वृहामि ते ॥६॥

॥ २७ ॥ (अथर्व० ३।३१।१-११)

ब्रह्मा । पाप्महा; १ अग्निः, २ शक्र, ३ पशवः, ४ द्यावापृथिवी, ५ त्वष्टा, अग्निः, इन्द्रः, ७ देवाः, सूर्यः, ८-१० आयुः, ११ पर्जन्यः (यक्ष्मनाशनम्) । अनुष्टुप्, ४ भुरिक्, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१॥
व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥२॥
वि ग्राम्याः पशव आरण्यै--र्व्या१पस्तृष्णयासरन् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥३॥
वी३मे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥४॥
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्ति
इतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥५॥
अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ६ ॥
प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥७॥
आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥८॥
प्राणेन प्राणतां प्राणे--हैव भव मा मृथाः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥९॥
उदायुषा समायुषो--दोषधीनां रसेन ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना--वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१०॥
आ पर्जन्यस्य वृष्ट्यो--दस्थामामृता वयम् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥११॥

॥ २८ ॥ (अथर्व० ६।२०।१-३)

भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम् । १ जगती, २ ककुम्मतीप्रस्तारपङ्क्तिः, ३ सतः पङ्क्तिः ।

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण
उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रत-
स्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥ १ ॥
नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने
नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ॥ २ ॥

अयं यो अभिशोचयिष्णुः
विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः
कृणोमि वन्याय तक्मने ॥ ३ ॥

॥ २९ ॥ (अथर्व० ६।८५।१-३)

अथर्वा । वनस्पतिः (यक्ष्मनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्ट—स्तमु देवा अवीवरन् ॥१॥
इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च ।
देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥ २ ॥
यथा वृत्र इमा आप—स्तस्तम्भ विश्वधा यतीः ।
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ॥ ३ ॥

॥ ३० ॥ (अथर्व० ६।१२७।१-३)

भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम्, वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥ १ ॥
यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥ २ ॥
यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।
वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।
परा तमज्ञातं यक्ष्म—मधराञ्चं सुवामसि ॥ ३ ॥

॥ ३१ ॥ (अथर्व० १।१२।१-४)

भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम् । जगती (त्रिष्टुप् २), ४ अनुष्टुप् ।

जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा
वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या ।
स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन्
य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥ १ ॥
अङ्गेअङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं
नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम
यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता ॥ २ ॥

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं
परुष्परुराविवेशा यो अस्य ।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो
वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥ ३ ॥
शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे ।
शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे३ मम ॥४॥

॥ ३२ ॥ (अथर्व० ३।७।१-७)

भृग्वङ्गिराः । १-३ हरिणः, ४ तारके, ५ आपः, ६-७ यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप्, ६ भुरिक् ।

हरिणस्य रघुष्यदो—ऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥ १ ॥
अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२॥
अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रिय—मङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥ ३ ॥
अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चता—मधमं पाशमुत्तमम् ॥ ४ ॥
आप इद् वा उ भेषजी—रापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीः
तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥ ५ ॥
यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥ ६ ॥
अपवासे नक्षत्राणा—मपवास उषसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूत—मप क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ७ ॥

॥ ३३ ॥ (अथर्व० ६।९१।१-३)

भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम्, ३ आपः । अनुष्टुप् ।

इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः ।
तेना ते तन्वो३ रपो—ऽपाचीनमप व्यये ॥ १ ॥
न्यग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ॥ २ ॥
आप इद् वा उ भेषजी—रापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजी—स्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥३

॥ ३४ ॥ (अथर्व० १९।३८।१-३)

अथर्वा । गुल्गुलुः (यक्ष्मनाशनम्)। अनुष्टुप्, २ चतुष्पदा उष्णिक्, ३ एकावसाना प्राजापत्यानुष्टुप् ।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥
विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् २
उभयोरग्रभं नामा—स्मा अरिष्टतातये ॥ ३ ॥

॥ ३५ ॥ (अथर्व० २०।९६।६-१०)

यक्ष्मनाशनः । यक्ष्मनाशनम् । त्रिष्टुप्; १० अनुष्टुप् ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कम्
अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं
तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् । ॥ ६ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो
यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थात्
अस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ ७ ॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण
शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयाति
अति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः
शतं हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः
शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ९ ॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥१०॥

॥ ३६ ॥ (अथर्व० २०।९६।१७-२३)

विवृहा । यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्
जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां
बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि १९
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशे—र्नाभ्या वि वृहामि ते॥२०॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्य१ं श्रोणिभ्यां
भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो
नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्य१ं ते वयं
कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥२३॥

॥ ३७ ॥ (अथर्व० १२।२।१-५५)

भृगुः । अग्निः; मन्त्रोक्ताः; २१-३३ मृत्युः (यक्ष्मरोगनाशनम्) । त्रिष्टुप्; २,५,१२-२०,३४-३६; ३८-४१,४३,५१,५४ अनुष्टुप् (१६ ककुम्मती पराबृहती, १८ निचृत, ४० पुरस्तात्ककुम्मती); ३ आस्तारपङ्क्तिः, ६ भुरिगार्षी पङ्क्तिः, ७,४५ जगती; ८,४८-४९ भुरिग्; ९ अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः; ३७ पुरस्ताद्बृहती; ४२ त्रिप० एकाव० भुरिगार्ची गायत्री; ४४ एकाव० द्विप० आर्ची बृहती; ४६ एका० द्विप० साम्नी त्रिष्टुप्; ४७ पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती; ५० उपरिष्टाद्विराड् बृहती, ५२ पुरस्ताद्विराड् बृहती, ५५ बृहतीगर्भा ।

नडमा रोह न ते अत्र लोक
इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्म-
स्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १ ॥
अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥ २ ॥

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निरराँतिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने
अक्रव्यादयमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥ ३ ॥
यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र
इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि
दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥ ४ ॥
यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रु–र्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ ५ ॥
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः
पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद्
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ६ ॥
यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहं
इमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं
स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं
यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा
देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ८ ॥
क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि
जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान्
पितृणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥ ९ ॥
क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं
प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्र
एवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ १० ॥
समिन्धते संकसुकं स्वस्तये
शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति
समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥ ११ ॥
देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् ।
मुच्यमानो निरेणसो–ऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥१२॥
अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् १३
संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः ।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥१४॥
यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु ।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ १५ ॥
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः१६
यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥१७॥
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १८ ॥
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वं
अग्नौ संकसुके च यत् ।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥ १९ ॥
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः॥२०॥
परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां
यस्त एष इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥ २१ ॥
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्
अभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २२ ॥
(९१६)

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि
मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीः
तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २३ ॥
आ रोहतायुर्जरसं वृणाना
अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान्वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः
सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥ २४ ॥
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति
यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहाति
एवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ २५ ॥
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं
वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन्दुरेवा
अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २६ ॥
उत्तिष्ठता प्र तरता सखाय
अश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः
शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २७ ॥
वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं
शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि
शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥ २८ ॥
उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिः
अतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता
मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥ २९ ॥
मृत्योः पदं योपयन्त एत
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थे
अथ जीवासो विदथमा वदेम ॥ ३० ॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीः
आञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना
आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ३१ ॥
व्याकरोमि हविषाहमेतौ
तौ ब्रह्मणा व्य१हं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि
दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ३२ ॥
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१
अन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं
मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥ ३३ ॥
अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ३४
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ३५
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥३६॥
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद्यं क्रव्यादनुवर्तते ॥ ३७ ॥
मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ३८ ॥
ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो१ यः क्रव्यादं निरादधत् ॥ ३९ ॥
यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ४०
ता अधरादुदीचीराववृत्रन्
प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे
नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥ ४१ ॥

अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥४२॥
इमं क्रव्यादा विवेशा—यं क्रव्यादमन्वगात्।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम्॥४३॥
अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणां
अग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४ ॥
जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने
पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ४५
सर्वानग्ने सहमानः सपत्नान्
एषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥ ४६ ॥
इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं
स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात्।
तेनाप हत शरुमापतन्तं
तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥
अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं
स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात्।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां
षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥ ४८ ॥
अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत्
क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रत्
ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥ ४९ ॥
ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा।
क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥५०॥
येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते।
ते वा अन्यषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥५१॥
प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः।
क्रव्याद्यानग्निरन्तिकाद—नुविद्वान् वितावति॥५२॥
अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां
सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यं
अरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥ ५३ ॥
इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥ ५४ ॥
प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा
प्रविद्वान् पन्थां वि ह्या विवेश।
परामीषामसून् दिदेश
दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ५५ ॥

॥ ३८ ॥ (अथर्व० २।८।१–२२)

भृग्वङ्गिराः। सर्वशीर्षामयाद्यपाकरणम् (यक्ष्मनिवारणम्)। अनुष्टुप्; १२ अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती चतुष्पदोष्णिक्; १५ विराडनुष्टुप्; २१ विराट् पथ्याबृहती, २२ पथ्यापङ्क्तिः।

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ १ ॥
कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ २ ॥
यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ३ ॥
यः कृणोति प्रमोत—मन्धं कृणोति पूरुषम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ४ ॥
अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ५ ॥
यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम्।
तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ६ ॥
य ऊरू अनुसर्पत्य—थो एति गवीनिके।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ७ ॥
यदि कामादपकामा—द्धृदयाज्जायते परि।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ८ ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥५॥
यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः ॥६॥
अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७॥
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८ ॥
इष्कृतिर्नाम वो माता ऽथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९॥
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत् किं च तन्वो३ रपः १०
यदिमा वाजयन्नह्मोषधीर्हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ११
यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२॥
साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया १३
अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः १४
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात्
सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ १६ ॥
अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥ १८ ॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥ १९ ॥
मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ २० ॥
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।
सर्वाः संगत्य वीरुधो ऽस्यै सं दत्त वीर्यम् २१
ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि २२
त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सो३ऽस्माकं
यो अस्माँ अभिदासति ॥ २३ ॥

॥ ४१ ॥ (अथर्व० ८।७।१-२८)

अथर्वा । भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः । अनुष्टुप्; २ उपरिष्टाद्भुरिग्बृहती; ३ पुर उष्णिक्; ४ पञ्चपदा परानुष्टुबतिजगती; ५-६, १०, २५ पथ्यापङ्क्तिः (६ विराड्गर्भा भुरिक्); ९ द्विपदार्ची भुरिगनुष्टुप्; १२ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १४ उपरिष्टान्निचृद्बृहती; २६ निचृत्; २८ भुरिक् ।

या बभ्रवो याश्च शुक्रा
रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः
सर्वा अच्छावदामसि ॥ १ ॥
त्रायन्तामिमं पुरुषं
यक्ष्माद् देवेषितादधि ।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता
समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥ २ ॥
आपो अग्रं दिव्या ओषधयः
तास्ते यक्ष्ममेनस्य१मङ्गादङ्गादनीनशन् ॥ ३ ॥
प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः
प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा
ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥४॥

हरिमाणं ते अङ्गेभ्यो—ऽप्वामन्तरोदरात्।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ९ ॥
आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत्।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १० ॥
बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात्।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ ११ ॥
उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १२ ॥
याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १३ ॥
या हृदयमुपर्षन्त्य—नुतन्वन्ति कीकसाः।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १४ ॥
याः पार्श्वे उपर्षन्त्य—नुनिक्षन्ति पृष्टीः।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १५ ॥
यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्य—र्षणीर्वक्षणासु ते।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १६ ॥
या गुदा अनुसर्पन्त्या—न्त्राणि मोहयन्ति च।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १७ ॥
या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १८ ॥
ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १९ ॥
विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ २० ॥
पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ॥ २१
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः
शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥ २२ ॥

॥ ३९ ॥ (अथर्व० २।३३।१-७)

ब्रह्मा। यक्ष्मविबर्हणं, चन्द्रमाः, आयुष्यम्। अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती, ४ चतुष्पदा भुरिगुष्णिक्, ५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ६ उष्णिग्गर्भा निचृदनुष्टुप्, ७ पथ्यापङ्क्तिः।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्का—ज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ २ ॥
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम्।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ ३ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशे—र्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ ४ ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां
भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥ ५ ॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ ६ ॥
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं
कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥ ७ ॥

ओषधिवनस्पतयः।

॥ ४० ॥ (ऋ० १०।९७।१-२३)

आथर्वणो भिषग्। ओषधयः। अनुष्टुप्।

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥ १ ॥
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूय—मिमं मे अगदं कृत ॥ २ ॥
ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वा इव सजित्वरी—र्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥ ३ ॥
ओषधीरिति मातर—स्तद् वो देवीरुप ब्रुवे।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥ ४ ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥५॥
यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः ॥६॥
अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७॥
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८ ॥
इष्कृतिर्नाम वो माता ऽथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९॥
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत् किं च तन्वो३ रपः १०
यदिमा वाजयन्नह मोषधीर्हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ११
यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२॥
साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया १३
अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः १४
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात्
सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ १६ ॥
अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥ १८ ॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥ १९ ॥
मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ २० ॥
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।
सर्वाः संगत्य वीरुधो ऽस्यै सं दत्त वीर्यम् २१
ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि २२
त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सो३ऽस्माकं
यो अस्माँ अभिदासति ॥ २३ ॥

॥ ४१ ॥ (अथर्व० ८।७।१-२८)

अथर्वा । भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः । अनुष्टुप्; २ उपरिष्टाद्भुरिग्बृहती; ३ पुर उष्णिक्; ४ पञ्चपदा परानुष्टुबतिजगती; ५-६, १०, २५ पथ्यापङ्क्तिः (६ विराड्गर्भा भुरिक्), ९ द्विपदार्ची भुरिगनुष्टुप्; १२ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १४ उपरिष्टान्निचृद्बृहती; २६ निचृत्; २८ भुरिक् ।

या बभ्रवो याश्च शुक्रा
रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः
सर्वा अच्छावदामसि ॥ १ ॥
त्रायन्तामिमं पुरुषं
यक्ष्माद् देवेषितादधि ।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता
समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥ २ ॥
आपो अग्रं दिव्या ओषधयः
तास्ते यक्ष्ममेनस्य१मङ्गादङ्गादनीनशन् ॥ ३ ॥
प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः
प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा
ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥४॥

यद् वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो बलम्।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चत
ओषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥ ५ ॥

जीवलां नघारिषां
जीवन्तीमोषधीमहम्।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां
मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥

इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ ७ ॥

अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नी—र्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥ ८ ॥

अवकोल्वा उदकात्मान ओषधयः।
व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥ ९ ॥

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च
यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥ १० ॥

अपक्रीताः सहीयसी—र्वीरुधो या अभिष्टुताः।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ११

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां
मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता
अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥१२॥

यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥

वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्य—प हन्त्वधि दूरमस्मत् १४

सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्ते
ऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भि—
रतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥ १५ ॥

मुमुचाना ओषधयो—ऽग्नेर्वैश्वानरादधि।
भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः १६

या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च।
ता नः पयस्वतीः शिवा
ओषधीः सन्तुः शं हृदे ॥ १७ ॥

याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा।
अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् १८

सर्वाः समग्रा ओषधी—र्बोधन्तु वचसो मम।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ १९ ॥

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः।
व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥ २० ॥

उज्जिहीध्वे स्तनयत्य—भिक्रन्दत्योषधीः।
यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥२१॥

तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि।
अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥२२॥

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम्।
सर्पा गन्धर्वा या विदु—स्ता अस्मा अवसे हुवे २३

याः सुपर्णा आङ्गिरसी—र्दिव्या या रघटो विदुः।
वयांसि हंसा या विदु—र्याश्च सर्वे पतत्रिणः।
मृगा या विदुरोषधी—स्ता अस्मा अवसे हुवे २४

यावतीनामोषधीनां गावः
प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥२५॥

यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः।
तावतीर्विश्वभेषजी—रा भरामि त्वामभि ॥ २६ ॥

पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत।
संमातर इव दुह्राम—स्मा अरिष्टतातये ॥ २७ ॥

उत् त्वाहार्षं पञ्चशलाद—थो दशशलादुत।
अथो यमस्य पड्वीशाद्
विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ २८ ॥

॥ ४१ ॥ (अथर्व० ६।९६।१-३)
मृगवाङ्गिराः । वनस्पतिः (चिकित्सा), ३ सोमः । अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री ।

या ओषधयः सोमराज्ञी—र्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
बृहस्पतिप्रसूता—स्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दु—थो वरुण्या३दुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद्
विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ २ ॥
यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचा
उपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥ ३ ॥

॥ ४३ ॥ (वा० य० ४।१; ५।४२; ६।१५)
(ओषधयः ।)

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ १ ॥

॥ ४४ ॥ (वा० य० ११।४७-४८)
(ओषधयः ।)

ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ
शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः ॥ ४७ ॥
ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भ ऽ ऋत्वियः
प्रत्नꣳ सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

॥ ४५ ॥ (वा० य० १२।७९; ३५।४)
(ओषधिः ।)

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज ऽ इत्किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ७९

॥ ४६ ॥ (वा० य० १८।३१-३४)
(अन्नम् ।)

वाजो नः सप्त प्रदिश—श्चतस्रो वा परावतः ।
वाजो नो विश्वैर्देवै—र्धनसाताविहावतु ॥ ३२ ॥
वाजो नो ऽ अद्य प्रसुवाति दानं
वाजो देवाꣳ२ ऽ ऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान
विश्वा ऽ आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ३३ ॥
वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो
वाजो देवान् हविषा वर्धयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार
सर्वा ऽ आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।९०।६)
गोतमो राहूगणः । विश्वेदेवाः (वातसिन्ध्वोषधयः) । गायत्री ।

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ६ ॥

॥ ०८ ॥ (ऋ० ३।५७।३)
गाथिनो विश्वामित्रः । विश्वे देवाः (ओषधयः सूर्यरश्मयो वा) । त्रिष्टुप् ।

या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं
नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना
महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥ ३ ॥

॥ ४९ ॥ (अथर्व० ३।१८।१-६)
अथर्वा । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा उष्णिक्, ६ उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः ।

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥ २ ॥
नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ३ ॥
उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अधः सपत्नी या ममा—धरा साधराभ्यः ॥ ४ ॥
अहमस्मि सहमाना—थो त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥ ५ ॥
अभि तेऽधां सहमाना—मुप तेऽधां सहीयसीम् ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु
पथा वारिव धावतु ॥ ६ ॥

॥ ५० ॥ (वा० य० ५।४२-४३)

(वनस्पति ।)

अत्यन्याँ२ऽ अगां नान्याँ२ऽ उपांगां
अर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः ।
तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै
देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा ।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः ॥ ४२ ॥

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं
मा हिंसीः पृथिव्या सम्भव ।
अयं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः
प्रणिनाय महते सौभगाय ।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह
सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ॥ ४३ ॥

॥ ५१ ॥ (वा० य० २०।४५)

(वनस्पति ।)

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैः
त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः
स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥ ४५ ॥

॥ ५२ ॥ (वा० य० २१।२१)

(वनस्पतिः ।)

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द ऽ इहेन्द्रियं
वशा वेहद् वयो दधुः ॥ २१ ॥

॥ ५३ ॥ (वा० य० २७।२१)

(वनस्पतिः ।)

वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु ।
अग्निर्हव्यं शमिता सूदयाति ॥ २१ ॥

॥ ५४ ॥ (वा० य० २८।१०, ३३,४३)

(वनस्पतिः ।)

होता यक्षद् वनस्पतिं शमितारं
शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् ।
मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति
यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १० ॥

होता यक्षद् वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं
हिरण्यपर्णमुक्थिनं रशनां बिभ्रतं
वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम् ।
ककुभं छन्द ऽ इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां
वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं
वयोधसं देवा देवमवर्धयत् ।
द्विपदा छन्दसेन्द्रिय भगमिन्द्रे
वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४३ ॥

॥ ५५ ॥ (वा० २९।१०,३५)

(वनस्पतिः ।)

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त
उप देवाँ२ ऽऋतुशः पाथ ऽ एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना
हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥ १० ॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्
देवानां पाथ ऽ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्नि.
स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ ३५ ॥

॥ ५६ ॥ (अथर्व० ४।१७।१-८)

शुक्र । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

ईशानां त्वा भेषजानामु—ज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥ १ ॥

सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वाः समह्वयोषधी-रितो नः पारयादिति ॥ २ ॥
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ३
यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः
तया कृत्याकृतो जहि ॥ ४ ॥
दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाच-स्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५॥
क्षुधामारं तृष्णामारम-गोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ६ ॥
तृष्णामारं क्षुधामारम-थो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ७ ॥
अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितम-थ त्वमगदश्चर ॥ ८ ॥

॥५७॥ (अथर्व० ४।१८।१-८)

ऋषिः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, बृहतीगर्भा ।

समं ज्योतिः सूर्येणा-ह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतये-ऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥ १ ॥
यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥२॥
अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां
बहुलाः फट् करिक्रति ॥ ३ ॥
सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवां छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४॥
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ५ ॥
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्य-मात्मने तपनं तु सः ॥ ६ ॥
अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः ।
अपाह यातुधानीर-प सर्वा अराय्यः ॥ ७ ॥
अपमृज्य यातुधानान-प सर्वा अराय्यः ।
अपामार्ग त्वया वय सर्वं तदप मृज्महे ॥ ८ ॥

॥५८॥ (अथर्व० ४।१९।१-८)

ऋषिः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, २ पथ्यापङ्क्तिः ।

उतो अस्यबन्धुकृदु-तो असि नु जामिकृत् ।
उतो कृत्याकृतः प्रजां
नडमिवा छिन्धि वार्षिकम् ॥ १ ॥
ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र
भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥ २ ॥
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उत त्रातासि पाकस्या-थो हन्तासि रक्षसः ॥३॥
यददो देवा असुरां-स्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।
ततस्त्वमध्योषधे-ऽपामार्गो अजायथाः ॥ ४ ॥
विभिन्दती शतशाखा
विभिन्दन् नाम ते पिता ।
प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं
यो अस्माँ अभिदासति ॥ ५ ॥
असद् भूम्याः समभवत्
तद् यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ६
प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ७
शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ८

॥ ५९ ॥ (अथर्व० ७।६५।१-३)

ऋषिः । अपामार्गो वीरुत् (दुरितनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

प्रतीचीनफलो हि त्वम-पामार्ग रुरोहिथ ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥१॥

यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया ।
त्वया तद् विश्वतोमुखा—पामार्गाप मृज्महे ॥ २ ॥
श्यावदता कुनखिना वण्डेन यत् सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ३ ॥

॥ ६० ॥ (अथर्व० ६।५९।१-३)
अथर्वा । रुद्रः, अरुन्धती ओषधिः । अनुष्टुप् ।

अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥ १ ॥
शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती ।
करत् पयस्वन्तं गोष्ठम—यक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥ २ ॥
विश्वरूपां सुभगाम—च्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥३॥

॥ ६१ ॥ (अथर्व० ६।९५।१-३)
भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः (कुष्ठौषधिः) । अनुष्टुप् ।

अश्वत्थो देवसदन—स्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ १ ॥
हिरण्ययी नौरचर—द्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ २ ॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्ये—मं मे अगदं कृधि ॥ ३ ॥

॥ ६२ ॥ (अथर्व० ६।१०९।१-३)
अथर्वा । पिप्पली-भेषजं, आयुः । अनुष्टुप् ।

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यु३—तातिविद्धभेषजी ।
तां देवाः समकल्पय—न्नियं जीवितवा अलम् ॥१॥
पिप्पल्य१ः समवदन्ता—यतीर्जननादधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ २ ॥
असुरास्त्वा न्य१खनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः ।
वातीकृतस्य भेषजी—मथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥३॥

॥ ६३ ॥ (अथर्व० २।२५।१-५)
चातनः । पृश्निपर्णी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ भुरिक् ।

शं नो देवी पृश्निपर्ण्य—शं निर्ऋत्या अकः ।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् १
सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्य१जायत ।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥ २ ॥
अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥ ३ ॥
गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्य—ग्निरिवानुदहन्निहि ॥ ४ ॥
पराच एनान् प्र णुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ५

॥ ६४ ॥ (अथर्व० ४।१२।१-७)
ऋभुः । रोहणी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, १ त्रिपदा गायत्री,
त्रिपदा यवमध्या भुरिग्गायत्री, ७ बृहती ।

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी ।
रोहयेदमरुन्धति ॥ १ ॥
यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्त—मस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः २
सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्र—स्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥३॥
मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ४
लोम लोम्ना सं कल्पया
त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ५
स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव
रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः ।
प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥ ६ ॥
यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे
यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ॥ ७ ॥

॥ ६५ ॥ (अथर्व० ५।५।१-९)

अथर्वा । लाक्षा । अनुष्टुप् ।

रात्री माता नभः पिता—र्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि
सा देवानामसि स्वसा ॥ १ ॥
यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥ २ ॥
वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला ।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ३
यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ४
भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्य—श्वत्थात् खदिराद्धवात् ।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥५॥
हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ६
हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे ।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो ह्यात्मा बभूव ते ७
सिलाची नाम कानीनो—ऽजबभ्रु पिता तव ।
अश्वो यमस्य यः श्याव—स्तस्य हास्नास्युक्षिता ८
अश्वस्यास्नः संपतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे ।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥ ९ ॥

॥ ६६ ॥ (अथर्व० ५।४।१-१०)

भृग्वङ्गिराः । कुष्ठो, यक्ष्मनाशनम् (कुष्ठतक्मनाशनम्) ।
अनुष्टुप्, ५ भुरिक्, ६ गायत्री, १० उष्णिग्गर्भा निचृत् ।

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥ १ ॥
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् २
अश्वत्थो देवसदन—स्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ३ ॥
हिरण्ययी नौरचर—द्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ४ ॥
हिरण्ययाः पन्थान आस—न्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ५
इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु ।
तमु मे अगदं कृधि ॥ ६ ॥
देवेभ्यो अधि जातोऽसि
सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥ ७॥
उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामा—न्युत्तमानि वि भेजिरे ॥ ८ ॥
उत्तमो नाम कुष्ठा—स्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ॥ ९॥
शीर्षामयमुपहत्या—मक्ष्योस्तन्वोऽ३ रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् १०

॥ ६७ ॥ (अथर्व० १९।३९।१-१०)

भृग्वङ्गिराः । कुष्ठः (कुष्ठनाशनम्) । अनुष्टुप्; २,३ त्र्यव-
साना पथ्यापङ्क्तिः; ४ षट्पदा जगती; ५ सप्तपदा शक्वरी;
६-८ अष्टिः (५-८ चतुरवसाना)

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥१॥
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ३ ॥
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान्
जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ४ ॥

(५३८)

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्य-स्त्रिरादित्येभ्यस्परि ।
त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥५॥

अश्वत्थो देवसदन-स्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ६ ॥

हिरण्ययी नौरचर-द्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ७॥

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८ ॥

यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वा वसो यमात्स्य-स्तेनासि विश्वभेषजः ॥९॥

शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः ।
तक्मानं विश्वधावीर्या-धराञ्चं परा सुव ॥१०॥

॥ ६८ ॥ (अथर्व० ६।२१।१-३)

शंतातिः । चन्द्रमाः (केशवर्धनी ओषधिः) । अनुष्टुप् ।

इमा यास्तिस्रः पृथिवी-स्तासां ह भूमिरुत्तमा ।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥१॥

श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् ।
सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥ २ ॥

रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ ।
उत स्थ केशदृंहणी-रथो ह केशवर्धनीः ॥ ३ ॥

॥ ६९ ॥ (अथर्व० ६।१३६।१-३)

वीतहव्यः । नितत्नी वनस्पतिः (केशदृंहणम्) । अनुष्टुप्, २ एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती ।

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि १

दृंह प्रत्नान् जनयाजातान्
जातानु वर्षीयसस्कृधि ॥ २ ॥

यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।
इदं तं विश्वभेषज्या-भि षिञ्चामि वीरुधा ॥ ३ ॥

॥ ७० ॥ (अथर्व० ६।१३७।१-३)

वीतहव्यः । वनस्पतिः (केशवर्धनम्) । अनुष्टुप् ।

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् ।
तां वीतहव्य आभर-दसितस्य गृहेभ्यः ॥ १ ॥

अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः ।
केशा नडा इव वर्धन्तां
शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ २ ॥

दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे ।
केशा नडा इव वर्धन्तां
शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ ३ ॥

॥ ७१ ॥ (अथर्व० ६।१६।१-५)

शौनकः । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्तदेवताः (अक्षिरोगभेषजम्) । अनुष्टुप्, १ निचृत्त्रिपदा गायत्री; ३ बृहतीगर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४ त्रिपदा प्रतिष्ठा ।

आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो ।
आ ते करम्भमद्मसि ॥ १ ॥

विहह्लो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता ।
स हिन त्वमसि य-स्त्वमात्मानमावयः ॥ २ ॥

तौविलिकेऽवेलया-वायमैलब ऐलयीत् ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥ ३ ॥

अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा ।
नीलागलसाला ॥ ४ ॥

॥७१॥ (अथर्व० ६।३०।१-३)

उपरिबभ्रवः। शमी (पापशमनम्)। जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पाच्छंकुमत्यनुष्टुप्।

देवा इमं मधुना संयुतं यवं
सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः।
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः
कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥ १ ॥
यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो
येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि
त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥ २ ॥
बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥ ३ ॥

॥७३॥ (ऋ० १।९०।८)

गोतमो राहूगणः। विश्वे देवाः। (वनस्पतिसूर्यगावः)। गायत्री।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ८ ॥

॥७४॥ (ऋ० १०।८५।१-४)

सावित्री सूर्या ऋषिका। सोमः। अनुष्टुप्।

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२॥
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥३॥
आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः॥४

॥७५॥ (ऋ० १।९१।६)

गोतमो राहूगणः। सोमवनस्पतिः। गायत्री।

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥

॥७६॥ (अथर्व० १।३४।१-५)

अथर्वा। मधुवनस्पतिः (मधुविद्या)। अनुष्टुप्।

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥१॥
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥ ३ ॥
मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः।
मामित् किल त्वं वना: शाखां मधुमतीमिव ॥४॥
परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ ५ ॥

रोगचिकित्सा।

॥ ७७ ॥ (अथर्व० ६।१४।१-३)

बभ्रुपिङ्गलः। बलासः (बलासनाशनम्)। अनुष्टुप्।

अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम्।
बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥ १ ॥
निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा।
छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव ॥ २ ॥
निर्बलासेतः प्र पताशुंगः शिशुको यथा।
अथो इट इव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ॥ ३ ॥

॥७८॥ (अथर्व० ६।१०५।१-३)

उन्मोचनः। कासा (कासशमनम्)। अनुष्टुप्।

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥१॥
यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥ २ ॥
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥३॥

॥ ७९ ॥ (अथर्व० १।२२।१-४)

ब्रह्मा। सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च (हृद्रोग-कामिला-नाशनम्)। अनुष्टुप्।

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥१॥
परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥ २ ॥

या रोहि॑णीर्दे॒वत्या॒३ गावो॒ या उ॒त रोहि॑णीः ।
रू॒पंरू॑पं॒ वयो॑वय॒-स्ताभि॑ष्ट्वा॒ परि॑ दध्मसि ॥ ३ ॥
शुके॑षु ते हरि॒माणं॑ रोप॒णाका॑सु दध्मसि ।
अथो॒ हारि॑द्रवेषु ते॒ हरि॒माणं॒ नि द॑ध्मसि ॥ ४ ॥

॥ ८० ॥ (अथर्व० २।८।१-५)

भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम् (क्षेत्रियरोगनाशनम्) । अनुष्टुप्, ३ पथ्यापङ्क्तिः, ४ विराट्, ५ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः।

उद॑गातां॒ भग॑वती वि॒चृतौ॒ नाम॒ तार॑के ।
वि क्षे॑त्रि॒यस्य॑ मुञ्चता-मध॒मं पाश॑मुत्त॒मम् ॥ १ ॥
अपे॒यं रात्र्यु॑च्छत्व-पोच्छ॑न्त्वभि॒कृत्व॑रीः ।
वी॒रुत् क्षे॑त्रियना॒श-न्यप॑ क्षेत्रि॒यमु॑च्छतु ॥ २ ॥
ब॒भ्रोरर्जु॑नकाण्डस्य॒ यव॑स्य
ते पला॒ल्या तिल॑स्य तिलपि॒ञ्ज्या ।
वी॒रुत् क्षे॑त्रियना॒श-न्यप॑ क्षेत्रि॒यमु॑च्छतु ॥ ३ ॥
नम॑स्ते॒ लाङ्ग॑लेभ्यो॒ नम॑ ईषायु॒गेभ्यः॑ ।
वी॒रुत् क्षे॑त्रियना॒श-न्यप॑ क्षेत्रि॒यमु॑च्छतु ॥ ४ ॥
नमः॑ सनिस्रसा॒क्षेभ्यो॒ नमः॑ संदे॒श्ये॒३भ्यः ।
नमः॒ क्षेत्र॑स्य॒ पत॑ये वी॒रुत्
क्षे॑त्रियनाश॒न्यप॑ क्षेत्रि॒यमु॑च्छतु ॥ ५ ॥

॥ ८१ ॥ (अथर्व० ६।१३८।१-५)

अथर्वा । वनस्पतिः (क्लीबत्वम्) । अनुष्टुप्, ३ पथ्यापङ्क्तिः।

त्वं वी॒रुधां॒ श्रेष्ठ॑तमा-भिश्रु॒तास्यो॑षधे ।
इ॒मं मे॑ अ॒द्य पूरु॑षं क्ली॒बमो॑प॒शिनं॑ कृधि ॥ १ ॥
क्ली॒बं कृ॒ध्यो॑प॒शिन॒-मथो॑ कुरी॒रिणं॑ कृधि ।
अथा॒स्येन्द्रो॒ ग्राव॑भ्या-मु॒भे भि॑नत्त्वा॒ण्ड्यौ॑ ॥ २ ॥
क्ली॑ब क्ली॒बं त्वाक॑रं॒ वध्रे॒ वध्रिं॒ त्वाक॑रं॒
अर॑सार॒सं त्वाक॑रम् ।
कु॒रीर॑मस्य शी॒र्षणि॒ कुम्बं॑ चाधि॒निद॑ध्मसि ॥३॥
ये ते॑ ना॒ड्यौ॑ दे॒वकृ॑ते॒ ययो॒स्तिष्ठ॑ति॒ वृष्ण्य॑म् ।
ते ते॑ भिनद्मि॒ शम्य॒या-मु॒ष्या॒ अधि॑ मु॒ष्कयोः॑ ॥४॥
यथा॑ न॒डं क॒शिपु॑ने॒ स्त्रियो॑ भि॒न्दन्त्यश्म॑ना ।
ए॒वा भि॑नद्मि ते॒ शेपो॒-ऽमुष्या॒ अधि॑ मु॒ष्कयोः॑ ॥५

॥ ८२ ॥ (अथर्व० ७।७४।१-४)

अथर्वाङ्गिराः । मन्त्रोक्ताः, ४ जातवेदाः (गण्डमाला-चिकित्सा) । अनुष्टुप् ।

अ॒प॒चितां॒ लोहि॑नीनां कृ॒ष्णा मा॒तेति॑ शुश्रु॒म ।
मु॒नेर्दे॒वस्य॒ मूले॑न॒ सर्वा॑ विध्यामि॒ ता अ॒हम् ॥१॥
वि॒ध्याम्या॑सां प्रथ॒मां वि॒ध्याम्यु॒त म॑ध्य॒माम् ।
इ॒दं ज॑घ॒न्या॒३मासा॒मा च्छि॑नद्मि॒ स्तुका॑मिव ॥२॥
त्वा॒ष्ट्रेणा॒हं वच॑सा॒ वि त॑ ई॒र्ष्याम॑मीमदम् ।
अथो॒ यो म॒न्युष्टे॑ पते॒ तमु॑ ते शमयामसि ॥ ३ ॥
व्र॒तेन॒ त्वं व्र॑तपते॒ सम॑क्तो
वि॒श्वाहा॑ सु॒मना॑ दीदिही॒ह ।
तं त्वा॑ व॒यं जा॑तवेदः॒ समि॑द्धं
प्र॒जाव॑न्त॒ उप॑ सदेम॒ सर्वे॑ ॥ ४ ॥

॥ ८३ ॥ (अथर्व० ७।७६।१-६)

अथर्वा । १,२ अपचितौषधयः, ३-६ जायान्यः, इन्द्रः, (गण्डमालाचिकित्सा) । अनुष्टुप्, १ विराट्, २ परोष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्, ५ भुरिगनुष्टुप्।

आ सु॒स्रसः॑ सु॒स्रसो॒ अस॑तीभ्यो॒ अस॑त्तराः ।
सेहो॑ररस॒तरा॒ लव॑णाद् वि॒क्लेदी॑यसीः ॥ १ ॥
या ग्रैव्या॑ अप॒चितो॒-ऽथो॒ या उ॑पप॒क्ष्या॒३ः ।
वि॒जाम्नि॒ या अ॑प॒चितः॑ स्वयं॒स्रसः॑ ॥ २ ॥
यः कीक॑साः प्रशृ॒णाति॑ तली॒द्य॒३मव॒तिष्ठ॑ति ।
निर्हास्तं सर्वं॑ जा॒यान्यं॒ यः कश्च॑ क॒कुदि॑ श्रि॒तः ॥३॥
प॒क्षी जा॒यान्यः॑ पतति॒ स आ वि॑शति॒ पूरु॑षम् ।
तदक्षि॑तस्य भेष॒ज-मु॒भयोः॒ सुक्ष॑तस्य च ॥ ४ ॥
वि॒द्म वै ते॑ जायान्य॒ जानं॒ यतो॑ जायान्य॒ जाय॑से ।
क॒थं ह॒ तत्र॒ त्वं ह॑नो॒ यस्य॑ कृ॒ण्मो ह॒विर्गृ॒हे ॥ ५ ॥
धृ॒षत् पि॑ब क॒लशे॒ सोम॑मिन्द्र
वृ॒त्र॒हा शू॑र सम॒रे वसू॑नाम् ।
माध्य॑न्दिने॒ सव॑न॒ आ वृ॑षस्व
र॒यि॒ष्ठानो॑ र॒यिम॒स्मासु॑ धेहि ॥ ६ ॥

(६००)

॥ ८४ ॥ (अथर्व० ६।८३।१-४)

भगः । १ सूर्यः चन्द्रमाः, २ रोहिणी, ३ रामायणी (भेषज्यम्) । अनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा निचृदार्च्यनुष्टुप् ।

अपचितः प्र पतत　सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं　चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥ १ ॥
एन्येका श्येन्येका　कृष्णैका रोहिणी द्वे ।
सर्वासामग्रभं नामा—वीरघ्नीरपेतन　॥ २ ॥
असूतिका रामायु—ण्यपचित् प्र पतिष्यति ।
ग्लौरितः प्र पतिष्यति　स गलुन्तो नशिष्यति ॥३॥
वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो
मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि　॥ ४ ॥

॥ ८५ ॥ (अथर्व० १।२३।१-४)

अथर्वा । वनस्पतिः [आसिक्निः] (श्वेतकुष्ठनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

नक्तंजातास्योषधे　रामे कृष्णे असिक्नि च ।
इदं रजनि रजय　किलासं पलितं च यत् ॥१॥
किलासं च पलितं च　निरितो नाशया पृषत् ।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः　परा शुक्लानि पातय ॥२
असितं ते प्रलयन—मास्थानमसितं तव ।
असिक्न्यस्योषधे　निरितो नाशया पृषत् ॥ ३ ॥
अस्थिजस्य किलासस्य　तनूजस्य च यत् त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा　लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥४॥

॥ ८६ ॥ (अथर्व० १।२४।१-४)

ब्रह्मा । आसुरी वनस्पतिः (श्वेतकुष्ठनाशनम्) । अनुष्टुप्, २ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः ।

सुपर्णो जातः प्रथम—स्तस्य त्वं पित्तमासिथ ।
तदासुरी युधा जिता　रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥१॥
आसुरी चक्रे प्रथमेदं
किलासभेषजमिदं किलासनाशनम् ।
अनीनशत् किलासं　सरूपामकरत् त्वचम् ॥२॥
सरूपा नाम ते माता　सरूपो नाम ते पिता ।
सरूपकृत् त्वमोषधे　सा सरूपमिदं कृधि ॥ ३ ॥
श्यामा सरूपंकरणी　पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमू षु प्र साधय　पुना रूपाणि कल्पय ॥ ४ ॥

॥ ८७ ॥ (अथर्व० १।२५।१-४)

भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनोऽग्निः (तक्म-नाशनम्) । त्रिष्टुप्, २-३ विराड्गर्भा, ४ पुरोऽनुष्टुप् ।

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य
यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि ।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं
स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन्　॥ १ ॥
यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः
शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् ।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव
स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन्　॥ २ ॥
यदि शोको यदि वाभिशोको
यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः ।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव
स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन्　॥ ३ ॥
नमः शीताय तक्मने नमो
रूराय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति
तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने　॥ ४ ॥

॥ ८८ ॥ (अथर्व० ७।११६।१-२)

अथर्वाङ्गिराः । चन्द्रमाः (ज्वर-नाशनम्) । १ पुरोष्णिक्, २ एकावसाना द्विपदा आर्च्यनुष्टुप् ।

नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे ।
नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने　॥ १ ॥
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्ये्त्वव्रतः २

॥ ८९ ॥ (अथर्व० ५।२२।१-१४)

भृग्वङ्गिराः। तक्मनाशनः। अनुष्टुप्, १ भुरिक्, २ त्रिष्टुप्, ५ विराट् पथ्याबृहती।

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः
सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः।
वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना
अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥ १ ॥

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोषि
उच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन्।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया
अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि ॥ २ ॥

यः परुषः पारुषेयो—ऽवध्वंस इवारुणः।
तक्मानं विश्वधावीर्या—धराञ्चं परा सुव ॥ ३ ॥

अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥ ४ ॥

ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः।
यावज्जातस्तक्मंस्तावा—नसि बल्हिकेषु न्योचरः ५

तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥ ६ ॥

तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ७

महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥८॥

अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन्मृडयासि नः।
अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ९

यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः।
भीमास्ते तक्मन् हेतय
स्ताभिः स्म परि वृङ्ग्धि नः ॥ १० ॥

मा स्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम्।
मा स्मातोऽर्वाङैः पुन—स्तत् त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे ११

तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् १२

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम्।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् १३

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्यो—ऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि १४

॥ ९० ॥ (ऋ० १।५०।११-१३)

प्रस्कण्वः काण्वः। सूर्यः (रोगघ्न उपनिषद्, १३ अन्त्योऽर्धर्चः द्विषद्द्वेषः)। अनुष्टुप्।

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥१२॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् १३

॥ ९१ ॥ (अथर्व० ४।१३।१-७)

शन्तातिः। चन्द्रमाः, विश्वे देवाः, १ देवाः, २-३ वाताः, ४ मरुतः, ६-७ हस्तः, (रोगनिवारणम्)। अनुष्टुप्।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥ १ ॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद् रपः २

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥ ३ ॥

त्रायन्तामिमं देवा—स्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ४

आ त्वागमं शन्तातिभि—रथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥५॥

अयं मे हस्तो भगवा—नयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजो—ऽयं शिवाभिमर्शनः ॥ ६ ॥

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां
ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥ ७ ॥

॥ ९२ ॥ (अथर्व० १।१७।१-४)

ब्रह्मा । योषितः धमन्यश्च (रुधिरस्रावनिवृत्तये धमनीबन्धनम्) । अनुष्टुप्, १ भुरिगनुष्टुप्, ४ त्रिपदार्षी गायत्री ।

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामय स्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥ १ ॥
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्मही ॥ २ ॥
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥ ३ ॥
परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रमीत् ।
तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ४ ॥

॥ ९३ ॥ (अथर्व० ६।४४।१-३)

विश्वामित्रः । वनस्पतिः (रोगनाशनम्) । अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा महाबृहती ।

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिवी
अस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्ना स्तिष्ठाद् रोगो अयं तव १
शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च ।
श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥ २ ॥
रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः ।
विषाणका नाम वा असि
पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ॥ ३ ॥

॥ ९४ ॥ (अथर्व० ६।५२।१-३)

भागलिः । १ सूर्यः, २ गावः, ३ भेषजम् । अनुष्टुप् ।

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ १ ॥
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
न्यू३र्मयो नदीनां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ २ ॥
आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् ।
आभारिषं विश्वभेषजीम स्यादृष्टान् नि शमयत् ३

॥ ९५ ॥ (अथर्व० २।३।१-६)

अङ्गिराः । भेषजम्, आयुः, धन्वन्तरिः, (आस्रावस्य भेषजम्) । अनुष्टुप्, ६ त्रिपदा स्वराडुपरिष्टान्महाबृहती ।

अदो यदवधावत्य वत्कमधि पर्वतात् ।
तत् ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥ १ ॥
आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्तम मनास्रावमरोगणम् ॥ २ ॥
नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥ ३ ॥
उपजीका उद् भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ॥ ४ ॥
अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥ ५ ॥
शं नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस
आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ॥ ६ ॥

॥ ९६ ॥ (अथर्व० १।३।१-९)

अथर्वा । १ पर्जन्यः, २ मित्रः, ३ वरुणः, ४ चन्द्रः, ५ सूर्यः, (मूत्रमोचनम्) । अनुष्टुप्, १-५ पथ्यापङ्क्तिः ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं
पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ १ ॥
विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं
पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ २ ॥
विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं
पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ३ ॥

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं
पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ४ ॥
विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं
पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥५॥
यदान्त्रेषु गवीन्योर्य—द्वस्तावधि संश्रुतम् ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥६॥
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥७॥
विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥८॥
यथेषुका परापत—दवसृष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥९॥

॥ ९७ ॥ (अथर्व० ४।९।१-१०)

भृगुः । त्रैककुदाञ्जनम् । अनुष्टुप्, २ ककुम्मती, ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥ १ ॥
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि ।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥ २ ॥
उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन ।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि
जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥ ३ ॥
यस्याञ्जन प्रसर्पसि—अङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥४॥
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥ ५ ॥
असन्मन्त्राद् दुःष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत ।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥ ६ ॥
इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥ ७ ॥
त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥ ८ ॥
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।
यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ॥९॥
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०॥

॥ ९८ ॥ (अथर्व० ७।३०।१)

भृग्वङ्गिराः । द्यावापृथिवी, मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च (अञ्जनम्) । बृहती ।

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥१॥

॥ ९९ ॥ (अथर्व० ७।३६।१)

अथर्वा । अक्षि, मनः (अञ्जनम्) । अनुष्टुप् ।

अक्ष्यौ३ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥१॥

॥ १०० ॥ (अथर्व० १९।४५।१-१०)

भृगु । आञ्जनम्, मन्त्रोक्तदेवताः । १-२ अनुष्टुप् ; ३, ५ त्रिष्टुप् ; ६-१० एकावसाना महाबृहती (६ विराट्, ७-१० निचृत्) ।

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥
यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२॥
अपामूर्ज ओजसो वावृधान—
मग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं
दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥३॥

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते
सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य
इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥ ४ ॥
आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व
स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो
ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥ ५ ॥
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥६॥
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥७॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥८॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥९॥
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा १०

॥ १०१ ॥ (अथर्व० १९।४४।१-१०)

भृगुः । आञ्जनम्, ८-९ वरुण: (भेषजम्) । अनुष्टुप्, ३, ४ चतुष्पदा शंकुमती उष्णिक्, ५ निचृद्विषमा त्रिपदा गायत्री ।

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे ।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥१॥
यो हरिमा जायान्यो ऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥ २ ॥
आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥
प्राण प्राणं त्रायस्वा ऽसो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥
देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६॥
वीऽदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥७॥
बह्वीऽदं राजन् वरुणा ऽनृतमाह पूरुषः ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ८ ॥
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥
मित्रश्च त्वा वरुण ऽश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥

॥ १०२ ॥ (वा० य० ४।३)

(अञ्जनम् ।)

वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा ऽ असि चक्षुर्मे देहि ३

॥ १०३ ॥ (अथर्व० ४।५।१-७)

ब्रह्मा । स्वापनं, वृषभः । अनुष्टुप्, २ भुरिक्, ७ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् ।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्ये ना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि १
न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् २
प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धय ऽस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ३
एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् ।
अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥ ४ ॥
य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ५ ॥
स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥ ६ ॥

(७०६)

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं
पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ४ ॥
विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं
पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥५॥
यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतम्।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥६॥
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥७॥
विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥८॥
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥९॥

॥ ९७ ॥ (अथर्व० ४।९।१-१०)

भृगुः। त्रैककुदाञ्जनम्। अनुष्टुप्, २ ककुम्मती, ३ पथ्यापङ्क्तिः।

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम्।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥ १ ॥
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥ २ ॥
उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि
जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥ ३ ॥
यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४॥
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥ ५ ॥
असन्मन्त्राद् दुःष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥ ६ ॥
इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥ ७ ॥
त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥ ८ ॥
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि।
यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ॥९॥
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०॥

॥ ९८ ॥ (अथर्व० ७।३०।१)

भृग्वङ्गिराः। द्यावापृथिवी, मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च (अञ्जनम्)। बृहती।

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम्।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥१॥

॥ ९९ ॥ (अथर्व० ७।३६।१)

अथर्वा। अक्षि, मनः (अञ्जनम्)। अनुष्टुप्।

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥१॥

॥ १०० ॥ (अथर्व० १९।४५।१-१०)

भृगुः। आञ्जनम्, मन्त्रोक्तदेवताः। १-२ अनुष्टुप्; ३, ५ त्रिष्टुप्; ६-१० एकावसाना महाबृहती (६ विराट्, ७-१० निचृत्)।

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम्।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥
यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२॥
अपामूर्ज ओजसो वावृधान
मग्नेर्जातमधि जातवेदसः।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं
दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥३॥

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते
सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य
इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥ ४ ॥
आस्वैकं मणिमेकं कृणुष्व
स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो
ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥ ५ ॥
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥६॥
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥७॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥८॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥९॥
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा १०

॥ १०१ ॥ (अथर्व० १९।४४।१-१०)

भृगुः । आञ्जनम्, ८-९ वरुणः (भैषज्यम्) । अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा शंकुमती उष्णिक्; ५ निचृद्विषमा त्रिपदा गायत्री ।

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे ।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥१॥
यो हरिमा जायान्यो ऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥ २ ॥
आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥
प्राण प्राणं त्रायस्वा ऽसो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥
देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६॥
वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥७॥
बह्वीदं राजन् वरुणा ऽनृतमाह पूरुषः ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ८ ॥
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥
मित्रश्च त्वा वरुण ऽश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥

॥ १०२ ॥ (या० य० ४।३)

(अञ्जनम् ।)

वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा ऽ असि चक्षुर्मे देहि ३

॥ १०३ ॥ (अथर्व० ४।५।१-७)

ब्रह्मा । स्वापनं, वृषभः । अनुष्टुप्, २ भुरिक्, ७ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् ।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि १
न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् २
प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धय ऽस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ३
एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् ।
अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥ ४ ॥
य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ५ ॥
स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥ ६ ॥

(७०६)

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥ ३ ॥

॥ ११० ॥ (अथर्व० ७।१००।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥१॥

॥ १११ ॥ (अथर्व० ७।१०१।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

तत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥१॥

॥ ११२ ॥ (अथर्व० ७।६९।१)

शन्तातिः । सुखम् । पथ्यापङ्क्तिः ।

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां
शमुषा नो व्यु ऽच्छतु ॥ १ ॥

॥ ११३ ॥ (अथर्व० ६।४३।१-३)

भृग्वङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः) । मन्युशमनम् ।
अनुष्टुप् ।

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥ १ ॥
अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥ २ ॥
वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

॥ ११४ ॥ (अथर्व० ५।१६।१-११)

विश्वामित्रः । एकवृषः (वृषरोगशमनम्) । एकावसानं
द्वैपदम्, १,४,५,७-१० साम्नी उष्णिक्, २,३,
६ आसुरी अनुष्टुप्, ११ आसुरी गायत्री ।

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १ ॥
यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ २ ॥
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ३ ॥
यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ४ ॥
यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ५ ॥
यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ६ ॥
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ७ ॥
यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ८ ॥
यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ९ ॥
यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १० ॥
यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥ ११ ॥

॥ ११५ ॥ (अथर्व० ५।१५।१-११)

विश्वामित्रः । मधुला वनस्पतिः (रोगोपशमनम्) । अनुष्टुप्,
४ पुरस्ताद्बृहती; ५,७-९ भुरिक् ।

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ १ ॥
द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ २ ॥
तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ३ ॥
चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ४ ॥
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ५ ॥
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ६ ॥
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ७ ॥
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ८ ॥
नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ९ ॥

स्वप्नं स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम्।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं
जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः ॥ ७ ॥

॥ १०४ ॥ (अथर्व० ६।९०।१-३)

अथर्वा। रुद्रः (इषुनिष्काशनम्)। अनुष्टुप्, ३ आर्षी भुरिगुष्णिक्।

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च।
इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥ १ ॥
यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ॥ २ ॥
नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै।
नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥ ३ ॥

॥ १०५ ॥ (ऋ० १।१२०।१२)

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। अश्विनौ (दुःष्वप्ननाशनम्)। गायत्री।

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः।
उभा ता बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥

॥ १०६ ॥ (ऋ० २।२८।१०)

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा। वरुणः (दुःष्वप्ननाशिनी)। त्रिष्टुप्।

यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा
स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा
त्वं तस्माद् वरुण पाह्यस्मान् ॥ १० ॥

॥ १०७ ॥ (ऋ० १०।१६४।१-५)

प्रचेता आङ्गिरसः। दुःष्वप्ननाशनम्। अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ५ पङ्क्तिः।

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर।
परो निरृत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ १ ॥
भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ॥ २ ॥
यदाशसा निःशसाभिशसो
पारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतानि
अजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥ ३ ॥
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ॥ ४ ॥
अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम्।
जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः
पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु
यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥ ५ ॥

॥ १०८ ॥ (अथर्व० ६।४५।१-३)

अङ्गिराः प्रचेता यमश्च। दुःष्वप्ननाशनम्। १ पथ्यापङ्क्तिः, २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्।

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि
सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥ १ ॥
अवशसा निःशसा यत् पराशसा
उपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतानि
अजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥ २ ॥
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि।
प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पात्वंहसः ॥ ३ ॥

॥ १०९ ॥ (अथर्व० ६।४६।१-३)

अङ्गिराः प्रचेता यमश्च। दुःष्वप्ननाशनम्। १ विष्टारपङ्क्तिः, २ त्र्यवसाना शाक्वरीगर्भा पञ्चपदा जगती, ३ अनुष्टुप्।

यो न जीवोऽसि न मृतो
देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न।
वरुणानी ते माता यमः पिताररुर्नामासि ॥ १ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां
पुत्रोऽसि यमस्य करणः।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म
स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥ २ ॥

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥ ३ ॥

॥ ११० ॥ (अथर्व० ७।१००।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥१॥

॥ १११ ॥ (अथर्व० ७।१०१।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

तत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥१॥

॥ ११२ ॥ (अथर्व० ७।६९।१)

शन्तातिः । सुखम् । पथ्यापङ्क्तिः ।

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयताम्
शमुषा नो व्यु ऽच्छतु ॥ १ ॥

॥ ११३ ॥ (अथर्व० ६।४३।१-३)

भृग्वङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः)। मन्युशमनम् ।
अनुष्टुप् ।

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥ १ ॥
अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥ २ ॥
वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

॥ ११४ ॥ (अथर्व० ५।१६।१-११)

विश्वामित्रः । एकवृषः (वृषरोगशमनम्)। एकावसानं
द्वैपदम्, १,४,५,७-१० साम्नी उष्णिक्, २,३,
६ आसुरी अनुष्टुप्, ११ आसुरी गायत्री ।

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १ ॥
यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ २ ॥
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ३ ॥
यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ४ ॥
यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ५ ॥
यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ६ ॥
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ७ ॥
यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ८ ॥
यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ९ ॥
यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १० ॥
यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥ ११ ॥

॥ ११५ ॥ (अथर्व० ५।१५।१-११)

विश्वामित्रः । मधुला वनस्पतिः (रोगोपशमनम्) । अनुष्टुप्,
४ पुरस्ताद्बृहती; ५,७-९ भुरिक् ।

एका च मे दश च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ १ ॥
द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ २ ॥
तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ३ ॥
चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ४ ॥
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ५ ॥
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ६ ॥
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ७ ॥
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ८ ॥
नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ९ ॥

दशं च मे शतं च मेऽपवक्तारं ओषधे।
ऋतंजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥१०॥
शतं च मे सहस्रं चापवक्तारं ओषधे।
ऋतंजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥११॥

॥ ११६ ॥ (अथर्व० १।२।१-४)

अथर्वा। पर्जन्यः, (१, ४ पृथिवी, ३ इन्द्रः, [चन्द्रमाश्च]) (रोगोपशमनम्)। अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥ १ ॥
ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥ २ ॥
वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना
अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम्।
शरुमस्मद्यावय दिद्युमिन्द्र ॥ ३ ॥
यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम्।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥ ४ ॥

॥ ११७ ॥ (अथर्व० २।७।१-५)

अथर्वा। भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः (शापमोचनम्)। अनुष्टुप्, १ भुरिक्, ४ विराडुपरिष्टाद् बृहती।

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत्
सर्वान् मच्छपथाँ अधि ॥ १ ॥
यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् २
दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्।
तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥३॥
परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद्धनम्।
अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ॥४॥
शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥ ५ ॥

॥ ११८ ॥ (अथर्व० १।१८।१-४)

द्रविणोदाः। १ विनायकः, (२ सविता, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, देवाः, ३ सविता) (अलक्ष्मीनाशनम्) १ विराडुपरिष्टाद् बृहती, २ निचृज्जगती, ३ विराडास्तारपङ्क्तिस्त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्।

निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं निररातिं सुवामसि।
अथ या भद्रा तानि नः
प्रजाया अरातिं नयामसि ॥ १ ॥
निररणिं सविता साविषक्
पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा।
निरस्मभ्यमनुमती रराणा
प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय ॥ २ ॥
यत् त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति
यद् वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा।
सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं
देवस्त्वा सविता सूदयतु ॥ ३ ॥
रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत।
विलीढ्यं ललाम्यं ता अस्मन्नाशयामसि ॥ ४ ॥

॥ ११९ ॥ (अथर्व० ६।१३९।१-५)

अथर्वा वनस्पतिः (सौभाग्यवर्धनम्)। अनुष्टुप्, १ त्र्यवसाना षट्पदा विराड् जगती।

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम।
शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः।
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥ १ ॥
शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम्।
अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर २
संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद।
अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ॥३॥
यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम्।
एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ४
यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः।
एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥५॥

॥ ११० ॥ (अथर्व० ६।१८।१-३)
अथर्वा । ईर्ष्याविनाशनम् । अनुष्टुप् ।
ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम् ।
अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥ १ ॥
यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा ।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥ २ ॥
अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ॥३॥
॥ १११ ॥ (अथर्व० ७।४५।१-२)
प्रस्कण्वः, २ अथर्वा । ईर्ष्यापनयनं, भेषजम् । अनुष्टुप् ।
जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम् ।
दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् १
अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् ।
एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ॥ २ ॥
॥ ११२ ॥ (अथर्व० ६।१११।१-४)
अथर्वा । अग्निः (उन्मत्ततामोचनम्) । अनुष्टुप् ।
१ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।
इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि
अयं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं
यदानुन्मदितोऽसति ॥ १ ॥
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि २
देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥
पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ४
क्रिमिनाशनम् ।
॥ ११३ ॥ (अथर्व० २।३१।१-५)
काण्वः । मही, चन्द्रमाः (क्रिमिजम्भनम्) । अनुष्टुप्;
२,४ उपरिष्टाद्विराड् बृहती, ३,५ आर्षी त्रिष्टुप् ।
इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव १
दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् ।
अल्गण्डून्त्सर्वान् छलुनान् क्रिमीन्
वचसा जम्भयामसि ॥ २ ॥
अल्गण्डून् हन्मि महता वधेन
दूना अदूना अरसा अभूवन् ।
शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा
यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ॥ ३ ॥
अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ४
ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेषु
ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः
सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ॥ ५ ॥
॥ ११४ ॥ (अथर्व० ५।२३।१-१३)
कण्वः । इन्द्रः (क्रिमिघ्नम्) । अनुष्टुप्, १३ विराट् ।
ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति १
अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि ।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥ २ ॥
यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ३
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥ ४ ॥
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ५
उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ६
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥ ७ ॥
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ॥ ८ ॥

त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥ ९ ॥
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥१०॥
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥११॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः १२
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥१३॥

॥ ११५ ॥ (अथर्व० २।३२।१-६)

काण्वः । आदित्यः (क्रिमिनाशनम्) । अनुष्टुप्, १ त्रिपदा भुरिग्गायत्री, ६ चतुष्पदा निचृदुष्णिक् ।

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु
निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥ १ ॥
विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥ २ ॥
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥ ३ ॥
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥ ४ ॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥५॥
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि ।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥ ६ ॥

॥ ११६ ॥ (अथर्व० ४।३७।१-१२)

बादरायणिः । अजशृङ्गी; १ अप्सरसः, १-२,६,१० ओषधी अजशृङ्गी; ३-५ अप्सरसः; ७-१२ गन्धर्वाप्सरसः (क्रिमिनाशनम्) । अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप्, ५ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ परोष्णिक्, ११ षट्पदा जगती, १२ निचृत् ।

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे ।
त्वया जघान कश्यप-स्त्वया कण्वो अगस्त्यः १
त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे ।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥ २ ॥
नदीं यन्त्वप्सरसो-ऽपां तारमवश्वसम् ।
गुल्गुलूः पीला नलद्यौ-क्षगन्धिः प्रमन्दनी ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ३ ॥
यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ४ ॥
यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना
उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥
एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती ।
अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ॥ ६ ॥
आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः ।
भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥ ७ ॥
भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वा-नवकादान् व्यृषतु ८
भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वा-नवकादान् व्यृषतु ९
अवकादानभिशोचा-नप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च १०
श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियः
तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ ११ ॥
जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥ १२ ॥

॥ ११७ ॥ (अथर्व० १।८।१-४)

चातनः । १-२ बृहस्पतिः, अग्नीषोमौ च; ३-४ अग्निः [जातवेदाः] (यातुधाननाशनम्) । १-३ अनुष्टुप्, ४ बार्हतगर्भा त्रिष्टुप् ।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानक-रिह स स्तुवतां जनः ॥१॥

अयं स्तुवान् आगम—दिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वा—ग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥२॥
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥ ३ ॥
यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ
गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ४

॥ १२८ ॥ (अथर्व० ६।३२।१-३)

चातनः, ३ अथर्वा । १ अग्निः, २ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ (यातुधानक्षयणम्) । त्रिष्टुप्, २ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अन्तर्दावे जुहुता स्वे३तद्
यातुधानक्षयणं घृतेन ।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने
न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥ १ ॥
रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः
पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥ २ ॥
अभयं मित्रावरुणाविहास्तु
नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त
मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ ३ ॥

॥ १२९ ॥ (अथर्व० १।२८।१-४)

चातनः । १-२ अग्निः, ३-४ यातुधानी (रक्षोघ्नम्) । अनुष्टुप्, ३ विराट्पथ्याबृहती, ४ पथ्यापङ्क्तिः ।

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः ।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥१॥
प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥ २ ॥
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ३
पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम् ।
अधा मिथो विकेश्यो३
वि घ्नतां यातुधान्यो३ वि तृह्यन्तामराय्यः ॥ ४ ॥

॥ १३० ॥ (अथर्व० ५।२९।१-१५)

चातनः । जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः (रक्षोघ्नम्) । त्रिष्टुप्; ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री; ५ पुरोऽतिजगती विराड्जगती; १२-१५ अनुष्टुप् (१२ भुरिक्; १४ चतुष्पदा पराबृहती ककुम्मती) ।

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदो
अग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता
त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥ १ ॥
तथा तदग्ने कृणु जातवेदो
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास
यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥ २ ॥
यथा सो अस्य परिधिष्पताति
यथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥ ३ ॥
अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य
जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघास
अग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥ ४ ॥
यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतं
आत्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं
शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥ ५ ॥
आमे सुपक्वे शबले विपक्वे
यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा
वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु ॥ ६ ॥

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भ
अकृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः।
तदात्मना प्रजया पिशाचा
वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु ॥ ७ ॥
अपां मा पाने यतमो ददम्भ
क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा
वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु ॥ ८ ॥
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ
क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा
वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु ॥ ९ ॥
क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं
मनोहनं जहि जातवेदः।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु
च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥ १० ॥
सनादग्ने मृणसि यातुधानान्
न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
सहमूरानतु दह क्रव्यादो
मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ११ ॥
समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम्।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् १२
सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम्।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु ॥१३॥
एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४॥
तार्ष्टाघीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा।
जहातु क्रव्याद् रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति १५

॥ १३१ ॥ (वा० य० ५।२२)
(रक्षोघ्नम्।)

इदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा ऽ अपिकृन्तामि ॥ २२ ॥

॥ १३२ ॥ (अथर्व० ४।२०।१-९)
मातृनामा। मातृनामा (पिशाचक्षयणम्)। अनुष्टुप्।
१ स्वराट्, ९ भुरिक्।

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति।
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति १
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः
षट् चेमाः प्रदिशः पृथक्।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥ २ ॥
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥ ३ ॥
तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥ ४ ॥
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ५
दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६॥
कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ७
उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम्।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥ ८ ॥
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाच प्र दर्शय ॥९॥

॥ १३३ ॥ (अथर्व० ६।७।१-३)
अथर्वा। सोम, अदिति, ३ देवा (असुरक्षयणम्)। गायत्री,
१ निचृत्।

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः।
तेना नोऽवसा गहि ॥ १ ॥
येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः।
तेना नो अधि वोचत ॥ २ ॥
येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम्।
तेना नः शर्म यच्छत ॥ ३ ॥

॥ १३४ ॥ (अथर्व० १९।३६।१)

ब्रह्मा । जातवेदाः सूर्यो वज्रश्च (असुरक्षयणम्) । अतिजगती ।

अयोजाला असुरा मायिनो
अयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः
सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥

॥ १३५ ॥ (अथर्व० १।७।१-७)

चातनः । अग्निः (जातवेदा), ३ अग्नीन्द्रौ (यातुधाननाशनम्) । अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥ १ ॥
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय २
वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः ।
अथेदमग्ने नो हवि—रिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥ ३ ॥
अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमा—नयमस्मीत्येत्य ॥ ४ ॥
पश्याम ते वीर्यं जातवेदः
प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात्
त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥ ५ ॥
आ रभस्व जातवेदो—ऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ६
त्वमग्ने यातुधाना—नुपबद्धाँ इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणा—पि शीर्षाणि वृश्चतु ॥ ७ ॥

विषनाशनम् ।

॥ १३६ ॥ (ऋ० १।१९१।१-१६)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अप्तृणसूर्याः (विषघ्नोपनिषद्) । अनुष्टुप्, १०-१२ महापङ्क्तिः, १३ महाबृहती ।

कङ्कतो न कङ्कतो ऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ १ ॥
अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती ह—न्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥ २ ॥
शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ३
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥
द्यौर्वः पिता पृथिवी माता
सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टा—स्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥
ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ७
उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भय—न्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥
उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥
सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य ।
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १० ॥
इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ ११ ॥
त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १२ ॥
नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामा—ऽऽरे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥
त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव १४

इयत्तकः कुषुम्भक-स्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥ १५ ॥
कुषुम्भकस्तदब्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विष-मरसं वृश्चिक ते विषम् १६

॥ १३७ ॥ (अथर्व० ४।६।१-८)

गरुत्मान् । तक्षकः, १ ब्राह्मणः, २ द्यावापृथिवी, सप्तसिन्धवः, ३ सुपर्णः, ४-८ विषम् (विषघ्नम्) । अनुष्टुप् ।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥१॥
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा
यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥२॥
सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् ।
नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥ ३ ॥
यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरि-र्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्या-न्निरवोचमहं विषम् ॥ ४ ॥
शल्याद् विषं निरवोचं-प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मला-न्निरवोचमहं विषम् ॥५॥
अरसस्त इषो शल्यो-ऽथो ते अरसं विषम् ।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥ ६ ॥
ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् ।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ॥ ७ ॥
वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे ।
वध्रिः स पर्वतो गिरि-र्यतो जातमिदं विषम् ॥८॥

॥ १३८ ॥ (अथर्व० ४।७।१-७)

गरुत्मान् । वनस्पतिः (विषनाशनम्) । अनुष्टुप्, ४ स्वराट् ।

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि ।
तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् ॥ १ ॥
अरसं प्राच्यं विष-मरसं यदुदीच्यम् ।
अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥ २ ॥
करम्भं कृत्वा तिर्यं पीवस्पाकमुदारथिम् ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ३
वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि ।
प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ॥४॥
परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि ।
तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्य-भ्रिखाते न रूरुपः ॥५॥
पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत ।
प्रक्रीरसि त्वमोषधे-ऽभ्रिखाते न रूरुपः ॥ ६ ॥
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन्
तद् व एतत् पुरो दधे ॥ ७ ॥

॥ १३९ ॥ (अथर्व० ६।१००।१-३)

गरुत्मान् । वनस्पतिः (विषदूषणम्) । अनुष्टुप् ।

देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् ।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् ॥ १ ॥
यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् ।
तेन देवप्रसूतेने-दं दूषयता विषम् ॥ २ ॥
असुराणां दुहितासि देवानामसि स्वसा ।
दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ३

॥ १४० ॥ (अथर्व० १०।४।१-२६)

गरुत्मान् । तक्षक (सर्पविषदूरीकरणम्) । अनुष्टुप्; १ पथ्यापङ्क्तिः; २ त्रिपदा यवमध्या गायत्री; ३-४ पथ्याबृहती; ८ उष्णिग्गर्भा परा त्रिष्टुप्; १२ भुरिग्गायत्री; १६ त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री, २१ ककुम्मती; २३ त्रिष्टुप्, २६ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा ककुम्मती भुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो
वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथ स्थाणुमारदथार्षत् ॥ १ ॥
दर्भः शोचिस्तरूणक-मश्वस्य वारः परुषस्य वारः ।
रथस्य बन्धुरम् ॥ २ ॥
अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।
उदप्लुतमिव दार्वहीना-मरसं विषं वारुग्रम् ॥३॥

अरंघुषो निमज्यो—न्मज्य पुनरब्रवीत् ।
उदप्लुतमिव दार्वहीना—मरसं विषं वारुग्रम् ॥४॥
पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् ।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाकाः ॥ ५ ॥
पैद्व प्रेहि प्रथमो—ऽनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ६
इदं पैद्वो अजायते—दमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदा—हिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥ ७ ॥
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् ।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही
स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥ ८ ॥
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिक—महिं दण्डेनागतम् ॥ ९ ॥
अघाश्वस्येदं भेषज—मुभयोः स्वजस्य च ।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्त—महिं पैद्वो अरन्धयत् १०
पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः ।
इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥ ११ ॥
नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥ १२ ॥
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥ १३ ॥
कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।
हिरण्ययीभिरभ्रिभि—र्गिरीणामुप सानुषु ॥ १४ ॥
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च १५
इन्द्रो मेऽहिमरन्धय—न्मित्रश्च वरुणश्च ।
वातापर्जन्योभा ॥ १६ ॥
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् ।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१७॥
इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।
तेषामु तृह्यमाणानां
कः स्वित् तेषामसद् रसः ॥ १८ ॥
सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् ।
सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ॥ १९ ॥
अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः ।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥२०॥
ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया ।
नयाम्यर्वतीरिवा—हे निरैतु ते विषम् ॥ २१ ॥
यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् ।
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् ॥ २२ ॥
ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां
ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति
तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥ २३ ॥
तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ।
अधस्पदेन ते पद—मा ददे विषदूषणम् ॥ २४ ॥
अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय ।
अधा विषस्य यत् तेजो—ऽवाचीनं तदेतु ते २५
आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ।
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ॥ २६ ॥

॥ १११ ॥ (अथर्व० ५।१३।१-११)

गरुत्मान् । तक्षक (सर्पविषनाशनम्) । जगती, २ आस्तार० पङ्क्तिः, ४,७-८ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ पथ्यापङ्क्तिः, ९ भुरिक्, १०-११ निचृद्गायत्री ।

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविः
वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम् ।
खातमखातमुत सक्तमग्रभ
मिरेव धन्वन् नि जजास ते विषम् ॥ १ ॥
(९०८)

यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम्।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसं
उतावमं भियसा नेशदादु ते ॥ २ ॥
वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुः
उग्रेण ते वचसा बाध आदु ते।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं
तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥ ३ ॥
चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ४
कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र
आ मे शृणुतासिता अलीकाः।
मा मे सख्युः स्तामानमपि
ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥ ५ ॥
असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो
वि मुञ्चामि रथाँ इव ॥ ६ ॥
आलिगी च विलिगी च पिता च माता च।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥७॥
उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥ ८ ॥
कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ९
ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम्।
ताबुवेनारसं विषम् ॥ १० ॥
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम्।
तस्तुवेनारसं विषम् ॥ ११ ॥

॥ १४२ ॥ (अथर्व० ७।८८।१)

गरुत्मान्। तक्षकः (सर्पविषनाशनम्)। व्यवसाना बृहती।

अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि।
विषे विषमपृक्था विषमिद् वा अपृक्थाः।
अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि ॥ १ ॥

॥ १४३ ॥ (अथर्व० ६।१२।१-३)

गरुत्मान्। तक्षकः (सर्पविषनिवारणम्)। अनुष्टुप्।

परि द्यामिव सूर्यो ऽहीनां जनिमागमम्।
रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् १
यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा।
यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् २
मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु।
मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ३

॥ १४४ ॥ (अथर्व० ६।५६।१-३)

शन्तातिः। १ विश्वे देवाः, २-३ रुद्रः (सर्पेभ्यो रक्षणम्)।
१ उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः, २ अनुष्टुप्, ३ निचृत्

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान्।
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं
न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः ॥ १ ॥
नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥ २ ॥
सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू।
सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाह आस्यम् ॥३॥

॥ १४५ ॥ (अथर्व० ७।५६।१-८)

अथर्वा। वृश्चिकादयः, २ वनस्पतिः, ४ ब्रह्मणस्पतिः (विषभैषज्यम्)। अनुष्टुप्, ४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम्।
तत् कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् ॥ १ ॥
इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः।
सा विह्रुतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी ॥ २ ॥
यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि।
अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥ ३ ॥
अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो
मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ॥ ४ ॥
अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः।
विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥ ५ ॥

न ते॑ बा॒ह्वोर्बल॑मस्ति॒ न शी॒र्षे नोत म॑ध्य॒तः ।
अथ॒ किं पा॒पया॑मु॒या पुच्छे॑ बिभर्ष्यर्भ॒कम् ॥ ६ ॥
अ॒दन्ति॑ त्वा पिपी॒लिका॒ वि वृ॑श्चन्ति मयू॒र्यः॑ ।
सर्वे॑ भल ब्रवाथ॒ शार्कोटमर॒सं वि॒षम् ॥ ७ ॥
य उ॒भाभ्यां॑ प्र॒हर॑सि॒ पुच्छे॑न चा॒स्ये॒ऽन च ।
आ॒स्ये॒३॒॑ न ते॑ वि॒षं किमु॑ ते पुच्छ॒धाव॑सत् ॥८॥

जलचिकित्सा ।

॥ १४६ ॥ (अथर्व० ६।५७।१-३)

शन्तातिः । रुद्रः । १-२ अनुष्टुप्, ३ पथ्याबृहती ।

इ॒दमिद् वा उ॑ भेष॒ज-मि॒दं रु॒द्रस्य॑ भेष॒जम् ।
येनेषु॒मेक॑तेजनां श॒तश॑ल्यामप॒ब्रव॑त् ॥ १ ॥
जा॒ला॒षेणा॒भि षि॑ञ्चत जा॒ला॒षेणोप॑ सिञ्चत ।
जा॒ला॒षमु॒ग्रं भे॑ष॒जं तेन॑ नो मृड जी॒वसे॑ ॥ २ ॥
शं च॑ नो॒ मय॑श्च नो॒ मा च॑ नः॒ किं च॒नाम॑मत् ।
क्ष॒मा रपो॒ विश्वं॑ नो अस्तु भेष॒जं
सर्वं॑ नो अस्तु भेष॒जम् ॥ ३ ॥

॥ १४७ ॥ (ऋ० १।२३।१६-२३)

मेधातिथिः काण्वः आपः, २३ आपः अग्निश्च । १६-१८ गायत्री, १९ पुर उष्णिक्, २१ प्रतिष्ठा । २०, २२-२३ अनुष्टुप् ।

अ॒म्बयो॑ य॒न्त्यध्व॑भि-र्जा॒मयो॑ अध्वरीय॒ताम् ।
पृ॒ञ्च॒तीर्मधु॑ना॒ पयः॑ ॥ १६ ॥
अ॒मूर्या उप॒ सूर्ये॒ याभि॑र्वा॒ सूर्यः॑ स॒ह ।
ता नो॑ हिन्वन्त्वध्व॒रम् ॥ १७ ॥
अ॒पो दे॒वीरुप॑ ह्वये॒ यत्र॒ गावः॒ पिब॑न्ति नः ।
सिन्धु॑भ्यः॒ कर्त्वं॑ ह॒विः ॥ १८ ॥
अ॒प्स्व१॒॑न्तर॒मृत॑म॒प्सु भे॑ष॒ज-म॒पामु॒त प्रश॑स्तये ।
देवा॒ भव॑त वा॒जिनः॑ ॥ १९ ॥
अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवी-द॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा ।
अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वश॑म्भुव-मापश्च॑ वि॒श्वभे॑षजीः ॥ २० ॥
आपः॑ पृणी॒त भे॑ष॒जं वरू॑थं त॒न्वे॒३॒॑ मम॑ ।
ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ २१ ॥
इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हत॒ यत् किं च॑ दुरि॒तं मयि॑ ।
यद् वा॒हम॑भिदु॒द्रोह॒ यद् वा॑ शे॒प उ॒तानृ॑तम् ॥२२॥
आपो॑ अ॒द्यान्व॑चारिषं॒ रसे॑न॒ सम॑गस्महि ।
पय॑स्वानग्न॒ आ ग॑हि॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ॥२३॥

॥ १४८ ॥ (ऋ० ७।४७।१-४)

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।

आपो॒ यं वः॑ प्रथ॒मं दे॑व॒यन्त॑
इन्द्र॒पान॑मू॒र्मिमकृ॑ण्वते॒ळः ।
तं वो॑ व॒यं शुचि॑मरि॒प्रम॒द्य
घृ॑त॒प्रुषं॒ मधु॑मन्तं वनेम ॥ १ ॥
तमू॒र्मिमा॑पो॒ मधु॑मत्तमं वो॒
ऽपां नपा॑दवत्वाशु॒हेमा॑ ।
यस्मि॒न्निन्द्रो॒ वसु॑भिर्मा॒दया॑ते
तम॑श्याम देव॒यन्तो॑ वो अ॒द्य ॥ २ ॥
श॒तप॑वित्राः स्व॒धया॒ मद॑न्तीः
दे॒वीर्दे॒वाना॒मपि॑ यन्ति॒ पाथः॑ ।
ता इन्द्र॑स्य॒ न मि॑नन्ति व्र॒तानि॒
सिन्धु॑भ्यो ह॒व्यं घृ॒तव॑ज्जुहोत ॥ ३ ॥
याः सूर्यो॑ र॒श्मिभि॑रात॒तान॒
याभ्य॒ इन्द्रो॒ अर॑दद् गा॒तुमू॒र्मिम् ।
ते सि॑न्धवो॒ वरि॑वो धातना नो
यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ४ ॥

॥ १४९ ॥ (ऋ० ७।४९।१-३)

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।

स॒मु॒द्रज्ये॑ष्ठाः सलि॒लस्य॒ मध्या॑त्
पुना॒ना य॒न्त्यनि॑विशमानाः ।
इन्द्रो॒ या व॒ज्री वृ॑ष॒भो र॒राद॒
ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥ १ ॥

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥ ४ ॥
य उदानड् व्ययनं न उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तन-मपि गोपा नि वर्तताम् ॥५॥
आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि ।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥ ६ ॥
परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञिया-स्ते रय्या सं सृजन्तु नः ७
आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिश-स्ताभ्य एना नि वर्तय ॥८॥

॥ १५३ ॥ (ऋ० १०।३०।१-१५)

कवष ऐलूषः । आपः, अपां नपाद् वा । त्रिष्टुप् ।

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु
अपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं
पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥ १ ॥
अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूत
अच्छाप इतोशतीरुशन्तः ।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णः
तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ॥ २ ॥
अध्वर्यवोऽप इता समुद्र
अपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो ददूर्मिमद्या सुपूतं
तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥ ३ ॥
यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तः
यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा
याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥ ४ ॥
याभिः सोमो मोदते हर्षते च
कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि
यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ॥ ५ ॥
एवेद्यूने युवतयो नमन्त
यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रे
अध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥ ६ ॥
यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं
यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं
देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥ ७ ॥
प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं
गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेषु
आपो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥ ८ ॥
तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानं
ऊर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां
परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥ ९ ॥
आवर्वृततीरध नु द्विधारा
गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीः
अपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥ १० ॥
हिनोता नो अध्वरं देवयज्या
हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः
श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥ ११ ॥
आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः
क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः
सरस्वती तद् गृणते वयो धात् ॥ १२ ॥
(१०००)

॥ १५७ ॥ (अथर्व० १९।२।१-५)

सिन्धुद्वीपः । आपः । अनुष्टुप् ।

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः १
शं त आपो धन्वन्या३ः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः२
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥३॥
अपामह दिव्याना—मपां स्रोतस्यानाम् ।
अपामह प्रणेजने—ऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥
ता अपः शिवा अपो—ऽयक्ष्मंकरणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस्ता—स्त आ दत्त भेषजीः ॥५॥

॥ १५८ ॥ (अथर्व० १९।६९।१-४)

ब्रह्मा । आपः । १ आसुर्यनुष्टुप्; २ साम्न्यनुष्टुप्, ३ आसुरी गायत्री; ४ साम्न्युष्णिक् ।

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥
उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् २
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ३
जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

॥ १५९ ॥ (वा० य० १।१२-१३, २१, ३१)

(आपः ।)

सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्य
च्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोऽग्र
इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपति२
सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥
युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये
यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ ॥ १३ ॥
समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन ।
स२रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ता२
सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥
सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्य
च्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ३१ ॥

॥ १६० ॥ (वा० य० २।२, ३४)

(आपः ।)

अदित्यै व्युन्दनमसि ॥ २ ॥
ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ ३४ ॥

॥ १६१ ॥ (वा० य० ४।१, १२)

(आपः ।)

इमा आपः शमु मे सन्तु देवीः ॥ १ ॥
श्वात्राः पीता भवत यूयमापो
अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः ।
ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः
स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावृधः ॥ १२ ॥

॥ १६२ ॥ (वा० य० ५।११)

(आपः ।)

इदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निः सृजामि ॥ ११ ॥

॥ १६३ ॥ (वा० य० ६।१०, १३, ३०-३१)

(आपः ।)

आपो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद् देवहविः १०
देवीरापः शुद्धा वोढ्व२ सुपरिविष्टा
देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास ॥ १३ ॥
निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥
मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत
चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत
प्रजां मे तर्पयत पशून् मे तर्पयत
गणान् मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥

॥ १६४ ॥ (व० य० ६।१७, २१, २४, २७-२८)

(आप ।)

इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हता—व॒द्यं च॒ मलं॑ च॒ यत् ।
यच्चा॑भिदु॒द्रोहानृ॑तं॒ यच्च॑ शे॒पे अ॑भी॒रुण॑म् ।
आपो॑ मा॒ तस्मा॒देन॑सः—पव॑मानश्च मुञ्चतु ॥१७॥
माऽपो मौष॑धीर्हि॑ꣳसीः ।
सु॒मि॒त्रि॒या न॒ आप॒ ओष॑धयः सन्तु ।
यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ २२ ॥
अ॒ग्नेर्वो॒ऽपन्न॑गृहस्य॒ सद॑सि सादयामि
इ॒न्द्रा॒ग्न्योर्भा॑ग॒धेयी॑ स्थ मि॒त्रावरु॑णयोर्भाग॒धेयी॑ स्थ
विश्वे॑षां दे॒वानां॑ भाग॒धेयी॑ स्थ ।
अ॒मूर्या उप॒ सूर्ये॒ याभि॑र्वा॒ सूर्यः॑ स॒ह ।
ता नो॑ हिन्वन्त्वध्व॒रम् ॥ २४ ॥
देवी॑रापो अपां नपा॒द्यो व॑ ऊ॒र्मिः
ह॒वि॒ष्य॒ इन्द्रि॒यावा॑न् म॒दिन्त॑मः ।
तं दे॒वेभ्यो॑ देव॒त्रा द॑त्त
शु॒क्र॒पेभ्यो॒ येषां॑ भा॒ग स्थ॒ स्वाहा॑ ॥ २७ ॥
समु॒द्रस्य॒ त्वा क्षित्या॒ उन्न॑यामि ।
समापो॑ अ॒द्भिर॑ग्मत॒ समोष॑धी॒भिरोष॑धीः ॥ २८ ॥

॥ १६५ ॥ (वा० य० ८।९६)

यदि॑ वृ॒क्षाद॒भ्यप॑प्तत् फ॒लं तद्
यद्य॒न्तरि॑क्षा॒त् स उ॑ वा॒युरे॒व ।
यत्रास्पृ॑क्षत् त॒न्वो॒ यच्च॒ वास॑स
आपो॑ नुदन्तु॒ निर्ऋ॑तिं परा॒चैः ॥ २ ॥
अ॒भ्य॒ञ्जनं॑ सुर॒भि सा समृ॑द्धिः
हिर॑ण्यं॒ वर्च॒स्तदु॑ पू॒त्रिम॑मेव ।
सर्वा॑ प॒वित्रा॒ वित॒ताध्य॒स्मत्
तन्मा॑ तारी॒न्निर्ऋ॑ति॒र्मो अरा॑तिः ॥ ३ ॥

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ७।७।८९।१-४)

सिन्धुद्वीपः । अग्निः (दिव्या आपः) । अनुष्टुप् । ४ त्रिपदा निचृत् परोष्णिक् ।

अ॒पो दि॒व्या अ॑चायिषं॒ रसे॑न॒ सम॑पृक्ष्महि ।
पय॑स्वानग्न॒ आग॑मं॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ॥ १ ॥
सं मा॑ग्ने॒ वर्च॑सा सृज॒ सं प्र॒जया॒ समायु॑षा ।
वि॒द्युर्मे॑ अ॒स्य दे॒वा इन्द्रो॑ विद्यात् स॒ह ऋषि॑भिः २
इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हता—व॒द्यं च॒ मलं॑ च॒ यत् ।
यच्चा॑भिदु॒द्रोहानृ॑तं॒ यच्च॑ शे॒पे अ॒भीरु॑णम् ॥ ३ ॥
एधो॑ऽस्येधिषी॒य स॒मिद॑सि॒ समे॑धिषीय ।
तेजो॑ऽसि॒ तेजो॒ मयि॑ धेहि ॥ ४ ॥

॥ १७० ॥ (अथर्व० ६।२२।१-३)

शन्तातिः । १ आदित्यरश्मिः; २-३ मरुतः (भैषज्यम्) । त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदा भुरिग्जगती ।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा
अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य
आदिद् घृतेन पृथिवीं व्यू दुः ॥ १ ॥
पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः
शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत
यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥ २ ॥
उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त
वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्ना
एरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥ ३ ॥

॥ १७१ ॥ (अथर्व० ६।२३।१-३)

शन्तातिः । आपः (अपां भैषज्यम्) । १ अनुष्टुप्, २ त्रिपदा गायत्री, ३ परोष्णिक् ।

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥ १ ॥
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये ।
सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥ २ ॥
देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥ ३ ॥

॥ १७२ ॥ (अथर्व० ६।२४।१-३)

शन्तातिः । आपः (अपां भैषज्यम्) । अनुष्टुप् ।

हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् ॥ १ ॥
यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥ २ ॥
सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥ ३ ॥

॥ १७३ ॥ (ऋ० ५।८३।१-१०)

भौमोऽत्रिः । पर्जन्यः । त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ९ अनुष्टुप् ।

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः
स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू
रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो
विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो
यत् पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥ २ ॥
रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्
आविर्दूतान् कृणुते वर्ष्याँ अह ।
दूरात् सिंहस्य स्तनथा उदीरते
यत् पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥ ३ ॥
प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत
उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते
यत् पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥ ४ ॥
यस्य व्रते पृथिवी नंनमीति
यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः
स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ५ ॥
दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं
प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥ ६ ॥
अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा
उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं
समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥ ७ ॥

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च
स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि
सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥ ८ ॥

यत् पर्जन्य कनिक्रदत्
स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते
यत् किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभाय
अकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय
कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥ १० ॥

॥ १७४ ॥ (ऋ० १०।२७।१६)

ऐन्द्री वसुक्र । इन्द्रः (पर्जन्यः) । त्रिष्टुप् ।

दशानामेकं कपिलं समानं
तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्व
वेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥ १६ ॥

॥ १७५ ॥ (ऋ० ७।१०१।१-६)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा ।
पर्जन्यः । त्रिष्टुप् ।

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा
या एतद् दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां
सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां
यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्
त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्यस्मे ॥ २ ॥

स्तरीरु त्वद् भवति सूत उ त्वद्
यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता
तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥ ३ ॥

यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः
तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो
मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ४ ॥

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे
हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे
सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥ ५ ॥

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां
तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ १७६ ॥ (ऋ० ७।१०२।१-३)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः (वृष्टिकाम), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः ।
गायत्री, २ पादनिचृत् ।

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे ।
स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् ।
पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् ।
इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥

॥ १७७ ॥ (ऋ० ७।१०३।१-१०)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मण्डूकाः (पर्जन्यः) । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप् ।

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१॥

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्
दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां
मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ २ ॥

यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्
तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो
अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥ ३ ॥

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोः
अपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्
पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥ ४ ॥

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं
शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व
यत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ ५ ॥

गोमायुरेको अजमायुरेकः
पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः
पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥ ६ ॥

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे
सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ
यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥ ७ ॥

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत
ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना
आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ॥ ८ ॥

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य
ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां
तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९ ॥

गोमायुरदादजमायुरदात्
पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।
गवां मण्डूका ददतः शतानि
सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ १० ॥

॥ १७८ ॥ (अथर्व० ४।१५।१-१६)

अथर्वा । १ दिशः, २-३ वीरुधः, ४ मरुत्पर्जन्यौ, ५-१० मरुतः आपः, ११ प्रजापतिः स्तनयित्नुः, १२ वरुणः, १३-१५ मण्डूकाः पितरश्च, १६ वातः (दृष्टिः) । त्रिष्टुप्; १-२, ५ विराड् जगती, ४ विराट् पुरस्ताद्बृहती, ७-१३ अनुष्टुप्, ९ पथ्यापङ्क्तिः, १० भुरिक्, १२ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा भुरिक्, १५ शङ्कुमत्यनुष्टुप् ।

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः
समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो
वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥ १ ॥

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवः
अपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं
पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥ २ ॥

समीक्षयस्व गायतो नभांसि
अपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं
पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ॥ ३ ॥

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः
पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ४ ॥

उदीरयत मरुतः समुद्रतः
त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो
वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥ ५ ॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं
भूमिं पर्जन्य पर्यसा समंङ्ग्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षं
आशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥ ६ ॥

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ७ ॥
आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥ ८ ॥
आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु
सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥ ९ ॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो
य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः
प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥ १० ॥

प्रजापतिः सलिलादा समुद्राद्
आप ईरयन्नुदधिमर्दयाति ।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतः
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥ ११ ॥

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु
गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥ १२ ॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः १३
उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि ।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥ १४ ॥
खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि ।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥ १५ ॥
महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च
सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा
आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥ १६ ॥

॥ १७९ ॥ (अथर्व० ७।१८।१-२)

अथर्वा । पृथिवी, पर्जन्यः (वृष्टिः) । १ चतुष्पदा भुरिगुष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।

प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धी३दं दिव्यं नभः ।
उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् १
न घ्रंस्तताप न हिमो जघान
प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति
यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ॥ २ ॥

॥ १८० ॥ (ऋ० ३।३३।१-१३)

गाथिनो विश्वामित्रः । ४,६,८,१० नद्यः ऋषिकाः । नद्यः, ४,८,१० विश्वामित्रः; ६,७ इन्द्र । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

प्र पर्वतानामुशती उपस्थाद्
अश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे
विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे
अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने
अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २ ॥

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं
विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे
समानं योनिमनु संचरन्ती ॥ ३ ॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना
अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः
किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय
ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा
अवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ ५ ॥
इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहुः
अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत् सविता सुपाणिः
तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥ ६ ॥
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ तद्
इन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघान
आयन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ ७ ॥
एतद् वचो जरितर्मापि मृष्ठा
आ यत् ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व
मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥ ८ ॥
ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत
ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा
अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥
आ ते कारो शृणवामा वचांसि
ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा
मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ १० ॥
यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुः
गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त
आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥ ११ ॥
अतारिषुर्भरता गव्यवः सं
अभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा
आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥ १२ ॥
उद् व ऊर्मिः शम्या हन्तु
आपो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसा ऽघ्न्यौ शूनमारताम् ॥ १३ ॥

॥ १८१ ॥ (ऋ० ७।१०।४)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । नद्यः । अतिजगती शक्वरी वा ।

याः प्रवतो निवत उद्वत
उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः
शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥

॥ १८२ ॥ (ऋ० १०।७५।१-९)

सिन्धुक्षित् प्रैयमेधः । नद्यः । जगती ।

प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं
कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः
प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥ १ ॥
प्र तेऽरदद् वरुणो यातवे पथः
सिन्धो यद् वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना
यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥ २ ॥
दिवि स्वनो यतते भूम्योपरि
अनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः
सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥ ३ ॥
अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो
वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित् सिचौ
यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥ ४ ॥

(१०७०)

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया
आर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ५ ॥

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः
सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं
मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥ ६ ॥

ऋजीत्येनी रुशती महित्वा
परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तम
अश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥ ७ ॥

स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा
हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावति
उताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥ ८ ॥

सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं
तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ ।
महान् ह्यस्य महिमा पनस्यते
अदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ॥ ९ ॥

॥ १८३ ॥ (ऋ० ७।९५।३)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वान् । त्रिष्टुप् ।

स वावृधे नर्यो योषणासु
वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति
वि सातये तन्वं मामृजीत ॥ ३ ॥

॥ १८४ ॥ (ऋ० ७।९६।४-६)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वान् । गायत्री ।

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।
सरस्वन्तं हवामहे ॥ ४ ॥

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः ।
तेभिर्नोऽविता भव ॥ ५ ॥

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥

॥ १८५ ॥ (अथर्व० ७।४०।१-२)
प्रस्कण्वः । सरस्वान् । १ भुरिक्, २ त्रिष्टुप् ।

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे
यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टः
तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥ १ ॥

आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं
सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना
इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥ २ ॥

॥ १८६ ॥ (ऋ० १।३।१०-१२)
मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । सरस्वती । गायत्री ।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

॥ १८७ ॥ (ऋ० १।१६४।४९)
दीर्घतमा औचथ्यः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूः
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः
सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४९ ॥
(१०४१)

॥ १८८ ॥ (ऋ० १।२०।८ [पूर्वार्धः])

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः) शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि
मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ॥ ८ ॥

॥ १८९ ॥ (ऋ० २।४१।१६-१८)

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः) शौनकः । सरस्वती । अनुष्टुप्, १८ बृहती ।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि १६
त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः १७
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि
प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥

॥ १९० ॥ (ऋ० ६।६१।१-१४)

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । सरस्वती । गायत्री, १-३, १३ जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

इयमददाद् रभसमृणच्युतं
दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं
ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १ ॥
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥
सरस्वति देवनिदो नि बर्हय
प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो
विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥
प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥
यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते ।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥
त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि ।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥
उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः ।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः ।
अमश्चरति रोरुवत् ॥ ८ ॥
सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी ।
अतन्नहेव सूर्यः ॥ ९ ॥
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥
आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् ।
सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥
त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती ।
वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ १२ ॥
प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते
द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृता
उपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो
माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च
मा त्वत् क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥

॥ १९१ ॥ (ऋ० ७।९५।१-२,४-६)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा
सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति
विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥ १ ॥

एकाचेतत् सरस्वती नदीनां
शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेः
घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ २ ॥

उत स्या नः सरस्वती जुषाणा
उप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन्।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना
राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः
प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना
उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो
द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ १९२ ॥ (ऋ० ७।९६।१-३)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वती । १-२ प्रगाथः- (१ बृहती, २ सतो बृहती), ३ प्रस्तारपङ्क्तिः।

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम्।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः
स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥

उभे यत् ते महिना शुभ्रे अन्धसी
अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा
चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

भद्रमिद् भद्रा कृणवत् सरस्वति
अकवारी चेतति वाजिनीवती।
गृणाना जमदग्निवत् स्तुवाना च वसिष्ठवत् ३

॥ १९३ ॥ (ऋ० १०।१७।१-२,७-९)

देवश्रवा यामायनः । १-२ सरण्यूः, ७-९ सरस्वती । त्रिष्टुप्।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति
इतीदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना
महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ १ ॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः
कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीद्
अजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ २ ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते
सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त
सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ७ ॥

सरस्वति या सरथं ययाथ
स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्व
अनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ८ ॥

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते
दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं
रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥ ९ ॥

॥ १९४ ॥ (अथर्व० ७।१०।१)

शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप्।

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूः
यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि
सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ १ ॥

॥ १९५ ॥ (अथर्व० ७।११।१)

शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप्।

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो
दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम्।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं
मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥ १ ॥

॥ १९६ ॥ (अथर्व० ७।७१।१-२)
वामदेवः । सरस्वती । जगती ।

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे
यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं
सरस्वती तदा पृणद् घृतेन ॥ १ ॥
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते
पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि ।
उभे इदस्योभे अस्य राजत
उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः ॥ २ ॥

॥ १९७ ॥ (अथर्व० ७।६८।१-३)
शन्तातिः । सरस्वती । १ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ३ गायत्री ।

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ १ ॥
इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वति
इदं पितॄणां हविरास्यं यत् ।
इमानि त उदिता शंतमानि
तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥ २ ॥
शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ॥ ३ ॥

॥ १९८ ॥ (वा० य० १०।१-४,६,१९)
(आपः ।)

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्
ऊर्जस्वती राजस्वश्चितानाः ।
याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्
याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥ १ ॥
वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥
अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
आपः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
आपः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि
अपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा
अपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
आपः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां
महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना
अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो
महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥ ४ ॥

सवितुर्वः प्रसव उत्पुनामि
अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः
सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥
प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठात्
नावश्चरन्ति स्वसिच इयानाः ।
ता आववृत्रन्नधरागुदक्ता
अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः ॥ १९ ॥

॥ १९९ ॥ (वा० य० ११।३८)
(आप ।)

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ।
तासामास्थानादुज्जिहता—मोषधयः सुपिप्पलाः ३८

॥ २०० ॥ (वा० य० ११।३५,५५)
(आप ।)

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्
स्योने कृणुध्वं सुरभा उ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीः
मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वेनत् ॥ ३५ ॥
ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन् देवानां विश— स्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥५५॥

॥ २०१ ॥ (वा० य० १४।८)
(आप)

अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव
चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

॥ २०२ ॥ (वा० य० २०।१८-२०,२२-२३)
(आपः ।)

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति
शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च ।
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिष
अव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ १८ ॥
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः
सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १९ ॥
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्य—मापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ २० ॥
अपो अद्यान्वचारिषं रसेन समसृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज
वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥ २२ ॥
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ २३ ॥

अन्नादिकम् ।

॥ २०३ ॥ (ऋ० १।१८७।१-११)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अन्नम् । १ अनुष्टुब्गर्भा उष्णिक्, ३,५-७,११ अनुष्टुभः (११ बृहती वा), २,४,८-१० गायत्री ।

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे ।
अस्माकमविता भव ॥ २ ॥
उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ३ ॥
तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः ।
दिवि वाता इव श्रिताः ॥ ४ ॥
तव त्ये पितो ददत— स्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥ ५ ॥
त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥ ६ ॥
यददो पितो अजगन् विवस्व पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन्नो मधो पितो ऽरं भक्षाय गम्याः ॥ ७ ॥
यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे ।
वातापे पीव इद्भव ॥ ८ ॥

यत् ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे ।
वातापे पीव इद् भव ॥ ९ ॥
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः ।
वातापे पीव इद् भव ॥ १० ॥
तं त्वा वयं पितो वचोभिः
गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादं
अस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ ॥

॥ २०४ ॥ (अथर्व० ६।७१।१-३)
ब्रह्मा । अग्निः, ३ वैश्वानरः, देवाः (अन्नम्) । जगती, ३ त्रिष्टुप् ।

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं
हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहं
अग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ १ ॥
यन्मा हुतमहुतमाजगाम
दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीति
अग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २ ॥
यदन्नमद्म्यनृतेन देवा
दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना
शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥ ३ ॥

॥ २०५ ॥ (अथर्व० ७।५८।१-२)
कौरुपथिः । इन्द्रावरुणौ (अन्नम्) । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं
सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये
प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥ १ ॥
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः
सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्य
अस्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥ २ ॥

॥ २०६ ॥ (अथर्व० ६।१४२।१-३)
विश्वामित्रः । वायुः (अन्नसमृद्धिः) । अनुष्टुप् ।

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव ।
मृणीहि विश्वा पात्राणि
मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥ १ ॥
आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि ।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥ २ ॥
अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः ।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥३॥

॥ २०७ ॥ (अथर्व० ११।३।१-५६)
[प्रथमः पर्यायः । १-३१]
अथर्वा । ओदनः (बार्हस्पत्यौदनः) ।
१,१४ आसुरी गायत्री, २ त्रिपदा समविषमा गायत्री; ३, ६,१० आसुरी पङ्क्तिः; ४,८ साम्न्यनुष्टुप्; ५,१३,१५,२५ साम्न्युष्णिक्; ७,१९-२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ९,१७-१८ आर्च्यनुष्टुप्; ११ भुरिगार्च्यनुष्टुप्; १२ याजुषी जगती, १६,२३ आसुरी बृहती; २४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती; २६ आर्च्युष्णिक्; २७-२९ साम्नी बृहती (२८-२९ भुरिक्); ३० याजुषी त्रिष्टुप्; ३१ अल्पशः पङ्क्तिरुत याजुषी ।

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥
द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी
सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥ २ ॥
चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥ ३ ॥
दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥४॥
अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥ ५ ॥
कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥ ६ ॥
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥७॥
त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥
खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥
इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति
राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥ ११ ॥
(२१९५)

सीताः पर्शवः सिकता ऊवध्यम् ॥ १२ ॥
ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥ १३ ॥
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥ १५ ॥
बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मो३ऽभीन्धे ॥ १८ ॥
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥
यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१ ॥
तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् २२
स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३ ॥
नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन
इति नेदं च किं चेति ॥ २४ ॥
यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥
ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं
प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति ॥ २६ ॥
त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति ॥ २७ ॥
पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा
हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८ ॥
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा
हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥
नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥
ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥

[द्वितीय॰ पर्यायः । ३२-४९]

मन्त्रोक्ताः। ३२,३८,४१ (प्रथमा), ३२-४९ (सप्तमी) साम्नी त्रिष्टुप्; ३२,३५,४२ (द्वितीया), ३२-४९ (तृतीया), ३३-३४,४४-४८ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुरी गायत्री; ३२, ४१,४३,४७ दैवी जगती; ३८,४४,४६ (द्वि॰) ३२,३५-४३,४९ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्। ३२-४९ (षष्ठी) साम्न्यनुष्टुप्; ३३-४९ (प्र॰) आर्च्यनुष्टुप्। ३७ (प्र॰) साम्नी पङ्क्तिः; ३३,३६,४०,४७-४८ (द्वि॰) आसुरी जगती; ३४,३७,४१,४३,४५ (द्वि॰) आसुरी पङ्क्तिः; ३४ (चतुर्थी) आसुरी त्रिष्टुप्; ३५,४६,४८ (च॰) याजुषी गायत्री; ३६-३७-४० (च॰) दैवी पङ्क्तिः; ३८-३९ (च॰) प्राजापत्या गायत्री, ३९ (द्वि॰) आसुर्युष्णिक्, ४२, ४५,४९ (चतुर्थी) दैवी त्रिष्टुप्; ४९ (द्वि॰) एकपदा भुरिक्साम्नी बृहती।

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
बृहस्पतिना शीर्ष्णा ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३२

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३३

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३४
ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मणा मुखेन ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३५
ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
अग्नेर्जिह्वया ॥ ४ ॥
तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३६
ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं
पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
ऋतुभिर्दन्तैः ॥ ४ ॥
तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३७
ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं
पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सप्तर्षिभिः प्राणापानैः ॥ ४ ॥
तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३८
ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षेण व्यचसा ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३९
ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
दिवा पृष्ठेन ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४०
ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
पृथिव्योरसा ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४१
ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सत्येनोदरेण ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४२
ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
समुद्रेण वस्तिना ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४३
ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४४
ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
स्रामो भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४५
ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
अश्विनोः पादाभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४६
ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सवितुः प्रपदाभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४७
ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥

(११५८)

ब्राह्मणं हंनिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
ऋतस्य हस्ताभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४८

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सत्ये प्रतिष्ठाय ॥ ४ ॥
तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४९

[तृतीयः पर्यायः । ५०-५६]

मन्त्रोक्ताः । ५० आसुर्यनुष्टुप्; ५१ आर्च्युष्णिक्; ५२ त्रिपदा भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्; ५३ आसुरी बृहती; ५४ द्विपदा भुरिक् साम्नी बृहती; ५५ साम्न्युष्णिक्; ५६ प्राजापत्या बृहती ।

एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥ ५० ॥
ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते
य एवं वेद ॥ ५१ ॥
एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं
लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२ ॥
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३ ॥
स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ५४
न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५ ॥
न च सर्वज्यानिं जीयते
पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥

॥ २०८ ॥ (अथर्व० ९।५।१-३८)

भृगुः । पञ्चौदनोऽजः; मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप्; ३ चतुष्पदा पुरोऽतिशक्वरी जगती; ४,१० जगती; १४,१७,२७-३० अनुष्टुप् (३० ककुम्मती); १६ त्रिपदाऽनुष्टुप्; १८,३७ त्रिपदा विराड् गायत्री; २३ पुर उष्णिक्; २४ पञ्चपदाऽनुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्विराड जगती; २०-२२,२६ पञ्चपदाऽनुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्बार्हता भुरिक्; ३१ सप्तपदाऽष्टिः; ३२-३५ दशपदा प्रकृतिः, ३६ दशपदाऽऽकृतिः; ३८ एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां
लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्ति
अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥
इन्द्राय भागं परि त्वा नयामि
अस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्व
अनागसो यजमानस्य वीराः ॥ २ ॥
प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार
शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्
अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥
अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां
विशस्तर्यथापर्व1सिना माभि मंस्थाः ।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं
तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥ ४ ॥
ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या
सिञ्चोदकमव धेह्येनम् ।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः
शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ५ ॥
उत् क्रामातः परि चेदतप्तः
तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ
ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥ ६ ॥

(११८४)

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुः
अजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरं
अस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥ ७ ॥
पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतां
आक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं
तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ८ ॥
अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः
शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः
स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥ ९ ॥
अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे
नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो
विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥ १० ॥
एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं
पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरं
अस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥ ११ ॥
ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन्
पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं
शिवोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥ १२ ॥
अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद्
विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं
तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥ १३ ॥
अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम् ।
तथा लोकान्समाप्नोति
ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥ १४ ॥
एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः
सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां
नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ ॥ १५ ॥
अजोऽस्यज स्वर्गोऽसि त्वया
लोकमङ्गिरसः प्राजानन् ।
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥ १६ ॥
येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १७ ॥
अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति
पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥ १८ ॥
यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु
या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके
जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥ १९ ॥
अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत
तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥
सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं
सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥२१॥
अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्धे ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २२ ॥
नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् ।
सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥ २३ ॥
इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २४ ॥
पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा
पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २५ ॥
(१३०३)

पञ्चं रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति
घर्मं वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥
या पूर्वं पतिं वित्वाथान्यं विन्दतेऽपरम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः २७
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २८
अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् २९
आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥३०॥
यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद ।
एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥
यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद ।
कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३२ ॥
यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद ।
संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३३ ॥
यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद ।
पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३४ ॥
यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद ।
उद्यतींमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा उद्यन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३५ ॥
यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद ।
अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥
अजं च पचत पञ्च चौदनान् ॥
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः
सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥ ३७ ॥
तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं
ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥ ३८ ॥

॥ ७०९ ॥ (अथर्व० ९।३४।१-८)

अथर्वा । ब्रह्मौदनम् । त्रिष्टुप्, ४ उत्तमा भुरिक्, ५ त्र्यवसाना सप्तपदा कृतिः; ६ पञ्चपदातिशक्वरी, ७ भुरिक् शक्वरी, ८ जगती ।

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं
वामदेव्यमुदरमोदनस्य
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं
विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥ १ ॥

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् ।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः
स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥ २ ॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति
नैनानवर्तिः सचते कदा चन ।
आस्ते यम उप याति देवान्
सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥ ३ ॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति
नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः ।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते
पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥ ४ ॥

एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो
विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश ।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति
बिसं शालूकं शफको मुलाली ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमानाः
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ५ ॥

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमानाः
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ६ ॥

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि
क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमानाः
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ७ ॥

इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु
विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो
विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥ ८ ॥

॥ २१० ॥ (अथर्व० ११।१।१-३७)

ब्रह्मा । ओदनः (ब्रह्मौदनम्) । त्रिष्टुप् ; १ अनुष्टुब्गर्भा भुरिक्पङ्क्तिः, २ बृहतीगर्भा विराट्, ३ चतुष्पदा शाक्वरगर्भा जगती; ४,१५-१६, २९, ३१ भुरिक् ; ५ बृहतीगर्भा, विराट्; ६ उष्णिक्; ८ विराड् गायत्री, ९ शाक्वरातिजागतगर्भा जगती; १० विराट् पुरोऽतिजगती विराड्जगती; ११ जगती, १७,२१, २४-२६, ३७ विराड् जगती; १८ अतिजागतगर्भा परातिजागता विराडतिजगती; २० अतिजागतगर्भा परा शाक्वरा चतुष्पदा भुरिग्जगती; २७ अतिजागतगर्भा जगती, ३५ चतुष्पदा ककुम्मत्युष्णिक् ; ३६ पुरोविराट् (व्याघ्रादिष्ववगन्तव्या)

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं
ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते
त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥

कृणुत धूमं वृषणः सखायः
अद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो
येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २ ॥

अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय
ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्
अस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ३ ॥

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व
विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद
उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो
देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।
अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो
यो देवानां स इमां पारयाति ॥ ५ ॥

अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि
नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च
सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥ ६ ॥
साकं सजातैः पयसा सहैधि
उदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं
स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥ ७ ॥
इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म
पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ८ ॥
एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि
निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव
ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥ ९ ॥
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त
आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे
तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥ १० ॥
इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं
गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवो
अस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ११ ॥
उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं
वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्याम
अधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ १२ ॥
परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रं
अपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन्
विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥ १३ ॥
एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना
उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या
त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥ १४ ॥
ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा वः
ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित्
प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥ १५ ॥
अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षत्
शुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागं
इमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥ १६ ॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा
आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः
पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥ १७ ॥
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन
सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुः
इमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥ १८ ॥
उरुः प्रथस्व महता महिम्ना
सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं
पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥ १९ ॥
सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो
ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान्
बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥ २० ॥
उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां
नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्याम
अधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ २१ ॥

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां
प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः
स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥ २२ ॥

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा
ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि
तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥ २३ ॥

अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां
सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य
दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥ २४ ॥

शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा
निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद
ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ २५ ॥

सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः
सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान्
ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥ २६ ॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा
ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहम्
इन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥ २७ ॥

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं
पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु
कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ २८ ॥

अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि
परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागं
अथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥ २९ ॥

श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः
पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परमापद्य यद् वयः
उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥ ३० ॥

बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढि
आज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् ।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि
कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ ३१ ॥

बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्यो
अब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्ताद्
आर्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ ३२ ॥

आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा
नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥ ३३ ॥

यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं
पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू
रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ३४ ॥

वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

समाचिनुष्वानुसम्प्रयाह्यग्ने
पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं
नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६ ॥

येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन्
ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं
स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

(१३६१)

॥ २११ ॥ (अथर्व० ६।११६।१-३)

जाटिकायनः । विवस्वान् (मधुमदश्नम्) । जगती, २ त्रिष्टप्

यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे
कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोमि
अथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम्   ॥ १ ॥
वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं
मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन्
यद् वा पितापराद्धो जिहीडे   ॥ २ ॥
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः
परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते
तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः   ॥ ३ ॥

॥ २१२ ॥ (अथर्व० ७।३७।१)

अथर्वा । वास । अनुष्टुप् ।

अभि त्वा मनुजातेन   दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो   नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥१॥

॥ २१३ ॥ (वा० य० ४।२,१०)

(वाव ।)

दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा॰
शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन्   ॥ २ ॥
विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य
योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि   ॥ १० ॥

॥ २१४ ॥ (अथर्व० ११।३।१-६०)

यमः । स्वर्ग, ओदनः, अग्निः (स्वर्गौदनः) । त्रिष्टुप्, १, ४२-४३,४७ भुरिक्; ८,१२,२१-२२,२४ जगती; १३,१७ स्वराडार्षी पङ्क्ति; ३४ विराड्गर्भा; ३९ अनुष्टुब्गर्भा, ४४ पराबृहती; ५५-६० त्र्यवसाना सप्तपदा शङ्कुमत्यतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भातिधृतिः (५५,५७-६० कृतिः, ५६ विराट् कृतिः) ।

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि
तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुः
तद् वां वयो यमराज्ये समानम्   ॥ १ ॥
तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि
तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधो
अधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः   ॥ २ ॥
समस्मिँल्लोके समु देवयाने
सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां
यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव   ॥ ३ ॥
आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वं
इमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुः
यमोदनं पचति वां जनित्री   ॥ ४ ॥
यं वां पिता पचति यं च माता
रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग
उभे व्याप नभसी महित्वा   ॥ ५ ॥
उभे नभसी उभयांश्च लोकान्
ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे
तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम्   ॥ ६ ॥
प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथां
एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ
तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम्   ॥ ७ ॥
दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ
पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः
पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात्   ॥ ८ ॥

प्रतीची दिशामियमिद् वरं
यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथा
अधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ ९ ॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद्
दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव
विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥ १० ॥

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै
शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार
इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥ ११ ॥

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः
शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह
तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२ ॥

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा
त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद् वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त
उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥ १३ ॥

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः
पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ
मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम् ॥ १४ ॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्
रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयाते प्र वदाति वाचं
तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेम ॥ १५ ॥

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन्
य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते
स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥ १६ ॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि
सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र
मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ १७ ॥

ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम
तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीः
मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥ १८ ॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्
सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं
तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन
द्यौरेवासौ पृथिव्य१न्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथाम्
आ प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥

पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनां
एकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व
ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥ २१ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि
तनूः समानी विकृता त एषा ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन
तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥ २२ ॥

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं
सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा
यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३ ॥
(२११०)

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्ताद्
इन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या
उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४ ॥

पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद्
दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः
पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५ ॥

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते
भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव
ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥

उतेव प्रभ्वीरुत संमितास
उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा
आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥ २७ ॥

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते
प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः
सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८ ॥

उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः
फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियाय
एतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९ ॥

उत्थापय सीदतो बुध्न एनान्
अद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतत्
मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ॥

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषं
आहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूव
अमन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१ ॥

नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत
प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्तु
इमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२ ॥

वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिः
अग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्या
एना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥ ३३ ॥

षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्
स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा
एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥ ३४ ॥

धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या
अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्रौ
उद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५ ॥

सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान्
यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विः
एकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६ ॥

उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद्
घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युं
इमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥ ३७ ॥

उपास्तरीरकरो लोकमेतं
उरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो
देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥

(२४०५)

यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः
पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु
संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥ ३९ ॥

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते
अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां
नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥ ४० ॥

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना
घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥ ४१ ॥

निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छाद्
अनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गः
त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥ ४२ ॥

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं
क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मद्
आदित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥ ४३ ॥

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं
घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्य
एतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥ ४४ ॥

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य
यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्धि
एष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥ ४५ ॥

सत्याय च तपसे देवताभ्यो
निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां
मा स्मान्यस्मा उत् सृजता पुरा मत् ॥ ४६ ॥

अहं पचाम्यहं ददामि
ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रो३
अन्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥ ४७ ॥

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति
न यन्मित्रैः सममममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत्
पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥ ४८ ॥

प्रियं प्रियाणां कृणवाम
तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयद्
एव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥ ४९ ॥

समग्नयो विदुरन्यो अन्यं
य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्या३तपन्ति
हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥ ५० ॥

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूव
अनग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथो
अमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥ ५१ ॥

यदक्षेषु वदा यत् समित्यां
यद् वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानौ
तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥ ५२ ॥

वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवान्
त्वचो धूमं पर्युत् पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्
सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥ ५३ ॥

(१४१०)

तन्वं१ स्वर्गो बहुधा वि चक्रे
यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो
या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥ ५४ ॥
प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतये
असिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥
दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये
तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५६ ॥
प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये
पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५७ ॥
उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये
स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५८ ॥
ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये
कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५९ ॥
ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये
श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥

वाजीकरणम् ।

॥ २१५ ॥ (अथर्व० ४।३।१-८)

अथर्वा । वनस्पतिः; १-३ सूर्यः, प्रजापतिः; ४ इन्द्रः; ५ आपः, सोमः; ६ अग्निः सरस्वती, ब्रह्मणस्पतिः (वाजीकरणम्) । अनुष्टुप्, ४ पुर उष्णिक्, ६-७ भुरिक् ।

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥ १ ॥
उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥ २ ॥
यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति ।
ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥ ३ ॥
उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् ।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥४॥
अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥ ५ ॥
अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥ ६ ॥
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥ ७ ॥
अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्
तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥ ८ ॥

॥ २१६ ॥ (अथर्व० ६।७२।१-३)

अथर्वाङ्गिराः । शेपोऽर्कः (वाजीकरणम्) । १ जगती, २ अनुष्टुप् । ३ भुरिक् ।

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु
वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।
एवा ते शेपः सहसायमर्को
ऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥ १ ॥

यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम्।
यावत् परस्वतः पस--स्तावत् ते वर्धतां पसः ॥२॥
यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत्।
यावदश्वस्य वाजिन--स्तावत् ते वर्धतां पसः ॥३॥

॥ ११७ ॥ (अथर्व० ६।१०१।१-३)
अथर्वाङ्गिराः। ब्रह्मणस्पतिः (वाजीकरणम्)। अनुष्टुप्।

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च।
यथाङ्गं वर्धतां शेप--स्तेन योषितमिज्जहि ॥ १ ॥
येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम्।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥ २ ॥
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि।
क्रमस्वर्श इव रोहित--मनवग्लायता सदा ॥ ३ ॥

गर्भाधानम्।
॥ ११८ ॥ (अथर्व० ५।२५।१-१३)
ब्रह्मा। योनिगर्भः, पृथिव्यादयो देवताः। अनुष्टुप्, ११ विराट्पुरस्ताद्बृहती।

पर्वताद् दिवो योने--रङ्गादङ्गात् समाभृतम्।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ॥ १ ॥
यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥ २ ॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ ३ ॥
गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥ ४ ॥
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिञ्चतु प्रजापति--र्धाता गर्भं दधातु ते ॥ ५ ॥
यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥ ६ ॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥ ७ ॥
अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम्।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥ ८ ॥
वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम्।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥ ९ ॥
धातः श्रेष्ठेन रूपेणा--स्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १० ॥
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणा--स्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ ११ ॥
सवितः श्रेष्ठेन रूपेणा--स्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १२ ॥
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणा--स्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १३ ॥

॥ ११९ ॥ (अथर्व० ६।८१।१-३)
अथर्वा। आदित्यः, ३ त्वष्टा (गर्भाधानम्)। अनुष्टुप्।

यन्तासि यच्छसे हस्ता--वप रक्षांसि सेधसि।
प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥ १ ॥
परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे।
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥ २ ॥
यं परिहस्तमबिभ--रदितिः पुत्रकाम्या।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ३

॥ १२० ॥ (अथर्व० ६।१७।१-४)
अथर्वा। गर्भदृंहणम्, पृथिवी। अनुष्टुप्।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ १ ॥
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ २ ॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ३ ॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ४ ॥

॥ २११ ॥ (अथर्व० ७।१११।१)

ब्रह्मा । वृषभः (आत्मा) । परावृहती त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधानं
आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।
इह प्रजा जनय यास्त आसु
या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम् ॥ १ ॥

॥ २१२ ॥ (अथर्व० ८।६।१-२६)

मातृनामा । मन्त्रोक्ताः, मातृनामा, १५ ब्रह्मणस्पतिः (गर्भदोषनिवारणम्) । अनुष्टुप्; २ पुरस्ताद्बृहती; १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ११-१२, १४, १६, पथ्यापङ्क्तिः; १५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी; १७ त्र्यवसाना सप्तपदा जगती ।

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥ १ ॥
पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥ २ ॥
मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा ।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥ ३ ॥
दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः ।
अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ॥ ४ ॥
यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोऽप हन्मसि ॥ ५ ॥
अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् ।
अरायांछ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥ ६ ॥
यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥ ७ ॥
यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥ ८ ॥
यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥ ९ ॥
ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः ।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥ १० ॥
ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो
वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥ ११ ॥
ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् बस्तवासिनो
दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥ १२ ॥
य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति ।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥ १३ ॥
ये पूर्वे वध्वो यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
आपाकेस्थाः प्रहासिन
स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः
कुम्भमुष्का अयाशवः ।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥ १५ ॥
पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः ।
अव भेषज पादय य इमां
संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् ॥ १६ ॥
उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् ।
उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम् ।
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना १७
यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते ।
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥ १८ ॥
ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु १९
परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत् ।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥ २० ॥
पवीनसात् तङ्गल्वाच्छायकादुत नग्नकात् ।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥ २१
द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः ।
वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥ २२ ॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवा—स्तानितो नाशयामसि २३
ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि ।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥२४
पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् ।
आण्डादो गर्भान् मा दभन्
बाधस्वेतः किमीदिनः ॥२५॥
अप्रजास्त्वं मार्तवत्सामा—द् रोदमघमावयम् ।
वृक्षादिव स्रजं कृत्वा—प्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥२६॥

॥ ११३ ॥ (अथर्व० २०।२६।११-१६)
रक्षोहा । गर्भसंस्रावः । अनुष्टुप् ।

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥११॥
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥१२॥
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१३॥
यस्त ऊरू विहरत्य—न्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेढि तमितो नाशयामसि ॥१४॥
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१५॥
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१६॥

॥ ११४ ॥ (ऋ० ५।७८।५-९)
सप्तवध्रिरात्रेयः । अश्विनौ (गर्भस्राविण्युपनिषद्) । अनुष्टुप् ।

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥५॥
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥६॥
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥७॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८॥
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९॥

॥ ११५ ॥ (ऋ० ९।७४।५)
कक्षीवान् दैर्घतमसः । पवमानः सोमः (अदितेर्गर्भः) ।
जगती ।

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा
देवाव्यं मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ५ ॥

॥ ११६ ॥ (अथर्व० १।११।१-६)
अथर्वा । पूषा, अर्यमा, वेधाः, दिशः, देवाः (नारी-सुखप्रसूतिः) । १ पङ्क्तिः; २ अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदो-ष्णिग्गर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्; ४-६ पथ्यापङ्क्तिः ।

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतौ
अर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता
वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥ १ ॥
चतस्रो दिवः प्रदिश—श्चतस्रो भूम्या उत ।
देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥ २ ॥
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि ।
श्रथया सूषणे त्व—मव त्वं विष्कले सृज ॥ ३ ॥
नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने
जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥ ४ ॥
वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च
वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥ ५ ॥
यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं
जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ॥ ६ ॥

॥ ७७७ ॥ (अथर्व० १९।४०।१-४)

ब्रह्मा । बृहस्पतिः, विश्वेदेवाश्च (मेधा)। १ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्, २ पुर ककुम्मत्युपरिष्टाद्बृहती, ३ बृहतीगर्भा, ४ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाच
सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः
सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वं
उपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥ २ ॥
मा नो मेधां मा नो दीक्षां
मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ३
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥

॥ ७७८ ॥ (अथर्व० १।१।१-४)

अथर्वा । वाचस्पतिः (मेधाजननम्) । अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा विराडुरोबृहती ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ३
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥

॥ ७७९ ॥ (अथर्व० ६।१०८।१-५)

शौनक । मेधा, ४ अग्नि (मेधावर्धनम्) । अनुष्टुप्, २ उरोबृहती, ३ पथ्या बृहती ।

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥१॥
मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥ २ ॥
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः ।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुः
तां मय्या वेशयामसि ॥ ३ ॥
यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥ ४ ॥
मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥ ५ ॥

मणिधारणम् ।

॥ ७८० ॥ (अथर्व० ४।१०।१-७)

अथर्वा । शङ्खमणिः, कृशन । अनुष्टुप्, ६ पथ्यापङ्क्तिः, ७ पञ्चपदा पराऽनुष्टुप्शक्वरी ।

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः १
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे ॥२॥
शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥ ३ ॥
दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ४
समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥५॥
हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥
देवानामस्थि कृशनं बभूव
तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ७

॥ २३१ ॥ (अथर्व० ८।५।१-२)

शुक्र । कृत्यादूषण, मन्त्रोक्ताः (प्रतिसरो मणि)। अनुष्टुप्; १,६ उपरिष्टाद्बृहती, २ त्रिपदा विराड् गायत्री; ३ चतुष्पदा भुरिग्जगती, ५ भुरिक्संस्तारपङ्क्ति., ७-८ ककुम्मती, ९ पुरस्कृतिर्जगती, १० त्रिष्टुप्, ११ पथ्यापङ्क्तिः; १४ त्र्यव साना षट्पदा जगती, १५ पुरस्ताद्बृहती, १९ जगतीगर्भा त्रिष्टुप्, २० विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्ति, २१ विराट् त्रिष्टुप्, २२ त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक्शक्करी।

अयं प्रतिसरो मणि--र्वीरो वीराय बध्यते ।
वीर्य॑(वान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः १

अयं मणिः सपत्नहा सुवीर.
सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥ २ ॥

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्
अनेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे
अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥ ३ ॥

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी
सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥ ४ ॥

तदग्निराह तदु सोम आह
बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः
कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥ ५ ॥

अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः
प्रतीचीः कृत्या. प्रतिसरैरजन्तु ॥ ६ ॥

ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥७॥

स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥ ८ ॥

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीः
याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः ।
उभयीस्ताः परा यन्तु
परावतो नवतिं नाव्या३ अति ॥ ९ ॥

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा
इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड्
वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥ १० ॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान्
जगतामिव व्याघ्र. श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥ ११॥

स इद् व्याघ्रो भव--त्यथो सिंहो अथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ १२ ॥

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१३॥

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणे ऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥१४॥

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभि
र्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥ १५॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणि. ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥ १६ ॥

असपत्नं नो अधरा--दसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं न. पश्चा--ज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि१७

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥१८॥

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं
विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहद्
आयुष्मां जरदष्टिर्यथासानि ॥ १९ ॥
(२५४५)

मा मा॑रक्षद् दे॒वम॒णि—र्म॒ह्या अ॑रि॒ष्टता॑तये ।
इ॒मं मे॑थि॒मभि॒संवि॑शध्वं
तनू॒पानं॑ त्रि॒वरू॑थ॒मोज॑से ॥ २० ॥
अ॒स्मिन्निन्द्रो॒ नि द॑धातु नृ॒म्णं
इ॒मं दे॑वासो अ॒भिसंवि॑शाध्वम् ।
दी॒र्घा॒यु॒त्वाय॑ श॒तशा॑रदाय
आयु॑ष्मान् ज॒रद॑ष्टि॒र्यथास॑त् ॥ २१ ॥
स्व॒स्ति॒दा वि॒शां पति॒—र्वृ॑त्र॒हा वि॑मृ॒धो व॒शी ।
इन्द्रो॑ बध्नातु ते म॒णिं
जि॑गी॒वाँ अप॑राजितः सोम॒पा अ॑भयंक॒रो वृषा॑ ।
स त्वा॑ रक्षतु स॒र्वतो॒ दिवा॒ नक्तं॑ च वि॒श्वतः॑ २२

॥ १३१ ॥ (अथर्व० १।३।१-१५)

अथर्वा । (सपत्नक्षयणो), वरणमणिः, वनस्पतिः, चन्द्रमाः ।
अनुष्टुप्; २-३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्; ८, १३-१४
पथ्यापङ्क्तिः; ११, १६ भुरिक्; १५, १७-२५
षट्पदा जगती ।

अ॒यं मे॑ व॒रणो॑ म॒णिः स॑पत्न॒क्षय॑णो॒ वृषा॑ ।
तेना र॑भस्व॒ त्वं शत्रू॒न् प्र मृ॑णीहि दु॒रस्य॒तः ॥१॥
प्रैणा॑ञ्छृणीहि॒ प्र मृ॒णा र॑भस्व
म॒णिस्ते॑ अस्तु पुर॒एता॑ पु॒रस्ता॑त् ।
अवा॑रयन्त व॒रणे॑न दे॒वा
अ॑भ्याचा॒रमसु॑राणां॒ श्वः श्वः॑ ॥ २ ॥
अ॒यं म॒णिर्व॑र॒णो वि॒श्वभे॑षजः
स॒हस्रा॒क्षो हरि॑तो हिर॒ण्ययः॑ ।
स ते॒ शत्रू॒नध॑रान् पादयाति
पू॒र्वस्ता॒न् द॑भ्नुहि॒ ये त्वा॑ द्वि॒षन्ति॑ ॥ ३ ॥
अ॒यं ते॑ कृ॒त्यां वित॑तां॒ पौरु॑षेयाद॒यं भ॒यात् ।
अ॒यं त्वा॒ सर्व॑स्मात् पा॒पाद् व॑र॒णो वा॑रयिष्यते ॥४॥
व॒रणो॑ वारयाता॒ अ॒यं दे॒वो वन॒स्पतिः॑ ।
यक्ष्मो॒ यो अ॒स्मिन्नावि॑ष्ट॒—स्तमु॑ दे॒वा अ॑वीवरन् ॥५
स्वप्नं॑ सु॒प्त्वा यदि॒ पश्या॑सि पा॒पं
मृ॒गः सृ॒तिं यति॒ धाव॒दजु॑ष्टाम् ।
प॒रि॒क्ष॒वाच्छ॒कुनेः॑ पापवा॒दाद्
अ॒यं म॒णिर्व॑र॒णो वा॑रयिष्यते ॥ ६ ॥
अरा॑त्यास्त्वा॒ निर्ऋ॑त्या अ॒भिचा॒राद॑थो भ॒यात् ।
मृ॒त्योरोजी॑यसो व॒धाद् व॑र॒णो वा॑रयिष्यते ॥ ७ ॥
यन्मे॑ मा॒ता यन्मे॑ पि॒ता भ्रात॑रो
यच्च॑ मे॒ स्वा यदेन॑श्चकृ॒मा व॒यम् ।
ततो॑ नो वारयिष्यते॒—ऽयं दे॒वो वन॒स्पतिः॑ ॥ ८ ॥
व॒रणे॑न॒ प्रव्य॑थिता॒ भ्रातृ॑व्या मे॒ सब॑न्धवः ।
अ॒सूर्तं॒ रजो॒ अप्य॑गु॒—स्ते य॑न्त्वध॒मं तमः॑ ॥ ९ ॥
अरि॑ष्टो॒ऽहमरि॑ष्टगु॒—रायु॑ष्मान्त्सर्व॑पूरुषः ।
तं मा॒यं व॑र॒णो म॒णिः परि॑ पातु दि॒शोदि॑शः ॥१०॥
अ॒यं मे॑ व॒रण॒ उर॑सि॒ राजा॑ दे॒वो वन॒स्पतिः॑
स मे॒ शत्रू॒न् वि बा॑धता॒—मिन्द्रो॒ दस्यू॑निवासु॑रान् ११
इ॒मं बि॑भर्मि व॒रण॒—मायु॑ष्माञ्छ॒तशा॑रदः ।
स मे॑ रा॒ष्ट्रं च॑ क्ष॒त्रं च॑ प॒शूनोज॑श्च मे दधत् ॥१२॥
यथा॒ वातो॒ वन॒स्पती॑न् वृ॒क्षान् भ॒नक्त्योज॑सा ।
ए॒वा स॒पत्ना॑न् मे भङ्ग्धि
पूर्वा॑न् जा॒ताँ उ॒ताप॑रान् व॒रण॒स्त्वाभि र॑क्षतु ॥१३॥
यथा॒ वात॑श्चा॒ग्निश्च॑ वृ॒क्षान् प्सा॒तो वन॒स्पती॑न् ।
ए॒वा स॒पत्ना॑न् मे प्सा॒हि
पूर्वा॑न् जा॒ताँ उ॒ताप॑रान् व॒रण॒स्त्वाभि र॑क्षतु ॥१४॥
यथा॒ वाते॑न॒ प्रक्षी॑णा वृ॒क्षाः शेरे॒ न्य॑र्पिताः ।
ए॒वा स॒पत्नां॒स्त्वं मम॒ प्र क्षि॑णीहि॒ न्य॑र्पय
पूर्वा॑न् जा॒ताँ उ॒ताप॑रान् व॒रण॒स्त्वाभि र॑क्षतु ॥१५॥
तांस्त्वं प्र छि॑न्द्धि व॒रण॒ पु॒रा दि॒ष्टात् पु॒रायु॑षः ।
य ए॑नं प॒शुषु॒ दिप्स॑न्ति॒ ये चा॑स्य राष्ट्र॒दिप्स॑वः १६
यथा॒ सूर्यो॑ अ॒तिभा॑ति॒ यथा॒स्मिन् तेज॒ आहि॑तम् ।
ए॒वा मे॑ व॒रणो॑ म॒णिः की॒र्तिं भूतिं॒ नि य॑च्छतु
तेज॑सा॒ मा॒ समु॑क्षतु॒ यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा ॥ १७ ॥

यथा यशश्चन्द्रम—स्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १८॥
यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा॥ १९॥
यथा यशः कन्या॒यां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२०॥
यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २१॥
यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २२॥
यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२३॥
यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२४॥
यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२५॥

॥ १३३ ॥ (अथर्व० १०।६।१-३५)

बृहस्पति । फालमणि, वनस्पतिः, ३ आपः (मणिबन्धनम्)। अनुष्टुप्, १, ४, २१ गायत्री; ५ षट्पदा जगती; ६ सप्तपदा विराट् शक्वरी; ७–१० त्र्यवसाना अष्टपदाऽष्टि· (१० नवपदा धृति), ११, २०, २३–२७ पथ्यापङ्क्तिः; १२–१७ त्र्यव· साना षट्पदा शक्वरी, ३१ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ३५ पञ्च-पदा त्र्यनुष्टुब्गर्भा जगती।

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः ।
अपि वृश्चाम्योजसा ॥ १ ॥
वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २॥
यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ३
हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् ।
गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥ ४ ॥
तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु
भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥ ५ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं
फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह्र आज्यं
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ६ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं
फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्या॒य कम् ।
सो अस्मै बलमिद् दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ७ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं
फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ८ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं
फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ९ ॥

(१०८१)

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं
फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद्
दानवानां हिरण्ययीः।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १० ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्वाताय मणिमाशवे।
सो अस्मै वाजिनं दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ११ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्वाताय मणिमाशवे।
तेनेमां मणिना कृषि-मश्विनावभि रक्षतः।
स भिषग्भ्यां महो दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १२ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्वाताय मणिमाशवे।
तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः।
सो अस्मै सूनृतां दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १३ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्वाताय मणिमाशवे।
तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः।
स आभ्योऽमृतमिद् दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १४ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्वाताय मणिमाशवे।
तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम्।
सो अस्मै सत्यमिद् दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १५ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्वाताय मणिमाशवे।
तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वांल्लोकान् युधाजयन्।
स एभ्यो जितिमिद् दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १६ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्वाताय मणिमाशवे।
तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम्।
स आभ्यो विश्वमिद् दुहे
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १७ ॥
ऋतवस्तमबध्नता-र्तवास्तमबध्नत।
संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ १८ ॥
अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः ॥ १९ ॥
अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां
बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २० ॥
तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत्।
तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २१ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२२॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत्
सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥ २३ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत्
सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥ २४ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत्
मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ॥ २५ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमद्
ऊर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥ २६ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत्
तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह ॥ २७ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पति-र्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥२८॥

तमिमं देवता मणिं　महां ददतु पुष्टये ।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं　सपत्नदम्भनं मणिम् ॥ २९ ॥
ब्रह्मणा तेजसा सह　प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा　सपत्नान् मेऽधराँ अकः ३०
उत्तरं द्विषतो मामयं　मणिः कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः　पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु　मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ३१
यं देवाः पितरो मनुष्या　उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु　मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ३२
यथा बीजमुर्वरायां　कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवो–ऽन्नमन्नं वि रोहतु　३३
यस्मै त्वा यज्ञवर्धन　मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण　मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ३४
एतमिध्मं समाहितं
जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः
पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा　॥ ३५ ॥

॥ १३४ ॥ (अथर्व० १९।२८।१-१०)
ब्रह्मा (सपत्नक्षयकामः)। दर्भमणिः मन्त्रोक्ताश्च । अनुष्टुप् ।

इमं बध्नामि ते मणिं　दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं　द्विषतस्तपनं हृदः　॥ १ ॥
द्विषतस्तापयन् हृदः　शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ　घर्म इवाभीन्त्संतापयन् २
घर्म इवाभितपन् दर्भ　द्विषतो नितपन् मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धी–न्द्र इव विरुजं बलम् ३
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां　हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन् त्वचमिव भूम्याः　शिर एषां वि पातय ४
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे　भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो
भिन्द्धि मे द्विषतो मणे　॥ ५ ॥
छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे　छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान्
छिन्द्धि मे द्विषतो मणे　॥ ६ ॥
वृश्च दर्भ सपत्नान् मे　वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो　वृश्च मे द्विषतो मणे ७
कृन्त दर्भ सपत्नान् मे　कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो　कृन्त मे द्विषतो मणे ८
पिंश दर्भ सपत्नान् मे　पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः　पिंश मे द्विषतो मणे ९
विध्य दर्भ सपत्नान् मे　विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो
विध्य मे द्विषतो मणे　॥ १० ॥

॥ १३५ ॥ (अथर्व० १९।२९।१-९)
ब्रह्मा । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे　निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो　निक्ष मे द्विषतो मणे १
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे　तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्द–स्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे २
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे　रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो
रुन्द्धि मे द्विषतो मणे　॥ ३ ॥
मृण दर्भ सपत्नान् मे　मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो　मृण मे द्विषतो मणे ४
मन्थ दर्भ सपत्नान् मे　मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो　मन्थ मे द्विषतो मणे ५
पिण्ढि दर्भ सपत्नान् मे　पिण्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः
पिण्ढि मे द्विषतो मणे　॥ ६ ॥
ओष दर्भ सपत्नान् मे　ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द　ओष मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥
दह दर्भ सपत्नान् मे　दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो　दह मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
(११११)

जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ९

॥ १३६ ॥ (अथर्व० १९।३०।१-५)
ब्रह्मा । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नां जहि वीर्यैः ॥ १ ॥
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥२॥
त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥
यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दु— स्ततो दर्भो अजायत ॥५॥

॥ १३७ ॥ (अथर्व० १९।३१।१-१४)
सविता (पुष्टिकामः) । औदुम्बरमणिः । अनुष्टुप्; ५,१२ त्रिष्टुप्; ६ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः; ११,१३ पञ्चपदा शक्वरी; १४ विराडास्तारपङ्क्तिः ।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् १
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या २
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥३॥
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णे३ऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥४॥
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं
चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां
बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥
अहं पशूनामधिपा असानि
मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणि— र्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥
उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणि— रा मागन्त्सह वर्चसा ७
देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ८
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फाति— मा दधातु सरस्वती ९
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहा— दयं चौदुम्बरो मणिः ॥१०॥
त्वं मणीनामधिपा वृषासि
त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः
स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥११॥
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थाय
अभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारय
अधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि
गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि
रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ।
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥
अयमौदुम्बरो मणि— र्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु
रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥ १४ ॥

॥ १३८ ॥ (अथर्व० १९।३४।१-१०)
अङ्गिराः । वनस्पतिः, लिङ्गोक्ताः (जङ्गिडमणिः) । अनुष्टुप् ।

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥ १ ॥
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसो— ऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥२

अरुसं कृत्रिमं नाद-मरसाः सप्त विस्रसः।
अपेतो जङ्गिडामति-मिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥
कृत्यादूषण एवाय-मथो अरातिदूषणः।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ४
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥५॥
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥
उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ।
अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम्।
तक्मानं विश्वशारद-मरसां जङ्गिडस्करत् ॥१०

॥ २३९ ॥ (अथर्व० १९।३५।१-५)

अङ्गिराः। वनस्पति (जङ्गिडः)। अनुष्टुप्। २ पथ्यापङ्क्तिः; ४ निचृत् त्रिष्टुप्।

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः।
देवा यं चक्रुर्भेषज-मग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥
दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम्।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय
परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥ ३ ॥
परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः
पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद्
दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥ ४ ॥

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः।
सर्वांस्तान् विश्वभेषजो-ऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥५॥

॥ २४० ॥ (अथर्व० १९।३६।१-६)

ब्रह्मा। शतवारो मणिः। अनुष्टुप्।

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३॥
शतं वीरानजनय-च्छतं यक्ष्मानपावपत्।
दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वा-व रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥
हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृढ्वा-व रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

॥ २४१ ॥ (अथर्व० १९।४६।१-७)

प्रजापतिः। अस्तृतमणिः। त्रिष्टुप्। १ पञ्चपदा ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्; २ षट्पदा भुरिक्शक्वरी; ३, ७ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः; ४ चतुष्पदा; ५ पञ्चपदा अतिशक्वरी; ६ पञ्चपदोष्णिग्गर्भा विराड् जगती।

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम्।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च
बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमाद-मस्तृतेमं
मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः।
इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः
सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः
प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो
यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वे
अस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याऽणि
सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान्
यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ५

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्
सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च
पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ६ ॥

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी
तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥

अरिष्टनाशनम् ।

॥ १४१ ॥ (अथर्व० ६।२७।१-३)
भृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । जगती, त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्
दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

शिवः कपोत इषितो नो अस्तु
अनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः
परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥ २ ॥

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मान्
आष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु
मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः ॥ ३ ॥

॥ १४३ ॥ (अथर्व० ६।२८।१-३)
भृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । १ त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती ।

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदं
इषं मदन्तः परि गां नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि
हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः ॥ १ ॥

परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥ २ ॥

यः प्रथमः प्रवतमाससाद
बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः
तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ ३ ॥

॥ १४४ ॥ (अथर्व० ६।२९।१-३)
भृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । (बृहती) १-२ विराण्नाम गायत्री, ३ त्र्यवसाना सप्तपदा विराडष्टिः ।

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येऽतु
यदुलूको वदति मोघमेतत् ।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥ १ ॥

यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतो
अप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥ २ ॥

अवैरहत्यायेदमा पपत्यात्
सुवीरताया इदमा ससद्यात् ।
पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम् ।
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशान्
आभूकं प्रतिचाकशान् ॥ ३ ॥

॥ १४५ ॥ (अथर्व० ६।८०।१-३)
अथर्वा । चन्द्रमाः (अरिष्टक्षयणम्) । १ भुरिक्, २ अनुष्टुप्, ३ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्मह—स्तेना ते हविषा विधेम १

अरसं कृत्रिमं नाद—मरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामति—मिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥
कृत्यादूषण एवाय—मथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ४
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥५॥
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥
उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारद—मरसां जङ्गिडस्करत् ॥१०

॥ २३९ ॥ (अथर्व० १९।३५।१-५)

अङ्गिराः। वनस्पतिः (जङ्गिडः)। अनुष्टुप्। ३ पथ्यापङ्क्तिः; ४ निचृत् त्रिष्टुप्।

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषज—मग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव ।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥
दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् ।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय
परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥ ३ ॥
परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः
पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद्
दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥ ४ ॥
य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वांस्तान् विश्वभेषजो—ऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥५॥

॥ २४० ॥ (अथर्व० १९।३६।१-६)

ब्रह्मा। शतवारो मणिः। अनुष्टुप्।

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३॥
शतं वीरानजनय—च्छतं यक्ष्मानपावपत् ।
दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वा—व रक्षांसि धूनुते ॥४॥
हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृढ्वा—व रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

॥ २४१ ॥ (अथर्व० १९।४६।१-७)

प्रजापतिः। अस्तृतमणिः। त्रिष्टुप्। १ पञ्चपदा ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्; २ षट्पदा भुरिक्शक्करी; ३, ७ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः; ४ चतुष्पदा; ५ पञ्चपदा अतिशक्करी; ६ पञ्चपदोष्णिग्गर्भा विराड् जगती।

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे ओजसे च
बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं
मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः ।
इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः
सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः
प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो
यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वे
अस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि
सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान्
यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ५

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्
सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च
पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ६ ॥

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी
तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥

अरिष्टनाशनम् ।

॥ २४२ ॥ (अथर्व० ६।२७।१-३)
भृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । जगती, त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्
दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

शिवः कपोत इषितो नो अस्तु
अनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः
परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥ २ ॥

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मान्
आष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु
मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः ॥ ३ ॥

॥ २४३ ॥ (अथर्व० ६।२८।१-३)
भृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । १ त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती ।

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदं
इषं मदन्तः परि गां नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि
हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः ॥ १ ॥

परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥ २ ॥

यः प्रथमः प्रवतमाससाद
बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
यो३स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः
तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ ३ ॥

॥ २४४ ॥ (अथर्व० ६।२९।१-३)
भृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । (बृहती) १-२ विराण्नाम गायत्री, ३ त्र्यवसाना सप्तपदा विराडष्टिः ।

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु
यदुलूको वदति मोघमेतत् ।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥ १ ॥

यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतो
अप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥ २ ॥

अवैरहत्यायेदमा पपत्यात्
सुवीरताया इदमा ससद्यात् ।
पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम् ।
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशान्
आभूकं प्रतिचाकशान् ॥ ३ ॥

॥ २४५ ॥ (अथर्व० ६।८०।१-३)
अथर्वा । चन्द्रमाः (अरिष्टक्षयणम्) । १ भुरिक्, २ अनुष्टुप्, ३ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम १

ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान्त्सर्वानह्व ऊतये ऽस्मा अरिष्टतातये ॥ २ ॥
अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं
समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ३

कृत्यादूषणम् ।

॥ १४६ ॥ (अथर्व० ५।१४।१-१३)

शुक्रः । वनस्पतिः, कृत्यापरिहरणम् । अनुष्टुप्; ३,५,१२ भुरिक्; ८ त्रिपदा विराट्; १० निचृद्बृहती, ११ त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप्; १३ स्वराट् ।

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥१॥
अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे २
रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ३
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ४
कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५॥
यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥ ६ ॥
यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥ ७ ॥
अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८॥
कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥ ९ ॥
पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः १०
उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव ।
कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥ ११ ॥
इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः १२
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः १३

॥ १४७ ॥ (अथर्व० ५।३१।१-१२)

शुक्रः । कृत्यादूषणम् (कृत्यापरिहरणम्) । अनुष्टुप्; ११ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्; १२ पथ्याबृहती ।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः
पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ १ ॥
यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः
पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ २ ॥
यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ३
यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ४
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः
पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ५ ॥
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ६
यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः
पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ७ ॥
यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः
पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ८ ॥
यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ९
अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥ १० ॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्य—मभगो भगवद्भ्यः ॥ ११ ॥

कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया १२

॥ १४८ ॥ (अथर्व० १०।१।१-३२)

प्रत्यङ्गिरसः । कृत्यादूषणम् । अनुष्टुप्; १ महाबृहती; २ विराण्नाम गायत्री; ९ पथ्यापङ्क्तिः; १३ उरोबृहती; १५ चतुष्पदा विराड्जगती; १७,२०,२४ प्रस्तारपङ्क्तिः (२० विराट्); १६,१८ त्रिष्टुप्; १९ चतुष्पदा जगती; २२ एकावसाना द्विपदाऽऽर्ची उष्णिक्, २३ त्रिपदा भुरिग्विषमा गायत्री, २८ त्रिपदा गायत्री; २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती; ३२ द्व्यनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदाऽतिजगती ।

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव
विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः ।
साराद्रेत्वप नुदाम एनाम् ॥ १ ॥

शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी
कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
साराद्रेत्वप नुदाम एनाम् ॥ २ ॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥ ३ ॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥५॥

प्रतीचीन आङ्गिरसो—ऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्या—मून् कृत्याकृतो जहि ६

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ७

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेऽयन—मज्ञातस्तेऽयं जनः ॥ ८ ॥

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्वी३दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म
पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥ ९ ॥

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०॥

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्या३त् सर्वस्मात् पापाद्
इमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥ ११ ॥

देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात्
संदेश्या३दभिनिष्कृतात् ।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण
ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥ १२ ॥

यथा वातश्च्यावयति भूम्या
रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ १३ ॥

अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता १४

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामो
अभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव
वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥ १५ ॥

पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वाक्
अन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या३ अति
दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥ १६ ॥

वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय
मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्ये—ऽप्रजास्त्वाय बोधय १७

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने
क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः
पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥ १८ ॥

(१०।१९)

उपाहृतमनुबुद्धं निखातं
वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव
वि वर्तनां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥ १९ ॥
स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे
विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतो–ऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥ २० ॥
ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती २१
सोमो राजाधिपा मृडिता च
भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥ २२ ॥
भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥ २३ ॥
यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी
कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥ २४ ॥
अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥२५॥
परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥ २६ ॥
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥ २७ ॥
एतद्धि शृणु मे वचो–ऽथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥ २८ ॥
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये
मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वो
उत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥ २९ ॥
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः
पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥ ३० ॥
कृत्याकृतो वलगिनो–ऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषः
अमून् कृत्याकृतो जहि ॥ ३१ ॥
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि
रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता
कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥ ३२ ॥

दस्युनाशनम् ।

॥ १४९ ॥ (अथर्व० २।१४।१-६)

चातनः । शालाग्निदेवत्यं (दस्युनाशनम्) । अनुष्टुप्, २ भुरिक्, ४ उपरिष्टाद्विराड्बृहती ।

निःसालां धृष्णुं धिषण–मेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः ॥१॥
निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२॥
असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः ।
तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ३ ॥
भूतपतिर्निरज–त्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ४
यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥५॥
परि धामान्यासा–माशुर्गाष्ठामिवासरन् ।
अजैषं सर्वानाजीन्वो नश्यतेतः सदान्वाः ॥ ६ ॥

पापादिनाशनम् ।

॥ १५० ॥ (अथर्व० १।१०।१-४)

अथर्वा । असुरो वरुणः (पाश-विमोचनम्) त्रिष्टुप् । ३ ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

अयं देवानामसुरो वि राजति
वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान
उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ १ ॥

नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे
विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं
शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥ २ ॥
यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु ।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥ ३ ॥
मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ॥४॥

॥ १५१ ॥ (अथर्व० १।३१।१-४)
ब्रह्मा । आशापालाः, [वास्तोष्पतिः] (पाशमोचनम्) ।
अनुष्टुप्, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥
य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसोअंहसः ॥२॥
अस्रामस्त्वा हविषा यजामि
अश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानामाशापालस्तुरीयो
देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥ ३ ॥
स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु
ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ ४ ॥

॥ १५२ ॥ (अथर्व० २।१०।१-८)
भृग्वङ्गिराः । १-८ द्यावापृथिवी, ब्रह्म; २ अग्निः, आपः, ओषधयः, सोमः; ३ वातः, दिशः, ४-८ वातपत्नीः, सूर्यः, यक्ष्म, निर्ऋतिः (पाशमोचनम्) । १ त्रिष्टुप्; २ सप्तपदाऽष्टिः; ३-५, ७-८ सप्तपदा धृतिः; ६ सप्तपदाऽत्यष्टिः, ८ (२-३) द्वौ पादौ उष्णिहौ ।

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद्
द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि
शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १ ॥
शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु
शं सोमः सहौषधीभिः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद्
द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अना० ॥ २ ॥
शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धात्
शं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः । एवाहं० । अना० ॥३॥
इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो
वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे । एवाहं० । अना० ॥४॥
तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि
प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः । एवाहं० । अना० ५
अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद्
द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्थाः । एवाहं० । अना० ६
अहा अरातिमविदः स्योनमप्य
भूर्भद्रे सुकृतस्य लोके । एवाहं० । अना० ॥ ७ ॥
सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि
देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेणसः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद्
द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि
शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ ८ ॥

॥ १५३ ॥ (अथर्व० ६।११२।१-३)
अथर्वा । अग्निः (पाशमोचनम्) त्रिष्टुप् ।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां
मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन्
तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ १ ॥
उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां
त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन्
पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् ॥ २ ॥

येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धो
ऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति
भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥ ३ ॥

॥ १५४ ॥ (अथर्व० ६।११९।१-३)

कौशिकः । वैश्वानरोऽग्निः [आनृण्यम्] (पाशमोचनम्)। त्रिष्टुप्।

यददीव्यन्नृणमहं कृणोमि
अदास्यन्नग्न उत संगृणामि।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ
उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥
वैश्वानराय प्रति वेदयामि
यद्यृणं संगरो देवतासु।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वान्
अथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ २ ॥
वैश्वानरः पविता मा पुनातु
यत् संगरमभिधावाम्याशाम्।
अनाजानन् मनसा याचमानो
यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ॥ ३ ॥

॥ १५५ ॥ (अथर्व० ७।८३।१-४)

शुनःशेपः । वरुणः (पाशमोचनम्)। १ अनुष्टुप् २ पथ्यापङ्क्तिः; ३ त्रिष्टुप्, ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्।

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥ १ ॥
धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति
यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥ २ ॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्
अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अधा वयमादित्य व्रते
तवानागसो अदितये स्याम ॥ ३ ॥
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान्
य उत्तमा अधमा वारुणा ये।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मद्
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ४ ॥

॥ १५६ ॥ (अथर्व० ७।७८।१-२)

अथर्वा । अग्निः (बन्धमोचनम्)। १ परोष्णिक्, २ त्रिष्टुप्।

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम्।
इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने ॥ १ ॥
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने
युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन।
दीदिह्य१स्मभ्यं द्रविणेह भद्रं
प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु ॥ २ ॥

॥ १५७ ॥ (अथर्व० ६।२५।१-३)

शुनःशेपः । मन्याविनाशनम् । अनुष्टुप्।

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ १ ॥
सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ २ ॥
नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ ३ ॥

॥ १५८ ॥ (अथर्व० ४।२३।१-७)

मृगारः । प्रचेता अग्निः (पाप-मोचनम्)। त्रिष्टुप्, ३ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती, ४ अनुष्टुप्, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः।

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः
पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ १ ॥
यथा हव्यं वहसि जातवेदो
यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन्।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥

यामन्याम॒न्नुपयु॑क्तं वहि॑ष्ठं
कर्म॑न्कर्मन्नाभ॒गम् ।
अ॒ग्निमी॑डे रक्षो॒हणं॑ यज्ञ॒वृधं॑ घृताहु॑तं
स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ३ ॥
सु॒जा॒तं जा॒तवे॑दस॒मग्निं वै॑श्वान॒रं वि॒भुम् ।
ह॒व्य॒वाहं॑ हवामहे॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ४ ॥
येन॒ ऋष॑यो ब॒लमद्यो॑तयन् यु॒जा
येनासु॑राणा॒मयु॑वन्त मा॒याः ।
येना॒ग्निना॑ प॒णीनिन्द्रो॑ जि॒गाय॑
स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ५ ॥
येन॑ दे॒वा अ॒मृत॑म॒न्वविन्द॒न्
येनौष॑धी॒र्मधु॑मती॒रकृ॑ण्वन् ।
येन॑ दे॒वाः स्व॒१राभ॑र॒न्त्स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥६॥
यस्ये॒दं प्र॒दिशि॒ यद् वि॒रोच॑ते
यज्जा॒तं ज॑नित॒व्यं॑१ च॒ केव॑लम् ।
स्तौम्य॒ग्निं ना॑थि॒तो जो॑हवीमि
स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ७ ॥

॥ २५९ ॥ (अथर्व० ४।२४।१-७)

मृगारः । इन्द्रः (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप् , १ शाक्वरी-गर्भा पुरःशक्वरी ।

इन्द्र॑स्य मन्महे॒ शश्व॒दिद॑स्य मन्महे
वृ॒त्र॒घ्न स्तोमा॒ उप॑ मे॒म आगुः॑ ।
यो दा॒शुषः॑ सु॒कृतो॒ हव॒मेति॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः १
य उ॒ग्रीणा॑मु॒ग्रबा॑हुर्य॒युर्
यो दा॑नवा॒नां बल॑मारु॒रोज॑ ।
येन॑ जि॒ताः सिन्ध॑वो॒ येन॒ गावः॑
स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ २ ॥
यश्च॑र्ष॒णिप्रो॑ वृष॒भः स्व॒र्विद्
यस्मै॒ ग्रावा॑णः प्र॒वद॑न्ति नृ॒म्णम् ।
यस्या॑ध्व॒रः स॒प्तहो॑ता॒ मदि॑ष्ठः
स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ३ ॥

यस्य॑ व॒शास॑ ऋष॒भास॑ उ॒क्षणो॒
यस्मै॑ मी॒यन्ते॒ स्वर॑वः स्व॒र्विदे॑ ।
यस्मै॑ शु॒क्रः पव॑ते॒ ब्रह्म॑शुम्भितः
स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ४ ॥
यस्य॒ जुष्टिं॑ सो॒मिनः॑ का॒मय॑न्ते
यं हव॑न्त॒ इषु॑मन्तं॒ गवि॑ष्टौ ।
यस्मि॑न्न॒र्कः शि॑श्रि॒ये यस्मि॒न्नोजः॑
स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ५ ॥
यः प्र॑थ॒मः क॑र्म॒कृत्या॑य ज॒ज्ञे
यस्य॑ वी॒र्यं॑ प्रथ॒मस्यानु॑बुद्धम् ।
येनोद्य॑तो॒ वज्रो॑ऽभ्याय॒ताहिं॑
स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ६ ॥
यः सं॑ग्रा॒मान्नय॑ति॒ सं यु॒धे व॒शी
यः पु॒ष्टानि॑ संसृ॒जति॑ द्व॒यानि॑ ।
स्तौमीन्द्रं॑ नाथि॒तो जो॑हवीमि
स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ७ ॥

॥ २६० ॥ (अथर्व० ४।२५।१-७)

मृगारः । सविता, वायुः (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप् , ३ अति-शक्वरी, ७ पथ्याबृहती ।

वा॒योः स॑वि॒तुर्वि॒दथा॑नि मन्महे
यावा॑त्म॒न्वद् वि॑श॒थो यौ च॒ रक्ष॑थः ।
यौ विश्व॑स्य परि॒भू ब॑भू॒वथुः॑
तौ नो॑ मुञ्चत॒मंह॑सः ॥ १ ॥
ययोः॒ संख्या॑ता॒ वरि॑मा॒ पार्थि॑वानि॒
याभ्यां॒ रजो॑ यु॒पित॑म॒न्तरि॑क्षे ।
ययोः॑ प्रा॒यं नान्वा॑न॒शे कश्च॒न
तौ नो॑ मुञ्चत॒मंह॑सः ॥ २ ॥
तव॑ व्र॒ते नि वि॑शन्ते॒ जना॑सः
त्वय्युदि॑ते॒ प्रेर॑ते चि॒त्रभा॑नो ।
यु॒वं वा॑यो सवि॒ता च॒ भुव॑नानि रक्षथः
तौ नो॑ मुञ्चत॒मंह॑सः ॥ ३ ॥

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतं
अप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम्।
सं ह्यू३र्जया सृजथः सं बलेन
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥
रयिं मे पोषं सवितोत वायुः
तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम्।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥
प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये
महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः।
अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन्।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥

॥ १६१ ॥ (अथर्व० ४।२५।१-७)

मृगार०। द्यावापृथिवी (पापमोचनम्)। त्रिष्टुप्, १ आर्षी, ३-४ जगती, ७ अष्टरगर्भातिमध्येज्योतिः।

द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने
ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥
ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन्
ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने
ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥
ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन
याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने
ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥
यन्मेदमभिशोचति येनयेन
वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात्।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि
ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥

॥ १६३ ॥ (अथर्व० ४।२८।१-७)

मृगारोऽथर्वा वा। भवाशर्वौ रुद्रो वा। (पापमोचनम्)। त्रिष्टुप्, १ अतिजागतगर्भा भुरिक्।

ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे० ।
यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो
नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे० । ॥ ६ ॥
अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ
सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥

॥ १६४ ॥ (अथर्व० ४।२९।१-७)
मृगारः । मित्रावरुणौ (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप्, ७ शक्वरीगर्भाऽतिजगती ।

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे
प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ २ ॥
यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं
मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥
यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं
मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥
यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं
विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं
मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥
ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिः
मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि
तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥

॥ १६५ ॥ (अथर्व० ६।११५।१-३)
ब्रह्मा । विश्वेदेवाः (पापमोचनम्) । अनुष्टुप् ।

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥ १ ॥
यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम् ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् २
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥ ३ ॥

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ७।४२।१-२)
प्रस्कण्वः । सोमारुद्रौ (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप् ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीम्
अमीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः
कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥ १ ॥
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद्
विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत्
तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ २ ॥

॥ १६७ ॥ (अथर्व० ७।६४।१-२)
यमः । आपः, अग्निः, निर्ऋतिः (पापमोचनम्) । १ भुरिगनुष्टुप्, २ न्यङ्कुसारिणी बृहती ।

इदं यत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत्
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद्
दुरितात् पान्त्वंहसः

इदं यत् कृष्णः शकुनि—रवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥२॥

॥ १६८ ॥ (अथर्व० ११।६।१-२३)

शन्तातिः । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्ताः (पापमोचनम्) । अनुष्टुप्; २३ बृहतीगर्भा ।

अग्निं ब्रूमो वनस्पती—नोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥
ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूम—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥
ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूम—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३ ॥
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देव—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४॥
अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूम—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५॥
वातं ब्रूमः पर्जन्य—मन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा ब्रूम—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्या—दहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥७॥
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूम—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ८
भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः९
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्ता—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १०
सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमो—ऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूम—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ११
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रिता—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १२
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
आङ्गिरसो मनीषिण—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३॥
यज्ञं ब्रूमो यजमान—मृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूम—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १४ ॥
पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सह—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥१५॥
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि
सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूम—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१६॥
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीन्—आर्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासां—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १७
एता देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य
ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १८ ॥
विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १९
सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥२०॥
भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२१॥
या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रा—स्ते नः सन्तु सदा शिवाः२२
यन्मातली रथक्रीत—ममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम्२३

॥ १६९ ॥ (अथर्व० ४।३३।१-८; ऋ० १।९७।१-८)

अग्निः

ब्रह्मा । पाप्मनाशनोऽग्निः (पाप-नाशनम्) । गायत्री ।

अप नः शोशुचदघ—मग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥

प्र यत् ते॑ अग्ने सूरयो॒ जाये॑महि॒ प्र ते॑ व॒यम्।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ४ ॥
प्र यद॒ग्नेः सह॑स्वतो॒ वि॒श्वतो॒ यन्ति॑ भा॒नवः॑।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ५ ॥
त्वं हि वि॑श्वतोमुख वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ६ ॥
द्वि॒षो॑ नो विश्वतोमु॒खा—ति॑ ना॒वेव॑ पारय।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ७ ॥
स नः॒ सिन्धु॑मिव ना॒वा—ति॑ पर्षा स्व॒स्तये॑।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ८ ॥

॥ २७० ॥ (अथर्व० ६।११३।१-३)

अथर्वा। पूषा (पापनाशनम्)। त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः।

त्रि॒ते दे॒वा अ॑मृजतै॒तदेनः॑
त्रि॒त ए॑नन्मनु॒ष्ये॑षु ममृजे।
त॒तो यदि॑ त्वा॒ ग्राहि॑रान॒शे
तां ते॑ दे॒वा ब्रह्म॑णा नाशयन्तु ॥ १ ॥
मरी॑चीर्धू॒मान् प्र वि॑शानु पाप्मन्
उ॒दा॒रान् ग॑च्छो॒त वा॑ नीहा॒रान्।
न॒दीनां॒ फेना॒ँ अनु॒ तान् वि न॑श्य
भ्रूण॒घ्नि पू॑षन् दुरि॒तानि॑ मृक्ष्व ॥ २ ॥
द्वा॒द॒श॒धा निहि॑तं त्रि॒तस्या—प॑मृष्टं मनुष्यैन॒सानि॑।
त॒तो यदि॑ त्वा॒ ग्राहि॑रान॒शे
तां ते॑ दे॒वा ब्रह्म॑णा नाशयन्तु ॥ ३ ॥

॥ २७१ ॥ (अथर्व० ७।११९।१-२)

वरुणः। आपः, वरुणश्च (पापनाशनम्)। १ भुरिक्, २ अनुष्टुप्।

शुम्भ॑नी॒ द्यावा॑पृथि॒वी अन्ति॑सुम्ने॒ महि॑व्रते।
आपः॑ स॒प्त सु॑स्रुवुर्दे॒वी—स्ता नो॑ मुञ्चन्त्वंह॑सः ॥१॥
मु॒ञ्चन्तु॑ मा शप॒थ्या॒३॒—दथो॑ वरु॒ण्या॒दु॒त।
अथो॑ य॒मस्य॒ पड्वी॑शाद्
विश्व॑स्माद् दे॒वकि॑ल्बिषात् ॥ २ ॥

(पापलक्षणनाशनम्)

॥ २७२ ॥ (अथर्व० ७।११५।१-४)

॥ १७३ ॥ (अथर्व० ६।२६।१-३)

ब्रह्मा। पाप्मा (पाप्मनाशनम्)। अनुष्टुप्।

अव॑ मा पाप्मन्त्सृज व॒शी सन् मृ॑डयासि नः।
आ मा॑ भ॒द्रस्य॑ लो॒के पाप्म॑न् धे॒ह्यवि॑ह्रुतम् ॥ १ ॥
यो नः॑ पाप्म॒न् न जहा॑सि
तमु॑ त्वा जहिमो व॒यम्।
प॒थाम॑नु व्या॒वर्त॑ने—ऽन्यं पा॒प्मानु॑ पद्यताम् ॥ २ ॥
अ॒न्य॒त्रास्मन्न्यु॑च्यतु सहस्रा॒क्षो अम॑र्त्यः।
यं द्वे॒षाम॒ तमृ॑च्छतु॒ यमु॑ द्वि॒ष्मस्तमिज्ज॑हि ॥ ३ ॥

॥ २७३ ॥ (अथर्व० ६।३७।१-३)

अथर्वा। (स्वस्त्ययनकामः)। चन्द्रमाः (शापनाशनम्) अनुष्टुप्।

उप॒ प्रागा॑त् सहस्रा॒क्षो यु॒क्त्वा श॒पथो॒ रथ॑म्।
श॒प्तार॑मन्वि॒च्छन् मम॒ वृक॑ इ॒वावि॑मतो गृ॒हम् ॥१॥
परि॑ णो वृङ्ग्धि शपथ ह्र॒दम॒ग्निरि॑वा॒ दह॑न्।
श॒प्तार॒मत्र॑ नो जहि दि॒वो वृ॒क्षमि॑वा॒शनिः॑ ॥ २॥
यो नः॒ शपा॒दश॑पतः॒ शप॑तो॒ यश्च॑ नः॒ शपा॑त्।
शुने॒ पेष्ट्र॑मि॒वाव॑क्षामं॒ तं प्रत्य॑स्यामि मृ॒त्यवे॑ ॥३॥

॥ २७४ ॥ (अथर्व० ७।५९।१)

बादरायणिः। अरिनाशनम् (शाप-मोचनम्)। अनुष्टुप्।

यो नः॒ शपा॒दश॑पतः॒ शप॑तो॒ यश्च॑ नः॒ शपा॑त्।
वृ॒क्ष इ॑व वि॒द्युता॑ ह॒त आ मूला॒दनु॑ शुष्यतु ॥१॥

॥ २७५ ॥ (अथर्व० ५।७।१-१०)

अथर्वा। बहुदेवत्यम्; १-३,६-१० अरातयः; ४-५ सरस्वती (अरातिनाशनम्)। अनुष्टुप्; १ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः; ४ पथ्याबृहती; ६ प्रस्तारपङ्क्तिः।

आ नो॑ भर॒ मा परि॑ ष्ठा अराते
मा नो॑ रक्षी॒र्दक्षि॑णां नी॒यमा॑नाम्।
नमो॑ वी॒र्त्साया॑ अस॑मृद्धये॒ नमो॑ अ॒स्त्वरा॑तये १

यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् ।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥ २ ॥
प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥ ३ ॥
सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥ ४ ॥
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥ ५ ॥
मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीः
उभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तो–ऽरातिं प्रति हर्यत ॥ ६ ॥
परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥ ७ ॥
उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्स–न्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥ ८ ॥
या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥ ९ ॥
हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।
तस्यै हिरण्यद्रापये–ऽरात्या अकरं नमः ॥ १० ॥

॥ १७७ ॥ (अथर्व० ६।५१।१-३)

शन्तातिः । आपः, ३ वरुणः (एनोनाशनम्) । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ जगती ।

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १ ॥
आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु
घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः
उदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥ २ ॥
यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जने
अभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम
मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ३ ॥

॥ १७८ ॥ (अथर्व० ६।८४।१-४)

भगः । निर्ऋतिः (निर्ऋतिमोचनम्) । १ भुरिग्जगती, २ त्रिपदार्षी बृहती, ३ जगती, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् (जगती) ।

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोमि
एषां बद्धानामवसर्जनाय कम् ।
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना
निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥ १ ॥
भूते हविष्मती भवै–ष ते भागो यो अस्मासु ।
मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ॥ २ ॥
एवो ष्व१स्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वं
अयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति
तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ ३ ॥
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इह
अभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान
उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

॥ १७९ ॥ (अथर्व० ६।११४।१-३)

ब्रह्मा । विश्वेदेवाः (उन्मोचनम्) । अनुष्टुप् ।

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
आदित्यास्तस्मान्नो यूय–मृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥ १ ॥
ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः ।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥ २ ॥
मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः ।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ॥ ३ ॥

दुरितनाशनम् ।

॥ १८० ॥ (अथर्व० ३।९।१-६)

वामदेवः । द्यावापृथिवी, देवाः (दुःखनाशनम्) । अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा निचृद्बृहती, ६ भुरिक् ।

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवा–स्तथाप कृणुता पुनः ॥ १ ॥

(११११)

अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव २
पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः ।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥३॥
येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ४
दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् ।
उदाशवो रथा इव शपथेभिः सरिष्यथ ॥ ५ ॥
एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ॥६॥

प्रथमः पर्यायः ।

॥ १८१ ॥ (अथर्व० १६।१।१-१३)

अथर्वा । प्रजापतिः (दुःस्वप्नमोचनम्) । १,३ द्विपदा साम्नी बृहती; २,१० याजुषी त्रिष्टुप्; ४ आसुरी गायत्री; ५,८ साम्नी पङ्क्तिः (५ द्विपदा); ६ साम्नी अनुष्टुप्, ७ निचृद् विराड् गायत्री; ९ आसुरी पङ्क्तिः; ११ साम्न्युष्णिक्; १२-१३ आर्च्यनुष्टुप् ।

अतिसृष्टो अपां वृषभो ऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः १
रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ३
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥
तेन तमभ्यतिसृजामो
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥
यो३ऽप्स्व१ग्निरति तं सृजामि
म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥ ७ ॥
यो व आपोऽग्निराविवेश
स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥ ९ ॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥ ११ ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः
शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे
मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥ १३ ॥

द्वितीयः पर्यायः ।

॥ १८२ ॥ (अथर्व० १६।२।१-६)

अथर्वा । वाक् १ आसुर्यनुष्टुप्; २ आसुर्युष्णिक्; ३ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदा साम्नी बृहती; ५ आर्च्यनुष्टुप्, ६ निचृद् विराड्गायत्री ।

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥
मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ २ ॥
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥ ३ ॥
सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ
भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥ ४ ॥
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां
सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥ ५ ॥
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु
दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥

तृतीयः पर्यायः ।

॥ १८३ ॥ (अथर्व० १६।३।१-६)

ब्रह्मा । आदित्यः । १ आसुरी गायत्री; २-३ आर्च्यनुष्टुप्, ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ५ साम्न्युष्णिक्; ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां
मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥ २ ॥
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां
धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥ ३ ॥
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टां
आर्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥४॥
बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः
समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥ ६ ॥

अनागमिष्यतो वरानवित्तेः
संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥ १० ॥
तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु
वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥ ११ ॥

सप्तमः पर्यायः।

॥ १८८ ॥ (अथर्व० १६।७।१-१३)

यमः । दुःष्वप्ननाशनं, उषा । १ पङ्क्तिः; २ साम्न्यनुष्टुप्; ३ आसुर्युष्णिक्; ४ प्राजापत्या गायत्री; ५ आर्च्युष्णिक्; ६, ९, ११ साम्नी बृहती; ७ याजुषी गायत्री; ८ प्राजापत्या बृहती, १० साम्नी गायत्री; १२ भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप्; १३ आसुरी त्रिष्टुप्।

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि
निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि
ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥ १ ॥
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥
एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥
योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु
यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या
निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥ ६ ॥
सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥
इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥८॥
यददोअदो अभ्यगच्छन्
यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ९ ॥
यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥
यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२॥
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

अष्टमः पर्यायः।

॥ १८९ ॥ (अथर्व० १६।८।१-२७)

यमः। दुःष्वप्ननाशनम्। १-२७ (प्रथमा) एकपदा यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्; १-२७ (द्वितीया) त्रिपदा निचृद्गायत्री, १ (तृतीया) प्राजापत्या गायत्री, १-२७ (चतुर्थी) त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्; २-४, ९, १७, १९, २४ (तृतीया) आसुरी जगती, ५, ७-८, १०-११, १३, १८ (तृतीया) आसुरी त्रिष्टुप्; ६, १२, १४-१६, २०-२३, २७ (तृतीया) आसुरी पङ्क्ति; २५-२६ (तृतीया) आसुरी बृहती।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं
तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं
प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।१। ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणं
अमुष्याः पुत्रमसौ यः ।२। ॥ २ ॥
स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥ ॥ ३ ॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामि
इदमेनमधराञ्चं पादयामि ।४। १ । ॥ ४ ॥
जितम० । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ।१-४। २ । ॥ ५ ॥
जितम० । सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ।१-४। ३ । ॥ ६ ॥
जितम० । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ।१-४। ४ । ॥ ७ ॥
जितम० । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ।१-४। ५ । ॥ ८ ॥
जितम० । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ।१-४। ६ । ॥ ९ ॥
जितम० । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ।१-४। ७ । ॥ १० ॥
जितम० । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ।१-४। ८ । ॥ ११ ॥

चतुर्थः पर्यायः।

॥ १८५ ॥ (अथर्व० १६।४।१-७)

ब्रह्मा। आदित्यः। १, ३ साम्न्यनुष्टुप्; २ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्च्युष्णिक्; ७ त्रिपदा विराड्गर्भानुष्टुप्।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥१॥
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥ २ ॥
मा मां प्राणो हासीत्
मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥ ३ ॥
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद्
यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥
प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व
आपः सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुः
मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

पञ्चमः पर्यायः।

॥ १८६ ॥ (अथर्व० १६।५।१-१०)

यमः। दुःष्वप्ननाशनम्। १-६ (प्रथमा) विराड् गायत्री [५ (प्रथमा) भुरिक्; ६ (प्रथमा) स्वराड्], १-६ (द्वितीया) प्राजापत्या गायत्री; १-६ (द्वितीया) प्राजापत्या गायत्री; १-६ (तृतीया) द्विपदा साम्नी बृहती।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः
पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म
स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥ ३ ॥ ॥ ३ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः
पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥
अन्त०।२ तं०।३ ॥ ४ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः
पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥
अन्त०।२ तं०।३ ॥ ५ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः
पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥
अन्त०।२ तं०।३ ॥ ६ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः
पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥
अन्त०।२ तं०।३ ॥ ७ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां
पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥ ॥ ८ ॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥ ॥ ९ ॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म
स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥ १० ॥

षष्ठः पर्यायः।

॥ १८७ ॥ (अथर्व० १६।६।१-११)

यमः। दुःष्वप्ननाशनं, उषा। १-४ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५ साम्ना पङ्क्तिः; ६ निचृदार्षी बृहती; ७ द्विपदा साम्नी बृहती; ८ आसुरी जगती; ९ आसुरी बृहती; १० आर्च्युष्णिक्; ११ त्रिपदा यवमध्या गायत्री वा आर्च्यनुष्टुप्।

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥ १ ॥
उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥
द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥ ३ ॥
यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि
तस्मा एनद् गमयामः ॥ ४ ॥
उषा देवी वाचा संविदाना
वाग् देव्युषसा संविदाना ॥ ५ ॥
उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो
वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥ ६ ॥
तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥७॥
कुम्भीकां दूषीकाः पीयकान् ॥ ८ ॥
जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ॥ ९ ॥

मनागमिष्यतो वरानवित्तेः
संकुल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥ १० ॥
तदुमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु
वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥ ११ ॥

सप्तमः पर्यायः।

॥ १८८ ॥ (अथर्व० १६।७।१-१३)

यमः । दुःष्वप्ननाशनं, ऋचा । १ पङ्क्तिः; २ साम्न्यनुष्टुप्; ३ आसुर्युष्णिक्; ४ प्राजापत्या गायत्री; ५ आर्च्युष्णिक्; ६, ९, ११ साम्नी बृहती; ७ याजुषी गायत्री; ८ प्राजापत्या बृहती; १० साम्नी गायत्री; १२ भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप्; १३ आसुरी त्रिष्टुप्।

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि
निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि
ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥ १ ॥
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥
एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु
यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या
निरुन्तरिक्षाद् भजाम ॥ ६ ॥
सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥
इदमहमामुष्यायणे३ऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥८॥
यद्दोअदो अभ्यगच्छन्
यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ९ ॥
यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥
यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

अष्टमः पर्यायः।

॥ १८९ ॥ (अथर्व० १६।८।१-२७)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् ।१-२७ (प्रथमा) एकपदा यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्; १-२७ (द्वितीया) त्रिपदा निचृद्गायत्री; १ (तृतीया) प्राजापत्या गायत्री; १-२७ (चतुर्थी) त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्; २-४, ६, १७, १९, २४ (तृतीया) आसुरी जगती; ५, ७-८, १०-११, १३, १८ (तृतीया) आसुरी त्रिष्टुप्; ९, १२, १४-१६, २०-२३, २७ (तृतीया) आसुरी पङ्क्तिः; २५-२६ (तृतीया) आसुरी बृहती।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं
तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व॒रस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं
प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।१। ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणं
अमुष्याः पुत्रमसौ यः ।२॥ ॥ २ ॥
स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥ ॥ ३ ॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामि
इदमेनमधराञ्चं पादयामि ।४॥ १ । ॥ ४ ॥
जितम० । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ २ । ॥ ५ ॥
जितम० । सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ ३ । ॥ ६ ॥
जितम० । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ ४ । ॥ ७ ॥
जितम० । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ ५ । ॥ ८ ॥
जितम० । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ ६ । ॥ ९ ॥
जितम० । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ ७ । ॥ १० ॥
जितम० । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ ८ । ॥ ११ ॥

जितम्० । स ऋषीणां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ ९। ॥ १२ ॥
जितम्० । स आर्षेयाणां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१ ४॥ १०। ॥ १३ ॥
जितम्० । सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ ११। ॥ १४ ॥
जितम्० । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ १२। ॥ १५ ॥
जितम्० । सोऽथर्वणां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ १४। ॥ १६ ॥
जितम्० । स आथर्वणानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ १४। ॥ १७ ॥
जितम्० । स वनस्पतीनां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ १५। ॥ १८ ॥
जितम्० । स वानस्पत्यानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ १६। ॥ १९ ॥
जितम्० । स ऋतूनां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ १७। ॥ २० ॥
जितम्० । स आर्तवानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ १८। ॥ २१ ॥
जितम्० । स मासानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ १९। ॥ २२ ॥
जितम्० । सोऽर्धमासानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ २०। ॥ २३ ॥
जितम्० । सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ २१। ॥ २४ ॥
जितम्० । सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ २२। ॥ २५ ॥
जितम्० । स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ २३। ॥ २६ ॥

जितम्० । स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ २४। ॥ २७ ॥
जितम्० । स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१ ४॥ २५। ॥ २८ ॥
जितम्० । स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं० ॥१-४॥ २६। ॥ २९ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं
तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं
प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥ ॥३०॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणं
अमुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ ॥३१॥
स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मौचि ।३। ॥३२॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामि
इदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २७। ॥ ३३ ॥

नवमः पर्यायः।

॥१९० ॥ (अथर्व० १६।९।१-४)
यमः । १ प्रजापतिः, २ अग्निः, सोम, पूषा, ३-४ सूर्य ।
१ प्राजापत्या अनुष्टुप्, २ आर्च्युष्णिक्, ३ साम्नी पङ्क्तिः, ४ परोष्णिक् ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं
अभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥ १ ॥
तदग्निराह तदु सोम आह
पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥
अगन्म स्वः स्वरगन्म सं
सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥
वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु
वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

॥ १९१ ॥ (अथर्व० ७।२३।१)
यम । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ १ ॥

॥ १९२ ॥ (अथर्व० १९।५६।१-६)

यमः। दुःष्वप्ननाशनम्। त्रिष्टुप्।

यमस्य लोकादध्या बभूविथ
प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्
स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥ १ ॥
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत्
पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ
भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥ २ ॥
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवान्
उपावर्तत महिमानमिच्छन्।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं
त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥ ३ ॥
नैतां विदुः पितरो नोत देवा
येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर
आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥ ४ ॥
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतो
अस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना
तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥ ५ ॥
विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद्
विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते।
यशस्विनो नो यशसेह पाहि
आराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥ ६ ॥

॥ १९३ ॥ (अथर्व० १९।५७।१-५)

यमः। दुःष्वप्ननाशनम्। १ अनुष्टुप्; २-३ त्रिष्टुप्, (त्र्यवसाना); ४ षट्पदा उष्णिग्बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी; ५ त्र्यवसानापञ्चपदा परशाक्वरातिजगती।

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ॥ १ ॥
सं राजानो अगुः समृणान्यगुः
सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः।
समस्मासु यद् दुष्वप्न्यं
निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम ॥ २ ॥
देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३ ॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म
स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम्।
अनास्माकं देवपीयुं पियारुं
वप यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥ ४ ॥
अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुः
निष्कमिव प्रति मुञ्चताम्।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि।
दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५ ॥

यज्ञादिकम्।

॥ १९४ ॥ (अथर्व० ७।७३।६-७, ११)

अथर्वा। घर्मः, अश्विनौ। ६ जगती; ७, ११ त्रिष्टुप्।

उप द्रव पयसा गोधुगोषमा
घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यो
अनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥ ६ ॥
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां
सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नो
अभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥ ७ ॥
सूयवसाद् भगवती हि भूया
अधा वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं
पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ११ ॥

(११९५)

॥ २९६ ॥ (अथर्व० ७।६१।१-२)

अथर्वा । अग्निः (तपः) । अनुष्टुप् ।

यद॑ग्ने॒ तप॑सा॒ तप॑ उपत॒प्याम॑हे॒ तपः॑ ।
प्रि॒याः श्रु॒तस्य॑ भूयास्मा॒यु॑ष्मन्तः सु॒मे॒धसः॑ ॥ १ ॥
अग्ने॒ तप॑स्तप्यामहे॒ उप॑ तप्यामहे॒ तपः॑ ।
श्रु॒तानि॑ शृ॒ण्वन्तो॑ व॒य—मायु॑ष्मन्तः सु॒मे॒धसः॑ ॥२॥

॥ २९७ ॥ (अथर्व० १९।३२।१-१०)

भृगुः (आयुष्कामः) । दर्भः । अनुष्टुप्; ८ पुरस्ताद्बृहती; ९ त्रिष्टुप्; १० जगती ।

श॒तका॑ण्डो दुश्च्य॒वनः॑ स॒हस्र॑पर्ण उ॒त्तिरः॑ ।
द॒र्भो य उ॒ग्र ओष॑धि॒—स्तं ते॑ बध्ना॒म्यायु॑षे ॥ १ ॥
नास्य॒ केशा॒न् प्र व॑पन्ति॒ नोर॑सि ताड॒मा घ्न॑ते ।
यस्मा॑ अच्छिन्नप॒र्णेन॑ द॒र्भेण॒ शर्म॒ यच्छ॑ति ॥ २ ॥
दि॒वि ते॒ तूल॑मोषधे पृथि॒व्याम॑सि॒ निष्ठि॑तः ।
त्वया॑ स॒हस्र॑काण्डेना॒—यु॒ः प्र व॑र्धयामहे ॥ ३ ॥
ति॒स्रो दि॒वो अत्य॑तृणत् ति॒स्र इ॒माः पृ॑थि॒वीरु॒त ।
त्व॒याहं॑ दु॒र्हार्दो॑ जि॒ह्वां नि तृ॑णद्मि॒ वचां॑सि ॥ ४ ॥
त्वम॑सि॒ सह॑मानो॒—ऽहम॑स्मि॒ सह॑स्वान् ।
उ॒भौ सह॑स्वन्तौ भू॒त्वा स॒पत्ना॑न्सहिषीवहि ॥५॥
सह॑स्व नो अ॒भिमा॑तिं॒ सह॑स्व पृतनाय॒तः ।
सह॑स्व॒ सर्वा॑न् दु॒र्हार्दः॑ सु॒हार्दो॑ मे ब॒हून् कृ॑धि ॥६॥
द॒र्भेण॑ दे॒वजा॑तेन दि॒वि ष्ट॒म्भेन॒ शश्व॒दित् ।
तेना॒हं शश्व॑तो॒ जना॒ँ अस॑नं॒ सन॑वानि च ॥ ७ ॥
प्रि॒यं मा॑ दर्भ कृणु
ब्रह्मराज॒न्या᳡भ्यां शू॒द्राय॒ चार्या॑य च ।
यस्मै॑ च का॒मया॑महे॒ सर्व॑स्मै च वि॒पश्य॑ते ॥ ८ ॥
यो जाय॑मानः पृथि॒वीमदृं॑ह॒द्
यो अस्त॑भ्नाद॒न्तरि॑क्षं॒ दिवं॑ च ।
यं बिभ्र॑तं न॒नु पा॒प्मा वि॒वेद॒
स नो॒ऽयं द॒र्भो वरु॑णो दि॒वा कः॑ ॥ ९ ॥
स॒प॒त्न॒हा श॒तका॑ण्डः सह॑स्वा॒न्
ओष॑धीनां प्रथ॒मः सं ब॑भूव ।
स नो॒ऽयं द॒र्भः परि॑ पातु वि॒श्वत॒ः
तेन॑ साक्षीय॒ पृत॑नाः पृतन्य॒तः ॥ १० ॥

॥ २९८ ॥ (अथर्व० १९।३३।१-५)

भृगुः । दर्भः । १ जगती; २, ५ त्रिष्टुप्; ३ आर्षी पङ्क्तिः; ४ आस्तारपङ्क्तिः ।

स॒ह॒स्रा॒र्घः श॒तका॑ण्डः पय॑स्वान्
अ॒पाम॒ग्निर्वी॒रुधां॑ राज॒सूय॑म् ।
स नो॒ऽयं द॒र्भः परि॑ पातु वि॒श्वतो॑
दे॒वो म॒णिरायु॑षा॒ सं सृ॑जाति नः ॥ १ ॥
घृ॒तादुल्लु॑प्तो॒ मधु॑मा॒न् पय॑स्वान्
भूमि॑दृंहो॒ऽच्यु॑तश्च्यावयि॒ष्णुः ।
नु॒दन्त्स॒पत्ना॒नध॑रांश्च कृ॒ण्वन्
दर्भा रो॑ह मह॒तामि॑न्द्रि॒येण॑ ॥ २ ॥
त्वं भू॒मिमत्ये॒ष्योज॑सा
त्वं वेद्यां॑ सीदसि॒ चार॑रध्व॒रे ।
त्वां प॒वित्र॒मृष॑योऽभरन्त
त्वं पु॑नीहि दुरि॒तान्य॒स्मत् ॥ ३ ॥
ती॒क्ष्णो राजा॑ विषास॒ही र॑क्षो॒हा वि॒श्वच॑र्षणिः ।
ओजो॑ दे॒वानां॒ बल॑मु॒ग्रमे॒तत्
तं ते॑ बध्नामि ज॒रसे॑ स्व॒स्तये॑ ॥ ४ ॥
द॒र्भेण॒ त्वं कृ॑णवद् वी॒र्या᳡णि
द॒र्भं बिभ्र॑दा॒त्मना॒ मा व्य॑थिष्ठाः ।
अ॒ति॒ष्ठाया॒ वर्च॒साधा॒न्यान्
सूर्य॑ इ॒वा भा॑हि प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ॥ ५ ॥

॥ २९९ ॥ (अथर्व० ५।२६।१-४,६-९,११)

ब्रह्मा । वास्तोष्पतिः, २ सविता, ३,११ इन्द्रः, ४ निविदः, ६ अदितिः, ७ विष्णुः, ८ त्वष्टा, ९ भगः, (नवशालायां घृतहोमः) । २,४,६-८,११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती; ३ त्रिपदा विराड् गायत्री, ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् । (सर्वा एकावसानाः) ।

पुन॑रे॒तु दे॒वः स॑वि॒ता प्र॑जा॒नन्
अ॒स्मिन् य॒ज्ञे म॑हि॒षः स्वाहा॑ ॥ २ ॥

इन्द्रं उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे
प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥
प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा
शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥
पयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिः
यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥
विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांसि
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥
त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥
भगो युनक्त्वाशिषो न्व(स्मा) अस्मिन् यज्ञे
प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याणि
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥

॥ ३०० ॥ (ऋ० १०।१८।७-१४)

संकुसुको यामायनः। ७-१४ पितृमेधः; १४ प्रजापतिर्वा। त्रिष्टुप्, ११ प्रस्तारपङ्क्तिः, १३ जगती, १४ अनुष्टुप्।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीः
आञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना
आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ७ ॥
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं
गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं
पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ ८ ॥
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य
अस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा
विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ९ ॥
उप सर्प मातरं भूमिमेताम्
उरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत
एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥ १० ॥
उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः
सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना।
माता पुत्रं यथा सिचा
अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ११ ॥
उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु
सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु
विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ १२ ॥
उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परि
इमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु
तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥ १३ ॥
प्रतीचीने मामहनी—ष्वाः पर्णमिवा दधुः।
प्रतीचीं जग्रभा वाच—मश्वं रशनया यथा ॥१४॥

॥ ३०१ ॥ (ऋ० १०।१०।१-१४)

नवमीवर्ज्यानामयुजां यमपाथ वैवस्वती यमी ऋषिका। यमः। षष्ठीवर्ज्यानां युजां नवम्याश्च वैवस्वतो यमः ऋषिः। यमी। त्रिष्टुप्, १३ विराट्स्थाना।

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां
तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा
अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥
न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्
सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा
दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥ २ ॥
उशन्ति घा ते अमृतास एतत्
एकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे
जन्युः पतिस्तन्व(मा) विविश्याः ॥ ३ ॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनम्
ऋता वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा
सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥ ४ ॥

गर्भे नु नौ जनिता दंपती कः
देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि
वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः
क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम
कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥ ६ ॥

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्
समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां
वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ७ ॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते
देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं
तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ८ ॥

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्
सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू
यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥ ९ ॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि
यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहु
अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ १० ॥

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति
किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३तद् रपामि
तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥ ११ ॥

न वा उ ते तन्वा तन्वं१ सं पपृच्यां
पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व
न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ १२ ॥

बतो बतासि यम नैव ते
मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं
परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥ १३ ॥

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां
परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तव
अधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥ १४ ॥

॥ १०१ ॥ (ऋ० १०।१४।१-५, ७-९, १३-१६)

वैवस्वतो यमः । यमः, ७-९ लिङ्गोक्ता, पितरो वा । त्रिष्टुप्, १३-१४, १६ अनुष्टुप्, १५ बृहती ।

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु
बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ १ ॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद
नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः
एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥ २ ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिः
बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्
स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥ ३ ॥

इमं यम प्रस्तरमा हि सीद
अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वे
ना राजन् हविषा मादयस्व ॥ ४ ॥

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभि
र्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता ते
ऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥ ५ ॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभि
र्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता
यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥ ७ ॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेने
ष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि
सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥ ८ ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातो
ऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं
यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ९ ॥

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छ—त्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १३ ॥

यमाय घृतवद्धवि—र्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः
पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ १५ ॥

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि
सर्वा ता यम आहिता ॥ १६ ॥

॥ ३०३ ॥ (ऋ० १०।१३५।१-७)

कुमारो यामायनः । यमः । अनुष्टुप् ।

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥१॥

पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया ।
असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः ॥२॥

यं कुमार नवं रथ—मचक्रं मनसाकृणोः ।
एकेषं विश्वतः प्राञ्च—मपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥ ३ ॥

यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि ।
तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् ॥ ४ ॥

कः कुमारमजनयद् रथं को निरवर्तयत् ।
कः स्वित् तदद्य नो ब्रूया—दनुदेयी यथाभवत् ॥ ५

यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत ।
पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम् ॥ ६ ॥

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयमस्य धम्यते नाळी
रयं गीर्भिः परिष्कृतः ॥ ७ ॥

॥ ३०४ ॥ (ऋ० १०।१५।१-१४)

शङ्खो यामायनः । पितरः । त्रिष्टुप्, ११ जगती ।

उदीरतामवर उत् परास
उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञा
स्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य
ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता
ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ २ ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि
नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य
भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ३ ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ४ ॥
उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५ ॥
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥ ६ ॥
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ७ ॥
ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ८ ॥
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥ ९ ॥
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥ १० ॥
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥ ११ ॥
त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ १२ ॥
ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ १३ ॥
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥ १४ ॥

॥ २०५ ॥ (अथर्व० १८।१।६,१३-१४,१७,३९-४१,४२-५४,५७-६१)

अथर्वा। यमः, मन्त्रोक्ताः, ४० रुद्रः, ४१-४३ सरस्वती, ४४-४६, ५१-५२ पितरः (पितृमेधः)। त्रिष्टुप्; १४,४९ भुरिक्। ५७,६१ अनुष्टुप्; ५९ पुरोबृहती।

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ ६ ॥
न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम्।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ १३ ॥
न वा उ ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥

(३१९८)

त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे
पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तानि
एकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥ १७ ॥

स्तेगो न क्षामत्येति पृथिवीं
मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो
अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ३९ ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां
राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो
अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥ ४० ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते
सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते
सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४१ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते
दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वं
अनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ४२ ॥

सरस्वति या सरथं ययाथ
उक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं
रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४३ ॥

उदीरतामवर उत् परास
उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञाः
ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४४ ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि
नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य
भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ४५ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य
ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता
ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥ ४६ ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिः
बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवां
ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४७ ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं
तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं
न कश्चन सहत आहवेषु ॥ ४८ ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति
बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ ४९ ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वाग्
इमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेन
अथा नः शं योररपो दधात ॥ ५१ ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्य
इदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो
यद् व आगः पुरुषता कराम ॥ ५२ ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति
तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना
महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ ५३ ॥

(१११३)

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैः
येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता
यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥ ५४ ॥

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५७ ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियाना
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५८ ॥

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह
यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता
तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ ५९ ॥

इमं यम प्रस्तरमा हि रोह
अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्तु
एना राजन् हविषो मादयस्व ॥ ६० ॥

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥

॥ ३०६ ॥ (अथर्व० १८।२।१-६०)

अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः; ४, ३४ अग्निः; ५ जातवेदाः; २९ पितरः (पितृमेधः)। त्रिष्टुप्; १-३, ६; १४-१८, २०, २२-२३, २५, ३०, ३४, ३६, ४६, ४८, ५०-५२, ५९ अनुष्टुप्; ४, ७, ९, १३ जगती; ५, २६, ४९, ५७ भुरिक्; १९ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; २४ त्रिपदा समविषमाऽऽर्षी गायत्री; ३७ विराड् जगती; ३८-४४ आर्षी गायत्री; (४०, ४२-४४ भुरिक्) ४५ ककुम्मती अनुष्टुप् ।

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १ ॥

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः
पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २ ॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३ ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो
मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदो
अथेमेनं प्र हिणुतात् पितॄँरुप ॥ ४ ॥

यदा शृतं कृणवो जातवेदो
अथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतां
अथ देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५ ॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि
सर्वा ता यम आर्पिता ॥ ६ ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना
दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितं
ओषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ७ ॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व
तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदः
ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८ ॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो
याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतां
अथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥ ९ ॥

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो
यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः
सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १० ॥
(१२२१)

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ
चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि
यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ ११ ॥
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ
चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं
स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥ १२ ॥
उरुणसावसुतृपा उदुम्बलौ
यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय
पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १३ ॥
सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् १४
ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् १५
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १६
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १७
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम
तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥
स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।
यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥ १९ ॥
असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः २०
ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान्
गृहाँ उप जुजुषाण एहि ।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन
स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः ॥ २१ ॥
उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥२२॥
उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ॥२३॥
मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥
मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥ २५ ॥
यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैः
अपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा
घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥ २६ ॥
अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यः
तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता
असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥ २७ ॥
ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा
ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्ति
अग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥ २८ ॥
सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः
स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा
ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥ २९ ॥
यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥ ३० ॥
अश्वावतीं प्र तर या सुशेवा
ऋक्षाकं वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु
मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥ ३१ ॥
(३१५०)

यमः परोऽवरो विवस्वान्
ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो
भुवो विवस्वानन्वाततान ॥ ३२ ॥
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः
कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीद्
अजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ ३३ ॥
ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः
स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥
शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं १ तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥ ३६ ॥
ददाम्यस्मा अवसानमेतद्
य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह
ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥ ३७ ॥
इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३८ ॥
प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३९ ॥
अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४० ॥
वी १ मां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥
निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४२ ॥
उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३ ॥
समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥
अमासि मात्रां स्व १ रगामायुष्मान् भूयासम् ।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥
प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥ ४६ ॥
ये अग्रवः शशमानाः परेयुः
हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं
नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥ ४७ ॥
उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा
य आविविशुरुर्व १ न्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां
तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥ ४९ ॥
इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये १ नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥
इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्ये १ नं भूम ऊर्णुहि ५१
अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥ ५२ ॥
अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं
देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्य
अञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥ ५३ ॥
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वान्
अनष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यो
अग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा
पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुः
तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ ५५ ॥
इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ५६
एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्
अपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान्
यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥५७॥
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व
सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो
दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥ ५८ ॥
दण्डं हस्तादाददानो गतासोः
सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा
विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ५९ ॥
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य
सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टं
अर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥ ६० ॥

॥ ३०७ ॥ (अथर्व० १८।३।१,३-४९, ५१, ५४, ५६, ५८-६६, ६८-७३)

अथर्वा । यमः, ४४, ४६ मन्त्रोक्ताः, ५-६ अग्निः; ५४ इन्दुः; ५६ आपः (पितृमेधः)। त्रिष्टुप्, ४, ८, ११, २३ सतः पङ्क्तिः; ५ त्रिपदा निचृद्गायत्री; ६, ५६, ६८, ७०-७२ अनुष्टुप् (५६ आर्षी); १८; २५-२९, ४४, ४६ जगती (१८ भुरिक्, २९ विराट्); ३० पञ्चपदाऽतिजगती; ३१ विराट् शक्वरी; ३२-३५, ४७, ४९, ५२ भुरिक् ; ३६ एकावसानाऽऽसुर्यनुष्टुप्; ३७ एकावसानाऽऽसुरी गायत्री; ३९ परा त्रिष्टुप् पङ्क्तिः; ५४ पुरोऽनुष्टुप्; ५८ विराट्; ६० व्यवसाना षट्पदा जगती; ६४ भुरिक् पथ्यापङ्क्तिः; ६९, ७१ उपरिष्टाद् बृहती ।

इयं नारी पतिलोकं वृणाना
नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती
तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥ १ ॥
अपश्यं युवतिं नीयमानां
जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत्
प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥ ३ ॥
प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं
देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व
स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥ ४ ॥
उप द्यामुप वेतस—मवत्तरो नदीनाम् ।
अग्ने पित्तमपामसि ॥ ५ ॥
यं त्वमग्ने समदह—स्तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥
इदं त एकं पर ऊं त एकं
तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वा३ चारुरेधि
प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥
उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः
कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः
सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥ ८ ॥
प्र च्यवस्व तन्वं३ सं भरस्व
मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व
यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥
वर्चसा मां पितरः सोम्यासो
अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो
जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥ १० ॥
(३९८८)

वर्चसा मां समनक्त्वग्निः
मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः
स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥ ११ ॥

मित्रावरुणा परि मामधातां
आदित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोः
जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥ १२ ॥

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां
यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ १३ ॥

परा यात पितर आ च यात
अयं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं
रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ १४ ॥

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः
श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिः
अवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥ १५ ॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ
भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः
सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रं
आयुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन
अधं स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७ ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते
क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं
हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥ १८ ॥

यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च
तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत
सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥ १९ ॥

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा
इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थ
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥ २० ॥

अधा यथा नः पितरः परासः
प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः ।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः
क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥ २१ ॥

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो
अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रं
उर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥ २२ ॥

आ यूथेव क्षुमति पश्वो
अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तानांश्चिदुर्वशीरकृप्रन्
वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ २३ ॥

अकर्म ते स्वपसो अभूम
ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ २४ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः
पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २५ ॥
(३३०१)

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २६ ॥

अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २७ ॥

सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २८ ॥

धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता
ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २९ ॥

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः
स्वधायामा दधामि
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३० ॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः
स्वधायामा दधामि
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३१ ॥

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः
स्वधायामा दधामि
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३२ ॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः
स्वधायामा दधामि
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३३ ॥

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः
स्वधायामा दधामि
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३४ ॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः
स्वधायामा दधामि
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३५ ॥

धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६ ॥

उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥

इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो
आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ॥ ३८ ॥

स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे
वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः
शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥ ३९ ॥

त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहत्
चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कम्
ऋतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥ ४० ॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं
प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः
प्रियां यमस्तन्व१मा रिरेच ॥ ४१ ॥

त्वमग्न ईडितो जातवेदो
ऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्
अद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ४२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे
रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः
प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ४३ ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत
सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि
रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ ४४ ॥

उपहूता नः पितरः सोम्यासो
बर्हिष्ये१षु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु
अधि ब्रुवन्तु ते१ऽवन्त्वस्मान् ॥ ४५ ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा
अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींषि
उशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ४६ ॥

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना
होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः
सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४७ ॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा
इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ्
परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४८ ॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतां
उरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत
एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥ ४९ ॥

उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं
लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति
ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥ ५२ ॥

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्राय
अबिभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं
तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥ ५४ ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ५६

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन
इष्टापूर्तेन परमे व्यो१मन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि
सं गच्छतां तन्वा१ सुवर्चाः ॥ ५८ ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा
य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य
यथावशं तन्व१ः कल्पयाति ॥ ५९ ॥

शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् ।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्य१प्सु शं भुव इमं स्व१ग्निं शमय ॥ ६० ॥

विवस्वान् नो अभयं कृणोतु
यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु
गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ६१ ॥

(३३१४)

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु
परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो
मो ष्वे्षामसवो यमं गुः ॥ ६२ ॥

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना
पितॄणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः
स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥ ६३ ॥

आ रोहत दिवमुत्तमां
ऋषयो मा बिभीतन ।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः
क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६४ ॥

प्र केतुना बृहता भात्यग्निः
आ रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानड्
अपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ६५ ॥

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं
हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं
यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ६६ ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ६८

यास्ते धाना अनुकिरामि
तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीः
तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ६९ ॥

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ७०

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ७१

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ७२

एतदा रोह वय उन्मृजानः
स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः
पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥ ७३ ॥

॥ ३०८ ॥ (अथर्व० १८।४।१-८९)

अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः, ८१ पितरः, ८८ अग्निः, ८९ चन्द्रमाः । त्रिष्टुप्; १,४,७,१४,३६,६० भुरिक्; २,५,११ २९,५०-५१,५८ जगती; ३ पञ्चपदा भुरिगतिजगती; ६,९,-१३ पञ्चपदा शक्वरी (९ भुरिक्, १३ त्र्यवसाना); ८ पञ्चपदाऽतिशक्वरी; १२ महाबृहती; १६-२४ त्रिपदा भुरिङ्महाबृहती; २६,३३,४३ उपरिष्टाद्बृहती (२६ विराट्); २७ याजुषी गायत्री; ३५, ३१-३२,३८,४१-४२,५५-५७,-५९, ६१ अनुष्टुप् (५६ ककुम्मती); ३९,६२-६३ आस्तारपङ्क्तिः (३९ पुरोविराट्, ६२ भुरिक्, ६३ स्वराट्); ४९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; ५३ पुरोविराट् सतः पङ्क्तिः; ६६ त्रिपदा स्वराड् गायत्री; ६७ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्; ६८,७१ आसुर्यनुष्टुप्; ७२-७४,७९ आसुरी पङ्क्तिः; ७५ आसुरी गायत्री; ७६ आसुर्युष्णिक्; ७७ दैवी जगती; ७८ आसुरी त्रिष्टुप्; ८० आसुरी जगती; ८१ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ८२ साम्नी बृहती; ८३-८४ साम्नी त्रिष्टुप्; ८५ आसुरी बृहती; (६७-६८-७१-८६ एकावसाना); ८६-८७ चतुष्पदा उष्णिक्; (८६ ककुम्मती, ८७ शंकुमती); ८८ त्र्यवसाना पथ्यापङ्क्तिः; ८९ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः ।

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः
पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह
ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥ १ ॥

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति
हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैः
यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥ २ ॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साधु
अङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या
मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥३॥
त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू
नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा
इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥ ४ ॥
जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं
ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः
कामंकामं यजमानाय दुह्राम् ॥ ५ ॥
ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसं
अन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व ।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं
स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः
सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥ ६ ॥
तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति
यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं
दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ ७ ॥
अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो
दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः ।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा
समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥ ८ ॥
पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्तात्
शं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो
मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो
अग्ने परि पाहि घोरात् ॥ ९ ॥
यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिः
ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ
यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ॥ १० ॥
शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्तात्
शमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः
सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥ ११ ॥
शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां
प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १२ ॥
यज्ञ एति विततः कल्पमानः
ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां
प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३ ॥
ईजानश्चितमारुक्षदग्निं
नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्
स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥ १४ ॥
अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिः
इन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति
यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥ १५ ॥
अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे
ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १६ ॥
अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ १७ ॥
अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ १८ ॥
(३३२१)

अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ १९ ॥
अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २० ॥
अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २१ ॥
अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २२ ॥
अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २३ ॥
अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २४ ॥
अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥२५॥
यास्ते धाना अनुकिरामि
तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्ताः
तें यमो राजानु मन्यताम् ॥ २६ ॥
अक्षितिं भूयसीम् ॥ २७ ॥
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यां
इमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं
द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ २८ ॥
शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं
नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा
ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥ २९ ॥
कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलं
इडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेषु
अग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ ३० ॥
एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वासानस्तार्प्यं चर ॥३१॥
धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥
एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपाः
तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥ ३३ ॥
एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य
कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना
विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥
वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान्
प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥ ३५ ॥
सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं
व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तं
उपासते पितरः स्वधाभिः ॥ ३६ ॥
इदं कसाम्बु चयनेन चितं
तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै
गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥ ३७ ॥
इहैवैधि धनसनि रिहचित्त इहक्रतुः ।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८ ॥
पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्ती रापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना
आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥ ३९ ॥
यापो ... प्र हिणुत ...
इमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
यामीशा पूर्णमत्र ये सचन्ते
ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान्

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम्।
स वेद निहितान्निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ४१

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥४२॥

यास्ते धाना अनुकिरामि
तिलमिश्राः स्वधावतीः।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीः
तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ४३ ॥

इदं पूर्वमपरं नियानं
येना ते पूर्वे पितरः परेताः।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य
ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥ ४४ ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते
सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते
सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४५ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते
दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वं
अनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ४६ ॥

सरस्वति या सरथं ययाथ
उक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं
रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४७ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि
देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः।
परापरैता वसुविद् वो अस्तु
अधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥ ४८ ॥

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां
यद् वामभिभा अत्रोचुः।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो
दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥ ४९ ॥

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो
अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा
पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ॥ ५० ॥

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिः
जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन्
प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥ ५१ ॥

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः
प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम्।
यथापरु तन्वं१ सं भरस्व
गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥ ५२ ॥

पर्णो राजापिधानं चरूणां
ऊर्जो बलं सह ओजो न आगन्।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद्
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ५३ ॥

ऊर्जो भागो य इमं जजान
अश्माऽन्नानामाधिपत्यं जगाम।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः
स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥ ५४ ॥

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥५५॥

इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥

ये च जीवा ये च मृता
ये जाता ये च यज्ञियाः।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ५७

(१४०१)

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः
सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रदद्
इन्द्रस्य हार्दिमाविशन् मनीषया ॥ ५८ ॥

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥५९॥

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं
सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे
सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ६० ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥६१॥

आ यात पितरः सोम्यासो
गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च
रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ ६२ ॥

परा यात पितरः सोम्यासो
गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान्
हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥ ६३ ॥

यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं
पितृलोकं गमयं जातवेदाः ।
तद् व एतत् पुनरा प्याययामि
साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥ ६४ ॥

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः
सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्
अद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ६५ ॥

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः ।
अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः
पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥ ६७ ॥
येऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥ ६८ ॥
उदुत्तमं वरुण० ॥ ६९ ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान्
यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अधा जीवेम शरदं शतानि
त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥ ७० ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥
सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥
पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३ ॥
यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥
एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥
एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥
एतत् ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥
स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ ७८ ॥
स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ ८० ॥
नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥८१

नमो वः पितरो भामाय
नमो वः पितरो मन्यवे ॥ ८२ ॥

नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै
नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ॥ ८३ ॥

नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै
नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥ ८४ ॥

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥ ८५ ॥

येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ
युष्मांस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥ ८६ ॥

य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः ।
अस्मांस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥ ८७ ॥

(१४३१)

आ त्वाग्ने इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८८ ॥
चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८९ ॥

॥ १०९ ॥ (ऋ० ८।३१।१-४)

मनुर्वैवस्वतः। यज्ञः, यजमानश्च। गायत्री।

यो यजाति यजात इत् सुनवच्च पचाति च।
ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥ १ ॥
पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम्।
पादित् तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥
तस्य द्युमाँ असद् रथो देवजूतः स शूशुवत्।
विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥ ३ ॥
अस्य प्रजावती गृहे ऽसश्चन्ती दिवेदिवे।
इळा धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥

॥ ११० ॥ (ऋ० १०।१८३।१-२)

प्रजावान् प्राजापत्यः। १ यजमानः; २ यजमानपत्नी। त्रिष्टुप्।

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं
तपसो जातं तपसो विभूतम्।
इह प्रजामिह रयिं रराणः
प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥ १ ॥
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां
स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम्।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः
प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥ २ ॥

॥ १११ ॥ (अथर्व० ७।९७।१-८) [यज्ञः]

॥ ११२ ॥ (अथर्व० १९।१।१-३)

ब्रह्मा। यज्ञः, चन्द्रमाश्च। १-२ पथ्याबृहती, ३ पङ्क्तिः।

सं सं स्रवन्तु नद्य१ः सं वाताः सं पतत्रिणः।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः
संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥
इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः
संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥
रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु
संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

॥ ११३ ॥ (अथर्व० १९।५८।१-६)

ब्रह्मा। यज्ञः, बहुदैवत्यम्। त्रिष्टुप्, २ पुरोऽनुष्टुप्, ३ चतुष्पदाऽतिशक्वरी, ५ भुरिक्।

घृतस्य जूतिः समना सदेवा
संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो
अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥ १ ॥
उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे।
वर्चो जग्राह पृथिव्य१न्तरिक्षं
वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥ २ ॥
वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथु-
र्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीः
यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो
वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा
मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥ ४ ॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च
वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा
देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥
ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया
येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य
यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥ ६ ॥

(३४४१)

॥ ३१४ ॥ (अथर्व० १९।५९।१)

ब्रह्मा । अग्निः (यज्ञः) । त्रिष्टुप् ।

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि
विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्
सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ २ ॥

॥ ३१५ ॥ (अथर्व० ७।९९।१)

अथर्वा । वेदी । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं
मा जामिं मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं
निष्का एते यजमानस्य लोके ॥ १ ॥

॥ ३१६ ॥ (ऋ० १।३६।१३-१४)

कण्वो घौरः । (अग्निः) यूपः । प्रगाथः [विषमा बृहती+समा सतोबृहति] (१३ उपरिष्टाद्बृहती । ऐ. ब्रा. २।२ चरणच्छेदः) ।

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता
यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना
विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे
विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४ ॥

॥ ३१७ ॥ (ऋ० ३।८।१-१०)

गाथिनो विश्वामित्रः । यूपः, ६-१० यूपाः, ८ विश्वे देवा वा । त्रिष्टुप्; ३, ७ अनुष्टुप् ।

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो
वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्
यद् वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ १ ॥
समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्
ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान
उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥
उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ३ ॥
युवा सुवासाः परिवीत आगात्
स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति
स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ ४ ॥
जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां
समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा
देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥ ५ ॥
यान् वो नरो देवयन्तो निमिम्युः
वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः
प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥ ६ ॥
ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥ ७ ॥
आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा
द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा
ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ८ ॥
हंसा इव श्रेणिशो यतानाः
शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्
देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥ ९ ॥
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे
चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा
अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥ १० ॥

(३२६३)

॥ ३१८ ॥ (वा० य० ६।१-३, ६)
(यूप. ।)

अग्रेणीरसि स्वावेश उन्नेतृणां
एतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु
सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः ।
द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षं
मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृꣳहीः ॥ २ ॥
या ते धामान्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः
परमं पदमवभारि भूरि ।
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ।
ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥ ३ ॥
परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां
परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम् ।
दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोक
आरण्यस्ते पशुः ॥ ६ ॥

॥ ३१९ ॥ (वा० य० २१।४६)
(यूपः।)

होता यक्षद् वनस्पतिमभि हि
पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित ।
यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि
यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि
यत्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि
यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि
यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि
यत्र सवितुः प्रिया धामानि
यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि
यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳसि
यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि
यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि
तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्
रभीयस इव कृत्वी करद्
एवं देवो वनस्पतिर्जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥ ४६ ॥

॥ ३२० ॥ (वा० य० २८।२०)
(यूपः।)

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः
सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृꣳहीद्
वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २० ॥

॥ ३२१ ॥ (अथर्व० ७।९८।१)
अथर्वा । इन्द्रः, विश्वे देवाः (हविः) । विराट् त्रिष्टुप् ।

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन
समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तं
इन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥ १ ॥

॥ ३२२ ॥ (ऋ० १०।१३।१-५)
आग्निर्हविर्धानः विवस्वानादित्यो वा । हविर्धाने । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः
वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ १ ॥
यमे इव यतमाने यदैतं
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने
स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥ २ ॥
पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं
चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एतां
ऋतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥ ३ ॥
(१४७१)

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं
प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं
प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥ ४ ॥
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते
पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत
उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥ ५ ॥

॥ ३०३ ॥ (ऋ० १।२८।५-८)
आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । ५-६ उलूखलं, ७-८ उलूखलमुसले । ५-६ अनुष्टुप्, ७-८ गायत्री ।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥
उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥
आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः ।
हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः ।
इन्द्राय मधुमत् सुतम् ॥ ८ ॥

॥ ३०४ ॥ (ऋ० ७।१०४।१७)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । ग्रावाणः । त्रिष्टुप् ।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तं
अप द्रुहा तन्वं गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट
ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥ १७ ॥

॥ ३०५ ॥ (ऋ० १०।७६।१-८)
जरत्कर्ण ऐरावतो जरत्कर्णः । ग्रावाणः । जगती ।

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिषु
इन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा
सदःसदो वरिवस्यात उद्भिदा ॥ १ ॥
तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतन
अत्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्ध्यर्यो अभिभूति पौंस्यं
महो राये चित् तरुते यदर्वतः ॥ २ ॥
तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो
यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि
प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥ ३ ॥
अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः
स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन
देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥ ४ ॥
दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो
विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्यो
अग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ॥ ५ ॥
भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो
ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वा
घोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥ ६ ॥
सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो
निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं
नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥ ७ ॥
एते नरः स्वपसो अभूतन
य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने
वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ॥ ८ ॥

॥ ३०६ ॥ (ऋ० १०।९४।१-१४)
अर्बुदः काद्रवेयः सर्पः । ग्रावाणः । जगती; ५, ७, १४ त्रिष्टुप् ।

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम
ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः
श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥ १ ॥

एते वदन्ति शतवत् सहस्रवद्
अभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया
होतुश्चित् पूर्वे हविरद्यमाशत ॥ २ ॥

एते वदन्त्यविदन्नना मधु
न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि ।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतः
ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ॥ ३ ॥

बृहद् वदन्ति मदिरेण मन्दिना
इन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुः
आघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥ ४ ॥

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यवि
आखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं
पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥ ५ ॥

उग्रा इव प्रवहन्तः समायमुः
साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः
शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ॥ ६ ॥

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो
दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो
दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ॥ ७ ॥

ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवः
तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।
त ऊ सुतस्य सोम्यस्यान्धसः
अंशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ॥ ८ ॥

ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसतः
अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्सोम्यं मधु
इन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ॥ ९ ॥

वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथन
इळावन्तः सदमित् स्थनाशिताः ।
रैवत्येव महसा चारवः स्थन
यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् ॥ १० ॥

तृदिला अतृदिलासो अद्रयो
अश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः
सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ॥ ११ ॥

ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे
क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव
आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः ॥ १२ ॥

तदिद् वदन्त्यद्रयो विमोचने
यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः
पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः ॥ १३ ॥

सुते अध्वरे अधि वाचमक्रत
आ क्रीळयो न मातरं तुदन्तः ।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां
वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः ॥ १४ ॥

॥ ३९७ ॥ (ऋ० १०।१७५।१-४)
ऊर्ध्वग्रावा सर्प आर्बुदिः । ग्रावाणः । गायत्री ।

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा ।
धूर्षु युज्यध्वं सुनुत ॥ १ ॥

ग्रावाणो अप दुच्छुना—मप सेधत दुर्मतिम् ।
उस्राः कर्तन भेषजम् ॥ २ ॥

ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः ।
वृष्णे दधतो वृष्ण्यम् ॥ ३ ॥

ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥

(३५०१)

॥ ३२८ ॥ (ऋ० १०।११७।१-९)
भिक्षुराङ्गिरसः। धनान्नदानम्। त्रिष्टुप्, १-२ जगती।

न वा उ॑ दे॒वाः क्षुध॒मिद्व॒धं द॑दुः
उ॒ताशि॑त॒मुप॑ गच्छन्ति मृ॒त्यवः॑ ।
उ॒तो र॒यिः पृ॑ण॒तो नोप॑ दस्यति
उ॒ताऽपृ॑णन् मर्डि॒तारं॒ न वि॑न्दते ॥ १ ॥
य आ॒ध्राय॑ चकमा॒नाय॑ पि॒त्वो
ऽन्न॑वान्त्सन् र॒फि॒तायो॑पज॒ग्मुषे॑ ।
स्थि॒रं मनः॑ कृणु॒ते सेव॑ते पु॒रा
उ॒तो चि॒त् स म॑र्डि॒तारं॒ न वि॑न्दते ॥ २ ॥
स इद्भो॒जो यो गृ॒हवे॑ द॒दाति
अन्न॑कामाय॒ चर॑ते कृ॒शाय॑ ।
अर॑मस्मै भवति॒ याम॑हूता
उ॒ताप॒रीषु॑ कृणु॒ते सखा॑यम् ॥ ३ ॥
न स सखा॒ यो न द॒दाति॒ सख्ये॑
सचा॒भुवे॒ सच॑मानाय पि॒त्वः ।
अपा॑स्मा॒त् प्रेया॒न्न तदोको॑ अस्ति
पृ॒णन्त॑म॒न्यमर॑णं चि॒दिच्छे॑त् ॥ ४ ॥
पृणी॒यादिन्नाध॑मानाय॒ तव्या॑न्
द्राघी॑यांस॒मनु॑ पश्येत॒ पन्था॑म् ।
ओ हि वर्त॑न्ते॒ रथ्ये॑व च॒क्रा
ऽन्यम॑न्य॒मुप॑ तिष्ठन्त॒ रायः॑ ॥ ५ ॥
मोघ॒मन्नं॑ विन्दते॒ अप्र॑चेताः
स॒त्यं ब्र॑वीमि व॒ध इत् स तस्य॑ ।
नार्य॒मणं॒ पुष्य॑ति॒ नो सखा॑यं
केव॑लाघो भवति केवला॒दी ॥ ६ ॥
कृ॒षन्नित् फाल॒ आशि॑तं कृणोति॒
यन्न॒ध्वान॒मप॑ वृङ्क्ते च॒रित्रैः॑ ।
वद॑न् ब्र॒ह्माव॑दतो॒ वनी॑यान्
पृ॒णन्ना॒पिरपृ॑णन्तम॒भि ष्या॑त् ॥ ७ ॥
एक॑पा॒द् भूयो॑ द्वि॒पदो॒ वि च॑क्रमे
द्वि॒पात् त्रि॒पाद॑म॒भ्ये॑ति प॒श्चात् ।
चतु॑ष्पादेति द्वि॒पदा॑मभिस्व॒रे
सं॒पश्य॑न् प॒ङ्क्तीरु॒पति॑ष्ठमानः ॥ ८ ॥
स॒मौ चि॒द्धस्तौ॒ न स॒मं वि॑विष्टः
संमा॒तरा॑ चि॒न्न स॒मं दु॑हाते ।
य॒मयो॑श्चि॒न्न स॒मा वी॒र्या॑णि
ज्ञा॒ती चि॒त् सन्तौ॒ न स॒मं पृ॑णीतः ॥ ९ ॥

॥ ३२९ ॥ (अथर्व० ३।१४।१-६)
ब्रह्मा। गोष्ठः, अहः, २ अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः; १-६ गावः, ५ गोष्ठश्च । अनुष्टुप्, ६ आर्षी त्रिष्टुप्।

सं वो॑ गो॒ष्ठेन॑ सु॒षदा॒ सं र॒य्या सं सुभू॒त्या ।
अह॑र्जातस्य॒ यन्नाम॒ तेना॑ वः॒ सं सृ॑जामसि ॥१॥
सं वः॑ सृजत्वर्य॒मा सं पू॒षा सं बृह॒स्पतिः॑ ।
समिन्द्रो॒ यो ध॑नंज॒यो मयि॑ पुष्यत॒ यद् वसु॑ ॥२॥
सं॒जग्मा॑ना॒ अबि॑भ्युषीर॒स्मिन् गो॒ष्ठे क॑री॒षिणीः॑ ।
बिभ्र॑तीः सो॒म्यं मध्व॑नमी॒वा उ॒पेत॑न ॥ ३ ॥
इ॒हैव गा॑व॒ एत॑ने॒हो शके॑व पुष्यत ।
इ॒हैवोत प्र जा॑यध्वं॒ मयि॑ सं॒ज्ञान॑मस्तु वः ॥ ४ ॥
शि॒वो वो॑ गो॒ष्ठो भ॑वतु॒ शारि॑शाकेव पुष्यत ।
इ॒हैवोत प्र जा॑यध्वं॒ मया॑ वः॒ सं सृ॑जामसि ॥ ५ ॥
मया॑ गावो॒ गोप॑तिना सचध्व॒म्
अ॒यं वो॑ गो॒ष्ठ इ॒ह पो॑षयि॒ष्णुः ।
रा॒यस्पोषे॑ण बहु॒ला भव॑न्तीः
जी॒वा जीव॑न्ती॒रुप॑ वः सदेम ॥ ६ ॥

॥ ३३० ॥ (अथर्व० ६।४९।२)
गार्ग्यः। अग्निः (अग्निस्तवः)। विराट् जगती।

सु॒पर्णा॒ वाच॑मक्र॒तोप॒ द्यवि॑
आख॒रे कृष्णा॑ इषि॒रा अ॑नर्तिषुः ।
नि यन्नि॒यन्त्युप॑रस्य॒ निष्कृ॑तिं
पु॒रू रेतो॑ दधिरे सूर्य॒श्रितः॑ ॥ ३ ॥

इत्येकोनविंशति (१९) मन्त्राः तत्तद्विषये संग्राह्याः ।

॥ ३३१ ॥ (वा० य० १२।१००)
दीर्घायुष्यम् ।

दी॒र्घायु॑स्त ओषधे ख॒नि॒ता यस्मै॑ च त्वा॒ खना॑म्य॒हम्।
अथो॒ त्वं दी॒र्घायु॑र्भू॒त्वा श॒तव॑ल्शा॒ विरो॑हतात्॥१००

(३५१२)

॥ ३३१ ॥ (वा० य० ३४।५०-५२) दीर्घायुष्यम् ।

आयुष्यं वर्चस्य१ रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इद१ हिरण्यं वर्चस्व—ज्जैत्रायाविशतादु माम् ५०
न तद् रक्षा१सि न पिशाचास्तरन्ति
देवानामोजः प्रथमज१ ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायण१ हिरण्य१
स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ५१ ॥
यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्य१
शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तन्म आ बध्नामि शतशारदाय
आयुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ ५२ ॥

॥ ३३३ ॥ (अथर्व० २।१३।१-५)
अथर्वा । अग्नि, २-३ बृहस्पति, ४-५ विश्वे देवा (दीर्घायुः प्राप्तिः) । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ६ विराड्जगती ।

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो
घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं
पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥ १ ॥
परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं
जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत्
सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ २ ॥
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तये
अभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची
रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥ ३ ॥
एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥ ४ ॥
यस्य ते वासः प्रथमवास्यं१
हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमान
मनु जायन्तां बहवः सुजातम् ॥ ५ ॥

॥ ३३४ ॥ (ऋ० १०।८५।३१)
सावित्री सूर्या ऋषिका । दम्पत्योर्यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् ।

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥३१॥

॥ ३३५ ॥ (ऋ० १०।१५५।१, ४)
शिरिम्बिठो भारद्वाजः । अलक्ष्मीघ्नम् । अनुष्टुप् ।

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभि—स्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥१
यद्ध प्राचीरजगन्तो—रो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ ४ ॥

॥ ३३६ ॥ (ऋ० १०।१४५।४, ६)
इन्द्राणी । सपत्नीबाधनम् (उपनिषत्) । ४ अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।

नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन् रमते जने ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ४ ॥
उप तेऽधां सहमाना—मभि त्वाधां सहीयसा ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु
पथा वारिव धावतु ॥ ६ ॥

॥ ३३७ ॥ (ऋ० १०।१६६।१-५)
ऋषभो वैराज, ऋषभः शाक्वरो वा । सपत्नघ्नम् ।
अनुष्टुप्, ५ महापङ्क्तिः ।

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥ १ ॥
अहमस्मि सपत्नहे—न्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।
अधः सपत्ना मे पदो—रिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥२॥
अत्रैव वोऽपि नह्या—म्युभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पते नि षेधेमान् यथा मदधरं वदान् ॥३॥
अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रत—मा वोऽहं समितिं ददे ४
योगक्षेमं व आदाया—ऽहं भूयासमुत्तम
आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।
अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूका इवोदकात्
मण्डूका उदकादिव ॥ ५ ॥

(३१४०)



ओषधीनां राजा

सोमः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ९।१।१-१०)

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् ।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥
वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥
अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥
त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे ।
इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥
पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥
तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश ।
स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥
तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् ।
त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥
अभीममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् ।
सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते ।
शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ९।२।१-१०)

मेधातिथिः काण्वः ।

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या ।
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥
अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः ।
सं सूर्येण रोचते ॥ ६ ॥
गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे।
तव प्रशस्तयो महीः ॥ ८ ॥
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयु-र्मध्वः पवस्व धारया।
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ ९ ॥
गोपा इन्दो नृपा अ-स्यश्वसा वाजसा उत।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० ९।३।१-१०)
आजीगर्तिः शुनःशेपः, कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः।

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥
एष देवो विपा कृतो ऽति ह्वरांसि धावति।
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥
एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः।
पवमानः सिषासति ॥ ४ ॥
एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति।
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ५ ॥
एष विप्रैरभिष्टुतो ऽपो देवो वि गाहते।
दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥
एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया।
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥
एष दिवं व्यासरत् तिरो रजांस्यस्पृतः।
पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः।
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥
एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः।
धारया पवते सुतः ॥ १० ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० ९।४।१-१०)
हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः।

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥
सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥
सना दक्षमुत क्रतु-मप सोम मृधो जहि।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥
त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥
तव क्रत्वा तवोतिभि-र्ज्योक् पश्येम सूर्यम्।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥
अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम्।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥
अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥
त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥
रयिं नश्चित्रमश्विन-मिन्दो विश्वायुमा भर।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० ९।६।१-९)
असितः काश्यपो देवलो वा।

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः।
अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥ १ ॥
अभि त्यं मद्यं मद-मिन्दविन्द्र इति क्षर।
अभि वाजिनो अर्वतः ॥ २ ॥
अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ३ ॥
अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन्।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ ४ ॥
यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश।
वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥ ५ ॥
तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये।
सुतं भराय सं सृज ॥ ६ ॥

देवो देवाय धारये—न्द्राय पवते सुतः ।
पयो यदस्य पीपयत् ॥ ७ ॥
आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः ।
प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥ ८ ॥
एवा पुनान इन्द्रयु—र्मदं मदिष्ठ वीतये ।
गुहा चिद् दधिषे गिरः ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ९।७।१-९)

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।
विदाना अस्य योजनम् ॥ १ ॥
प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते ।
हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥ २ ॥
प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद् वने ।
सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥
परि यत् काव्या कवि—र्नृम्णा वसानो अर्षति ।
स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥
पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥
अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।
रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥
स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।
रणा यो अस्य धर्मभिः ॥ ७ ॥
आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः ।
विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥
अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
श्रवो वसूनि सं जितम् ॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ९।८।१-९)

एते सोमा अभि प्रिय—मिन्द्रस्य काममक्षरन् ।
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् । ॥ १ ॥
पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥ २ ॥
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ३ ॥
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥
देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः ।
सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥
पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।
परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥
मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥
वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ८ ॥
नृचक्षसं त्वा वय—मिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ९ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ९।९।१-९)

परि प्रिया दिवः कवि—र्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
सुवानो याति कविक्रतुः ॥ १ ॥
प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे ।
वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥ २ ॥
स सूनुर्मातरा शुचि—र्जातो जाते अरोचयत् ।
महान् मही ऋतावृधा ॥ ३ ॥
स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः ।
या एकमक्षि वावृधुः ॥ ४ ॥
ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः ।
इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥ ५ ॥
अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः ।
क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥ ६ ॥
अवा कल्पेषु नः पुम—स्तमांसि सोम योध्या ।
तानि पुनान जङ्घनः ॥ ७ ॥
नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः ।
प्रत्नवद् रोचया रुचः ॥ ८ ॥

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत्।
सना मेधां सना स्वः ॥ ९ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ९।१०।१-९)

प्र स्वानासो रथा इवा — ऽर्वन्तो न श्रवस्यवः।
सोमासो राये अक्रमुः ॥ १ ॥
हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः।
भरासः कारिणामिव ॥ २ ॥
राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते।
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ३ ॥
परि सुवानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा।
सुता अर्षन्ति धारया ॥ ४ ॥
आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम्।
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ५ ॥
अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः।
वृष्णो हरस आयवः ॥ ६ ॥
समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः।
पदमेकस्य पिप्रतः ॥ ७ ॥
नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित् सूर्ये सचा।
कवेरपत्यमा दुहे ॥ ८ ॥
अभि प्रिया दिवस्पद — मध्वर्युभिर्गुहा हितम्।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ ९ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ९।११।१-९)

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥
अभि ते मधुना पयो ऽथर्वाणो अशिश्रयुः।
देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥
बभ्रवे नु स्वतवसे ऽरुणाय दिविस्पृशे।
सोमाय गाथमर्चत ॥ ४ ॥
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन।
मधावा धावता मधु ॥ ५ ॥
नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन।
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ६ ॥
अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ७ ॥
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे।
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ८ ॥
पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः।
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ९।१२।१-९)

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥
अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित्।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥
दिवो नाभा विचक्षणो ऽव्यो वारे महीयते।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥
यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः।
तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥
प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि।
जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥
नित्यस्तोत्रो वनस्पति — र्धीनामन्तः सबर्दुघः।
हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥
अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति।
विप्रस्य धारया कविः ॥ ८ ॥
आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम्।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ९ ॥

(१६४१)

(॥ १२ ॥ ऋ० ९।१३।१-९)

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥
पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत ।
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥
पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥
उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
सुवाना देवास इन्दवः ॥ ५ ॥
अत्या हियाना न हेतृभि रसृग्रं वाजसातये ।
वि वारमव्यमाशवः ॥ ६ ॥
वाश्रा अर्षन्तीन्दवो ऽभि वत्सं न धेनवः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥
अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ९।१४।१-८)

परि प्रासिष्यदत् कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।
कारं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ॥ १ ॥
गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः ।
परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥ २ ॥
आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत ।
यदी गोभिर्वसायते ॥ ३ ॥
निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा ।
अत्रा सं जिघ्रते युजा ॥ ४ ॥
नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा ।
गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ ५ ॥
अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या ।
वग्नुमियर्ति यं विदे ॥ ६ ॥
अभि क्षिपः समग्मत मर्जयन्तीरिषस्पतिम् ।
पृष्ठा गृभ्णत वाजिनः ॥ ७ ॥
परि दिव्यानि मर्मृशद् विश्वानि सोम पार्थिवा ।
वसूनि याह्यस्मयुः ॥ ८ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० ९।१५।१-८)

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥
एष पुरू धियायते बृहते देवतातये ।
यत्रामृतास आसते ॥ २ ॥
एष हितो वि नीयते ऽन्तः शुभ्रावता पथा ।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ३ ॥
एष शृङ्गाणि दोधुव च्छिशीते यूथ्यो वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ४ ॥
एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥
एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥ ६ ॥
एतं मृजन्ति मर्ज्य मुप द्रोणेष्वायवः ।
प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ७ ॥
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० ९।१६।१-८)

प्र ते सोतार ओण्यो रसं मदाय घृष्वये ।
सर्गो न तक्त्येतशः ॥ १ ॥
क्रत्वा दक्षस्य रथ्य मपो वसानमन्धसा ।
गोषामण्वेषु सश्चिम ॥ २ ॥
अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति ।
क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥ ४ ॥
प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत ।
महे भराय कारिणः ॥ ५ ॥
पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ६ ॥
दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः ।
वृथा पवित्रे अर्षति ॥ ७ ॥
त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु ।
अव्यो वारं वि धावसि ॥ ८ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० ९।१७।१-८)

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।
सोमा असृग्रमाशवः ॥ १ ॥
अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव ।
इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ २ ॥
अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ ३ ॥
आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते ।
उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ ४ ॥
अति त्री सोम रोचना रोहन् न भ्राजसे दिवम् ।
इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥ ५ ॥
अभि विप्रा अनूषत मूर्धन् यज्ञस्य कारवः ।
दधानाश्चक्षसि प्रियम् ॥ ६ ॥
तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः ।
मृजन्ति देवतातये ॥ ७ ॥
मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः ।
चारुर्ऋताय पीतये ॥ ८ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० ९।१८।१-७)

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥
त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥
तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥
आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ४ ॥
य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ५ ॥
परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ६ ॥
स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ७ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० ९।१९।१-७)

यत् सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।
तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥
युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥
वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि ।
हरिः सन् योनिमासदत् ॥ ३ ॥
अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि ।
सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥
कुविद् वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् ।
याः शुक्रं दुहते पयः ॥ ५ ॥
उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु ।
पवमान विदा रयिम् ॥ ६ ॥
नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर ।
दूरे वा सतो अन्ति वा ॥ ७ ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० ९।२०।१-७)

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति ।
साह्वान् विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥
परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥
अभ्यर्ष बृहद् यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥
त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ ।
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥
स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥
क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ९।२१।१-७)

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः ।
मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १ ॥
प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः ।
स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥ २ ॥
वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥
एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत ।
हिता न सप्तयो रथे ॥ ४ ॥
आस्मिन् पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे ।
यो अस्मभ्यमरावा ॥ ५ ॥
ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे ।
शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥ ६ ॥
एत उ त्ये अवीवशन् काष्ठां वाजिनो अक्रत ।
सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥ ७ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ९।२२।१-७)

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः ।
सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥ १ ॥
एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः ।
अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥ २ ॥
एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
विपा व्यानशुर्धियः ॥ ३ ॥
एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः ।
इयक्षन्तः पथो रजः ॥ ४ ॥
एते पृष्ठानि रोदसो — र्विप्रयन्तो व्यानशुः ।
उतेदमुत्तमं रजः ॥ ५ ॥
तन्तुं तन्वानमुत्तम — मनु प्रवत आशत ।
उतेदमुत्तमाय्यम् ॥ ६ ॥
त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारय ।
ततं तन्तुमचिक्रदः ॥ ७ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० ९।२३।१-७)

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया ।
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥
अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ २ ॥
आ पवमान नो भरा — ऽर्यो अदाशुषो गयम् ।
कृधि प्रजावतीरिषः ॥ ३ ॥
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥
सोमो अर्षति धर्णसि — र्दधान इन्द्रियं रसम् ।
सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥ ५ ॥
इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः ।
इन्दो वाजं सिषाससि ॥ ६ ॥
अस्य पीत्वा मदाना — मिन्द्रो वृत्राण्यप्रति ।
जघान जघनच्च नु ॥ ७ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ९।२४।१-७)

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ १ ॥

अभि गावो अधन्विषु—रापो न प्रवता यतीः।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥
प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे।
नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥
त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे।
सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ४ ॥
इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ५ ॥
पवस्व वृत्रहन्तमो—क्थेभिरनुमाद्यः।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥
शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः।
देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥

(॥ २४ ॥ ऋ० ९।२५।१-६)
दृळ्हच्युत आगस्त्य ।

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥
पवमान धिया हितो३ ऽभि योनिं कनिक्रदत्।
धर्मणा वायुमा विश ॥ २ ॥
सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः।
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥
विश्वा रूपाण्याविशन् पुनानो याति हर्यतः।
यत्रामृतास आसते ॥ ४ ॥
अरुषो जनयन् गिरः सोमः पवत आयुषक्।
इन्द्रं गच्छन् कविक्रतुः ॥ ५ ॥
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥

॥ २६ ॥ (ऋ० ९।२६।१-६)
इध्मवाहो दार्ढच्युत ।

तममृक्षन्त वाजिन—मुपस्थे अदितेरधि।
विप्रासो अण्व्या धिया ॥ १ ॥
तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम्।
इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥ २ ॥
तं वेधां मेधयाह्यन् पवमानमधि द्यवि।
धर्णसिं भूरिधायसम् ॥ ३ ॥
तमह्यन् भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः।
पतिं वाचो अदाभ्यम् ॥ ४ ॥
तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
हर्यतं भूरिचक्षसम् ॥ ५ ॥
तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम्।
इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥ ६ ॥

॥ २६ ॥ (ऋ० ९।२७।१-६)
नृमेध आङ्गिरस ।

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते।
पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥ १ ॥
एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥
एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥
एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥
एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥
एष शुष्म्यसिष्यद—दन्तरिक्षे वृषा हरिः।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥

॥ २७ ॥ (ऋ० ९।२८।१-६)
प्रियमेध आङ्गिरस ।

एष वाजी हितो नृभि—र्विश्वविन्मनसस्पतिः।
अव्यो वारं वि धावति ॥ १ ॥
एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः।
विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥
एष देवः शुभायते—ऽधि योनावमर्त्यः।
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥
एष वृषा कनिक्रदद् दशभिर्जामिभिर्यतः।
अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

एष सूर्यमरोचयत् पर्वमानो विचर्षणिः ।
विश्वा धामानि विश्ववित् ॥ ५ ॥
एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० ९।२९।१-६)
नृमेध आङ्गिरसः ।

प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसा ।
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥
सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥
सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ ३ ॥
विश्वा वसूनि संजयन् पवस्व सोम धारया ।
इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥ ४ ॥
रक्षा सु नो अररुषः स्वनात् समस्य कस्य चित् ।
निदो यत्र मुमुच्महे ॥ ५ ॥
एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया ।
द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥ ६ ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० ९।३०।१-६)
बिन्दुराङ्गिरसः ।

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् ।
पुनानो वाचमिष्यति ॥ १ ॥
इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् ।
इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥ २ ॥
आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् ।
पवस्व सोम धारया ॥ ३ ॥
प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ ४ ॥
अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥
सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥ ६ ॥

॥ २० ॥ (ऋ० ९।३१।१-६)
गोतमो राहूगणः ।

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः ।
रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥ १ ॥
दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः ।
भवा वाजानां पतिः ॥ २ ॥
तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ।
सोम वर्धन्ति ते महः ॥ ३ ॥
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य संगथे ॥ ४ ॥
तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् ।
वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥ ५ ॥
स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम् ।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ ६ ॥

॥ २१ ॥ (ऋ० ९।३२।१-६)
श्यावाश्व आत्रेयः ।

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः ।
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥
आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥
उभे सोमावचाकशन् मृगो न तक्तो अर्षसि ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ४ ॥
अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् ।
अगन्नाजिं यथा हितम् ॥ ५ ॥
अस्मे धेहि द्युमद् यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।
सनिं मेधामुत श्रवः ॥ ६ ॥

॥ २२ ॥ (ऋ० ९।३३।१-६)
त्रित आप्त्यः ।

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥ १ ॥

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥
तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ४ ॥
अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः ।
मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥ ५ ॥
रायः समुद्रांश्चतुरो ऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥

॥ ३३ ॥ (ऋ० ९।३४।१-६)

प्र सुवानो धारया तने—न्दुर्हिन्वानो अर्षति ।
रुजद् दृळ्हा व्योजसा ॥ १ ॥
सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २ ॥
वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।
दुहन्ति शक्मना पयः ॥ ३ ॥
भुवत् त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।
सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥
अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः ।
चारु प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥
समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः ।
धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥ ६ ॥

॥ ३४ ॥ (ऋ० ९।३५।१-६)

प्रभूवसुराङ्गिरस ।

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् ।
यया ज्योतिर्विदासि नः ॥ १ ॥
इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय ।
रायो धर्ता न ओजसा ॥ २ ॥
त्वया वीरेण वीरवो ऽभि ष्याम पृतन्यतः ।
क्षरा णो अभि वार्यम् ॥ ३ ॥
प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन् वाजसा ऋषिः ।
व्रता विदान आयुधा ॥ ४ ॥
तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि ।
सोमं जनस्य गोपतिम् ॥ ५ ॥
विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः ।
पुनानस्य प्रभूवसोः ॥ ६ ॥

॥ ३५ ॥ (ऋ० ९।३६।१-६)

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।
कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥
स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति ।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ २ ॥
स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥
शुम्भमान ऋतायुभि—र्मृज्यमानो गभस्त्योः ।
पवते वारे अव्यये ॥ ४ ॥
स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।
पवतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥
आ दिवस्पृष्ठमश्वयु—र्गव्ययुः सोम रोहसि ।
वीरयुः शवसस्पते ॥ ६ ॥

॥ ३६ ॥ (ऋ० ९।३७।१-६)

राहूगण आङ्गिरस ।

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥
स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥
स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥
स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥
स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।
सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

(३८१०)

स देवः कविनेषितो३ ऽभि द्रोणानि धावति ।
इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥ ६ ॥

॥ ३७ ॥ (ऋ० ९।३८।१-६)

एष उ स्य वृषा रथो ऽव्यो वारेभिरर्षति ।
गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥
एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ३ ॥
एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ४ ॥
एष स्य मद्यो रसो ऽव चष्टे दिवः शिशुः ।
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ५ ॥
एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
क्रन्दन् योनिमभि प्रियम् ॥ ६ ॥

॥ ३८ ॥ (ऋ० ९।३९।१-६)

बृहन्मतिराङ्गिरसः ।

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
यत्र देवा इति ब्रवन् ॥ १ ॥
परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥
सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ३ ॥
अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ४ ॥
आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।
इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥
समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
योनावृतस्य सीदत ॥ ६ ॥

॥ ३९ ॥ (ऋ० ९।४०।१-६)

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥
आ योनिमरुणो रुहद् गमदिन्द्रं वृषा सुतः ।
ध्रुवे सदसि सीदति ॥ २ ॥
नू नो रयिं महामिन्दो ऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥
विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर ।
विदाः सहस्रिणीरिषः ॥ ४ ॥
स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् ।
जरितुर्वर्धया गिरः ॥ ५ ॥
पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥ ६ ॥

॥ ४० ॥ (ऋ० ९।४१।१-६)

मेध्यातिथिः काण्वः ।

प्र ये गावो न भूर्णय स्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥
सुवितस्य मनामहे ऽति सेतुं दुराव्यम् ।
साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥
आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्वावद् वाजवत् सुतः ॥ ४ ॥
स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥

॥ ४१ ॥ (ऋ० ९।४२।१-६)

जनयन् रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् ।
वसानो गा अपो हरिः ॥ १ ॥
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।
धारया पवते सुतः ॥ २ ॥
वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये ।
सोमाः सहस्रपाजसः ॥ ३ ॥

दुहानः प्रत्नमित् पयः पवित्रे परि षिच्यते।
क्रन्दन् देवाँ अजीजनत् ॥ ४ ॥
अभि विश्वानि वार्या ऽभि देवाँ ऋतावृधः।
सोमः पुनानो अर्षति ॥ ५ ॥
गोमन्नः सोम वीरव-दश्वावद् वाजवत् सुतः।
पवस्व बृहतीरिषः ॥ ६ ॥

॥ ४१ ॥ (ऋ० ९।४३।१-६)

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः।
तं गीर्भिर्वासयामसि ॥ १ ॥
तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः।
विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥
पवमान विदा रयि-मस्मभ्यं सोम सुश्रियम्।
इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥
इन्दुरत्यो न वाजसृत् कनिक्रन्ति पवित्र आ।
यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥
पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे।
सोम रास्व सुवीर्यम् ॥ ६ ॥

(॥ ४२ ॥ ऋ० ९।४४।१-६)

अयास्य आङ्गिरसः।

प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि।
अभि देवाँ अयास्यः ॥ १ ॥
मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति।
विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥
अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ।
सोमो याति विचर्षणिः ॥ ३ ॥
स नः पवस्व वाजयु-श्चक्राणश्चारुमध्वरम्।
बर्हिष्माँ आ विवासति ॥ ४ ॥
स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः।
सोमो देवेष्वा यमत् ॥ ५ ॥
स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद् गातुवित्तमः।
वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥ ६ ॥

॥ ४४ ॥ (ऋ० ९।४५।१-६)

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १ ॥
स नो अर्षाभि दूत्यं त्वमिन्द्राय तोशसे।
देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ॥ २ ॥
उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम्।
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥
अत्यू पवित्रमक्रमीद् वाजी धुरं न यामनि।
इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥ ४ ॥
समी सखायो अस्वरन् वने क्रीळन्तमत्यविम्।
इन्दुं नावा अनूषत ॥ ५ ॥
तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे।
इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ६ ॥

॥ ४५ ॥ (ऋ० ९।४६।१-६)

असृग्रन् देववीतये ऽत्यासः कृत्व्या इव।
क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥ १ ॥
परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती।
वायुं सोमा असृक्षत ॥ २ ॥
एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः।
इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥ ३ ॥
आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना।
गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ ४ ॥
स पवस्व धनंजय प्रयन्ता राधसो महः।
अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ ५ ॥
एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः।
इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥ ६ ॥

॥ ४६ ॥ (ऋ० ९।४७।१-५)

कविर्भार्गवः।

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत।
मन्दान उद् वृषायते ॥ १ ॥

कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा ।
ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥ २ ॥
आत् सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् ।
उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥
स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति ।
यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥
सिषासतू रयीणां वाजेष्वर्वतामिव ।
भरेषु जिग्युषामसि ॥ ५ ॥

॥ ४७ ॥ (ऋ० ९।४८।१-५)

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः ।
चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥
संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥
अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः ।
सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥ ३ ॥
विश्वस्मा इत् स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् ।
गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ४ ॥
अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
अभिष्टिकृद् विचर्षणिः ॥ ५ ॥

॥ ४८ ॥ (ऋ० ९।४९।१-५)

पवस्व वृष्टिमा सु नो ऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥
तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥
घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥
स न ऊर्जे व्यऽव्ययं पवित्रं धाव धारया ।
देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥
पवमानो असिष्यदद् रक्षांस्यपजङ्घनत् ।
प्रत्नवद् रोचयन् रुचः ॥ ५ ॥

॥ ४९ ॥ (ऋ० ९।५०।१-५)

उचथ्य आङ्गिरसः ।

उत् ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः ।
वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥
प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥
अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥
स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

॥ ५० ॥ (ऋ० ९।५१।१-५)

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥
दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥
तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते ।
पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥
त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये ।
वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥ ४ ॥
अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ५ ॥

॥ ५१ ॥ (ऋ० ९।५२।१-५)

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा ।
सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥ १ ॥
तव प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः ।
सहस्रधारो यात् तना ॥ २ ॥
चरुर्न यस्तमीङ्खयेन्दो न दानमीङ्खय ।
वधैर्वधस्नवीङ्खय ॥ ३ ॥
नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् ।
यो अस्माँ आदिदेशति ॥ ४ ॥

शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् ।
पवस्व मंहयद्रयिः ॥ ५ ॥

॥ ५२ ॥ (ऋ० ९।५३।१-४)

अवत्सारः काश्यपः ।

उत् ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥
अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥
अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥
तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥

॥ ५३ ॥ (ऋ० ९।५४।१-४)

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥
अयं सूर्य इवोपदृ—गयं सरांसि धावति ।
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥
अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥
परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः ।
पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥ ४ ॥

॥ ५४ ॥ (ऋ० ९।५५।१-४)

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव ।
सोम विश्वा च सौभगा ॥ १ ॥
इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥
उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा ।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥
यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥

॥ ५५ ॥ (ऋ० ९।५६।१-४)

परि सोम ऋतं बृह—दाशुः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥
यत् सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः ।
इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥ २ ॥
अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत ।
मृज्यसे सोम सातये ॥ ३ ॥
त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव ।
नॄन्स्तोतॄन् पाह्यंहसः ॥ ४ ॥

॥ ५६ ॥ (ऋ० ९।५७।१-४)

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥
अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥
स मर्मृजान आयुभि—रिभो राजेव सुव्रतः ।
श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥
स नो विश्वा दिवो वसू—तो पृथिव्या अधि ।
पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥

॥ ५७ ॥ (ऋ० ९।५८।१-४)

तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
तरत् स मन्दी धावति ॥ १ ॥
उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः ।
तरत् स मन्दी धावति ॥ २ ॥
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्यो—रा सहस्राणि दद्महे ।
तरत् स मन्दी धावति ॥ ३ ॥
आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
तरत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

॥ ५८ ॥ (ऋ० ९।५९।१-४)

पवस्व गोजिदश्वजिद् विश्वजित् सोम रण्यजित् ।
प्रजावद् रत्नमा भर ॥ १ ॥
पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः ।
पवस्व धिषणाभ्यः ॥ २ ॥

त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर ।
कविः सीद नि बर्हिषि ॥ ३ ॥
पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् ।
इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥ ४ ॥

॥ ५९ ॥ (ऋ० ९।६०।१-४)

गायत्री, ३ पुरउष्णिक् ।

प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् ।
इन्दुं सहस्रचक्षसम् ॥ १ ॥
तं त्वा सहस्रचक्षस मथो सहस्रभर्णसम् ।
अति वारमपाविषुः ॥ २ ॥
अति वारान् पवमानो असिष्यदत्
कलशाँ अभि धावति ।
इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥ ३ ॥
इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे ।
प्रजावद् रेत आ भर ॥ ४ ॥

॥ ६० ॥ (ऋ० ९।६१।१-३०)

अमहीयुराङ्गिरसः ।

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन् नवतीर्नव ॥ १ ॥
पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥
परि णो अश्वमश्वविद् गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥
पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥
ये ते पवित्रमूर्मयो ऽभिक्षरन्ति धारया ।
तेभिर्नः सोम मृळय ॥ ५ ॥
स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।
ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।
समादित्येभिरख्यत ॥ ७ ॥
समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ८ ॥
स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् ।
चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ९ ॥
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे ।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १० ॥
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ ११ ॥
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित् परि स्रव ॥ १२ ॥
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥
तमिद् वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव ।
य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥
अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ १५ ॥
पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १६ ॥
पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः ।
वि वारमव्यमर्षति ॥ १७ ॥
पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् ।
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ १८ ॥
यस्ते मदो वरेण्य स्तेना पवस्वान्धसा ।
देवावीरघशंसहा ॥ १९ ॥
जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।
गोषा उ अश्वसा असि ॥ २० ॥
संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ २१ ॥
स पवस्व य आविथे न्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
वव्रिवांसं महीरपः ॥ २२ ॥
(३९४१)

सुवीरासो व॒यं धना जयेम सोम मीढ्वः।
पुनानो वर्ध नो गिरः ॥ २३ ॥
त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः।
सोम व्रतेषु जागृहि ॥ २४ ॥
अपघ्नन् पवते मृधो ऽप सोमो अराव्णः।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ २५ ॥
महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः।
रास्वेन्दो वीरवद् यशः ॥ २६ ॥
न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन्।
यत् पुनानो मखस्यसे ॥ २७ ॥
पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥
अस्य ते सख्ये व॒यं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ २९ ॥
या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे।
रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३० ॥

॥ ६१ ॥ (ऋ० ९।६१।१-३०)
जमदग्निर्भार्गवः।

एते असृग्रमिन्दव—स्तिरः पवित्रमाशवः।
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥
विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः।
तना कृण्वन्तो अर्वते ॥ २ ॥
कृण्वन्तो वरिवो गवे ऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्।
इळामस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥
असाव्यंशुर्मदाया—ऽप्सु दक्षो गिरिष्ठाः।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥
शुभ्रमन्धो देववात—मप्सु धूतो नृभिः सुतः।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ ५ ॥
आदीमश्वं न हेतारो ऽशूशुभन्नमृताय।
मध्वो रसं सधमादे ॥ ६ ॥
यास्ते धारा मधुश्चुतो ऽसृग्रमिन्द ऊतये।
ताभिः पवित्रमासदः ॥ ७ ॥
सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया।
सीदन् योनावनेष्वा ॥ ८ ॥
त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः।
वरिवोविद् घृतं पयः ॥ ९ ॥
अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति।
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १० ॥
एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा।
करद् वसूनि दाशुषे ॥ ११ ॥
आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम्।
पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥
एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः।
उरुगायः कविक्रतुः ॥ १३ ॥
सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः।
इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥
गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते।
विर्योना वसताविव ॥ १५ ॥
पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत्।
चमूषु शक्मनासदम् ॥ १६ ॥
तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे।
ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥ १७ ॥
तं सोतारो धनस्पृत—माशुं वाजाय यातवे।
हरिं हिनोत वाजिनम् ॥ १८ ॥
आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ १९ ॥
आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः।
देवा देवेभ्यो मधु ॥ २० ॥
आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम्।
देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥ २१ ॥
एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे।
मदिन्तमस्य धारया ॥ २२ ॥
(१९७१)

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
सनद्वाजः परि स्रव ॥ २३ ॥
उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
गृणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥
पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥
त्वं समुद्रिया अपो ऽग्रियो वाच ईरयन् ।
पवस्व विश्वमेजय ॥ २६ ॥
तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।
तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ॥ २७ ॥
प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चतः ।
अभि शुक्रामुपस्तिरम् ॥ २८ ॥
इन्द्रायेन्दुं पुनीतनो ग्रं दक्षाय साधनम् ।
ईशानं वीतिराधसम् ॥ २९ ॥
पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३० ॥

॥ ६१ ॥ (ऋ० ९।६३।१-३०)
निध्रुविः काश्यपः ।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् ।
अस्मे श्रवांसि धारय ॥ १ ॥
इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः ।
चमूष्वा नि षीदसि ॥ २ ॥
सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् ।
मधुमाँ अस्तु वायवे ॥ ३ ॥
एते असृग्रमाशवो ऽति ह्वरांसि बभ्रवः ।
सोमा ऋतस्य धारया ॥ ४ ॥
इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ५ ॥
सुता अनु स्वमा रजो ऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः ।
इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥ ६ ॥
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥
अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ ८ ॥
उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे ।
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ९ ॥
परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् ।
अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥ १० ॥
पवमान विदा रयि मस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ।
यो दूणाशो वनुष्यता ॥ ११ ॥
अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ १२ ॥
सोमो देवो न सूर्यो ऽद्रिभिः पवते सुतः ।
दधानः कलशे रसम् ॥ १३ ॥
एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया ।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ १४ ॥
सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः ।
पवित्रमत्यक्षरन् ॥ १५ ॥
प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ ।
मदो यो देववीतमः ॥ १६ ॥
तमी मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् ।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ १७ ॥
आ पवस्व हिरण्यव दश्वावत् सोम वीरवत् ।
वाजं गोमन्तमा भर ॥ १८ ॥
परि वाजे न वाजयु मव्यो वारेषु सिञ्चत ।
इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥ १९ ॥
कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः ।
वृषा कनिक्रदर्षति ॥ २० ॥
वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया ।
मती विप्राः समस्वरन् ॥ २१ ॥
पवस्व देवायुष गिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ॥ २२ ॥

(४००९)

पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम्।
प्रियः समुद्रमा विश ॥ २३ ॥
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ २४ ॥
पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः।
अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥
पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ २६ ॥
पवमाना दिवस्प–र्यन्तरिक्षादसृक्षत।
पृथिव्या अधि सानवि ॥ २७ ॥
पुनानः सोम धारये–न्दो विश्वा अप स्रिधः।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २८ ॥
अपघ्नन्त्सोम रक्षसो ऽभ्यर्ष कनिक्रदत्।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥ २९ ॥
अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा।
इन्दो विश्वानि वार्या ॥ ३० ॥

॥ ६३ ॥ (ऋ० ९।६४।१-३०)

कश्यपो मारीचः।

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः।
वृषा धर्माणि दधिषे ॥ १ ॥
वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः।
सत्यं वृषन् वृषेदसि ॥ २ ॥
अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः।
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥
असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ४ ॥
शुम्भमाना ऋतायुभि–र्मृज्यमाना गभस्त्योः।
पवन्ते वारे अव्यये ॥ ५ ॥
ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा।
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ६ ॥
पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ ७ ॥
केतुं कृण्वन् दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ ८ ॥
हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि।
अक्रान् देवो न सूर्यः ॥ ९ ॥
इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती।
सृजदश्वं रथीरिव ॥ १० ॥
ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत्।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ११ ॥
स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १२ ॥
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १३ ॥
पुनानो वरिवस्कृध्यू–र्जं जनाय गिर्वणः।
हरे सृजान आशिरम् ॥ १४ ॥
पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम्।
द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥ १५ ॥
प्र हिन्वानास इन्दवो ऽच्छा समुद्रमाशवः।
धिया जूता असृक्षत ॥ १६ ॥
मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १७ ॥
परि णो याह्यस्मयु–र्विश्वा वसून्योजसा।
पाहि नः शर्म वीरवत् ॥ १८ ॥
मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः।
प्र यत् समुद्र आहितः ॥ १९ ॥
आ यद् योनिं हिरण्यय–माशुर्ऋतस्य सीदति।
जहात्यप्रचेतसः ॥ २० ॥
अभि वेना अनूषते–यक्षन्ति प्रचेतसः।
मज्जन्त्यविचेतसः ॥ २१ ॥
(४०३८)

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ २२ ॥
तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः ।
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥
रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे ।
पवमानस्य मरुतः ॥ २४ ॥
त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि ।
इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥ २५ ॥
उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम् ।
पुनान इन्दवा भर ॥ २६ ॥
पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् ।
प्रियः समुद्रमा विश ॥ २७ ॥
दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ २८ ॥
हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २९ ॥
ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः ।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३० ॥

॥ ६४ ॥ (ऋ० ९।६५।१-३०)
भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा ।

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥
पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि ।
विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥
आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
पवमान स्वाध्यः ॥ ४ ॥
आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ५ ॥
यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः ।
द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥ ६ ॥
प्र सोमाय व्यश्ववत् पवमानाय गायत ।
महे सहस्रचक्षसे ॥ ७ ॥
यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ८ ॥
तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥ ९ ॥
वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
विश्वा दधान ओजसा ॥ १० ॥
तं त्वा धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् ।
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ ११ ॥
अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
युजं वाजेषु चोदय ॥ १२ ॥
आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः ।
अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ १३ ॥
आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा ।
एन्द्रस्य पीतये विश ॥ १४ ॥
यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः ।
स पवस्वाभिमातिहा ॥ १५ ॥
राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १६ ॥
आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।
वहा भगत्तिमूतये ॥ १७ ॥
आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
सुष्वाणो देववीतये ॥ १८ ॥
अर्षा सोम द्युमत्तमो ऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ १९ ॥
अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २० ॥

इयं तोकाय नो दध—दुस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ २१ ॥
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥
य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २३ ॥
ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।
सुवाना देवास इन्दवः ॥ २४ ॥
पवते हर्यतो हरि—र्गृणानो जमदग्निना ।
हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥ २५ ॥
प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः ।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ २६ ॥
तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये ।
स पवस्वानया रुचा ॥ २७ ॥
आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २८ ॥
आ मन्द्रमा वरेण्य—मा विप्रमा मनीषिणम् ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २९ ॥
आ रयिमा सुचेतुन—मा सुक्रतो तनूष्वा ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ३० ॥

॥ ६५ ॥ (ऋ० ९।६६।१-३०)

शतं वैखानसाः । १९-२१ अग्निः पवमानः । गायत्री, १८ अनुष्टुप् ।

पवस्व विश्वचर्षणे ऽभि विश्वानि काव्या ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ १ ॥
ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी ।
प्रतीची सोम तस्थतुः ॥ २ ॥
परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः ।
पवमान ऋतुभिः कवे ॥ ३ ॥
पवस्व जनयन्निषो ऽभि विश्वानि वार्या ।
सखा सखिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥
तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते ।
पवित्रं सोम धामभिः ॥ ५ ॥
तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते ।
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ६ ॥
प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः ।
दधानो अक्षिति श्रवः ॥ ७ ॥
समु त्वा धीभिरस्वरन् हिन्वतीः सप्त जामयः ।
विप्रमाजा विवस्वतः ॥ ८ ॥
मृजन्ति त्वा समग्रुवो ऽव्ये जीरावधि ष्वणि ।
रेभो यदज्यसे वने ॥ ९ ॥
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १० ॥
अच्छा कोशं मधुश्चुत—मसृग्रं वारे अव्यये ।
अवावशन्त धीतयः ॥ ११ ॥
अच्छा समुद्रमिन्दवो ऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १२ ॥
प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ १३ ॥
अस्य ते सख्ये वय—मियक्षन्तस्त्वोतयः ।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ १४ ॥
आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे ।
एन्द्रस्य जठरे विश ॥ १५ ॥
महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द ओजिष्ठः ।
युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ ॥ १६ ॥
य उग्रेभ्यश्चिदोजीया—ञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः ।
भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥ १७ ॥
त्वं सोम सूर एष—स्तोकस्य साता तनूनाम् ।
वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥ १८ ॥
अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १९ ॥

(४०९९)

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥ २० ॥
अग्ने पवस्व स्वपा असे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद् रयिं मयि पोषम् ॥ २१ ॥
पवमानो अति स्रिधो ऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् ।
सूरो न विश्वदर्शतः ॥ २२ ॥
स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान् प्रयसे हितः ।
इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥ २३ ॥
पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥ २४ ॥
पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
जीरा अजिरशोचिषः ॥ २५ ॥
पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २६ ॥
पवमानो व्यश्नवद् रश्मिभिर्वाजसातमः ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ २७ ॥
प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् ।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ २८ ॥
एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः ।
इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥ २९ ॥
यस्य ते द्युम्नवत् पयः पवमानाभृतं दिवः ।
तेन नो मृळ जीवसे ॥ ३० ॥

॥ ६६ ॥ (ऋ० ९।६७।१-३२)

१-३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ४-६ कश्यपो मारीचः, ७-९ गोतमो राहूगणः, १०-१२ अत्रिर्भौमः, १३-१५ विश्वामित्रो गाथिनः, १६-१८ जमदग्निर्भार्गवः, १९-२१ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, २२-३२ पवित्र आङ्गिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा। पवमानः सोमः १०-१२ पवमान-पूषा वा, २३-२७ पवमानोऽग्निः, २५ पवमानः सविता वा, २६ पवमानाग्निसवितारः, २७ विश्वे देवा वा, ३१-३२ पावमान्यध्येतारः। गायत्री, १६-१८ निचृद्गायत्री, २० पुरउष्णिक्, २७, ३१, ३२, अनुष्टुप् ।

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे ।
पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १ ॥
त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान् मत्सरिन्तमः ।
इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥ २ ॥
त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥ ३ ॥
इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया ।
हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥ ४ ॥
इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा ।
वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥ ५ ॥
आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
भरा सोम सहस्रिणम् ॥ ६ ॥
पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
इन्द्रं यामेभिराशत ॥ ७ ॥
ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः ।
आयुः पवत आयवे ॥ ८ ॥
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम् ।
अभि गिरा समस्वरन् ॥ ९ ॥
अविता नो अजाश्वः पूषा यामनि यामनि ।
आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ १० ॥
अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु ।
आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ ११ ॥
अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि ।
आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ १२ ॥
वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया ।
देवेषु रत्नधा असि ॥ १३ ॥
आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते ।
अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥ १४ ॥
परि प्र सोम ते रसो ऽसर्जि कलशे सुतः ।
श्येनो न तक्तो अर्षति ॥ १५ ॥
पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १६ ॥
असृग्रन् देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ १७ ॥
ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ १८ ॥

ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ १९ ॥
एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ २० ॥
यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह ।
पवमान वि तज्जहि ॥ २१ ॥
पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु नः ॥ २२ ॥
यत् ते पवित्रमर्चिष्य–ग्ने विततमन्तरा ।
ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥ २३ ॥
यत् ते पवित्रमर्चिव–दग्ने तेन पुनीहि नः ।
ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥ २४ ॥
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मां पुनीहि विश्वतः ॥ २५ ॥
त्रिभिष्टं देव सवित–र्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः ।
अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥ २६ ॥
पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा २७
प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
देवेभ्य उत्तमं हविः ॥ २८ ॥
उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥ २९ ॥
अलाय्यस्य परशुर्ननाश त–मा पवस्व देव सोम ।
आखुं चिदेव देव सोम ॥ ३० ॥
यः पावमानीरध्ये–त्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥३१॥
पावमानीर्यो अध्ये–त्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥३२॥

॥ ६७ ॥ (ऋ० ९।६८।१-१०)
वात्सप्रिर्भालन्दनः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवो
ऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः
परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १ ॥
स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रद–
दुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः ।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो
नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥ २ ॥
वि यो ममे यम्या संयती मदः
साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।
मही अपारे रजसी विवेविद–
दभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥ ३ ॥
स मातरा विचरन् वाजयन्नपः
प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम् ।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः
सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥ ४ ॥
सं दक्षेण मनसा जायते कवि–
र्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतु–
र्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥ ५ ॥
मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः
श्येनो यदन्धो अभरत् परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ
उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥ ६ ॥
त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं
सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम् ।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभि–
र्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥ ७ ॥
परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव
इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥ ८ ॥

अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः
सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः
पुनान इन्दुर्वरिवो विदत् प्रियम् ॥ ९ ॥
एवा नः सोम परिषिच्यमानो
वयो दधच्चित्रतमं पवस्व ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम
देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ १० ॥

(॥ ६८ ॥ ऋ० ९।६९।१-१०)
हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । जगती, ९-१० त्रिष्टुप् ।

इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मतिः
वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयति
अस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥ १ ॥
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु
मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव
मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥
अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि
श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान् यजतः संयतो मदो
नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥ ३ ॥
उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो
देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययम्
अत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥ ४ ॥
अमृक्तेन रुशता वाससा हरिः
अमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृत
उपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥ ५ ॥
सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो
मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो
नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥ ६ ॥
सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो
वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदे
अस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ७ ॥
आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्
अश्वावद् गोमद् यवमत् सुवीर्यम् ।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन
दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥ ८ ॥
एते सोमाः पवमानास इन्द्रं
रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं
हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥ ९ ॥
इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व
सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि
देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १० ॥

॥ ६९ ॥ (ऋ० ९।७०।१-१०)
रेणुर्वैश्वामित्रः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे
सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे
चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥
स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण
उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत
यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥ २ ॥
ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवो
अदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत
आदिद् राजानं मननो अगृभ्णत ॥ ३ ॥

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः
प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण
उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥ ४ ॥
स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस
ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीः
आदेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥ ५ ॥
स मातरा न ददृशान उस्रियो
नानददेति मरुतामिव स्वनः।
जानन्नृतं प्रथमं यत् स्वर्णरं
प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥ ६ ॥
रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया
शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति
गव्ययी त्वग् भवति निर्णिगव्ययी ॥ ७ ॥
शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसं
अव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे
त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥ ८ ॥
पवस्व सोम देववीतये वृषा
इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश।
पुरा नो बाधाद् दुरिताति पारय
क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥ ९ ॥
हितो न सप्तिरभि वाजमर्ष
इन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व।
नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वान्
शूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः ॥ १० ॥

॥ ३० ॥ (ऋ० ९।७१।१-९)

ऋषभो वैश्वामित्रः। जगती, ९ त्रिष्टुप्।

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्यासदं
वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय
उपस्तिरे चम्वोर्ब्रह्म निर्णिजे ॥ १ ॥
प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवद्
असुर्यं वर्णं नि रिणीते अस्य तम्।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतं
उपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥ २ ॥
अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योः
वृषायते नभसा वेपते मती।
स मोदते नसते साधते गिरा
नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥ ३ ॥
परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं
मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम्।
आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि
मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥ ४ ॥
समी रथं न भुरिजोरहेषत
दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं
पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥ ५ ॥
श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं
हिरण्ययमासदं देव एषति।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिरा
अश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥ ६ ॥
परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविः
वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती
रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥ ७ ॥
श्वेतं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स
यत्राशयत् समृता सेधति स्रिधः।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं
सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥ ८ ॥

उक्षेव यूथा परियन्नरावीद्
अधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां
सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥ ९ ॥

॥ ७१ ॥ (ऋ० ९।७२।१-९)

हरिमन्त आङ्गिरसः । जगती ।

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते
सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद् वाचमीरयति हिन्वते मती
पुरुष्टुतस्य कति चित् परिप्रियः ॥ १ ॥

साकं वदन्ति बहवो मनीषिण
इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः
सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥ २ ॥

अरममाणो अत्येति गा अभि
सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद् विनंगृसः
सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥ ३ ॥

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः
पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरंधिवान् मनुषो यज्ञसाधनः
शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ ४ ॥

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतो
अनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीः
वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ॥ ५ ॥

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं
कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत
ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥ ६ ॥

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३
अपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः
सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ७ ॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः
स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग् वसुनः सादनस्पृशो
रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥ ८ ॥

आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं
सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषो
अधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥ ९ ॥

॥ ७२ ॥ (ऋ० ९।७३।१-९)

पवित्र आङ्गिरसः ।

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्
ऋतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे
सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥ १ ॥

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत
सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्
प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥ २ ॥

पवित्रवन्तः परि वाचमासते
पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे
धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥ ३ ॥

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः
पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥ ४ ॥

(५)

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्
ऋचा शोचन्तः संदहन्तो अव्रतान्।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया
त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥ ५ ॥
प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरन्
श्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः।
अपानक्षासो बधिरा अहासत
ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ६ ॥
सहस्रधारे वितते पवित्र आ
वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः
स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ७ ॥
ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु-
स्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्य
अवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ ८ ॥
ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ
जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया।
धीराश्चित् तत् समिनक्षन्त आशता-
त्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥ ९ ॥
॥ ७३ ॥ (ऋ० ९।७३।१-९)
कक्षीवान् दैर्घतमस । जगती, ८ त्रिष्टुप्।

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद् वने
स्व१र्यद् वाज्यरुषः सिषासति।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा
तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥ १ ॥
दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत
आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता
समीचीने दाधार समिषः कविः ॥ २ ॥
महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधू-
र्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषा-
पां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥ ३ ॥
आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय
ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं
नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥ ४ ॥
अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा
देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम्।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ५ ॥
सहस्रधारेऽव ता असश्चत-
स्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो
हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥ ६ ॥
श्वेतं रूपं कृणुते यत् सिषासति
सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्
दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥ ७ ॥
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं
कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत् ससवान्।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः
कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥ ८ ॥
अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसो-
ऽव्यो वारं वि पवमान धावति।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम
स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥ ९ ॥
॥ ७४ ॥ (ऋ० ९।७४।१-९)

कविर्भार्गव । जगती।

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो
नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि
रथं विष्वञ्चमरुहद् विचक्षणः ॥ १ ॥
(४१०६)

इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिः
नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे
सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥ २ ॥

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणम्
आसीना अन्तरभि सोममक्षरन्।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं
याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥ ३ ॥

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्
स्वर्जिदब्जित् पवते सहस्रजित्।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं
स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥ ४ ॥

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः
सत्यानि कृण्वन् द्रविणान्यर्षसि।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य
उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥ ५ ॥

॥ ७८ ॥ (ऋ० ९।७९।१-५)

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः
प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः।
वि च नशन् न इषो अरातयो
ऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः ॥ १ ॥

प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो
धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि।
तिरो मर्तस्य कस्य चित् परिह्वृतिं
वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥ २ ॥

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष
उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः।
धन्वन् न तृष्णा समरीत ताँ अभि
सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥ ३ ॥

दिवि ते नाभा परमो य आददे
पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वचि
अप्स्वा त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं
रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः।
निदंनिदं पवमान नि तारिष
आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥ ५ ॥

॥ ७९ ॥ (ऋ० ९।८०।१-५)
वसुर्भारद्वाजः।

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस
ऋतेन देवान् हवते दिवस्परि।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते
समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ॥ १ ॥

यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषत
अयोहतं योनिमा रोहसि द्युमान्।
मघोनामायुः प्रतिरन् महि श्रव
इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥ २ ॥

एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम
ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे
क्रीळन् हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥ ३ ॥

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः
सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः।
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो
विश्वान् देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥ ४ ॥

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभि
र्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः।
इन्द्रं सोम मादयन् दैव्यं जनं
सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ॥ ५ ॥
(४१३५)

॥ ८० ॥ (ऋ० ९।८०।१-५)
जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मयः
इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः ।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां
दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ॥ १ ॥
अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यदद्
अत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा ।
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो
विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥ २ ॥
आ नः सोम पवमानः किरा वसु
इन्दो भव मघवा राधसो महः ।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना
मा नो गयमारे अस्मत् परा सिचः ॥ ३ ॥
आ नः पूषा पवमानः सुरातयो
मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः ।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना
त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥ ४ ॥
उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे
अर्यमा देवो अदितिर्विधाता ।
भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं
विश्वे देवाः पवमानं जुषन्त ॥ ५ ॥

॥ ८१ ॥ (ऋ० ९।८१।१-५)
जगती ।

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी
राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं
श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥ १ ॥
कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनं
अत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन् दुरिता सोम मृळय
घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥ २ ॥
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो
नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्
सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ॥ ३ ॥
जायेव पत्यावधि शेव मंहसे
पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसे
अनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥ ४ ॥
यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः
सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे
तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥ ५ ॥

॥ ८३ ॥ (ऋ० ९।८३।१-५)
पवित्र आङ्गिरसः ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
शृतास इद् वहन्तस्तत् समाशत ॥ १ ॥
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे
शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो
दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥ २ ॥
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रियः
उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया
नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥
गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति
पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः
सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥ ४ ॥

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं
नभो वसानः परि यास्यध्वरम्।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः
सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥ ५ ॥

॥ ८३ ॥ (ऋ० ९।८४।१-५)
वाच्य: प्रजापतिः।

पवस्व देवमादनो विचर्षणिः
अप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमद्
उरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥ १ ॥
आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो
विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति।
कृण्वन्संचृतं विचृतमभिष्टय
इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥ २ ॥
आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा
देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः।
आ विद्युता पवते धारया सुतः
इन्द्रं सोमो मादयन् दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥
एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्
हिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम्।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिः
एन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥ ४ ॥
अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं
सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम्।
धनंजयः पवते कृत्व्यो रसो
विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥ ५ ॥

॥ ८४ ॥ (ऋ० ९।८५।१-१२)
वेनो भार्गवः। जगती, ११-१२ त्रिष्टुप्।

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रव
अपामीवा भवतु रक्षसा सह।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो
द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ १ ॥
अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय
दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः
पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥ २ ॥
अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम
आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो
राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥ ३ ॥
सहस्रणीथः शतधारो अद्भुतः
इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु।
जयन् क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप
उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥ ४ ॥
कनिक्रदत् कलशे गोभिरज्यसे
व्यव्ययं समया वारमर्षसि।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिः
इन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥ ५ ॥
स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने
स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे
बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥ ६ ॥
अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः
प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्
एन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥ ७ ॥
पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यं
उर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशत
इन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥ ८ ॥
अधि द्यामस्थाद् वृषभो विचक्षणो
अरूरुचद् वि दिवो रोचना कविः।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्
दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥ ९ ॥

(४२६४)

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो
वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ
सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ १० ॥
नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं
गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं
हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्
विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्
प्रारूरुचद् रोदसी मातरा शुचिः ॥ १२ ॥

॥ ८५ ॥ (ऋ० ९।८६।१-४८)

१-१० अकृष्टा माषाः, ११-२० सिकता निवावरी, २१-३० पृश्नयोऽजाः, ३१-४० अकृष्टाद्य ऋषयस्त्रयः, ४१-४५ भौमोऽत्रिः, ४६-४८ गृत्समदः, शौनकः ।
जगती ।

प्र त आशवः पवमान धीजवो
मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो
मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥ १ ॥
प्र ते मदासो मदिरास आशवो
असृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणं
इन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥
अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष
स्वर्वित् कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये
सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥ ३ ॥
प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो
दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि ।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत
ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥ ४ ॥
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः
प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः
पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ५ ॥
उभयतः पवमानस्य रश्मयो
ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः
सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥ ६ ॥
यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः
सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति
वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥ ७ ॥
राजा समुद्रं नद्यो३ वि गाहते
अपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात् सानु पवमानो अव्ययं
नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥ ८ ॥
दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद्
द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्
सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥ ९ ॥
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं
पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं
मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १० ॥
अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति
पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति
मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ ११ ॥
(४१७८)

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षति
अग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं
स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥ १२ ॥
अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितो
अव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे
शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ १३ ॥
द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशं
अन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्
प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥ १४ ॥
सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति
यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे।
पदं यदस्य परमे व्योमन्
यतो विश्वा अभि सं याति संयतः ॥ १५ ॥
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं

क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशद्
इन्द्रस्य हार्द्याविशन् मनीषिभिः ॥ १९ ॥
मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविः
नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत्।
त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षरद्
इन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥ २० ॥
अयं पुनान उषसो वि रोचयद्
अयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं
सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ २१ ॥
पवस्व सोम दिव्येषु धामसु
सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रदद्
नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥ २२ ॥
अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ
इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन्।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो
हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं
तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ २७ ॥

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसः
त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे
त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि ॥ २८ ॥

त्वं समुद्रो असि विश्ववित् कवे
तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे
तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥ २९ ॥

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि
देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत
तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ ३० ॥

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं
वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥ ३१ ॥

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत
तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः
पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥ ३२ ॥

राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव
ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः
पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥ ३३ ॥

पवमान मह्यर्णो वि धावसि
सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो
महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥ ३४ ॥

इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि
श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो
दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥ ३५ ॥

सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं
नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम् ।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं
सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे ॥ ३६ ॥

ईशान इमा भुवनानि वीयसे
युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पयः
तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३७ ॥

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः
पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्
वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ ३८ ॥

गोवित् पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्
रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्
तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥ ३९ ॥

उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपद्
अपो वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्
सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥ ४० ॥

स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीः
विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि ।
ब्रह्म प्रजावद् रयिमश्वपस्त्यं
पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥ ४१ ॥
(४३०८)

सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः
प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते
नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥ ४२ ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते
क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं
हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥ ४३ ॥

विपश्चिते पवमानाय गायत
मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वच-
मत्यो न क्रीळन्नसरद् वृषा हरिः ॥ ४४ ॥

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते
विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो
ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ४५ ॥

असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः
परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं

अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तो
ऽच्छा बर्हि रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥

स्वायुधः पवते देव इन्दु-
रशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनाना-
मृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद् विवेद निहितं यदासा-
मपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो
वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा
शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ४ ॥

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा
महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रन्
श्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥ ५ ॥

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥ ९ ॥

॥ ८७ ॥ (ऋ० ९।८८।१-८)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥
स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥
वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शंभविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन् पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥ ३ ॥
इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥ ४ ॥
अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥ ५ ॥
एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥ ६ ॥
शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥ ७ ॥
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ८ ॥

॥ ८८ ॥ (ऋ० ९।८९।१-७)

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान् दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥ १ ॥
राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद् रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥ २ ॥
सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥ ३ ॥
मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥ ४ ॥
चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥ ५ ॥
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत् त उत्सो गृणते नियुत्वान् मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥

स्वन्ववातो अभि देववीतिं
इन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ७ ॥

॥ ८९ ॥ (ऋ० ९।९०।१-६)

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः।

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो
रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत्।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो
विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ १ ॥

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधा-
माङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्
वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ २ ॥

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान्
जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्सु
अषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥ ३ ॥

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्
समीचीने आ पवस्वा पुरंधी।
अपः सिषासन्नुषसः स्वर्गाः
सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ४ ॥

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं
मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम्।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्
मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥ ५ ॥

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन
विश्वा घनिघ्नद् दुरिता पवस्व।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ ९० ॥ (ऋ० ९।९१।१-६)

कश्यपो मारीचः।

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ
धिया मनोता प्रथमो मनीषी।
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये
अजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥ १ ॥

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैः
अधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिः
मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥ २ ॥

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै
पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविद्
अध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥ ३ ॥

रुजा दृळ्हा चिद् रक्षसः सदांसि
पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान्।
वृश्चोपरिष्टात् तुजता वधेन
ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥ ४ ॥

स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार
सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः।
ये दुष्षहासो वनुषा बृहन्तः
तांस्ते अश्याम पुरुकृत् पुरुक्षो ॥ ५ ॥

एवा पुनानो अपः स्वर्गा
अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम
ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥ ६ ॥

॥ ९१ ॥ (ऋ० ९।९२।१-६)

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे
रथो न सर्जि सनये हियानः।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः
प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥ १ ॥

अच्छा॑ नृ॒चक्षा॑ असरत् प॒वित्रे॒
नाम॒ दधा॑नः क॒विर॑स्य॒ योनौ॑ ।
सीद॒न् होते॑व॒ सद॑ने च॒मूषु॑
उपे॑मग्म॒न्नृष॑यः स॒प्त विप्राः॑ ॥ २ ॥

प्र सु॑मे॒धा गा॑तु॒विद् वि॒श्वदे॑वः
सोमः॑ पुना॒नः सद॑ एति॒ नित्य॑म् ।
भुव॒द् विश्वे॑षु॒ काव्ये॑षु॒ रन्ता
अनु॒ जना॑न् यतते॒ पञ्च॒ धीरः॑ ॥ ३ ॥

तव॒ त्ये सो॑म पवमान नि॒ण्ये
विश्वे॑ दे॒वास्त्रय॑ एकाद॒शासः॑ ।
दश॑ स्व॒धाभि॒रधि॒ सानो॒ अव्ये॑
मृ॒जन्ति॑ त्वा न॒द्यः॑ स॒प्त य॒ह्वीः ॥ ४ ॥

तन्नु स॒त्यं पव॑मानस्यास्तु
यत्र॒ विश्वे॑ का॒रवः॑ सं॒नस॑न्त ।
ज्योति॒र्यदह्ने॒ अकृ॑णोदु लो॒कं
प्राव॒न्मनुं॒ दस्य॑वे क॒रभीक॑म् ॥ ५ ॥

परि॒ सद्मे॑व पशु॒मान्ति॒ होता॒
राजा॒ न स॒त्यः समि॑तीरिया॒नः ।
सोमः॑ पुना॒नः क॒लशाँ॑ अयासीत्
सीद॑न् मृ॒गो न म॑हि॒षो वने॑षु ॥ ६ ॥

॥ ९१ ॥ (ऋ० ९।९३।१-५)

नोधा गौतमः ।

सा॒कमुक्षो॑ मर्जयन्त॒ स्वसा॑रो
दश॒ धीर॑स्य धी॒तयो॒ धनु॑त्रीः ।
हरिः॒ पर्य॑द्रव॒ज्जाः सूर्य॑स्य
द्रोणं॑ ननक्षे॒ अत्यो॒ न वा॒जी ॥ १ ॥

सं मा॒तृभि॒र्न शिशु॑र्वावशा॒नो
वृषा॑ दधन्वे पुरु॒वारो॑ अ॒द्भिः ।
मर्यो॒ न योषा॑म॒भि निष्कृ॒तं यन्
सं ग॑च्छते क॒लश॑ उ॒स्रिया॑भिः ॥ २ ॥

उ॒त प्र पि॑प्य॒ ऊध॒रघ्न्या॑या
इन्दु॒र्धारा॑भिः सचते सुमे॒धाः ।
मू॒र्धानं॒ गावः॒ पय॑सा च॒मूषु॑
अ॒भि श्री॑णन्ति॒ वसु॑भि॒र्न नि॒क्तैः ॥ ३ ॥

स नो॑ दे॒वेभिः॑ पवमान र॒द
इन्दो॑ र॒यिम॒श्विनं॑ वावशा॒नः ।
र॒थि॒रा॒यता॑मुश॒ती पुर॑न्धिः
अ॒स्म॒द्र्य१॒॑गा दा॒वने॒ वसू॑नाम् ॥ ४ ॥

नू नो॑ र॒यिमुप॑ मास्व नृ॒वन्तं॑
पुना॒नो वा॒ताप्यं॑ वि॒श्वश्च॑न्द्रम् ।
प्र व॑न्दि॒तुरि॑न्दो ता॒र्यायुः॑
प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सु॒र्जग॑म्यात् ॥ ५ ॥

॥ ९२ ॥ (ऋ० ९।९४।१-५)

कण्वः घौरः ।

अधि॒ यद॑स्मिन् वा॒जिनी॑व॒ शुभः॒
स्पर्ध॑न्ते॒ धियः॒ सूर्ये॒ न विशः॑ ।
अ॒पो वृ॑णा॒नः प॑वते कवी॒यन्
व्र॒जं न प॑शु॒वर्ध॑नाय॒ मन्म॑ ॥ १ ॥

द्वि॒ता व्यू॒र्ण्वन्न॒मृत॑स्य॒ धाम॑
स्व॒र्विदे॒ भुव॑नानि प्रथन्त ।
धियः॑ पिन्वा॒नाः स्वस॑रे॒ न गाव॑
ऋ॒ता॒यन्ती॑र॒भि वा॑वश्र॒ इन्दु॑म् ॥ २ ॥

परि॒ यत् क॒विः काव्या॒ भर॑ते
शूरो॒ न रथो॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
दे॒वेषु॒ यशो॒ मर्ता॑य॒ भूष॑न्
दक्षा॑य रा॒यः पु॑रु॒भूषु॒ नव्यः॑ ॥ ३ ॥

श्रि॒ये जा॒तः श्रि॒य आ निरि॑याय
श्रियं॒ वयो॑ जरि॒तृभ्यो॑ दधाति ।
श्रियं॒ वसा॑ना अमृत॒त्वमा॑यन्
भव॑न्ति स॒त्या स॑मि॒था मि॒तद्रौ॑ ॥ ४ ॥

इषमूर्जमभ्य१र्षाश्वं गां
उरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं
पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥ ५ ॥

॥ ९४ ॥ (ऋ० ९।९५।१-५)

प्रस्कण्वः काण्वः ।

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः
सीदन् वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा
अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥ १ ॥
हरिः सृजानः पथ्यामृतस्य
इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नाम
आविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥ २ ॥
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः
प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं च
आ च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ ३ ॥
तं मर्मृजानं महिषं न सानौ
अंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।

समस्य हरिं हरयो मृजन्ति
अश्वहयैरनिशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा
विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥ २ ॥
स नो देव देवताते पवस्व
महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन् द्यामुतेमां
उरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥ ३ ॥
अजीतयेऽहतये पवस्व
स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायः
तदहं वश्मि पवमान सोम ॥ ४ ॥
सोमः पवते जनिता मतीनां
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य
जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥
ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनां
ऋषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां
सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ ६ ॥

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो
मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा
विदद् गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥ १० ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे
कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु
वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ११ ॥

यथापवथा मनवे वयोधा
अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान
इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥ १२ ॥

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावा
अपो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद
मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १३ ॥

वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व
सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः
समुस्रियाभिः प्रतिरन् न आयुः ॥ १४ ॥

एष स्य सोमो मतिभिः पुनानो
अत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरं
उर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥ १५ ॥

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानो
अभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्या
अभि वायुमभि गा देव सोम ॥ १६ ॥

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति
शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्
सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १७ ॥

ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः
सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्
सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ १८ ॥

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा
गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं
तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ १९ ॥

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानो
अत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्
कनिक्रदच्चम्वोरा विवेश ॥ २० ॥

पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः
कनिक्रदत् परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वोरा विश पूयमान
इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥ २१ ॥

प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्
अक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्
क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥ २२ ॥

अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्
प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन् वनेषु शकुनो न पत्वा
सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥ २३ ॥

आ ते रुचः पवमानस्य सोम
योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्सु
अचिक्रदत् कलशे देवयूनाम् ॥ २४ ॥

(८३९६)

॥ ९७ ॥ (ऋ० ९।९७।१-५८)

१-३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ, ४-६ वासिष्ठ इन्द्रप्रमतिः, ७-९ वासिष्ठो वृषगण, १०-१२ वासिष्ठो मन्युः, १३-१५ वासिष्ठ उपमन्यु, १६-१८ वासिष्ठो व्याघ्रपाद्, १९-२१ वासिष्ठ शक्ति, २२-२४ वासिष्ठ कर्णश्रुद्, २५-२७ वासिष्ठो मृळीकः, २८-३० वासिष्ठो वसुक्र, ३१-४४ पराशरः शाक्त्य ४५-५८ कुत्स आङ्गिरसः ।

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो
देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्
मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥

भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो
महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो
विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये
यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्
सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्य-
मा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥ ४ ॥

इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्
सहस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्व-
मगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥ ५ ॥

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान
इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो
देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः
पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ ७ ॥

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छा-
मादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं पवमानं सखायो
दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥ ८ ॥

स रंहत उरुगायस्य जूतिं
वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो
दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ९ ॥

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा
इन्द्रे सोमः सह इन्वन् मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीः
वरिवः कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥ १० ॥

अध धारया मध्वा पृचानः
तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो
देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ ११ ॥

अभि प्रियाणि पवते पुनानो
देवो देवान्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो
दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥ १२ ॥

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा
नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ
प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥ १३ ॥

रसाय्यः पयसा पिन्वमानः
ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः संतनिमेषि कृण्वन्
इन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ १४ ॥

(४४८०)

एवा पवस्व मदिरो मदाय
उद्ग्राभस्य नमयन् वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं
गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ १५ ॥

जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगानि
उरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन्
घनेव विष्वग् दुरितानि विघ्नन्
अधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥ १६ ॥

वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुम्
इळावतीं शंगयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्
बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥ १७ ॥

ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान
ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो
मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥ १८ ॥

जुष्टो मदाय देवतात इन्दो
परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः
परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥ १९ ॥

अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता
अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा
देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ २० ॥

एवा न इन्दो अभि देववीतिं
परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं
रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥ २१ ॥

तक्षद् यदी मनसो वेनतो वाग्
ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन् वरमा वावशाना
जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥ २२ ॥

प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व
ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद् वृजन्यस्य राजा
प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥ २३ ॥

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा
राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद् रयिपती रयीणां
ऋतं भरत् सुभृतं चार्विन्दुः ॥ २४ ॥

अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छ
इन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा
भवा सोम द्रविणोवित् पुनानः ॥ २५ ॥

देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः
क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा
होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ॥ २६ ॥

एवा देव देवताते पवस्व
महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये
कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥ २७ ॥

अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः
सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा
आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥ २८ ॥

शतं धारा देववाता असृग्रन्
सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व
पुरएतासि महतो धनस्य ॥ २९ ॥
(४४१९)

दिवो न सर्गा असमृग्रमह्नां
राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान
आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ॥ ३० ॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्
वारान् यत् पूतो अत्येष्यव्यान्।
पवमान पवसे धाम गोनां
जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ ३१ ॥

कनिक्रदनु पन्थामृतस्य
शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्
हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ॥ ३२ ॥

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम
पिन्वन् धाराः कर्मणा देववीतौ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं
क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥ ३३ ॥

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निः
ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः
सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३४ ॥

सोमं गावो धेनवो वावशानाः
सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः
सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ ३५ ॥

एवा नः सोम परिषिच्यमान
आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण
वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥ ३६ ॥

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां
सोमः पुनानो असदच्चमूषु।
सचन्ति यं मिथुनासो निकामा
अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ ३७ ॥

स पुनान उप सूरे न धाता
उभे अप्रा रोदसी वि ष आवः।
प्रिया चिद् यस्य प्रियसास ऊती
स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ ३८ ॥

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः
सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत्।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः
स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥ ३९ ॥

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन्
जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये
बृहत् सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥ ४० ॥

महत् तत् सोमो महिषश्चकार
अपां यद् गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजो
अजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ४१ ॥

मत्सि वायुमिष्टये राधसे च
मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्
मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥ ४२ ॥

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्ता
अपामीवां बाधमानो मृधश्च।
अभिश्रीणन् पयः पयसाभि गोनां
इन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥ ४३ ॥

मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं
वीरं च न आ पवस्वा भगं च।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो
रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥ ४४ ॥
(४४४०)

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा
सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः
आ योनिं वन्यमसदत् पुनानः
समिन्दुर्गोभिरसरत् समद्भिः ॥ ४५ ॥

एष स्य ते पवत इन्द्र सोमः
चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः
कामो न यो देवयतामसर्जि ॥ ४६ ॥

एष प्रत्नेन वयसा पुनानः
तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु
होतेव याति समनेषु रेभन् ॥ ४७ ॥

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम
परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा
देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥ ४८ ॥

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३
अभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठां
अभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ ४९ ॥

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्ष
अभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्य
अभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ॥ ५० ॥

अभी नो अर्ष दिव्या वसूनि
अभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवाम
अभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥ ५१ ॥

अया पवा पवस्वैना वसूनि
माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः
पुरुमेधश्चित् तकवे नरं दात् ॥ ५२ ॥

उत न एना पवया पवस्व
अधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि
वृक्षं न पक्वं धूनवद् रणाय ॥ ५३ ॥

महीमे अस्य वृषनाम शूषे
माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्च
अपामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥ ५४ ॥

सं त्री पवित्रा विततान्येषि
अन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दाता
असि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ॥ ५५ ॥

एष विश्ववित् पवते मनीषी
सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन् विदथेष्विन्दुः
वि वारमव्यं समयाति याति ॥ ५६ ॥

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः
पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः
समञ्जते रूपमपां रसेन ॥ ५७ ॥

त्वया वयं पवमानेन सोम
भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तां
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५८ ॥

॥ ९७ ॥ (ऋ० ९।९८।१-१२)

अम्बरीषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च ।
अनुष्टुप्, ११ बृहती ।

अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ॥ १ ॥

परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत।
इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः २
परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ३
स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे।
इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥४॥
वयं ते अस्य वृत्रहन् वसो वस्वः पुरुस्पृहः।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥५॥
द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम्।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥ ६ ॥
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।
यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ७
अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम्।
यः सूरिषु श्रवो बृहद् दधे स्वर्ण हर्यतः ॥८॥
स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन् तं तुविष्वणि ॥ ९ ॥
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे।
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥ १० ॥
ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन्।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः
प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥ ११ ॥
तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ १२ ॥

॥ ९८ ॥ (ऋ० ९।९९।१-८)

रेभसूनू काश्यपौ। अनुष्टुप्, १ बृहती।

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम्।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः १
अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे २
तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥३॥
तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ४
तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम्।
दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥ ५ ॥
स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति।
पशौ न रेत आदधत् पतिर्वचस्यते धियः ॥६॥
स मृज्यते सुकर्मभि-र्देवो देवेभ्यः सुतः।
विदे यदासु संददि-र्महीरपो वि गाहते ॥ ७ ॥
सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे।
इन्द्राय मत्सरिन्तम-श्चमूष्वा नि षीदसि ॥ ८ ॥

॥ ९९ ॥ (ऋ० ९।१००।१-९)

रेभसूनू काश्यपौ। अनुष्टुप्।

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥१॥
पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम्।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥
त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ३
परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति।
रंहमाणा व्यव्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥ ४ ॥
क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥ ५ ॥
पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥ ६ ॥
त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥ ७ ॥
पवमान महि श्रव-श्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः।
शर्धन् तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ८
त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥ ९ ॥

॥ १०० ॥ (ऋ० ९।१०१।१-१६)

अन्धीगुः श्यावाश्विः, ४-६ ययातिर्नाहुषः, ७-९ नहुषो मानवः, १०-१२ मनुः सांवरणः, १३-१६ वैश्वामित्रो वाच्यो वा प्रजापतिः। अनुष्टुप्, २-३ गायत्री।

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥
यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥
तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया।
यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥ ३ ॥
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ४
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५॥
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद् रोदसी उभे ॥७॥
समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥८॥
य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥ ९ ॥
सोमाः पवन्त इन्दवो ऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः १०
सुष्वाणासो व्यद्रिभि श्चिताना गोरधि त्वचि।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥ ११ ॥
एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते १२
प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद् वचः।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १३ ॥
आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् १४
स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् १५
अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि।
कनिक्रदद् वृषा हरि रिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम्

॥ १०१ ॥ (ऋ० ९।१०२।१-८)

त्रित आप्त्यः। उष्णिक्।

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥
उप त्रितस्य पाष्यो३ रभक्त यद् गुहा पदम्।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम्।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥
जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥
अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः।
स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५ ॥
यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन्।
कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा।
तन्वाना यज्ञमानुषग् यदञ्जते ॥ ७ ॥
क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभि र्ऋणोरप व्रजं दिवः।
हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥

॥ १०२ ॥ (ऋ० ९।१०३।१-६)

द्वित आप्त्यः।

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम्।
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ १ ॥
परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति।
त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः
परि कोशं मधुश्चुत मव्यये वारे अर्षति।
अभि वाणीरृषीणां सप्त नूषत
परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः।
सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः

परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम्।
पुनानो वाघद् वाघद्भिरमर्त्यः ॥ ५ ॥
परि सप्तिर्न वाजयु-र्देवो देवेभ्यः सुतः।
व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥ ६ ॥

॥ १०३ ॥ (ऋ० ९।१०४।१-६)

पर्वतनारदौ काण्वौ, काश्यप्यौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ वा।

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।
देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥
पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये।
यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥ ३ ॥
अस्मभ्यं त्वा वसुविद-मभि वाणीरनूषत।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥
स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥
सनेमि कृध्यस्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम्।
अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥

॥ १०४ ॥ (ऋ० ९।१०५।१-६)

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत।
शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥
सं वत्स इव मातृभि-रिन्दुर्हिन्वानो अज्यते।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥
अयं दक्षाय साधनो ऽयं शर्धाय वीतये।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥
गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धन्व।
शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥
स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ ५ ॥
सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम्।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ६ ॥

॥ १०५ ॥ (ऋ० ९।१०६।१-१४)

१-३, १०-१४ अग्निश्चाक्षुषः, ४-६ चक्षुर्मानवः ७-९ मनुराप्सवः।

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः।
श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥
अयं भराय सानसि-रिन्द्राय पवते सुतः।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम्।
वज्रं च वृषणं भरत् समप्सुजित् ॥ ३ ॥
प्र धन्वा सोम जागृवि-रिन्द्रायेन्दो परि स्रव।
द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥
इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः।
सहस्रयामा पथिकृद् विचक्षणः ॥ ५ ॥
अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः।
सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥ ६ ॥
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ७ ॥
तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ८ ॥
आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥
सोमः पुनान ऊर्मिणा ऽव्यो वारं वि धावति।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १० ॥
धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम्।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ ११ ॥
असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ १२ ॥
पवते हर्यतो हरि-रति ह्वरांसि रंह्या।
अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद् यशः ॥ १३ ॥
अया पवस्व देवयु-र्मधोर्धारा असृक्षत।
रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥ १४ ॥
(६५१३)

॥ १०६ ॥ (ऋ० ९।१०७।१-२६)

सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ भौमोऽत्रिः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः) । प्रगाथः = (१, ४, ६, ८-१०, १२, १४, १७ बृहती; २, ५, ७, ११, १३, १५, १८ सतोबृहती); ३, १६ द्विपदा विराट्; १९-२६ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व१न्तरा
सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रव
अदब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित् त्वाप्सु मदामो अन्धसा
श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः
क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥

पुनानः सोम धारयाऽपो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदसि
उत्सो देव हिरण्ययः ॥ ४ ॥

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं
प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति
नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥ ५ ॥

पुनानः सोम जागृवि-रव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो
मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ६ ॥

सोमो मीढ्वान् पवते गातुवित्तम
ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम
आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ७ ॥

सोम उ षुवाणः सोतृभि-रधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया
मन्द्रया याति धारया ॥ ८ ॥

अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन् ॥ ९ ॥

आ सोम सुवानो अद्रिभि-स्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः
सदो वनेषु दधिषे ॥ १० ॥

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो
मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः
सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥ ११ ॥

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृवि-
रच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १२ ॥

आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत
प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं
नदीष्वा गभस्त्योः ॥ १३ ॥

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो
मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १४ ॥

तरत् समुद्रं पवमान ऊर्मिणा
राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा
प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥ १५ ॥

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो
राजा देवः समुद्रियः ॥ १६ ॥

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति
तमी मृजन्त्यायवः ॥ १७ ॥

पुनानश्चमू जनयन् मतिं कविः
सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः
सीदन् वनेष्वव्यत ॥ १८ ॥

(४५५७)

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव
परिधीँरति ताँ इहि ॥ १९ ॥

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा
सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः
शकुना इव पप्तिम ॥ २० ॥

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ २१ ॥

मृजानो वारे पवमानो अव्यये
वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं
गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥ २२ ॥

पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो
देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ २३ ॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो
दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण
शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥ २४ ॥

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया
मेधामभि प्रयांसि च ॥ २५ ॥

अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद्
गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ २६ ॥

॥ १०७ ॥ (ऋ० ९।१०८।१-१६)

१-२ गौरिवीतिः शाक्त्यः, ३, १४-१६ शक्तिर्वासिष्ठः, ४-५ ऊरुराङ्गिरसः, ६-७ ऋजिश्वा भारद्वाजः, ८-९ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः, १०-११ कृतयशा आङ्गिरसः, १२-१३ ऋणंचयो राजर्षिः। काकुभः प्रगाथः = (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती), ११ यवमध्या गायत्री ।

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायते
अस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषो
अच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥

त्वं ह्यङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयः ॥ ३ ॥

येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते
येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो
येन श्रवांस्यानशुः ॥ ४ ॥

एष स्य धारया सुतो
अव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः ।
क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥ ५ ॥

य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो
निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं
वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ६ ॥

आ सोता परि षिञ्चता
अश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं
प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे
राजा देव ऋतं बृहत् ॥ ८ ॥

अभि द्युम्नं बृहद् यश
इषस्पते दिदीहि देव देवयुः ।
वि कोशं मध्यमं युव ॥ ९ ॥
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो
विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां
जिन्वा गविष्टये धियः ॥ १० ॥
एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ११ ॥
वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे
त्रिधात्वस्य दंससा ॥ १२ ॥
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १३ ॥
यस्य न इन्द्रः पिबाद् यस्य मरुतो
यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥१४॥
इन्द्राय सोम पातवे
नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः ।
पवस्व मधुमत्तमः ॥ १५ ॥
इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश
समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे
दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥ १६ ॥

॥ १०८ ॥ (ऋ० ९।१०९।१-२२)
अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरयः । द्विपदा विराट् ।

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम
स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः
क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ २ ॥
एवामृताय महे क्षयाय
स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ ३ ॥
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः
पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ४ ॥
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम
दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥ ५ ॥
दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः
सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ॥ ६ ॥
पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो
महामवीनामनु पूर्व्यः ॥ ७ ॥
नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः
क्षरद् विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥
इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः
करद् विश्वानि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥
पवस्व सोम क्रत्वे दक्षाय
अश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १० ॥
तं ते सोतारो रसं मदाय
पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ ११ ॥
शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति
पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ १२ ॥
इन्दुः पविष्ट चारुर्मदाय
अपामुपस्थे कविर्भगाय ॥ १३ ॥
बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम
येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥ १४ ॥
पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो
गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥ १५ ॥
प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारः
तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥ १६ ॥
स वाज्यक्षाः सहस्ररेता
अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥ १७ ॥
(४५९८)

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्
सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो
दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्ये न्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद् भवथो अनपच्युता
समत्स्वनपच्युता ॥ ३ ॥

॥ १११ ॥ (ऋ० ९।११२।१-४)
शिशुराङ्गिरसः । पङ्क्तिः ।

नानानं वा उ नो धियो
वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्
ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छती न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥
जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभि र्हिरण्यवन्तमिच्छति
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥
कारुरहं ततो भिष गुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवो
अनु गा इव तस्थिमे न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥
अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः ।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ
वारिन्मण्डूक इच्छती न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

॥ ११२ ॥ (ऋ० ९।११३।१-११)
कश्यपो मारीच ।

शर्यणावति सोम मिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि
करिष्यन् वीर्यं महदि न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥
आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात् सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥
पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्
तं सोमे रसमादधु रिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्
धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥
सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।
सं यन्ति रसिनो रसाः
पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ५ ॥
यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते
सोमेनानन्दं जनय न्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ६ ॥
यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मां धेहि पवमान
अमृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ७ ॥
यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापः
तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ८ ॥
यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तः
तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ९ ॥
यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च
तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १० ॥
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामाः
तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ११ ॥

॥ ११३ ॥ (ऋ० ९।११४।१-४)

य इन्दोः पवमानस्या ऽनु धामान्यक्रमीत्
तमाहुः सुप्रजा इति
यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्
सोमं नमस्य राजानं
यो जज्ञे वीरुधां पति

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त
तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्द्रो परि स्रव ॥ ३ ॥
यत् ते राजञ्छृतं हवि—स्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारीत्
मो च नः किं चनाममद्—इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥

॥ ११४ ॥ (ऋ० १।४३।७-९)

कण्वो घौरः । गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् ।
महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥
मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त ।
आ न इन्दो वाजे भज ॥ ८ ॥
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥९॥

॥ ११५ ॥ (ऋ० १।९१।१-२३)

गोतमो राहूगणः । त्रिष्टुप्; ५-१६ गायत्री; १७ उष्णिक् ।

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा
त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो
देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ १ ॥
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः
त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा
द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥ २ ॥
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि
बृहद् गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो
दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ३ ॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्
राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४ ॥
त्वं सोमासि सत्पति—स्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ५ ॥
त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे ।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते ।
दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥
त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ ८ ॥
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे ।
ताभिर्नोऽविता भव ॥ ९ ॥
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः ।
सुमृळीको न आ विश ॥ ११ ॥
गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः ।
सुमित्रः सोम नो भव ॥ १२ ॥
सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ॥ १३ ॥
यः सोम सख्ये तव रारणद् देव मर्त्यः ।
तं दक्षः सचते कविः ॥ १४ ॥
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः ।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य संगथे ॥ १६ ॥
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः
सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम
दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ १८ ॥

(४१५८)

या ते धामानि हविषा यजन्ति
ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो
ऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥ १९ ॥
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं
सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २० ॥
अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं
स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं
जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥ २१ ॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वा-
स्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं
त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥
देवेन नो मनसा देव सोम
रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्यो-
भयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥ २३ ॥

॥ ११६ ॥ (ऋ० ३।६२।१३-१५)
गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम् ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ १३ ॥
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे ।
अनमीवा इषस्करत् ॥ १४ ॥
अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः ।
सोमः सधस्थमासदत् ॥ १५ ॥

॥ ११७ ॥ (ऋ० ६।४७।१-५)
गर्गो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं
तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं
न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १ ॥
अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस
यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य
वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥ २ ॥
अयं मे पीत उदियर्ति वाच-
मयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो
न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥
अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या
वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु
सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥ ४ ॥
अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः
शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान् महता स्कम्भनेनो-
द् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥ ५ ॥

॥ ११८ ॥ (ऋ० ७।१०४।२, ९-१४)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः ।

ये पाकशंसं विहरन्त एवै-
र्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम
आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥ ९ ॥
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय
सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीय-
स्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ १२ ॥
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति
न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्त-
मुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥ १४ ॥

॥ ११९ ॥ (ऋ० ८।४८।१-१५)

प्रगाथो घौरः काण्वः । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः
स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो
मधु ब्रुवन्तो अभि संचरन्ति ॥ १ ॥

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवासि
अवयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः
श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥ २ ॥

अपाम सोमममृता अभूम
अगन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः
किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो
पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।

अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो
मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥ ८ ॥

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा
गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।
यत् ते वयं प्रमिनाम व्रतानि
स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ॥ ९ ॥

ऋदूदरेण सख्या सचेय
यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे
तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥ १० ॥

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा
निरत्रसन् तमिषीचीरभैषुः ।
आ सोमो अस्माँ अरुहद् विहाया
अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ११ ॥

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतो

॥ ११० ॥ (ऋ० ८।७९।१-९)
कृत्नुर्भार्गवः । गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।

अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित् सोमः ।
ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ १ ॥
अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत् तुरम् ।
प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥ २ ॥
त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः ।
उरु यन्तासि वरूथम् ॥ ३ ॥
त्वं चित्ती तव दक्षै—र्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् ।
यावीरघस्य चिद् द्वेषः ॥ ४ ॥
अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद् ददुषो रातिम् ।
ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥ ५ ॥
विदद् यत् पूर्व्यं नष्ट—मुदीमृतायुमीरयत् ।
प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ॥ ६ ॥
सुशेवो नो मृळयाकु—रदृप्तक्रतुरवातः ।
भवा नः सोम शं हृदे ॥ ७ ॥
मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन् ।
मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥ ८ ॥
अव यत् स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।
राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध ॥९॥

॥ १११ ॥ (ऋ० ८।१०१।१४)
जमदग्निर्भार्गवः । त्रिष्टुप् ।

प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयु—
र्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः
पवमानो हरित आ विवेश ॥ १ ॥

॥ ११२ ॥ (ऋ० १०।२५।१-११)
ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा ।
आस्तारपङ्क्तिः ।

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे
रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ॥ १ ॥
हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे
वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ॥ २ ॥
उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे
मृळा नो अभि चिद् वधाद् विवक्षसे ॥ ३ ॥
समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे
धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥ ४ ॥
तव त्ये सोम शक्तिभि—र्निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे
व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥ ५ ॥
पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे
विश्वा संपश्यन् भुवना विवक्षसे ॥ ६ ॥
त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे
मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥ ७ ॥
त्वं नः सोम सुक्रतु—र्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे
द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥ ८ ॥
त्वं नो वृत्रहन्तमे—न्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत् सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे
युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥ ९ ॥
अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे
मतिं विप्रस्य वर्धयद् विवक्षसे ॥ १० ॥
अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे
प्रान्धं श्रोणं च तारिषद् विवक्षसे ॥ ११ ॥
(८७१०)

॥ १३० ॥ (अथर्व० ६।८९।१)

अथर्वा । अनुष्टुप् ।

इदं यत् प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।
ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि ॥ १ ॥

॥ १३१ ॥ (वा० य० ४।१६ उत्तरार्धः, २४, २७)

रास्वेयत् सोमा भूयो भर देवो
नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥ १६ ॥

एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतात्
एष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय ब्रूतात्
एष ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूतात्
छन्दोनामानाꣳ साम्राज्यं गच्छेति मे सोमाय ब्रूतात्
अस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा
विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥

मित्रो न एहि सुमित्रध इन्द्रस्योरुमाविश
दक्षिणमुशन्नुशन्तꣳ स्योनः स्योनम् ।
स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त
कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान् ।
रक्षध्वं मा वो दभन् ॥ २७ ॥

॥ १३२ ॥ (वा० य० ५।७)

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे
आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व ।
आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्या
मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय ।
एष्टा रायः प्रेषे भगाय
ऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

॥ १३३ ॥ (वा० य० ६।२५-२६, ३२-३३, ३५-३६)

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा ।
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥
सोम राजन् विश्वास्त्वं प्रजा
उपावरोह विश्वास्त्वां प्रजा उपावरोहन्तु ।
शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे
शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः ।
श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ
शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ॥ २६ ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्राय
त्वादित्यवत इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने ।
श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥

यत् ते सोम दिवि ज्योतिः
यत् पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे ।
तेनास्मै यजमानायोरु राये
कृध्यधि दात्रे वोचः ॥ ३३ ॥

मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व
धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

प्रागपागुदगधराक् सर्वतस्त्वा दिश आधावन्तु ।
अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥ ३६ ॥

॥ १३४ ॥ (वा० य० ७।१४)

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य
रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा
स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १४ ॥

॥ १३५ ॥ (वा० य० ८।१,९, ५५-५६, ४८-५०)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।
विष्ण उरुगायैष ते सोमस्तꣳ
रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥ १ ॥

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त
इन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ२ ऋध्यासम् ।
अहं परस्तादहमवस्तात्
यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत् ।
अहꣳ सूर्यमुभयतो ददर्श
अहं देवानां परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः
सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ
नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥ २५ ॥

देवीराप एष वो गर्भस्तᳬं
सुप्रीतᳬं सुभृतं बिभृत ।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिन्
शं च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥

मेषीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि
कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि
भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि
मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि
मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि
शुक्रं त्वा शुक्र आधूनोमि
अह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥ ४८ ॥

ककुभᳬं रूपं वृषभस्य रोचते
बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः ।
यत् ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि
तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि
वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीहि
अस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां
देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

॥ १३६ ॥ (वा० य० १९।७२)

सोमो राजामृतᳬं सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳬं शुक्रमन्धस
इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७२ ॥

॥ १३७ ॥ (वा० य० २०।१९)

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः
सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १९ ॥

॥ १३८ ॥ (साम० १२००-१२०३)

पावमानीः स्वस्त्ययनीः
सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
ऋषिभिः संभृतो रसो
ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥ ३ ॥ ॥ १२०० ॥

पावमानीर्दधन्तु न
इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्धयन्तु नो
देवीर्देवैः समाहृताः ॥ ४ ॥ ॥ १२०१ ॥

येन देवाः पवित्रेण
आत्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण
पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥ ॥ १२०२ ॥

पावमानी स्वस्त्ययनीः
ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयति
अमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥ ॥ १२०३ ॥

॥ १३९ ॥ (ऋ० १०।१२४।६)

अग्नि-वरुण-सोमाः । त्रिष्टुप् ।

इदं स्वरिदमिदास वाममं
अयं प्रकाश उर्वन्तरिक्षम् ।
हनाव वृत्रं निरेहि सोम
हविष्ट्वा सन्तं हविषा यजाम ॥ ६ ॥

(४७५५)

सोमसहचारी देवगणः ।

(१) सूर्यरोदसीमित्रवरुणरुद्रेंद्राग्न्यर्यमभगसोमाः ।

॥ १४० ॥ (ऋ० १।१३६।६)

परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः ।

नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते रोद॑सीभ्यां
मि॒त्राय॑ वोचं॒ वरु॑णाय मी॒ळ्हुषे॑
सुमृळी॒काय॑ मी॒ळ्हुषे॑ ।
इन्द्र॑म॒ग्निमुप॑ स्तुहि द्यु॒क्षम॑र्य॒मणं॒ भग॑म् ।
ज्योग् जीव॑न्तः प्र॒जया॑ सचेमहि
सोम॑स्यो॒ती स॑चेमहि ॥ ६ ॥

(२) सोमापूषणौ, ६ (अन्त्योऽर्धर्चस्य) अदितिः ।

॥ १४१ ॥ (ऋ० २।४०।१-६)

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । त्रिष्टुप् ।

सोमा॑पूषणा॒ जन॑ना रयी॒णां
जन॑ना दि॒वो जन॑ना पृथि॒व्याः ।
जा॒तौ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पौ
दे॒वा अ॑कृण्वन्न॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् ॥ १ ॥
इ॒मौ दे॒वौ जाय॑मानौ जुषन्ते॒
इ॒मौ तमां॑सि गूहता॒मजु॑ष्टा ।
आ॒भ्यामिन्द्रः॑ प॒क्वमा॒मास्व॒न्तः
सो॑मापू॒षभ्यां॑ जनदु॒स्रिया॑सु ॥ २ ॥
सोमा॑पूषणा॒ रज॑सो वि॒मानं॑
स॒प्तच॑क्रं॒ रथ॒मवि॑श्वमिन्वम् ।
वि॒षू॒वृतं॒ मन॑सा यु॒ज्यमा॑नं
तं जि॑न्वथो वृषणा॒ पञ्च॑रश्मिम् ॥ ३ ॥
दि॒व्य१॒॑न्यः सद॑नं च॒क्र उ॒च्चा
पृ॑थि॒व्याम॒न्यो अध्य॒न्तरि॑क्षे ।
ताव॒स्मभ्यं॑ पुरु॒वारं॑ पुरु॒क्षुं
रा॒यस्पोषं॒ वि ष्य॑तां॒ नाभि॑म॒स्मे ॥ ४ ॥
विश्वा॑न्य॒न्यो भुव॑ना ज॒जान॒
विश्व॑म॒न्यो अ॑भि॒चक्षा॑ण एति ।
सोमा॑पूषणा॒वव॑तं॒ धियं॑ मे
यु॒वाभ्यां॒ विश्वाः॒ पृत॑ना जयेम ॥ ५ ॥
धियं॑ पू॒षा जि॑न्वतु विश्वमि॒न्वो
र॒यिं सोमो॑ रयि॒पति॑र्दधातु ।
अव॑तु दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वा
बृ॒हद् व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ ६ ॥

(३) सोमारुद्रौ ।

॥ १४२ ॥ (ऋ० ६।७४।१-४)

भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

सोमा॑रुद्रा धा॒रये॑थामसु॒र्यं१॒॑
प्र वा॑मि॒ष्टयोऽर॑मश्नुवन्तु ।
दमे॑दमे स॒प्त रत्ना॒ दधा॑ना
शं नो॑ भूतं द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥ १ ॥
सोमा॑रुद्रा॒ वि वृ॑हतं॒ विषू॑ची॒
ममी॑वा॒ या नो॒ गय॑मावि॒वेश॑ ।
आ॒रे बा॑धेथां॒ निर्ऋ॑तिं परा॒चैः
अ॒स्मे भ॒द्रा सौ॑श्रव॒सानि॑ सन्तु ॥ २ ॥
सोमा॑रुद्रा यु॒वमे॒तान्य॒स्मे
विश्वा॑ त॒नूषु॑ भेष॒जानि॑ धत्तम् ।
अव॑ स्यतं मु॒ञ्चतं॒ यन्नो॒ अस्ति॑
त॒नूषु॑ ब॒द्धं कृ॒तमेनो॑ अ॒स्मत् ॥ ३ ॥
ति॒ग्मायु॑धौ ति॒ग्महे॑ती सु॒शेवौ॒
सोमा॑रुद्रावि॒ह सु मृ॑ळतं नः ।
प्र नो॑ मुञ्चतं॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑द्
गो॒पा॒यतं॑ नः सुमन॒स्यमा॑ना ॥ ४ ॥

(४) ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावापृथिवी-पूषणः ।

॥ १४३ ॥ (ऋ० ६।७५।१०)

पायुर्भारद्वाजः । जगती ।

ब्राह्म॑णासः॒ पित॑रः॒ सोम्या॑सः
शि॒वे नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॑ने॒हसा॑ ।
पू॒षा नः॑ पातु दुरि॒तादृ॑तावृधो
रक्षा॒ माकि॑र्नो अ॒घशं॑स ईशत ॥ १० ॥

(५) वर्म-सोम-वरुणाः ।

॥ १४४ ॥ (ऋ० ६।७५।१८)

पायुर्भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि
सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु
जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥

(६) अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः ।

॥ १४५ ॥ (ऋ० ७।४१।१)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । जगती ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

(७) अङ्गिरःपित्रथर्वभृगुसोमाः ।

॥ १४६ ॥ (ऋ० १०।१४।६)

वैवस्वतो यमः । त्रिष्टुप् ।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ६ ॥

(८) आपः सोमो वा ।

॥ १४७ ॥ (ऋ० १०।१७।११-१३)

देवश्रवा यामायनः । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप्, पुरस्ताद्बृहती वा ।

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यून्
इमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं
द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ११ ॥
यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुः
बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्
तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥ १२ ॥
यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुः
अवश्च यः परः स्रुचा ।
अयं देवो बृहस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे ॥ १३ ॥

(९) अग्नीषोमौ ।

॥ १४८ ॥ (ऋ० १०।१९।१ उत्तरार्धः)

मथितो यामायनः, भृगुर्वारुणिर्वा, भार्गवश्च्यवनो वा । अनुष्टुप् ।

अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् ॥ १ ॥

॥ १४९ ॥ (अथर्व० २।३६।३)

पतिवेदनः । त्रिष्टुप् ।

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट
सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति
गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥ ३ ॥

(१०) निर्ऋतिसोमौ ।

॥ १५० ॥ (ऋ० १०।५९।४)

बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

मो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः
पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु
परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ ३ ॥

(११) पृथिवीद्यन्तरिक्षसोमपूषपथ्यास्वस्तयः ।

॥ १५१ ॥ (ऋ० १०।५९।७)

बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु
पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु
पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ॥ ७ ॥

(४७७७)

(१२) सोमार्कौ ।

॥ १५१ ॥ (ऋ० १०।८५।१८)
सूर्या सावित्री ऋषिका । जगती ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ
शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट
ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥ १८ ॥

(१३) सोम-वरुण-बृहस्पति-अनुमति-मघवत्-धातृ-विधातारः ।

॥ १५३ ॥ (ऋ० १०।१६७।३)
विश्वामित्र-जमदग्नी । जगती ।

सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि
बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ
धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ॥ ३ ॥

(१४) बृहस्पतिः, अग्नीषोमौ च ।

॥ १५४ ॥ (अथर्व० १।८।१-२)
चातनः । अनुष्टुप् ।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानक रिह स स्तुवतां जनः ॥ १ ॥
अयं स्तुवान आगम दिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वा ऽग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥२॥

(१५) अग्निः, आपः, ओषधयः, सोमः ।

॥ १५५ ॥ (अथर्व० २।१०।२)
भृग्वङ्गिराः । सप्तपदाष्टिः ।

शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्
निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो
मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि
शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ २ ॥

(१६) सोमः, अर्यमा, धाता ।

॥ १५६ ॥ (अथर्व० २।३६।२)
पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्ट मर्यम्णा संभृतं भगम् ।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ॥ २ ॥

(१७) वरुणः, सोमः, इन्द्रः ।

॥ १५७ ॥ (अथर्व० ३।३।३)
अथर्वा । चतुष्पदा भुरिक्पङ्क्तिः ।

अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु
सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः
श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥ ३ ॥

(१८) सोमः, सविता, आदित्यः, अग्निः ।

॥ १५८ ॥ (अथर्व० ३।८।३)
त्रिष्टुप् ।

हुवे सोमं सवितारं नमोभिः
विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव
सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ॥ ३ ॥

(१९) सोमः, स्वजः, अशनिः ।

॥ १५९ ॥ (अथर्व० ३।२७।४)
पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भाऽष्टिः ।

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः
स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ४

(२०) आपः, सोमः ।

॥ १६० ॥ (अथर्व० ४।४।५) अनुष्टुप् ।

अपां रसः प्रथमजो ऽथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्राता ऽस्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥५॥

(२१) सोमः, वनस्पतिः।

॥ १६१ ॥ (अथर्व० ६।२।१-२) परोष्णिक्।

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत।
स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥ १ ॥
आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः।
विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥ २ ॥

(२२) द्यावापृथिवी, ग्रावा, सोमः, सरस्वती, अग्निः।

॥ १६२ ॥ (अथर्व० ६।३।१) जगती।

पातं नो द्यावापृथिवी अभिष्टये
पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती
पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ॥ २ ॥

(२३) सोमः, अदितिः।

॥ १६३ ॥ (अथर्व० ६।७।१-२) १ निचृत्, २ गायत्री।

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः।
तेना नोऽवसा गहि ॥ १ ॥
येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः।
तेना नो अधि वोचत ॥ २ ॥

(२४) द्यावापृथिवी, सोमः, सविता, अन्तरिक्षं, सप्तऋषयः।

॥ १६४ ॥ (अथर्व० ६।४०।१) जगती।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नो
अभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं
सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥ १ ॥

(२५) अग्निः, इन्द्रः, सोमः।

॥ १६५ ॥ (अथर्व० ६।५८।३) अनुष्टुप्।

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३॥

(२६) सविता, सोमः, वरुणः।

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ६।६८।३) अतिजगतीगर्भा त्रिष्टुप्।

येनावपत् सविता क्षुरेण
सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य
गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ ३ ॥

(२७) सांमनस्यम्, वरुणसोमोऽग्निबृहस्पतिवसवः॥

॥ १६७ ॥ (अथर्व० ६।७३।१-२)

१ भुरिक् २ त्रिष्टुप्।

एह यातु वरुणः सोमो अग्निः
बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व
उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥ १ ॥
यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तः
आकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा।
तान्सीवयामि हविषा घृतेन
मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ २ ॥

(२८) इन्द्रः, सोमः, सविता च।

॥ १६८ ॥ (अथर्व० ६।९९।१-३)

अनुष्टुप्, ३ भुरिग्बृहती।

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥ १ ॥
यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन्न उदीरते।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥ २ ॥
परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः।
देव सवितः सोम राजन्
सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥ ३ ॥

(२९) द्यौः, पृथिवी, शुक्रः, सोमः, अग्निः, वायुः, सविता।

॥ १६९ ॥ (अथर्व० ६।१२५।१)

बृहच्छुक्रः। जगती।

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ
शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निः
वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥ १ ॥



अन्नम्।

॥ १ ॥ (वा० य० १८।३१-३४)

वाजो॑ नः स॒प्त प्र॒दिश॒श्चत॑स्रो वा परा॒वतः॑।
वाजो॑ नो॒ विश्वै॑र्दे॒वैर्धन॑सातावि॒हाव॑तु ॥ ३२ ॥

वाजो॑ नो ऽअ॒द्य प्र सु॑वाति॒ दानं॒
वाजो॑ दे॒वाँ२ऽऋ॒तुभिः॑ कल्पयाति।
वाजो॒ हि मा॒ सर्व॑वीरं ज॒जान॒
विश्वा॒ ऽआशा॒ वाज॑पतिर्जयेयम् ॥ ३३ ॥

वाजः॑ पु॒रस्ता॑दु॒त म॑ध्य॒तो नो॒
वाजो॑ दे॒वान् ह॒विषा॑ वर्धयाति।
वाजो॒ हि मा॒ सर्व॑वीरं च॒कार॒
सर्वा॒ ऽआशा॒ वाज॑पतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१८७।१-११)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अन्नं। १ अनुष्टुब्गर्भा उष्णिक्। ३,५-७,११ अनुष्टुप्; (११ बृहती वा) २,४,८-१० गायत्री।

पि॒तुं नु स्तो॑षं म॒हो ध॒र्माणं॒ तवि॑षीम्।
यस्य॑ त्रि॒तो व्योज॑सा वृ॒त्रं विप॑र्वम॒र्दय॑त् ॥ १ ॥
स्वादो॑ पितो॒ मधो॑ पितो व॒यं त्वा॑ ववृमहे।
अ॒स्माक॑मवि॒ता भ॑व ॥ २ ॥
उप॑ नः पि॒तवा च॑र शि॒वः शि॒वाभि॑रू॒तिभिः॑।
म॒यो॒भुर॑द्विषे॒ण्यः सखा॑ सु॒शेवो॒ अद्व॑याः ॥ ३ ॥
तव॒ त्ये पि॑तो॒ रसा॒ रजां॒स्यनु॒ विष्ठि॑ताः।
दि॒वि वाता॑ इव श्रि॒ताः ॥ ४ ॥
तव॒ त्ये पि॑तो॒ दद॑त॒स्तव॑ स्वादिष्ठ॒ ते पि॑तो।
प्र स्वा॒द्मानो॒ रसा॑नां तुवि॒ग्रीवा॑ इवेरते ॥ ५ ॥
त्वे पि॑तो म॒हानां॑ दे॒वानां॒ मनो॑ हि॒तम्।
अका॑रि॒ चारु॑ के॒तुना॒ तवाहि॒मव॒साव॑धीत् ॥ ६ ॥
यद॒दो पि॑तो॒ अज॑गन् वि॒वस्व॒ पर्व॑तानाम्।
अत्रा॑ चिन्नो मधो पितो॒ ऽरं॑ भ॒क्षाय॑ गम्याः ॥ ७ ॥
यद॒पामोष॑धीनां परिं॒शमा॑रि॒शाम॑हे।
वाता॑पे॒ पीव॒ इद्भ॑व ॥ ८ ॥
यत्ते॑ सोम॒ गवा॑शिरो॒ यवा॑शिरो॒ भजा॑महे।
वाता॑पे॒ पीव॒ इद्भ॑व ॥ ९ ॥
क॒र॒म्भ ओ॑षधे भव॒ पीवो॑ वृ॒क्क उ॑दार॒थिः।
वाता॑पे॒ पीव॒ इद्भ॑व ॥ १० ॥
तं त्वा॑ व॒यं पि॑तो॒ वचो॑भि॒-
र्गावो॒ न ह॒व्या सु॑षूदिम।
दे॒वेभ्य॑स्त्वा सध॒माद॑-
म॒स्मभ्यं॑ त्वा सध॒माद॑म् ॥ ११ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ६।७१।१-३)

ब्रह्मा। अग्निः, ३ वैश्वानरः, देवाः (अन्नम्)। जगती, ३ त्रिष्टुप्।

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं
हिरण्यमश्वमुत गामजामविम्।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहं
अग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ १ ॥
यन्मा हुतमहुतमाजगाम
दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीति
अग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २ ॥
यदन्नमद्म्यनृतेन देवा
दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना
शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥ ३ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।५८।१-२)

कौरुपथिः। इन्द्रावरुणौ (अन्नम्)। १ जगती, २ त्रिष्टुप्।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं
सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये
प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥ १ ॥
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः
सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्य
अस्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥ २ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ६।१४२।१-३)

विश्वामित्रः। वायुः (अन्नसमृद्धिः)। अनुष्टुप्।

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव।
मृणीहि विश्वा पात्राणि
मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥ १ ॥
आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥ २ ॥
आक्षितास्त उपसदो ऽक्षिताः सन्तु राशयः।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥३॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ११।३।१-१६)

[प्रथमः पर्यायः। १-३१]

अथर्वा। ओदनः (बार्हस्पत्यौदनः)।

१,१४ आसुरी गायत्री, २ त्रिपदा समविषमा गायत्री; ३, ६, १० आसुरी पङ्क्तिः; ४,८ साम्न्यनुष्टुप्; ५, १३, १५, २५ साम्न्युष्णिक्; ७, १९-२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ९,१७-१८ आसुर्यनुष्टुप्; ११ भुरिगार्च्यनुष्टुप्; १२ याजुषी जगती, १६, २३ आसुरी बृहती; २४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती; २६ आर्च्युष्णिक्; २७-२९ साम्नी बृहती (२८-२९ भुरिक्); ३० याजुषी त्रिष्टुप्; ३१ अल्पशः पङ्क्तिरत याजुषी।

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥
द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी
सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥ २ ॥
चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥ ३ ॥
दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥४॥
अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥ ५ ॥
कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥ ६ ॥
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥७॥
त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥
खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥
इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति
राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥ ११ ॥
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥
ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥ १३ ॥
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥ १५ ॥
बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मो३भीन्धे ॥ १८ ॥

ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥
यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१ ॥
तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् २२
स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३ ॥
नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन
इति नेदं च किं चेति ॥ २४ ॥
यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥
ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं
प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति ॥ २६ ॥
त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति ॥ २७ ॥
पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा
हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८ ॥
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा
हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥
नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥
ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥

[द्वितीयः पर्यायः । ३२-४९]

मन्त्रोक्ताः । ३२, ३८, ४१ (प्रथमा), ३२-४९ (सप्तमी) साम्नी त्रिष्टुप्; ३२,३५,४२ (द्वितीया), ३२-४९ (तृतीया), ३३-३४, ४४-४८ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुरी गायत्री, ३२, ४१,४३,४७ दैवी जगती; ३८,४४,४६ (द्वि०) ३२,३५-४३,४९ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्; ३२-४९ (षष्ठी) साम्न्यनुष्टुप्, ३३-४९ (प्र०) आर्च्यनुष्टुप् । ३७ (प्र०) साम्नी पङ्क्तिः; ३३,३६,४०,४७-४८ (द्वि०) आसुरी जगती; ३४,३७,४१,४३,४५ (द्वि०) आसुरी पङ्क्तिः; ३४ (चतुर्थी) आसुरी त्रिष्टुप्; ३५,४६,४८ (च०) याजुषी गायत्री; ३६-३७-४० (च०) दैवी पङ्क्तिः; ३८-३९ (च०) प्राजापत्या गायत्री; ३९ (द्वि०) आसुर्युष्णिक्; ४२ ४५,४९ (चतुर्थी) दैवी त्रिष्टुप्; ४९ (द्वि०) एकपदा भुरिक्साम्नी बृहती ।

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
बृहस्पतिना शीर्ष्णा ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३२

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३३

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३४

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मणा मुखेन ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥

(४८८१)

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
स भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३५

ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
त वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
अग्नेर्जिह्वया ॥ ४ ॥
तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३६

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं
पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
ऋतुभिर्दन्तैः ॥ ४ ॥
तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३७

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं
पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सप्तर्षिभिः प्राणापानैः ॥ ४ ॥
तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३८

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षेण व्यचसा ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३९

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं व पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
दिवा पृष्ठेन ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४०

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
पृथिव्योरसा ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४१

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सत्येनोदरेण ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥

(४९११)

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४२

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
समुद्रेण वस्तिना ॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४३

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४४

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
स्रामो भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४५

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
अश्विनोः पादाभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४६

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सवितुः प्रपदाभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४७

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
ऋतस्य हस्ताभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४८

चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
सत्ये प्रतिष्ठाय

तथैनं प्राशिषं तथैनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४९

[तृतीयः पर्यायः । ५०-५६]

मन्त्रोक्ता.। ५० आसुर्यनुष्टुप्; ५१ आर्च्युष्णिक्; ५२ त्रिपदा भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्; ५३ आसुरी बृहती; ५४ द्विपदा भुरिक् साम्नी बृहती; ५५ साम्न्युष्णिक्; ५६ प्राजापत्या बृहती।

एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥ ५० ॥
ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते
य एवं वेद ॥ ५१ ॥
एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं
लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२ ॥
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३ ॥
स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ५४
न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५ ॥
न च सर्वज्यानिं जीयते
पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० ९।५।१-३८)

भृगुः। पञ्चौदनोऽजः; मन्त्रोक्ताः। त्रिष्टुप्; ३ चतुष्पदा पुरोऽतिशाकरी जगती; ४, १४ जगती, १४, १७, २७-३० अनुष्टुप् (३० ककुम्मती); १६ त्रिपदाऽनुष्टुप्; १८, ३७ त्रिपदा विराड् गायत्री; २३ पुर उष्णिक्; २४ पञ्चपदाऽनुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्विराड् जगती; २०-२२, २६ पञ्चपदाऽनुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्बार्हता भुरिक्; ३१ सप्तपदाऽष्टिः, ३२-३५ दशपदा प्रकृतिः, ३६ दशपदाऽऽकृतिः, ३८ एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्।

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां
लोकमपि गच्छतु प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्ति
अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥
इन्द्राय भागं परि त्वा नयामि
अस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम्।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्व
अनागसो यजमानस्य वीराः ॥ २ ॥
प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार
शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्
अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥
अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां
विशस्तर्यथापर्वसिना माभि मंस्थाः।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं
तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥ ४ ॥
ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या
सिञ्चोदकमव धेह्येनम्।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः
शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ५ ॥
उत् क्रामातः परि चेदतप्तः
तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम्।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ
ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥ ६ ॥
अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुः
अजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरं
अस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥ ७ ॥
पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतां
आक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं
तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ८ ॥
अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः
शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः
स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥ ९ ॥

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे
नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो
विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥ १० ॥
एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं
पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरं
अस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥ ११ ॥
ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन्
पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं
शिवो३ऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥ १२ ॥
अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकाद्
विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं
तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥ १३ ॥
अमोतं वासो दद्या—द्धिरण्यमपि दक्षिणाम् ।
तथा लोकान्त्समाप्नोति
ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥ १४ ॥
एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः
सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां
नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ ॥ १५ ॥
अजो३ऽस्यज स्वर्गो॑ऽसि त्वया
लोकमङ्गिरसः प्राजानन् ।
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥ १६ ॥
येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्व॒र्देवेषु गन्तवे ॥ १७ ॥
अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति
पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥ १८ ॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु
या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके
जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥ १९ ॥
अजो वा इदमग्रे व्य॒क्रमत
तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥
सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं
सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥ २१ ॥
अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्धे ।
यो३ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २२ ॥
नास्यास्थीनि भिन्द्या—न्न मज्ज्ञो निर्धयेत् ।
सर्वमेनं समादाये—दमिदं प्र वेशयेत् ॥ २३ ॥
इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे
यो३ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २४ ॥
पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा
पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
यो३ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २५ ॥
पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति
वर्म वासांसि तन्वे॒ भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते
यो३ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥
या पूर्वं पतिं वित्त्वा—थान्यं विन्दतेऽपरम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः २७
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
यो३ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २८
अनुपूर्ववत्सां धेनु—मनड्वाहमुपबर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् २९

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम्।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥३०॥
यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद ।
एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥
यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद ।
कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते।
एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३२ ॥
यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद ।
संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते।
एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३३ ॥
यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद ।
पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३४ ॥
यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद ।
उद्यतींमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते।
एष वा उद्यन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३५ ॥
यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद ।
अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥
अजं च पचत पञ्च चौदनान् ॥
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः
सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥ ३७ ॥
तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं
ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥ ३८ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० ४।१४।१-८)

अथर्वा । अजौदनम् । त्रिष्टुप्, ४ उत्तमा भुरिक्, ५ अष्ट॰ आमा सप्तपदा कृतिः, ६ पञ्चपदातिशक्करी, ७ भुरिक् शक्करी, ८ जगती ।

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं
वामदेव्यमुदरमोदनस्य
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं
विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥ १ ॥
अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् ।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः
स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥ २ ॥
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति
नैनानवर्तिः सचते कदा चन ।
आस्ते यम उप याति देवान्
सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥ ३ ॥
(५०१८)

इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म
पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ८ ॥
एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि
निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव
ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥ ९ ॥
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त
आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे
तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥ १० ॥
इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं
गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवो
ऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ११ ॥
उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं
वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्याम
अधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ १२ ॥
परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रम्
अपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन्
विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥ १३ ॥
एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना
उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या
त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥ १४ ॥
ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व
ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित्
प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥ १५ ॥

अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षत्
शुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागम्
इमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥ १६ ॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा
आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः
पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥ १७ ॥
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन
सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुः
इमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥ १८ ॥
उरुः प्रथस्व महता महिम्ना
सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं
पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥ १९ ॥
सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो
ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान्
बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥ २० ॥
उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां
नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्याम
अधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ २१ ॥
अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां
प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः
स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥ २२ ॥
ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा
ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसध्रीं शुद्धामुप धेहि नारि
तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥ २३ ॥
(५०५९)

अदि॑ते॒र्हस्तां॒ स्रुच॑मे॒तां द्वि॒तीयां॑
सप्तऋ॒षयो॑ भूत॒कृतो॒ याम॑कृण्वन् ।
सा गात्रा॑णि वि॒दुष्यो॑द॒नस्य॒
दर्वि॒र्वेद्या॒मध्ये॑नं चिनोतु ॥ २४ ॥

शृ॒तं त्वा॑ ह॒व्यमुप॑ सीदन्तु दै॒वा
निः॒सृप्या॒ग्नेः पुन॑रेना॒न् प्र सी॑द ।
सोमे॑न पू॒तो ज॒ठरे॑ सीद
ब्र॒ह्मणा॑मार्षे॒यास्ते॒ मा रि॑षन् प्राशि॒तारः॑ ॥ २५ ॥

सोमं॑ राजन्त्सं॒ज्ञान॒मा व॑पेभ्यः
सुब्रा॑ह्मणा य॒त॒मे त्वो॑प॒सीदा॑न् ।
ऋषी॑नार्षे॒यांस्तप॒सोऽधि॑ जा॒तान्
ब्र॒ह्मौद॒ने सु॒हवा॑ जोहवीमि ॥ २६ ॥

शु॒द्धाः पू॒ता यो॒षितो॑ य॒ज्ञिया॑ इ॒मा
ब्र॒ह्मणां॒ हस्ते॑षु प्रपृ॒थक् सा॑दयामि ।
यत्का॑म इ॒दम॑भिषि॒ञ्चामि॑ वो॒ऽहम्
इन्द्रो॑ म॒रुत्वा॒न्त्स द॑दादि॒दं मे॑ ॥ २७ ॥

इ॒दं मे॒ ज्योति॑र॒मृतं॒ हिर॑ण्यं
प॒क्वं क्षेत्रा॑त् काम॒दुघा॑ म ए॒षा ।
इ॒दं धनं॒ नि द॑धे ब्राह्म॒णेषु
कृ॒ण्वे पन्थां॑ पि॒तृषु॒ यः स्व॒र्गः ॥ २८ ॥

अ॒ग्नौ तुषा॒ना व॑प जा॒तवे॑दसि
परः॑ क॒म्बूका॒ँ अप॑ मृड्ढि दू॒रम् ।
ए॒तं शु॑श्रुम गृहरा॒जस्य॑ भा॒गम्
अथो॑ वि॒द्म निर्ऋ॑ते॒र्भा॒गधे॑यम् ॥ २९ ॥

श्राम्य॑तः॒ पच॑तो विद्धि सुन्व॒तः
पन्थां॑ स्व॒र्गमधि॑ रोहयैनम् ।
येन॒ रोहा॑त् पर॒मापद्य॒ यद् वयः॑
उत्त॒मं नाकं॑ पर॒मं व्यो॑म ॥ ३० ॥

ब॒भ्रेर॑ध्व॒र्यो मुख॑मे॒तद् वि मृ॑ड्ढि
आज्या॑य लो॒कं कृ॑णुहि प्रवि॒द्वान् ।
घृ॒तेन॒ गात्रा॒नु सर्वा॒ वि मृ॑ड्ढि
कृ॒ण्वे पन्थां॑ पि॒तृषु॒ यः स्व॒र्गः ॥ ३१ ॥

ब॒भ्रे रक्षः॑ स॒मद॒मा व॑पैभ्यो
अब्रा॑ह्मणा य॒त॒मे त्वो॑प॒सीदा॑न् ।
पु॒री॒षिणः॒ प्रथ॑मानाः पु॒रस्ता॑द्
आर्षे॒यास्ते॒ मा रि॑षन् प्राशि॒तारः॑ ॥ ३२ ॥

आ॒र्षे॒येषु॒ नि द॑ध ओदन त्वा
नाना॑र्षेयाणा॒मप्य॑स्त्यत्र॑ ।
अ॒ग्निर्मे॑ गो॒प्ता म॒रुत॑श्च॒ सर्वे॒
विश्वे॑ दे॒वा अ॒भि र॑क्षन्तु प॒क्वम् ॥ ३३ ॥

य॒ज्ञं दु॒हानं॒ सद॒मित् प्रपी॑नं
पु॒मांसं॑ धे॒नुं सद॑नं रयी॒णाम् ।
प्र॒जा॒मृ॒त॒त्वमु॒त दी॒र्घमायू॒
रा॒यश्च॒ पोषै॒रुप॑ त्वा सदेम ॥ ३४ ॥

वृ॒ष॒भो॑ऽसि स्व॒र्ग ऋषी॑नार्षे॒यान् ग॑च्छ ।
सु॒कृतां॑ लो॒के सी॑द॒ तत्र॑ नौ संस्कृ॒तम् ॥ ३५ ॥

स॒मा॒चि॒नु॒ष्वा॒नु॒संप्र॒याह्य॑ग्ने
प॒थः क॑ल्पय दे॒व॒याना॑न् ।
ए॒तैः सु॑कृ॒तैरनु॑ गच्छेम य॒ज्ञं
नाके॒ तिष्ठ॑न्त॒मधि॑ स॒प्तर॑श्मौ ॥ ३६ ॥

येन॑ दे॒वा ज्योति॑षा॒ द्यामु॒दाय॑न्
ब्र॒ह्मौद॒नं प॒क्त्वा सु॑कृ॒तस्य॑ लो॒कम् ।
तेन॑ गेष्म सु॒कृतस्य॑ लो॒कं
स्व॑रा॒रोह॑न्तो अ॒भि नाक॑मुत्त॒मम् ॥ ३७ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ६।११६।१-२)

जाटिकायन । विवस्वान् (मधुमदन्नम्) । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

यद् या॒मं च॒क्रुर्नि॒खन॑न्तो अग्रे॒
कार्षी॑वणा अन्न॒विदो॒ न वि॒द्यया॑ ।
वै॒व॒स्व॒ते राज॑नि॒ तज्जु॑होमि
अथ॑ य॒ज्ञियं॒ मधु॑मदस्तु॒ नोऽन्न॑म् ॥ १ ॥
(८०३१)

वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं
मधुभागो मधुना सं सृजाति।
मातुर्यदेन इषितं न आगन्
यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥ २ ॥

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः
परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन्।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते
तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ११।३।१-६०)

यमः। स्वर्गः, ओदनः, अग्निः, (स्वर्गौदनः)। त्रिष्टुप्; १, ४२-४३, ४७ भुरिक्, ८,१२,२१-२२, २४ जगती; १३,१७ स्वराडार्षी, पङ्क्तिः; ३४ विराड्गर्भा; ३९ अनुष्टुब्गर्भा; ४४ परावृहती; ५५-५० त्र्यवसाना सप्तपदा शाक्वरातिजागतगर्भा-कृतिशाक्वरधार्त्यगर्भातिधृतिः (५५, ५७-६० कृतिः, ५६ विराट् कृतिः)।

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि
तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुः
तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥ १ ॥

तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि
तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि।
अग्निः शरीरं सचते यदैधो
अधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ २ ॥

समस्मिँल्लोके समु देवयाने
सं स्मा समेतं यमराज्येषु।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां
यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥ ३ ॥

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वम्
इमं जीवं जीवधन्याः समेत्य।
तासां भजध्वममृतं यमाहुः
यमोदनं पचति वां जनित्री ॥ ४ ॥

यं वां पिता पचति यं च माता
रिप्राग्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग
उभे व्याप नभसी महित्वा ॥ ५ ॥

उभे नभसी उभयांश्च लोकान्
ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे
तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥ ६ ॥

प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथाम्
एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ
तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ॥ ७ ॥

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ
पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत्।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः
पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ॥ ८ ॥

प्रतीची दिशामियमिद् वरं
यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथाम्
अधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ ९ ॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद्
दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम्।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव
विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥ १० ॥

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै
शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु।
सा नो देव्यदिते विश्ववार
इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥ ११ ॥

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः
शिवा नो वाता इव वान्तु भूमौ।
यमोदनं पचतो देवते इह
तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२ ॥
(५०८५)

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा
त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद् वा दास्या३र्द्रहस्ता समङ्क्त
उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥ १३ ॥

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः
पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ
मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम् ॥ १४ ॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्
रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं
तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेम ॥ १५ ॥

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन्
य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते
स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥ १६ ॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि
सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र
मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ १७ ॥

ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम
तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीः
मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥ १८ ॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्
सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं
तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन
द्यौरेवासौ पृथिव्य१न्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथाम्
आ प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥

पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनाम्
एकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व
ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥ २१ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि
तनूः समानी विकृता त एषा ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन
तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥ २२ ॥

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं
सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा
यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३ ॥

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्ताद्
इन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या
उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४ ॥

पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद्
दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः
पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५ ॥

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते
भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव
ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥

उतेव प्रभ्वीरुत संमितास
उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा
आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥ २७ ॥

(५१००)

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते
प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः
सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८ ॥
उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः
फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियाय
एतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९ ॥
उत्थापय सीदतो बुध्न एनान्
अद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतत्
मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ॥
प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषं
अहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूव
अमन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१ ॥
नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत
प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्तु
इमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२ ॥
वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिः
अग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्या
एना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥ ३३ ॥
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्
स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा
एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥ ३४ ॥
धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या
अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्रौ
उद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५ ॥
सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान्
यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विः
एकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६ ॥
उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद्
घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युं
इमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥ ३७ ॥
उपास्तरीरकरो लोकमेतं
उरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो
देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥
यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः
पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु
संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥ ३९ ॥
यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते
अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां
नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥ ४० ॥
वसोर्या धारा मधुना प्रपीना
घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥ ४१ ॥
निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छाद्
अनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गः
त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥ ४२ ॥
(५११५)

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं
क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मद्
आदित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥ ४३ ॥

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं
घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्य
एतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥ ४४ ॥

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य
यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्धि
एष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥ ४५ ॥

सत्याय च तपसे देवताभ्यो
निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां
मा स्मान्यस्मा उत् सृजता पुरा मत् ॥ ४६ ॥

अहं पचाम्यहं ददामि
ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽ
न्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥ ४७ ॥

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति
न यन्मित्रैः सममममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत्
पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥ ४८ ॥

प्रियं प्रियाणां कृणवाम
तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयद्
एव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥ ४९ ॥

समग्नयो विदुरन्यो अन्यं
य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्याऽऽतपन्ति
हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥ ५० ॥

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूव
अनग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथो
अमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥ ५१ ॥

यदक्षेषु वदा यत् समित्यां
यद् वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानौ
तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥ ५२ ॥

वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवान्
त्वचो धूमं पर्युत् पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्
सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥ ५३ ॥

तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे
यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो
या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥ ५४ ॥

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतये
असिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये
तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५६ ॥

(५१*२)

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये
पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५७ ॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये
स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५८ ॥

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये
कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५९ ॥

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये
श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे
परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥

(५११३)



गौः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।२८।१-८)

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । गावः; २,८ इन्द्रो गावो वा । त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ८ अनुष्टुप् ।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्
सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युः
इन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ १ ॥

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षति
उपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्
अभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥ २ ॥

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो
नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च
ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ३ ॥

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते
न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु
गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥ ४ ॥

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान्
गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र
इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥

यूयं गावो मेदयथा कृशं चित्
अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो
बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः
शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशँसः
परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ७ ॥

उपेदमुपपर्चन—मासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेत—स्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ८।१०१।१५-१६)

जमदग्निर्भार्गवः । त्रिष्टुप् ।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥ १५ ॥

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं
विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम्।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गां
आ माऽवृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥ १६ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १०।१६९।१-४)

शबरः काक्षीवतः। त्रिष्टुप्।

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा
ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्तु
अवसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥ १ ॥

याः सरूपा विरूपा एकरूपा
यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुः
ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ २ ॥

या देवेषु तन्व१मैरयन्त
यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः
प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥ ३ ॥

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो
विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकः
तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० १।४)

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि
विष्णो हव्यꣳ रक्ष ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० ३।२०-२२,२७)

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ
महो वो भक्षीय
ऊर्ज स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ
रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

रेवती रमध्वमस्मिन् योनावस्मिन्
गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये।
इहैव स्त माऽपगात ॥ २१ ॥

संहितासि विश्वरूप्यूर्जा
मा ऽऽ विश गौपत्येन।
उप त्वाऽग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि ॥ २२ ॥

इड एह्यदित एहि काम्या एत।
मयि वः कामधरणं भूयात् ॥ २७ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ४।१९-२१)

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिता
अनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः।
सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ
रुद्रस्त्वा ऽऽ वर्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि २०

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि
रुद्रासि चन्द्रासि।
बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिरा चके २१

॥ ७ ॥ (वा० य० ७।४७)

रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय
प्राणो दात्र एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० ८।४२-४३,५१[पूर्वार्ध])

आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः।
पुनरूर्जा नि वर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्व
उरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥ ४२ ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे
ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि
देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ ४३ ॥

इह रतिरिह रमध्वमिह
धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ ५१ ॥

(५१५८)

॥ ९ ॥ (अथर्व० ६।७०।१-३)

काङ्कायनः । अघ्न्या । जगती ।

यथा मांसं यथा सुरा यथाऽक्षा अधिदेवने ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ १ ॥

यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ २ ॥

यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ ३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ७।७५।२)

उपरिबभ्रवः । (अघ्न्या) । त्र्यवसाना भुरिक् पथ्यापङ्क्तिः ।

पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः ।
उप मा देवीर्देवेभिरेत ॥
इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥ २ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ९।७।१-२६)

ब्रह्मा (एकः पर्यायः) । १ आर्चीबृहती; २ आर्च्युष्णिक्; ३, ५ आर्च्यनुष्टुप्; ४, १४-१६ साम्नी बृहती; ६, ८ आसुरी गायत्री; ७ त्रिपदा पिपीलिकमध्या निचृद्गायत्री; ९, १३ साम्नी गायत्री; १० पुर उष्णिक्; ११-१२, १७, २५ साम्न्युष्णिक्; १८, २२ एकपदाऽऽसुरी जगती; १९ एकपदाऽऽसुरी पंक्तिः; २० याजुषी जगती; २१ आसुर्यनुष्टुप्; २३ एकपदाऽऽसुरी बृहती; २४ साम्नी भुरिग्बृहती; २६ साम्नी त्रिष्टुप्; (७, १८-१९; २२-२३ आर्च्योऽतिरिक्ता द्विपदा) ।

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे
इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥ १ ॥

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौः
उत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥

विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः
कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥ ३ ॥

विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः
कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥ ४ ॥

श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं
बृहस्पतिः ककुद्बृहतीः कीकसाः ॥ ५ ॥

देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा च
अर्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥ ७ ॥

इन्द्राणी भसद्वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥ ८ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥

धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा
अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥

क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥

नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः १४

विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि
नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥ १६ ॥

रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥ १७ ॥

अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥

अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥

इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥

प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥ २१ ॥

तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥

युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः
प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥

एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥

उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः
पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥ २६ ॥

(५१८८)

॥ ११ ॥ (अथर्व० १०।९।१-२७)

अथर्वा। (शतौदना गौः)। अनुष्टुप्; १ त्रिष्टुप्, १२ पथ्यापङ्क्तिः; २५ द्व्यनुष्टुब्गर्भाऽनुष्टुप्, २६ पञ्चपदा बृहत्यनुष्टुबुष्णिग्गर्भा जगती; २७ पञ्चपदातिजागतानुष्टुब्गर्भा शक्वरी।

अघायतामपि नह्या मुखानि
सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम्।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना
भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥ १ ॥

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते।
एषा त्वा रशनाऽग्रभीद्
ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥ २ ॥

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं माष्ट्र्वघ्न्ये।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति
ये दिव्या ये च पार्थिवाः।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा।
आदित्याः पश्चाद्गोप्स्यन्ति
साऽग्निष्टोममति द्रव ॥ ८ ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति साऽतिरात्रमति द्रव ॥ ९ ॥

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति
यो ददाति शतौदनाम् ॥ १० ॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये
ये चेमे भूम्यामधि।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥

यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥

यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १४ ॥

यत् ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत्सहकण्ठिका।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १५ ॥

यत् ते यकृद्ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥

यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १७ ॥

यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १८ ॥

यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १९ ॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २० ॥

यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २१ ॥

यत् ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २२ ॥

यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २३ ॥

यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥

क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥ २५ ॥

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि
यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो
ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २६ ॥

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो
ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत् काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं
तन्मे सर्वं सं पद्यतां
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० १०।१०।१-३४)

कश्यपः । (वशा गौः) । अनुष्टुप्; १ ककुम्मती; ५ पञ्चपदा० स्कन्धोग्रीवी बृहती; ६,८,१० विराट्; २३ बृहती; २४ उपरिष्टाद्बृहती; २६ आस्तारपङ्क्तिः; २७ शंकुमती; २९ त्रिपदा विराड्गायत्री; ३१ उष्णिग्गर्भा; ३२ विराट्पथ्याबृहती ।

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥ १ ॥

यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः ।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्
स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥ २ ॥

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥

शतं कंसाः शतं दोग्धारः
शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ५ ॥

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ॥

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद्वशे ॥ ९ ॥

यदनूचीन्द्रमैरात्त्व ऋषभोऽह्वयत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद्वशे ॥१०॥

यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१२॥

सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद्गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥

सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥ १४ ॥

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद्भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५॥

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद्वशे त्वा ॥ १६ ॥

तद्भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १७ ॥

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥ १८ ॥

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद्ब्रह्मणः ककुदादधि ।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥ १९ ॥

आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥ २१ ॥

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥ २२ ॥

सर्वं गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति
ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥ २३ ॥
युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद्वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद्वशा ॥२४॥
वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद्वशा सूर्यमधारयत् ।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥
वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेदं सर्वमभवत्
देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः ॥ २६ ॥
य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ २७ ॥
तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा २८
चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं
यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥ २९ ॥
वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥
वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१॥
सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ३२
ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥ ३३ ॥
वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद्यावत् सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० १२।४।१-५३)
अनुष्टुप्; ७ भुरिक्; २० विराट्; ३२ उष्णिग्बृहतीगर्भा, ४२ बृहतीगर्भा ।

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥१॥
प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति २
कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३ ॥
विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४ ॥
पदोरस्या अधिष्ठानाद्विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥
यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ६
यदस्याः कस्मै चिद्भोगाय
बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ७
यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ८
यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥ ९ ॥
जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् १०
य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥
यो अस्य स्याद्वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥१३॥
यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥
स्वमेतदच्छायन्ति यद्वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् १५
चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥

य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥
यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद्वशाम् ॥ १८ ॥
दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति १९
देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥
हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद्वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥
यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥
य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद्वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥
देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥
अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५ ॥
अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥२६॥
यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् २७
यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः २८
वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥२९॥
आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्चाय कृणुते मनः ३०
मनसा सं कल्पयति तद्देवाँ अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥३१॥

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया
मातुर्हेडं न गच्छति ॥ ३२ ॥
वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः ।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥ ३३ ॥
यथाऽऽज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ३४
पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
साऽस्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥ ३५ ॥
सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥३६॥
प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥३७
यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥३८
महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥ ३९ ॥
प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद्देवत्रा हविः स्यात् ॥४०
या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥ ४१ ॥
तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ ४२ ॥
कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं
कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥ ४३ ॥
विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ४४
नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ ४५ ॥
(५१२४)

विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४६
त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः
सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥ ४७ ॥
एतद्वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥
देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद्वै स पराऽभवत् ॥ ४९ ॥
उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥
ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥५१॥
ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥ ५२ ॥
यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा
जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥ ५३ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० ५।१८।१-१५)

मयोभूः । ब्रह्मगवी । अनुष्टुप्; ४ भुरिक् त्रिष्टुप्; ५, ८-९, १३ त्रिष्टुप् ।

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥१॥
अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥ २ ॥
आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा ।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥ ३ ॥
निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चः
अग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम् ।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव
स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥ ४ ॥

य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो
देवपीयुर्धनकामो न चित्तात् ।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध
उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥ ५ ॥
न ब्राह्मणो हिंसितव्यो३ऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥६॥
शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदम् ।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्व१द्मीति मन्यते ॥ ७ ॥
जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्
नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून्
हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥ ८ ॥
तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो
यामस्यन्ति शरव्यां३ न सा मृषा ।
अनुहाय तपसा मन्युना च
उत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥ ९ ॥
ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराऽभवन् ॥१०
गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत् ।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥ ११ ॥
एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराऽभवन् ॥१२॥
देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान् ।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति
न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥ १३ ॥
अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते ।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद्वेधसो विदुः ॥ १४ ॥
इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते ।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥१५॥
(५११७)

॥ १६ ॥ (अथर्व० ५।१९।१-१५)

अनुष्टुप्; २ विराट्पुरस्ताद्बृहती; ७ उपरिष्टाद्बृहती।

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन्।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराऽभवन् ॥१॥
ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥ २ ॥
ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वाऽस्मिञ्छुल्कमीषिरे।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ३
ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत्साऽभि विजङ्गहे।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥ ४ ॥
क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते।
क्षीरं यदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किल्बिषम् ॥ ५ ॥
उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥ ६ ॥
अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा
राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥ ७ ॥
तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥८
तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोपगा इति।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥ ९ ॥
विषमेतद् देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत्।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥१०
नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराऽभवन् ॥११॥
यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम्।
तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ॥ १२ ॥
अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १३ ॥
येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १४ ॥
न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥१५

॥ १७ ॥ (अथर्व० १२।५।१-७३)

प्रथम पर्यायः ॥ १ ॥

(कश्यपः) अथर्वाचार्यः। [सप्तपर्यायाः] १ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; २ ६ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्; ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्; ४ आसुर्यनुष्टुप्; ५ साम्नी पङ्क्तिः।

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता ॥ १ ॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥ २ ॥
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता
यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ३ ॥
ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥ ४ ॥
तामाददानस्य ब्रह्मगवीं
जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥
अप क्रामति सूनृता वीर्यं१ पुण्या लक्ष्मीः ॥ ६ ॥

द्वितीयः पर्यायः ॥ २ ॥

आर्च्यनुष्टुप् (७ भुरिक्); १० उष्णिक्; (७-१० एकपदा); ११ आर्ची निचृत्पङ्क्तिः।

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च
वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ ७ ॥
ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च
त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ ८ ॥
आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च
प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९ ॥
पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च
सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ १० ॥
तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति
ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ११

तृतीयः पर्यायः ॥ ३ ॥

विराट् विषमा गायत्री, १३ आसुर्यनुष्टुप्; १४,२६ साम्नी उष्णिक्; १५ गायत्री; १६-१७, १९-२० प्राजापत्याऽनुष्टुप्; १८ याजुषी गायत्री; २१,२५ साम्न्यनुष्टुप्; २२ साम्नी बृहती, २३ याजुषी त्रिष्टुप्; २४ आसुरी गायत्री; २७ आर्च्युष्णिक्।

सैषा भीमा ब्रह्मगव्य१घविषा
साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥ १२ ॥
सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३ ॥
सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ १४ ॥
सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं
ब्रह्मगव्या॒दीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति १५
मेनिः शतवधा हि सा
ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६ ॥
तस्माद्वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७ ॥
वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ १८ ॥
हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो३ऽपेक्षमाणा १९
क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥
मृत्युर्हिङ्कृण्वत्यु१ग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥२१॥
सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती
राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२ ॥
मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३ ॥
सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥
शरव्या३ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५ ॥
अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति
ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७ ॥

चतुर्थः पर्यायः ॥ ४ ॥

२८ आसुरी गायत्री; २९,३७ आसुर्यनुष्टुप्; ३० साम्न्यनुष्टुप्; ३१ याजुषी त्रिष्टुप्; ३२ साम्नी गायत्री, ३३-३४ साम्नी बृहती; ३५ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्; ३६ साम्न्युष्णिक्; ३८ प्रतिष्ठा गायत्री।

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ २८ ॥
देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृ॒द्धिर्हृता ॥ २९ ॥
पाप्माऽधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३० ॥
विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ३१ ॥
अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा ॥ ३२ ॥
मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥३३॥
असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ३४
अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥ ३५ ॥
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥ ३६ ॥
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥ ३७ ॥
अशिता लोकाच्छिनत्ति
ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥ ३८ ॥

पञ्चमः पर्यायः ॥ ५ ॥

३९ साम्नी पंक्तिः, ४० याजुष्यनुष्टुप्; ४१,४६ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्; ४२ आसुरी बृहती; ४३ साम्नी बृहती; ४४ पिपीलिकमध्याऽनुष्टुप्; ४५ आर्ची बृहती।

तस्या आहननं कृत्या
मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥ ३९ ॥
अस्वगता परिह्णुता ॥ ४० ॥
अग्निः क्रव्याद्भूत्वा
ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥ ४१ ॥
सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४२ ॥
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ४३
विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति
ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥
अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोति
अपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ४५ ॥
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥४६॥

षष्ठः पर्यायः ॥ ६ ॥

प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ४८ आर्च्यनुष्टुप्; ५० साम्नी बृहती; ५४-५५ प्राजापत्योष्णिक्; ५६ आसुरी गायत्री; ६० गायत्री।

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥४७॥

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीः
आघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलवम् ४८
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलवम् ॥४९॥
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति
यत् तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥ ५० ॥
छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय.५१
आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ५२ ॥
वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ ५३ ॥
ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ५४ ॥
क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ५५ ॥
आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ ५६ ॥
आदाय जीतं जीताय
लोके३ऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥ ५७ ॥
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ ५८ ॥
मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥ ५९ ॥
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य
कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ ६० ॥
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ ६१ ॥

सप्तमः पर्यायः ॥ ७ ॥

प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ६५ गायत्री; ६७ प्राजापत्या गायत्री;
७१ आसुरी पंक्तिः; ७२ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ७३
आनुष्टुभिक।

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥ ६२ ॥
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥ ६३ ॥
यथाऽयाद्यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥६४॥
एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य
कृतागसो देवपीयोररराधसः ॥ ६५ ॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ६६ ॥
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥ ६७ ॥
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥६८॥
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥ ६९ ॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ७० ॥
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥ ७१ ॥
अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतां
उदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ७२ ॥
सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ ७३ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० ४।३८।१-७)

बादरायणिः । १-४ अप्सराः, ५-७ ऋषभः (वाजिनीवान् ऋषभ.) । अनुष्टुप्, ३ षट्पदा त्र्यवसाना जगती, ५ भुरिग् अत्यष्टिः, ६ त्रिष्टुप्, ७ त्र्यवसाना पथ्यापङ्क्त्यनुष्टुब्गर्भा पुरउपरिष्टाज्ज्योतिष्मती जगती ।

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ॥ १ ॥
विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥ २ ॥
यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात् ।
सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया ।
सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥ ३ ॥
या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती ।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥ ४ ॥
सूर्यस्य रश्मीनन्नु याः संचरन्ति
मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति ।
यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्
सद्यः सर्वांल्लोकान् पर्येति रक्षन् ।
स न ऐतु होममिमं जुषाणः
अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥ ५ ॥
अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्
कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङ्
इयं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्
कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः ।
यथानाम वं ईश्महे स्वाहा ॥ ७ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० ९।४।१-२४)
ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप्; ८ भुरिक्; ६,१०,२४ जगती; ११-१७, १९-२०,२३ अनुष्टुप्; १८ उपरिष्टाद् बृहती; २१ आस्तारपंक्तिः ।

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान्
विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन्
बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥ १ ॥
अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव
प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां
साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥ २ ॥
पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान्
वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैः
हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां
अथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष
आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः ॥ ४ ॥
देवानां भाग उपनाह एषः
अपां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो
बृहन्नद्रिरभवद्यच्छरीरम् ॥ ५ ॥
सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि
त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम् ।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा
न्यस्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥ ६ ॥
आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः
साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः ।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः
सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥ ७ ॥
इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू
अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् ।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुः
ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥ ८ ॥
दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि
त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति
यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ ९ ॥
बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ
त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः ।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि
बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १० ॥
य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् ।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ११
पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥ १२ ॥
भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ १३ ॥
गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥
क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥
ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥१६॥
शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥१७॥

शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा
यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ १८ ॥
ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्वा वरीयः कृणुते मनः ।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥ १९ ॥
गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ।
तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥ २० ॥
अयं पिपान इन्द्र इद्रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां
वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ २१ ॥
पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा
ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आऽगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च
रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ २२ ॥
उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
उप ऋषभस्य यद्रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥ २३ ॥
एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र
तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा
रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ २४ ॥

॥१०॥ (अथर्व० ६।८६।१-३)

अथर्वा । एकवृषः [वृषकामनः ।] । अनुष्टुप् ।

वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम् ।
वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव ॥ १ ॥
समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव ॥ २ ॥
सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्या णाम् ।
देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (साम० ३२६)

वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सहर्षभाः सहवत्सा उदेत
१ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।
३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक
३ १ २र ३ २ ३१ २
इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥ १२ ॥

॥ १२ ॥ (अथ० २।२६।१-५)

सविता । पशवः [पशुसंवर्धनं ।] । त्रिष्टुप्, ३ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ४ भुरिगनुष्टुप्, ५ अनुष्टुप् ।

एह यन्तु पशवो ये परेयुः
वायुर्येषां सहचारं जुजोष ।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेद
अस्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥ १ ॥
इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु
बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् ।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषां
आजग्मुषो अनुमते नि यच्छ ॥ २ ॥
सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः ।
सं धान्यस्य या स्फातिः
संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥
सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं वीरा
ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥ ४ ॥
आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम् ।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥५॥

॥१३॥ (अथर्व० ३।२८।१-६)

ब्रह्मा । यमिनी [पशुपोषणम् ।] । अनुष्टुप्, १ अतिशक्वरीगर्भा चतुष्पदातिजगती, ४ यवमध्या विराट् ककुप्, ५ विराट् ककुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः ।

एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव
यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः ।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः
सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥ १ ॥
एषा पशून्त्सं क्षिणाति क्रव्याद्भूत्वा व्यद्वरी ।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात् २

(५६६७)

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा ।
शिवाऽस्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥ ३ ॥
इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव ।
पशून् यमिनि पोषय ॥ ४ ॥
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति
विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव
सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥ ५ ॥
यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव
सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥ ६ ॥
॥ २४ ॥ [३१९-११] (वा० य० ४।३३)
उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू
अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ ।
स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥
॥ २५ ॥ (वा० य० १२।७३)
वि मुच्यध्वमघ्न्या देवयाना
अगन्म तमसस्पारमस्य ।
ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥
॥ २६ ॥ (वा० य० ३५।१३)
अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयं स्वस्तये ।
स न इन्द्र इव देवेभ्यो
वह्निः सन्तारणो भव ॥ १३ ॥
॥ २७ ॥ (अथर्व० ४।११।१-१२)
भृग्वङ्गिराः । अनड्वान्, इन्द्रः । त्रिष्टुप्; १,४ जगती, २ भुरिक्, ७ त्र्यवसाना षट्पदानुष्टुब्गर्भोपरिष्टाज्जागतानिचृच्छक्वरी, ८-१२ अनुष्टुप् ।
अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यां
अनड्वान् दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीः
अनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥ १ ॥
अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे
त्रयां छक्रो वि मिमीते अध्वनः ।
भूतं भविष्यद्भुवना दुहानः
सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥ २ ॥
इन्द्रो जातो मनुष्ये३ष्वन्तः
घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः ।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षत्
यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥ ३ ॥
अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोके
ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् ।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य
यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥
यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो
नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
यो विश्वजिद्विश्वभृद्विश्वकर्मा
घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥ ५ ॥
येन देवाः स्व१रारुरुहुः
हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं
घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥ ६ ॥
इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत ।
सो३ऽदृंहयत सो३ऽधारयत ॥ ७ ॥
मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः ।
एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥ ८ ॥
यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः ।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ९
पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन् ।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः १०
द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद्वा अनडुहो व्रतम् ॥ ११ ॥
दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः १२



पोषण-विभागः

पोषणमंत्री अन्नमंत्री च

पूषा

॥ १ ॥ (ऋ० १।२३।१३-१५)

मेधातिथि काण्वः । गायत्री ।

आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः ।
आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३ ॥

पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम् ।
अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥ १४ ॥

उतो स मह्यमिन्दुभिः षड् युक्ताँ अनुसेषिधत् ।
गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥ १५ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।४२।१-१०)

कण्वो घौरः । गायत्री ।

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् ।
सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति ।
अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥

अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् ।
दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥

त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्यचित् ।
पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥

आ तत् ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे ।
येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम ।
धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥

अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥

अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥

शग्धि पूर्धि प्रयंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥

न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि ।
वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।८९।५)

गोतमो राहूगणः । जगती ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं
धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१०६।४)
कुत्स आंगिरसः। जगती।

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह
क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे।
रथं न दुर्गाद् वसवः सु दानवो
विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।१३८।१-४)
परुच्छेपो दैवोदासिः। अत्यष्टिः।

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते
महित्वमस्य तवसो न तन्दते
स्तोत्रमस्य न तन्दते।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम्।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो
देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥
प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि
स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृधः
उष्ट्रो न पीपरो मृधः।
हुवे यत् त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः।
अस्माकमाङ्गूषान् द्युम्निनस्कृधि
वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥
यस्य ते पूषन् त्सख्ये विपन्यवः
क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर
इति क्रत्वा बुभुज्रिरे।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे।
अहेळमान उरुशंस सरी भव
वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥
अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवो
अहेळमानो ररिवाँ अजाश्व
श्रवस्यतामजाश्व।
ओ षु त्वा ववृतीमहि
स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे
न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ. ३।६२।७-९)
गाथिनो विश्वामित्रः। गायत्री।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी
अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम्।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ ८ ॥
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति।
स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ६।४८।१६-१९)
शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः)। १६ ककुप्, १७ सतोबृहती, १८ पुर उष्णिक् १९ बृहती।

आ मा पूषन्नुप द्रव
शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे।
अघा अर्यो अरातयः ॥ १६ ॥
मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पति
मशस्तीर्वि हि नीनशः।
मोत सूरो अह एवा चन
ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥
दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम्।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥
परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया।
अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्वं
अवा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ६।४९।८।
ऋजिश्वा भारद्वाजः। त्रिष्टुप्।

पथस्पथः परिपतिं वचस्या
कामेन कृतो अभ्यानळर्कम्।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा
धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥ ८ ॥

॥ ९ ॥ ऋ० ६।५३।१-१०)
बार्हस्पत्यो भारद्वाजः। गायत्री; ८ अनुष्टुप्।

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये।
धिये पूषन्नयुज्महि ॥ १ ॥

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय ॥ २ ॥
अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन् दानाय चोदय।
पणेश्चिद् वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥
परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥
वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७ ॥
यां पूषन् ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८॥
या ते अष्ट्रा गोओपशाऽऽघृणे पशुसाधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥
उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत् कृणुहि वीतये ॥ १० ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ६।५४।१-१०)

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। गायत्री।

सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥
समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति।
इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥
पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते
नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥
यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते।
प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः।
पूषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥
पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः।
अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥
माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे।
अथारिष्टाभिरा गहि ॥ ७ ॥
शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्।
ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥
पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९ ॥
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १० ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ६।५५।१-६)

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। पूषा। गायत्री।

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै।
रथीर्ऋतस्य नो भव ॥ १ ॥
रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः।
रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥
रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व।
धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥
पूषणं न्वजाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम्।
स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥
मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः।
भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम्।
देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० ३।५६।१-३)

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। गायत्रीः। अनुष्टुप्।

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम्।
न तेन देव आदिशे ॥ १ ॥
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

(५५११)

उतादः पंरुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् ।
न्यैरयद् रथीतमः ॥ ३ ॥
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः ।
तत् सु नो मन्म साधय ॥ ४ ॥
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् ।
आरात्पूषन्नसि श्रुतः ॥ ५ ॥
आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ६।५८।१-४)

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप्; २ जगती ।

शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद्
विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो
भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ १ ॥
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो
धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्
संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥ २ ॥
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे
हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य
कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या
इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै
कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥ ४ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० १०।१७।३-९)

देवश्रवा यामायनः । त्रिष्टुप् ।

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वान्
अनष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यो
ऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ३ ॥
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा
पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुः
तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ ४ ॥
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः
सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरो
ऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥ ५ ॥
प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा
प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे
आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ ६ ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० १०।२६।१-९)

ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा ।
अनुष्टुप्; १, ४ उष्णिक् ।

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः ।
प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥ १ ॥
यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः ।
विप्र आ वंसद्धीतिभि-श्चिकेत सुष्टुतीनाम् ॥ २ ॥
स वेद सुष्टुतीना-मिन्दुर्न पूषा वृषा ।
अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ॥ ३ ॥
मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन् ।
मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥ ४ ॥
प्रत्यर्धिर्यज्ञाना-मश्वहयो रथानाम् ।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥ ५ ॥
आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।
वासोवायोऽवीना-मा वासांसि मर्मृजत् ॥ ६ ॥
इनो वाजानां पतिः-रिनः पुष्टीनां सखा ।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद् वि वृथा यो अदाभ्यः ॥ ७ ॥
आ ते रथस्य पूष-न्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥ ८ ॥

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टुः माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥ ९ ॥

॥ १६ ॥ (यजु० ९।३१)

पूषा पंचाक्षरेण पंच दिश उदजयत्ता उज्जेषम् ३२

॥ १७ ॥ (यजु० १०।९)

पूष्णे स्वाहा ॥ ५ ॥

॥ १८ ॥ (यजु० ११।१०)

पूष्णे नरंधिषाय स्वाहा ॥ २० ॥

॥ १९ ॥ (यजु० २५।५, ७)

पूष्णो नवमी ॥ ५ ॥
पूषणं वनिष्ठुना ॥ ७ ॥

॥ २० ॥ (यजु० १९।४७)

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः
शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ ४७ ॥

॥ २१ ॥ (यजु० ३४।४१, ४२)

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४१ ॥
पथस्पथः परिपतिं वचस्या
कामेन कृतो अभ्यानडर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा
धियंधियꣳसीषधाति प्र पूषा ॥ ४२ ॥

॥ २२ ॥ (यजु० ३८।३, १५)

पूषाऽसि घर्माय दीष्व ॥ ३ ॥
स्वाहा पूष्णे शरसे ॥ १५ ॥

॥ २३ ॥ (अथर्व० ६।११३।१-३)
अथर्वा । त्रिष्टुप्; ३ पंक्तिः ।

त्रिते देवा अमृजतैतदेनः
त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे
तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ १ ॥

मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्
उदारान् गच्छोत वा नीहारान् ।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य
भ्रूणघ्नि पूषन्दुरितानि मृक्ष्व ॥ २ ॥
द्वादशधा निहितं त्रितस्य
अपमृष्टं मनुष्यैनसानि ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे
तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ ३ ॥

॥ २४ ॥ (अथर्व० ७।९।१-४)
उपरिबभ्रवः । त्रिष्टुप्; ३ त्रिपदा आर्षी गायत्री, ४ अनुष्टुप्

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा
प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे
आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ १ ॥
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः
सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरः
अप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥ २ ॥
पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ३ ॥
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥ ४ ॥

॥ २५ ॥ (अथर्व० १४।१।३९)
सूर्यासावित्री । त्रिष्टुप् ।

आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्तु
अवीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन्
प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥ ३९ ॥

॥ २६ ॥ (अथर्व० १४।२।३८)

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व
यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति
यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ३८ ॥
(९११)

सहचारी--देवगणः

(१) इन्द्रवायुबृहस्पतिमित्राग्निपूषन्भगादित्यमरुतः।

॥ २७ ॥ (ऋ० १।१४।३)
मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।

इ॒न्द्र॒वा॒यू बृह॒स्पतिं॑ मि॒त्राग्निं॑ पू॒षणं॒ भग॑म्।
आ॒दि॒त्यान् मारु॑तं ग॒णम् ॥ ३ ॥

(२) इन्द्रमरुत्पूषन्भगाः

॥ २८ ॥ (ऋ० १।९०।४-५)

वि नः॑ प॒थः सु॑वि॒ताय॑ चि॒यन्त्विन्द्रो॑ म॒रुतः॑।
पू॒षा भगो॒ वन्द्या॑सः ॥ ४ ॥

(३) पूषन्विष्णू

उ॒त नो॒ धियो॒ गोअ॑ग्राः॒ पूष॒न् विष्ण॒वेव॑यावः।
क॒र्ता नः॑ स्वस्ति॒मतः॑ ॥ ५ ॥

(४) त्वष्ट्रग्नीळाभगबृहद्दिवरोदसीपूषाश्विनाः।

॥ २९ ॥ (ऋ० २।३१।४)
गृत्समदः (आंगिरस॰ शौनहोत्र॰ पश्चात्) भार्गवः शौनकः। जगती।

उ॒त स्य दे॒वो भुव॑नस्य स॒क्षणि॒स्
त्वष्टा॒ग्नाभिः॑ स॒जोषा॑ जूजुव॒द् रथ॑म्।
इळा॒ भगो॑ बृहद्दि॒वोत रोद॑सी
पू॒षा पुरं॑धिर॒श्विना॒वधा॒ पती॑ ॥ ४ ॥

(५) ब्राह्मणपितृसोमद्यावापृथिवीपूषाणः।

॥ ३० ॥ (ऋ० ६।७५।१०)
पायुर्भारद्वाजः। जगती।

ब्राह्म॑णास॒ः पित॑रः॒ सोम्या॑सः
शि॒वे नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॑ने॒हसा॑।
पू॒षा नः॑ पातु दुरि॒तादृ॑तावृधो
रक्षा॒ माकि॑र्नो अ॒घशं॑स ईशत ॥ १० ॥

(६) पृथिवीद्यवन्तरिक्षसोमपूषपथ्यास्वस्तयः।

॥ ३१ ॥ (ऋ० १०।५९।७)
बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। त्रिष्टुप्।

पुन॑र्नो॒ असुं॑ पृथि॒वी द॑दातु
पुन॒र्द्यौर्दे॒वी पुन॑र॒न्तरि॑क्षम्।
पुन॑र्नः॒ सोम॑स्त॒न्वं॑ ददातु
पुनः॑ पू॒षा प॒थ्यां॒३ या स्व॒स्तिः ॥ ७ ॥

(७) अर्यमा पूषा बृहस्पतिः।

॥ ३२ ॥ (वा० य० ९।२९)

प्र नो॑ यच्छत्वर्य॒मा प्र पू॒षा प्र बृह॒स्पतिः॑।
प्र वा॒ग्दे॒वी द॑दातु नः॒ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥

(८) मित्रवरुणेन्द्रपूषन्प्रजौषधयः।

॥ ३३ ॥ (वा० य० ११।७१)

काम॑ं कामदुघे धुक्ष्व मि॒त्राय॒ वरु॑णाय च।
इन्द्रा॑याश्विभ्यां॑ पू॒ष्णे प्र॒जाभ्य॒ ओष॑धीभ्यः ॥ ७२ ॥

(९) उषःवायुपूषाणः।

॥ ३४ ॥ (वा० य० १३।४४,४८,४९)

प्र वा॑यु॒जे सु॒प्रया॑ ब॒र्हिरे॑षा॒म्
आ वि॒श्पती॑व॒ बीरि॑ट इयाते।
वि॒शाम॒क्तोरु॒षसः॑ पू॒र्वहू॑तौ
वा॒युः पू॒षा स्व॒स्तये॑ नि॒युत्वा॑न् ॥ ४४ ॥

(१०) अग्नीन्द्रवरुणमित्रमरुत्विष्णुरुद्रपूषान्भगसरस्वत्यः।

अग्न॒ इन्द्र॒ वरु॑ण॒ मित्र॒ देवाः॒
शर्धः॒ प्र य॑न्त॒ मारु॑तोत वि॑ष्णो।
उ॒भा नास॑त्या रु॒द्रो अध॒ ग्नाः
पू॒षा भगः॒ सर॑स्वती जुषन्त ॥ ४८ ॥

(११) इन्द्राग्निपूषादयः।

इ॒न्द्रा॒ग्नी मि॒त्रावरु॒णादि॑ति॒ꣳ स्वः
पृ॒थि॒वीं द्यां म॒रुतः॒ पर्व॑ताँ२ अ॒पः।
हु॒वे विष्णुं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑
भगं॒ नु शꣳस॑ꣳ सवि॒तार॑मू॒तये॑ ॥ ४९ ॥
(५५७१)

(१२) वस्विन्द्रपूषन्वरुणमित्राग्न्यादित्यविश्वेदेवाः ।

॥ ३६ ॥ (अथर्व० १।९।१)

अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

अस्मिन्वसु वसवो धारयन्तु
इन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।
इममादित्या उत विश्वे च देवाः
उत्तरस्मिञ्ज्योतिषि धारयन्तु ॥ १ ॥

(१३) पूषा, अर्यमा, वेधाः

॥ ३७ ॥ (अथर्व० १।११।१)

अथर्वा । पंक्तिः ।

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतौ
अर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता
वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥ १ ॥

(१४) अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः ।

॥ ३८ ॥ (अथर्व० ३।१४।२)

ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यतु तद्वसु ॥ २ ॥

(१५) अर्यमन्पूषन्बृहस्पतयः ।

॥ ३९ ॥ (अथर्व० ५।२८।१२)

अथर्वा । ककुम्मत्यनुष्टुप् ।

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥ १२ ॥

(१६) इन्द्रापूषणौ, अदितिः, मरुतः, अपांनपात्,
सिन्धवः, विष्णुः, द्यौः ।

॥ ४० ॥ (अथर्व० ६।३।१)

अथर्वा । पथ्याबृहती ।

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।
अपां नपात्सिन्धवः सप्त पातन
पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥ १ ॥

(१७) सवितृधातृपूषन्त्वष्टारः ।

॥ ४१ ॥ (अथर्व० ६।३।३)

शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

इमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३ ॥

(१८) पूषन्मरुद्धातृसवितारः ।

॥ ४२ ॥ (अथर्व० १४।१।३३)

सूर्या सावित्री । त्रिष्टुप् ।

इमं गावः प्रजया सं विशाथ
अयं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे
अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ ३३ ॥

(१९) अग्निसोमपूषाणः ।

॥ ४३ ॥ (अथर्व० १६।९।२)

यमः । आर्षी उष्णिक् ।

तदग्निराह तदु सोम आह
पूषा मा धात्सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥

(२०) अदितिमरुद्विष्णुपूषवायवः ।

॥ ४४ ॥ (अथर्व० १९।१०।९)

वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः
शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु
शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥

(२१) पूषा इन्द्राग्नी इति नानादेवताः ।

॥ ४५ ॥ (अथर्व० १९।२०।१)

अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यम्
इन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना
यमः पूषास्मान्परिपातु मृत्योः ॥ १ ॥

(५५८१)



अर्थ-विभाग

अर्थमंत्री

भगः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।२४।४,५)

आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । गायत्री ।

यश्चिद्धि ते इत्था भगः शशमानः पुरा निदः ।
अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा ।
मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ७।४१।१-६)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम
वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद्
राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो
भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैः
भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥
उतेदानीं भगवन्तः स्याम
उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य
वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवाः
तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति
स नो भग पुर एता भवेह ॥ ५ ॥
समध्वरायोषसो नमन्त
दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो
रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० २०।५)

भगाय स्वाहा ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १।३६।७)

पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः ।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥ ७ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ५।२६।९)

ब्रह्मा । त्रिपदा पिपीलिक मध्या पुर उष्णिक् ।

भगो युनक्त्वाशिषो न्व१स्मा
अस्मिन्यज्ञे प्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ६।१२९।१-३)

अथर्वाङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना ।
कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः ॥ १ ॥

येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह
तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥ २ ॥
यो अन्धो यः पुनः सरो भगो वृक्षेष्वाहितः ।
तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥ ३ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० १९।४५।२)
भृगुः । एकावसाना महाबृहती (निचृद्)।

भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे
वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥९॥

सहचारी--देवगणः

(१) सविता- उषस्- अश्विन्- भग- अग्नयः ।

॥ ८ ॥ (ऋ० १।४४।८)
प्रस्कण्वः काण्वः । प्रगाथः=विषमा बृहत्यः, समा सतोबृहत्यः ।

सवितारमुषसमश्विना भगं
अग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते
हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

(२) भगमित्रादित्यर्यमन्वरुणसोमाश्विनाद्यः ।

॥ ९ ॥ (ऋ० १।८९।३)
गोतमो राहूगणः । जगती ।

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं
भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना
सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥

(३) मित्रार्यमन्भगाः ।

॥ १० ॥ (ऋ० २।२७।१)
कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा । त्रिष्टुप् ।

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः
सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नः
तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥ १ ॥

(४) मित्रार्यमन्सवितृभगाः ।

॥ ११ ॥ (वा० य० ३३।१०)

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा ।
सुवाति सविता भगः ॥ २० ॥

(५) द्यावापृथिवी, इन्द्राबृहस्पती, भगः ।

॥ १२ ॥ (साम. पूर्वार्चिकः ६।३।१०)
वामदेवो गौतमः । महापंक्तिः ।

यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
यशसा३स्याः सꣳसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥ १० ॥

(६) इन्द्रः, भगः, सविता ।

॥ १३ ॥ (अथर्व० १।२६।२)
ब्रह्मा । त्रिपदा एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप् ।

सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः ।
सखेन्द्रो भगः सविता चित्रराधाः ॥ २ ॥

(७) अर्यमा, भगः, बृहस्पतिः, देवीः ।

॥ १४ ॥ (अथर्व० ३।२०।३)
वसिष्ठः । अनुष्टुप् ।

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥ ३ ॥

(८) अंशभगवरुणमित्रार्यमन्नदितिमरुतः ।

॥ १५ ॥ (अथर्व० ६।४।२)
अथर्वा । प्रस्तारपंक्तिः ।

अंशो भगो वरुणो मित्रो
अर्यमादितिः पान्तु मरुतः
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो
यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥ २ ॥

(९) ब्रह्मणस्पतिर्भगः ।

॥ १६ ॥ (अथर्व० ६।७४।१)

अथर्वा । अनुष्टुप् ।

सं वः पृच्यन्तां तन्वः१ः सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥१॥

(१०) बृहस्पतिसवितृमित्रार्यमन्भगाश्विनाः ।

॥ १७ ॥ (अथर्व० ६।१०३।१)

उच्छोचनः । अनुष्टुप् ।

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविताकरत् ।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥ १ ॥

(११) भगसोममरुदिन्द्राग्नयः ।

॥ १८ ॥ (अथर्व० ८।१।२)

ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ २ ॥

(१२) वरुणमित्रविष्णुभगाः ।

॥ १९ ॥ (अथर्व० ११।६।२)

शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥

(१३) भगाश्विनः ।

॥२०॥ (अथर्व० १४।१।२०,३४,५०,५१,५३-५४, ५९-६० ।

सूर्या सावित्री । २०,५०;५३,५९ त्रिष्टुप्, ३४ प्रस्तारपंक्तिः, ५१ अनुष्टुप्, ५४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६० परानुष्टुप् ।

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्य
अश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ २० ॥

(१४) अर्यमा धाता भगः ।

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानः
येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥३४॥

(१५) भगार्यमन्सवितृदेवाः ।

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिः
मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ५० ॥

(१६) भगसवितारौ ।

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥

(१७) त्वष्टृबृहस्पतिभगसवितारः ।

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं
बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च
सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥ ५३ ॥

(१८) इन्द्राग्निद्यावापृथिविमातरिश्वन्भगादयः ।

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा
मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम
इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

(१९) धाता भगः ।

उदच्छध्वमप रक्षो हनाथ
इमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित्पतिमस्यै विवेद
भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥ ५९ ॥

(५११५)

(२०) त्वष्टृभगौ ।

भर्गस्ततक्ष चतुरः पादान्
भर्गस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्
सा नो अस्तु सुमंगली ॥ ६० ॥

(२१) अर्यमन्भगादिवन्प्रजापतयः ।

॥ ११ ॥ (अथर्व० १४।२।१३) त्रिष्टुप् ।

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं
धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा
प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

(२२) अर्यमन्भगौ ।

॥ ११ ॥ (अथर्व० १९।१०।५)

वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु
शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः
शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥

पणयः

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१०८।१,४,६,८,१०-११)

सरमा देवशुनी ऋषिका । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि
मह इच्छन्ती पणयो निधीन् वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्
तथा रसाया अतरं पयांसि ॥ २ ॥

नाहं तं वेद दभ्यं दभत् स
यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा
हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥ ४ ॥

असेन्या वः पणयो वचांसि
अनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था
बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥ ६ ॥

एह गमन्नृषयः सोमशिता
अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनाम्
अथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥ ८ ॥

नाहं वेद भ्रातृत्वं न स्वसृत्वं
इन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन्
यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥ १० ॥

दूरमित पणयो वरीय
उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः
सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥ ११ ॥

(५११७)



उद्योग-मंत्री

विश्वकर्मा

॥ १ ॥ (ऋ० १०।८१।१-७)

विश्वकर्मा भौवनः । त्रिष्टुप्, २ विराड्रूपा ।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वद्
ऋषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः
प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥ १ ॥

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं
कतमत् स्वित् कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा
वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ २ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैः
द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ३ ॥

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्
यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥ ४ ॥

या ते धामानि परमाणि यावमा
या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः
स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ ५ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः
स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनासः
इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ ६ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये
मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्
विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १०।८२।१-७) त्रिष्टुप् ।

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो
घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व
आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ १ ॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया
धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति
यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः ॥ २ ॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव
तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ३ ॥
त आयजन्त द्रविणं समस्मा
ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजांसि निषत्ते
ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ ४ ॥
परो दिवा पर एना पृथिव्या
परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो
यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥ ५ ॥
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो
यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं
यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ६ ॥
न तं विदाथ य इमा जजान
अन्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या च
असुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० ५।११)

विश्वकर्मा त्वाऽऽदित्यैरुत्तरतः पातु ॥११॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ८।४६, ५४)

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन
त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीः
अयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४६ ॥
विश्वकर्मा दीक्षायाम् ॥ ५३ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० ११।३३)

विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० १४।९, १०, १४)

विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दः ॥ ९ ॥
विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं
यच्छान्तरिक्षं दृंहान्तरिक्षं मा हिंसीः ॥ १२ ॥
विश्वकर्मा त्वा सादयतु
अन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ॥ १४ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० १७।११)

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव
आदिद् गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनां
अपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा ॥ ३२ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० २।३५।१-५)

अंगिराः । त्रिष्टुप्, २ बृहतीगर्भा, ४-५ भुरिक् ।

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुः
यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः
स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा ॥ १ ॥
यज्ञपतिमृषय एनसाहुः
निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम् ।
मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध
सं नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा ॥ २ ॥
अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो
यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः ।
यदेनश्चकृवान् बद्ध एष
तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ॥ ३ ॥



गृह-मंत्री

वास्तोष्पतिः

॥ १ ॥ (ऋ० ७।५४।१-३)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्
स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥
वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि
गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम
पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥ २ ॥
वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते
सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ७।५५।१) गायत्री ।

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् ।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० ८।१७।१४)
इरिम्बिठिः काण्वः । (इंद्रो वा) । बृहती ।

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणां—सत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनां
इन्द्रो मुनीनां सखा ॥ १४ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ३।४१-४३)

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि ।
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा
गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥
येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये
शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः ॥ ४३ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ३।१२।१-९)
ब्रह्मा । शाला, वास्तोष्पतिः । त्रिष्टुप्, २ विराड् जगती, ३ बृहती, ६ शक्वरीगर्भा जगती, ७ आर्षी अनुष्टुप्, ८ भुरिक्, ९ अनुष्टुप् ।

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां
क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा
अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥ १ ॥
इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शाले
अश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वती
उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥

ध्रुरुण्य॑सि शाले बृहच्छ॑न्दाः पूतिधान्या।
आ त्वा॑ वृत्सो ग॑मेदा कु॑मार
आ धेनवः॑ सायमास्पन्द॑मानाः ॥ ३ ॥
इमां शालां॑ सविता वायुरिन्द्रो
बृहस्पतिर्नि मि॑नोतु प्रजानन्।
उक्षन्तूद्ना मरुतो॑ घृतेन
भगो॑ नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥ ४ ॥
मानस्य पत्नि शरणा स्योना
देवी देवेभिर्निमि॑तास्यग्रे।
तृणं वसा॑ना सुमना॑ असस्त्वं
अथास्मभ्यं॑ सहवीरं रयिं दाः ॥ ५ ॥
ऋतेन स्थूणामधि रोह वंश
उग्रो विराजन्नप॑ वृङ्क्ष्व शत्रून्।
मा ते॑ रिषन्नुपसत्तारो॑ गृहाणां॑
शाले शतं जी॑वेम शरदः सर्ववी॑राः ॥ ६ ॥
एमां कु॑मारस्तरुण आ वृत्सो जग॑ता सह।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥ ७ ॥
पूर्णं ना॑रि प्र भ॑र कुम्भमेतं
घृतस्य धारा॑ममृते॑न संभृ॑ताम्।
इमां पातॄनमृते॑ना सम॑ङ्ग्धि
इष्टापूर्तम॑भि र॑क्षात्येनाम् ॥ ८ ॥
इमा आपः प्र भ॑राम्ययक्ष्मा य॑क्ष्मनाशनीः।
गृहानुप प्र सी॑दाम्यमृते॑न सहाग्निना ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ५।९।१-८)

वास्तोष्पतिः, आत्मा। १,५ दैवी बृहती; २,६ दैवी त्रिष्टुप्; ३,४ दैवी जगती; ७ विराडुष्णिग्बृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती, ८ पुरस्कृतित्रिष्टुब्बृहतीगर्भा, चतुष्पदा त्र्यवसाना जगती।

दिवे स्वाहा॑ ॥ १ ॥
पृथिव्यै स्वाहा॑ ॥ २ ॥
अन्तरि॑क्षाय स्वाहा॑ ॥ ३ ॥
अन्तरि॑क्षाय स्वाहा॑ ॥ ४ ॥
दिवे स्वाहा॑ ॥ ५ ॥
पृथिव्यै स्वाहा॑ ॥ ६ ॥
सूर्यो॑ मे चक्षुर्वातः॑ प्राणो३
अन्तरि॑क्षमात्मा पृथिवी शरी॑रम्।
अस्तृतो नामाहमयम॑स्मि स आत्मानं नि द॑धे
द्यावा॑पृथिवीभ्यां॑ गोपीथाय॑ ॥ ७ ॥
उदायुरुद्बलमुत्कृतमुत्कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम्।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधा॑वन्तौ
गोपा मे॑ स्तं गोपायतं मा।
आत्मसदौ॑ मे स्तं मा॑ मा॑ हिंसिष्टम् ॥ ८ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० ५।१०।१-८)

यवमध्या त्रिपदा गायत्री; ७ यवमध्या ककुप्; ८ पुरोधृतिस्त्वनुष्टुब्गर्भा पराष्टिस्त्र्यवसाना चतुष्पदातिजगती।

अश्मवर्म मे॑ऽसि
यो मा प्राच्या दिशो॑ऽघायुर॑भिदासा॑त्।
एतत् स ऋ॑च्छात् ॥ १ ॥
अश्मवर्म मे॑ऽसि
यो मा दक्षिणाया दिशो॑ऽघायुर॑भिदासा॑त्।
एतत् स ऋ॑च्छात् ॥ २ ॥
अश्मवर्म मे॑ऽसि
यो मा॑ प्रतीच्या॑ दिशो॑ऽघायुर॑भिदासा॑त्।
एतत् स ऋ॑च्छात् ॥ ३ ॥
अश्मवर्म मे॑ऽसि
यो मोदी॑च्या दिशो॑ऽघायुर॑भिदासा॑त्।
एतत् स ऋ॑च्छात् ॥ ४ ॥
अश्मवर्म मे॑ऽसि
यो मा॑ ध्रुवाया॑ दिशो॑ऽघायुर॑भिदासा॑त्।
एतत् स ऋ॑च्छात् ॥ ५ ॥
अश्मवर्म मे॑ऽसि
यो मोर्ध्वाया॑ दिशो॑ऽघायुर॑भिदासा॑त्।
एतत् स ऋ॑च्छात् ॥ ६ ॥

(५९८९)

अश्मवर्म मेऽसि
यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ ७ ॥
बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥ ८ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० ५।२६।१-१२)

वास्तोष्पतिः, १ अग्निः, २ सविता, ३, ११ इन्द्रः, ४ निविदः, ५ मरुतः, ६ अदितिः, ७ विष्णुः, ८ त्वष्टा, ९ भगः, १० सोमः, १२ अश्विनौ, बृहस्पतिः । १,५ द्विपदार्षी उष्णिक्; २, ४, ६, ७, ८, १०, ११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती; ३ त्रिपदा विराड् गायत्री; ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुरउष्णिक्; (१-११ एकावसानाः) १२ परातिजगती, चतुष्पदा गायत्री ।

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहा
अग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥ १ ॥
युनक्तु देवः सविता प्रजानन्
अस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥ २ ॥
इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे
प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥
प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा
शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥
छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा
मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥ ५ ॥
एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिः
यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥
विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांसि
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥
त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥
भगो युनक्त्वाशिषो न्वस्मा
अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥
सोमो युनक्तु बहुधा पयांसि
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ १० ॥
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याणि
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥
अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ
वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ्
यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० ७।६०।१-७)

गृहाः, वास्तोष्पतिः । अनुष्टुप्, १ परोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

ऊर्जं बिभ्रद्वसुवनिः सुमेधा
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो
रमध्वं मा बिभीत मत् ॥ १ ॥
इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥ २ ॥
येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥ ३ ॥
उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः ।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद्बिभीतन ॥ ४ ॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥ ५ ॥
सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद्बिभीतन ॥ ६ ॥
इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।
ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ६।७३।३)

अथर्वा । भुरिक् ।

इहैव स्त माप याताध्यस्मत्
पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु
मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ ३ ॥

धरुणय॑सि शाले बृहच्छ॑न्दाः पूतिधान्या।
आ त्वा॑ वत्सो ग॑मेदा कु॑मार
आ धेनवः॑ सायमास्पन्द॑मानाः ॥ ३ ॥
इमां शालां॑ सविता वायुरिन्द्रो
बृहस्पतिर्नि मि॑नोतु प्रजानन्।
उक्षन्तू॒द्ना मरुतो॑ घृतेन
भगो॑ नो राजा नि कृषि॑ तनोतु ॥ ४ ॥
मानस्य पत्नि शरणा स्योना
देवी॑ देवेभिर्निमि॑तास्यग्रे॑।
तृणं वसा॑ना सुमना॑ असस्त्वं
अथास्मभ्यं॑ सहवीरं॑ रयिं दाः॑ ॥ ५ ॥
ऋतेन॑ स्थूणामधि॑ रोह वंश
उग्रो विराजन्नप॑ वृङ्क्ष्व शत्रू॑न्।
मा ते॑ रिषन्नुपसत्तारो॑ गृहाणां
शाले शतं जी॑वेम शरदः सर्ववी॑राः ॥ ६ ॥
एमां कुमारस्तरु॑ण आ वत्सो जगता सह।
एमां प॑रिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशै॑रगुः ॥ ७ ॥
पूर्णं ना॑रि प्र भ॑र कुम्भमेतं
घृतस्य॑ धाराममृते॑न संभृ॑ताम्।
इमां पातॄनमृते॑ना समङ्ग्धि
इष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ ८ ॥
इमा आपः प्र भ॑राम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाश॑नीः।
गृहानुप॑ प्र सी॑दाम्यमृते॑न सहाग्निना ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ५।९।१-८)

वास्तोष्पतिः, आत्मा। १,५ दैवी बृहती; २,६ दैवी त्रिष्टुप्; ३,४ दैवी जगती; ७ विराडुष्णिग्बृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती, ८ पुरस्कृतित्रिष्टुब्बृहतीगर्भा, चतुष्पदा त्र्यवसाना जगती।

दि॒वे स्वाहा॑ ॥ १ ॥
पृ॒थि॒व्यै स्वाहा॑ ॥ २ ॥
अ॒न्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ ॥ ३ ॥
अ॒न्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ ॥ ४ ॥
दि॒वे स्वाहा॑ ॥ ५ ॥
पृ॒थि॒व्यै स्वाहा॑ ॥ ६ ॥
सूर्यो॑ मे चक्षु॒र्वातः॑ प्रा॒णो॑३
अ॒न्तरि॑क्षमा॒त्मा पृ॑थि॒वी शरी॑रम्।
अ॒स्तृ॒तो नामा॒हम॒यम॑स्मि॒ स आ॒त्मानं॒ नि द॑धे
द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ गोपी॒थाय॑ ॥ ७ ॥
उ॒दा॒युरुद्ब॒लमुत्कृ॒तमुत्कृ॒त्यामुन्म॑नी॒षामुदि॑न्द्रि॒यम्।
आयु॑ष्कृ॒दायु॑ष्पत्नी॒ स्वधा॑वन्तौ
गो॒पा मे॑ स्तं गो॒पाय॑तं मा।
आ॒त्म॒सदौ॑ मे स्तं॒ मा मा॑ हिंसिष्टम् ॥ ८ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० ५।१०।१-८)

यवमध्या त्रिपदा गायत्री; ७ यवमध्या ककुप्; ८ पुरोधृत्यनुष्टुब्गर्भा पराष्टिस्त्र्यवसाना चतुष्पदातिजगती।

अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि
यो मा॒ प्राच्या॑ दि॒शो॑ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त्।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ १ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि
यो मा॒ दक्षि॑णाया दि॒शो॑ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त्।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ २ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि
यो मा॑ प्र॒तीच्या॑ दि॒शो॑ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त्।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ३ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि
यो मोदी॑च्या दि॒शो॑ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त्।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ४ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि
यो मा॑ ध्रु॒वाया॑ दि॒शो॑ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त्।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ५ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि
यो मो॒र्ध्वाया॑ दि॒शो॑ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त्।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ६ ॥
(५६८९)

अश्मवर्म मेऽसि
यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ ७ ॥
बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥ ८ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० ५।१०।१-८)

वास्तोष्पतिः, १ अग्निः, २ सविता, ३, ११ इन्द्रः, ४ निविदः, ५ मरुतः, ६ अदितिः, ७ विष्णुः, ८ त्वष्टा, ९ भगः, १० सोमः, १२ अश्विनौ, बृहस्पतिः । १,५ द्विपदार्ची उष्णिक्; २, ४, ६, ७, ८, १०, ११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती; ३ त्रिपदा विराड् गायत्री; ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुरउष्णिक्; (१-११ एकावसानाः) १२ पराऽतिशक्वरी, चतुष्पदा गायत्री ।

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहा
अग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥ १ ॥
युनक्तु देवः सविता प्रजानन्
अस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥ २ ॥
इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे
प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥
प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा
शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥
छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा
मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥ ५ ॥
एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिः
यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥
विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांसि
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥
त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥
भगो युनक्त्वाशिषो न्व१स्मा
अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥
सोमो युनक्तु बहुधा पयांसि
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ १० ॥
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्या१णि
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥
अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ
वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ्
यज्ञो अयं स्व१रिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० ७।६०।१-७)

गृहाः, वास्तोष्पतिः । अनुष्टुप्, १ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

ऊर्जं बिभ्रद्वसुवनिः सुमेधा
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो
रमध्वं मा बिभीत मत् ॥ १ ॥
इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥ २ ॥
येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥ ३ ॥
उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः ।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा माऽस्मद्बिभीतन ॥ ४ ॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥ ५ ॥
सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा माऽस्मद्बिभीतन ॥ ६ ॥
इहैव स्त माऽनु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।
ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ६।७३।३)

अथर्वा । भुरिक् ।

इहैव स्त माप याताध्यस्मत्
पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु
मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।१०६।१-३)

प्रमोचनः । दूर्वाशाला । अनुष्टुप् ।

आयने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणीः ।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥१॥
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥२॥
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।
शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ९।३।१-३१)

मृग्वङ्गिराः । शाला । अनुष्टुप्; ६ पथ्यापङ्क्तिः; ७ परोष्णिक्; १५ त्र्यवसाना पञ्चपदातिशक्वरी; १७ प्रस्तारपङ्क्तिः; २१ आस्तारपङ्क्तिः; २५, ३१ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती; २६ साम्नी त्रिष्टुप्; २७-३० प्रतिष्ठानाम गायत्री; (२५-३१ एकावसाना त्रिपदा) ।

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥१॥
यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः ।
बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥२॥
आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान् ।
परूंषि विद्वांछस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥ ३ ॥
वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।
पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥ ४ ॥
संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च ।
इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥ ५ ॥
यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम् ।
प्र ते तानि चृतामसि
शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव ॥६॥
हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले ॥ ७ ॥
अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।
अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥
यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।
उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥ ९ ॥
अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता ।
यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥ १० ॥
यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन् ।
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥११॥
नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः ।
नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥
गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १३ ॥
अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १४ ॥
अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचः
तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं
तत् कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः ।
तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥
ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः १६
तृणैरावृता पलदान् वसाना
रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥ १७ ॥
इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् ।
वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥ १८ ॥
ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥ १९ ॥
कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।
तत्र मर्तो वि जायते यस्माद्विश्वं प्रजायते ॥ २० ॥
या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां
मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥ २१ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ २३ ॥
मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥ २४ ॥
प्राच्यां दिशः शालाया नमो
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २५ ॥
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २६ ॥
प्रतीच्या दिशः शालाया नमो
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २७ ॥
उदीच्या दिशः शालाया नमो
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २८ ॥
ध्रुवायां दिशः शालाया नमो
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २९ ॥
ऊर्ध्वायां दिशः शालाया नमो
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ ३० ॥
दिशोदिशः शालाया नमो
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ ३१ ॥
(५१५४)



शस्त्रास्त्र निर्माण-मंत्री

त्वष्टा

॥ १ ॥ (ऋ० १।१३।१०)

मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१५।३)

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना ।
त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ. १।१४२।१०)

दीर्घतमा औचथ्यः । अनुष्टुप् ।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः १०

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१८६।६ पूर्वार्ध)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा
स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ॥ ६ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।१८८।९) गायत्री ।

त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून् विश्वान्त्समानजे ।
तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० २।३।९)

गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः ।
त्रिष्टुप् ।

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः
श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे
अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० २।३६।३) जगती ।

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन
नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसः
त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ ३ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ३।४।९)

गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु
देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो
युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ३।५५।१९)
प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । त्रिष्टुप् ।

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः
पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य
महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १९ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ५।५।९)
वसुश्रुत आत्रेयः । गायत्री ।

शिवस्त्वष्टरिहागहि विभुः पोष उत त्मना ।
यज्ञेयज्ञे न उदव ॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ७।३४।२०-२१)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । द्विपदा विराट् ।

आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा
त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥ २० ॥
प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत
स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥ २१ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० १०।१८।६)
संकुसुको यामायनः । त्रिष्टुप् ।

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना
अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा
दीर्घमायुः करति जीवसे वः ॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० १०।७०।९)
सुमित्रो वाध्र्यश्वः । त्रिष्टुप् ।

देवं त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्
यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वान्
उशन् यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥ ९ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० १०।११।०।९)
जमदग्निर्भार्गवः, जामदग्न्यो रामो वा । त्रिष्टुप् ।

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री
रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्
देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ९ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० २।२४)

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिः
अगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायः
अनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ २४ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० ६।७, २०)

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः
प्रागुरुशिजो वह्नितमान् ।
देवं त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥
देवं त्वष्टर्भूरि ते सꣳ समेतु
सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति ।
देवत्रा यन्तमवसे सखायः
अनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

॥ १७ ॥ (वा० य० २०।४४)

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णे
अपाको चिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता
मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ ४४ ॥

॥ १८ ॥ (वा० य० २२।२०)

त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा
त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा ॥ २० ॥

॥ १९ ॥ (वा० य० २४।४, ३४)

प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः ४
त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीः ॥ ३४ ॥

॥ २० ॥ (वा० य० २९।५)

त्वष्टर्देशमी ॥ ५ ॥

(५७६७)

॥ ११ ॥ (वा० य० २६।२४)

अग्ने॑ वह न॒ः सु॒हवा॒ आ हि गन्त॑न
नि ब॒र्हिषि॑ सदत॒ना रणि॑ष्टन ।
अथा॑ मदस्व जुजुषा॒णो अन्ध॑सः
त्वष्ट॑र्दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः सु॒मद्ग॑णः ॥ २४ ॥

॥ १२ ॥ (वा० य० २७।२०)

तन्न॑स्तुरीप॒मद्भु॑तं पुरु॒क्षु त्वष्टा॑ सु॒वीर्य॑म् ।
रा॒यस्पोषं॒ विष्य॑तु नाभि॑म॒स्मे ॥ २० ॥

॥ १३ ॥ (वा० य० २९।९, ३४)

त्वष्टा॑ वी॒रं दे॒वका॑मं जजान॒
त्वष्टु॒रर्वा॑ जायत आ॒शुरश्व॑ः ।
त्वष्टे॒दं विश्वं॒ भुव॑नं जजान
ब॒होः क॒र्तार॑मि॒ह य॑क्षि होतः ॥ ९ ॥
य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी जनि॑त्री
रू॒पैरपि॑ꣳशद्भुव॑नानि॒ विश्वा॑
तम॒द्य हो॑तरिषि॒तो यजी॑यान्
दे॒वं त्वष्टा॑रमि॒ह य॑क्षि वि॒द्वान् ॥ ३४ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० ३।३१।५)

ब्रह्मा । विराट् प्रस्तारपंक्तिः ।

त्वष्टा॑ दुहि॒त्रे व॑ह॒तुं यु॑नक्ति
इती॒दं विश्वं॒ भुव॑नं॒ वि या॑ति ।
व्य॑१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥ ५ ॥

॥ २५ ॥ (अथर्व० ५।२५।११)

ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

त्वष्ट॒ः श्रेष्ठे॑न रू॒पेणा॒स्या नार्या॑ गवी॒न्योः ।
पुमां॑सं पु॒त्रमा धे॑हि दश॒मे मा॒सि सूत॑वे ॥ ११ ॥

॥ २६ ॥ (अथर्व० ५।२६।८)

ब्रह्मा । द्विपदा प्राजापत्या बृहती ।

त्वष्टा॑ युनक्तु बहु॒धा नु रू॒पा
अ॒स्मिन्य॒ज्ञे यु॒नक्तु॑ स्वा॒हा ॥ ८ ॥

॥ २७ ॥ (अथर्व० ६।७८।३)

अथर्वा । अनुष्टुप् ।

त्वष्टा॑ जा॒याम॑जनय॒त्त्वष्टा॑स्यै त्वां पति॑म् ।
त्वष्टा॑ स॒हस्र॒मायूं॑षि दी॒र्घमायु॑ः कृणोतु वाम् ॥३॥

॥ २८ ॥ (अथर्व० ६।८१।३)

अथर्वा । अनुष्टुप् ।

यं परि॑हस्त॒मबि॑भ॒रदि॑तिः पुत्रका॒म्या ।
त्वष्टा॒ तम॑स्या॒ आ ब॑ध्ना॒द्यथा॑ पु॒त्रं जना॒दिति॑ ॥३॥

॥ २९ ॥ (अथर्व० १८।१।५३)

अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

त्वष्टा॑ दुहि॒त्रे व॑ह॒तुं कृ॑णोति
तेने॒दं विश्वं॒ भुव॑नं॒ समे॑ति ।
य॒मस्य॑ मा॒ता प॑र्यु॒ह्यमा॑ना
म॒हो जा॒या विव॑स्वतो ननाश ॥ ५३ ॥

सहचारी--देवगणः

(१) विष्णुत्वष्टृप्रजापतिधातारः ।

॥ ३० ॥ (ऋ० १०।१८४।१)

विष्णु॒र्योनिं॑ कल्पयतु॒ त्वष्टा॑ रू॒पाणि॑ पिंशतु ।
आ सि॑ञ्चतु प्र॒जाप॑तिर्धा॒ता गर्भं॑ दधातु ते ॥ १ ॥

(२) धातृसवितृप्रजापत्यग्नित्वष्टृविष्णवः ।

॥ ३१ ॥ (वा० य० ८।१७)

धा॒ता रा॒तिः स॑वि॒तेदं जु॑षन्तां
प्र॒जाप॑तिर्नि॒धिपा॑ दे॒वो अ॒ग्निः ।
त्वष्टा॒ विष्णु॑ः प्र॒जया॑ सꣳररा॒णा
यज॑माना॒य द्रवि॑णं दधात॒ स्वाहा॑ ॥ १७ ॥

(३) सवितृत्वष्टृपूषादयः ।

॥ ३२ ॥ (वा० य० १०।३०)

स॒वि॒त्रा प्र॑सवि॒त्रा सर॑स्वत्या वा॒चा
त्वष्ट्रा॑ रू॒पैः पू॒ष्णा प॒शुभि॒रिन्द्रे॑णा॒स्मे
बृह॒स्पति॑ना॒ ब्रह्म॑णा॒ वरु॑णे॒नौज॑सा
अ॒ग्निना॒ तेज॑सा॒ सोमे॑न॒ राज्ञा॒ विष्णु॑ना दश॒म्या
दे॒वत॑या प्रसू॒तः प्र स॑र्पामि ॥ ३० ॥

(४) त्वष्टेन्द्राग्नी ।

॥ ३३ ॥ (वा० य० २१।२०

त्वष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।
द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ २० ॥

(५) त्वष्टृपर्जन्यब्रह्मणस्पत्यदितयः ।

॥ ३४ ॥ (साम० ७९९)

त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु
नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥ ७ ॥

(६) इन्द्रत्वष्टादितिधातृसवितारः ।

॥ ३५ ॥ (अथर्व० ३।८।२)
अथर्वा । जगती ।

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां
इन्द्रस्त्वष्टा प्रतिहर्यन्तु मे वचः ।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां
सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ॥ २ ॥

(७) वायुस्त्वष्टा

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ३।२०।१०)
वसिष्ठ । अनुष्टुप् ।

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०॥

(८) अश्विनावुषासानक्तापांनपात्त्वष्टा

॥३७॥ (अथर्व० ६।३।३)
अथर्वा । जगती ।

पातां नो देवाश्विना शुभस्पती
उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।
अपां नपादभिहुती गयस्य चिद्
देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥ ३ ॥

(९) मरुतः त्वष्टा

॥ ३८ ॥ (अथर्व० ६।९२।१)
अथर्वा । जगती ।

वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान
इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युंजन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस
आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥ १ ॥

(१०) अग्निस्त्वष्टा विष्णुः ।

॥ ३९ ॥ (अथर्व० ७।१७।४)
भृगु । त्रिष्टुप् ।

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां
प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो
यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ ४ ॥

(११) त्वष्टृसवितारौ ।

॥ ४० ॥ (अथर्व० १८।१।५)
अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कः
देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्रमिनन्ति व्रतानि
वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

(१२) त्वष्टा, यमः ।

॥ ४१ ॥ (अथर्व० १८।१।५३)
अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति
तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना
महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ ५३ ॥

(१३) इन्द्रवस्वादित्यवरुणरुद्रत्वष्ट्रग्नयः ।

॥ ४२ ॥ (अथर्व० १९।१०।६)
वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु
शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः
शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥



लघु उद्योग-मंत्री

ऋभवः

॥ १ ॥ (ऋ० १।२०।१-८)
मेधातिथि काण्वः । गायत्री ।

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया ।
अकारि रत्नधातमः ॥ १ ॥
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी ।
शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥
तक्षन् नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् ।
तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ।
ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥
सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता ।
आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥
उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् ।
अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥
ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते ।
एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥
अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया ।
भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।११०।१-९)
कुत्स आङ्गिरस । जगती, ५,९ त्रिष्टुप् ।

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः
स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः
स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥ १ ॥
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतन
अपाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमना
अगच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥
तत् सविता वोऽमृतत्वमाऽसुवत्
अगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणं
एकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो
मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः
संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥
क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ
एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना
अमर्त्येषु श्रव इच्छमाना ॥ ५ ॥
आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः
स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर
ऋभवो वाजमरुहन् दिवो रजः ॥ ६ ॥

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयान्
ऋभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाऽहनि प्रियेऽ
अभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७ ॥

निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत
सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो
जिव्री युवाना पितराऽकृणोतन ॥ ८ ॥

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्
ऋभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१११।१-५)

जगती ५ त्रिष्टुप् ।

तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनाऽपसः
तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद्वयः
तक्षन् वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १ ॥

आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः
क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा
तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २ ॥

आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः
सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा
जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥

ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय
ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना
ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४ ॥

ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं
समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१६१।१-१४)

दीर्घतमा औचथ्यः । १-१३ जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आऽजगन्
किमीयते दूत्यं१ कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलो
ऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥

एकं चमसं चतुरः कृणोतन
तद्वो देवा अब्रुवन् तद्व आऽगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ
साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतन
अश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा
तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥

चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत
क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आऽजगन् ।
यदाऽवाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतान्
आदित् त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीत्
चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ
अन्यैरेनान् कन्या१ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं
बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत
स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥

निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः
या जरन्ता युवशा ताऽकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत
युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ७ ॥

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतन
इदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ
तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीत्
अग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीत्
ऋता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥

श्रोणामेक उदकं गामवाजति
मांसमेकः पिंशति सूनयाऽऽभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्
किं स्वित् पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥ १० ॥

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं
निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे
तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥

संमील्य यद्भुवना पर्यसर्पत
क्व स्वित् तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे
यः प्राब्रवीत् प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥ १२ ॥

सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छत
अगोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्
संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्निः
अयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैः
युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० ३।६०।१-४)
विश्वामित्रो गाथिनः । जगती ।

इहेह वो मनसा बन्धुता नर
उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः
सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥ १ ॥

याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत
यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत
तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥

इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुः
मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे
विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥ ३ ॥

इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ
अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः
सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥ ४ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ४।३३।१-११)
वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य
उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः
परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥ १ ॥

यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां
परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्
धीरासः पुष्टिमवहन् मनायै ॥ २ ॥

पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना
सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो
मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥ ३ ॥

यत् संवत्समृभवो गामरक्षन्
यत् संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत् संवत्समभरन् भासो अस्याः
ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥ ४ ॥

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति
कनीयान् त्रीन् कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति
त्वष्ट ऋभवस्तत् पनयद्वचो वः ॥ ५ ॥

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुः
अनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेव
अवेनत् त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥ ६ ॥

द्वादश द्यून् यदगोह्यस्य
आतिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्
धन्वाऽतिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥ ७ ॥

रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां
ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः
स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥ ८ ॥

अपो ह्येषामजुषन्त देवा
अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत् सुकर्मा
इन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥ ९ ॥

ये हरी मेधयोक्था मदन्त
इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे
धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥ १० ॥

इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुः
न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि
तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥ ११ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ४।३४।१-११)

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छा
इमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्ना
अधात् पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥ १ ॥

विदानासो जन्मनो वाजरत्ना
उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरंधिः
सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥ २ ॥

अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि
यमा मनुष्वत् प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुः
अभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥ ३ ॥

अभूदु वो विधते रत्नधेयं
इदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो
महि तृतीयं सवनं मदाय ॥ ४ ॥

आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा
महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नां
इमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥ ५ ॥

आ नपातः शवसो यातनोप
इमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ
मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥ ६ ॥

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं
सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा
ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥ ७ ॥
सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं
सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा
सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥ ८ ॥
ये अश्विना ये पितरा य ऊती
धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये
विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ९ ॥
ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं
रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना
अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥ १० ॥
नापाभूत न वोऽतीतृषाम
अनिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन्।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः
सं राजभी रत्नधेयाय देवाः ॥ ११ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ४।३५।१-९)

इहोप यात शवसो नपातः
सौधन्वना ऋभवो माऽप भूत।
अस्मिन् हि वः सवने रत्नधेयं
गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥ १ ॥
आऽगन्नृभूणामिह रत्नधेयं
अभूत् सोमस्य सुषुतस्य पीतिः।
सुकृत्यया यत् स्वपस्यया च
एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥ २ ॥
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा
सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां
गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥ ३ ॥
किंमयः स्विच्चमस एष आस
यं काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय
पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥ ४ ॥
शच्याकर्त पितरा युवाना
शच्याकर्त चमसं देवपानम्।
शच्या हरी धनुतरावतष्ट
इन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥
यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां
तीव्रं वाजासः सवनं मदाय।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरं
आ तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥
प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व
माध्यंदिनं सवनं केवलं ते।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः
सखीँर्याँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥ ७ ॥
ये देवासो अभवता सुकृत्या
श्येना इवेदधि दिवि निषेद।
ते रत्नं धात शवसो नपातः
सौधन्वना अभवतामृतासः ॥ ८ ॥
यत् तृतीयं सवनं रत्नधेयं
अकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्
सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥ ९ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ४।३६।१-९)
जगती; ९ त्रिष्टुप्।

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो
रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः।
महत् तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं
द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥ १ ॥

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसो
अविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
तॉं ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय
आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥ २ ॥
तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं
देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत् सन्ता पितरा सनाजुरा
पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥ ३ ॥
एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश
श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥ ४ ॥
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो
वाजश्रुतासो यमजीजनन् नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो
यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥ ५ ॥
स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया
स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे
यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥ ६ ॥
श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं
स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितः
तान् व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥ ७ ॥
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि
विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तमं
आ नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥
इह प्रजामिह रयिं रराणा
इह श्रवो वीरवत् तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्
तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥ ९ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ४।३७।१-८)
त्रिष्टुप्; ५-८ अनुष्टुप् ।

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा
देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३सु
दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ १ ॥
ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा
जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः
क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥ २ ॥
त्र्युदायं देवहितं यथा वः
स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु
युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥
पीवोअश्वाः शुचद्रथा हि भूत
अयःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातो
अनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥ ५ ॥
सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ६
वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ७
तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥ ८ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ७।४८।१-४)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः [४ विश्वे देवा वा] । त्रिष्टुप् ।

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वं
अस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां
विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ १ ॥

ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम
विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसातौ
इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥ २ ॥
ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा
विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन्।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः
शत्रोर्मिथत्या कृणवन् वि नृम्णम् ॥ ३ ॥
नू देवासो वरिवः कर्तना नो
भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः।
समस्मे इषं वसवो ददीरन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० १०।१७६।१)
सूनुरार्भवः। अनुष्टुप्।

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना।
क्षामा ये विश्वधायसो ऽश्नन् धेनुं न मातरम् ॥१॥

॥ १३ ॥ (वा० य० १४।२६)

ऋभूणां भागोऽसि ॥ २६ ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० २१।२६)

शारदेन ऋतुना देवा एकविंश ऋभवं स्तुताः।
वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२६॥

॥ १५ ॥ (वा० य० ३०।१५)

ऋभुभ्योऽजिनसन्धम्। ॥ १५ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० ३८।८)

सवित्रे त्वं ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा ॥८॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ६।१।११)
अथर्वा। अनुष्टुप्।

यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ ११ ॥

तार्क्ष्यः

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१७८।१-३)
अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः। त्रिष्टुप्।

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं
सहावानं तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं
स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥
इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः
स्वस्तये नावमिवा रुहेम।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे
मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम ॥ २ ॥
सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः
सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिः
न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ॥ ३ ॥

सहचारी-देवगणः

(१) इन्द्रपूषतार्क्ष्यबृहस्पतयः।

॥ १ ॥ (ऋ. १।८९।६)
गोतमो राहूगणः। विराट् स्थाना।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥



सागर-विभाग

सागरमंत्री

वरुणः

॥ १ ॥ (ऋ० १।२४।६-१५)

शुनःशेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः।
त्रिष्टुप्।

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं
वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीः
न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥ ६ ॥

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्य
ऊर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषां
अस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥ ७ ॥

उरुं हि राजा वरुणश्चकार
सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रति धातवेऽकः
उतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८ ॥

शतं ते राजन् भिषजः सहस्रं
उर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः
कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ९ ॥

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा
नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि
विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥ १० ॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः
तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोधि
उरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ ११ ॥

तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुः
तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः
सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥ १२ ॥

शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतः
त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्
विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥

अव ते हेळो वरुण नमोभि-
रव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता
राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ १४ ॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्
अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तव
अनागसो अदितये स्याम ॥ १५ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।२५।१-२१) गायत्री ।

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः ।
मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥
वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम् ।
गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३ ॥
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये ।
वयो न वसतीरुप ॥ ४ ॥
कदा क्षत्रश्रियं नर—मा वरुणं करामहे ।
मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥
तदित् समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।
धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥
वेदा यो वीनां पद—मन्तरिक्षेण पतताम् ।
वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ।
वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥
वेद वातस्य वर्तनि—मुरोर्ऋष्वस्य बृहतः ।
वेदा ये अध्यासते ॥ ९ ॥
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥
अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति ।
कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥
स नो विश्वाहा सुक्रतु—रादित्यः सुपथा करत् ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १२ ॥
बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।
परि स्पशो नि षेदिरे ॥ १३ ॥
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।
न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।
अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥
परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु ।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥ १६ ॥
सं नु वोचावहै पुन—र्यतो मे मध्वाभृतम् ।
होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥
दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि ।
एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ॥
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि ।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत ।
अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० २।२८।१-११)
कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । (१० दुःस्वप्ननाशिनी) ।
त्रिष्टुप् ।

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो
विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः
सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥ १ ॥
तव व्रते सुभगासः स्याम
स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीना-
मग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥ २ ॥

तवं स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्
उरुशंसस्य वरुण प्रणेतः।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धाः
अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥ ३ ॥
प्र सीमादित्यो असृजद् विधर्ताँ
ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते
वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥ ४ ॥
वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग
ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे
मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥ ५ ॥
अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं
मत् सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय।
दामेव वत्साद् वि मुमुग्ध्यंहो
नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ ६ ॥
मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टा
एनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म
वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥ ७ ॥
नमः पुरा ते वरुणोत नूनं
उतापरं तुविजात ब्रवाम।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितानि
अप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥ ८ ॥
पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि
माऽहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास
आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ॥ ९ ॥
यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा
स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा
त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥ १० ॥
माऽहं मघोनो वरुण प्रियस्य
भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्सुयमादव स्थां
बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ११ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० ५।८५।१-८)
अत्रिर्भौमः। त्रिष्टुप्।

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं
ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय।
वि यो जघान शमितेव चर्म
उपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १ ॥
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान
वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं
दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ २ ॥
नीचीनबारं वरुणः कवन्धं
प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा
यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ ३ ॥
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां
यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित्।
समभ्रेण वसत पर्वतासः
तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥ ४ ॥
इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य
महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम्।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे
वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ ५ ॥
इमामू नु कवितमस्य मायां
महीं देवस्य नकिरा दधर्ष।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीः
आसिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ ६ ॥

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा
सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा
यत् सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥ ७ ॥
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि
यद् वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देव
अधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥ ८ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० ७।८६।१-८)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि
वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं
द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥ १ ॥
उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्
कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत
कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥ २ ॥
पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षु
उपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुः
अयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥ ३ ॥
किमाग आस वरुण ज्येष्ठं
यत् स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावो
अव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥ ४ ॥
अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नो
अव या वयं चकृमा तनूभिः ।
अव राजन् पशुतृपं न तायुं
सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥ ५ ॥
न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा
सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे
स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥ ६ ॥
अरं दासो न मीळ्हुषे कराणि
अहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो
गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥
अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो
हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ७।८७।१-७)

रदत् पथो वरुणः सूर्याय
प्राणांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायन्
चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥
आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्
पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे
विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥ २ ॥
परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा
उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः
प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥ ३ ॥
उवाच मे वरुणो मेधिराय
त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान् पदस्य गुह्या न वोचत्
युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥
तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्
तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं
दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥ ५ ॥

अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद्
द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः
सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥ ६ ॥

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो
वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ७।८८।१-७) [पापविमोचनी] ।

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां
मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं
सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥ १ ॥

अधा न्वस्य संदृशं जगन्वान्
अग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्व१र्यदश्मन्नधिपा उ अन्धो
अभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥ २ ॥

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं
प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव
प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥ ३ ॥

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधाद्
ऋषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां
यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः ॥ ४ ॥

क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः
सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः
सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ ५ ॥

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्
त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम
यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥ ६ ॥

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो
व्य१स्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ७।८९।१-५)
गायत्री, ५ जगती ।

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ १ ॥

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २ ॥

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ३ ॥

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ४ ॥

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जने
अभिद्रोहं मनुष्या३श्चरामसि ।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम
मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ५ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ८।४१।१-१०)
नाभाकः काण्वः । महापङ्क्तिः ।

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्यो
अर्चा विदुष्टरेभ्यः ।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गा इव रक्षति
नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः ।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये
सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

स क्षपः परि षस्वजे न्युस्रो मायया दधे
स विश्वं परि दर्शतः ।
तस्य वेनीरनु व्रत—मुषस्तिस्रो अवर्धयन्
नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥
यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।
स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं
स हि गोपाइवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या ३
वेद नामानि गुह्या ।
स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति
नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥
यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता ।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे
युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥
य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम् ।
परि धामानि मर्मृशद् वरुणस्य पुरो गये
विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥
स समुद्रो अपीच्य—स्तुरो द्यामिव रोहति
नि यदासु यजुर्दधे ।
स माया अर्चिना पदा ऽस्तृणान्नाकमारुहत्
नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥
यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः ।
त्रिरुत्तराणि पप्रतु—र्वरुणस्य ध्रुवं सदः
स सप्तानामिरज्यति नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥
यः श्वेताँ अधिनिर्णिज—श्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता ।
स धाम पूर्व्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी
अजो न द्यामधारय—न्नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ८।४२।१-३)

नाभाकः काण्वः, अर्चनाना आत्रेयो वा। त्रिष्टुप्।

अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा
अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद् विश्वा भुवनानि सम्राड्
विश्वेत् तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ १ ॥
एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं
नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्
पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥ २ ॥
इमां धियं शिक्षमाणस्य देव
क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम
सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ८।६९।११ उत्तरार्धस्य १२)

प्रियमेध आङ्गिरसः । पंक्तिः ।

वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत
वत्सं संशिश्वरीरिव (उत्तरार्ध.) ॥ ११ ॥
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ १२ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० १०।१२४।५,७-८)

अग्नि-वरुण-सोमाः । त्रिष्टुप्, ७ जगती ।

निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्
त्वं च मा वरुण कामयासे ।
ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्
मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ॥ ५ ॥
कविः कवित्वा दिवि रूपमासजत्
अप्रभूती वरुणो निरपः सृजत् ।
क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धवः
ता अस्य वर्णं शुचयो भरिभ्रति ॥ ७ ॥
ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं सचन्ते
ता ईमा क्षेति स्वधया मदन्तीः ।
ता ईं विशो न राजानं वृणाना
बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन् ॥ ८ ॥

(५९८)

॥ १३ ॥ (वा० य० ४।३६)

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो
वरुणस्य ऋतसदन्यसि ।
वरुणस्य ऋतसदनमसि
वरुणस्य ऋतसदनमा सीद ॥ ३६ ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० ८।२३ [तृ. च.] ।)

नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥ २३ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० १०।७)

सधमादो द्युम्निनीराप एता
अनाधृष्टा अपस्यो वसानाः ।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थं
अपाꣳ शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥ ७ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० १०।७१-७१)

सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे ।
आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥
विश्वा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ३ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० १।१०।१-४)

१-२ त्रिष्टुप् , ३ ककुम्मती अनुष्टुप् , ४ अनुष्टुप् ।

अयं देवानामसुरो वि राजति
वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान
उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ १ ॥
नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे
विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं
शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥ २ ॥
यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु ।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥ ३ ॥
मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ॥ ४ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० १।२०।३) अनुष्टुप् ।

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ३ ॥

॥ २० ॥ (अथर्व० ४।१५।१२)

पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा भुरिक् ।

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु
गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥ १२ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्व० ५।११।१-११)

(प्रश्नोत्तरम्) । त्रिष्टुप् , ९ भुरिक् , ३ पङ्क्तिः , ६ पञ्चपदा अतिशक्वरी, ११ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टिः ।

कथं महे असुरायाब्रवीरिह
कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः ।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान्
पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥ १ ॥
न कामेन पुनर्मघो भवामि
सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन
केन जातेनासि जातवेदाः ॥ २ ॥
सत्यमहं गभीरः काव्येन
सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा
व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥ ३ ॥
न त्वदन्यः कवितरो न मेधया
धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ
स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥ ४ ॥

त्वं ह्य१ङ्ग वरुण स्वधावन्
विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्ति
एना किं परेणावरममुर ॥ ५ ॥

एकं रजस एना परो अन्यदस्ति
एना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् ।
तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीमि
अधोवचसः पणयो भवन्तु
नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥ ६ ॥

त्वं ह्य१ङ्ग वरुण ब्रवीषि
पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणीँरभ्ये१तावतो भूत्
मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥ ७ ॥

मा मा वोचन्नराधसं जनासः
पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि ।
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिः
अन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥ ८ ॥

आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्तु
अन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो
असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥ ९ ॥

समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा
वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा ।
ददामि तद्यत्ते अदत्तो
अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखासि ॥ १० ॥

देवो देवाय गृणते वयोधा
विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्
अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं
सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्व० ५।२४।४)

चतुष्पदाऽतिशक्वरी ।

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां
पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यां
अस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ४ ॥

॥ २२ ॥ (अथर्व० ५।१।१-९)

बृहद्दिवोऽथर्वा । त्रिष्टुप्, ५ पराबृहती त्रिष्टुप्, ७ विराट्,
९ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टिः ।

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूव
अमृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव
त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥ १ ॥

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद
ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा
यो वाचमनुदितां चिकेत ॥ २ ॥

यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच
क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
अत्रा दधेते अमृतानि नाम
अस्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥ ३ ॥

प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः
सदःसदः आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे
जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥ ४ ॥

तद् षु ते महत् पृथुज्मन्नमः
कविः काव्येना कृणोमि ।
यत् सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षां
अत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥ ५ ॥
(१०१७)

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः
तासामिदेकामभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥ ६ ॥

उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्
असुरात्मा तन्वस्तत्सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्नं दधाति
ऊर्जया वा यत् सचते हविर्दाः ॥ ७ ॥

उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे
ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये ।
दर्शन्नु ता वरुण यास्ते विष्ठा
आवर्वततः कृणवो वपूंषि ॥ ८ ॥

अर्धमर्धेन पयसा पृणक्षि
अर्धेन शुष्म वर्धसे असुर ।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं
वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् ।
कविशस्तान्यस्मै वपूंषि
अवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥ ९ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० ५।२।१-९)

त्रिष्टुप्, ९ भुरिक्परातिजगता त्रिष्टुप् ।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं
यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून्
अनु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ १ ॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः
शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि
सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि
द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा
समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ३ ॥

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं
रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व
मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥ ४ ॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु
प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः
सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ५ ॥

नि तद्दधिषेऽवरे परे च
यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुं
अत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ६ ॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं
समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः
प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ ७ ॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवद्
इन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा
तुरश्चिद्विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ८ ॥

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वा
अवोचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे
हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥ ९ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० १।१४।१-४)

भृग्वङ्गिराः । यमो (वा)। अनुष्टुप्, १ ककुम्मती अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद्विराट् ।

भगमस्या वर्च आदिष्याधि वृक्षादिव स्रजम् ।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥ १ ॥

एषा ते राजन् कन्या॒ऽवधूर्नि धूयतां यम ।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥ २ ॥
एषा ते कुलपा राजन्तामु ते परि दद्मसि ।
ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥ ३ ॥
असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।
अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥४॥

॥ २६ ॥ (अथर्व० ४।१६।१-९)

ब्रह्मा। वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम् । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ५ भुरिक्, ७ जगती, ८ त्रिपान्महाबृहती, ९ विराण्नाम त्रिपाद्गायत्री ।

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥ १ ॥
यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते
राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥ २ ॥
उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ
उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी
उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥ ३ ॥
उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तात्
न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य
सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४ ॥
सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे
यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानां
अक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥ ५ ॥
ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त
त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं
यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥ ६ ॥
शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं
मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा
कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥ ७ ॥
यः समाम्यो३ वरुणो यो व्याम्यो३
यः संदेश्यो३ वरुणो यो विदेश्यः ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥ ८ ॥
तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैः
असावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥ ९ ॥

॥ २७ ॥ (अथर्व० ४।४०।३)

शुक्रः। त्रिष्टुप् ।

ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः
प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां
प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ३ ॥

॥ २८ ॥ (अथर्व० १०।५।१०)

सिन्धुद्वीपः । त्र्यवसाना पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहती ।

वरुणस्य भाग स्थ ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १० ॥

वरुण-सहचारी-देवगणः

(१) इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः ।

॥ २९ ॥ (ऋ. १।२२।१२)

मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये ।
अग्नायीं सोमपीतये ॥ १२ ॥
(१०८१)

(२) वरुणमित्रार्यमणः ।

॥ ३० ॥ (ऋ० १।४१।१-३, ७-९)

काण्वो घोरः । गायत्री ।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नू चित् स दभ्यते जनः ॥ १ ॥
यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः ।
अरिष्टः सर्व एधते ॥ २ ॥
वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम् ।
नयन्ति दुरिता तिरः ॥ ३ ॥
कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः ।
महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् ।
सुम्नैरिद् व आ विवासे ॥ ८ ॥
चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयादा निधातोः ।
न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥

मनः

॥ १ ॥ (वा० य० ३।५३-५५)

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन ।
पितॄणां च मन्मभिः ॥ ५३ ॥
आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ५४ ॥
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।
जीवं व्रातं सचेमहि ॥ ५५ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ३४।१-६)

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १ ॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥
यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३ ॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥
यस्मिन्नृचः साम यजूंषि
यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ५ ॥

सुपारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत् प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० २।३०।१)
प्रजापतिः । पथ्यापंक्तिः ।

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति ।
एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो
यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।१२।४)
शौनकः । अनुष्टुप् ।

यद्वो मनः परागतं यद्बद्धमिह वेह वा ।
तद् आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ७।३६।१)
अथर्वा । अक्षि, मनः । अनुष्टुप् ।

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥ १ ॥

मन आवर्तनम्

॥ १ ॥ (ऋ० १०।५८।१-१२)
बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । अनुष्टुप् ।

यत् ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १ ॥
यत् ते दिवं यत् पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ २ ॥
यत् ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ३ ॥
यत् ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ४ ॥
यत् ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ५ ॥
यत् ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ६ ॥
यत् ते अपो यदोषधीः मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ७ ॥
यत् ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ८ ॥
यत् ते पर्वतान् बृहतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ९ ॥
यत् ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १० ॥
यत् ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ११ ॥
यत् ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १२ ॥
(६०३१)



कृषि-मंत्री

पर्जन्यः

॥ १ ॥ (ऋ० ५।४२।१३-१४)

भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप् ।

प्र सु महे सुशरणाय मेधां
गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु
रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥ १३ ॥

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तम्
इळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति
प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥ १४ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ५।८३।१-१०)

भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप्; २-४ जगती; ९ अनुष्टुप् ।

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः
स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू
रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो
विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो
यत् पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥ २ ॥

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्
आविर्दूतान् कृणुते वर्ष्याँ अह ।
दूरात् सिंहस्य स्तनथा उदीरते
यत् पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥ ३ ॥

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत
उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते
यत् पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥ ४ ॥

यस्य व्रते पृथिवी नंनमीति
यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः
स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ५ ॥

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं
प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥ ६ ॥

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धाः
उदन्वता परि दीया रथेन
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं
समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥ ७ ॥
महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च
स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि
सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥ ८ ॥
यत् पर्जन्य कनिक्रदत्
स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते
यत् किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥
अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभाय
अकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय
कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० ७।१०१।१-६)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, (वृष्टिकामः) कुमार आग्नेयो वा ।
त्रिष्टुप् ।

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा
या एतद् दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां
सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥
यो वर्धन ओषधीनां यो अपां
यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्
त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्य१स्मे ॥ २ ॥
स्तरीरु त्वद् भवति सूत उ त्वद्
यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता
तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥ ३ ॥
यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः
तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो
मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ४ ॥
इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे
हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे
सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥ ५ ॥
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां
तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० ७।१०२।१-३)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, (वृष्टिकामः) कुमार आग्नेयो वा । गायत्री;
२ पादनिचृत् ।

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे ।
स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥
यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् ।
पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥
तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् ।
इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० १।२।१)
अथर्वा । अनुष्टुप् ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥ १ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० १।३।१)
अथर्वा । पथ्यापङ्क्तिः ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ १ ॥

(६०९९)

॥ ७ ॥ (अथर्व० ३।३१।११)
ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।
आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ११ ॥

सहचारी देवगणः

(१) मण्डूकाः (पर्जन्यः)

॥ ८ ॥ (ऋ० ७।१०३।१-१०)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ; १ अनुष्टुप् ।
संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥
दिव्या आपो अभि यदेनमायन्
दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां
मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ २ ॥
यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्
तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो
अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥ ३ ॥
अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनो:
अपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्
पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥ ४ ॥
यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं
शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व
यत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ ५ ॥
गोमायुरेको अजमायुरेकः
पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः
पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥ ६ ॥
ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे
सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ
यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥ ७ ॥
ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत
ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना:
आविर्भवन्ति गुह्या न केचित् ॥ ८ ॥
देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य
ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां
तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९ ॥
गोमायुरदादजमायुरदात्
पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।
गवां मण्डूका ददतः शतानि
सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ १० ॥

(२) वातसूर्यपर्जन्याः

॥ ९ ॥ (वा० य० ३६।१०)
शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥ १० ॥

(३) पर्वतवातपर्जन्यास्त्रयः

॥ १० ॥ (अथर्व० ३।२१।१०)
वसिष्ठः । अनुष्टुप् ।
ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥ १० ॥

(४) मरुत्पर्जन्यौ

॥ ११ ॥ (अथर्व० ४।१५।४)
अथर्वा । विराट् पुरस्ताद्बृहती ।
गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः
पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ४ ॥

(५) विश्वेदेवाः मरुतः अग्नीषोमौ वरुणः वातपर्जन्यौ।

॥ १२ ॥ (अथर्व० ६।९३।३)

शन्तातिः। त्रिष्टुप्।

त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधात्
विश्वेदेवा मरुतो विश्ववेदसः।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा
वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥ ३ ॥

(६) पृथिवी पर्जन्यः

॥ १३ ॥ (अथर्व० ७।१८।१-२)

अथर्वा। चतुष्पाद् भुरिगुष्णिक्; २ त्रिष्टुप्।

प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धी३दं दिव्यं नभः।
उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् ॥१॥
न घ्रंस्ततापं न हिमो जघान
प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः।
आपश्चिदस्मै घृतमित्क्षरन्ति
यत्र सोमः सदमित्तत्र भद्रम् ॥ २ ॥

(७) वातपर्जन्यान्तरिक्षदिशः

॥ १४ ॥ (अथर्व० ११।६।६)

शन्तातिः। अनुष्टुप्।

वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

(८) सवितृ-उषः-पर्जन्याः

॥ १५ ॥ (अथर्व० १९।१०।१०)

वसिष्ठः। त्रिष्टुप्।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः
शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः
शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ १० ॥

कृषिः।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।३४।१३)

कवष ऐलूषः, अक्षो मौजवान् वा। त्रिष्टुप्।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥ १३ ॥

शुनः, शुनासीरौ।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।५७।४-५,८)

वामदेवो गौतमः। ४ अनुष्टुप्, ५ पुर उष्णिक्, ८ त्रिष्टुप्।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ४ ॥
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥
शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं
शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः
शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥ ८ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० १२।६९)

शुनꣳ सु फाला वि कृषन्तु भूमिꣳ
शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनासीरा हविषा तोशमाना
सुपिप्पला ओषधीः कर्तनास्मे ॥ ६९ ॥

सीता।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।५७।६-७)

वामदेवो गौतमः। अनुष्टुप्।

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगाऽससि यथा नः सुफलाऽससि ॥

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाऽनु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहा मुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७॥

॥ २ ॥ (वा० य० १२।६७,६८,७०-७१)

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं
कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो
नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ६८ ॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां
विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना
स्मान्त्सीते पयसाऽभ्या ववृत्स्व ॥ ७० ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवं सोमपित्सरु ।
तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं
प्रस्थावद्रथवाहणम् ॥ ७१ ॥

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च ।
इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥
(६११०)





नद्यः

॥ १ ॥ (ऋ० ३।३३।१-५, ९, ११-१३)

गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

प्र पर्वतानामुशती उपस्थात्
अश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे
विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे
अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने
अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २ ॥

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं
विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे
समानं योनिमनु संचरन्ती ॥ ३ ॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना
अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः
किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय
ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा
अवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ ५ ॥

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत
ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा
अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥

यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुः
गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त
आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥ ११ ॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः सं
अभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा
आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥ १२ ॥

उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुंचत ।
मादुष्कृतौ व्येनसाऽघ्न्यौ शूनमारताम् ॥ १३ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ५।४३।१)

भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप् ।

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्थाः
अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो
मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥ १ ॥

(११४०)

॥ ३ ॥ (ऋ० ७।५०।४)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अतिजगती शक्वरी वा ।

याः प्रवतो निवत उद्वत
उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः
शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १०।७५।१–९)

सिन्धुक्षित् प्रैयमेधः । जगती ।

प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं
कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः
प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥ १ ॥
प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः
सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना
यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥ २ ॥
दिवि स्वनो यतते भूम्योपरि
अनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः
सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥ ३ ॥
अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो
वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित् सिचौ
यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥ ४ ॥
इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया
आर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ५ ॥
तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः
सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं
मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥ ६ ॥
ऋजीत्येनी रुशती महित्वा
परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमा
अश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥ ७ ॥
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा
हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावती
उताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥ ८ ॥
सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं
तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ ।
महान् ह्यस्य महिमा पनस्यते
अदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ॥ ९ ॥

(१) पुनश्चभूमिपर्वतसमुद्रनद्यः ।

॥ ५ ॥ (अथर्व० ११।६।१०)

शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १० ॥
(५१४१)



सरस्वती

॥ १ ॥ (ऋ० १।३।१०-१२)
मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१६४।४९)
दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूः
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः
सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४९ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० २।३०।८ पूर्वार्धः)
गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । त्रिष्टुप् ।

सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि
मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० २।४१।१६-१८)
गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । १६-१७ अनुष्टुप्, १८ बृहती ।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥
त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि
प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० ५।४३।११)
भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप् ।

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा
सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची
शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥ ११ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ६।४९।७)
ऋजिश्वा भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

पावीरवी कन्या चित्रायुः
सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा
दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ६।६१।१-१४)
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । गायत्री; १-३, १३ जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

इयमददाद् रभसमृणच्युतं
दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं
ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १ ॥

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय
प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो
विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते ।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि ।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः ।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः ।
अमश्चरति रोरुवत् ॥ ८ ॥

सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी ।
अतन्नहेव सूर्यः ॥ ९ ॥

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् ।
सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती ।
वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ १२ ॥

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते
द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृता
उपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो
माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च
मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥

॥८॥ (ऋ० ७।९५।१-२, ४-६)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा
सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति
विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥ १ ॥

एकाचेतत् सरस्वती नदीनां
शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेः
घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ २ ॥

उत स्या नः सरस्वती जुषाणा
उप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना
राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः
प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना
उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो
द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ७।९६।१-३)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। १-२ प्रगाथः (१ बृहती, २ सतो बृहती), ३ प्रस्तार पंक्तिः ।

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः
स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥

(६१८१)

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी
अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा
चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥
भद्रमिद् भद्रा कृणवत् सरस्वती
अकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवत्
स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १०।१७।७-९)
देवश्रवा यामायनः । त्रिष्टुप् ।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते
सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त
सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ७ ॥
सरस्वति या सरथं ययाथ
स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्व
अनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ८ ॥
सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते
दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं
रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥ ९ ॥

॥ १० ॥ (वा० य० ९।२०)

सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

॥ ११ ॥ (वा० य० १०।५, ३०)

सरस्वत्यै स्वाहा ॥ ५ ॥
सरस्वत्या वाचा मेयतया सर्वतः प्र सर्पामि ॥ ३० ॥

॥ १२ ॥ (वा० य० १९।९०)

अविर्न मेषो नसि वीर्याय
प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं
नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥

॥ १३ ॥ (वा० य० २२।२०)

सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा
सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा ॥ २० ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० २४।४)

ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः
शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णः ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० ३४।११)

पंच नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥ ११ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ५।७।४-५)
अथर्वा । ४ पथ्याबृहती; अनुष्टुप् ।

सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ४
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥ ५ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ६।४१।२)
ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥ २ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० ६।९४।१-२)
अथर्वाङ्गिराः । अनुष्टुप्; २ विराड् जगती ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि ॥१॥
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि
मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि
मम यातमनुवर्त्मान एत ॥ २ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० ७।११।१)
शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो
दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम् ।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं
मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥ १ ॥

॥ २० ॥ (अथर्व० ७।५७।१-२)
वामदेवः। जगती।

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे
यद्याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं
सरस्वती तदा पृणद्घृतेन ॥ १ ॥
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते
पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि ।
उभे इदस्योभे अस्य राजत
उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः ॥ २ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्व० ७।६८।१-३)
शन्तातिः। १ अनुष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३ गायत्री।

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ १ ॥
इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वति
इदं पितॄणां हविरास्यं१ यत् ।
इमानि त उदिता शंतमानि
तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥ २ ॥
शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ॥ ३ ॥

॥ २२ ॥ (अथर्व० १४।२।१५)
सूर्या सावित्री। भुरिक्।

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्रजायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५॥

सहचारी देवगणः

(१) सिनीवाली-राकेन्द्राणीवरुणानीसरस्वत्यः।

॥ २३ ॥ (ऋ० २।३२।८)
गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः। अनुष्टुप्।

या गुंगूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥

(२) सिनीवाली-सरस्वत्यश्विनः।

॥ २४ ॥ (ऋ० १०।१८४।२)
त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्यः। अनुष्टुप्।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ २ ॥

(३) अर्यमबृहस्पतीन्द्रवाग्विष्णुसरस्वतिसवितृ-वाजिनः।

॥ २५ ॥ (वा० य० ९।२७)

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वाचं विष्णुं सरस्वतीꣳ
सवितारं च वाजिनꣳ स्वाहा ॥ २७ ॥

(४) सरस्वत्यश्विनेन्द्राग्नयः।

॥ २६ ॥ (वा० य० १९।३३,३४,८०, ८१-८३,८८,९४)

यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु
सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन
सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

(५) सरस्वत्यश्विनः।

यमश्विना नमुचेरासुरादधि
सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं तं शुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳ
सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३४ ॥

(६) सवितृसरस्वत्यादयः।

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिणः
ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।
अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वती
इन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥ ८० ॥

(७) सरस्वत्यश्विनः।

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी
सरस्वती वयति पेशो अन्तरम् ।
अस्थि मज्जानं मासरैः
कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥ ८२ ॥

(३११९)

सरस्वती मनसा पेशलं वसु
नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं
नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ८३ ॥

मुखं सदस्य शिर इत् सतेन
जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती ।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो
वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥

(८) सरस्वतिवरुणेन्द्राश्विनः।

॥ १७ ॥ (वा० य० १९।९४)

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तः
अश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।
अपां रसेन वरुणो न साम्ना
इन्द्रं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४ ॥

(९) सरस्वत्यश्विनिन्द्राः।

॥ १८ ॥ (वा० य० २०।३५)

अश्विनकृतस्य ते सरस्वति कृतस्य
इन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य ।
उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

(१०) आदित्यभारतिसरस्वतिरुद्राः।

॥ १९ ॥ (वा० य० २१।८)

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं
सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् ।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा
यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥ ८ ॥

(११) सरस्वतीळादितयः।

॥ २० ॥ (वा० य० ३८।२, ४)

इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि ।
असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥ २ ॥

(१२) अश्विसरस्वतीन्द्राः।

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्व
इन्द्राय पिन्वस्व ।
स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥

(१३) अर्यमन्बृहस्पतीन्द्रवातविष्णुसरस्वातिसवितृवाजिनः।

॥ २१ ॥ (अथर्व० ३।२०।७)

वसिष्ठः । अनुष्टुप् ।

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७॥

(१४) अग्निसरस्वतिब्रह्मणस्पतयः।

॥ २२ ॥ (अथर्व० ४।४।६)

अथर्वा । भुरिक् ।

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥ ६ ॥

(१५) द्यावापृथिवी सरस्वती इन्द्राग्नी।

॥ २३ ॥ (अथर्व० ५।२३।१)

कण्वः । अनुष्टुप् ।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥१॥

(१६) वरुणसरस्वतीन्द्राः।

॥ २४ ॥ (अथर्व० ५।२१।६)

ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

यत्रेव राजा वरुणो यत्रा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद्गर्भकरणं पिब ॥ ६ ॥

(१७) द्यावापृथिविमायन्सोमसरस्वत्यग्नयः।

॥ २५ ॥ (अथर्व० ६।३।२)

पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये
पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती
पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ॥ २ ॥

(१८) द्यावापृथिवीसरस्वतीन्द्राग्नयः।

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ६।९४।३)
अथर्वांगिराः। अनुष्टुप्।

ओतें मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥ ३ ॥

(१९) सरस्वतिविश्वेदेवाः।

॥ ३७ ॥ (अथर्व० १९।११।२)
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु
शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः
शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ २ ॥

सरस्वान्

॥ १ ॥ (ऋ० ७।९५।३)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। त्रिष्टुप्।

स वावृधे नर्यो योषणासु
वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति
वि सातये तन्वं मामृजीत ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ७।९६।४–६)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। गायत्री।

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः।
सरस्वन्तं हवामहे ॥ ४ ॥
ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः।
तेभिर्नोऽविता भव ॥ ५ ॥
पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ७।४०।१–२)
प्रस्कण्वः। १ भुरिक्, २ त्रिष्टुप्।

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे
यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टः
तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥ १ ॥
आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं
सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम्।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना
इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥ २ ॥
(६११९)



जीवन–विभागः

जीवनमंत्री

वायुः

॥ १ ॥ (ऋ० १।२।१–३)

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । गायत्री ।

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः ।
सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे ।
उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।२३।१)

मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे ।
वायो तान् प्रस्थितान् पिब ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१३४।१–६)

परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टि, ६ अष्टिः ।

आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो
वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये
सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने
वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवो
अस्मत् क्राणासः सुकृता अभिद्यवो
गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय
उप ब्रुवत ईं धियः ॥ २ ॥

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा
वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे
वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः
श्रवसे वासयोषसः ॥ ३ ॥

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति
भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु
चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो
दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो
मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्य१पामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात् पासि धर्मणा
असुर्यात् पासि धर्मणा ॥ ५ ॥
त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः
सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत् ते धेनवो दुह्र आशिरं
घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१३५।१-३, ९) अत्यष्टिः ।

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये
सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्
मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥
तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः
स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति
शुक्रा वसानो अर्षति ।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयु१र्जुषाणो याह्यस्मयुः २
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं
सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये
वायो हव्यानि वीतये ।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत
वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥
धन्वच्युते (?) वनाद्वायो जीराश्विद्गिरीकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो
हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० २।४१।१-२)

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः ।
गायत्री ।

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ १ ॥
नियुत्वान् वायवा गह्य१यं शुक्रो अयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ४।४६।१)

वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु ।
त्वं हि पूर्वपा असि ॥ १ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ४।४७।१) अनुष्टुप् ।

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ४।४८।१-५) अनुष्टुप् ।

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥
निर्युवाणो अशस्ती१र्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥
अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ३ ॥
वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥
वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥ ५ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ५।४१।५)

स्वस्त्यात्रेयः । उष्णिक् ।

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये ।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ७।९०।१-४)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वां
अध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा
पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ १ ॥
ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट्
शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं
जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥ २ ॥
राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे
राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा
उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ ३ ॥
उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा
उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुः
तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥ ४ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ७।९१।१, ३)

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः
पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधिताय
अवासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥
पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः
श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुः
विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० ७।९२।१, २, ५)

आ वायो भूष शुचिपा उप नः
सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि
यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥
प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा
नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व
नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ ३ ॥
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं
सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्सवने मादयस्व
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ८।२६।२०-२५)
विश्वमना वैयश्वः, व्यश्वो वाङ्गिरसः । उष्णिक्, २० अनुष्टुप् ।
२१, २५ गायत्री ।

युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।
आन्नो वायो मधु पिबा–स्माकं सवना गहि ॥ २० ॥
तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत ।
अवांस्या वृणीमहे ॥ २१ ॥
त्वष्टुर्जामातरं वय–मीशानं राय ईमहे ।
सुतावन्तो वायुं द्युम्ना जनासः ॥ २२ ॥
वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम् ।
वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥ २३ ॥
त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे ।
ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥
स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः ।
कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० ८।४६।२५-२८, ३२)
वशोऽश्व्यः । २५-२८ प्रगाथः (बृहती + सतो बृहती),
३२ पङ्क्तिः ।

आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने
सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २५ ॥
(११३१)

यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्राः
त्रिः सप्त सप्ततीनाम् ।
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा
दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६ ॥
यो म इमं चिदु त्मना- मन्दच्चित्रं दावने ।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि
सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥ २७ ॥
उचथ्ये३ वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं
प्राज्म तदिदं नु तत् ॥ २८ ॥
शतं दासे बल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे ।
ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा
मदन्ति देवगोपाः ॥ ३२ ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० ८।१०।१६-१०)
जमदग्निर्भार्गवः । प्रगाथः - (विषमा बृहती+समा सतो बृहती) ।

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं
वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानो३
अयं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥
वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः
प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब
शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥ १० ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० १०।१६८।१-४)
अनिलो वातायन । त्रिष्टुप् ।

वातस्य नु महिमानं रथस्य
रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः ।
दिविस्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्
उतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् ॥ १ ॥
सं प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा
ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः ।
ताभिः सयुक् सरथं देव ईयते
अस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ २ ॥
अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो
न नि विशते कतमच्चनाहः ।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा
क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव ॥ ३ ॥
आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो
यथावशं चरति देव एषः ।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं
तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० १०।१८६।१-३)
उलो वातायन । गायत्री ।

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १ ॥
उत वात पिताऽसि न उत भ्रातोत नः सखा ।
स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥
यददो वात ते गृहे३ ऽमृतस्य निधिर्हितः ।
ततो नो देहि जीवसे ॥ ३ ॥

॥ १८ ॥ (वा० य० ५।१ [पूर्वार्धः])

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि
तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय ॥ ५ ॥

॥ १९ ॥ (वा० य० ६।१६)

वायो वे स्तोकानाम् ॥ १६ ॥

॥ २० ॥ (वा० य० ११।३९)

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु
उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् ।
यो देवानां चरसि प्राणथेन
कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

॥ २१ ॥ (वा० य० १४।८, ११, १४)

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि ॥ ८ ॥
(६१८९)

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं
यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय
व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
वायुष्ट्वाभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन
तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥
विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य
पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय
विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतया
अङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

॥ १२ ॥ (वा० य० १५।६४)

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं
दिवं यच्छ दिवं दृꣳह दिवं मा हिꣳसीः ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय
व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
सूर्यस्त्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन
तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

॥ १३ ॥ (वा० य० १८।४५)

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः
शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा
मारुतोऽसि मरुतां गणः ।
शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा
अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि
मा वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० १९।४२)

सोमपदभागी वायुः ।

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० २०।१५)

यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १५ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० २७।३१, ३३)

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् ।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ ३१ ॥
एकया च दशभिश्च स्वभूते
द्वाभ्यामिष्टये विꣳशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिꣳशता च
नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥ ३३ ॥

॥ १७ ॥ (वा० य० ३३।५५)

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा
बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः
कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ५५ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० २।१५।१-६)

ब्रह्मा । प्राणः, अपानः, आयुः । त्रिपाद्गायत्री ।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ १ ॥
यथाऽहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ २ ॥
यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ३ ॥
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ४ ॥
यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ५ ॥
यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ६ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० २।१६।१-५)

प्राणः । १, ३ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, २ एकपदासुरी उष्णिक्, ४-५ द्विपदासुरी गायत्री ।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥ २ ॥
सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥ ३ ॥
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥ ४ ॥
विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥ ५ ॥

॥ ३० ॥ (अथर्व० २।१७।१-७)
प्राणः । १-६ एकपादासुरी त्रिष्टुप् , ७ आसुरी उष्णिक् ।

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥ १ ॥
सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥ २ ॥
बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥ ३ ॥
आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥ ४ ॥
श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥ ५ ॥
चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥ ६ ॥
परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥ ७ ॥

॥ ३१ ॥ (अथर्व० १३।३।१२)
प्राजापत्यानुष्टुप् ।

स वै वायोरजायत तस्माद्वायुरजायत ॥ १२ ॥

॥ ३२ ॥ (अथर्व० २।२०।१-५)
अथर्वा । १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

वायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ १ ॥
वायो यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ २ ॥
वायो यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ३ ॥
वायो यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ४ ॥
वायो यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

॥ ३३ ॥ (अथर्व० ५।२४।८)
चतुष्पदाति शक्वरी ।

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्याम्
आशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ८ ॥

॥ ३४ ॥ (अथर्व० ६।८९।२)
अथर्वा । (वातः) । अनुष्टुप् ।

शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः ।
वातं धूम इव सध्र्य१ङ् मामेवान्वेतु ते मनः ॥२॥

॥ ३५ ॥ (अथर्व० ४।३०।६)
शुक्रः । त्रिष्टुप् ।

येऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो
व्यध्याया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां
प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ६ ॥

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ११।४।१-२६)
भार्गवो वैदर्भिः । (प्राणः) । अनुष्टुप् ; १ शङ्कुमती, ८ पथ्यापङ्क्तिः; १४ निचृत् ; १५ भुरिक् ; २० अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; २१ मध्ये ज्योतिर्जगती; २२ त्रिष्टुप्; २६ बृहतीगर्भा ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१॥
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २ ॥
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥३॥
यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः
सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८ ॥
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥
प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥
प्राणो विराट् देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥
यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥
यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः १९
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्व
आभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत्
पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥ २० ॥
एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यात्
न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥ २१ ॥
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि
सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान
यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २२ ॥
यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ २६

वायु-सहचारी देवगणः

(१) वायुस्त्वष्टा ।

॥ ३१ ॥ (अथर्व० ३।१०।१०)
वसिष्ठः । अनुष्टुप् ।

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥ १० ॥

(२) वाय्वन्तरिक्षे ।

॥ ३८ ॥ (अथर्व० ४।३९।१-४)
अङ्गिराः । २, ४ संस्तारपङ्क्तिः, ३ त्रिपदा महाबृहती ।

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः ।
सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ २ ॥
अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा
मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः ।
सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ४ ॥

असुनीतिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।५९।५-६)

बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

असुनीते मनो अस्मासु धारय
जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः ।
रारन्धि नः सूर्यस्य संदृशि
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥ ५ ॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः
पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्त
मनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० १९।६०)

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां
यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ ६० ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० १८।२।३१)

अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू
द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद्देवा असुनीतिमायन्
मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥ ३१ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १८।२।५)

(जातवेदाः) । भुरिक् ।

यदा शृतं कृणवो जातवेदो
ऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतां
अथ देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० १८।३।५८) त्रिष्टुप् ।

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा
य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य
यथावशं तन्वः१ कल्पयाति ॥ ५८ ॥

मधुविद्या ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ९।१।१-२४)

मधु, आश्विनौ । त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुब्गर्भा पङ्क्तिः, ३ परानुष्टुप्, ६ अतिशाक्वरगर्भा महाबृहती; ७ अतिजागतगर्भा महाबृहती; ८ बृहतीगर्भा संस्तारपङ्क्तिः; ९ पराबृहती प्रस्तारपङ्क्तिः; १० परोष्णिक्पङ्क्तिः; ११-१३, १५-१६, १८-१९ अनुष्टुप् १४ पुर उष्णिक्; १७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती; २० भुरिग्विष्टारपङ्क्तिः; २१ एकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप्; २२ त्रिपदा ब्राह्मी पुर उष्णिक्; २३ द्विपदा आर्ची पङ्क्तिः, २४ त्र्यवसाना षट्पदाष्टिः ।

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रात्
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां
हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥ १ ॥

महत् पयो विश्वरूपमस्याः
समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा
तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥ २ ॥

पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां
पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥३॥

माताऽऽदित्यानां दुहिता वसूनां
प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची
महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः
सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८ ॥
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥
प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥
यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥
यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥ १९ ॥
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत्
पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥ २० ॥
एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यात्
न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥ २१ ॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि
सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान
यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २२ ॥
यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ २६ ॥

वायु-सहचारी देवगणः

(१) वायुस्त्वष्टा।

॥ ३१ ॥ (अथर्व० ६।१०।१०)
वसिष्ठः। अनुष्टुप्।

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे

(२) वाय्वन्तरिक्षे।

॥ ३८ ॥ (अथर्व० ४।३९
अङ्गिराः। २, ४ संस्तारपङ्क्ति, ...

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्व...
सा मेऽग्निना वत्सेनेषम्...
वायुः प्रथमं प्रजा...
अन्तरिक्षे वायवे...
यथान्तरिक्षे...
मह्यं संन...
अन्तरि...
वा...



प्रकाश-विभागः

विद्युत्

॥ १ ॥ (वा० य० १।२४)

इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः ।
शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ २४ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ४।१९-२३)

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि
यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी ।
सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि
मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां
पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥ १९ ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु
भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः ।
सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ
रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु
स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

वस्व्यस्यदितिरसि
आदित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि ।
बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु
रुद्रो वसुभिरा चके ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्या
इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा ।
अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो
मा वयꣳ रायस्पोषेण
वियौष्म तोतो रायः ॥ २२ ॥

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा
मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहं तव
वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥ २३ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० ५।५)

अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजः
अनभिशस्त्यभिशस्तिपा
अनभिशस्तेन्यमञ्जसा
सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धाः ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १।१३।१-४)

भृग्वङ्गिराः । अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद् विराट् जगती, ४ त्रिष्टुप्परा बृहतीगर्भा पङ्क्तिः ।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥ १ ॥

मधोः कशामजनयन्त देवाः
तस्या गर्भो अभवद्विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता
स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥ ५ ॥

कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत
यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥ ६ ॥

स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत
यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा
उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मानभि वावशाना
मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ८ ॥

यामापीनामुपसीदन्त्यापः
शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति
तद्विदे काममूर्जमापः ॥ ९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते
वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः १०

यथा सोमः प्रातः सवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ ११ ॥

यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १२ ॥

यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः ।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १३ ॥

मधु जनिषीय मधु वंशिषीय ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १४ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा
इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ १५ ॥

यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १६ ॥

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्चः
तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥ १७ ॥

यद्गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।
सुरायां सिच्यमानायां
यत् तत्र मधु तन्मयि ॥ १८ ॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाऽङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥ १९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते
वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति
सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥ २० ॥

पृथिवी दण्डो३ऽन्तरिक्षं गर्भो
द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥२१॥

यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च
व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥ २२ ॥

मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।
मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥ २३ ॥

यद्वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव
तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।
तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे
प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति ।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥२४॥
(११८)



प्रकाश-विभागः

विद्युत्

॥ १ ॥ (वा० य० १।२४)

इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः ।
शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ २४ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ४।१९-२३)

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि
यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी ।
सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि
मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां
पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥ १९ ॥
अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु
भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः ।
सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ
रुद्रस्त्वा वर्तयतु
स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥
वस्व्यस्यदितिरसि
आदित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि ।
बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु
रुद्रो वसुभिरा चके ॥ २१ ॥
अदित्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्या
इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा ।
अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो
मा वयꣳ रायस्पोषेण
वियौष्म तोतो रायः ॥ २२ ॥
समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा
मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहं तव
वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥ २३ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० ५।५)

अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजः
अनभिशस्त्यभिशस्तिपा
अनभिशस्तेन्यमञ्जसा
सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धाः ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १।१३।१-४)

भृग्वङ्गिराः । अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद् विराड् जगती, ४ त्रिष्टुप्परा बृहतीगर्भा पंक्तिः ।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥ १ ॥

नमस्ते प्रवते नपाद्यतस्तपः समूहसि ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥ २ ॥
प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं
नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः ।
विद्म ते धाम परमं गुहा यत्
समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥ ३ ॥
यां त्वा देवा असृजन्त विश्वे
इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना
तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥ ४ ॥

तारके

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।१२१।३)

कौशिकः । (सुकृतलोक प्राप्तिः) । अनुष्टुप् ।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धक मोचनम् ॥ ३ ॥
६।१९७।



स्त्री–विभागः

बालिका– स्त्री–संरक्षणमंत्रिणी

उषा

॥ १ ॥ (ऋ. १।३०।२०–२२)

शुनःशेप आजीगर्तिः। गायत्री।

कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये ।
कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥

वयं हि ते अमन्मह्याऽऽन्तादा पराकात् ।
अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥

त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः ।
अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।४८।१–१६)

प्रस्कण्वः काण्वः। प्रगाथः = (विषमा बृहती + समा सतोबृहती।)

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि
राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो
भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषः
चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे
समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते
मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत् कण्व एषां कण्वतमो
नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

आ घा योषेव सूनर्यु–षा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत
उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥

वि या सृजति समनं व्य1र्थिनः
पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते
व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं
वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगत्
ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव
उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं
व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे
वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि
श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥
उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप
ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥
विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतये
अन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यं
उषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसं
उषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३ ॥
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये
जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसा
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः
प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५ ॥
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा
मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि
सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।४९।१-४) अनुष्टुप्।

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद् रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥
सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥
वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।९२।१-१५)

गोतमो राहूगणः । १-४ जगती; ५-१२ त्रिष्टुप्; १३-१५ उष्णिक् ।

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत
पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः
प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा
स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं
भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः
समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे
विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
अधि पेशांसि वपते नृतूरिव
अपोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती
गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥ ४ ॥
(१११३)

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि
वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्
चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५ ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य
उषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती
सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६ ॥

भास्वती नेत्री सूनृतानां
दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यान्
उषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ७ ॥

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं
दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि
वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥

विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या
प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती
विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९ ॥

पुनः पुनर्जायमाना पुराणी
समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना
मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० ॥

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोधि
अप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि
योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥ ११ ॥

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना
सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि
सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२ ॥

उषस्तच्चित्रमा भरा—स्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १३ ॥

उषो अद्येह गोम—त्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥

युङ्क्ष्वा हि वाजिनीव—त्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।११३।१-२०)
कुत्स आङ्गिरसः । १ (उत्तरार्धस्य) रात्रिश्च । त्रिष्टुप् ।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्
चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ
एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात्
आरैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची
द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तः
तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके
नक्तोषसा समनसा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥

भास्वती नेत्री सूनृतानां
अचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यत्
उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

जिह्मश्ये चरितवे मघोनी
आभोगय इष्टये राय उ त्वम् ।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्षे
उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ५ ॥

(१४४०)

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया
इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष
उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ६ ॥

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि
व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व
उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥ ७ ॥

परायतीनामन्वेति पाथ
आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्ति
उषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥

उषो यदग्निं समिधे चकर्थ
वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान् यक्ष्यमाणाँ अजीगः
तद् देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥ ९ ॥

कियात्या यत् समया भवाति
या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना
प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० ॥

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्
व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूत्
ओ ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११ ॥

यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः
सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिं
इहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥

शश्वत् पुरोषा व्युवास देवी
अथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यून्
अजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३ ॥

व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौत्
अप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैः
ओषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥

आवहन्ती पोष्या वार्याणि
चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां
विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ॥

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगात्
अप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्याय
अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥

स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः
स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोनी
अस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा
व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के
ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा ॥ १८ ॥

माता देवानामदितेरनीकं
यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्यु१च्छा
नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९ ॥

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्ति
ईजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तां
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २० ॥
(१४५५)

॥ ६ ॥ (ऋ० १।१२३।१-१३)

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । त्रिष्टुप् ।

पृथू रथो दक्षिणाया अयोजि
ऐनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या३ विहायाः
चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥

पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि
जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद् युवतिः पुनर्भूः
ओषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥

यदद्य भागं विभजासि नृभ्यः
उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना
अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥

गृहंगृहमहना यात्यच्छा
दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागात्
अग्रमग्रमिद् भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः
उषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता
जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥ ५ ॥

उदीरतां सूनृता उत् पुरंधीः
उदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हा
आविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥ ६ ॥

अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति
विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकः
अद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥ ७ ॥

सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो
दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनानि
एकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥ ८ ॥

जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम
शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धाम
अहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ९ ॥

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ
एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तात्
आविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा
आविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ
न तत् ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा
यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति
भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥ १२ ॥

ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना
भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छ
अस्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० १।१२४।१-१३)

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना
उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं
प्रासावीद् द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥

अमिनती दैव्यानि व्रतानि
प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां
आयतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि
ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु
प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो
नोधा इवाविरकृत प्रियाणि।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती
शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य
गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा
उभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥
एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं
नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम्।
अरेपसा तन्वा शाशदाना
नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची
गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा
उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैक्
अपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्य
अञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८ ॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणां
अपरा पूर्वामभ्येति पश्चात्।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे
रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥
प्र बोधयोषः पृणतो मघोनि
अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि
रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥
अवेयमश्वैद् युवतिः पुरस्ताद्
युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम्।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुः
गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥
उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन्
नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते वहसि भूरि वामं
उषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे
अवीवृधध्वमुशतीरुषासः।
युष्माकं देवीरवसा सनेम
सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० १।१२४।१-७)
गाथिनो विश्वामित्र । त्रिष्टुप्।

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः
स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधिः
अनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥
उषो देव्यमर्त्या वि भाहि
चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा
हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥ २ ॥
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वा
ऊर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।
समानमर्थं चरणीयमाना
चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३ ॥
अव स्यूमेव चिन्वती मघोनी
उषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा
आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥ ४ ॥

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं
प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्
प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥ ५ ॥
ऋतावरी दिवो अर्कैरबोधि
आ रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं
वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥
ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्
वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया
चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥ ७ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ४।५१।१-११)
वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

इदमु त्यत् पुरुतमं पुरस्तात्
ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीः
गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ १ ॥
अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तात्
मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारा
उच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥ २ ॥
उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्
राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्तु
अबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ ३ ॥
कुवित् स देवीः सनयो नवो वा
यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे
सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥ ४ ॥
यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः
परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं
द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥ ५ ॥
क्व स्विदासां कतमा पुराणी
यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति
न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥ ६ ॥
ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुः
अभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः
स्तुवञ्छंसन् द्रविणं सद्य आप ॥ ७ ॥
ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्
समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना
गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥ ८ ॥
ता इन्न्वेऽव समना समानीः
अमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः
शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥ ९ ॥
रयिं दिवो दुहितरो विभातीः
प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १० ॥
तद् वो दिवो दुहितरो विभातीः
उप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु
तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥ ११ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ४।५२।१-७) गायत्री ।

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः ।
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥

अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी।
सखाभूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥
उत सखास्यश्विनो—रुत माता गवामसि।
उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥
यावयद् द्वेषसं त्वा चिकित्वित् सूनृतावरि।
प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥ ४ ॥
प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः।
ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥ ५ ॥
आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः।
उषो अनु स्वधामव ॥ ६ ॥
आ द्यां तनोषि रश्मिभि—रान्तरिक्षमुरु प्रियम्।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥ ७ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ५।७९।१-१०)
सत्यश्रवा आत्रेयः। पङ्क्तिः।

महे नो अद्य बोधयो—षो राये दिवित्मती।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये
सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये
सुजाते अश्वसूनृते ॥ २ ॥
सा नो अद्याभरद्वसु—र्व्युच्छा दुहितर्दिवः।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये
सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥
अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः
सुजाते अश्वसूनृते ॥ ४ ॥
यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये।
परि चिद् वष्टयो दधु—र्ददतो राधो अह्रयं
सुजाते अश्वसूनृते ॥ ५ ॥
एषु धा वीरवद् यश उषो मघोनि सूरिषु।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत
सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६ ॥
तेभ्यो द्युम्नं बृहद् यश उषो मघोन्या वह।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः
सुजाते अश्वसूनृते ॥ ७ ॥
उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः
सुजाते अश्वसूनृते ॥ ८ ॥
व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः।
नेत् त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा
सुजाते अश्वसूनृते ॥ ९ ॥
एतावद् वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि।
या स्तोतृभ्यो विभावर्यु—च्छन्ती न प्रमीयसे
सुजाते अश्वसूनृते ॥ १० ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० ५।८०।१-६) त्रिष्टुप्।

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन
ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम्।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं
प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
एषा जनं दर्शता बोधयन्ती
सुगान् पथः कृण्वती यात्यग्रे।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्व
उषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २ ॥
एषा गोभिररुणेभिर्युजाना
अस्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे।
पथो रदन्ती सुविताय देवी
पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥ ३ ॥
एषा व्येनी भवति द्विबर्हा
आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु
प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥

एषा शुभ्रा न तन्वो विदाना
ऊर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांसि
उषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥ ५ ॥

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्
योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि
पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ६।६४।१-६)
भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

उदु श्रिय उषसो रोचमाना
अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगानि
अभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥ १ ॥

भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्य
उत् ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमाना
उषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २ ॥

वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो
गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्
बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥ ३ ॥

सुगोत ते सुपथा पर्वतेषु
अवाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे
रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

सा वह योक्षभिरवाता
उषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी
पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ५ ॥

उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन्
नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाम
उषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ ६ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० ६।६५।१-६)

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः
क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्व
अज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १ ॥

वि तद् ययुररुणयुग्भिरश्वैः
चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीः
वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥ २ ॥

श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीः
नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत् पत्यमाना
अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥

इदा हि वो विधते रत्नमस्ति
इदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था
नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥ ४ ॥

इदा हि त उषो अद्रिसानो
गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्यर्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च
सत्या नृणामभवद् देवहूतिः ॥ ५ ॥

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो
भरद्वाजवद् विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीहि
उरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥
(३५१७)

॥ १५ ॥ (ऋ० ७।४१।७)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑
वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः ।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता
यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ७ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० ७।७५।१-८)

व्यु१॒षा आ॑वो दि॒वि॒जा ऋ॒तेन॑
आ॒वि॒ष्कृ॒ण्वा॒ना म॑हि॒मान॒माग॑ात् ।
अप॑ द्रु॒हस्तम॑ आव॒रजु॑ष्ट॒म्
अङ्गि॑रस्तमा प॒थ्या॑ अजीगः ॥ १ ॥
म॒हे नो॑ अ॒द्य सु॑वि॒ताय॑ बोधि
उषो॑ म॒हे सौभ॑गाय॒ प्र य॑न्धि ।
चि॒त्रं र॒यिं य॒शसं॑ धेह्य॒स्मे
देवि॑ मर्तेषु मानुषि श्रव॒स्युम् ॥ २ ॥
ए॒ते त्ये भा॒नवो॑ द॒र्श॒ता॒याः
चि॒त्रा उ॒षसो॑ अ॒मृता॑स॒ आगुः॑ ।
ज॒नय॑न्तो॒ दैव्या॑नि व्र॒तानि॑
आ॒पृ॒णन्तो॑ अ॒न्तरि॑क्षा॒ व्य॑स्थुः ॥ ३ ॥
ए॒षा स्या यु॑जा॒ना प॑रा॒कात्
पञ्च॑ क्षि॒तीः परि॑ स॒द्यो जि॑गाति ।
अ॒भि॒पश्य॑न्ती व॒युना॒ जना॑नां
दि॒वो दु॑हि॒ता भुव॑नस्य॒ पत्नी॑ ॥ ४ ॥
वा॒जिनी॑वती॒ सूर्य॑स्य॒ योषा॑
चि॒त्राम॑घा रा॒य ई॑शे॒ वसू॑नाम् ।
ऋषि॑ष्टुता ज॒रय॑न्ती म॒घोनि॑
उ॒षा उ॑च्छति॒ वह्नि॑भिर्गृणा॒ना ॥ ५ ॥
प्रति॑ द्युता॒नाम॑रु॒षासो॒ अश्वाः॑
चि॒त्रा अ॑दृश्रन्नु॒षसं॒ वह॑न्तः ।
याति॑ शु॒भ्रा वि॑श्व॒पिशा॒ रथे॑न
दधा॑ति॒ रत्नं॑ विध॒ते जना॑य ॥ ६ ॥
स॒त्या स॒त्येभि॑र्मह॒ती म॒हद्भि॑ः
दे॒वी दे॒वेभि॑र्यज॒ता यज॑त्रैः ।
रु॒जद् दृ॒ळ्हानि॒ दद॑दु॒स्रिया॑णां
प्रति॒ गाव॑ उ॒षसं॑ वावशन्त ॥ ७ ॥
नू नो॒ गोम॑द् वी॒रव॑द् धेहि॒ रत्न॑ं
उषो॒ अश्वा॑वत् पुरु॒भोजो॑ अ॒स्मे ।
मा नो॑ ब॒र्हिः पु॑रु॒षता॑ नि॒दे कः
यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ८ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० ७।७६।१-७)

उदु॒ ज्योति॑र॒मृतं॑ वि॒श्वज॑न्यं
वि॒श्वान॑रः सवि॒ता दे॒वो अ॑श्रेत् ।
क्रत्वा॑ दे॒वाना॑मजनिष्ट॒ चक्षु॑ः
आ॒विर॑कर्भु॒व॑नं॒ विश्व॑मु॒षाः ॥ १ ॥
प्र मे॒ पन्था॑ देव॒याना॑ अदृश्रन्
अम॑र्धन्तो॒ वसु॑भि॒रिष्कृ॑तासः ।
अभू॑दु के॒तुरु॒षसः॑ पु॒रस्ता॑त्
प्र॒ती॒च्यागा॒दधि॑ ह॒र्म्येभ्यः॑ ॥ २ ॥
तानीदहा॑नि बहु॒लान्या॑स॒न्
या प्रा॒चीन॒मुदि॑ता॒ सूर्य॑स्य ।
यतः॒ परि॑ जा॒र इ॑वा॒चर॑न्ती
उषो॑ ददृ॒क्षे न पुन॑र्य॒तीव॑ ॥ ३ ॥
त इद् दे॒वानां॑ सध॒माद॑ आसन्
ऋ॒तावा॑नः क॒वयः॑ पू॒र्व्यासः॑ ।
गू॒ळ्हं ज्योतिः॑ पि॒तरो॒ अन्व॑विन्दन्
स॒त्यम॑न्त्रा अजनयन्नु॒षास॑म् ॥ ४ ॥
स॒मा॒न ऊ॒र्वे अधि॒ संग॑तासः
सं जा॑नते॒ न य॑तन्ते मि॒थस्ते ।
ते दे॒वानां॒ न मि॑नन्ति व्र॒तानि॑
अम॑र्धन्तो॒ वसु॑भि॒र्याद॑मानाः ॥ ५ ॥

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा
उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छ
उषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥

एषा नेत्री राधसः सूनृतानां
उषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० ७।७७।१-६)

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा
विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणां
अकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्
रुशद् वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्
गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥

देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती
श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता
चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छ
उर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि
चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाहि
उषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे
गोमदश्वावद् रथवच्च राधः ॥ ५ ॥

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्ति
उषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० ७।७८।१-५)

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्
ऊर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन
ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥ १ ॥

प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः
प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना
विश्वा तमांसि दुरितापं देवी ॥ २ ॥

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताद्
ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निं
अपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥

अचेति दिवो दुहिता मघोनी
विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद् रथं स्वधया युज्यमानं
आ यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥ ४ ॥

प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्त
अस्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीः
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ २० ॥ (ऋ० ७।७९।१-५)

व्युषा आवः पथ्या जनानां
पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्
वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥ १ ॥

व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्
विशो न युक्ता उषसो यतन्ते।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति
ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥ २ ॥

अभूदुषा इन्द्रतमा मघोनि
अजीजनत् सुविताय श्रवांसि।
वि दिवो देवी दुहिता दधाति
आङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥ ३ ॥

तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व
यावत् स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण
वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥ ४ ॥

देवंदेवं राधसे चोदयन्ति
अस्मद्र्यक् सूनृता ईरयन्ती।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ २० ॥ (ऋ० ७।८०।१-३)

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा
गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन्।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते
आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना
गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा
प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो
वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

॥ २१ ॥ (ऋ० ७।८१।१-६)

प्रगाथः = (विषमा बृहती + समा सतोबृहती)।

प्रत्यु अदर्श्यायत्यु-च्छन्ती दुहिता दिवः।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो
ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ
उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च
सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति
रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥

उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि
प्रख्यै देवि स्वर्दृशे।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं
स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥

तच्चित्रं राध आ भरो-षो यद् दीर्घश्रुत्तमम्।
यत् ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं
तद् रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं
वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावती
उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ८।१०१।१३)

जमदग्निर्भार्गवः। उषा सूर्यप्रभा वा। बृहती।

दूर्वं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्य-न्तर्दशसु बाहुषु ॥ १३ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० १०।१७२।१-४)

संवर्त आङ्गिरसः। द्विपदा विराट्।

आ याहि वनसा सह
गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥ १ ॥

आ याहि वस्व्या धिया
मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥ २ ॥
पितुभृतो न तन्तुमित्
सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥ ३ ॥
उषा अप स्वसुस्तमः
सं वर्तयति वर्तनिं सुजाततां ॥ ४ ॥
॥ २५ ॥ (वा० य० ११।६६)
संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात्।
अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि
चित स्थ परिचितं ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥
॥ २६ ॥ (साम० ३०३, ७५१)
वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। बृहती।
प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३—च्छन्ती दुहिता दिवः।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो
ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ २०३ ॥
॥ २७ ॥ (अथर्व० १२।११।१)
वसिष्ठः। त्रिष्टुप्।
उषा अप स्वसुस्तमः
सं वर्तयति वर्तनिं सुजाततां।
अया वाजं देवहितं सनेम
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १ ॥

उषा-सहचारि-देवगणः

(१) आदित्योषसः। (दुःष्वप्नघ्नम्)
॥ २८ ॥ (ऋ० ८।४७।१४-१८)
त्रित आप्त्यः। महापङ्क्तिः।
यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः।
त्रिताय तद् विभावर्या—प्त्याय परा वह
अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १४ ॥
निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः।
त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्व—माप्त्ये परि दद्मसि
अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १५ ॥
तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे।
त्रिताय च द्विताय चो—षो दुःष्वप्न्यं वह
अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥
यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्व—माप्त्ये सं नयामसि
अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १७ ॥
अजैष्माद्यासनाम चा—भूमानागसो वयम्।
उषो यस्माद् दुःष्वप्न्या—दभैष्माप तदुच्छतु
अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १८ ॥

(२) उषासानक्ता।
॥ २९ ॥ (वा० य० २०।३१)
उषासानक्ता बृहती बृहन्तं
पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम्।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती
देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥
॥ ३० ॥ (वा० य० २८।१४, ३७)
देवी उषासानक्तेन्द्रं वये प्रयत्यह्वेताम्।
दैवीर्विशः प्रायासिष्टां सुप्रीते
सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १४ ॥
देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रं
वयोधसं देवी देवमवर्धताम्।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्
वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३७ ॥
(३।९१)

ब्रह्मजाया

॥ १ ॥ (अथर्व० ५।१७।१-१८)

मयोभूः । अनुष्टुप् ; १-६ त्रिष्टुप् ।

ते ऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषे
अकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूः
आपो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥ १ ॥
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां
पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीद्
अग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या
ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रह्येया तस्थ एषा
तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ ३ ॥
यामाहुस्तारकैषा विकेशीति
दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं
यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥ ४ ॥
ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः
स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः
सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥ ५ ॥
देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे
सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता
दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥ ६ ॥

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते ।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥ ७ ॥
उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥ ८ ॥
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो३ न वैश्यः ।
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥ ९ ॥
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ १० ॥
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥ ११ ॥
नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥ १२ ॥
न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥ १३ ॥
नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥ १४ ॥
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥ १५ ॥
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥ १६ ॥
नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति ये ऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥ १७ ॥
नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥ १८ ॥

(११०८)

विवाह-प्रकरणम्

॥ १ ॥ (अथर्व० १४।१।१-६४)

सूर्या सावित्री । आत्मा; १-५ सोमः, ६ स्वविवाहः, २३ सोमार्कौ, २४ चन्द्रमाः, २५ नृणां विवाहमन्त्राशिषः; २५;२७ वधूवासः संस्पर्शमोचनम्। अनुष्टुप्; १४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः; १५ आस्तारपंक्तिः; १९-२०, २३-२४, ३१-३३, ३७, ३९-४०, ४५, ४७, ४९-५०, ५३, ५६-५९, ६१ त्रिष्टुप् (२३, ३१, ४५ बृहतीगर्भा); २१, ४६, ५४, ६४ जगती (५४, ६४ भुरिक् त्रिष्टुप्); २९, ५५ पुरस्ताद्बृहती; ३४ प्रस्तारपंक्तिः; ३८ पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक्; (४८ पथ्यापंक्तिः) ६० पराऽनुष्टुप् ।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥३॥

यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥४॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः५

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥६॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥७॥

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८ ॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥९॥

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥ १० ॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥१२॥

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्यु ह्यते ॥ १३ ॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं
त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥ १४ ॥

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन्
पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥१६॥

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥१७

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्
येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके
स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥ १९ ॥

ब्रह्मजाया

॥ १ ॥ (अथर्व० ५।१७।१-१८)

मयोभूः। अनुष्टुप्; १-६ त्रिष्टुप्।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषे
अकूपारः सलिलो मातरिश्वा।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूः
आपो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥ १ ॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां
पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीत्
अग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥ २ ॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या
ब्रह्मजायेति चेदवोचत्।
न दूताय प्रह्येया तस्थ एषा
तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ ३ ॥

यामाहुस्तारकैषा विकेशीति
दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम्।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं
यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥ ४ ॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः
स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः
सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥ ५ ॥

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे
सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता
दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥ ६ ॥

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥७॥

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥८॥

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः।
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥९॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥१०॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम्।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥११॥

नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥१२॥

न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥१३॥

नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥१४॥

नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥१५॥

नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम्।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥१६॥

नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाऽचित्त्या ॥१७॥

नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम्।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥१८॥

(११०८)

शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः
शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु
शमु पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥
आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥४२॥
यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥
सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु ।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४ ॥
या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे
या देवीरन्तां अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्तु
आयुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥
जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं
दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे
मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥ ४६ ॥
स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि
तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ४७ ॥
येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा
मया सह प्रजया च धनेन च ॥ ४८ ॥
देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु
सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः
पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥ ४९ ॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिः
मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ५० ॥
भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥५२॥
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं
बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च
सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥ ५३ ॥
इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा
मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम
इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः
शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥ ५५ ॥
इदं तद् रूपं यदवस्त योषा
जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः
क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥ ५६ ॥
अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या
वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये
स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्
येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां
कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥ ५८ ॥
(६६६६)

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्य
अश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ २० ॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतां
अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व
अथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ २१ ॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ
शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट
ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ २३ ॥

नवोनवो भवसि जायमानो
अह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन्
प्र चन्द्रमास्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४ ॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद् वध्वो३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७ ॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥२८

तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥ २९ ॥

स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ३०

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय
चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥ ३१ ॥

इहेदसाथ न परो गमाथ
इमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो
विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥ ३२ ॥

इमं गावः प्रजया सं विशाथ
अयं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे
अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ ३३ ॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो
येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥३४॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तः
यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा
याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्या३वान् ॥ ३७ ॥

इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ ३८ ॥

आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्तु
अवीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन्
प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥ ३९ ॥
(६६६७)

शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः
शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु
शमु पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥
आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥४२॥
यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥
सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु ।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४ ॥
या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे
या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्तु
आयुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥
जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं
दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे
मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥ ४६ ॥
स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि
तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ४७ ॥
येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा
मया सह प्रजया च धनेन च ॥ ४८ ॥
देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु
सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः
पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥ ४९ ॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिः
मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ५० ॥
भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥५२॥
त्वष्टा वासो व्य१दधाच्छुभे कं
बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च
सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥ ५३ ॥
इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा
मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम
इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः
शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥ ५५ ॥
इदं तद् रूपं यदवस्त योषा
जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः
क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥ ५६ ॥
अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या
वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये
स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्
येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां
कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥ ५८ ॥
(६६६६)

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथ
इमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद
भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥ ५९ ॥
भगस्ततक्ष चतुरः पादान्
भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्
सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६० ॥
सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं
हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं
स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥ ६१ ॥
अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥
मा हिंसिष्ट कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥ ६३ ॥
ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं
ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य
शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० १४।२।१-७५)

आत्मा, १० यक्ष्मनाशनी, ११ दम्पत्योः परिपन्थिनाशनी, ३६ देवाः। अनुष्टुप्; ५-६, १२, ३१, ३७, ३९-४० जगती (३७, ३९ भुरिक् त्रिष्टुप्); ९ व्यवसाना षट्पदा विराडत्यष्टिः; १३-१४, १७-१९, ३४, ३६, ३८, ४१-४२, ४९, ६१, ७०, ७४-७५ त्रिष्टुप्; १५, ५१ भुरिक्; २० पुरस्ताद् बृहती; ११, २४-२५, ३२-३३ पुरोबृहती (२६ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री;) ३३ विराडास्तारपङ्क्तिः, ३५ पुरोबृहती त्रिष्टुप्; ४३ त्रिष्टुब्गर्भा पंक्तिः; ४४ प्रस्तारपंक्तिः; ४७ पथ्याबृहती; ४८ सतः पंक्तिः; ५० उपरिष्टाद्बृहती निचृत्; ५२ विराट् पुर उष्णिक्; ५९-६०, ६२ पथ्यापंक्तिः; ६८ पुर उष्णिक्; ६९ त्र्यवसाना षट्पदाऽतिशक्वरी; ७१ बृहती।

तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥
पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥
सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥
सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ४ ॥
आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू
न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती
प्रिया अर्यम्णो दुर्याँ अशीमहि ॥ ५ ॥
सा मन्दसाना मनसा शिवेन
रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती
स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥ ६ ॥
या ओषधयो या नद्यो यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥
एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥
इदं सु मे नरः शृणुत
ययाशिषा दंपती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीः
एषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु
मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ ९ ॥
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ १० ॥
मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।
सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ११ ॥
सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैः
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति
स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥ १२ ॥
(६६८९)

शिवा नारीयमस्तमागन्
इमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा
प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन्
तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो
बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥ १४ ॥

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥१५॥

उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना
शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वया
एधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि
शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा
स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥

उत् तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा
अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थो
उत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥ १९ ॥

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥२०॥

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥२१ ॥

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥२२

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥ २३ ॥

आ रोह चर्मोप सीदाग्निम्
एष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै
सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः ॥ २४ ॥

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थाद्
नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं
संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥ २५ ॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां
सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ २६ ॥

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव २७

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥ २८ ॥

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्तायास्तं विपरेतन ॥ २९ ॥

रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ३०

आ रोह तल्पं सुमनस्यमाना
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना
ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ३१ ॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः
समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा
प्रजावती पत्या सं भवेह ॥ ३२ ॥

(१३०४)

उत् तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां
स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥ ३३ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति
हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि
नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥

नमो गन्धर्वस्य नमसे
नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमो
ऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥ ३५ ॥

राया वयं सुमनसः स्याम
उदितो गन्धर्वमावीवृताम ।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थम्
अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ३६ ॥

सं पितरावृत्विये सृजेथां
माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्य इव योषामधिरोहयैनां
प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ३७ ॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व
यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति
यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ३८ ॥

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं
परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ
दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥ ३९ ॥

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिः
अहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४० ॥

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद्
वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति
स इद्रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥ ४१ ॥

यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोः
वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ
बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥ ४२ ॥

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ
हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो
जीवावुषसो विभातीः ॥ ४३ ॥

नवं वसानः सुरभिः सुवासा
उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात्पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥ ४४ ॥

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४५ ॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुः
निष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ ४७ ॥

अपास्मत्तम उच्छतु नीलं
पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन्
तां स्थाणावध्या सजामि ॥ ४८ ॥

यावतीः कृत्या उपवासने
यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या
अस्मिन्ता स्थाणावधि सादयामि ॥ ४९ ॥
(६७२१)

या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं
कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥ ५० ॥
ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ५१
उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५४॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५५॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५६॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५७॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५८॥
यदीमे केशिनो जना
गृहे ते समनर्तिषु रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ५९
यदीयं दुहिता तव विकेश्य
रुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ६०
यज्जामयो यद् युवतयो
गृहे ते समनर्तिषु रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ६१
यत् ते प्रजायां पशुषु यद् वा गृहेषु
निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ६२

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥
यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥६५
यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥६६॥
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ६७
कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमपः शीर्षण्यं लिखात् ॥६८॥
अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान्
दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने
यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥
सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः
सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन
सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥ ७० ॥
अमोऽहमस्मि सा त्वं
सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥
जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥
ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥७३॥
येदं पूर्वागन् रशनायमाना
प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां
विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥ ७४ ॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ७५ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० २३।३३)

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १९।२१।१)

ब्रह्मा। छन्दांसि। एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहती
पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यै ॥ १ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० १९।४१।१)

तप [राष्ट्रं बलमोजश्च]। त्रिष्टुप्।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः
तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं
तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ १ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० १९।६८।१)

कर्म (वेदोक्तं)। अनुष्टुप्।

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० १९।२६।१-४)

अथर्वा। अग्नि, हिरण्यं च [हिरण्यधारणम्]।
त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप्; ४ पथ्यापंक्तिः।

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यं
अमृतं दध्रे अधि मर्त्येषु।
य एनद्वेद स इदेनमर्हति
जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥
यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं
प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे।
तत्त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजति
आयुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥ २ ॥
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३ ॥
यद्वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः।
इन्द्रो यद्वृत्रहा वेद तत्त
आयुष्यं भुवत् तत्ते वर्चस्यं भुवत् ॥ ४ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० २०।३४।११, ११-१७)

गृत्समदः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिः
योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं
यस्मिन्नामूर्च्छत् स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥
जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे
भुवो न वेद जनितुः परस्य।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मत्
व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥ १६ ॥
यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिः
यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं
य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० २०।१०७।१४)

बृहद्दिव। इन्द्रः। गायत्री।

चित्रं देवानां केतुरनीकं
ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि
विश्वातारीद्दुरितानि शुक्रः ॥ १४ ॥

॥ १० ॥ (सा० १०,६३,८१, ९०, ६१५-६१६)

अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे।
देवो ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥
आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं
नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम्।
इडस्पदे नमसा रातहव्यं
सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥

यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥
जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।
पिता यत् कश्यपस्याग्निः
श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ १० ॥
आजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो
जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
स त्वं नो अग्ने पयसा
वसुविद्रयि वर्चो दृशेऽदाः ॥ १ ॥
वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥२॥

॥ ११ ॥ (सा० ९१)

इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥

॥ १२ ॥ (सा० १५२, २२४, १८८, ३५३, ३६१, ४३७, ४४१, ४५०, ६०८)

सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् ।
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥ १० ॥
कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।
तदिद्ध्यस्य वर्धनम् । ॥ २ ॥
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
आदिद्वन्देत वरुणं विपा
गिरा धर्तारं विव्रतानाम् ॥ ६ ॥
मा नो वयो वयःशयं
महान्तं गह्वरेष्ठां पूर्विणेष्ठाम् ।
उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥ २ ॥
विश्वतोदावन् विश्वतो न
आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥ १ ॥
शं पदं मघं रयीषिणो न
काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥ ५ ॥
विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन्यदि वेह नूनम् ४
आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति ।
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥

॥ १३ ॥ (सा० ५९४)

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य
पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावद्
अहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥ ९ ॥

॥ १४ ॥ (सा० १६५४-१६५६)

सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी
सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि ।
ताविमा उप सर्पतः ॥ २ ॥
नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥ ३ ॥

॥ १५ ॥ (सा० १७६९, १८२५, १७२८-३१, १८४३-४१)

त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥ २ ॥
अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति ।
महिषीव वि जायते ॥ १ ॥

(६३८०)

नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः ।
युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥ १ ॥
युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि ।
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥
गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ३ ॥
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥
अभि वाजो विश्वरूपो जनित्रं
हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः ।
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः
परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥ १ ॥
अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं
तेजः पृथिव्यामधि यत् सबभूव ।
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः
कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥ २ ॥
अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः
सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा
धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥ ३ ॥

दम्पती ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।३१।५-९)
मनुर्वैवस्वतः । गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः ।
देवासो नित्ययाशिरा ॥ ५ ॥
प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते ।
न ता वाजेषु वायतः ॥ ६ ॥
न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः ।
श्रवो बृहद् विवासतः ॥ ७ ॥
पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।
उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥
वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम् ।
समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० २।३०।५)
प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम् ॥ ५ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० १४।२।९, ६४)
सूर्या सावित्री । ९ व्यवसाना षट्पदा विराडत्यष्टिः, ६४ अनुष्टुप् ।

इदं सु मे नरः शृणुत
ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीः
एषु वानस्पत्येषु येऽधितस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु
मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ ९ ॥
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥

दम्पत्याशिषः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।३१।१०-१८)
मनुर्वैवस्वतः । गायत्री, १० पादनिचृत्, १४ अनुष्टुप्, १५-१८ पङ्क्तिः ।

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् ।
आ विष्णोः सचाभुवः ॥ १० ॥
ऐतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः ।
उरुरध्वा स्वस्तये ॥ ११ ॥

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा ।
आदित्यानामनेह इत् ॥ १२ ॥
यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः ।
सुगाः ऋतस्य पन्थाः ॥ १३ ॥
अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥ १४ ॥
मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।
देवानां य इन्मनो यजमान
इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १५ ॥
न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो ।
देवानां य इन्मनो यजमान
इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १६ ॥
नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति ।
देवानां य इन्मनो यजमान
इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १७ ॥
असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम् ।
देवानां य इन्मनो यजमान
इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १८ ॥

कूकासः-संस्पर्शनिन्दा ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।८५।२९-३०)
सूर्या सावित्री । अनुष्टुप् ।

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥२९॥
अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो३ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥ ३० ॥

कामः ।

॥ १ ॥ (वा० य० ७।४८)

कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत् ते ॥४८॥

॥ २ ॥ (वा० य० १८।८)

कामश्च मे सौमनसश्च मे ॥ ८ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० २४।३९)

कामाय पिकः ॥ ३९ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ३०।५)

कामाय पुंश्चलूम् ॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ३।२९।७)
उद्दालकः । त्र्यवसाना षट्पदा उपरिष्टाद्दैवी बृहती ककुम्मतीगर्भा विराड्जगती ।

क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता
कामः समुद्रमा विवेश ।
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥ ७ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ६।८।१-३)
जमदग्निः । १ (कामात्मा), २ सुपर्णः, ३ द्यावापृथिवी, सूर्यः । पथ्यापंक्तिः ।

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो
यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥
यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो
यथा मन्नापगा असः ॥ २ ॥
यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः ।
एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यसो
यथा मन्नापगा असः ॥ ३ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० ६।९।१-३)
(कामात्मा), ३ गावः । अनुष्टुप् ।

वाञ्छ मे तन्वं१ पादौ वाञ्छाक्ष्यौ३ वाञ्छ सक्थ्यौ३ ।
अक्ष्यौ३ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥१
मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥
यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् ।
गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥ ३ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० ९।२।१-२५)

अथर्वा। त्रिष्टुप्, ५ अतिजगती; ७, १४-१५, १७-१८, २१-२२ जगती; ८ द्विपदा आर्चो पंक्तिः; ११, २०, २३ भुरिक्; १२ अनुष्टुप्; १३ द्विपदाऽऽर्ची अनुष्टुप्; १६ चतुष्पदा शक्वरीगर्भा परा जगती।

सपत्नहनमृषभं घृतेन
कामं शिक्षामि हविषाऽऽज्येन।
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वं
अभिष्टुतो महता वीर्येण ॥ १ ॥

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो
यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति।
तद्दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने
कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥ २ ॥

दुष्वप्न्यं काम दुरितं च काम
अप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम्।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन्
यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ॥ ३ ॥

नुदस्व काम प्र णुदस्व काम
अवर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः।
तेषां नुत्तानामधमा तमांसि
अग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥ ४ ॥

सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते
यामाहुर्वाचं कवयो विराजम्।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम
पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ ५ ॥

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो
विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नान्
शम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥ ६ ॥

अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः
कृणोतु मह्यमसपत्नमेव।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु
सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥ ७ ॥

इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः
कामज्येष्ठा इह मादयध्वम्।
कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा
नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः।
तेषां पन्नानामधमा तमांसि
अग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥ ९ ॥

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना
अन्धा तमांस्यव पादयैनान्।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे
मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥ १० ॥

अवधीत् कामो मम ये सपत्ना
उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम्।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो
मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु ॥ ११ ॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात्।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ १२ ॥

अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः।
यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥ १३ ॥

असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो
द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम्।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत
उग्रो वो देवः प्र मृणत् सपत्नान् ॥ १४ ॥

च्युता चेयं बृहत्यच्युता च
विद्युद्बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान्।
उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा
नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥ १५ ॥
(९८११)

यत् ते काम शर्म त्रिवरूथम्
उद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् ।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम
पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ १६ ॥
येन देवा असुरान् प्राणुदन्त
येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय ।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नाः
तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥ १७ ॥
यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त
यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे ।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नाः
तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥ १८ ॥
कामो जज्ञे प्रथमो
नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ १९ ॥
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा
यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २० ॥
यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीः
यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २१ ॥
यावतीर्भृङ्गा जत्व्ः कुरूरवो
यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २२ ॥
ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो
ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २३ ॥
न वै वातश्चन काममाप्नोति
नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २४ ॥
यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा
याभिः सत्यं भवति यद्वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्व
अन्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥ २५ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० ६।१३०।१-४)

अथर्वाङ्गिराः । स्मरः । अनुष्टुप्, १ विराट् पुरस्ताद्बृहती ।

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥
असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥
यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ ३ ॥
उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय ।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥ ४ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ६।१३१।१-३) अनुष्टुप् ।

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो३ नि तिरामि ते ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥
अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥
यद्धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम् ।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।१३२।१-५)

१ अनुष्टुप्, (त्रिपदानुष्टुप्); २,४,५ बृहती, ३ भुरिक् ।

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्
अप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ १ ॥

यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्
अप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ २ ॥
यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चत्
अप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ३ ॥
यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतां
अप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ४ ॥
यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतां
अप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ५ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० १९।५२।१-५)
ब्रह्मा । त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पादुष्णिक्, ५ उपरिष्टाद् बृहती ।

कामस्तदग्रे समवर्तत
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी
रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥
त्वं काम सहसाऽसि प्रतिष्ठितो
विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः
सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आऽस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्व१ः ॥ ३ ॥
कामेन मा काम आऽगन् हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥
यत् काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतां
अथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

रतिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१७९।१-६)
१-२ लोपामुद्रा; ३-४ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः; ५-६ अगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचारी । त्रिष्टुप्, ५ बृहती ।

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा
दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनां
अप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्
साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः
समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा
विश्वा इत् स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं
यत् सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥
नदस्य मा रुधतः काम आऽगन्
इत आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति
धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥
इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळतु
पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः
प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष
सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ६ ॥
(६८६५)

रेतः ।

॥ १ ॥ (वा० य० १९।७६)

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् ।
गर्भो जरायुणावृत उल्बं जहाति जन्मना ॥
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ७६

॥ २ ॥ (वा० य० ३९।१०)

रेतसे स्वाहा ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ६।११।१-२)

प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम् ।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥ १ ॥
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते ।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥

कामिनीमनोऽभिमुखी-करणम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० २।३०।१-४)

प्रजापतिः । ओषधिः । ३ भुरिक्, ४ अनुष्टुप् ।

यत् सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः ।
तत्र मे गच्छताद्धवं शल्य इव कुल्मलं यथा ॥३॥
यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम् ।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥ ४ ॥

केवलः पतिः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।३८।१-५)

वनस्पतिः । अनुष्टुप् , ३ चतुष्पाद उष्णिक् ।

इदं खनामि भेषजं मांपश्यमभिरोरुदम् ।
परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥ १ ॥
येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि ।
तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया ॥२॥
प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् ।
प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाऽच्छावदामसि ॥३
अहं वदामि नेत्त्वं सभायामह त्वं वद ।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥ ४ ॥
यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः ।
इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ॥ ५ ॥

अतिथिसत्कारः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ९।६।१-६१)

प्रथमः पर्यायः ॥ १ ॥

(षट्पर्यायाः) १-१७ ब्रह्मा । अतिथिः विद्या । १ नागी नाम त्रिपदा गायत्री; २ त्रिपदाऽर्षी गायत्री; ३, ७ साम्नी त्रिष्टुप्; ४, ९ आर्च्यनुष्टुप्; ५ आर्ची गायत्री; ६ त्रिपदा साम्नी जगती; ८ याजुषी त्रिष्टुप्; १० साम्नी भुरिग्बृहती; ११, १४-१६ साम्न्यनुष्टुप्; १२ विराड् गायत्री; १३ साम्नी निचृत् पंक्तिः; १७ त्रिपदा विराड् भुरिग्गायत्री ।

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥ १ ॥
सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥ २ ॥
यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥ ३ ॥
यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति ॥ ४ ॥
या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥ ५ ॥
यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥ ६ ॥
यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥ ७ ॥
यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥ ८ ॥
यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥ ९ ॥
यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥१०॥
यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥ ११ ॥
यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥ १२ ॥

यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद् ह्वयन्ति ॥ १३ ॥
ये व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेंऽशव एव ते ॥ १४ ॥
यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥ १५ ॥
शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥ १६ ॥
स्रुग्दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो॑
वायव्या॑नि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥ १७ ॥

द्वितीयः पर्यायः ॥ २ ॥

(१-१३)= १ विराट् पुरस्ताद्बृहती; २, १२ साम्नी त्रिष्टुप्; ३ आसुरी अनुष्टुप्; ४ साम्नी उष्णिक्; ५, ११ साम्नी बृहती (११ भुरिक्); ६ आर्च्यनुष्टुप्; ७ त्रिपदा स्वराडनुष्टुप्; ८ आसुरी गायत्री; ९ साम्नी अनुष्टुप्; १० त्रिपदाऽऽर्ची त्रिष्टुप्; १३ त्रिपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः (७ पञ्चपदा विराट् पुरस्ताद् बृहती; ८ साम्न्यनुष्टुप् वा)।

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः
कुरुते यदाहार्या॑णि प्रेक्षत
इदं भूया३ इदा३मिति ॥ १ ॥
यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव
तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥ २ ॥
उप हरति हवींष्या सादयति ॥ ३ ॥
तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥ ४ ॥
स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥ ५ ॥
एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः
स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥ ६ ॥
स य एवं विद्वान्न द्विषन्
नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयान्न
मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥ ७ ॥
सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥ ८ ॥
सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥ ९ ॥
सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो
वितताध्वर आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति ॥ १० ॥
प्राजापत्यो वा एतस्य
यज्ञो विततो य उपहरति ॥ ११ ॥
प्रजापतेर्वा एष विक्रमान्
अनुविक्रमते य उपहरति ॥ १२ ॥
योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि
स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥ १३ ॥

तृतीयः पर्यायः ॥ ३ ॥

(१-९)= १-६, ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या गायत्री; ७ साम्नी बृहती; ८ पिपीलिकमध्योष्णिक्।

इष्टं च वा एष पूर्तं च
गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ १ ॥
पयश्च वा एष रसं च
गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ २ ॥
ऊर्जां च वा एष स्फातिं च
गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३ ॥
प्रजां च वा एष पशूंश्च
गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ४ ॥
कीर्तिं च वा एष यशश्च
गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ५ ॥
श्रियं च वा एष संविदं च
गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ६ ॥
एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियः
तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥ ७ ॥
अशितावत्यतिथावश्नीयाद्यज्ञस्य
सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥ ८ ॥
एतद्वा उ स्वादीयो
यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात् ॥ ९ ॥

चतुर्थः पर्यायः ॥ ४ ॥

१-४ प्राजापत्यानुष्टुप्; २-५ त्रिपदा गायत्री; ९ भुरिक्; १० चतुष्पदा प्रस्तारपंक्तिः।

स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति ॥ १ ॥
यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे
तावदेनेनाव रुन्धे ॥ २ ॥
स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ॥ ३ ॥

यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे
तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ४ ॥
स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ॥ ५ ॥
यावत् सत्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे
तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ६ ॥
स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ॥ ७ ॥
यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे
तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ८ ॥
स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ ९ ॥
प्रजानां प्रजननाय गच्छति
प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति
य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ १० ॥

पञ्चमः पर्यायः ॥ ५ ॥

१ साम्नी उष्णिक्; २ पुर उष्णिक्; ३, १० साम्नी भुरिग्बृहती; ४, ६, ९ साम्नी अनुष्टुप्; ५ त्रिपदा निचृद्विषमा नाम गायत्री; ७ त्रिपदा विराड्विषमा नाम गायत्री; ८ त्रिपदा विराडनुष्टुप्।

तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति ॥ १ ॥
बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा
पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् ॥ २ ॥
निधनं भूत्याः प्रजायाः
पशूनां भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥
तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति
संगवः प्र स्तौति ॥ ४ ॥
मध्यंदिन उद्गायत्यपराह्णः
प्रति हरत्यस्तंयन् निधनम्।
निधनं भूत्याः प्रजायाः
पशूनां भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥
तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति
स्तनयन् प्र स्तौति ॥ ६ ॥
विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्
उद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम्।
निधनं भूत्याः प्रजायाः
पशूनां भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥

अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोति
अभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति ॥ ८ ॥
उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ॥ ९ ॥
निधनं भूत्याः प्रजायाः
पशूनां भवति य एवं वेद ॥ १० ॥

षष्ठः पर्यायः ॥ ६ ॥

१ आसुरी गायत्री; २ साम्नी अनुष्टुप्; ३-५ त्रिपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः; ४ एकपदा प्राजापत्या; ६-११ आर्ची बृहती; १२ एकपदाऽऽसुरी जगती; १३ याजुषी त्रिष्टुप्; १४ एकपदाऽऽसुरी उष्णिक्।

यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् ॥ १ ॥
यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् ॥ २ ॥
यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च
प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ॥ ३ ॥
तेषां न कश्चनाहोता ॥ ४ ॥
यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य
गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ॥ ५ ॥
यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति
यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् ॥ ६ ॥
स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयति
उपहूतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम् ॥ ७ ॥
स उपहूतोऽन्तरिक्षे भक्षयति
उपहूतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ॥ ८ ॥
स उपहूतो दिवि भक्षयति
उपहूतस्तस्मिन् यद्दिवि विश्वरूपम् ॥ ९ ॥
स उपहूतो देवेषु भक्षयति
उपहूतस्तस्मिन् यद्देवेषु विश्वरूपम् ॥ १० ॥
स उपहूतो लोकेषु भक्षयति
उपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् ॥ ११ ॥
स उपहूत उपहूतः ॥ १२ ॥
आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥ १३ ॥
ज्योतिष्मतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥ १४ ॥



बाल-विभागः

बाल--संरक्षणमंत्री

वेनः

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१२३।१-८)
वेनो भार्गवः । त्रिष्टुप् ।

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा
ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां संगमे सूर्यस्य
शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥ १ ॥

समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो
नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।
ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट्
समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥ २ ॥

समानं पूर्वीरभि वावशानाः
तिष्ठन् वत्सस्य मातरः सनीळाः ।
ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा
रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥ ३ ॥

जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा
मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन् ।
ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुः
विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ॥ ४ ॥

अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा
योषा बिभर्ति परमे व्योमन् ।
चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्
सीदत् पक्षे हिरण्यये स वेनः ॥ ५ ॥

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं
हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं
यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ६ ॥

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्
प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं
स्व१र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥ ७ ॥

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति
पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानः
तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ८ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ११।११)

तं प्रत्नथाऽयं वेनः ॥ ९ ॥

(६६५८)

मेखलाबन्धनम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।१३३।१-५)

अगस्त्यः । मेखला । १ भुरिक्; २, ५ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ जगती ।

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध
यः संननाह य उ नो युयोज ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः
स पारमिच्छात्स उ नो विमुञ्चात् ॥ १ ॥

आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती
वीरघ्नी भव मेखले ॥ २ ॥

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि
निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय ।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेण
अनयैनं मेखलया सिनामि ॥ ३ ॥

श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता
स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधां
अथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ ४ ॥

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां
दीर्घायुत्वाय मेखले ॥ ५ ॥

६९६३)



गुप्त–संरक्षण–विभाग

गुप्त–संरक्षण–मंत्री

कः [प्रजापतिः]

॥ १ ॥ (ऋ० १।२४।१)

शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा । त्रिष्टुप् ।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां
मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्
पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १०।१८।१४)

संकुसुको यामायनः । अनुष्टुप् ।

प्रतीचीने मामहनी—ष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाच—मश्वं रशनया यथा ॥१४॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १०।१२१।१–१०)

हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः । त्रिष्टुप् ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वा
एक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने
अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्
गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्
दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या
यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९ ॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ३।६)

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति
कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति ।
कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० २।२३)

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति
कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति ।
पोषाय रक्षसां भागोऽसि ॥ २३ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ७।२९)

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि ।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम २९

॥ ७ ॥ (वा० य० ८।१०, ३६)

प्रजापतिर्वृषाऽसि रेतोधा रेतो मयि धेहि
प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥ १० ॥
यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणः
त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ ३६ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० ९।१९, २१, २३-२५)

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यात्
एमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा
मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ॥ १९ ॥
प्रजापतेः प्रजा अभूम ॥ २१ ॥
वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे
सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु ।
ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु
वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥
वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवं
इमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् ।
अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्
स नो रयिꣳ सर्ववीरं नि यच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥
वाजस्य नु प्रसव आ बभूव
इमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः ।
सनेमि राजा परि याति विद्वान्
प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० १०।१०)

अवेष्टा दन्दशूकाः
प्राचीमा रोह गायत्री त्वाऽवतु ।
रथन्तरꣳ साम त्रिवृत्स्तोमो
वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

॥ १० ॥ (वा० य० ११।६६)

प्रजापतये मनवे स्वाहा ॥ ६६ ॥

॥ ११ ॥ (वा० य० १२।६१)

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यं
अग्निꣳ स्वे योनावभारुखा ।
तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः
प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥ ६१ ॥
(५९८८)

॥ १२ ॥ (वा० य० १३।१७, २४, ५४-५८)

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन्। व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् ॥ २४ ॥

प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥

॥ १३ ॥ (वा० य० १८।२८-२९, ४३-४४)

प्रजापतये स्वाहा ॥ २८ ॥

प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥ २९ ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह। अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० २०।४)

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा। सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० २३।१,४,६५)

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णामि। प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

होता यक्षत् प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः। जुषतां पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥ ६५ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० ३१।१९)

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः अजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरा: तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १० ॥

॥ १७ ॥ (वा० य ३५।६)

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके नि दधाम्यसौ। अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० १।२०।११)
अथर्वा। अनुष्टुप्।

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः। कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥१२॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० ९।१।२४)
त्र्यवसाना षट्पदाऽष्टिः।

यद्वीध्रे स्तनयति प्रजापतिः एव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति। तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति। अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद २४

॥ २० ॥ (अथर्व० ७।१९।१)
ब्रह्मा। जगती।

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः। संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥ १ ॥

(७००७)

॥ २१ ॥ (अथर्व० १६।९।१)
यमः । प्राजापत्या आर्च्यनुष्टुप् ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं
अभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥ १ ॥

॥ २२ ॥ (साम० ६०२)
वामदेवो गौतमः । अनुष्टुप् ।

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ १ ॥

प्रजापति--सहचारी--देवगणः

(१) प्रजापतिः हरिश्चन्द्रः चर्म सोमो वा ।

॥ २३ ॥ (ऋ० १।२८।९)
शुनःशेप आजीगर्तिः । गायत्री ।

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज ।
नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥

(२) प्रजापत्यादयः ।

॥ २४ ॥ (वा० य० ३९।५)

प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो
वैश्वदेवः संसन्नो घर्मः प्रवृक्तः
तेज उद्यत आश्विनः पयस्यानीयमाने
पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन् ।
मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाण
आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥ ५ ॥

(३) वनस्पतिः, प्रजापतिः ।

॥ २५ ॥ (अथर्व० ३।२४।१-७)
भृगुः । अनुष्टुप्, २ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः ।

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः ॥ १ ॥
वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु ।
संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे
यो यो अयज्वनो गृहे ॥ २ ॥
इमा याः पंच प्रदिशो मानवीः पंच कृष्टयः ।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥ ३ ॥
उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् ।
एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ॥ ४ ॥
शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥ ५ ॥
तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः ।
तासां या स्फातिमत्तमा
तया त्वाऽभि मृशामसि ॥ ६ ॥
उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।
ताविहा वहतां स्फातिं
बहुं भूमानमक्षितम् ॥ ७ ॥
(७०१८)



वाहन–विभागः

वाहन–मंत्री

अश्वः

॥ १ ॥ (ऋ० १।१६२।१–२२)

दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप्, ३–६ जगती ।

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मा
आ॒युरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुत॒: परि॑ ख्यन् ।
यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्ते॑:
प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॑णि ॥ १ ॥

यन्नि॒र्णिजा॒ रेक्ण॑सा॒ प्रावृ॑तस्य
रा॒तिं गृ॑भी॒तां मु॑ख॒तो नय॑न्ति ।
सुप्रा॑ङ॒जो मेम्य॑द्वि॒श्वरू॑प
इन्द्रापू॒ष्णोः प्रि॒यमप्ये॑ति॒ पाथ॑: ॥ २ ॥

ए॒ष च्छाग॑: पु॒रो अश्वे॑न वा॒जिना॑
पू॒ष्णो भा॒गो नी॑यते वि॒श्वदे॑व्यः ।
अ॒भि॒प्रियं॒ यत् पु॑रो॒ळाश॒मर्व॑ता
त्वष्टेदे॑नं सौश्रव॒साय॑ जिन्वति ॥ ३ ॥

यद्ध॒विष्य॑मृतु॒शो दे॑व॒यान॒ं
त्रिर्मानु॑षा॒: पर्यश्वं॒ नय॑न्ति ।
अत्रा॑ पू॒ष्णः प्र॑थ॒मो भा॒ग ए॑ति
य॒ज्ञं दे॒वेभ्य॑: प्रतिवे॒दय॑न्न॒जः ॥ ४ ॥

होता॑ऽध्व॒र्युराव॑या अग्निमि॒न्धो
ग्रा॑वग्रा॒भ उ॒त शंस्ता॒ सुवि॑प्रः ।
तेन॑ य॒ज्ञेन॒ स्व॑रंकृतेन॒
स्वि॑ष्टेन व॒क्षणा॒ आ पृ॑णध्वम् ॥ ५ ॥

यू॒प॒व्र॒स्का उ॒त ये यू॑पवा॒हाः
च॒षालं॒ ये अ॑श्वयू॒पाय॒ तक्ष॑ति ।
ये चार्व॑ते॒ पच॑नं सं॒भर॑न्ति
उ॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥

उप॒ प्रागा॑त् सु॒मन्मे॑ऽधायि॒ मन्म॑
दे॒वाना॒मा॒शा॒ उप॑ वी॒तपृ॑ष्ठः ।
अन्वे॑नं॒ विप्रा॒ ऋष॑यो मदन्ति
दे॒वानां॑ पु॒ष्टे च॑कृमा सु॒बन्धु॑म् ॥ ७ ॥

यद्वा॒जिनो॒ दाम॑ सं॒दान॒मर्व॑तो॒
या शी॑र्ष॒ण्या॑ रश॒ना रज्जु॑रस्य ।
यद्वा॑ घास्य॒ प्रभृ॑तमा॒स्ये॒३॒॑ तृण॒ं
सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥ ८ ॥

यदश्व॑स्य क्र॒विषो॒ मक्षि॒काऽऽश॒
यद्वा॒ स्वरौ॒ स्वधि॑तौ रि॒प्तमस्ति॑ ।
यद्धस्त॑योः शमि॒तुर्यन्न॒खेषु॒
सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥ ९ ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति
य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तु
उत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० ॥

यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानाद्
अभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु
देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ११ ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं
य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत
उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया
या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्याऽपिधाना चरूणां
अङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास
सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥

मा त्वाऽग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिः
मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं
तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्ति
अधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्वीशं
प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

यत् ते सादे महसा शूकृतस्य
पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु
सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥

चतुस्त्रिंशद् वाजिनो देवबन्धोः
वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत
परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥ १८ ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता
द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि
ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥

मा त्वा तपत् प्रिय आत्माऽपियन्तं
मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत् ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्ताऽतिहाय
छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि
देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतां
उपास्थाद् वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः
पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु
क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१६३।१-१३) त्रिष्टुप् ।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान
उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू
उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनग्
इन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्
सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

(७०४१)

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्
असि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त
आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३ ॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि
त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्
यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानी
मा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यं
ऋतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥
आत्मानं ते मनसाऽऽरादजानां
अवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिः
अरेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं
जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्
आदिद् ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥
अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्
अनु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुः
अनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा
मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्
यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः
सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते
यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥
तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्
तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रा
अरण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा
देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्य
अनु पश्चात् कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥
उप प्रागात् परमं यत् सधस्थं
अर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या
अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १३ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० ७।३८।७-८ ; मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वाजिनः । त्रिष्टुप् ।)

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु
देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि
सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ ७ ॥
वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो
धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं
तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ७।४७)

यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु
सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्र एधि
वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० ८।१२)

यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनि-
स्तस्य त इष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य
शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥
(७०५७)

॥ ६ ॥ (वा० य० ९।६-९, १२ [उत्तरार्धः]-१५,१९)

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत
प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः
देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतूर्तिः
ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥ ६ ॥
वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः ।
ते अग्रेऽश्वमयुञ्जँस्ते अस्मिञ्जवमा दधुः ॥ ७ ॥
वातरꣳहा भव वाजिन् युज्यमान
इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस
आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥ ८ ॥
जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः
श्येने परीत्तो अचरच्च वाते ।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन
वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो
बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥
वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो
योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥ १३ ॥
एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति
ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु सꣳसनिष्यदत्
पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥ १४ ॥
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः
पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि
दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥
आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यात्
एमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।
आ मा गन्तां पितरा मातरा च
आ मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो
बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० ११।१०,१५, १८-२०, ४४, ४६)

प्रतूर्त्त वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम् ।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे
तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥
प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती
रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि ।
उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिः
अभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥
आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो वि धूनुते ।
अग्निꣳसधस्थे महति चक्षुषा नि चिकीषते ॥१८॥
आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।
भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥१९॥
द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थ
आत्माऽन्तरिक्षꣳ समुद्रो योनिः ।
विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः ॥ २० ॥
उत्क्राम महते सौभगाय
अस्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्या
अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥
उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः
सुलोकꣳ सुकृतं पृथिव्याम् ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ
स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥
स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् ।
पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥
शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥४५॥
प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा ।
भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ।
वृषाऽग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम् ।
अग्न आ याहि वीतये ॥ ४६ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० २२।३-४,१९)
अभिधा असि भुवनमसि यन्ताऽसि धर्ता ।
स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः३
स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये
ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः
प्रजापतये तेन राध्यासम् ।
तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥ ४ ॥
विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राऽश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि
मयोऽस्यर्वाऽसि सप्तिरसि
वाज्यसि वृषाऽसि नृमणा असि ।
ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामाऽसि
आदित्यानां पत्वाऽन्विहि ।
देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ
रक्षते—ह रन्ति—रिह रमतां
इह धृति—रिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० २३।५-७-, १४-१७, २०-२१, ३४-३७, ३९-४४)
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥
यद्वातो अपो अगनीगन् प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।
एतꣳ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नः ॥७
सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः ।
सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥१४॥
स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व
स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ १५ ॥
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि
देवाँ२ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुः
तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥

अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयत्
यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति
तं जेष्यसि पिबैता अपः ।
वायुः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयत्
यस्मिन् वायुः स ते लोको भविष्यति
तं जेष्यसि पिबैता अपः ।
सूर्यः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयत्
यस्मिन्त्सूर्यः स ते लोको भविष्यति
तं जेष्यसि पिबैता अपः ॥ १७ ॥
ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव
स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां
वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥
उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् ।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥
द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः
सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥
महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३५॥
नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥
रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः३७
कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति
कस्ते गात्राणि शम्यति ।
क उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥
ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु ।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥
अर्धमासाः परूꣳषि ते मासा आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

दैव्या अध्वर्यवस्त्वा च्छ्यन्तु वि च शासतु ।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४२

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥४३॥

शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः ।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥ ४४ ॥

॥ १० ॥ (वा० य० २९।४४)

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयो
अश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्
क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।९२।३)
अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

तनूष्टे वाजिन् तन्वं१ नयन्ती
वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवो
दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० १९।२५।१)
गोपथः । अनुष्टुप् ।

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥

॥ १३ ॥ (साम० ४३५)
ऋण-त्रसदस्यू । पुर उष्णिक् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो
३ १ २ १ २ ३ २
अग्मं देवस्य सवितुः सवम् ।
३ १ २
स्वर्गां अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥

पथ्या स्वस्तिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।६३।१५-१६)
(१-२) गयः प्लातः । १५ जगती त्रिष्टुब्वा १६ त्रिष्टुप् ।

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु
स्वस्त्य१प्सु वृजने स्ववति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु
स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ १५ ॥
स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा
रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु
स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥ १६ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० ६।४८।१-३)
अंगिरा प्रचेताः । १ श्येन, २ ऋभुः, ३ वृषा (स्वस्ति वाचनम्) । उष्णिक् ।

श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥ १ ॥
ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥ २ ॥
वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ७।९८।१)
मेधातिथिः । वेद: (स्वस्तिः) । त्रिष्टुप् ।

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः
परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्तिः ।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामाः
ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥ १ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।५५।१)
भृगुः । इन्द्रः [मार्गस्वस्त्ययनम्] । विराट् परोष्णिक् ।

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः ।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥ १ ॥
(७१०७)



मातृभूमि

पृथिवी

॥ १ ॥ (ऋ० १।२२।१५)

मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ५।८४।१-३)

भौमोऽत्रिः । अनुष्टुप् ।

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति
मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥
स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥
दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन् क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत् ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥३॥

॥ ३ ॥ (वा० य० ४।१३)

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् ।
अंहोमुचः स्वाहाकृताः
पृथिवीमा विशत पृथिव्या सम्भव ॥ १३ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ५।९)

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा
नाथितादवतान्मा व्यथितात् ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० ११।३९)

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु
उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् ।
यो देवानां चरसि प्राणथेन
कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० १३।१८)

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि
विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री ।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह
पृथिवीं मा हिंसीः ॥ १८ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० २२।२७)

पृथिव्यै स्वाहा ॥ २७ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० ३७।५, १२)

इयत्यग्र आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो
राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ५ ॥
अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः
पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः ।
सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः ।
विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दाः
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥ १२ ॥

(०११८)

॥ ९ ॥ वा० य० (१०।२३)

पृथिवि मातुर्मा मा हिँसीर्मो अहं त्वाम् ॥ २३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ६।१९।८)

मृगारः । उपरिष्टाद्बृहती ।

भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माऽहं प्राणेन माऽऽत्मना
मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥ ८ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ४।४०।१)

शुक्रः । त्रिष्टुप् ।

ये३ऽधस्ताज्जुह्वति जातवेदो
ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां
प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ५ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ७।२७।१)

मेधातिथिः । इडा । त्रिष्टुप् ।

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन
यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठा
उप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥ १ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० १२।१।१-६३)

अथर्वा । भूमिः । त्रिष्टुप्, २ भुरिक्; ४-६, १०, ३८ त्र्यव-सानाः षट्पदा जगती; ७ प्रस्तारपंक्तिः; ८, ११ त्र्यव० षट्० विराडष्टिः; ९ पराऽनुष्टुप्; १२-१३, १५ पञ्चपदा शक्वरी (१२-१३ त्र्यव०) । १४ महाबृहती; १६, २१ एकाव० साम्नी त्रिष्टुप्, १८ त्र्यव० षट्० त्रिष्टुबनुष्टुब्गर्भातिशक्वरी, १९-२० पुरोबृहती (२० विराट्); २२ त्र्यव० षट्० विराड-तिजगती; २३ पञ्चपदा विराडतिजगती; २४ पञ्च० अनुष्टुब्गर्भा जगती; २५ त्र्यव० सप्त० उष्णिगनुष्टुब्गर्भा शक्वरी; २६-२८, ३३, ३५, ३९-४१, ५०, ५३-५४, ५६, ५९, ६३ अनुष्टुप् (पुरोबार्हता); ३० विराड् गायत्री; ३२ पुरस्ताज्ज्योतिः; ३४ त्र्यव० षट्० त्रिष्टुब्बृहतीगर्भातिजगती; ३६ विपरीतपादलक्ष्मा पंक्तिः, ३७ त्र्यव० पञ्च० शक्वरी, ४१ त्र्यव० षट्० ककु-म्मती शक्वरी, ४२ स्वराडनुष्टुप्; ४३ विराडास्तारपंक्तिः; ४४-४५, ४९ जगती; ४६ षट्प० अनुष्टुब्गर्भा परा शक्वरी; ४७ षट्प० उष्णिगनुष्टुब्गर्भा पराऽतिशक्वरी; ४८ पुरोऽनुष्टुप्; ५१ त्र्यव० षट्० अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती शक्वरी, ५२ पञ्च० अनुष्टुब्गर्भा पराऽतिजगती; ५७ पुरोऽतिजागता जगती; ५८ पुरस्ताद्बृहती; ६१ पुरोबार्हता; ६२ परा विराट् ।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्नी
उरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥

असंबाधं बध्यतो मानवानां
यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति
पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो
यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्
सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ३ ॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या
यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्
सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे
यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा
भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा
हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्नि
मिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ ६ ॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं
देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्
यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥
यस्यामापः परिचराः समानीः
अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहां
अथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥
यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥
गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तो
अरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

...

त्वेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं
मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥
ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥
विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां
भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥
महत् सधस्थं महती बभूविथ
महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८ ॥
अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
कन्या३यां वर्चो यद् भूमे
तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५॥

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् २८

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि
क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं
घृतं त्वाऽभि नि षीदेम भूमे ॥ २९ ॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु
यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवी मोत्पुनामि ॥ ३० ॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीः
यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु
मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तात्
नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्
परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीः
अहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी
यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयून्
इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां
सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥ ४१ ॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भाम्
आशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु
मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना
देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्
यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥

यस्यामापः परिचराः समानीः
अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहाम्
अथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तो
अरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं
यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व
माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां
यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्याम्
ऊर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद्
योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्याः
त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं
मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां
भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥

महत् सधस्थं महती बभूविथ
महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८ ॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम्।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूः
त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१ ॥

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयाऽन्नेन मर्त्याः।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु
जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२ ॥

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव
यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे
तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश
यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे
तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥
(७।११)

यस्ते॑ ग॒न्धः पुरु॑षेषु स्त्री॒षु पुं॒सु भगो॒ रुचिः॑ ।
यो अश्वे॑षु वी॒रेषु॒ यो मृ॒गेषू॒त ह॒स्तिषु॑ ।
क॒न्या॑यां॒ वर्चो॒ यद् भू॑मे
तेना॒स्माँ अपि॒ सं सृ॑ज॒ मा नो॑ द्विक्षत॒ कश्च॒न ॥२५॥

शि॒ला भूमि॒रश्मा॑ पां॒सुः सा भूमि॒ः संधृ॑ता धृ॒ता ।
तस्यै॒ हिर॑ण्यवक्षसे पृथि॒व्या अ॑करं॒ नमः॑ ॥ २६ ॥

यस्यां॑ वृ॒क्षा वा॑नस्प॒त्या ध्रु॒वास्तिष्ठ॑न्ति वि॒श्वहा॑ ।
पृ॒थि॒वीं वि॒श्वधा॑यसं धृ॒ताम॒च्छाव॑दामसि ॥ २७ ॥

उ॒दीरा॑णा उ॒तासी॑नास्तिष्ठ॑न्तः प्र॒क्राम॑न्तः ।
प॒द्भ्यां दक्षिणस॒व्याभ्यां॒ मा व्य॑थिष्महि॒ भूम्या॑म् २८

वि॒मृ॒ग्वरीं॑ पृथि॒वीमा व॑दामि
क्ष॒मां भूमिं॒ ब्रह्म॑णा वावृधा॒नाम् ।
ऊर्जं॑ पु॒ष्टं बिभ्र॑तीमन्नभा॒गं
घृ॒तं त्वा॒ऽभि नि षी॑देम भूमे ॥ २९ ॥

शु॒द्धा न॒ आप॑स्त॒न्वे॑ क्षरन्तु
यो नः॒ सेदु॒रप्रि॑ये॒ तं नि द॑ध्मः ।
प॒वित्रे॑ण पृथिवि॒ मोत्पु॑नामि ॥ ३० ॥

यास्ते॒ प्राचीः॑ प्र॒दिशो॒ या उदी॑चीः
यास्ते॑ भूमे अध॒राद्याश्च॑ प॒श्चात् ।
स्यो॒नास्ता मह्यं॒ चर॑ते भवन्तु॒
मा नि प॑प्तं॒ भुव॑ने शिश्रिया॒णः ॥ ३१ ॥

मा नः॑ प॒श्चान्मा पु॒रस्ता॑त्
नु॒दिष्ठा॒ मोत्त॒राद॑ध॒रादु॒त ।
स्व॒स्ति भू॑मे नो भव॒ मा वि॑दन्
परिप॒न्थिनो॒ वरी॑यो यावया व॒धम् ॥ ३२ ॥

याव॑त् ते॒ऽभि वि॒पश्या॑मि॒ भूमे॒ सूर्ये॑ण मे॒दिना॑ ।
ताव॑न्मे॒ चक्षु॒र्मा मे॒ष्टोत्त॑रामुत्त॒रां समा॑म् ॥ ३३ ॥

यच्छया॑नः प॒र्याव॑र्ते॒ दक्षि॑णं स॒व्यम॒भि भू॑मे पा॒र्श्वम् ।
उ॒त्ता॒नास्त्वा॑ प्र॒तीचीं॒ यत् पृ॒ष्टीभि॑रधि॒शेम॑हे ।
मा हिंसी॒स्तत्र॑ नो भूमे॒ सर्व॑स्य प्रतिशीवरि ॥३४॥

यत् ते॑ भूमे वि॒खना॑मि क्षि॒प्रं तद॑पि॑ रोहतु ।
मा ते॒ मर्म॑ विमृग्वरि॒ मा ते॒ हृद॑यमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

ग्री॒ष्मस्ते॑ भूमे व॒र्षाणि॑ श॒रद्धे॑म॒न्तः शिशि॑रो वस॒न्तः ।
ऋ॒तव॑स्ते॒ विहि॑ता हाय॒नीः
अ॑होरा॒त्रे पृ॑थिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥

याप॑ स॒र्पं वि॒जमा॑ना वि॒मृग्व॑री
यस्या॒मास॑न्न॒ग्नयो॒ ये अ॒प्स्व॑न्तः ।
परा॒ दस्यू॒न् दद॑ती देव॒पीयू॒न्
इन्द्रं॒ वृणा॒ना पृ॑थि॒वी न वृ॒त्रम् ।
श॒क्राय॑ दध्रे वृष॒भाय॒ वृष्णे॑ ॥ ३७ ॥

यस्यां॑ सदोहविर्धा॒ने यूपो॒ यस्यां॑ निमी॒यते॑ ।
ब्र॒ह्माणो॒ यस्या॒मर्च॑न्त्यृ॒ग्भिः साम्ना॑ यजु॒र्विदः॑ ।
यु॒ज्यन्ते॒ यस्या॑मृ॒त्विजः॒ सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥३८॥

यस्यां॒ पूर्वे॑ भूतकृ॒त ऋष॑यो॒ गा उदा॑नृचुः ।
स॒प्त स॒त्रेण॑ वे॒धसो॑ य॒ज्ञेन॒ तप॑सा स॒ह ॥ ३९ ॥

सा नो॒ भूमि॒रा दि॑शतु॒ यद्धनं॒ काम॑यामहे ।
भगो॑ अनु॒प्रयु॑ङ्क्ता॒मिन्द्र॒ एतु पुरोग॒वः ॥ ४० ॥

यस्यां॒ गाय॑न्ति॒ नृत्य॑न्ति॒ भूम्यां॒ मर्त्या॒ व्यै॑लबाः ।
यु॒ध्यन्ते॒ यस्या॑माक्र॒न्दो यस्यां॒ वद॑ति दु॒न्दुभिः॑ ।
सा नो॒ भूमिः॒ प्र णु॑दतां
स॒पत्ना॑नसप॒त्नं मा॑ पृथि॒वी कृ॑णोतु ॥ ४१ ॥

यस्या॒मन्नं॑ व्रीहिय॒वौ यस्या॑ इ॒माः पञ्च॑ कृ॒ष्टयः॑ ।
भूम्यै॑ प॒र्जन्य॑पत्न्यै॒ नमो॑ऽस्तु व॒र्षमे॑दसे ॥ ४२ ॥

यस्याः॒ पुरो॑ दे॒वकृ॑ताः॒ क्षेत्रे॒ यस्या॑ वि॒कुर्व॑ते ।
प्र॒जाप॑तिः पृथि॒वीं वि॒श्वग॑र्भा॒
माशा॑माशां॒ रण्यां॑ नः कृणोतु ॥ ४३ ॥

नि॒धिं बिभ्र॑ती बहु॒धा गुहा॒ वसु॑
म॒णिं हिर॑ण्यं पृथि॒वी द॑दातु मे ।
वसू॑नि नो वसु॒दा रास॑माना
दे॒वी द॑धातु सुमन॒स्यमा॑ना ॥ ४४ ॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥
यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा
हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति
प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद्यच्छिवं
तेन नो मृड ॥ ४६ ॥
ये ते पन्थानो बहवो जनायना
रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं
पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं
तेन नो मृड ॥ ४७ ॥
मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्
भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना
सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥ ४८ ॥
ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः
सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित
ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥ ४९ ॥
ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥५०॥
यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति
हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते
रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान्।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥
यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते
अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता
सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥५२॥
द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ५३
अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ५४
अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद्
देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम्।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीं
अकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५॥
ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥५६॥
अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान्
य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा
वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७॥
यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि
यदीक्षे तद्वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमान्
अवान्यान् हन्मि दोधतः ॥५८॥
शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥५९॥
यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मा
अन्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यत्
आविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६०॥
त्वमस्यावपनी जनानां
अदितिः कामदुघा पप्रथाना।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति
प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥६१॥
(३१८१)

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ ६२ ॥
भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥

पृथिवी-सहचारी देवगणः

(१) पृथिव्यन्तरिक्षे ।
॥ १४ ॥ (ऋ० ७।१०४।२३ [उत्तरार्धस्य])
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । जगती ।

पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसो
अन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

(२) पृथिवी-द्यन्तरिक्ष-सोम-पूष-पथ्या-स्वस्तयः ।
॥ १५ ॥ (ऋ० १०।५९।७)
बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु
पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु
पुनः पूषा पथ्यां३ या स्वस्तिः ॥ ७ ॥

(३) पृथिवीसवितारौ ।
॥ १६ ॥ (वा० य० ९।५)

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीम्
अदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश
तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥ ५ ॥

द्यावापृथिवी ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।२२।१३-१४)
मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥
तयोरिद् घृतवत् पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः ।
गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।११२।१ । आद्यपादस्य)
कुत्स आङ्गिरसः । जगती ।

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१५९।१-५)
दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा
मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससा
इत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥
उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो
मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुः
उरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो
मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि
पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो
जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि
समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥
तद् राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं
वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना
रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१६०।१-५)

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव
ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते
देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥

उरुव्यचसा महिनी असश्चता
पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुष्ये॒ न रोदसी
पिता यत् सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥

स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्
पुनाति धीरो भुवनानि मायया।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं
विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥

अयं देवानामपसामपस्तमो
यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया
ऽजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः
क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा
पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।१८५।१-११)
अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। त्रिष्टुप्।

कतरा पूर्वा कतराऽपराऽयोः
कथा जाते कवयः को वि वेद।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम
वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥

भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं
पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे
द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २ ॥

अनेहो दात्रमदितेरनर्वं
हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत्।
तद् रोदसी जनयतं जरित्रे
द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥

अतप्यमाने अवसाऽवन्ती
अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां
द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥

संगच्छमाने युवती समन्ते
स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं
द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५ ॥

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन
हुवे देवानामवसा जनित्री।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके
द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ६ ॥

उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते
उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन्।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती
द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ७ ॥

देवान् वा यच्चकृमा कच्चिदागः
सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां
द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ८ ॥

उभा शंसा नर्या मामविष्टा
मुभे मामूती अवसा सचेताम्।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरा
येषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥

ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या
अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः।
पातामवद्याद् दुरितादभीके
पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १० ॥

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु
पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम्।
भूतं देवानामवमे अवोभि
र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥
(०१११)

॥ ६ ॥ (ऋ० २।३२।१)

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । जगती ।

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो
भूतमवित्री वचसः सिषासतः
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर
उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥ १ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० १।२२।१३-१५)
(हविर्धाने वा) गायत्री ।

प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे ।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥
द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥
आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।
इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ४।३८।१)
वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा
या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां
घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ४।५६।१-७)
त्रिष्टुप्, ५-७ गायत्री ।

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे
रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत् सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्
रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥ १ ॥
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैः
अमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे
यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥ २ ॥

स इत् स्वपा भुवनेष्वास
य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके
अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥ ३ ॥
नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः
पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ४ ॥
प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
शुची उप प्रशस्तये ॥ ५ ॥
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ ६ ॥
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ६।४८।२२)
शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) ।
द्यावाभूमी वा पृश्निर्वा । अनुष्टुप्

सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।
पृश्न्या दुग्धं सकृत् पयः
तदन्यो नानु जायते ॥ २२ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ६।७०।१-६)
भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । जगती ।

घृतवती भुवनानामभिश्रिया
उर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा
विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ १ ॥
असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती
घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी
अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

यो द्यामृजवे क्रमणाय रोदसी
मर्तो ददाश धिषणे स साधति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि
युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥ ३ ॥
घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते
घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते
ते इद् विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥ ४ ॥
मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां
मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता
महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥ ५ ॥
ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां
पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा
सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥ ६ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० ७।५३।१-३)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः
सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः
पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥ १ ॥
प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः
गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन
जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥ २ ॥
उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति
पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० १०।५९।८-१०)
बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । [१० पूर्वार्धस्य इंद्र-द्यावापृथिवी] । ८ पंक्तिः, ९ महापंक्तिः, १० पंक्त्युत्तरा ।

शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो
मो षु ते किं चनाममत् ॥ ८ ॥
अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा ।
क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो
द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ९
समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो
मो षु ते किं चनाममत् ॥ १० ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० २।१०)
उपहूता पृथिवी मातोप मां
पृथिवी माता ह्वयताम् ॥ १० ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० ५।२८)
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम् ॥ २८ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० ६।१६, २१, ३५)
घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथाम् ॥ १६ ॥
द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा ॥ २१ ॥
मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व
धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

॥ १७ ॥ (वा० य० ७।२१)
द्यावापृथिवीभ्यां पचते ॥ २१ ॥

॥ १८ ॥ (वा० य० ११।२८)
द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ॥ २८ ॥

॥ १९ ॥ (वा० य० ३७।३)
देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य
शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥
(७१४१)

॥ १० ॥ (वा० य० ३८।६, १४)

द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णामि ॥ ६ ॥

द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ॥ १४ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० १।३२।१-४)

ब्रह्मा । अनुष्टुप् ; २ ककुम्मती अनुष्टुप् ।

इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः १

अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव ।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद्वेधसो न वा ॥ २ ॥

यद्रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् ।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥ ३ ॥

विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधिश्रितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ५।२४।३)

अथर्वा । चतुष्पदाऽतिशक्वरी ।

द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां
पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यां .
आशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ३ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० १९।१४।१) त्रिष्टुप् ।

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां
शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु
न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ (सा० ६११)

वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ
ये अप्रथेथाममितमभि योजनम् ।
द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥८॥

द्यावापृथिवी--सहचारी--देवगणः

(१) द्युभूम्यश्विनः ।

॥ १५ ॥ (ऋ० १०।१३२।१)

शकपूतो नार्मेधः । न्यङ्कुसारिणी ।

ईजानमिद् द्यौर्गूर्तावसु--रीजानं भूमिरभि प्रभूषणि ।
ईजानं देवावश्विना--वभि सुम्नैरवर्धताम् ॥ १ ॥

संज्ञानम् ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१९१।१-४)

संवनन आङ्गिरसः । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ११।४६)

संज्ञानमसि कामधरणं
मयि ते कामधरणं भूयात् ॥ ४६ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० २६।१)

सप्त ऋ ष सदो अष्टमी भूतसाधनी
सकामाँ२ऽ अध्वनस्कुरु
संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ३०।९)

संज्ञानाय स्मरकारीम् ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ३।३०।१-७)

अथर्वा । चन्द्रमाः सांमनस्यम् । अनुष्टुप्, ५ विराड् जगती, ६ प्रस्तारपंक्तिः, ७ त्रिष्टुप् ।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ १ ॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥२॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ३ ॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ४ ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥ ५ ॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ६ ॥

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि
एकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः
सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ ७ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ७।५२।१-२)

(सांमनस्यं, अश्विनौ) । १ ककुम्मत्यनुष्टुप्, २ जगती ।

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥१॥

सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा
मा युष्महि मनसा दैव्येन ।
मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते
मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥ २ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० ६।९४।१-३)

अथर्वाङ्गिराः । सरस्वती (सांमनस्यं) । अनुष्टुप्,
२ विराड् जगती ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि ॥१॥

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि
मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि
मम यातमनुवर्त्मान एत ॥ २ ॥

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥ ३ ॥

(७१७१)



निर्ऋतिः

॥ १ ॥ (ऋ० १०।५९।१-३)

बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

प्र तार्यायुः प्रतरं नवीयः
स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।
अध च्यवान उत् तवीत्यर्थं
परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ १ ॥
सामन् नु राये निधिमन्न्वन्नं
करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु
परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ २ ॥
अभी ष्व१र्यः पौंस्यैर्भवेम
द्यौर्न भूमिं गिरयो नाज्रान् ।
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत
परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० १२।६२-६५)

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ
स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या
नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥
नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजो
ऽयस्मयं वि चृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदाना
उत्तमे नाके अधिरोहयैनम् ॥ ६३ ॥
यस्यास्ते घोर आसञ्जुहोमि
एषां बन्धानामवसर्जनाय ।
यं त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते
निर्ऋतिं त्वाऽहं परिवेद विश्वतः ॥ ६४ ॥
यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध
पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् ।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्याद्
अथैतं पितुमद्धि प्रसूतः ॥ ६५ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० ३५।१)

निर्ऋतिं निर्जल्येन शीर्ष्णा ॥ २ ॥

(वा. य. ३०।९,१४)

निर्ऋत्यै परिविविदानम् ॥ ९ ॥
निर्ऋत्यै कोशकारीम् ॥ १४ ॥

अक्षाः ।

॥ १ ॥ (ऋ. १०।३४।१, ७, ९, ११)

कवष ऐलूषः, अक्षो वा मौजवान् वा । त्रिष्टुप्, ७ जगती ।

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति
प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो
विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥ १ ॥

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो
निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो
मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥ ७ ॥
नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्ति
अहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः
शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥ ९ ॥
यो वः सेनानीर्महतो गणस्य
राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि
दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥ १२ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ५।१७)

देवश्रुतौ देवेष्वा घोषतं
प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती
ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम् ।
स्वं गोष्ठमा वदतं देवी दुर्ये
आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टं
अत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥ १७ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० १०।२८-२९)

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां
ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्माऽसि सविताऽसि सत्यप्रसवो
वरुणोऽसि सत्यौजा इन्द्रोऽसि विशौजा
रुद्रोऽसि सुशेवः ।
बहुकार श्रेयस्कर भूयस्कर
इन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥ २८ ॥
अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः
पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा
स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिः
यतध्वं सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥ २९ ॥

अक्ष-कितव-निन्दा।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।३४।२-६, ८, १०-११, १४)

कवष ऐलूष, अक्षो मौजवान् वा। त्रिष्टुप्।

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा
शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोः
अनुव्रतामप जायामरोधम् ॥ २ ॥
द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि
न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य
नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥ ३ ॥
अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य
यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुः
न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥ ४ ॥
यदादीध्ये न दविषाण्येभिः
परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ
एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥ ५ ॥
सभामेति कितवः पृच्छमानो
जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं
प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥ ६ ॥
त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां
देव इव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते
राजा चिदेभ्यो नम इत् कृणोति ॥ ८ ॥
जाया तप्यते कितवस्य हीना
माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो
अन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥ १० ॥
(७११७)

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापा-
न्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्
सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥ ११ ॥
मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो
मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिः
अन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥ १४ ॥

ज्ञानम् ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१६४।३७)
दीर्घतमा औचथ्यः । (आत्मज्ञानम्) । त्रिष्टुप् ।

न वि जानामि यदिवेदमस्मि
निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा माऽगन् प्रथमजा ऋतस्य
आदिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १०।७१।१-११)
बृहस्पतिराङ्गिरसः । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं
यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्
प्रेणा तदेषां निहितं गुहाऽऽविः ॥ १ ॥
सक्तुमिव तितउना पुनन्तो
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताऽधि वाचि ॥ २ ॥
यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्
तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा
तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥ ३ ॥
उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचं
उत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे
जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ४ ॥
उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः
नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष
वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥ ५ ॥
यस्तित्याज सचिविदं सखायं
न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति
नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ६ ॥
अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे
ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥ ७ ॥
हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु
यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिः
ओहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥ ८ ॥
इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति
न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया
सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥ ९ ॥
सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगतेन
सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्बिषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषां
अरं हितो भवति वाजिनाय ॥ १० ॥
ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्
गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां
यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥ ११ ॥
(७१११)

अनुमतिः।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।२०।१-६)
अथर्वा। १-२ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक्, ५ जगती
६ अतिशक्वरी गर्भा जगती।

अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥ १ ॥
अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ २ ॥
अनु मन्यतामनुमन्यमानः
प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम्।
तस्य वयं हेडसि माऽपि भूम
सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ॥ ३ ॥
यत्ते नाम सुहवं सुप्रणीते
अनुमते अनुमतं सुदानु।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे
रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ ४ ॥
एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम
सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम्।
भद्रा ह्यऽस्याः प्रमतिर्बभूव
सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ॥ ५ ॥
अनुमतिः सर्वमिदं बभूव
यत्तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्याम
अनुमते अनु हि मंससे नः ॥ ६ ॥

उपस्थः।

॥ १ ॥ (ऋ० ३।२६।९)
विश्वामित्रो गाथिनः। त्रिष्टुप्।

शतधारमुत्समक्षीयमाणं
विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे
तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥ ९ ॥

श्रद्धा।

॥ १ ॥ (ऋ० ९।१।६)
मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। (सूर्यस्य दुहिता श्रद्धादेवी-सायणः) गायत्री।

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता।
वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १०।१५१।१-५)
श्रद्धा कामायनी। अनुष्टुप्।

श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥ १ ॥
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥ २ ॥
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३ ॥
श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४ ॥
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ ॥

आशिः [भार्या]

॥ १ ॥ (ऋ० १०।८५।२०-२८)
सूर्या सावित्री। (नृणां विवाहमन्त्राः) अनुष्टुप्। २०, २१, २३, २४, २६ त्रिष्टुप्; २७ जगती।

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं
हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं
स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥ २० ॥
उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा
विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां
स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥ २१ ॥

उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं१ सं जायां पत्या सृज ॥२२॥
अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था
येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्
सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥ २३ ॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्
येन त्वाऽबध्नात् सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके
अरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥ २४ ॥
प्रेतो मुंचामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगाऽसति ॥ २५ ॥
पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्य
अश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ २६ ॥
इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतां
अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं१ सं सृजस्व
अधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥ २७ ॥
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २८ ॥

॥ १ ॥ (वा० य० २।१०)

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधातु
अस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष
उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता
ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० ४।५)

मा वो देवास ईमहे वामं प्रयत्यध्वरे ।
मा वो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥५॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ८।५)

अदस्मै नरो वचसे दधातन
यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः ।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वसु
अधा विश्वाहारप एधते गृहे ॥ ६ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य १९।१०५)

इषमूर्जमहमित आदं
ऋतस्य योनिं महिषस्य धाराम् ।
आ मा गोषु विशत्वा तनूषु
जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥

होत्राशिषः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१८३।३)
प्रजावान् प्राजापत्यः । त्रिष्टुप् ।

अहं गर्भमदधामोषधीषु
अहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यां
अहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ७।१५)

तृपन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा
याः सु प्रीताः सुहुता यत् स्वाहा ॥ १५ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० २५।२८)

होताऽध्वर्युरावया अग्निमिन्धो
ग्राव ग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन
स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ २८ ॥

॥ ४ ॥ (सा० ९३)

राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी ॥८३॥
(७।१।१)

॥ ५ ॥ (साम. ९८)

विश्वामित्रो गाथिनः । उष्णिक् ।

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ९८ ॥

॥ ६ ॥ (साम० १५१)

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
अच्छावभृथमोजसा ॥ १५१ ॥

॥ ५ ॥ (सा० १७२)

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । गायत्री ।

ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

अभिशापः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ३।५३।२१-२४)

विश्वामित्रो गाथिनः । त्रिष्टुप्, २२ अनुष्टुप् ।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य
याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट
यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ २१ ॥

परशुं चिद् वि तपति शिम्बलं चिद् वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥

न सायकस्य चिकिते जनासो
लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति
न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥ २३ ॥

इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा
अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं
ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥ २४ ॥

रयिसंवर्धनम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ३।२०।८-९)

वसिष्ठः । ८ विश्वा भुवनानि, ९ पंचः प्रदिशः । ८ विराड् जगती, ९ अनुष्टुप् ।

वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविम
इमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन्
रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ८ ॥

दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथाबलम् ।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥ ९ ॥

वाक् ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१६४।४२, ४५)

दीर्घतमा औचथ्यः । ४२ आद्यर्धर्चस्य वाक्, द्वितीयस्य आपः, ४५ वाक् । ४२ प्रस्तारपङ्क्तिः, ४५ त्रिष्टुप् ।

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति
तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥ ४२ ॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि
तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ३।५३।१५-१६)

विश्वामित्रो गाथिनः । (ससर्परी) । त्रिष्टुप्, १६ गायत्री ।

ससर्परीरमतिं बाधमाना
बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्यस्य दुहिता ततान
श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥ १५ ॥

ससर्परीरभरत् तूयमेभ्यो
अधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।
सा पक्ष्या नव्यमायुर्दधाना
यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥ १६ ॥
(७१४)

॥ ३ ॥ (ऋ० ८।१००।१०-११)
नेमो भार्गवः । त्रिष्टुप् ।

यद्वाग्वद॑न्त्यविचेत॒नानि
राष्ट्री॑ दे॒वानां॑ निष॒साद॑ म॒न्द्रा ।
चत॑स्र॒ ऊर्जं॑ दुदुहे॒ पयां॑सि
क्व॑ स्विदस्याः पर॒मं ज॑गाम ॥ १० ॥
दे॒वीं वाच॑मजनयन्त दे॒वास्
तां वि॒श्वरू॑पाः प॒शवो॑ वदन्ति ।
सा नो॑ म॒न्द्रेष॒मूर्जं॒ दुहा॑ना
धे॒नुर्वाग॒स्मानुप॒ सुष्टु॒तैतु॑ ॥ ११ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।१०५।१)
अथर्वा । (दैव्यं वचः) । अनुष्टुप् ।

अ॒प॒क्राम॒न् पौरु॑षेयाद्वृणा॒नो दैव्यं॒ वचः॑ ।
प्रणी॑तीर॒भ्याव॑र्तस्व॒ विश्वे॑भिः॒ सखि॑भिः स॒ह ॥ १ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० १।१५, १६)

अ॒ग्नेस्त॒नूर॑सि वा॒चो वि॒सर्ज॑नं
दे॒ववी॑तये त्वा गृह्णामि बृ॒हद्ग्रा॑वाऽसि वानस्प॒त्यः
स इ॒दं दे॒वेभ्यो॑ ह॒विः श॑मीष्व सु॒शमि॑ शमीष्व
हवि॑ष्कृ॒देहि॒ हवि॑ष्कृ॒देहि॑ ॥ १५ ॥
कु॒क्कु॒टोऽसि॒ मधु॑जिह्व॒ इष॒मूर्ज॒माव॑द
त्वया॑ व॒यꣳ स॑ङ्घा॒तꣳ स॑ङ्घा॒तं जे॑ष्म
व॒र्षवृ॑द्धमसि॒ प्रति॑ त्वा व॒र्षवृ॑द्धं वेत्तु
परा॑पूत॒ꣳ रक्षः॒ परा॑पूता॒ अरा॑तयो
अप॑हत॒ꣳ रक्षो॑ वा॒युर्वो॒ विवि॑नक्तु
दे॒वो वः॑ सवि॒ता हिर॑ण्यपाणिः॒ प्रति॑गृभ्णा॒त्व
अच्छि॑द्रेण पा॒णिना॑ ॥ १६ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ४।४, १७, १९-२१, २३)

वा॒क्पति॑र्मा पुनातु ॥ ४ ॥
ए॒षा ते॑ शुक्र त॒नूरे॒तद्वर्चः॑ ।
तया॒ सम्भ॑व॒ भ्राजं॑ गच्छ ।
जूर॑सि धृ॒ता मन॑सा॒ जुष्टा॒ विष्ण॑वे ॥ १७ ॥
चिद॑सि म॒नासि॒ धीर॑सि
दक्षि॑णासि क्ष॒त्रिया॑सि य॒ज्ञिया॒सि
अदि॑तिरस्युभ॒यतः॑ शी॒र्ष्णी ।
सा नः॒ सु॒प्राची॒ सुप्र॑तीच्येधि
मि॒त्रस्त्वा॑ प॒दि ब॑ध्नीतां
पू॒षाऽध्व॑नस्पा॒त्विन्द्रा॒याध्य॑क्षाय ॥ १९ ॥
अनु॑ त्वा मा॒ता म॑न्यता॒मनु॑ पि॒ता
अनु॒ भ्राता॒ सग॒र्भ्योऽनु॒ सखा॒ सयू॑थ्यः ।
सा दे॑वि दे॒वमच्छे॒हीन्द्रा॑य
सोम॑ꣳ रु॒द्रस्त्वा व॑र्तयतु
स्व॒स्ति सोम॑सखा॒ पुन॒रेहि॑ ॥ २० ॥
वस्व्य॒स्यदि॑तिरस्यादि॒त्यासि॑ रु॒द्रासि॑ च॒न्द्रासि॑ ।
बृह॒स्पति॑ष्ट्वा सु॒म्ने र॑म्णातु
रु॒द्रो वसु॑भि॒रा च॑के ॥ २१ ॥
सम॑ख्ये दे॒व्या धि॒या सं दक्षि॑णयो॒रुच॑क्षसा ।
मा म॒ आयुः॒ प्रमो॑षी॒र्मो अ॒हं
तव॑ वी॒रं वि॑देय॒ तव॑ देवि स॒न्दृशि॑ ॥ २३ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० ५।३३)

वा॒गस्यै॒न्द्रम॑सि स॒दोऽसि ॥ ३३ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० ६।११, १४, १५)

रेव॑ति॒ यज॑माने प्रि॒यं धा आ वि॑श ।
उ॒रोर॒न्तरि॑क्षात् स॒जूर्दे॒वेन॒ वाते॑ना॒स्य
ह॒विष॒स्त्मना॑ यज॒ सम॑स्य त॒न्वा भव ॥ ११ ॥
वाचं॑ ते शुन्धामि ॥ १४ ॥
वाक्त॒ आप्या॑यताम् ॥ १५ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० ८।३७)

वा॒ग्दे॒वी जु॑षा॒णा सोम॑स्य तृप्यतु
स॒ह प्रा॒णेन॒ स्वाहा॑ ॥ ३७ ॥

॥ १० ॥ (वा० य० ९।२९)

प्र नो॑ यच्छत्वर्य॒मा प्र पू॒षा प्र बृह॒स्पतिः॑ ।
प्र वा॒ग्दे॒वी द॑दातु नः॒ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० १८।२९)

वाग्यज्ञेन कल्पताम् ॥ २९ ॥

॥ ११ ॥ (वा० य० ११।३३)

वाग्यज्ञेन कल्पता२ स्वाहा ॥ ३३ ॥

॥ १३ ॥ (वा० य० ३७।१६)

धर्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्यां
धर्त्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः।
वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥ १६ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।४३।१)

प्रस्कण्व । त्रिष्टुप्।

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः
सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन्
तासामेका वि पपातानु घोषम् ॥ १ ॥

हस्तः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।६०।१२)

बन्धु श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायना । अनुष्टुप्।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥ १२ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० ४।१३।७)

शन्ताति । अनुष्टुप्।

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां
ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥ ७ ॥

मन्युः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।८३।१-७

म युलापस । त्रिष्टुप् । १ जगती ।

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक
सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
सा ह्याम दासमार्यं त्वया युजा
सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥ १ ॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो
मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः
पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥ २ ॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्
तपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च
विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥ ३ ॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः
स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावान्
अस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥

अभागः सन्नप परेतो अस्मि
तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळ
अहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥ ५ ॥

अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ्
प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व
हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥ ६ ॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मे
अधा वृत्राणि जंघनाव भूरि।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रं
उभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १०।८४।१-७)

जगती १-३ त्रिष्टुप्।

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो
हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना
अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ १ ॥

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व
सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद
ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे
रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे
वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥ ३ ॥

एको बहूनामसि मन्यवीळितो
विशं विशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं
द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥ ४ ॥

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो३
अस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि
विद्मा तमुत्सं यत आ बभूथ ॥ ५ ॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक
सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि
महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥ ६ ॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतं
अस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः
पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ [१-१७] (वा० य० १८।४)

मन्युश्च मे भामश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० १९।९)

मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० ३०।१४)

मन्यवेऽयस्तापम् ॥ १४ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ६।४२।१-३)
भृग्वङ्गिराः (परस्परं चित्तैकीकरणकामः) अनुष्टुप् १-२ भुरिक् ।

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥ १ ॥
सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥ २ ॥
अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

शकुन्तः

(कपिञ्जलरूपीन्द्रः)

॥ १ (ऋ० २।४२।१-३)
गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । त्रिष्टुप् ।

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाणः
इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि
मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥ १ ॥
मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो
मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्
सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥
अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां
सुमंगलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो
बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० २।४३।१-३)
जगती, २ अतिशक्वरी अष्टिर्वा ।

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो
वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगा इव
गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥ १ ॥
(७३०१)

उद्गातेव शकुने साम गायसि
ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या
सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद
तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा
बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

श्येनः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।२६।४-७)
वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु
प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत् स्वधया सुपर्णो
हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥

भरद्यदि विरतो वेविजानः
पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येन
उत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५ ॥

ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं
परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्
दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥

आदाय श्येनो अभरत् सोमं
सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरंधिरजहादरातीः
मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ४।२७।१-५)
(५ इन्द्रो वा) । त्रिष्टुप्, ५ शक्वरी ।

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदं
अहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्
अध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥ १ ॥

न घा स मामप जोषं जभार
अभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरंधिरजहादरातीः
उत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥ २ ॥

अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योः
वि यद्यदि वात ऊहुः पुरंधिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां
कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥ ३ ॥

ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं
श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णं
अध यामनि प्रसितस्य तद् वेः ॥ ४ ॥

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं
आपिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रं
इन्द्रो मदाय प्रति धत् पिबध्यै
शूरो मदाय प्रति धत् पिबध्यै ॥ ५ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ७।४१।१-२)
प्रस्कण्वः । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द
श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन् विश्वान्यवरा रजांसि
इन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥ १ ॥

श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः
सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद्वसु यत् पराभृतं
अस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥ २ ॥

(७४१९)

सरमा ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१०८।१,३,५,७,९)
पणयोऽसुराः । त्रिष्टुप् ।

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड्
दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
काऽस्मेहितिः का परितक्म्याऽसीत्
कथं रसाया अतरः पयांसि ॥ १ ॥
कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका
यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधाम
अथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥ ३ ॥
इमा गावः सरमे या ऐच्छः
परि दिवो अन्तान् सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्वी
उतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥ ५ ॥
अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो
गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा
रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥ ७ ॥
एवा च त्वं सरम आजगन्थ
प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा
अप ते गवां सुभगे भजाम ॥ ९ ॥

श्वानौ ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१४।१०-१२)
वैवस्वतो यमः । त्रिष्टुप् ।

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ
चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि
यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ १० ॥
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ
चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्
स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥ ११ ॥
उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ
यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय
पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १२ ॥

वृक्षाः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ३।८।११)
विश्वामित्रो गाथिनः । त्रिष्टुप् ।

वनस्पते शतवल्शो वि रोह
सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः
प्रणिनाय महते सौभगाय ॥ ११ ॥

अरण्यानी ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१४६।१-६)
देवमुनिरैरम्मदः । अनुष्टुप् ।

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि
न त्वा भीरिव विन्दतीँ ॥ १ ॥
वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः ।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते ॥ २ ॥
उत गाव इवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ॥ ३ ॥
गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥ ४ ॥
न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते ॥ ५

आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम् ।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥ ६ ॥

अहिः, अहिर्बुध्न्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० २।३१।६)

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । जगती ।

उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्य
अहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधे
अपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ७।३४।१६-१७)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । द्विपदा विराट् ।

अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे
बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥ १६ ॥
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धात्
मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥ १७ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० ३४।५३)

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोतु
अज एकपात् पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः
स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ ५३ ॥

दक्षिणा; दक्षिणादातारो वा

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१०७।१-११)

दिव्य आङ्गिरसः, दक्षिणा वा प्राजापत्या । त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

आविरभून्महि माघोनमेषां
विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागाद्
उरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥ १ ॥
उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुः
ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते
वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥ २ ॥
दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या
न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासो
अवद्यभिया बहवः पृणन्ति ॥ ३ ॥
शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं
नृचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति संगमे
ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ॥ ४ ॥
दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति
दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां
यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ॥ ५ ॥
तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुः
यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो
यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥ ६ ॥
दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति
दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा
दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ॥ ७ ॥
न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुः
न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्च
एतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥ ८ ॥
भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे
भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तःपेयं सुरायाः
भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति ॥ ९ ॥

भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं
भोजायांस्ते कन्याः शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म
परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् ॥ १० ॥

भोजमश्वाः सुष्टुवाहो वहन्ति
सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु
भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ॥ ११ ॥

भाववृत्तम् ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१२९।१-७)
प्रजापतिः परमेष्ठी । त्रिष्टुप् ।

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्
अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥ १ ॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥ २ ॥

तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रे
अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्
तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥ ३ ॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ ४ ॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम्
अधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन् महिमान आसन्
स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेन
अथा को वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १०।१३०।१-७)
यज्ञः प्राजापत्यः । त्रिष्टुप् । १ जगती ।

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत
एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः
प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥ १ ॥

पुमाँ एनं तनुत उत् कृणत्ति
पुमान् वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः
सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥ २ ॥

काऽऽसीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानम्
आज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं
यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥ ३ ॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वा
उष्णिहया सविता सं बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान्
बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥ ४ ॥

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीः
इन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।
विश्वान् देवाञ्जगत्या विवेश
तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ॥ ५ ॥

(७५५१)

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या
यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे।
पश्यन् मन्ये मनसा चक्षसा तान्
य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥ ६ ॥
सहस्तोमा सहछन्दस आवृतः
सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा
अन्वालेभिरे रथ्यो३ न रश्मीन् ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १०।१५४।१-५)
यमी वैवस्वती। अनुष्टुप्।

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते।
येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१॥
तपसा ये अनाधृष्या—स्तपसा ये स्वर्ययुः
तपो ये चक्रिरे मह—स्ताँश्चिदेवापि गच्छतात्॥२
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः।
ये वा सहस्रदक्षिणा—स्ताँश्चिदेवापि गच्छतात्॥३
ये चित् पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः।
पितॄन् तपस्वतो यम ताँश्चिदेवापि गच्छतात्॥४
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥५

॥ ४ ॥ (ऋ० १०।१९०।१-३)
अघमर्षणो माधुच्छन्दसः। अनुष्टुप्।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदध—द्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चा—न्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥

(७४६६)



अथ ऋषयः

अत्रिः

॥ १ ॥ (ऋ० ५।४०।६-९)

अत्रिर्भौमः। त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्।

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया
अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसाऽपव्रतेन
तुरीयेण ब्रह्मणाऽविन्ददत्रिः ॥ ६ ॥
मा मामिमं तव सन्तमत्र
इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत्।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ
मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७ ॥
ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्
कीरिणा देवान् नमसोपशिक्षन्।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्
स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥ ८ ॥
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाऽविध्यदासुरः।
अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥ ९ ॥

विश्वामित्रः।

॥ १ ॥ (ऋ० ३।३३।४, ८, १०)

नदी ऋषिका। त्रिष्टुप्।

एना वयं पयसा पिन्वमाना
अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः
किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥
एतद् वचो जरितर्माऽपि मृष्ठा
आ यत् ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व
मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥ ८ ॥
आ ते कारो शृणवामा वचांसि
ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा
मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ १० ॥

वामदेवः।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।१८।१, ७)

१ इन्द्रः, ७ अदितिः ऋषिका। त्रिष्टुप्।

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो
यतो देवा उदजायन्त विश्वे।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो
मा मातरममुया पत्तवे कः ॥ १ ॥
किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्त
इन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः।
ममैतान् पुत्रो महता वधेन
वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून् ॥ ७ ॥

वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा ।

॥ १ ॥ (ऋ० ७।३३।१-९)
वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा
धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नॄन्
न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥
दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन
तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्
सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥ २ ॥
एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततार
एवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं
प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥ ३ ॥
जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणा-
मक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेण
इन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥
उद् द्यामिवेत् तृष्णजो नाथितासो
ऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोद्
उरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥ ५ ॥
दण्डा इवेद् गोअजनास आसन्
परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ
आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥
त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतः
तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते
सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥ ७ ॥
सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां
समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन
स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥
त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः
सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तो
ऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

वसिष्ठः ।

॥ २ ॥ (ऋ० ७।३३।१०-१४)
वसिष्ठपुत्राः । त्रिष्टुप् ।

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं
मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठा-
गस्त्यो यत् त्वा विश आजभार ॥ १० ॥
उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ
उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन
विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ ११ ॥
स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्
सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्
अप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥ १२ ॥
सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः
कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्
ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥ १३ ॥
उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति
ग्रावाणं बिभ्रत् प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना
आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥ १४ ॥
(७४८९)

काशिष्ठाशीः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ७।१०४।२३) [पूर्वार्धस्य]

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । जगती ।

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावताम्
अपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ॥ २३ ॥

रोमशा ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१२६।६)

(१) स्वनयो भावयव्यः । अनुष्टुप् ।

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥

अंगिरः पित्र्यथर्व-भृगुसोमाः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१४।६)

यमो वैवस्वतः । त्रिष्टुप् ।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ६ ॥

भावयव्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१२६।१-५,७)

कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः; ७ रोमशा ब्रह्मवादिनी । १-५ त्रिष्टुप्, ७ अनुष्टुप् ।

अमन्दान्स्तोमान् प्र भरे मनीषा
सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवान्
अतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥
शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कान्
शतमश्वान् प्रयतान्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां
दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ २ ॥

*

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता
वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्
सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥ ३ ॥
चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः
सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्
कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ ४ ॥
पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वः
त्रीन् युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा
अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥ ५ ॥
उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥

प्रजापतिः हरिश्चन्द्रः चर्म सोमो वा ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।२८।९)

शुनःशेप आजीगर्तिः । गायत्री ।

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज ।
नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ८ ॥

सोमकः साहदेव्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।१५।७-८)

वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः ।
अच्छा न हूत उदरम् ॥ ७ ॥
उत त्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात् ।
प्रयता सद्य आ ददे ॥ ८ ॥

पुरुमीळ्हो वैददश्विः, तरन्तो वैददश्विः।

॥ १ ॥ (ऋ० ५।६१।९-१०)
श्यावाश्व आत्रेयः। ८ सतो बृहती; १० गायत्री।

उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी।
प्रति श्यावाय वर्तनिम्।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय
येमतुः विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥
यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत्।
तरन्त इव मंहना ॥ १० ॥

तरन्तमहिषी शशीयसी।

॥ १ ॥ (ऋ० ५।६१।५-८)
श्यावाश्व आत्रेयः। गायत्री, ५ अनुष्टुप्।

सनत् साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम्।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५ ॥
उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी।
अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥
वि या जानाति जसुरिं
वि तृष्यन्तं वि कामिनम्।
देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥
उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः।
स वैरदेय इत् समः ॥ ८ ॥

रथवीतिर्दार्भ्यः।

॥ १ ॥ (ऋ० ५।६१।१७-१९)
श्यावाश्व आत्रेय। गायत्री।

एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह।
गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥
उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ।
न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥
एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु।
पर्वतेष्वपश्रितः ॥ १९ ॥

सुदासः पैजवनः।

॥ १ ॥ (ऋ० ७।१८।२२-२५)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः त्रिष्टुप्।

द्वे नप्तुर्देववतः शते गोः
द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं
होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥ २२ ॥
चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः
स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासः
तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥ २३ ॥
यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी
शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति
नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥ २४ ॥
इमं नरो मरुतः सश्चतानु
दिवोदासं न पितरं सुदासः।
अविष्टना पैजवनस्य केतं
दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥ २५ ॥

कुरुङ्गः।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।४५।३१-३३)
शंयुर्बार्हस्पत्यः ३१ पादनिचृत्, ३२ गायत्री, ३३ अनुष्टुप्।

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात्।
उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ३१ ॥
यस्य वायोरिव द्रवद् भद्रा रातिः सहस्रिणी।
सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२ ॥
तत् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥ ३३ ॥
(७११९)

सांजयः प्रस्तोकः
(दानस्तुतिः) ।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।४७।२२-२५)

गर्गो भारद्वाज । २२ त्रिष्टुप्, २३ अनुष्टुप् २४ गायत्री, २५ द्विपदा त्रिष्टुप्।

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र
दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः
शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥ २२ ॥

दशाश्वान् दश कोशान् दश वस्त्राधि भोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान् दिवोदासादसानिषम् ॥२३॥

दश रथान् प्रष्टिमतः शतं गाः अथर्वभ्यः ।
अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४ ॥

महि राधो विश्वजन्यं दधानान् ।
भरद्वाजान्त्सांजयो अभ्ययष्ट ॥ २५ ॥

आसङ्गः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।१।३०-३४)

आवंगः प्लयोगि. । ३४ शश्वती आंगिरसी ऋषिका । त्रिष्टुप्, ३०-३३ बृहती ।

स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम् ।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या
मघस्य मध्यातिथे ॥ ३० ॥

आ यदश्वान् वनन्वतः श्रद्धयाऽहं रथे रुहम् ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति
यो अस्ति याद्वः पशुः ॥ ३१ ॥

य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्ययां ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगा
आसंगस्य स्वनद्रथः ॥ ३२ ॥

अध प्लायोगिरति दासदन्यान्
आसंगो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो
नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥ ३३ ॥

अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तात
अनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः ।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह
सुभद्रमर्य भोजनं विभर्षि ॥ ३४ ॥

विभिन्दुः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।२।४१-४२)

मेध तिथिः काण्व । गायत्री ।

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् ।
अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१ ॥

उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या ।
जनित्वनाय मामहे ॥ ४२ ॥

पाकस्थामा कौरयाणः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।३।२१-२४)

मेध्यातिथिः काण्वः । गायत्री, २३ अनुष्टुप्, २४ बृहती ।

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठं
उपेव दिवि धावमानम् ॥ २१ ॥

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् ।
अदाद् रायो विबोधनम् ॥ २२ ॥

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः।
अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥ २३ ॥

आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।
तुरीयमिद् रोहितस्य पाकस्थामानं
भोजं दातारमब्रवम् । ॥ २४ ॥

कुरुङ्गः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।४।१९-२१)

देवातिथिः काण्वः । प्रगाथः (विषमा बृहती-समा सतो बृहती)।

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य ।
रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ १९ ॥
धीभिः सातानि काण्वस्य
वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे ।
निर्यूथानि गवामृषिः ॥ २० ॥
वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः ।
गां भजन्त मेहनाऽश्वं भजन्त मेहना ॥ २१ ॥

कशुश्चैद्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।५।३७ [उत्तरार्धस्य]-३९)

ब्रह्मातिथिः काण्वः । बृहती, ३९ अनुष्टुप् ।

यथा चिच्चैद्यः कशुः शतं
उष्ट्राणां ददत् सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३७ ॥
यो मे हिरण्यसंदृशो दश राज्ञो अमंहत ।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य
कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः ॥ ३८ ॥
माकिरेना पथा गाद् येनेमे यन्ति चेदयः ।
अन्यो नेत् सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः ॥ ३९ ॥

तिरिन्दिरः पार्शव्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।६।४६-४८)

वत्सः काण्वः । गायत्री ।

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे ।
राधांसि याद्वानाम् ॥ ४६ ॥
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ।
ददुष्पज्राय साम्ने ॥ ४७ ॥
उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत् ।
श्रवसा याद्वं जनम् ॥ ४८ ॥

त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।१९।३६,३७)

सोभरिः काण्वः । ककुप्, ३७ पंक्तिः ।

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम् ।
मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥ ३६ ॥
उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः
प्रणेता भुवद् वसुर्दियानां पतिः ॥ ३७ ॥

चित्रः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।२१।१७-१८)

सोभरिः काण्वः । प्रगाथः (विषमा ककुप्+समा सतो बृहती)

इन्द्रो वा घेदियन्मघं
सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु ।
त्वं वा चित्र दाशुषे ॥ १७ ॥
चित्र इद् राजा राजका
इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या
सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥

वरुः सौषाम्णिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।२४।२८-३०)

विश्वमना वैयश्वः । उष्णिक्, ३० अनुष्टुप् ।

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम् ।
व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥ २८ ॥
आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः ।
स्थूरं च राधः शतवत् सहस्रवत् ॥ २९ ॥
यत् त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते ।
एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥ ३० ॥

पृथुश्रवाः कानीतः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।४६।२१-२४)

वशोऽश्व्य । पंक्तिः, २२ संस्तारपंक्तिः, २३ गायत्री ।

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः
पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्याददे ॥ २१ ॥
षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनम्
उष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश
त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥ २२ ॥
दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः ।
मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥ २३ ॥
दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।
रथं हिरण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्
वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥ २४ ॥

श्रुतर्वा आर्क्ष्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।७४।१३-१५)

गोपवन आत्रेयः । अनुष्टुप् ।

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति ।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥१३॥
मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः ।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन् वयो न तुग्र्यम् ॥१४॥
सत्यमित् त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम् ।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥ १५ ॥

ऐन्द्रो वसुक्रः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।२८।२,६,८,१०,१२)

इन्द्र ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो
वर्ष्मन् तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि
यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति ॥ २ ॥
एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति
दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकं
अशत्रुं हि मा जनिता जजान ॥ ६ ॥
देवास आयन् परशूँरबिभ्रन्
वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्र्वं दधतो वक्षणासु
यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥ ८ ॥
सुपर्ण इत्था नखमा सिषाय
अवरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्
गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥ १० ॥
एते शमीभिः सुशमी अभूवन्
ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्
दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥ १२ ॥

कुरुश्रवणस्त्रासदस्यवः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।३३।४-५)

कवष ऐलूषः । गायत्री ।

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम् ।
मंहिष्ठं वाघतामृषिः ॥ ४ ॥
यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया ।
स्तवै सहस्रदक्षिणे ॥ ५ ॥

उपमश्रवा मैत्रातिथिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।३३।६-९)

कवष ऐलूषः । गायत्री ।

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः ।
क्षेत्रं न रण्वमूचुषे ॥ ६ ॥
अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि ।
पितुष्टे अस्मि वन्दिता ॥ ७ ॥

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम्।
जीवेदिन्मघवा मम ॥ ८ ॥
न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति।
तथा युजा वि वावृते ॥ ९ ॥

ऋक्षाश्वमेधौ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।६८।१४-१९)
प्रियमेध आंगिरसः। गायत्री।

उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या।
तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥
ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि।
आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥
सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे।
आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥
षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः।
सचा पूतक्रतौ सनम् ॥ १७ ॥
ऐषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी।
स्वभीशुः कशावती ॥ १८ ॥
न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः।
अवद्यमधि दीधरत् ॥ १९ ॥

उर्वशी।

॥ २॥ (ऋ० १०।९५।१,२,६,८-१०,१२,१४,१७)
पुरूरवा ऐळ ऋषिः। त्रिष्टुप्।

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे
वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते
मयस्करन् परतरे चनाहन् ॥ १ ॥
किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि ॥ २ ॥

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा
न मायुं चितयन्त धुनयः ॥ ३ ॥

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्न आपिः
ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः
श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥ ६ ॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कं
अमानुषीषु मानुषो निषेवे।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युः
ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वाः ॥ ८ ॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्
सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा
अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥ ९ ॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्
भरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः
प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥ १० ॥

कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्
चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन्।
को दंपती समनसा वि यूयोद्
अध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥ १२ ॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्
परावतं परमां गन्तवा उ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थे
अधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥ १४ ॥

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीं
उप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्
नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे (१७।१)

पुरूरवाः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९५।२,४-५,७,११,१३,१५-१६,१८)
उर्वशी ऋषिका । त्रिष्टुप् ।

किमेता वाचा कृणवा तवाहं
प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि
दुरापना वात इवाहमस्मि ॥ २ ॥
सा वसु दधती श्वशुराय वय
उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्
दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥ ४ ॥
त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेन
उत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं
राजा मे वीर तन्वस्तदासीः ॥ ५ ॥
समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना
उतेमवर्धन् नद्यः स्वगूर्ताः ।
महे यत् त्वा पुरूरवो रणाय
अवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः ॥ ७ ॥
जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि
दधाथ तत् पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्
न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥ ११ ॥
प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु
चक्रन् न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।
प्र तत् ते हिनवा यत् ते अस्मे
परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥ १३ ॥
पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो
मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति
सालावृकाणां हृदयान्येता ॥ १५ ॥
यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां
तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥ १६ ॥
इति त्वा देवा इम आहुरैळ
यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति
स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥ १८ ॥

स्वनयस्य दानस्तुतिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१२५।१-७)
कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । त्रिष्टुप्, ४-५ जगती ।

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति
तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू
रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥
सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो
बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो
मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्
इष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य
क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव
ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो
घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥ ४ ॥
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो
यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवः
तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥ ५ ॥

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम् ।
जीवेदिन्मघवा मम ॥ ८ ॥
न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति ।
तथा युजा वि वावृते ॥ ९ ॥

ऋक्षाश्वमेधौ ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।६८।१४-१९)
प्रियमेध आंगिरसः । गायत्री ।

उपमा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या ।
तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥
ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि ।
आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥
सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे ।
आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥
षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः ।
सचा पूतक्रतौ सनम् । ॥ १७ ॥
ऐषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी ।
स्वभीशुः कशावती ॥ १८ ॥
न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः ।
अवद्यमधि दीधरत् ॥ १९ ॥

उर्वशी ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९५।१,३,६,८-१०,१२,१४,१७)
पुरूरवा ऐळ ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे
वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते ।
मयस्करन् परतरे चनाहन् ॥ १ ॥
इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा
न मायुं चितयन्त धुनयः ॥ ३ ॥

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्न आपिः
ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः
श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥ ६ ॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कं
अमानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युः
ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वाः ॥ ८ ॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्
सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा
अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥ ९ ॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योत्
भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः
प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥ १० ॥

कदा सूनुः पितरं जात इच्छात्
चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।
को दंपती समनसा वि यूयोत्
अध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥ १२ ॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्
परावतं परमां गन्तवा उ ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थे
अधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥ १४ ॥

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीं
उप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठात्
नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे

पुरूरवाः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९५।२,४-५,७,११,१३,१५-१६,१८)
उर्वशी ऋषिका । त्रिष्टुप् ।

किमेता वाचा कृणवा तवाहं
प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि
दुरापना वात इवाहमस्मि ॥ २ ॥
सा वसु दधती श्वशुराय वय
उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्
दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥ ४ ॥
त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेन
उत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं
राजा मे वीर तन्वस्तदासीः ॥ ५ ॥
समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना
उतेमवर्धन् नद्यः स्वगूर्ताः ।
महे यत् त्वा पुरूरवो रणाय
अवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः ॥ ७ ॥
जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि
दधाथ तत् पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्
न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥ ११ ॥
प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु
चक्रन् न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।
प्र तत् ते हिनवा यत् ते अस्मे
परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥ १३ ॥
पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो
मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति
सालावृकाणां हृदयान्येता ॥ १५ ॥
यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां
तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥ १६ ॥
इति त्वा देवा इम आहुरैळ
यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति
स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥ १८ ॥

स्वनयस्य दानस्तुतिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१२५।१-७)
कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । त्रिष्टुप्, ४-५ जगती ।

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति
तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू
रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥
सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो
बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो
मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्
इष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य
क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव
ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो
घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥ ४ ॥
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो
यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवः
तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥ ५ ॥

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा
दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते
दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥ ६ ॥
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्
मा जारिषु सूरयः सुव्रतासः।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चित्
अपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ ॥

असमातिः।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।६०।१-४,६)
बन्धु श्रुतब-धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। २ अगस्त्यस्वसा ऋषिका। गायत्री, ६ अनुष्टुप्।

आ जनं त्वेषसंदृशं माहीनानामुपस्तुतम्।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥ १ ॥
असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम्।
भजेरथस्य सत्पतिम् ॥ २ ॥
यो जनान् महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान्।
उतापवीरवान् युधा ॥ ३ ॥
यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान् मराय्येधते।
दिवीव पंचकृष्टयः ॥ ४ ॥
अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता।
पणीन् न्यक्रमीरभि विश्वान् राजन्नराधसः ॥ ६ ॥

सावर्णिदानम्।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।६२।८-११)
नाभानेदिष्ठो मानव। अनुष्टुप्, १० गायत्री, ११ त्रिष्टुप्।

प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु।
यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥ ८ ॥
न तमश्नोति कश्चन दिव इव सान्वारभम्।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥ ९ ॥
उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा।
यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥ १० ॥
सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः
सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुः
यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥ ११ ॥

शितिपाद् अविः।

॥ १ ॥ (अथर्व० ३।२९।१-६)
उद्दालक। शितिपाद् अवि। अनुष्टुप्, १,३ पथ्या पङ्क्तिः, ७ त्र्यवसाना षट्पदा उपरिष्टाद्दैवी बृहती ककुम्मतीगर्भा विराड्जगती, ८ उपरिष्टाद्बृहती।

यद्राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य
षोडशं यमस्यामी सभासदः।
अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा॥ १
सर्वान् कामान् पूरयत्याभवन् प्रभवन् भवन्।
आकूतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति ॥ २ ॥
यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को
न क्रियते अबलेन बलीयसे ॥ ३ ॥
पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
प्रदातोप जीवति पितृणां लोकेऽक्षितम् ॥ ४ ॥
पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ॥ ५ ॥
इरेव नोप दस्यति समुद्र इव पयो महत्।
देवौ सवासिनाविव शितिपान्नोप दस्यति ॥ ५ ॥

अथ परिशिष्टानि।

अथ खिलसूक्तानि।

(१)

शनैश्चिदद्य सूर्येणादित्येन सहीयसा।
अहं यशस्विनां यशो विश्वारूपमुपा ददे ॥ १ ॥

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद
तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा
बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ६ ॥

(५)

जागर्षि त्वं भुवने जातवेदो
जागर्षि यत्र यजते हविष्मान् ।
इदं हविः श्रद्दधानो जुहोमि
तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥ १ ॥

(६)

सूक्तान्तेऽस्येतृणान्यग्ना– विरिणे चोदकेऽपि वा ।
यदस्तृणैरधीतं तत् तृणानि भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥
वापीकूपतडागानां समुद्रं गच्छ स्वाहा
[अग्निं गच्छ स्वाहा] ॥ २ ॥

(७)

स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमिं
महद्भूतं वायसं देवतानाम् ।
असुरघ्नमिन्द्रसखं समत्सु
बृहद्यशो नावमिवा रुहेम ॥ १ ॥
अंहोमुचमाङ्गिरसं गयं च
स्वस्त्यात्रेयं मनसा च तार्क्ष्यम् ।
प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये
स्वस्ति संबाधेष्वभयं नो अस्तु ॥ २ ॥

(८)

घर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजा– न्यव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

(९)

आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥ १ ॥
करोमि ते प्राजापत्य–मा गर्भो योनिमेतु ते ।
अनूनः पूर्णो जायता–मश्लोणोऽपिशाचधीतः ॥ २ ॥
पुमांस्ते पुत्रो नारि तं पुमाननुजायताम् ।
यानि भद्राणि बीजा–न्यृषभा जनयन्ति नौ ॥ ३ ॥
यानि भद्राणि बीजा–न्यृषभा जनयन्ति नः ।
तैस्त्वं पुत्रान् विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥ ४ ॥
कामः समृद्धयतां मह्य–मपराजितमेव मे ।
यं कामं कामये देव तं मे वायो समर्द्धय ॥ ५ ॥

(१०)

अग्निरैतु प्रथमो देवतानां
सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् ।
तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां
यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् ॥ १ ॥
इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः
प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः ।
अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता
पौत्रमानन्दमभि प्रबुद्धयतामियम् ॥ २ ॥
मा ते गृहे निशि घोष उत्थात्
अन्यत्र त्वद्रुदत्यः सं विशन्तु ।
मा त्वं विकेश्युर आवधिष्ठा
जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती
प्रजां सुमनस्यमाना ॥ ३ ॥
अप्रजस्तां पौत्रमृत्युं पाप्मानमुत वाघम् ।
शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य
द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशम् ॥ ४ ॥
देवकृतं ब्राह्मणं कल्पमानं
तेन हन्मि योनिषदः पिशाचान् ।
क्रव्यादो मृत्यूनधरान् पातयामि
दीर्घमायुस्तव जीवन्तु पुत्राः ॥ ५ ॥

(११)

अथ श्रीसूक्तम् ।

(ऋषय - आनन्द-कर्दम-चिक्लीताः श्रीपुत्राः । देवता- श्रीरग्निश्च । छन्द - अनुष्टुप्, ४ बृहती, ५-६ त्रिष्टुप्, १५ प्रस्तारपंक्तिः ।)

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १ ॥

(७१५४)

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ २ ॥
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥ ३ ॥
कां सोऽस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां
ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये
अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥
आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु
या आन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ ६ ॥
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥७॥
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ ८ ॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ ९ ॥
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ १० ॥
कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ ११ ॥
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ १२ ॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥१३॥
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥१४॥
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो
दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥ १५ ॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ १६ ॥
पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले
त्वत्पादपद्मं मयि सं नि धत्स्व ॥ १७ ॥
पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षि पद्मसंभवे ।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥१८॥
अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने ।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ १९ ॥
पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वाश्वतरी रथम् ।
प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे ॥२०॥
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणो धनमश्विना ॥ २१ ॥
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥२२॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्त्या श्रीसूक्तजापिनाम् ॥२३
सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्र सीद मह्यम् ॥ २४ ॥
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥२५॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्र चोदयात् ॥ २६ ॥
आनन्दः कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुताः ।
ऋषयः श्रियः पुत्राश्च श्रीर्देवीर्देवता मताः ॥ २७ ॥
ऋणरोगादिदारिद्र्यपापक्षुदपमृत्यवः ।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥ २८ ॥

श्रीवर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्
शोभमानं महीयते।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं
शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीसूक्तम् ॥×

(१२)

चक्षुश्च श्रोत्रं च मनश्च वाक् च
प्राणापानौ देह इदं शरीरम्।
द्वौ प्रत्यञ्चावनुलोमौ विसर्गौ
एतं तं मन्ये दशयन्त्रमुत्तमम् ॥ १ ॥
नखश्च पृष्ठश्च करौ च बाहू
जङ्घे चोरू उदरं शिरश्च।
रोमाणि मांसं रुधिरास्थिमज्जं
एतच्छरीरं जलबुद्बुदोपमम् ॥ २ ॥
भ्रुवौ ललाटे च तथा च कर्णौ
हनू कपोलौ छुबुकस्तथा च।
ओष्ठौ च दन्ताश्च तथैव जिह्वा
मे तच्छरीरं मुखरत्नकोशम् ॥ ३ ॥

(१३)

सुकान्तेऽस्येत्तृणान्यग्ना—चिरिणे योदकेऽपि या।
यदस्तृणैरधीतं तत् तृणानि भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥
वापीकूपतडागानां समुद्रं गच्छ स्वाहा
[अग्निं गच्छ स्वाहा] ॥ २ ॥

(१०)

दांयती॥ पारयन्त्येते तं पृच्छन्ति वचो युजा।
धम्यारं तं यमार्कतुं य एवेदमिति ब्रवन् ॥ १ ॥
आमार्कतुं परिस्रुतं भारतीमंह्यपर्णिनीः।
संज्ञानाना मही माता य एवेदमिति ब्रवन् ॥ २ ॥
इन्द्रस्तं किं विभुं प्रभुं भानुनेयं सरस्वतीम्।
येन सूर्यमरोचय—येनेमे रोदसी उभे ॥ ३ ॥
अयाचांग्ने अङ्गिरः काण्वं मेध्यातिथिम्।
मा त्वा सोमस्य बर्हिहत् सुतस्य मधुमत्तमः ॥ ४ ॥
त्वमग्ने अङ्गिरः शोचस्व देववीतमः।
आ शंतम शंतमाभि—रभिष्टिभिः
शान्तिः स्वस्तिमकुर्वत ॥ ५ ॥
शं नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु।
शं नो द्यावापृथिवी शं प्रजाभ्यः शं न एधि
द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ६ ॥

(१५)

स्वप्न स्वप्नाधिकरणे सर्वं नि ष्वापया जनम्।
आसूर्यमन्यान्त्स्वापया—व्युषं जागृयामहम् ॥ १ ॥
अजगरो नाम सर्पः सर्पिरविषो महान्।
तस्मिन् हि सर्पः सुधित—स्तेन त्वा स्वापयामसि २
सर्पः सर्पो अजगरः सर्पिरविषो महान्।
तस्य सर्पात् सिन्धव—स्तस्य गाधमशीमहि ॥ ३
कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः।
यमुनाह्रदे ह सो जातो यो नारायणवाहनः ॥ ४ ॥
यदि कालिकदूतस्य यदि कः कालिकाद्भयात्।
जन्मभूमिमतिक्रान्तो निर्विषो याति कालिकः ॥५॥
आ याहीन्द्र पथिभिरीळितेभिः
यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व।
तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योषा ॥६॥
भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव
यथास्करं बलवन्तं प्रभुत्वं
तमेव राजाधिपतिर्बभूव।
संकीर्णनागाश्वपतिर्नराणां
सुमङ्गल्यं सततं दीर्घमायुः ॥ ७ ॥
कर्कोटको नाम सर्पो यो दृष्टीविष उच्यते।
तस्य सर्पस्य सर्पत्वं तस्मै सर्प नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
येऽदो रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ९ ॥
या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीननु।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ १० ॥
(७३११)

नमो॑ अस्तु स॒र्पेभ्यो॒ ये के च॑ पृथि॒वीमनु॑ ।
ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ ये दि॒वि तेभ्यः॑ स॒र्पेभ्यो॒ नमः॑ ॥ ११ ॥
उ॒ग्रायु॑धाः प्र॒मति॑नः प्र॒वीरा
मा॒यावि॑नो॒ ब॒लिनो॒ मिच्छमा॑नाः ।
ये दे॒वान॑सु॒राः प॒राभ॑वन्
तांस्त्वं व॒ज्रेण मघवन् निवा॑रय ॥ १२ ॥

(१६)

यस्य॑ व्र॒तं प॒शवो॒ यन्ति॒ सर्वे॒
यस्य॑ व्र॒तमु॑प॒तिष्ठ॑न्त॒ आपः॑ ।
यस्य॑ व्र॒ते पु॑ष्टि॒पति॒र्निवि॑ष्टः
तं सर॑स्वन्त॒मव॑से हुवेम ॥ १ ॥

(१७)

उप॒प्लव॑त मण्डूकि व॒र्षमा व॑द तादुरि ।
मध्ये॑ ह्र॒दस्य॑ प्लवस्व॒ नि॒गृह्य॑ च॒तुरः॑ प॒दः ॥ १ ॥

(१८)

पा॒व॒मा॒नीः स्व॒स्त्यय॑नीः सु॒दुघा॒ हि घृ॒तश्चुतः॑ ।
ऋषि॑भिः॒ संभृ॑तो॒ रसो॑ ब्राह्म॒णेष्व॒मृतं॑ हि॒तम् ॥ १ ॥
पा॒व॒मा॒नीर्दि॑शन्तु न इ॒मं लो॒कमथो॑ अ॒मुम् ।
कामा॒न्त्सम॑र्धयन्तु नो दे॒वीर्दे॒वैः स॒माहृ॑ताः ॥ २ ॥
येन॑ दे॒वाः प॒वित्रे॑ण॒ त्मानं॑ पुन॒ते सदा॑ ।
तेन॑ स॒हस्र॑धारेण पाव॒मान्यः॒ पु॑नन्तु माम् ॥ ३ ॥
प्रा॒जा॒प॒त्यं प॒वित्रं॑ श॒तोद्या॑मं हिर॒ण्मय॑म् ।
तेन॑ ब्रह्म॒विदो॑ व॒यं पू॒तं ब्रह्म॑ पुनीमहे ॥ ४ ॥
इन्द्रः॑ सुनी॒ती स॒ह मा॑ पुनातु
सोमः॑ स्व॒स्त्या व॑रुणः स॒मीच्या॑ ।
य॒मो राजा॑ प्रमृ॒णाभिः॑ पुनातु मा
जा॒तवे॑दा मू॒र्जय॑न्त्या पुनातु ॥ ५ ॥
ऋ॒षय॑स्तु॒ तप॒स्तेपुः॒ सर्वे॒ स्वर्गजि॑गीषवः ।
तप॒न्तस्तप॑सो॒ग्रेण॒ पाव॒मानी॒र्ऋचोऽब्रु॑वन् ॥ ६ ॥
यन्मे॒ गर्भे॑ व॒सतः॑ पा॒पमु॒ग्रं
यज्जाय॑मानस्य॒ च॒ किञ्चि॑द॒न्यत् ।
जा॒तस्य॑ च॒ यच्चा॑पि च॒ वर्ध॑तो मे
तत् पा॑वमा॒नीभि॑र॒हं पु॑नामि ॥ ७ ॥
मा॒ता॒पि॒त्रोर्यच्च॑ कृ॒तं वचो॑ मे
यत् स्था॑व॒रं जङ्ग॑ममाब॒भूव॑ ।
विश्व॑स्य॒ तत् प्र॑हृ॒षि॒तं वचो॑ मे
तत् पा॑वमा॒नीभि॑र॒हं पु॑नामि ॥ ८ ॥
गोघ्नात् तस्क॑रत्वा॒त्
स्त्रीव॑धा॒द्यच्च॒ किल्बि॑षम् ।
पा॒प॒कं च॒ च॒रणे॑भ्यः
तत् पा॑वमा॒नीभि॑र॒हं पु॑नामि ॥ ९ ॥
ब्र॒ह्म॒व॒धात् सु॒रापा॑नात् स्व॒र्णस्ते॑या॒द्
वृष॑लिगमनमैथुनसंगमात् ।
गु॒रोर्दारा॑धि॒गम॑नाच्च॒
तत् पा॑वमा॒नीभि॑र॒हं पु॑नामि ॥ १० ॥
बा॒लघ्नान्मा॑तृपितृवधा॒ङ्भ्रमितस्करा॒त्
सर्ववर्णगमनमैथुनसंगमात् ।
पा॒पेभ्य॑श्च प्रति॑ग्रहा॒त् स॒द्यः
प्र॒हर॑ति स॒र्वदु॑ष्कृतं॒ तत् पा॑वमा॒नीभि॑र॒हं पु॑नामि ११
क्रयविक्रया॑द्योनिदोषा॒द्
भक्ष्याद्भोज्या॑त् प्र॒तिग्र॑हात् ।
अ॒सं॒भोज॑नाच्चापि नृ॒शंसं॒
तत् पा॑वमा॒नीभि॑र॒हं पु॑नामि ॥ १२ ॥
दु॒र्य॒ष्टं दु॒र॑धीतं॒ पापं॑
यच्चा॑ज्ञान॒तो कृ॒तम् ।
अ॒याजि॑ताश्चा॒सं॑याज्याः
तत् पा॑वमा॒नीभि॑र॒हं पु॑नामि ॥ १३ ॥
अ॒मन्त्र॑म॒न्नं यत् कि॑ञ्चि॒द् हू॒यते॑ च हु॒ताश॑ने ।
सं॒व॒त्स॒रकृ॑तं॒ पापं॑
तत् पा॑वमा॒नीभि॑र॒हं पु॑नामि ॥ १४ ॥
ऋ॒तस्य॒ योन॑योऽमृत॑स्य॒ धाम॒
विश्वा॑ दे॒वेभ्यः॑ पुण्य॑गन्धाः ।
ता न॒ आपः॒ प्र व॑हन्तु॒ पापं॑ शु॒द्धा
गच्छा॑मि सुकृ॒तामु॑ लो॒कं
तत् पा॑वमा॒नीभि॑र॒हं पु॑नामि ॥ १५ ॥

(७३११)

पावमानीः स्वस्त्ययनी—र्याभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षय—त्यमृतत्वं च गच्छति १६
पावमानीः पितॄन्देवान्
ध्यायेद्यश्च सरस्वतीम् ।
पितॄंस्तस्योप वर्तेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १७ ॥
पावमानं परं ब्रह्म शुक्रं ज्योतिः सनातनम् ।
ऋषींस्तस्योप तिष्ठेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १८ ॥
पावमानं परं ब्रह्म
ये पठन्ति मनीषिणः ।
सप्त जन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥ १९ ॥
दशोत्तराण्यृचांश्चैव पावमानीः शतानि षट् ।
एतज्जुह्वन् जपेन्मन्त्रं घोरमृत्युभयं हरेत् ॥ २० ॥
एतत् पुण्यं पापहरं रोगमृत्युभयापहम् ।
पठतां शृण्वतां चैव ददाति परमां गतिम् ॥ २१ ॥

(१९)

इळैव वामनु वस्तां घृतेन
यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठा
उप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥ १ ॥
वैश्वदेवी पुनती देव्या गात्
यस्यामि मा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २ ॥

(२०)

यत्र तत् परमं पदं विष्णोर्लोके महीयते ।
देवैः सुकृतकर्मभि—स्तत्र माममृतं कृधि
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥
यत्र तत् परमाव्यं भूतानामधिपतिम् ।
भावग्राही च योगीश्च तत्र माममृतं कृधि० ॥ २ ॥
यत्र लोकास्तनुत्यजः श्रद्धया तपसा जिताः ।
नैमेषु यत्र ब्रह्मा च तत्र माममृतं० ॥ ३ ॥
यत्र देवा महात्मानः सेन्द्राश्च समरुद्गणाः ।
ब्रह्मा च यत्र विष्णुश्च तत्र माममृतं० ॥ ४ ॥
यत्र गंगा च जमुना च यत्र प्राची सरस्वती ।
यत्र सोमेश्वरो देव स्तत्र माममृतं० ॥ ५ ॥
यत्र तद्विष्णुर्महीयते नराणामधिपतिम् ।
यत्र शङ्खचक्रगदाधरस्मरण मुक्तिश्च तत्र० ॥ ६ ॥

(११)

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतुरहमा देवीरवसे हुवे ॥ १ ॥

(१२)

सितासिते सरिते यत्र संगथे
तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं वि सृजन्ति धीराः
ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते ॥ १ ॥

(१३)

अविधवा भव वर्षाणि शतं साग्रं तु सुव्रता ।
तेजस्वी च यशस्वी च धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ १ ॥
जनयद्बहुपुत्राणि मा च दुःखं लभेत् क्वचित् ।
भर्ता ते सोमपा नित्यं भवेद्धर्मपरायणः ॥ २ ॥
अष्टपुत्रा भव त्वं च सुभगा च पतिव्रता ।
भर्तुश्चैव पितुर्भ्रातु—र्हृदयानन्दिनी सदा ॥ ३ ॥
इन्द्रस्य तु यथेन्द्राणी श्रीधरस्य यथा श्रिया ।
शंकरस्य यथा गौरी तद्वत्त्वपि भर्तरि ॥ ४ ॥
अत्रेर्यथाऽनुसूया स्याद् वसिष्ठस्याप्यरुन्धती ।
कौशिकस्य यथा सती तथा त्वमपि भर्तरि ॥ ५ ॥
ध्रुवैधि पोष्या मयि मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम् ॥ ६ ॥

(१४)

असौ या सेना मरुतः परेषां
अभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसाऽपव्रतेन
यथाऽमीषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ १ ॥

अन्धा अमित्रा भवता—शीर्षाणो अहंय इव ।
तेषां वो अग्निदंग्धाना—मग्निमूंळ्हानां
इन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ २ ॥

(२५)

हविर्भिरेके स्वरितः सचन्ते
सुन्वन्त एके सवनेषु सोमान् ।
शचीर्मदन्त उत दक्षिणाभिः
नेज्जिह्मायन्त्यो नरकं पताम ॥ १ ॥

(२६)

अथ रात्रिसूक्तम्

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितरः प्रायु धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस
आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ १ ॥
ये ते रात्रि नृचक्षसो युक्तासो नवतिर्नव ।
अशीतिः सन्त्वष्टा उतो ते सप्त सप्ततीः ॥ २ ॥
रात्रीं प्र पद्ये जननीं सर्वभूतनिवेशनीम् ।
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम्॥ ३
संवेशिनीं संयमिनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम् ।
प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रीं भद्रे पारमशीमहि
[भद्रे पारमशीमह्यों नमः] ॥ ४ ॥
स्तोष्यामि प्रयतो देवीं शरण्यां बह्वृचप्रियाम् ।
सहस्रसंमितां दुर्गां जातवेदसे सुनवाम सोमम् ॥५
शान्त्यर्थं तद् द्विजातीनां ।
ऋषिभिः सोममाश्रिताः ।
ऋग्वेदे त्वं समुत्पन्ना
अरातीयतो नि दहाति वेदः ॥ ६ ॥
ये त्वां देवि प्र पद्यन्ति
ब्राह्मणा हव्यवाहनीम् ।
अविद्या बहुविद्या या
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा ॥ ७ ॥
ये अग्निवर्णां शुभां सौम्यां
कीर्तयिष्यन्ति ते द्विजाः ।
तांस्तारयति दुर्गाणि
नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ८ ॥
दुर्गेषु विषमे घोरे संग्रामे रिपुसंकटे ।
अग्निचोरनिपातेषु दुष्टग्रहनिवारिणि ॥ ९ ॥
दुर्गेषु विषमेषु त्वं संग्रामेषु वनेषु च ।
मोहयित्वा प्र पद्यन्ते तेषां मे अभयं कुरु
[तेषां मे अभयं कुर्वों नमः] ॥ १० ॥
केशिनीं सर्वभूतानां पञ्चमीति च नाम च ।
सा मां समा निशा देवी सर्वतः परि रक्षतु
[सर्वतः परि रक्षत्वों नमः] ॥ ११ ॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्र पद्ये सुतरसि तरसे नमः
सुतरसि तरसे नमः ॥ १२ ॥
दुर्गा दुर्गेषु स्थानेषु शं नो देवीरभिष्टये ।
य इमं दुर्गास्तवं पुण्यं रात्रौ रात्रौ सदा पठेत् १३

[रात्रिः कुशिकः सोभरो रात्रिर्वा भारद्वाजो रात्रिस्तवो गायत्री ।]

रात्रीसूक्तं जपेन्नित्यं तत्कालमुपपद्यते ।
न योनिं पुनरायाति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४॥
क्षीरेण स्नापिता दुर्गा चन्दनेन विलेपिता ।
बिल्वपत्रकृतापीडा नमो दुर्गे नमो नमः ॥ १५ ॥
सर्वभूतपिशाचेभ्यः सर्वसर्पसरीसृपैः ।
देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च उभयेभ्योऽभिरक्ष माम् ॥१६॥
या ऋग्वेदे स्तुता देवी काश्यपेन उदाहृता ।
जातवेदममां गौरी जातवेदसे सुनवाम सोमम् १७
सुरासुरैर्द्विजवरैः पिशाचोरगराक्षसैः ।
अरातिभयं उत्पन्ने अरातीयतो नि दहाति वेदः १८

गजद्वारेऽपथे घोरे संग्रामेषु च गौतमी।
सर्वं रक्षतु दुरितं
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा ॥ १९ ॥
महाभये समुत्पन्ने स्मरन्ति च जपन्ति च।
सर्वं तारयते दुर्गा
नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ २० ॥
य इमं दुर्गास्तवं पुण्यं शृण्वन्ति च जपन्ति च।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं त्रिषु लोकेषु पूजितम् २१
अपुत्रो लभते पुत्रान् धनहीनो धनं लभेत्।
अचक्षुर्लभते चक्षु—र्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥२२॥
व्याधितो मुच्यते रोगा—दरोगी श्रियमाप्नुयात्।
ददाति कामित सर्वं कात्यायनि नमोऽस्तु ते २३

(०७)

सनक सनन्दन-सनातनादय। हिरण्यम्। अनुष्टुप्, ५, ८-९ त्रिष्टुप्, ७ अतिशक्वरी, ११ जगती।

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्चस्व—ज्जैत्राया विशतादिमाम् ॥१
उच्चैर्वाजि पृतनाषाट् सभासाहं धनंजयम्।
सर्वाः समग्रा ऋद्धयो
हिरण्येऽस्मिन्त्समाहिताः ॥ २ ॥
शुनमहं हिरण्यस्य पितुर्नामेव जग्रभं।
तेन मां सूर्यत्वच—मकरं पुरुषं प्रियम् ॥ ३ ॥
सम्राजं च विराजं चा—भिष्टिर्या च मे ध्रुवा।
लक्ष्मी राष्ट्रस्य या मुखे
तया मामिन्द्र सं सृज ॥ ४ ॥
अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यं
अमृतं यद्रे अधि मर्त्येषु।
य एनद्वेद स इदेनमर्हति
जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ ५ ॥
यद्वेद राजा वरुणो वद् देवी सरस्वती।
इन्द्रो यद्वृत्रहा वेद तन्मे वर्चस आयुषे ॥ ६ ॥
न तद्रक्षांसि न पिशाचाश्चरन्ति
देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणा हिरण्यं
स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ७ ॥
यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं
शतानीकाय सुमनस्यमाना।
तन्न आ बध्नामि शतशारदाय
आयुष्मान् जरदष्टिर्यथाऽसत् ॥ ८ ॥
घृतादुल्लुप्तं मधुमत्सुवर्णं
धनंजयं धरुणं धारयिष्णु।
ऋणक् सपत्नादधरांश्च कृण्वत्
आरोह मां महते सौभगाय ॥ ९ ॥
प्रियं मा कुरु देवेषु प्रियं राजसु मा कुरु।
प्रियं विश्वेषु गोप्तेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥१०॥
अग्निर्येन विराजति सूर्यो येन विराजति।
विराज्येन विराजति तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते
विराज समिधं कुरु ॥ ११ ॥

(१८)

(विहव्य आङ्गिरस। इन्द्रः। जगती)

अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे
यो गोजिद्धनजिदश्वजिद्यः।
इमं नो यज्ञं विहवे जुषस्व
अस्य कुर्मो हरिवो मेदिनं त्वा ॥ १ ॥

(१९)

यां कल्पयन्ति नोऽरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव।
तां ब्रह्मणाऽप निर्णुद्मः प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु ॥१॥
शीर्षण्वतीं कर्णवतीं विश्वरूपां भयंकरीम्।
यः प्राहिणोद्विद्याय त्वां वि ते त्वं योजयासुभिः २
येन दिष्टेद वदसि प्रतिकूलमुपायिनि।
तमेवेतो नियर्तस्व
माऽस्मान् मृच्छो अनागसः ॥ २ ॥

(७१८५)

अभिवर्तस्व कर्तारं निरस्तास्माभिरोजसा ।
आयुरस्य निकृन्तस्व प्रजां च पुरुषादिनि ॥ ४॥

यस्त्वां कृत्ये चकारेह तं त्वं गच्छ पुनर्नवे ।
अरातीः कृत्ये नाशय सर्वांश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥

क्षिप्रं कृत्ये निवर्तस्व कर्तुरेव गृहान् प्रति ।
पशूंश्चैवास्य नाशय वीरांश्चास्य नि बर्हय ॥ ६ ॥

यस्त्वां कृत्ये प्रजिघाय विद्वाँ अविदुषो गृहान् ।
तस्यैवेतः परेत्याशु तनुं कृधि परुष्परुः ॥ ७ ॥

प्रतीचीं त्वाऽपसेधतु ब्रह्म रोचिष्णवमिब्रहा ।
अग्निश्च कृत्यें रक्षोहा रिप्रहा चार्जपकृपात् ॥ ८ ॥

यथा त्वाऽङ्गिरसः पूर्वे भृगवश्चाप सेधिरे ।
अत्रयश्च वसिष्ठाश्च तथैव त्वाऽप सेधिम ॥ ९ ॥

यस्ते परूंषि सन्दधौ रथस्येव विभुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्ते अयं जनः ॥ १० ॥

यो नः कश्चिद्रणस्थो वा कश्चिद्ग्राम्योऽभि हिंसति ।
तस्य त्वं घोरवेषोऽग्निः
तनूर्मृच्छस्य हेळिता ॥ ११ ॥

मयाशुर्वा देवहेळि—मस्यतं पापकृत्यने ।
इरस्यती त्वं च कृत्ये
मोच्छिष्टस्तस्य किंचन ॥ १२ ॥

यो नः कश्चिद्दुरातिः—र्मनसा प्रतिभूर्यति ।
दूरस्थो वाऽन्तिकस्थो वा
तस्य हृदयमसृक् पिब ॥ १३ ॥

येनासि कृत्ये प्रहिता
हृदयेनास्मज्जिघांसया ।
तस्य ध्यानश्च व्यानश्च
छिनत्तु हरसाऽशनिः ॥ १४ ॥

ये नः शिवासः पन्थानः परायन्ति परायतम् ।
तैरेवि राष्ट्राः कृत्या नो गमयस्यानुकर्षये ॥ १५ ॥

यदि वेपि द्विपदसान् यदि वेपि चतुष्पदी ।
निरस्तेतो मंजास्माभिः कर्तुरष्टापदी गृहान् ॥ १६

यो नः शापादशपतो यश्च नः शपतः शपात् ।
वृक्षमिव विद्युदाशु तमामूलादनु शोषय ॥ १७ ॥

यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्य—दायुर्यश्च नः शपात् ।
शुने पिष्टमिव क्षामं तं प्रत्यस्य स्वमृत्यवे ॥ १८ ॥

यश्च सापत्नः शपथो यश्च यामी शपाति नः ।
ब्रह्मा च यत् क्रुद्धः शपात्
सर्वं तत् कृध्यधस्पदम् ॥ १९ ॥

सबन्धुश्चाप्यबन्धुश्च यो अस्माँ अभि दासति ।
तस्य त्वं भिन्ध्यधिष्ठायं पदा विस्फूर्य तच्छिरः॥२०

अभि प्रेहि सहस्राक्षं युक्त्वा तु शपथं रथे ।
शत्रूनन्विच्छती कृत्ये वृकीवाविमतो गृहान् ॥ २१॥

परि णो वृङ्धि शपथान् दहन्नग्निरिव ह्रदम् ।
शत्रूनेवाभितो जहि दिव्या वृक्षमिवाशनिः ॥ २२ ॥

शत्रून् मे प्रोष शपथात् कृत्याश्च सुहृदोऽसुहृद् ।
जिह्वाः श्लक्ष्णाश्च दुर्हृदः समिद्धं जातवेदसम्॥ २३

असपत्नं पुरस्तात्सः शिवं दक्षिणतः कृधि ।
अभयं सततं पश्चात् भद्रमुत्तरतो गृहे ॥ २४ ॥

परेहि कृत्ये मा तिष्ठ विद्धस्येव पदं नय ।
मृगस्य हि मृगारिर्मो न त्वा नीकर्तुमर्हति ॥२५॥

अन्यास्यैव घोररूपे विपुरूपेऽविनाशिनि ।
जृम्भिता प्रतिगृह्णीष्व
स्वयमादाय चाद्भुतम् ॥ २६ ॥

त्वमिन्द्रो यमो वरुण—स्त्वमापोऽग्निर्यानिलः ।
त्वं ब्रह्मा चैव रुद्रश्च त्वष्टा चैव प्रजापतिः ॥२७॥

आयतेष्वं निर्यतेष्व—मृतवः परिवत्सराः ।
अहोरात्राश्चाब्दाश्च त्वं दिशः प्रदिशश्च मे ॥ २८ ॥

त्वं यमं वरुणं सोमं त्वमापोऽग्निर्मयानिलम् ।
अर्वाहन्य पर्वांश्चैव—मुत्पादयसि चाद्भुतम् ॥ २९ ॥

ये मे दमे दारुगर्भे शयानं
धिया सहितं पुरुषं निर्जहुः ।
कुम्भीपाकं नरकं ग्रीववद्धं
हता एवं पुरुषासो यमस्य ॥ ३० ॥
अभ्यक्ताक्ता स्वलङ्कृता सर्वं नो दुरितं दह ।
जानीथाश्चैव कृत्यानां कर्तॄन् नृन् पापचेतसः ३१
यथा हन्ति पुरासीनं तथैवेष्वा सुकृद्वरः ।
तथा त्वया युजा वयं निर्कृण्म स्थास्नु जङ्गमम् ३२
उत्तिष्ठेव परेहीतो ऽघ्नाते किमिहेच्छसि ।
ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ च
अभि कर्तस्यामि निर्द्रव ॥ ३३ ॥
स्वायसाः सन्ति नोऽसयो विद्म चैव परूंषि ते ।
तैस्ते निर्कृण्मस्तान्युग्रे
यदि नो जीवयस्यरीन् ॥ ३४ ॥
मास्योच्छिपो द्विपदं मोत किञ्चिच्चतुष्पदम् ।
मा ज्ञातीननुजान् पूर्वान्
मा पैतृ्ा प्रतिवेशिनो ॥ ३५ ॥
दासयुता प्रहितासि दूढ्येनासि यथायतः ।
मर्तसखा त्वा नुदतु
योऽयमन्तर्मयि श्रितः ॥ ३६ ॥
एवं त्वं निर्दनास्माभि ब्रह्मणा देवि सर्वदाः ।
यत्कर्माधिता मुग्धा पापधीनिव नो जहि ॥३७॥
यथा विद्युद्धतो वृक्ष आमूलादनु शुष्यति ।
एवं स प्रतिशुष्यतु यो मे पापं चिकीर्षति ॥ ३८ ॥
यथा प्रतिहितो मुष्या तमेव प्रतिधावति ।
पापं तमेवं धावतु यो मे पापं चिकीर्षति ॥ ३९ ॥
यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ ४० ॥
उग्रो मध्यमु वनोतः ऋणुष्व माधी अद्रिवः ।
अर्थ ब्रह्मद्विषो जहि ॥ ४१ ॥

कुबेर ते मुखं रौद्रं नन्दिमानन्दमावह ।
ज्वरमृत्युभयं घोरं विश नाशय मे ज्वरम् ॥४२॥
यो मे करोति प्रद्वारे यो गृहे यो निवेशने ।
यो मे केशनखे कुर्या दर्शने दन्तधावने ॥ ४३ ॥
प्रतिसर प्रतिधाव कुमारीव पितुर्गृहान् ।
मूर्धानमेषां स्फोटय पद्मेषां कुले क्रुधि ॥ ४४ ॥
ये नो रायै दुश्चरितासो अग्ने
जह्मंतासो अनृतं वदन्तः ।
तेषां वपूंष्यर्चिषा जातवेदः
शुष्कं न वृक्षमभि स दहस्व ॥ ४५ ॥
कृष्णवर्णे महद्रूपे बृहत्कर्णे महद्भये ।
देवि देवि महादेवि मम शत्रून् विनाशय ॥ ४६ ॥
फट् फट् जहि महाकृत्ये विधूमाग्निसमप्रभे ।
जहि शत्रूंस्त्रिशूलेन कुप्यस्व पिब शोणितम् ॥४७॥
ये दुष्टर्जवे सर्वमग्ने
कदाधियो दुर्मदा अदर्मनासः ।
आवृश्चैतान् शोचिषा विध्य तन्तून्
वैवस्वतस्य सदनं नयस्व ॥ ४८ ॥

(१०)

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।
[उत ह्रदो हि नो धियो ऽग्निर्ददातु भेषजम्]॥१॥
शीतह्रदो हि नो धियो ऽग्निर्ददातु भेषजम् ।
अन्तिकामग्निमजनय दूर्वाद्रः शाखाशाखमव् ॥२॥
अजातपुत्रपक्षाया हृदयं मम दूयते ।
विपुलं वने बहाकाशं चर जातवेदः कामय ॥३॥
मां च रक्ष पुत्रांश्च शरणमगन् सर्वे ।
विशालाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्ण नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
अपमाग्निमदहंस्त्येनो सागरस्योर्मयो यथा ।
इन्द्रः क्षत्रं ददातु वरुणमभि सिञ्चतु ॥ ५ ॥
तावको निर्धनं यान्तु जय रयं ब्रह्मतेजसा ॥ ६ ॥
(७८११)

कपिलजटी सर्वभक्षं चाग्नि प्रत्यक्षदैवतम् ॥ ७ ॥
वरुणं च वशाम्यग्नें मम पुत्रांश्च रक्षतु
[मम पुत्रांश्च रक्षत्वों नमः ।] ॥ ८ ॥
साग्रं वर्षशतं जीव पिब खाद च मोदं च ॥ ९ ॥
दुःखितांश्च द्विजांश्चैव प्रजां च पशु पालय ॥१०॥
यावदादित्यस्तपति यावद्भ्राजति चन्द्रमाः ।
यावद्वायुः प्लवायति तावज्जीव जया जय ॥११॥
येन केन प्रकारेण को हि नाम न जीवति ।
परेषामुपकारार्थं यज्जीवति स जीवति ।
एतां वैश्वानरीं सर्वदेवाग्रमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥
न चौरभयं न च सर्पभयं
न च व्याघ्रभयं न च मृत्युभयम् ।
यस्यापमृत्युर्न च मृत्युः सर्वं लभते सर्वं जयते १२

॥ इति रात्री-सूक्तम् ॥

(११)

अथ मेधा-सूक्तम् ।

मेधां मह्यमङ्गिरसो मेधां सप्त ऋषयो ददुः ।
मेधामिन्द्रश्चाग्निश्च मेधां धाता ददातु ते ॥ १ ॥
मेधां मे वरुणो राजा मेधां देवी सरस्वती ।
मेधां मे अश्विनौ देवा—वा धत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥
या मेधा अप्सरस्सु गन्धर्वेषु च यन्मनः ।
दैवी या मानुषी मेधा सा मामा विशतादिमाम् ३
यन्मे नोक्तं तद्रमतां शकेयं यदनुब्रुवे ।
निशामितं नि शामहै मयि व्रतं सह व्रतेषु भूयासं
ब्रह्मणा सं गमेमहि ॥ ४ ॥
शरीरं मे विचक्षणं वाङ्मे मधुमद् दुहाम् ।
अवृधमहमसौ सूर्यो ब्रह्मणानी स्थः
श्रुतं मे मा प्र हासीः ॥ ५ ॥
मेधां देवीं मनसा रेजमानां
गन्धर्वजुष्टां प्रति नो जुषस्व ।
मह्यं मेधां वद मह्यं श्रियं वद
मेधावी भूयासमजराजरिष्णु ॥ ६ ॥
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥
यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधया ऽग्ने मेधाविनं कुरु ॥ ८ ॥
मेधाव्य१हं सुमनाः सुप्रतीकः
श्रद्धामनाः सत्यमतिः सुशेवः ।
महायशा धारयिष्णुः प्रवक्ता
भूयासमस्मै शरया प्रयोगे ॥ ९ ॥
नाशयित्री पलाशस्या—दर्शसौ पथिकामसु ।
अर्थी ततस्य यक्ष्माणं—मयापां रोगनाशिनी ॥ १०
ब्रह्मवृक्ष पलाश त्वं श्रद्धां मेधां च देहि मे ।
वृक्षाधिप नमस्तेऽस्तु अत्र त्वं संनिधौ भव ॥११॥

॥ इति मेधा-सूक्तम् ॥

(१०)

अर्ध्वरेता प्र दहन्ते विष्णुः
इममिन्द्राग्नी अमृतं जुषेथाम् ।
महो दधाना उप दीर्घमायुः
यस्मै धत्तं पुरुभुजा पुरन्धिः ॥ १ ॥

(११)

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परि गृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १ ॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तःप्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥
यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३ ॥

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ५ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं यविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६ ॥

ये पञ्च पञ्चाशतः शतं च
सहस्रं च नियुतं चार्बुदं च ।
ते यज्ञचित्तेष्टकाहं शरीरं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ७ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ८ ॥

येन कर्माणि प्रचरन्ति धीरा
विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा ।
यत् स्वां दिशमनु संयन्ति प्राणिनः
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ९ ॥

ये मे मनो हृदयं ये च देवा
ये अन्तरिक्षं बहुधा कल्पयन्ति ।
ये श्रोत्रं च चक्षुषी संचरन्ति
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १० ॥

यस्येदं धीराः पुनन्ति कवयो
ब्रह्माणमेतं त्वावृणत इन्दुम् ।
स्थावरं जङ्गमं च द्यौराकाशं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ११ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी चान्तरिक्षं
येन पर्वताः प्रदिशो दिशश्च ।
येनेदं सर्वं जगद्व्याप्तं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १२ ॥

अव्यक्तं चाप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तपरं शिवम् ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ज्ञेयं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १३ ॥

कैलासशिखरे रम्ये शंकरस्य गुहालयम् ।
देवतास्तत् प्रमोदन्ते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १४ ॥

आदित्यवर्णं तपसा ज्वलन्तं
यत् पश्यसि गुहासु जायमानः ।
शिवरूपं शिवमुदितं शिवालयं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १५ ॥

येनेदं सर्वं जगतो बभूव
यद्देवा अपि महतो जातवेदाः ।
यदेवाग्र्यं तपसो ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १६ ॥

गोभिर्जुष्टो धनेन ह्यायुषा च बलेन च ।
प्रजया पशुभिः पुष्कराक्षं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १७ ॥

योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पठ्यतेऽनद ईश्वरः ।
अकायो निर्गुणो ह्यात्मा
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १८ ॥

यो वेदादिषु गायत्री सर्वव्यापी महेश्वरः ।
तदुक्तं च यदा ज्ञेयं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १९ ॥

(७८७४)

प्रयतप्राणं ओंकारं प्रणवं च महेश्वरम् ।
यः सर्वं यस्य चित् सर्वं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २० ॥
यो वै वेद महादेवं प्रणवं पुरुषोत्तमम् ।
ओंकारं परमात्मानं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २१ ॥
ओंकारं चतुर्भुजं लोकनाथं नारायणम् ।
सर्वस्थितं सर्वगतं सर्वव्यातं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २२ ॥
तत् परात् परतो ब्रह्मा तत् परात् परतो हरिः ।
परात् परतरं ब्रह्म
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २३ ॥
य इदं शिवसंकल्पं सदाधीयन्ति ब्राह्मणाः ।
ते परं मोक्षमाप्स्यन्ति
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २४ ॥
अस्ति नास्ति धयित्वा सर्वमिद
नास्ति पुनस्तथैव दृष्टं ध्रुवम् ।
अस्ति नास्ति हितं मध्यमं पदं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २५ ॥
अस्ति नास्ति विपरीतौ प्रवादौ
अस्ति नास्ति गुह्यं वा इदं सर्वम् ।
अस्ति नास्ति परात् परौ यत् परं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २६ ॥

(३४)

त्वष्टाकर्त्ता (नेजमेषः) । विष्णुः । अनुष्टुप् ।

नेजमेष परा पत सुपुत्रः पुनरा पत ।
अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा धेहि यः पुमान् ॥१॥
यथेयं पृथिवी मह्यु—त्ताना गर्भमादधे ।
एवं तं गर्भमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ २ ॥
विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणा—स्यां नार्यां गवीन्याम् ।
पुमांसं पुत्राना धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ ३ ॥

(३५)

वत्स आग्नेयः । अग्निः । गायत्री ।

अनीकवन्तमूतयेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ १ ॥

(३६)

संज्ञानमुशनावदत् संज्ञानं वरुणोऽवदत् ।
संज्ञानमिन्द्रश्चाग्निश्च संज्ञानं सवितावदत् ॥ १ ॥
संज्ञानं नः स्वेभ्यः संज्ञानमरणेभ्यः ।
संज्ञानमश्विना युव—मिहास्मासु नि यच्छताम् २
यत् कक्षीवां संवननं पुत्रो अङ्गिरसां भवेत् ।
तेन नोऽद्य विश्वे देवाः सं प्रियां समजीजनन् ३
सं वो मनांसि जानतां समाकूतिर्मनामसि ।
असौ यो विमना मनः सं समावर्तयामसि ॥ ४ ॥
नैर्हस्त्यं सेनादरणं परि वर्त्मेतु यद्धविः ।
तेनामित्राणां बाहून् हविषा शोषयामसि ॥ ५ ॥
परिवर्त्मान्येषामिन्द्रः पूषा च सश्चतुः ।
तेषां वो अग्निदग्धानामग्निमूळ्हानां
इन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ ६ ॥
ऐषु नह्यवृषाजिनं हरिणस्य धियं यथा ।
परां अमित्राँ एष त्व—र्वाची गौरुपाजतु ॥ ७ ॥
अध्वराणां पते वसो होतर्वरेण्यक्रतो ।
तुभ्यं गायत्रमृच्यते ॥ ८ ॥
गोकामो अन्नकामः प्रजाकाम उत कश्यपः ।
भूतं भविष्यत् प्रस्तौति सह महेक्रमक्षरं
बहुमहेक्रमक्षरम् ॥ ९ ॥
यदक्षरं भूतकृतं विश्वे देवा उपासते ।
महर्षिमस्य गोप्तारं जमदग्निरकुर्वत ॥ १० ॥
जमदग्निराप्यायते छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ।
राज्ञः सोमस्य भक्षेण ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ ११ ॥

शिवा नः प्रदिशो दिशः
सत्या नः प्रदिशो दिशः।
अजो यत् तेजो ददृशे
शुक्रं ज्योतिः परो गुहा ॥ १२ ॥
यदृषिः कश्यपः स्तौति सत्यं ब्रह्म चराचरं
ध्रुवं ब्रह्म चराचरम्।
त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं
अगस्त्यस्य त्र्यायुषम् ॥ १३ ॥
यद्देवानां त्र्यायुषं तन्मे अस्तु त्र्यायुषं
सर्वमस्तु शतायुषं बलायुषम् ॥ १४ ॥
तच्छंयोरा वृणीमहे
गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १५ ॥

(१७)

निविदुपनिषदो महाकादिभ्यो। अश्विनौ, ७ इन्द्रावरुणौ। त्रिष्टुप्, ६ द्विपदा।

प्रधारयन्तु मधुनो घृतस्य
यदश्विना पुरी उस्रियायाः।
मित्रावरुणौ भुवनस्य कारू
तावश्विना जुषतां समीके ॥ १ ॥
आयां रथं शतयायानमाशुं
प्रातर्यावाणं सुपदं हिरण्ययम्।
अतिष्ठच्चत्रं दुहिता विवस्वतः
तं सोमपाश्वमस्वपसे वरामहे ॥ २ ॥
आयामस्यासो वपुषा विपश्चितो
यास्पृषजः सुयुजो घृतश्चुतः।
येभिर्यायोप सूर्या वरेयं
सेभिर्नो दस्रावयतं समत्सु ॥ ३ ॥
यद्वा रेतो अश्विना पोषयित्नु
यद्वारम्भो वध्रिमत्यै सुदानू।
यस्माज्जज्ञे देवकामः सुदक्षः
तदस्यै दत्तं भिषजावभिद्यु ॥ ४ ॥
यन्नासत्या भेषजं चित्रभानू
येनावथुस्तोककामां च घोषाम्।
तदस्यै दत्तं त्रिषु पुंसुवध्यै
येनाविन्दत्तनयं सा सुहस्त्यम् ॥ ५ ॥
वषड् वां दस्रावस्मिन् सुतो
नासत्या होता कृणोतु वेधाः ॥ ६ ॥
इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं
रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम्।
प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं
दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः

(१८)

(अथर्व० २०।४९।१-७)

खिलम्। ४-५ नोधाः, ६-७ मेध्यातिथिः। गायत्री, ४,५ प्रगाथः= (विषमा बृहती + समा सतो बृहती)।

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः।
सं देवा अमदन् वृषा ॥ १ ॥
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि।
मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥ २ ॥
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन्विराजति।
विमदन् बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव
इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं
गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं
मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥
(७१११)

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते
येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥

येना समुद्रमसृजो महीरपः
तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे
यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥

अथ कुन्तापसूक्तानि ।

(खिलानि ।)

॥ १ ॥ (अथर्व० २०।१२७।१-१४)

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम
आ रुशमेषु दद्महे ॥ १ ॥

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते
दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥ २ ॥

एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥

वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥ ४ ॥

प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते ।
अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥ ५ ॥

प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् ।
देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥ ६ ॥

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥ ७ ॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् ।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥ ८ ॥

कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९ ॥

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ १० ॥

इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥ ११ ॥

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥

नेमा इन्द्र गावो रिषन्
मो आसां गोप रीरिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥

उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा
वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० २०।१२८।१-१६)

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः ।
सूर्यं चामू रिशादसः
तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १ ॥

यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति ।
ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २ ॥

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।
तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥

यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः ।
धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः ।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥ ५ ॥

योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः ।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥

(७३१२)

॥ ५ ॥ (अथर्व० २०।१३१।१-२०)

आमिनोनिति मंद्यते ॥ १ ॥
तस्यं अनु निर्भञ्जनम् ॥ २ ॥
वरुणो याति वस्वंभिः ॥ ३ ॥
शतं वा भारती शवः ॥ ४ ॥
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ५
अहुल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥
शफेन इव ओहते ॥ ७ ॥
आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥
वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥ ९ ॥
इदं मह्यं मदूरिति ॥ १० ॥
ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥ ११ ॥
पाक बलिः ॥ १२ ॥
शक बलिः ॥ १३ ॥
अश्वत्थ खदिरो धवः ॥ १४ ॥
अरदुपरम ॥ १५ ॥
शयो हत इव ॥ १६ ॥
व्याप पूरुषः ॥ १७ ॥
अदूहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥
अत्यर्धर्च परस्वतः ॥ १९ ॥
दौव हस्तिनो दृती ॥ २० ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० २०।१३२।१-१६)

आदलाबुकमेककम् ॥ १ ॥
अलाबुकं निखातकम् ॥ २ ॥
कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥
तद् वात उन्मथायति ॥ ४ ॥
कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥
उग्रं वनिषदाततम् ॥ ६ ॥
न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥
क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥ ९ ॥
यदीयं हनत् कथं हनत् ॥ १० ॥
देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥
पर्यागारं पुनः पुनः ॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥
हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशवः ॥ १५ ॥
नीलशिखण्डवाहनः ॥ १६ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० २०।१३३।१-६)

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥१॥
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥२॥
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥३॥
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥४॥
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥५॥
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० २०।१३४।१-६)

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
अरालागुदभर्त्सथ ॥ १ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
वत्साः पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
आष्टे लाहणि लीशाथी ॥ ५ ॥

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।
अयभ्या कन्या॒ कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥८
सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः ।
सुयभ्या कन्या॒ कल्याणी
तोता कल्पेषु संमिता ॥ ९ ॥
परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या॒ च युधिंगमः ।
अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥
वावाता च महिषी स्वस्त्या॒ च युधिंगमः ।
श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥
यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।
विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते ॥१२
त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।
त्वं रौहिणं व्या॒स्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥१३॥
यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः ।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते १४
पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन् ।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥
ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० २०।१२९ १-२०)

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥ १ ॥
प्रतीपं प्राति सुत्वनम् ॥ २ ॥
तासामेका हरिक्निका ॥ ३ ॥
हरिक्निके किमिच्छसि ॥ ४ ॥
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥ ५ ॥
क्वाहतं परास्यः ॥ ६ ॥
यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥ ७ ॥
परि त्रयः ॥ ८ ॥
पृदाकवः ॥ ९ ॥
शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥
अयन्महा ते अर्वाहः ॥ ११ ॥
स इच्छकं सघाघते ॥ १२ ॥
सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति ॥ १३ ॥
पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥
पल्प बद्ध वयो इति ॥ १५ ॥
बद्धं वो अघा इति ॥ १६ ॥
अजागार केविका ॥ १७ ॥
अश्वस्य वारो गोशपद्यके ॥ १८ ॥
श्येनीपती सा ॥ १९ ॥
अनामयोपजिह्विका ॥ २० ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० २०।१३०।१-२०)

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥ १ ॥
को असिद्याः पयः ॥ २ ॥
को अर्जुन्याः पयः ॥ ३ ॥
कः कार्ष्ण्याः पयः ॥ ४ ॥
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥ ५ ॥
कुहाक पक्वकं पृच्छ ॥ ६ ॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥ ७ ॥
अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥ ८ ॥
आमणको मणत्सकः ॥ ९ ॥
देव त्वप्रतिसूर्य ॥ १० ॥
एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥ ११ ॥
प्रदुद्रुदो मघाप्रति ॥ १२ ॥
शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥
मा त्वाऽभि सखा नो विदन् ॥ १४ ॥
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥
इरावेदुमयं दत ॥ १६ ॥
अथो इयन्नियन्निति ॥ १७ ॥
अथो इयन्निति ॥ १८ ॥
अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥ १९ ॥
उयं यकांशलोकका ॥ २० ॥

(७९८९)

॥ ५ ॥ (अथर्व० २०।१३१।१-२०)

आमिनोनिति भद्यते ॥ १ ॥
तस्य अनु निर्भञ्जनम् ॥ २ ॥
वरुणो याति वस्वभिः ॥ ३ ॥
शतं वा भारती शवः ॥ ४ ॥
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ५
अहुल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥
शफेन इव ओहते ॥ ७ ॥
आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥
वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥ ९ ॥
इदं मह्यं मदूरिति ॥ १० ॥
ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥ ११ ॥
पाक बलिः ॥ १२ ॥
शक बलिः ॥ १३ ॥
अश्वत्थ खदिरो धवः ॥ १४ ॥
अरदुपरम ॥ १५ ॥
शयो हत इव ॥ १६ ॥
व्याप पूरुषः ॥ १७ ॥
अदूहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥
अत्यर्धर्च परस्वतः ॥ १९ ॥
दौव हस्तिनो दृती ॥ २० ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० २०।१३२।१-१६)

आदलाबुकमेककम् ॥ १ ॥
अलाबुकं निखातकम् ॥ २ ॥
कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥
तद् वात उन्मथायति ॥ ४ ॥
कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥
उग्रं वनिषदाततम् ॥ ६ ॥
न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥
क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥ ९ ॥
यदीयं हनत् कथं हनत् ॥ १० ॥
देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥
पर्यागारं पुनः पुनः ॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥
हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशवः ॥ १५ ॥
नीलशिखण्डवाहनः ॥ १६ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० २०।१३३।१-६)

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥१॥
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥२॥
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥३॥
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥४॥
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥५॥
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० २०।१३४।१-६)

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
अरालागुदभर्त्सथ ॥ १ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
वत्साः पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्
आष्टे लाहणि लीशाथी ॥ ५ ॥

इ॒हेत्थ प्रागपा॒गुद॑ग॒धरा॒ग्
अ॒श्लि॑ल॒ी पु॑च्छि॒लीय॑ते ॥ ६ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० २०।१३५।१–१३.)

भुगि॑त्य॒भिग॑तः शलि॑त्य॒पक्रा॑न्तः फलि॑त्य॒भिष्ठि॑तः ।
दु॒न्दु॒भिमा॒हन॑ना॒भ्यां जरि॑त॒रोथा॑मो दै॒व ॥ १ ॥
को॒शबि॒ले र॑जनि॒ ग्रन्थे॒र्धान॑मु॒पान॒हिं पा॒दम् ।
उत्त॑मां॒ जनि॑मां॒ ज॒न्य
अनु॑त्तमां॒ जनी॑न् वर्त्म॑न्यात् ॥ २ ॥
अलाबू॑नि पृषात॑कान्यश्व॑त्थपलाशम् ।
पिपी॑लिका॒वट॒श्वसो॑ वि॒द्युत्
स्वाप॑र्णश॒फो गोश॒फो जरि॑त॒रोथा॑मो॒ दै॒व ॥ ३ ॥
वी॒मे दे॒वा अक्रं॑सताध्व॒र्यो क्षि॒प्रं प्र॒चर॑ ।
सु॒सत्य॒मिद् गवा॑मस्यासि प्रखु॒दसि॑ ॥ ४ ॥
प॒त्नी यदृ॑श्यते प॒त्नी
यक्ष्य॑माणा जरि॑त॒रोथा॑मो दै॒व ।
हो॒ता वि॑ष्टीमेन जरि॑त॒रोथा॑मो दै॒व ॥ ५ ॥
आदि॑त्या ह जरित॒रङ्गि॑रोभ्यो॒ दक्षि॑णाम॒नय॑न् ।
तां ह॑ जरितः प्रत्या॑यन्
तामु॑ ह॑ जरि॒तः प्रत्या॑यन् ॥ ६ ॥
तां ह॑ जरित॒र्नः प्रत्य॑गृभ्णन्
तामु॑ ह॑ जरित॒र्नः प्रत्य॑गृभ्णः ।
अहा॑नेतरसं॒ न॒ वि चे॒तना॑नि
य॒ज्ञाने॑तरसं॒ न॒ पु॒रोग॑वामः ॥ ७ ॥
उ॒त श्वे॒त आशु॑पत्वा उ॒तो पद्या॑भि॒र्यवि॑ष्ठः ।
उ॒तेमा॒शु मानं॑ पिपर्ति ॥ ८ ॥
आदि॑त्या रु॒द्रा वस॑वस्त्वेनु
न इ॒दं राधः॒ प्रति॑ गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इ॒दं राधो॑ वि॒भु प्रभु॑ इ॒दं राधो॑ बृ॒हत् पृथु॑ ॥ ९ ॥
देवा॑ दद॒त्वासु॑रं तद् वो॑ अस्तु॒ सुचे॑तनम् ।
यु॒ष्मां अ॑स्तु॒ दिवे॑दिवे प्रत्ये॑व गृभायत ॥ १० ॥
त्वमि॑न्द्र श॒र्मरि॑णा ह॒व्यं पारा॑वतेभ्यः ।
विप्रा॑य स्तुव॒ते व॑सु॒वनिं॑ दुरश्र॒वसे॑ वह ॥ ११ ॥
त्वमि॑न्द्र क॒पोता॑य च्छिन्नप॒क्षाय॒ वञ्च॑ते ।
श्यामा॑कं प॒क्वं पीलु॑ च॒ वार॑स्मा॒ अकृ॑णोर्ब॒हुः ॥ १२ ॥
अ॒रंग॒रो वा॑वदीति त्रे॒धा ब॒द्धो व॑र॒त्रया॑ ।
इरा॑मह प्रशं॑स॒त्यनि॑रा॒मप॑ सेधति ॥ १३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० २०।१३६।१–१६)

यद॑स्या अंहु॒भेद्याः॑ कृ॒धु स्थू॒लमु॒पात॑सत् ।
मु॒ष्कावि॒द॑स्या एजतो गोश॒फे श॑कु॒लावि॑व ॥ १ ॥
यदा॑ स्थू॒लेन॒ पस॑साणौ मु॒ष्का उपा॑वधीत् ।
विष्व॑ञ्चा व॒स्या व॒र्धतः॒ सिक॑तास्वे॒व गर्द॑भौ ॥ २ ॥
यद॑ल्पिका॒स्व॒ल्पिका कर्क॑न्धू॒केव॒पद्य॑ते ।
वास॑न्तिकमि॑व॒ तेज॑नं यन्त्य॒वाता॑य॒ वित्प॑ति ॥ ३ ॥
यद् दे॒वासो॑ ल॒लाम॑गुं प्र॒विष्टी॒मिन॑मावि॒षुः ।
स॒कुला दे॑दिश्यते॒ नारी॑
स॒त्यस्या॑क्षि॒भुवो॑ यथा ॥ ४ ॥
म॒हान॒ग्न्यृ॑तृ॒पद्वि मोक्र॑द॒दस्था॑नास॒रन् ।
शक्ति॑का॒नना स्व॑च॒मश॑कं॒ सक्तु॑ पद्य॑म् ॥ ५ ॥
म॒हान॒ग्न्यु॑लूखलमति॒क्राम॑न्त्यब्रवीत् ।
य॒था तव॑ वनस्पते॒ निर॑घ्नन्ति॒ तथै॑वति ॥ ६ ॥
म॒हान॒ग्न्युप॑ ब्रूते भ्र॒ष्टोऽथाप्य॑भूभुवः ।
यथै॑व ते॑ वनस्पते॒ पिप्प॑ति॒ तथै॑वति ॥ ७ ॥
म॒हान॒ग्न्युप॑ ब्रूते भ्र॒ष्टोऽथाप्य॑भूभुवः ।
य॒था व॒यो वि॑दाह्य॑ स्व॒र्गे न॒मव॑दह्यते ॥ ८ ॥
म॒हान॒ग्न्युप॑ ब्रूते स्वसा॒वेशि॑तं॒ पसः॑ ।
इ॒त्थं फल॑स्य वृक्ष॑स्य॒ शूर्पे॑ शूर्पं॑ भजे॑महि ॥ ९ ॥
म॒हान॒ग्नी क॑कवा॒कं शम्य॑या॒ परि॑ धावति ।
अ॒यं न वि॒द्म यो मृ॒गः
शी॒र्ष्णा ह॑रति॒ धाणि॑काम् ॥ १० ॥
म॒हान॒ग्नी म॒हान॒ग्नं धाव॑न्त॒मनु॑ धावति ।
इ॒माल॑दस्य॒ गा र॑स॒ यभ॒ मार्म॒द्यपौ॑दनम् ॥ ११ ॥

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥
वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोऽग्रतं परे ।
महान् वै भद्रो यम मामद्ध्यौदनम् ॥ १३ ॥
विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते
महतः साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥१४॥
महान् वै भद्रो विल्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥१५॥
यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

॥ इति अथ कुन्तापसूक्तानि ॥

अथ महानाम्न्यार्चिकः ।

(६४१-६५०) प्रजापतिः । इन्द्रस्त्रैलोक्यात्मा ।

विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥ १ ॥
आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वाऽ३र्नांशुः ।
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥ २ ॥
एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।
शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस
आ याहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥
विदा राये सुवीर्यं
भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु ।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥
यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न शोचिः ।
चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥५॥
ईशे हि शक्रस्तमूतये
हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥६॥
इन्द्रं धनस्य सातये
हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः ।
स नः स्वर्षदति द्विषः ॥ ७ ॥
पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोऽंशुर्मदाय ।
सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ।
वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ॥ ८ ॥
प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै ।
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥९॥

अथ पञ्चपुरीषपदानि ।

एवाहो ३ऽ३ऽ३ व । एवा ह्यग्ने । एवाहीन्द्र ।
एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ।
ओम् । एवा हि देवाः । ओम् ॥ १० ॥
(८०७०)

॥ इति पञ्च पुरीषपदानि ॥ इति महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः ॥

॥ इति वेदसंहिता समाप्ता ॥

